UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180801

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—390—29-4-72—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H891.21 M21H Accession No. 71156

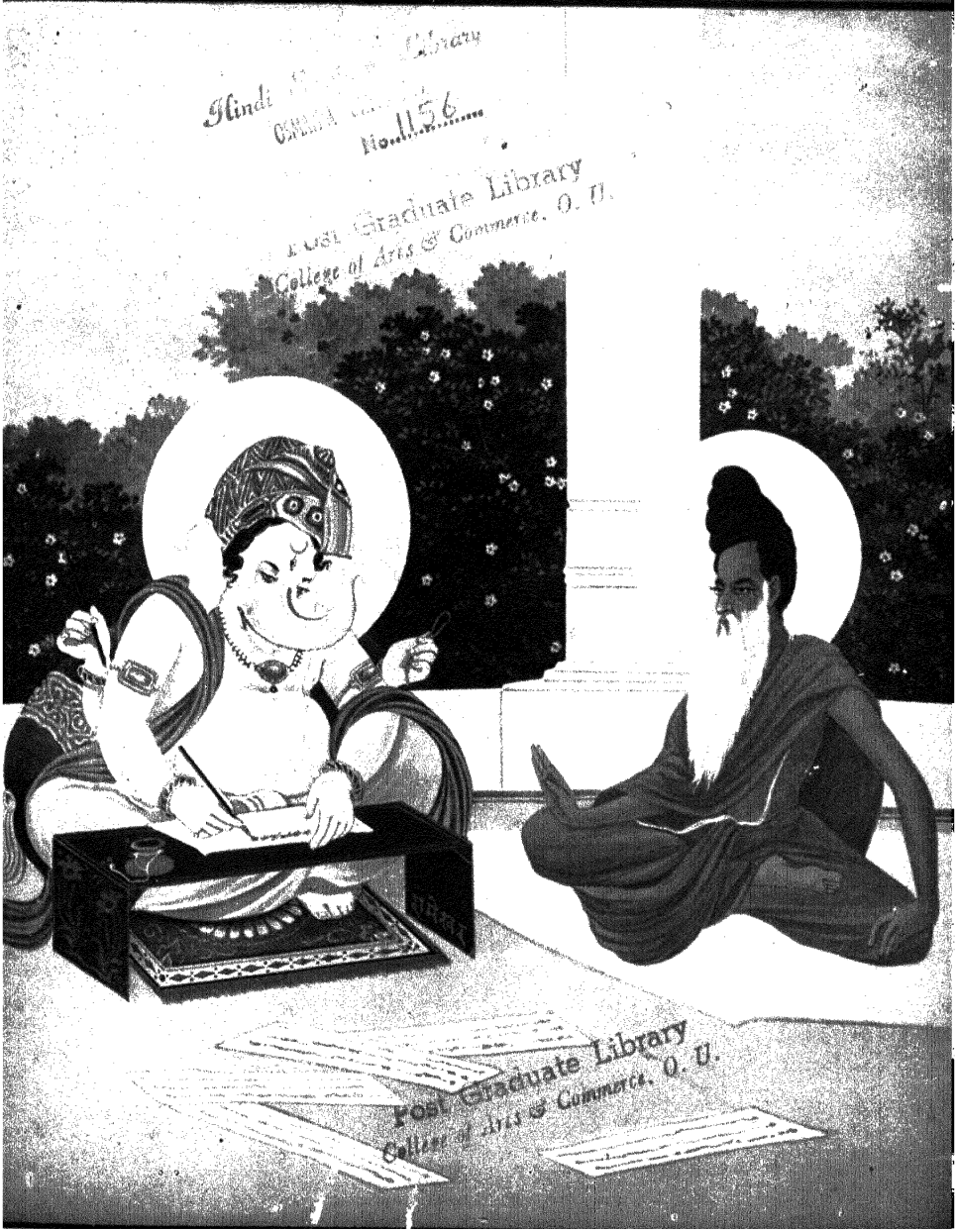
Author

Title हिन्दी महाभारत : आदिपर्व

This book should be returned on or before the date last marked below.

25 DEC 1986 50

# हिन्दी महाभारत



Hindi Library
No. 1156
Post Graduate Library
College of Arts & Commerce, O. U.

# आवश्यक सूचनायें

( १ ) हमने प्रथम खण्ड की समाप्ति पर उसके साथ एक महाभारत-कालीन भारतवर्ष का प्रामाणिक सुन्दर मानचित्र भी देने की सूचना दी थी। इस सम्बन्ध में हम ग्राहकों को सूचित करते हैं कि पूरा महाभारत समाप्त हो जाने पर हम प्रत्येक ग्राहक को एक परिशिष्ट अध्याय बिना मूल्य भेजेंगे जिसमें महाभारत-सम्बन्धी महत्व-पूर्ण खोज, साहित्यिक आलोचना, चरित्र-चित्रण तथा विश्लेषण आदि रहेगा। उसी परिशिष्ट के साथ ही मानचित्र भी लगा रहेगा जिसमें पाठकों को मानचित्र देख कर उपरोक्त बातें पढ़ने और समझने आदि में पूरी सुविधा रहे।

( २ ) महाभारत के प्रेमी ग्राहकों को यह शुभ समाचार सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी कि हमने कानपुर, उन्नाव, काशी ( रामनगर ), कलकत्ता, गाज़ीपुर, बरेली, मथुरा ( वृन्दावन ), जोधपुर, बुलन्दशहर, प्रयाग और लाहौर आदि में ग्राहकों के घर पर ही महाभारत के अङ्क पहुँचाने का प्रबन्ध किया है। अब तक ग्राहकों के पास यहीं से सीधे डाक-द्वारा प्रतिमास अङ्क भेजे जाते थे जिसमें प्रति अङ्क तीन चार आना खर्च होता था पर अब हमारा नियुक्त किया हुआ एजेंट ग्राहकों के पास घर पर जाकर अङ्क पहुँचाया करेगा और अङ्क का मूल्य भी ग्राहकों से वसूल कर ठीक समय पर हमारे यहाँ भेजता रहेगा। इस अवस्था पर ग्राहकों को ठीक समय पर प्रत्येक अङ्क सुरक्षित रूप में मिल जाया करेगा और वे डाक, रजिस्टरी तथा मनीआर्डर इत्यादि के व्यय से बच जायँगे। इस प्रकार उन्हें प्रत्येक अङ्क केवल एक रुपया मासिक देने पर ही घर बैठे मिल जाया करेगा। यथेष्ट ग्राहक मिलने पर अन्य नगरों में भी शीघ्र ही इसी प्रकार का प्रबन्ध किया जायगा। आशा है जिन स्थानों में इस प्रकार का प्रबन्ध नहीं है, वहाँ के महाभारतप्रेमी सज्जन शीघ्र ही अधिक संख्या में ग्राहक बन कर इस अवसर से लाभ उठावेंगे। और जहाँ इस प्रकार की व्यवस्था हो चुकी है वहाँ के ग्राहकों के पास जब एजेंट अङ्क लेकर पहुँचे तो ग्राहकों को रुपया देकर अङ्क ठीक समय पर ले लेना चाहिए जिसमें उन्हें ग्राहकों के पास बार बार आने जाने का कष्ट न उठाना पड़े। यदि किसी कारण उस समय ग्राहक मूल्य देने में असमर्थ हों तो अपनी सुविधानुसार एजेंट के पास से जाकर अङ्क ले आने की कृपा किया करें।

( ३ ) हम हिन्दी-भाषा-भाषी सज्जनों से एक सहायता की प्रार्थना करते हैं। वह यही कि हम जिस विराट् आयोजन में संलग्न हुए हैं आप लोग भी कृपया इस पुण्य-पर्व में सम्मिलित होकर पुण्य-सञ्चय कीजिए, अपनी राष्ट्र भाषा हिन्दी का साहित्य-भाण्डार पूर्ण करने में सहायक हूजिए और इस प्रकार सर्वसाधारण का हित-साधन करने का उद्योग कीजिए। सिर्फ़ इतना ही करें कि अपने दस-पाँच हिन्दी-प्रेमी इष्ट-मित्रों में से कम से कम दो स्थायी ग्राहक इस वेद-तुल्य सर्वाङ्गसुन्दर महाभारत के और बना देने की कृपा करें। जिन पुस्तकालयों में हिन्दी की पहुँच हो वहाँ इसे ज़रूर मँगवावें। एक भी समर्थ व्यक्ति ऐसा न रह जाय जिसके घर यह पवित्र ग्रन्थ न पहुँचे। आप सब लोगों के इस प्रकार साहाय्य करने से ही यह कार्य्य अग्रसर होकर समाज का हितसाधन करने में समर्थ होगा।

—प्रकाशक

# निवेदन

इस प्रेस से महर्षि वेदव्यासरचित सम्पूर्ण महाभारत के सर्वाङ्ग-सुन्दर सचित्र अनुवाद के मासिक रूप में प्रकाशित होने की सूचना पाठकों को दी जा चुकी है। तदनुसार उसका प्रथमाङ्क पाठकों के सामने है। इसके अनुवाद के सम्बन्ध में हमें तीन बातें कहनी हैं :—

(१) महाभारत का यह अनुवाद बहुत प्राचीन प्रामाणिक प्रति से किया गया है और उसी अर्थ को प्रधानता दी गई है जिसे महाभारत के प्रसिद्ध टीकाकार नील-कण्ठ पण्डित ने माना है। अतएव इसमें जो श्लोकाङ्क दिये गये हैं उनका मिलान अन्य आधुनिक प्रतियों के श्लोकाङ्कों से किया जायगा तो उसमें अन्तर पड़ने की सम्भावना है। श्लोकाङ्क इसलिए दे दिये गये हैं कि किसी को उक्त अभिप्राय मूल में देखना हो तो ढूँढ़ लें। किन्तु ऐसा करते समय अन्य प्रतियों के श्लोक आगे पीछे मिलेंगे। कथा के तारतम्य की दृष्टि से क्वचित् अध्यायों में भी अन्तर पड़ेगा।

(२) अनुवाद में शब्दों का अर्थ करने की अपेक्षा भाव को प्रधानता देने का प्रयास किया गया है। जो विशेषण पास ही, एक बार, आ चुके हैं वे दुहराये नहीं गये। कहीं पर संस्कृत के डेढ़ श्लोक का भाव एक वाक्य में पूरा हुआ है और कहीं पर इससे भी अधिक का। इसके सिवा कहीं कहीं एक एक श्लोक का अर्थ कई वाक्यों में हुआ है। इस कारण श्लोकाङ्क दस दस के अन्तर पर दिये गये हैं,—एक, दो, तीन के क्रम से नहीं। हाँ, कहीं कहीं पर प्रसङ्गवश इस क्रम की रक्षा नहीं की गई है।

(३) अनुवाद की भाषा सरल रखने की चेष्टा की गई है जिसमें स्त्रियाँ और बालक तक इसको पढ़ और समझ सकें। फिर भी कहीं कहीं उच्च कोटि की भाषा का मिल जाना सम्भव है। महापुराण ही ठहरा, क़िस्से-कहानियों की किताब तो है ही नहीं। विशेषतः जहाँ धर्म की गूढ़ बातों का वर्णन है वहाँ ऐसा हुआ है। फिर भी मुख्य अर्थ को समझाने के लिए कुछ कसर नहीं रक्खी गई। जो बात प्रसङ्ग में नहीं है, किन्तु जिसका आगे या पीछे वर्णन हुआ है और जिसके बिना प्रसङ्ग अधूरा जँचता है, उसका उल्लेख ब्रैकिटों [ ] के भीतर कर दिया गया है जिससे पढ़नेवालों को किसी प्रकार की अड़चन न हो।

—प्रकाशक

# विषय-सूची


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **पहला अध्याय** | |
| शौनक आदि मुनियों के पास सूत के पुत्र का आना। महाभारत की कथाओं की अनुक्रमणिका .. | १ |
| **दूसरा अध्याय** | |
| समन्त पञ्चक का वर्णन। अक्षौहिणी आदि का परिमाण। सब पर्वों का संक्षेप से वृत्तान्त कहना। भारत सुनने का फल .. . | १८ |
| **तीसरा अध्याय** | |
| जनमेजय को सरमा का शाप। धौम्य के शिष्यों की कथा। उत्तङ्क की कथा। पौष्य राजा का उपाख्यान | ३१ |
| **चौथा अध्याय** | |
| उग्रश्रवा और शौनक के संवाद से कथा का प्रारम्भ ... .. | ४४ |
| **पाँचवाँ अध्याय** | |
| भृगुवंश का वर्णन। पुलोमा का उपाख्यान। पुलोमा-हरण। पुलोमा और अग्नि का संवाद... .. | ४५ |
| **छठा अध्याय** | |
| च्यवन की उत्पत्ति, राक्षस का विनाश, अग्निदेव को महर्षि भृगु का शाप | ४७ |
| **सातवाँ अध्याय** | |
| अग्नि का क्रोध, ब्रह्मा के समझाने से अग्नि का प्रसन्न होना . | ४८ |
| **आठवाँ अध्याय** | |
| रुरु का चरित्र, मेनका की कन्या प्रमद्वरा के साथ रुरु के विवाह का प्रसङ्ग, प्रमद्वरा की साँप के काटने से मृत्यु और रुरु का दुखित होना | ४९ |
| **नवाँ अध्याय** | |
| रुरु का अपनी आधी आयु देकर प्रमद्वरा को जिलाना और उसके साथ रुरु का विवाह ... ... | ५१ |
| **दसवाँ अध्याय** | |
| रुरु और डुण्डुभ का संवाद ... | ५२ |
| **ग्यारहवाँ अध्याय** | |
| डुण्डुभ-चरित्र . ... | ५३ |
| **बारहवाँ अध्याय** | |
| जनमेजय से सर्प-यज्ञ का प्रस्ताव | ५४ |
| **तेरहवाँ अध्याय** | |
| आस्तीक और जरत्कारु का उपाख्यान, जरत्कारु और उनके पितरों का संवाद ... ... ... | ५४ |
| **चौदहवाँ अध्याय** | |
| वासुकि नाग की बहन जरत्कारु के साथ जरत्कारु ऋषि का ब्याह होना | ५६ |
| **पन्द्रहवाँ अध्याय** | |
| आस्तीक का जन्म और संक्षेप से सर्पों की रक्षा का वर्णन | ५६ |
| **सोलहवाँ अध्याय** | |
| विस्तार से आस्तीक की कथा का वर्णन। कद्रू और विनता को कश्यप से वरदान की प्राप्ति। कद्रू से सर्प और विनता की अरुण की उत्पत्ति। विनता को अरुण का शाप ... ... | ५७ |
| **सत्रहवाँ अध्याय** | |
| भगवान् के उपदेश से समुद्र मथ कर अमृत निकालने के लिए देवताओं का विचार ... .. | ५८ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **अठारहवाँ अध्याय** | |
| मोहित दैत्यों से मोहिनी-रूप विष्णु का अमृत-कलश ले लेना ... | ५९ |
| **उन्नीसवाँ अध्याय** | |
| देवताओं का अमृत पीना। राहु का सिर कटना। देवता-दैत्यों का युद्ध। दैत्यों की हार .. ... | ६१ |
| **बीसवाँ अध्याय** | |
| कद्रू और विनता का बाज़ी लगाना। सर्पों को कद्रू का शाप। कश्यप को विष दूर करनेवाली विद्या मिलना | ६३ |
| **इक्कीसवाँ अध्याय** | |
| उच्चैःश्रवा को देखने के लिए कद्रू और विनता का जाना... ... | ६४ |
| **बाईसवाँ अध्याय** | |
| साँपों का माता को प्रसन्न करने के लिए आप से जाकर उच्चैःश्रवा की पूछ में लिपट कर उसे काला कर देना .. ... ... | ६५ |
| **तेईसवाँ अध्याय** | |
| गरुड़ की उत्पत्ति और स्तुति ... | ६६ |
| **चौबीसवाँ अध्याय** | |
| राहु के उपद्रव से सूर्य का क्रोध। अरुण का ब्रह्मा की आज्ञा से सूर्य का रथ हाँकना स्वीकार करना ... | ६७ |
| **पचीसवाँ अध्याय** | |
| विनता का दासीभाव, कद्रू की की हुई इन्द्र की स्तुति ... | ६८ |
| **छब्बीसवाँ अध्याय** | |
| स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्र का जल बरसाना ... ... ... | ७० |
| **सत्ताईसवाँ अध्याय** | |
| गरुड़ का विनता से दासी होने का कारण पूछना। साँपों का दासी-भाव से विनता के छूटने का उपाय बताना ... ... ... | ७० |
| **अट्ठाईसवाँ अध्याय** | |
| अमृत लेने के लिए गरुड़ का जाना | ७१ |
| **उनतीसवाँ अध्याय** | |
| गले को जला रहे ब्राह्मण को गरुड़ का उगल देना। गरुड़ और कश्यप की बातचीत। गज-कच्छप का वृत्तान्त। गज-कच्छप को गरुड़ का पकड़ना। वृक्ष की शाखा का टूटना | ७२ |
| **तीसवाँ अध्याय** | |
| बालखिल्य ऋषियों की रक्षा। गरुड़ का हिमाचल पर जाकर गज-कच्छप को खाना। उत्पात देख कर देवताओं का अमृत की रक्षा के लिए विशेष उपाय करना ... | ७५ |
| **इकतीसवाँ अध्याय** | |
| बालखिल्य ऋषियों के तप से गरुड़ की उत्पत्ति का वर्णन करके उनके पक्षिराज होने का वृत्तान्त कहना | ७७ |
| **बत्तीसवाँ अध्याय** | |
| देवताओं के साथ गरुड़ का युद्ध और देवताओं का हारना ... | ७९ |
| **तैंतीसवाँ अध्याय** | |
| गरुड़ का अमृत के समीप पहुँचना। अमृत लेकर जा रहे गरुड़ से विष्णु की भेंट। विष्णु और गरुड़ का परस्पर वर देना ... ... | ८१ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **चौंतीसवाँ अध्याय** | |
| गरुड़ से इन्द्र की मित्रता। इन्द्र का गरुड़ को वर देना। विनता का दासीभाव से छुटकारा। साँपों के दो जीभ होने का कारण | ८२ |
| **पैंतीसवाँ अध्याय** | |
| साँपों के नामों का वर्णन | ८४ |
| **छत्तीसवाँ अध्याय** | |
| शेष को ब्रह्मा का पृथ्वी को सिर पर धारण करने की आज्ञा और वर देना | ८५ |
| **सैंतीसवाँ अध्याय** | |
| माता के शाप से बचने का उपाय निकालने के लिए साँपों का सलाह करना | ८६ |
| **अड़तीसवाँ अध्याय** | |
| एलापत्र नाग की सलाह। ब्रह्मा और देवताओं के संवाद में आस्तीक की उत्पत्ति का वर्णन .. ... | ८८ |
| **उनतालीसवाँ अध्याय** | |
| एलापत्र की सलाह से वासुकि का जरत्कारु ऋषि के लिए अपनी बहन को वर छोड़ना . .. | ८९ |
| **चालीसवाँ अध्याय** | |
| जरत्कारु नाम का अर्थ। शौनक का सूतपुत्र से आस्तीक की उत्पत्ति पूछना। प्रसंगवश राजा परीक्षित के शिकार करने जाने का वर्णन। परीक्षित का शमीक ऋषि के कन्धे पर मरा हुआ साँप डालना ... | ९० |
| **इकतालीसवाँ अध्याय** | |
| शृङ्गी ऋषि का परीक्षित को शाप देना | ९२ |
| **बयालीसवाँ अध्याय** | |
| शृङ्गी और शमीक का संवाद। शमीक के शिष्य से परीक्षित की बात चीत। मन्त्रियों से राजा का सलाह करना। तक्षक और काश्यप का संवाद .. | ९४ |
| **तेंतालीसवाँ अध्याय** | |
| काश्यप का विष से जले वरगद को मन्त्र के बल से हरा कर देना। तक्षक का काश्यप को धन देकर लौटा देना | ९६ |
| **चवालीसवाँ अध्याय** | |
| जनमेजय का राज्याभिषेक और विवाह | ९८ |
| **पैंतालीसवाँ अध्याय** | |
| जरत्कारु ऋषि से उनके पितरों की भेंट और बात चीत .. ... | ९९ |
| **छियालीसवाँ अध्याय** | |
| जरत्कारु का पितरों से बातचीत करना और स्त्री की खोज करना... | १०० |
| **सैंतालीसवाँ अध्याय** | |
| जरत्कारु का विवाह। जरत्कारु का गर्भवती होना। प्रतिज्ञा-भङ्ग से कुपित मुनि का स्त्री को छोड़कर वन की ओर चल देना ... | १०१ |
| **अड़तालीसवाँ अध्याय** | |
| वासुकि से और उनकी बहन से बातचीत। आस्तीक की उत्पत्ति .. | १०४ |


## रंगीन चित्रों की सूची


१ श्रीव्यासदेव ... ... १
२ समुद्र मन्थन ... ५८
३ सिर पर पृथ्वी मण्डल को धारण किये प्रतापी शेषनाग . .. ८६
४ राजा जनमेजय और वपुष्टमा का विहार . ... ९८

# विषय-सूची ।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **उनचासवाँ अध्याय** | |
| जनमेजय और मन्त्री के संवाद में फिर परीक्षित के चरित्र का वर्णन | १०५ |
| **पचासवाँ अध्याय** | |
| सूने जङ्गल में होनेवाले तक्षक और काश्यप के संवाद की खबर किस तरह मन्त्रियों को लगी, इसका वर्णन .. .. | १०६ |
| **एक्यावनवाँ अध्याय** | |
| जनमेजय का सर्पयज्ञ की प्रतिज्ञा करना । यज्ञ की सामग्री जमा होना । यज्ञ की दीक्षा लेना | १०८ |
| **बावनवाँ अध्याय** | |
| आग में सांपों का आ-आकर गिरना . . | १०९ |
| **तिरपनवाँ अध्याय** | |
| ऋत्विजों के नामों का उल्लेख । इन्द्र का तक्षक को आश्वास देना । वासुकि और उसकी बहन की बातचीत ... ... | १०९ |
| **चौवनवाँ अध्याय** | |
| आस्तीक के साथ उनकी माता की बातचीत । वासुकि को आश्वास देना । आस्तीक का सर्प-यज्ञ में जाना ... ... | ११० |
| **पचपनवाँ अध्याय** | |
| आस्तीक की की हुई जनमेजय के यज्ञ की प्रशंसा ... ... | ११२ |
| **छप्पनवाँ अध्याय** | |
| राजा और ऋत्विजों की बातचीत । मन्त्र-बल से तक्षक-सहित इन्द्र का आना । इन्द्र के डर कर भाग जाने पर अग्नि के पास तक्षक का आना । आस्तीक का यज्ञ-समाप्ति का वर मांगना ... ... | ११३ |
| **सत्ताघनवाँ अध्याय** | |
| सर्प-यज्ञ में जले हुए नागों के नाम गिनना ... .. | ११५ |
| **अट्ठावनवाँ अध्याय** | |
| यज्ञ की समाप्ति । आस्तीक का सांपों से वर पाना ... | ११६ |
| **उनसठवाँ अध्याय** | |
| उग्रश्रवा की भारत-वर्णन की प्रतिज्ञा | ११८ |
| **साठवाँ अध्याय** | |
| व्यासजी का जनमेजय के यज्ञ में आना और वैशम्पायन को भारत-वर्णन के लिए व्यासजी का आज्ञा देना . | ११९ |
| **इकसठवाँ अध्याय** | |
| संक्षेप से महाभारत का वर्णन | १२० |
| **बासठवाँ अध्याय** | |
| भारत की प्रशंसा । भारत सुनने का फल ... .. | १२३ |
| **तिरसठवाँ अध्याय** | |
| राजा उपरिचर का उपाख्यान । भीष्म आदि के जन्म का वृत्तान्त | १२५ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **चौंसठवाँ अध्याय** | |
| परशुराम के द्वारा पृथ्वी के क्षत्रिय-रहित होने पर ब्राह्मण के वीर्य से क्षत्रिय की उत्पत्ति । देवताओं और असुरों का मनुष्ययोनि में जन्म लेना ... ... | १३२ |
| **पैंसठवाँ अध्याय** | |
| अदिति आदि दक्ष की कन्याओं के वंश का विस्तृत वर्णन ... | १३४ |
| **छासठवाँ अध्याय** | |
| ऋषियों के वंश का वर्णन | १३६ |
| **सड़सठवाँ अध्याय** | |
| अंशावतारों का वर्णन ... | १४० |
| **अड़सठवाँ अध्याय** | |
| कुरुवंश का वर्णन । संक्षेप से ययाति का उपाख्यान ... | १४५ |
| **उनहत्तरवाँ अध्याय** | |
| विस्तार से ययाति की कथा का आरम्भ । बृहस्पति के पुत्र कच का उपाख्यान ... | १४८ |
| **सत्तरवाँ अध्याय** | |
| कच और देवयानी का व्याह के लिए झगड़ा और परस्पर एक दूसरे को शाप देना ... | १५३ |
| **इकहत्तरवाँ अध्याय** | |
| शर्मिष्ठा और देवयानी का झगड़ा | १५४ |
| **बहत्तरवाँ अध्याय** | |
| शुक्र और देवयानी का संवाद | १५७ |
| **तिहत्तरवाँ अध्याय** | |
| शुक्र और वृषपर्वा का संवाद । पिता के कहने से शर्मिष्ठा का देवयानी की दासी होना अंगीकार करना । देवयानी के साथ शुक्र का वृषपर्वा के नगर में जाना .. | १५८ |
| **चौहत्तरवाँ अध्याय** | |
| शिकार के लिए गये हुए ययाति से फिर देवयानी की भेंट । शुक्र की आज्ञा से दोनों का विवाह । ययाति का अपने नगर को जाना | १६० |
| **पचहत्तरवाँ अध्याय** | |
| देवयानी और शर्मिष्ठा के ययाति से सन्तान होना ... | १६३ |
| **छियत्तरवाँ अध्याय** | |
| देवयानी का कोप । शुक्राचार्य का शाप ... ... ... | १६५ |
| **सतहत्तरवाँ अध्याय** | |
| ययाति का कुरु को वरदान और अन्य पुत्रों को शाप देना ... | १६८ |
| **अठहत्तरवाँ अध्याय** | |
| ययाति को वैराग्य । पुरु का राज्याभिषेक । ययाति का वन को जाना | १७० |
| **उन्नासीवाँ अध्याय** | |
| ययाति की स्वर्ग-यात्रा ... ... | १७२ |
| **अस्सी अध्याय** | |
| इन्द्र और ययाति का संवाद ... | १७३ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **इक्यासी अध्याय** | |
| स्वर्ग से ययाति का गिरना। अष्टक का राजा ययाति से प्रश्न .. | १७४ |
| **बयासी अध्याय** | |
| ययाति का अपना परिचय देकर अष्टक से बातचीत करना। ययाति का स्वर्ग से अपने गिरने का कारण कहना ... ... ... | १७५ |
| **तिरासी अध्याय** | |
| स्वर्ग आदि भोगने के उपरान्त मरे हुए के फिर जन्म लेने का वर्णन ... ... ... | १७७ |
| **चौरासी अध्याय** | |
| चारों आश्रमों के धर्म का वर्णन | १७९ |
| **पचासी अध्याय** | |
| ययाति का स्वर्गभूमि से गिरकर यज्ञभूमि में अपने आने का कारण कहना। प्रतर्दन से ययाति का संवाद ... ... ... | १८१ |
| **छियासी अध्याय** | |
| ययाति का फिर स्वर्ग जाना ... | १८३ |
| **सत्तासी अध्याय** | |
| पुरु के वंश का वर्णन ... | १८५ |
| **अट्ठासी अध्याय** | |
| शकुन्तला की कथा का आरम्भ | १८६ |
| **नवासी अध्याय** | |
| शिकार के लिए दुष्यन्त का वन को जाना ... ... | १८७ |
| **नब्बे अध्याय** | |
| शिकार खेलते खेलते दुष्यन्त का कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचना | १८९ |
| **इक्यानबे अध्याय** | |
| शकुन्तला और दुष्यन्त की बातचीत | १९१ |
| **बानबे अध्याय** | |
| विश्वामित्र से मेनका में शकुन्तला का जन्म ... ... | १९४ |
| **तिरानबे अध्याय** | |
| गान्धर्व विवाह की रीति से शकुन्तला का पाणिग्रहण। कण्व और शकुन्तला की बातचीत। कण्व का शकुन्तला को वर देना | १९५ |
| **चौरानबे अध्याय** | |
| शकुन्तला के पुत्र का जन्म और उस बालक का सर्वदमन नाम पड़ना ... ... | १९७ |
| **पञ्चानबे अध्याय** | |
| भरत का चरित्र। भरत के वंश का वर्णन ... ... | २०५ |
| **छियानबे अध्याय** | |
| विस्तार से पुरुवंश का वर्णन | २०७ |
| **सत्तानबे अध्याय** | |
| महाभिषक् राजा का उपाख्यान। महाभिषक् और गङ्गा को शाप। वसुओं और गङ्गा का संवाद | २१३ |

# रंगीन चित्रों की सूची।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १ मत्स्यगन्धा का जन्म ... | १२८ |
| २ राक्षसों ने कच को जला कर उनके शरीर की राख मदिरा में मिला कर शुक्राचार्य को पान कराना | १३० |
| ३ कच और देवयानी ... ... | १३४ |
| ४ रोती हुई देवयानी को शुक्राचार्य का समझाना .. | १३७ |
| ५ ययाति और देवयानी का वन में साक्षात्कार ... ... | १६१ |
| ६ ययाति का अपने पुत्रों को बुला कर बुढ़ापे को लेने के लिए अनुरोध करना ... ... | १६८ |
| ७ विश्वामित्र का तपोभङ्ग ... | १९४ |
| ८ दुष्यन्त-शकुन्तला-मिलन ... | १९६ |
| ९ भरत की क्रीड़ा ... . | १९८ |
| १० गङ्गा और अष्टवसु .. | २१४ |




# रंगीन चित्रों की सूची ।


| | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ | अर्जुन का मत्स्य-भेद ... | ४१६ |
| २ | अर्जुन और भीम का राजाओं से युद्ध ... ... ... | ४२२ |
| ३ | इन्द्र उस स्त्री के पास गये और पूछने लगे—भद्रे, तुम कौन हो ? किसलिए रो रही हो ? .. ... | ४३६ |
| ४ | तिलोत्तमा के लिए सुन्द-उपसुन्द की लड़ाई ... | ४६७ |
| ५ | नगर में विचरती हुई चित्राङ्गदा को अर्जुन का देखना ... | ४७२ |
| ६ | जैसे अर्जुन उस ग्राह को किनारे पर लाये वैसे ही वह ग्राह का शरीर छोड़ कर सब गहने पहने सुन्दर लक्षणों-वाली एक स्त्री हो गई ... | ४७३ |
| ७ | चारों ओर फिरते-फिरते अर्जुन ने अनेक गहनों से सजी हुई वसुदेव की कन्या सुभद्रा को एक जगह देखा ... ... | ४७८ |
| ८ | सुभद्रा-हरण ... ... | ४७९ |
| ९ | यमुना-तट पर विहार-भूमि में क्रीड़ा-कौतुक ... ... | ४८६ |
| १० | खाण्डव-वन-दहन ... ... | ४९५ |
| ११ | असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नागगण का अर्जुन और कृष्ण के साथ युद्ध ... | ४९७ |


Library
Commerce, U. L

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **दो सौ बाईस अध्याय** | |
| रैवतक पर्वत पर उत्सव। अर्जुन और सुभद्रा की भेंट। अर्जुन का श्रीकृष्ण से सुभद्रा को पाने का प्रस्ताव ... ... ... | ४७७ |
| **दो सौ तेईस अध्याय** | |
| सुभद्रा-हरण और इससे यादवों का क्रुद्ध होना ... ... | ४७६ |
| **दो सौ चौबीस अध्याय** | |
| अर्जुन से सुभद्रा का ब्याह ... | ४८१ |
| **दो सौ पचीस अध्याय** | |
| जल-विहार ... ... | ४८४ |
| **दो सौ छब्बीस अध्याय** | |
| खाण्डव-वन जलाने के लिए अग्नि की प्रार्थना ... ... | ४८७ |
| **दो सौ सत्ताईस अध्याय** | |
| अर्जुन का अग्नि की प्रार्थना को स्वीकार करना ... ... | ४६१ |
| **दो सौ अट्ठाईस अध्याय** | |
| अग्नि से अर्जुन को धनुष आदि मिलना ... ... ... | ४६२ |
| **दो सौ उनतीस अध्याय** | |
| डरे हुए देवताओं की प्रार्थना से इन्द्र का जल बरसाना ... | ४६४ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **दो सौ तीस अध्याय** | |
| इन्द्र के साथ अर्जुन और कृष्ण का युद्ध ... ... ... | ४६६ |
| **दो सौ इकतीस अध्याय** | |
| आकाश-वाणी सुनकर इन्द्र का युद्ध रोकना ... ... | ४६८ |
| **दो सौ बत्तीस अध्याय** | |
| मन्दपाल ऋषि का उपाख्यान | ५०१ |
| **दो सौ तेंतीस अध्याय** | |
| जरिता और उसके पुत्रों का संवाद ... ... ... | ५०३ |
| **दो सौ चौंतीस अध्याय** | |
| जरिता का पुत्रों को छोड़कर उड़ जाना ... ... ... | ५०४ |
| **दो सौ पैंतीस अध्याय** | |
| अग्नि की स्तुति ... ... | ५०६ |
| **दो सौ छत्तीस अध्याय** | |
| मन्दपाल और जरिता का पुत्र के पास आना ... ... | ५०७ |
| **दो सौ सैंतीस अध्याय** | |
| मन्दपाल का पुत्रों को आश्वास देना। इन्द्र का अर्जुन को अस्त्र देना स्वीकार करना तथा कृष्ण और अर्जुन को वर देना ... | ५०६ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **दो सौ चार अध्याय** | |
| धृतराष्ट्र और दुर्योधन की बातचीत ... ... ... | ४४५ |
| **दो सौ पाँच अध्याय** | |
| कर्ण की सम्मति। धृतराष्ट्र का कर्ण की सलाह की प्रशंसा करना ... ... ... | ४४७ |
| **दो सौ छः अध्याय** | |
| भीष्म के वचन और दुर्योधन को उपदेश ... ... ... | ४४८ |
| **दो सौ सात अध्याय** | |
| द्रोणाचार्य की सलाह और कर्ण के साथ उनका विवाद ... ... | ४५० |
| **दो सौ आठ अध्याय** | |
| विदुर की सम्मति ... ... | ४५१ |
| **दो सौ नव अध्याय** | |
| धृतराष्ट्र का पाण्डवों के लाने के लिए द्रुपद के यहाँ विदुर को भेजना और विदुर का वहाँ जाना ... | ४५३ |
| **दो सौ दस अध्याय** | |
| पाण्डवों का अपने देश को जाना और राज्य-लाभ ... ... | ४५५ |
| **दो सौ ग्यारह अध्याय** | |
| इन्द्रप्रस्थ में नारद का आना। सुन्द और उपसुन्द की कथा ... | ४५८ |
| **दो सौ बारह अध्याय** | |
| सुन्द और उपसुन्द का जन्म, तपस्या और ब्रह्मा से वर-लाभ ... | ४५९ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **दो सौ तेरह अध्याय** | |
| सुन्द और उपसुन्द का दिग्विजय के लिए जाना ... ... ... | ४६२ |
| **दो सौ चौदह अध्याय** | |
| तिलोत्तमा की उत्पत्ति। दोनों भाइयों में विरोध पैदा करने के लिए उसका उनके पास जाना | ४६४ |
| **दो सौ पन्द्रह अध्याय** | |
| तिलोत्तमा के कारण दोनों दैत्यों का विरोध और नाश। पाण्डवों का नियम-निर्द्धारण ... .. | ४६६ |
| **दो सौ सोलह अध्याय** | |
| अर्जुन के वनवास का कारण ... | ४६८ |
| **दो सौ सत्रह अध्याय** | |
| हरद्वार में नाग-कन्या उलूपी के साथ अर्जुन का विवाह ... | ४७० |
| **दो सौ अठारह अध्याय** | |
| अर्जुन का मणिपुर जाना और चित्राङ्गदा से विवाह ... | ४७२ |
| **दो सौ उन्नीस अध्याय** | |
| वर्गा नाम की अप्सरा का वृत्तान्त ... ... ... | ४७३ |
| **दो सौ बीस अध्याय** | |
| वर्गा की चारों सखियों का उद्धार ... ... ... | ४७४ |
| **दो सौ इक्कीस अध्याय** | |
| प्रभासतीर्थ में अर्जुन और श्रीकृष्ण की भेंट ... ... ... | ४७६ |

# विषय-सूची ।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **एक सौ नवासी अध्याय** | |
| धृष्टद्युम्न का किया हुआ राजाओं का वर्णन ... ... ... | ४१५ |
| **एक सौ नब्बे अध्याय** | |
| राजाओं का लक्ष्य-वेध के लिए उद्योग और असमर्थ होने के कारण लौटना। फिर अर्जुन का उठना.. | ४१५ |
| **एक सौ इक्यानबे अध्याय** | |
| अर्जुन का लक्ष्य को वेधकर द्रौपदी को प्राप्त करना और फिर रङ्गभूमि से बाहर आना ..... ... | ४१८ |
| **एक सौ ·ानबे अध्याय** | |
| राजाओं का क्रोध और द्रुपद को मारने के लिए तैयार होना। भीम और अर्जुन का उनके आगे युद्ध के लिए खड़े होना ... ... | ४२० |
| **एक सौ तिरानबे अध्याय** | |
| अर्जुन का कर्ण आदि को विमुख करके द्रौपदी को लेकर माता के पास आना ... ... | ४२२ |
| **एक सौ चौरानबे अध्याय** | |
| कुन्ती, अर्जुन और युधिष्ठिर की बातचीत। कृष्ण और बलराम का पाण्डवों के पास पहुँचना ... | ४२४ |
| **एक सौ पञ्चानबे अध्याय** | |
| धृष्टद्युम्न का छिपकर पाण्डवों की बातचीत सुनना और फिर द्रुपद के पास लौटकर जाना। द्रुपद का पाण्डवों के बारे में प्रश्न करना... | ४२६ |
| **एक सौ छियानबे अध्याय** | |
| धृष्टद्युम्न से सब हाल सुन कर द्रुपद का पाण्डवों के पास ब्राह्मण को भेजना। युधिष्ठिर और उस ब्राह्मण की बातचीत ... ... | ४२७ |
| **एक सौ सत्तानबे अध्याय** | |
| पाण्डवों का द्रुपद के भवन में जाना ... ... ... | ४३० |
| **एक सौ अट्ठानबे अध्याय** | |
| द्रुपद और युधिष्ठिर की बातचीत, व्यासजी का आगमन... ... | ४३१ |
| **एक सौ निन्नानबे अध्याय** | |
| व्यास के सामने द्रौपदी के पाँच पति होने के बारे में वाद-विवाद। व्यास का इसी सम्बन्ध में बोलना ... ... ... | ४३४ |
| **दो सौ अध्याय** | |
| द्रौपदी और पाण्डवों के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन ... ... ... | ४३५ |
| **दो सौ एक अध्याय** | |
| पाण्डवों के साथ द्रौपदी का ब्याह ... ... ... | ४४१ |
| **दो सौ दो अध्याय** | |
| द्रौपदी को कुन्ती का उपदेश और आशीर्वाद ... ... ... | ४४३ |
| **दो सौ तीन अध्याय** | |
| पाण्डवों के विवाह का वृत्तान्त सुनकर दुर्योधन आदि की घबराहट और कुमन्त्रणा ... ... | |

# विषय-सूची।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **अट्ठानवे अध्याय** | |
| शान्तनु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक ... ... | २१५ |
| **निन्नानवे अध्याय** | |
| प्रतिज्ञापूर्वक गङ्गा और शान्तनु का विवाह ... ... | २१६ |
| **सौ अध्याय** | |
| भीष्म को लेकर गङ्गा का स्वर्ग को जाना ... ... | २१८ |
| **एक सौ एक अध्याय** | |
| शान्तनु और भीष्म का चरित। भीष्म की कठिन प्रतिज्ञा और शान्तनु का प्रसन्न होकर उनको वर देना ... ... | २२० |
| **एक सौ दो अध्याय** | |
| शान्तनु का सत्यवती से व्याह। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य का जन्म। शान्तनु और उनके पुत्र चित्राङ्गद का मरण विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक ... ... | २२६ |
| **एक सौ तीन अध्याय** | |
| भीष्म का स्वयंवर से कन्या हरने के लिए काशी जाना। कन्या-हरण। राजाओं का पराभव। विचित्रवीर्य की मृत्यु ... | २२७ |
| **एक सौ चार अध्याय** | |
| सत्यवती का भीष्म से विचित्रवीर्य की स्त्रियों में पुत्र उत्पन्न करने के लिए कहना; भीष्म का स्वीकार न करना ... ... | २३१ |
| **एक सौ पाँच अध्याय** | |
| दीर्घतमा ऋषि का उपाख्यान | २३३ |
| **एक सौ छः अध्याय** | |
| सत्यवती के स्मरण करने से व्यास का आना और पुत्र का उत्पन्न करना अंगीकार करना ... | २३६ |
| **एक सौ सात अध्याय** | |
| धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म ... ... | २४० |
| **एक सौ आठ अध्याय** | |
| अणीमाण्डव्य का उपाख्यान | २४१ |
| **एक सौ नव अध्याय** | |
| धर्म को अणिमाण्डव्य ऋषि का शाप ... ... | २४२ |
| **एक सौ दस अध्याय** | |
| पाण्डु का राज्याभिषेक होना | २४४ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **एक सौ ग्यारह अध्याय** | |
| धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का ब्याह ... ... | २४५ |
| **एक सौ बारह अध्याय** | |
| कुन्ती का दुर्वासा से मन्त्र पाना और कर्ण की उत्पत्ति का वर्णन ... ... | २४६ |
| **एक सौ तेरह अध्याय** | |
| कुन्ती का स्वयंवर और पाण्डु के साथ विवाह ... ... | २४६ |
| **एक सौ चौदह अध्याय** | |
| पाण्डु का माद्री से विवाह और दिग्विजय ... ... | २४६ |
| **एक सौ पन्द्रह अध्याय** | |
| विदुर का विवाह ... ... | २५२ |
| **एक सौ सोलह अध्याय** | |
| गान्धारी के सौ पुत्र उत्पन्न होने का वर्णन ... ... | २५२ |
| **एक सौ सत्रह अध्याय** | |
| दुःशला कन्या की उत्पत्ति का वर्णन ... | २५५ |
| **एक सौ अट्ठारह अध्याय** | |
| धृतराष्ट्र के पुत्रों का नामोल्लेख | २५६ |
| **एक सौ उन्नीस अध्याय** | |
| राजा पाण्डु को मृगरूपधारी ऋषि का शाप ... ... | २५६ |
| **एक सौ बीस अध्याय** | |
| पाण्डु का दोनों स्त्रियों के साथ वानप्रस्थ हो शतशृङ्ग पर्वत पर तप करना ... ... | २५६ |
| **एक सौ इक्कीस अध्याय** | |
| पाण्डु का पुत्र पाने के लिए ऋषियों का सलाह करना और पुत्र उत्पन्न करने के लिए कुन्ती से कहना ... ... | २६१ |
| **एक सौ बाईस अध्याय** | |
| राजा व्युषिताश्व की कथा ... | २६४ |
| **एक सौ तेईस अध्याय** | |
| श्वेतकेतु-कृत सामाजिक मर्यादा के स्थापन का वर्णन। पाण्डु का पुत्र उत्पन्न करने के लिए फिर कुन्ती को आज्ञा देना ... ... | २६६ |
| **एक सौ चौबीस अध्याय** | |
| युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन का जन्म ... ... | २७० |
| **एक सौ पचीस अध्याय** | |
| नकुल और सहदेव का जन्म | २७३ |
| **एक सौ छब्बीस अध्याय** | |
| पाण्डु की मृत्यु और माद्री का सती होना ... ... | २७६ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **एक सौ सत्ताईस अध्याय** | |
| पुत्रों-सहित कुन्ती का हस्तिनापुर में आना ... ... | २७८ |
| **एक सौ अट्ठाईस अध्याय** | |
| पाण्डु और माद्री का क्रिया-कर्म होना ... ... | २८० |
| **एक सौ उनतीस अध्याय** | |
| कुमारों की क्रीड़ा। दुर्योधन का भीमसेन को मार डालने के लिए चेष्टा करना ... ... | २८१ |
| **एक सौ तीस अध्याय** | |
| भीमसेन का नागलोक से अपने घर लौट आना .. | २८६ |
| **एक सौ इकतीस अध्याय** | |
| कृपाचार्य और कृपी के जन्म का वर्णन ... ... | २८८ |
| **एक सौ बत्तीस अध्याय** | |
| द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा का जन्म। द्रोणाचार्य का परशुराम से दिव्य अस्त्र पाना .. ... | २८९ |
| **एक सौ तेंतीस अध्याय** | |
| द्रोण का द्रुपद के पास जाना, और अपमानित होकर हस्तिनापुर में भीष्म के पास आना ... ... | २९१ |
| **एक सौ चौंतीस अध्याय** | |
| द्रोण का अपने अद्भुत कामों से भीष्म को अपना परिचय देना ... | २९६ |
| **एक सौ पैंतीस अध्याय** | |
| द्रोण का कौरवों और पाण्डवों को अस्त्र विद्या की शिक्षा देना। एकलव्य की कथा। शिष्य-परीक्षा ... ... | २९७ |
| **एक सौ छत्तीस अध्याय** | |
| द्रोणाचार्य का अर्जुन को ब्रह्मास्त्र देना ... ... | ३०१ |
| **एक सौ सैंतीस अध्याय** | |
| भीष्म आदि के आगे पर्व कुमारों का अस्त्रशिक्षा का कौशल दिखलाना ... ... | ३०३ |
| **एक सौ अड़तीस अध्याय** | |
| अर्जुन का अपना कौशल दिखाना ... ... | ३०५ |
| **एक सौ उनतालीस अध्याय** | |
| कर्ण का प्रवेश, अपनी अस्त्र-शिक्षा का परिचय देना, और अङ्गदेश का राज्य पाना ... | ३०७ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **एक सौ चालीस अध्याय** | |
| रंगभूमि में अधिरथ का आना और अस्त्र-परीक्षा के उत्सव की समाप्ति ... ... | ३१० |
| **एक सौ इकतालीस अध्याय** | |
| द्रोण का गुरु-दक्षिणा मांगना। अर्जुन से द्रुपद का हारना और अर्जुन का द्रुपद को क़ैद करके गुरु के पास लाना। द्रुपद और द्रोण की फिर मित्रता होना ... ... | ३१२ |
| **एक सौ बयालीस अध्याय** | |
| पाण्डवों की उन्नति और धृतराष्ट्र का चिन्तित होना ... | ३१६ |


---

## रंगीन चित्रों की सूची।


| | विषय | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ | प्रतीप और गङ्गा ... ... | २१२ |
| २ | शान्तनु और गङ्गा का मिलन | २१६ |
| ३ | कुन्ती का स्वयंवर और पाण्डु के साथ विवाह ... ... | २४६ |
| ४ | पाण्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर चलने लगे ... | २६२ |
| ५ | एकान्त में अकेली माद्री को पाकर पाण्डु अपने को सँभाल न सके ... ... ... | २७६ |
| ६ | महाराज पाण्डु तथा रानी माद्री का दाह-संस्कार ... ... | २८० |
| ७ | जानपदी और शरद्वान् ... | २८८ |
| ८ | आचार्य अपने पुत्र के साथ उस रङ्गभूमि में आये ... ... | ३०४ |
| ९ | अर्जुन का द्रुपद को क़ैद करके गुरु के पास लाना ... | ३१२ |


---



# विषय-सूची ।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **एक सौ तेंतालीस अध्याय** | |
| कणिक की कुनीति ... ... | ३१६ |
| **एक सौ चवालीस अध्याय** | |
| संक्षेप से जतुगृह-दाह का वर्णन। पाण्डवों की उन्नति देखकर दुर्योधन का सन्ताप और धृतराष्ट्र के आगे रोना ... ... ... | ३२६ |
| **एक सौ पैंतालीस अध्याय** | |
| पाण्डवों को वारणावत नगर में भेज देने की सलाह ... ... | ३२६ |
| **एक सौ छियालीस अध्याय** | |
| पाण्डवों की वारणावत जाने की इच्छा और उसके लिए धृतराष्ट्र की आज्ञा ... ... | ३३० |
| **एक सौ सैंतालीस अध्याय** | |
| दुर्योधन का पुरोचन को लाक्षा-भवन बनाने के लिए आज्ञा देकर भेजना ... ... ... | ३३१ |
| **एक सौ अड़तालीस अध्याय** | |
| पाण्डवों की वारणावत-यात्रा। विदुर का गुप्त उपदेश ... | ३३२ |
| **एक सौ उनचास अध्याय** | |
| पाण्डवों का जतुगृह में रहना ... | ३३५ |
| **एक सौ पचास अध्याय** | |
| सुरङ्ग का खोदा जाना ... | ३३७ |
| **एक सौ इक्यावन अध्याय** | |
| जतुगृह-दाह और माता को लेकर पाण्डवों का वहाँ से निकल भागना | ३३८ |
| **एक सौ बावन अध्याय** | |
| विदुर के भेजे मल्लाह की सहायता से पाण्डवों का गङ्गा-पार होना... | ३४० |
| **एक सौ तिरपन अध्याय** | |
| वारणावत-निवासियों का विषाद। हस्तिनापुर में ख़बर भेजना। धृतराष्ट्र का पाण्डवों का अन्त्य कर्म कराना ... ... ... | ३४१ |
| **एक सौ चौवन अध्याय** | |
| पाण्डवों को और माता को जङ्गल में रखकर भीम का जल लाना, उनकी दुर्दशा देखकर रोना और जागते रहना ... ... | ३४२ |
| **एक सौ पचपन अध्याय** | |
| हिडिम्ब राक्षस का पाण्डवों को देखना। पाण्डवों को मारकर लाने के लिए अपनी बहिन हिडिम्बा को भेजना। भीमसेन से हिडिम्बा की बातचीत ... ... | ३४५ |
| **एक सौ छप्पन अध्याय** | |
| हिडिम्ब का आना। भीमसेन और हिडिम्ब का युद्ध ... ... | ३४८ |
| **एक सौ सत्तावन अध्याय** | |
| हिडिम्ब-वध ... ... | ३५० |
| **एक सौ अट्ठावन अध्याय** | |
| हिडिम्बा का भीम से ब्याह। घटोत्कच का जन्म। हिडिम्बा और घटोत्कच का चला जाना ... | ३५३ |

| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| **एक सौ उनसठ अध्याय** | |
| पाण्डवों से व्यास की भेंट और एकचक्रा नगरी में जाकर पाण्डवों का रहना ... ... | ३५५ |
| **एक सौ साठ अध्याय** | |
| ब्राह्मण का रोना सुनकर कुन्ती को दया आना। ब्राह्मण का विलाप | ३५७ |
| **एक सौ इकसठ अध्याय** | |
| ब्राह्मणी का विषाद ... ... | ३६० |
| **एक सौ बासठ अध्याय** | |
| ब्राह्मण के बेटे-बेटी की उक्ति ... | ३६२ |
| **एक सौ तिरसठ अध्याय** | |
| कुन्ती और ब्राह्मण की बातचीत | ३६३ |
| **एक सौ चौंसठ अध्याय** | |
| कुन्ती का राक्षस को मारने के लिए भीमसेन से अनुरोध करना ... | ३६५ |
| **एक सौ पैंसठ अध्याय** | |
| कुन्ती और युधिष्ठिर का संवाद | ३६६ |
| **एक सौ छाछठ अध्याय** | |
| बक राक्षस के साथ भीमसेन का युद्ध | ३६८ |
| **एक सौ सड़सठ अध्याय** | |
| बकासुर का वध। उसकी जाति के राक्षसों का वहां से भागना। नगर-वासियों का आनन्दित होना ... | ३७० |
| **एक सौ अड़सठ अध्याय** | |
| उस ब्राह्मण के यहां एक दूसरे ब्राह्मण का आना और द्रौपदी के स्वयंवर की चर्चा करना ... | ३७१ |
| **एक सौ उनहत्तर अध्याय** | |
| द्रोण और द्रुपद के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन ... ... ... | ३७२ |
| **एक सौ सत्तर अध्याय** | |
| याज और उपयाज का द्रुपद को पुत्रेष्टि-यज्ञ कराना और उससे धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी की उत्पत्ति | ३७४ |
| **एक सौ एकहत्तर अध्याय** | |
| कुन्ती सहित पाण्डवों का द्रुपद की राजधानी को जाना ... ... | ३७८ |
| **एक सौ बहत्तर अध्याय** | |
| पाण्डवों के पास व्यासदेव का आना और द्रौपदी के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन ... ... ... | ३७९ |
| **एक सौ तिहत्तर अध्याय** | |
| अङ्गारपर्ण के साथ अर्जुन का युद्ध, उसका हारना, और उससे अर्जुन का संवाद .. . | ३८० |
| **एक सौ चौहत्तर अध्याय** | |
| तपती और संवरण का उपाख्यान | ३८५ |
| **एक सौ पचहत्तर अध्याय** | |
| संवरण और तपती की बातचीत | ३८७ |
| **एक सौ छिहत्तर अध्याय** | |
| वशिष्ठ की सहायता से संवरण को तपती की प्राप्ति ... ... | ३८९ |
| **एक सौ सतहत्तर अध्याय** | |
| वशिष्ठ के जन्म का वृत्तान्त ... | ३९२ |

विषय पृष्ठ

**एक सौ अठहत्तर अध्याय**

विश्वामित्र का नन्दिनी को ले जाने की चेष्टा करना और नन्दिनी के क्रोध से विश्वामित्र की सेना का भाग जाना ... ... ३९३

**एक सौ उन्नासी अध्याय**

राजा कल्माषपाद की कथा। वशिष्ठ के पुत्र शक्ति के शाप से उनका राक्षस हो जाना। विश्वामित्र के कहने से कल्माषपाद का बशिष्ठ के सब पुत्रों को खा जाना। वशिष्ठ का शोक ... ३९५

**एक सौ अस्सी अध्याय**

कल्माषपाद का शाप से छुटकारा और उनके वशिष्ठ के द्वारा पुत्र की उत्पत्ति ... ... ३९८

**एक सौ इक्यासी अध्याय**

वशिष्ठ के पोते पराशर का जन्म और उनका पिता की हत्या का हाल सुन कर सब लोकों को नष्ट करने के लिए उद्यत होना ... ४०१

**एक सौ बयासी अध्याय**

क्षत्रियों को फिर से आंखों की ज्योति प्राप्त होना। सब लोकों का नाश करने के लिए और्व ऋषि का उद्योग ... ... ४०३

विषय पृष्ठ

**एक सौ तिरासी अध्याय**

पितरों की आज्ञा से और्व का अपने क्रोध को दूर करना ... ४०५

**एक सौ चौरासी अध्याय**

पराशर का क्रोध शान्त होना। उनका राक्षसों की हत्या के लिए यज्ञ करना और पुलस्त्य ऋषि का आकर उन्हें रोकना ... ... ४०७

**एक सौ पचासी अध्याय**

कल्माषपाद राजा ने वशिष्ठ के द्वारा क्यों पुत्र उत्पन्न कराया, इसका कारण कहना ... ४०८

**एक सौ छियासी अध्याय**

अङ्गारपर्ण गन्धर्व का जाना और पाण्डवों का धौम्य को अपना पुरोहित बनाना ... ... ४१०

**एक सौ सत्तासी अध्याय**

पाण्डवों का राह में ब्राह्मणों के मुँह से स्वयंवर का वृत्तान्त सुनना ४११

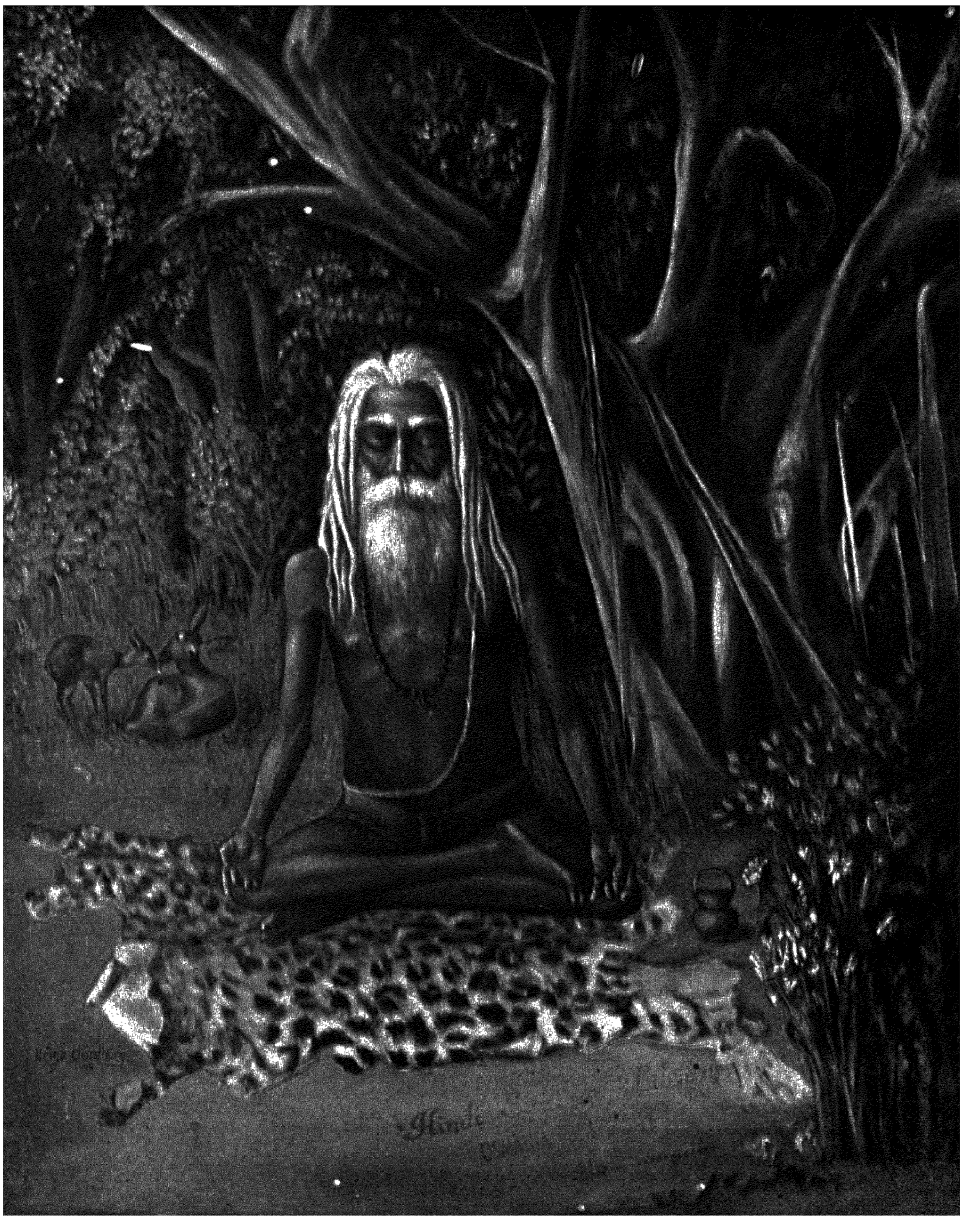
**एक सौ अट्ठासी अध्याय**

पाण्डवों की व्यास से भेंट और उनकी आज्ञा के अनुसार द्रुपद की राजधानी में जाकर एक कुँभार के यहाँ रहना। स्वयंवर-सभा का वर्णन। धृष्टद्युम्न की घोषणा ... ४१२

# रङ्गीन चित्रों की सूची।


| विषय | पृष्ठ |
|---|---|
| १ भीमसेन का लाक्षागृह में आग लगाना ... ... ... | ३३१ |
| २ भीम का भाइयों और कुन्ती को कन्धे पर ले जाना ... ... | ३४२ |
| ३ द्रोणाचार्य्य के सामने बन्दी के रूप में राजा द्रुपद ... ... | ३७३ |
| ४ यज्ञ से द्रौपदी की उत्पत्ति ... | ३७७ |
| ५ गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण का जल-विहार ... ... ... | ३८० |
| ६ वशिष्ठ का देवकन्या को लेकर राजा संवरण के पास आना ... | ३९१ |
| ७ राजा विश्वामित्र का वशिष्ठ ऋषि से उनकी कामधेनु मांगना ... | ३९३ |
| ८ अपने पीछे आती हुई पुत्रवधू अदृश्यन्ती से वशिष्ठ का प्रश्न ... | ३९६ |
| ९ स्वयंवर-सभा में द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न की घोषणा ... ... | ४१४ |



श्रीव्यासदेव ।




महर्षि वेदव्यास-प्रणीत

## महाभारत का अनुवाद

# आदिपर्व

## पहला अध्याय

शौनक आदि मुनियों के पास सूत के पुत्र का आना। महाभारत की कथाओं की अनुक्रमणिका

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

एक समय नैमिषारण्य क्षेत्र में पुराणवक्ता रोमहर्षण सूत के पुत्र उग्रश्रवा, कुलपति ( अकेले दस हज़ार को भोजन देनेवाले ) शौनक ऋषि के, यज्ञमण्डप में आये। ऋषियों के मुखिया शौनक ने बारह वर्ष की दीक्षा लेकर इस यज्ञ का आरम्भ किया था। ऋषि लोग उस समय वहाँ सुख से बैठे हुए थे। सूत को देखकर सब ऋषि विचित्र पुरानी कथाएँ सुनने की अभिलाषा से उनके चारों ओर, उन्हें घेरकर, बैठ गये। पहले सूतपुत्र ने हाथ जोड़कर नम्र भाव से ऋषियों को प्रणाम किया। उन लोगों ने भी सूत का बड़ा सत्कार किया। उग्रश्रवा ने तप में किसी तरह की बाधा न होने की बात ऋषियों से पूछी। सब ऋषि जब बैठ गये तब सूत भी नम्रभाव से ऋषियों के दिये हुए आसन पर बैठ गये। सूत के सुख से बैठकर कुछ विश्राम कर चुकने पर एक ऋषि ने प्रश्न करके कथा का प्रसङ्ग छेड़ा।

ऋषि ने पूछा—हे कमलनयन सूत-पुत्र, आप कहाँ से विचरते हुए यहाँ नैमिषारण्य में आये हैं ? अब तक आप कहाँ-कहाँ घूमते रहे ? कृपा करके वर्णन कीजिए। शान्त-स्वभाव ऋषियों के यों पूछने पर प्रसिद्ध वक्ता सूत ने कहा—हे महर्षियो, महात्मा राजा जनमेजय के



सर्पयज्ञ में भगवान् वैशम्पायन ने कृष्ण-द्वैपायन-रचित महाभारत ग्रन्थ की तरह-तरह की अनेक पवित्र कथाओं का विस्तार से वर्णन किया था। वहाँ मैंने वे सब कथाएँ सुनीं। इसके बाद मैं अनेक तीर्थों और आश्रमों में घूमता हुआ समन्तपञ्चक तीर्थ में गया। वहाँ पर पहले कौरवों-पाण्डवों का घोर संग्राम हुआ था। वहाँ से आप लोगों के दर्शन करने के लिए यहाँ आया हूँ; क्योंकि आप लोग बड़ी आयुवाले और ब्रह्म-स्वरूप हैं। सूर्य के समान तेजस्वी महात्मा मुनियो, आप सबने इस यज्ञ की दीक्षा ली है और इस समय स्नान-सन्ध्या आदि सबेरे का कृत्य और होम
१६ करके आप सुख से बैठे हुए हैं। धर्म-अर्थ का ज्ञान करानेवाली पवित्र पुराणों की कथाएँ, राजाओं के इतिहास, महात्मा ऋषियों के चरित्र, जो आप सुनना चाहें, मैं कहूँ।

ऋषियों ने कहा—भगवान् वेदव्यास ने जिस इतिहास का वर्णन किया, देवताओं और ब्रह्मर्षियों ने सुनकर जिसकी बहुत बड़ाई की, सर्पयज्ञ में वैशम्पायन ने जनमेजय को जो सुनाया, वही अपूर्व इतिहास हम भी सुनना चाहते हैं। वह भारत-इतिहास परम प्रशंसनीय है। उसमें विविध पद और पर्व हैं। वह अत्यन्त सूक्ष्म धर्म-अर्थ का निर्णय करता और वेदों के अर्थ को बताता है। उसमें अनेक शास्त्रों के मत से आत्मा के तत्त्व का भी अच्छा विचार किया गया है। भक्ति के साथ उसे सुनने से पाप का डर नहीं रहता। हम वही पवित्र उपाख्यान सुनना चाहते हैं।

मुनियों की इस प्रार्थना से प्रसन्न होकर उग्रश्रवा सूत ने कहा—जो इस स्थूल और सूक्ष्म सम्पूर्ण ब्रह्माण्डमण्डल के आदि-पुरुष और ईश्वर हैं, जो इस चराचर जगत् को उत्पन्न करके इसका पालन कर रहे हैं, शास्त्र में जिनको अद्वितीय एकमात्र सत्यरूप परब्रह्म कहते हैं, जो सत् और असत् हैं तथा दोनों से अलग भी हैं, जिनके लिए बहुत लोग मिलकर यज्ञ में आहुति छोड़ते हैं, जिनकी बहुत लोग स्तुति करते हैं, जो सनातन अविनाशी हैं, जिनको पाने के लिए कोई विजन वन में तप करता है, कोई तरह-तरह के व्रत धारण करता है, कोई विरक्त होकर स्त्री-पुत्र आदि सबको छोड़ देता है, उन इन्द्रियों के स्वामी, चराचर जगत् के गुरु, विश्व का

पालन करनेवाले, अनादि, अनन्त, मङ्गलमूर्त्ति, हरि के चरणों में नमस्कार करके—सब लोगों से पूजित महात्मा वेदव्यास के कहे हुए—पवित्र विचित्र इतिहास का मैं वर्णन करता हूँ। इस संसार में कोई-कोई महानुभाव पण्डित इस इतिहास का वर्णन कर गये हैं, कोई-कोई महात्मा इस समय भी वर्णन कर रहे हैं और कोई-कोई महोदय आगे भी वर्णन करेंगे। यह इतिहास २६
सब प्रकार के ज्ञान की खान है। यह तीनों लोकों में फैला हुआ है। द्विज लोग इसे विस्तार से और संक्षेप से धारण किये हुए हैं। इसमें वेद आदि सब शास्त्रों के तत्त्व, लौकिक आचार-व्यवहार, रीति-नीति आदि का विस्तार से वर्णन है। इसके शब्द कोमल और मधुर हैं। यह बहुत ही मनोहर भावों से भरा और तरह-तरह के छन्दों तथा अलङ्कारों से शोभित है। इसी से पण्डित लोग इसका बहुत आदर करते हैं।

पहले यह सारा संसार घोर अन्धकार से ढका हुआ था। इसमें न प्रकाश था, न किसी तरह की ज्योति थी। इसके बाद एक अण्ड उत्पन्न हुआ, जिसे सब पदार्थों का बीज कहना चाहिए। उस अण्ड के भीतर आदि और अन्त से रहित, अचिन्तनीय, सत्य, सनातन, ज्योतिर्मय, परब्रह्म ने प्रवेश किया। वे इस चराचर जगत् के सूक्ष्म कारण हैं। फिर उस अण्ड से भगवान् प्रजापति ब्रह्मा उत्पन्न हुए। उसके बाद स्थाणु, स्वायंभुव मनु, दस प्रचेता, दक्ष, दक्ष के सात पुत्र, सात ऋषि और चौदह मनु उत्पन्न हुए। फिर वह अप्रमेय विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ जिसके गुणों को महर्षि लोग एकाग्र होकर गाया करते हैं। फिर दस विश्वेदेवा, बारह आदित्य, आठ वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, साध्यगण, पिशाच, गुह्यक और पितृगण उत्पन्न हुए। इसके बाद अनेकों विद्वान् महर्षि और राजर्षि उत्पन्न हुए। फिर जल, पृथ्वी, स्वर्ग, वायु, आकाश, दस दिशाएँ, वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, रात्रि, और, और-और सब पदार्थ धीरे-धीरे उत्पन्न हुए। जब प्रलय का समय आवेगा तब यह विशाल विश्व उसी
एक परब्रह्म में लीन हो जायगा—इसका कुछ भी चिह्न न रह जायगा। जैसे हर एक ऋतु ३७
के आरम्भ में उसके तरह-तरह के लक्षण—फूल आदि—देख पड़ते हैं और ऋतु बदलने के समय वे लक्षण एक-एक करके मिट जाते हैं वैसे ही सृष्टि के आदि में सब पदार्थ उत्पन्न होते और प्रलय-काल में लीन हो जाते हैं। इसी तरह जन्म-जीवन-मरण का यह संसार-चक्र बराबर चल रहा है।

इस प्रकार तेंतीस हज़ार, तेंतीस सौ, तेंतीस देवताओं की सृष्टि संक्षेप से हुई। दिव के बृहद्भानु, चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह, रवि और मनु (मद्य) ये पुत्र हुए। मनु (मद्य) के दो पुत्र हुए, देवभ्राट् और सुभ्राट्। सुभ्राट् के तीन पुत्र हुए,—दशज्योति, शतज्योति और सहस्रज्योति। महात्मा दशज्योति के दस हज़ार पुत्र उत्पन्न हुए। शतज्योति के एक लाख और सहस्रज्योति के दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं

से कुरु वंश, यदुवंश, भरतवंश, ययातिवंश, इक्ष्वाकुवंश और और राजर्षियों के बहुत से वंश
४७ और जातियाँ उत्पन्न हुईं। वही सब वंश इस समय पृथ्वी पर फैले हुए हैं।

नगर, गाँव, राजधानी, दुर्ग, तीर्थ आदि प्राणियों के रहने के स्थानों को और धर्म, अर्थ, काम के तत्त्व को—वेद, योगशास्त्र, विज्ञानशास्त्र तथा धर्म-अर्थ-काम का वर्णन करनेवाले अनेक शास्त्रों के अभिप्राय को—आयुर्वेद, धनुर्वेद आदि इस लोक से सम्बन्ध रखनेवाले शास्त्रों को महर्षि वेदव्यास अपने तपोबल से जानते थे। महर्षि ने इस ग्रन्थ में ऊपर लिखी बातों का और इतिहास तथा श्रुतियों का भी वर्णन किया है। ऊपर लिखे सभी विषयों का प्रतिपादन महाभारत करता है।

कुछ लोग संक्षेप को पसन्द करते हैं और कुछ लोगों को विस्तार रुचता है। यह जानकर महर्षि वेदव्यास ने इस ग्रन्थ में ऊपर लिखे हुए विषयों का वर्णन संक्षेप में भी किया है और विस्तार से भी किया है। कोई-कोई विद्वान् ब्राह्मण "नारायणं नमस्कृत्य" इस श्लोक से, कोई आस्तीकपर्व से और कोई उपरिचर राजा की कथा से ग्रन्थ का आरम्भ मानते हैं। कोई पण्डित इस भारत के गूढ़ मर्म पर विचार करके इसे लोगों को समझाते हैं; किसी पण्डित में इनके श्लोकों का अर्थ लगाने की अपूर्व शक्ति है और कोई इसको धारण करने में कुशल हैं।

पराशर के पुत्र, विद्वानों में श्रेष्ठ, ब्रह्मर्षि व्यासदेव ने अपने तपोबल और ब्रह्मतेज के प्रभाव से सनातन चारों वेदों के सारांश का संग्रह करके इस पवित्र इतिहास को रचा है। वेद-

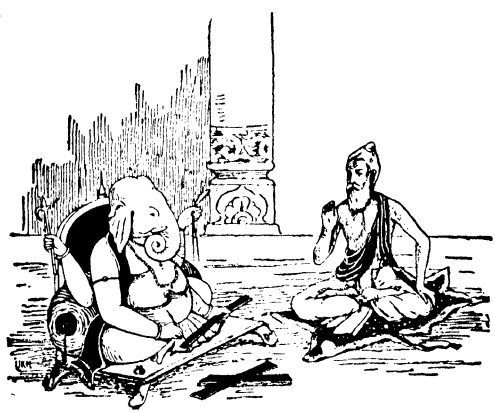

५७

व्यासजी अपने मन में भारत की रचना करके सोचने लगे कि मैं यह ग्रन्थ शिष्यों को किस तरह पढ़ाऊँ। व्यासजी की इस चिन्ता का हाल जाननेवाले, सर्वशक्तिमान् ब्रह्माजी—व्यासजी को प्रसन्न करने के लिए—लोकों के हित की इच्छा से वहाँ पर पहुँचे। उन्हें देखकर व्यासजी को बड़ा विस्मय हुआ। मुनियों सहित व्यासजी ने ब्रह्माजी को प्रणाम किया और बैठने के लिए श्रेष्ठ आसन दिया। सबके बड़े ब्रह्माजी आसन पर बैठ गये। व्यासजी हाथ जोड़े सामने खड़े रहे। उनके नेत्रों में और चेहरे पर आनन्द झलक रहा था। ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर व्यासजी भी उनके समीप बैठ गये। थोड़ी देर बाद तेजस्वी महर्षि व्यास ने प्रजापति ब्रह्मा से कहा—भगवन! चारों वेद बहुत ही कठिन हैं, सब लोग उन्हें पढ़ नहीं सकते। इसी लिए मैंने ऐसा एक पवित्र काव्य रचा है जिसमें उन वेदों के गूढ़ तत्त्व का

वर्णन है; वेदाङ्ग और उपनिषद् आदि कठिन ग्रन्थों की व्याख्या है; इतिहास और पुराणों की बातें हैं; भूत, भविष्य और वर्त्तमान—इन तीनों कालों का वर्णन है; वृद्धावस्था, जन्म, मरण, डर, व्याधि, भाव, अभाव आदि का वर्णन है; तरह-तरह के धर्म, वर्णों और आश्रमों के धर्म तथा लक्षण कहे गये हैं; तप और ब्रह्मचर्य का तत्त्व बतलाया गया है; पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, ६४
ग्रह, नक्षत्र, तारागण और युगों का परिमाण कहा गया है; ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, आत्म-विद्या, दर्शनशास्त्र, शिक्षा, चिकित्साशास्त्र, दानधर्म, पाशुपतधर्म आदि का वर्णन है; लोक-रक्षा के लिए होनेवाले भगवान् के दिव्य और मानुष अवतारों का वर्णन है; पवित्र तीर्थ, नदी, पर्वत, वन, सागर, दिव्य पुर, युद्ध-कौशल, ख़ास-ख़ास वाक्यों और जातियों का वर्णन है; लौकिक आचार-व्यवहार का भी वर्णन है। इस विशाल ब्रह्माण्ड में व्याप्त ब्रह्म का प्रतिपादन ही इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। परन्तु मुझे इस जगत् में इस महाग्रन्थ को लिखनेवाला कोई लेखक नहीं देख पड़ता। ७०

ब्रह्माजी ने कहा—गूढ़ तत्त्वज्ञान का अनुभव रखने के कारण तुमको मैं बड़े-बड़े तपस्वियों से भी श्रेष्ठ समझता हूँ। तुमने जन्म से आज तक कभी झूठ नहीं कहा। तुम्हारे मुँह से सदा ब्रह्मवाक्य निकला करते हैं। तुमने उस ग्रन्थ को 'काव्य' कहा है, इसलिए पृथ्वी पर वह काव्य ही कहलावेगा। जैसे ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास से गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ है वैसे ही तुम्हारा यह काव्य भी और-और कवियों के काव्यों से श्रेष्ठ समझा जायगा। कोई कभी ऐसा उत्तम ग्रन्थ बना न सकेगा। अब तुम इस ग्रन्थ को लिखने के लिए सब विघ्नों का नाश करनेवाले गणेश को याद करो।

सब जगत् को उत्पन्न करनेवाले ब्रह्माजी यों कहकर अपने लोक को चले गये। तब सत्यवती के पुत्र व्यासदेव ने गणेशजी का स्मरण किया। स्मरण करते ही गणेशजी आ गये। व्यासजी ने उनको आये देखकर यथोचित भक्ति और श्रद्धा के साथ सत्कार करके आसन दिया और हाथ जोड़कर कहा—गणेशजी, मैंने भारत नाम का एक ग्रन्थ बनाया है; कृपा करके उसे आप लिखिए—मैं लिखाऊँगा। यह सुनकर विघ्नविनाशन गणेश ने कहा—मुनिवर, मैं इस शर्त पर लेखक होने को तैयार हूँ कि क्षण भर भी मेरी क़लम रुकने न पावे। अगर क़लम रुक गई तो फिर मैं न लिखूँगा। व्यासजी ने कहा—अच्छी बात है; किन्तु आप भी ठीक अर्थ समझे बिना कोई श्लोक न लिखना। गणेशजी यह स्वीकार करके लिखने लगे। इसी से वेदव्यास ने महाभारत में, बीच-बीच में, कूट श्लोक



( जिनका अर्थ सहज ही समझ में न आ सके ) रख दिये हैं। व्यासजी ने प्रतिज्ञा करके कहा है कि महाभारत के आठ हज़ार आठ सौ श्लोक ऐसे हैं जिनके ठीक अर्थ को मैं जानता हूँ, शुकदेव
८१ जानते हैं और सञ्जय के बारे में ठीक कहा नहीं जा सकता कि वह जानता है या नहीं। उन श्लोकों के कूट अर्थ को आज तक कोई पण्डित न तो समझ सकता है और न समझा सकता है। सब विद्याओं के पूर्ण पण्डित स्वयं गणेशजी तक को, लिखने के समय, देर तक उनका अर्थ सोचना पड़ता था। उसी समय में वेदव्यासजी और बहुत से श्लोकों की रचना कर लेते थे।

यह महाभारत अज्ञान के अन्धकार से घिरे हुए लोगों के आगे से मोह के पर्दे को हटाकर उनकी ज्ञान की आँखें खोलनेवाला सूर्य है। इसमें धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष का संक्षेप और विस्तार से वर्णन किया गया है। इस वेदव्यास-रचित महाभारतपुराण-रूपी पूर्णचन्द्र ने पृथ्वी पर प्रकट होकर, श्रुतियों की किरणें फैलाकर, कुमुद के समान उज्ज्वल मनुष्यों की बुद्धि को विकसित करके विमल बनाया है। मोह को मिटानेवाला यह इतिहास दीपक के समान है। इसने संसार भर को ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित कर रक्खा है। यह महाभारत एक बड़ा भारी अक्षय वृक्ष है। संग्रहाध्याय इसका बीज है। पौलोमपर्व और आस्तीकपर्व इसकी जड़ें हैं। सम्भवपर्व इसके टहनों का फैलाव है। सभापर्व विटङ्क ( पक्षियों के बैठने का स्थान ) है। वनपर्व इस वृक्ष का पर्व ( तना ) है। विराटपर्व और उद्योगपर्व इस वृक्ष के सारभाग हैं। भीष्मपर्व विशाल शाखा है। द्रोणपर्व पत्तों का समूह है। कर्णपर्व सफ़ेद फूल है। शल्यपर्व उस फूल की महक है। स्त्रीपर्व और ऐषीकपर्व छाया हैं। शान्तिपर्व फल है। अश्वमेधपर्व उस फल का अमृत-तुल्य रस है। आश्रमवासिकपर्व इस वृक्ष का थालहा है। मौसलपर्व इस भारतवृक्ष की फैली हुई लम्बी शाखाओं का आगे का हिस्सा है। जैसे मेघ के जल से तरह-तरह के अन्न आदि उत्पन्न होकर लोगों को तृप्त करते हैं वैसे ही इस महाभारत की कथाओं के आधार पर महाकवियों के लिखे काव्य नाटक आदि मनुष्यों का मनोरञ्जन करेंगे।
९२ अब पवित्र नित्य धर्म-कर्मरूपी फूल और मोक्षरूपी फल का वर्णन किया जाता है।

पूर्व समय में धर्मात्मा व्यासजी ने माता की आज्ञा और बुद्धिमान् भीष्म पितामह के कहने से विचित्रवीर्य की स्त्रियों में अग्नि के समान तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न किये। धृतराष्ट्र, पाण्डु, विदुर, ये नाम रखकर व्यासजी फिर तप करने के लिए आश्रम को चले गये। प्रकृति के नियम के अनुसार तीनों पुत्र जब वृद्ध होकर कराल काल के गाल में चले गये तब महर्षि वेदव्यास ने यह महाभारत ग्रन्थ भारतवर्ष में प्रकाशित किया। उसके बाद राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ की दीक्षा ली। उसमें तपोवन के रहनेवाले अनेक ऋषि राजा की राजधानी में आये। वहाँ पर राजा जनमेजय और और हज़ारों ब्राह्मणों ने पवित्र महाभारत इतिहास सुनने की इच्छा प्रकट करके वेदव्यासजी से प्रार्थना की। दयालु ऋषिश्रेष्ठ व्यासदेव ने पास बैठे हुए

अपने शिष्य वैशम्पायन से भारत का वर्णन करने के लिए कहा। यज्ञ का कार्य समाप्त हो जाने पर वैशम्पायन नित्य उन मुनियों को महाभारत सुनाने लगे।

व्यासजी ने इस महाभारत में विस्तार से कौरववंशी राजाओं की कथाओं, गान्धारी की धर्मपरायणता, विदुर की समझदारी, कुन्ती के धैर्य, श्रीकृष्ण के माहात्म्य, पाण्डवों के सत्य-पालन और धृतराष्ट्र के पुत्रों के बुरे चरित्र का वर्णन अच्छी तरह किया है। पहले वेदव्यास १०१
ने कथाभाग छोड़कर चौबीस हज़ार श्लोकों में यह महाभारत बनाया था। कथाभाग सहित यह ग्रन्थ एक लाख श्लोकों में है। उसके बाद व्यासजी ने डेढ़ सौ श्लोकों में अनुक्रमणिकाध्याय लिखकर संक्षेप में सब पर्वों का वृत्तान्त वर्णन किया। यह महाभारत बनाकर व्यासजी ने पहले अपने पुत्र शुकदेव को पढ़ाया; पीछे से योग्य शिष्यों को भी पढ़ा दिया। फिर व्यासजी ने साठ लाख श्लोकों की और एक भारतसंहिता बनाई। उसके तीस लाख श्लोक स्वर्ग में, पन्द्रह लाख श्लोक पितृलोक में और चौदह लाख श्लोक गन्धर्वलोक में हैं। एक लाख श्लोक मनुष्यलोक में हैं। देवलोक में देवर्षि नारद ने, पितृलोक में असित देवल ने और गन्धर्वलोक में शुकदेव ने इस ग्रन्थ का प्रचार किया है। सब वेदों के ज्ञाता, धर्मतत्त्व के पण्डित व्यासदेव के शिष्य वैशम्पायन ने जनमेजय के सर्पयज्ञ में एक लाख श्लोकों की यह भारतसंहिता कही है। वही मैं इस समय आप लोगों को सुनाता हूँ। एकाग्र होकर सुनिए।

क्रोधरूपी दुर्योधन ही एक बड़ा भारी वृक्ष है। उसका तना कर्ण है। शकुनि डालियाँ है। दुःशासन उसका फूल और फल है। बुद्धिहीन धृतराष्ट्र उसकी जड़ है। वैसे ही धर्म का रूप राजा युधिष्ठिर एक बड़ा भारी वृक्ष है। उसका तना अर्जुन है और डालियाँ भीमसेन है। नकुल, सहदेव फूल-फल हैं। श्रीकृष्ण, वेद और वेद के ज्ञाता ब्राह्मण उसकी जड़ हैं।* ११

पूर्व समय में एक महाबली महापराक्रमी राजा पाण्डु थे। उन्होंने अपनी बुद्धि और बल से बहुत देशों को जीतकर अपना राज्य बहुत बढ़ाया। राजा को शिकार का शौक़ पड़ गया। इससे वे अनुचरों सहित वन में ही मुनियों के बीच रहने लगे। [ एक दिन उन्हें वन में मृग का एक जोड़ा देख पड़ा, जो सुख से रमण कर रहा था। राजा ने मृग के ऊपर बाण चलाया। मृग को बाण लगा, और वह मर गया। मरते समय उसने राजा को शाप दिया—"महाराज! तुमने मुझे सम्भोग के समय मारा है, इससे तुम यदि स्त्री से सहवास करोगे तो मर जाओगे।" असल में वह मृग एक ऋषि था। मृगी ऋषि की पत्नी थी। जिस समय राजा को यह शाप मिला उस समय उनके कोई सन्तान न थी। कुन्ती को दुर्वासा ने एक मन्त्र बताया था, जिसके प्रभाव से वे हर एक देवता को बुला सकती थीं। ] कुन्ती ने

* पाठा०—धर्मात्मा युधिष्ठिर का नाम लेने से धर्म बढ़ता है, भीमसेन का नाम लेने से पाप दूर होता है। अर्जुन का नाम लेने से बल बढ़ता है। नकुल और सहदेव का नाम लेने से सब रोगों की बाधा मिट जाती है।

[ वंशनाश होते देखकर पाण्डु की आज्ञा से ] धर्म, वायु और इन्द्र को बुलाया। उनसे उनके युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन उत्पन्न हुए। कुन्ती ने अपनी सौत माद्री के लिए अश्विनीकुमार का आवाहन किया! उनसे उनके नकुल और सहदेव हुए। वन में, ऋषियों के आश्रम में ही, पाँचों पुत्रों के जातकर्म आदि संस्कार हुए और वहीं उनका माताओं द्वारा पालन-पोषण होने लगा। [ एक दिन माद्री से सहवास करने पर, मृगवेषधारी ऋषि के शाप के प्रभाव से, पाण्डु की मृत्यु हो गई। ] कुछ दिनों बाद ऋषि लोग जटाधारी ब्रह्मचारी पाण्डवों को लेकर धृतराष्ट्र के पुत्रों के पास पहुँचे। ऋषियों ने कहा—ये पाण्डु के पुत्र हैं; [ इतने दिनों तक हमने इनका पालन किया है। ] ये तुम्हारे भाई और सुहृद हैं। हे राजा धृतराष्ट्र, ये तुम्हारे पुत्र और शिष्य हैं। इतना कहकर मुनि लोग चले गये। बालक पाण्डवों को देखकर कुरु-वंशी लोग और प्रतिष्ठित पुरवासी ब्राह्मण आदि आनन्द-कोलाहल करने लगे। उनमें से किसी ने कहा—ये उन महात्मा पाण्डु के पुत्र नहीं हैं। किसी ने कहा—नहीं, ये उन्हीं के पुत्र हैं। किसी ने कहा—पाण्डु को मरे जब बहुत दिन हो गये तब ये उनके पुत्र कैसे हो सकते हैं? किसी ने कहा—आज हमारे बड़े सौभाग्य का उदय हुआ जो हम महाराज पाण्डु के
१२० पुत्रों को देख रहे हैं। इनका स्वागत करो।

यह शब्द शान्त हो जाने पर सब दिशाओं को हिलाती हुई आकाशवाणी हुई कि ये पाण्डु के ही पुत्र हैं। आकाश से फूलों की वर्षा होने लगी, सुगन्धित हवा चलने लगी, स्वर्ग में शङ्ख और नगाड़े बजने लगे। पाण्डवों ने जब पुर में प्रवेश किया तब ये अद्भुत बातें हुईं। पुरवासी लोग जयजयकार करने लगे। पाण्डव लोग वहाँ रहकर वेद और अनेक शास्त्र पढ़ने लगे। सब प्रजा पाण्डवों का आदर करती थी। पाण्डव वहाँ निर्भय रहते थे। युधिष्ठिर के सरल स्वभाव और धर्मपरायणता से, भीमसेन के धैर्य से, अर्जुन के पराक्रम से, नकुल-सहदेव की नम्रता से, कुन्ती की गुरुभक्ति और पाँचों की शूरता से सब लोग परम प्रसन्न थे। उसके बाद स्वयंवर की सभा में बहुत से राजाओं के आगे अर्जुन ने बहुत कठिन काम करके ( मछली का निशाना मारकर ) द्रौपदी को प्राप्त किया। तब से इस लोक में सब धनुषधारी वीर अर्जुन को मानने लगे। युद्ध में भी अर्जुन सूर्य के समान हो गये। कोई उनकी ओर आँख उठाकर न देख सकता था। महाराज युधिष्ठिर ने अर्जुन के बाहुबल के प्रभाव से ही राजा-महाराजाओं और गणों को जीतकर राजसूय यज्ञ किया। कृष्णचन्द्र की सलाह और भीमसेन एवं अर्जुन के बाहुबल से महाबली जरासन्ध, शिशुपाल आदि राजा मारे गये और युधिष्ठिर ने दीन-दुखिया लोगों को अन्न देकर, ब्राह्मणों को दक्षिणा
३१ देकर सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ पूरा किया। विदेश के राजा लोग इस यज्ञ के न्यौते में आये थे। उन्होंने राजा युधिष्ठिर को मणि, रत्न, सुवर्ण, गाय, हाथी, घोड़े, धन, विचित्र वस्त्र, कम्बल, रेशमी

वस्त्र, क़ीमती मृगछाला आदि सामग्रियाँ उपहार में दीं। यह सामग्री दुर्योधन के पास जमा की गई। पाण्डवों के इस बढ़ते हुए ऐश्वर्य को देखकर दुर्बुद्धि दुर्योधन का हृदय, ईर्ष्या से उत्पन्न, क्रोध से जलने लगा। मयासुर ने पाण्डवों को देवताओं के सतखने महल के समान अद्भुत सभा बना दी थी। उसे देखकर भी दुर्योधन कुढ़ने लगा। एक दिन दुर्योधन युधिष्ठिर की सभा में आया। उसको थल में पानी का धोखा हुआ। वह गिरते-गिरते बचा। उस समय कृष्ण के सामने भीमसेन ज़ोर से हँस पड़े जैसे कि गँवार के लिए हँसा जाता है। [ इस अपमान से दुर्योधन बहुत लज्जित हुआ। ] सब सुख रहने पर भी उसका चेहरा उतरा हुआ और उदास धृतराष्ट्र को बताया गया। तब पुत्र-वत्सल धृतराष्ट्र ने दुर्योधन की इच्छा पूरी करने के लिए पाँसे का खेल ठाना। यह सुनकर [ और पिता-पुत्र के इरादे को जानकर ] कृष्ण को बड़ा कोप हुआ। वे इस उद्योग से प्रसन्न नहीं हुए। इस झगड़े का उद्योग देखकर भी वे कुछ बोले नहीं। कपट-पाँसे का घोर अन्याय देखकर भी चुप रहे। क्योंकि विदुर, भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के कहने की परवा न करने से होनेवाले युद्ध में जो क्षत्रिय परस्पर नष्ट हुए, यह कृष्ण को अभीष्ट था। १४०



महाभारत युद्ध छिड़ने पर पाण्डव बारम्बार जीतने लगे। उस बुरी ख़बर को सुनकर, दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के मत को जानकर, बहुत देर सोचकर धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—सञ्जय! मैं तुमसे सब कहता हूँ, सुनो। तुम सब शास्त्रों के ज्ञाता, बुद्धिमान् और पण्डितों के प्रिय हो। इसलिए मुझे दोष देना तुमको उचित नहीं। मैं युद्ध को पसन्द नहीं करता। कुलक्षय होने में मुझे प्रसन्नता नहीं; मैं पाण्डवों को अपने पुत्रों से कम नहीं समझता। मेरे पुत्र क्रोधी हैं और मुझ बूढ़े का कहा नहीं मानते। मैं अन्धा ठहरा। पुत्रस्नेह के कारण मैं सब सह लेता हूँ। दुर्योधन अज्ञान के वश मोह को प्राप्त होता है तो उसके साथ मैं भी मोह में पड़ जाता हूँ। राजसूय यज्ञ के समय पाण्डवों के ऐश्वर्य को देखकर और सभा में जाते और सभा को देखते समय भीमसेन की विकट हँसी को दुर्योधन बर्दाश्त नहीं कर सका। युद्ध

में वह पाण्डवों से जीत नहीं सकता था। क्षत्रिय होकर भी उत्साह-हीन होने के कारण वैसी सम्पत्ति वह पा नहीं सकता था। इसी से उसने गान्धारराज शकुनि की सलाह से कपट के पाँसे डालकर युधिष्ठिर को जीतने का विचार किया। उस समय मुझे जो कुछ जान पड़ा वह मैं तुमसे कहता हूँ। मेरे बुद्धि-युक्त वचन सुनकर तुमको मालूम होगा कि चर्मचक्षु न रहने पर
१४९ भी मैं बुद्धि की आँखों से सब अच्छी तरह देखता हूँ।

मैंने जब सुना कि अर्जुन ने अपने बाहुबल से विचित्र धनुष चढ़ाकर निशाने को मारकर पृथ्वी पर गिरा दिया और सब राजाओं के देखते द्रौपदी को ले लिया तभी सञ्जय, मैंने विजय की आशा नहीं की। जब सुना कि कृष्ण की बहन सुभद्रा को अर्जुन बलपूर्वक द्वारकापुरी से हर लाये और उसके साथ ब्याह किया; पीछे से कृष्ण और बलभद्र इन्द्रप्रस्थ को आये, तभी हे सञ्जय, मैंने विजय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने दिव्य बाणों की वर्षा से इन्द्र की जल-वर्षा को शान्त कर दिया और खाण्डव वन जलवाकर अग्नि को तृप्त कर दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कुन्ती सहित पाँचों पाण्डव लाख के घर से साफ़ निकलकर बच गये और बुद्धिमान् विदुर उनकी भलाई कर रहे हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया और शूर पाञ्चाल पाण्डवों से मिल गये हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने विजय की आशा नहीं की। जब सुना कि क्षत्रियों में श्रेष्ठ तेजस्वी मगधपति जरासन्ध को मल्लयुद्ध में भीमसेन ने चीरकर मार डाला, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि पाण्डवों ने दिग्विजय में बलपूर्वक राजाओं को जीतकर अपने वश में कर लिया और युधिष्ठिर ने सफलता के साथ राजसूय यज्ञ समाप्त किया, तभी हे सञ्जय, मैंने विजय की आशा नहीं की। जब सुना कि रोती हुई, एक वस्त्र धारण किये, रजस्वला, दुखिया द्रौपदी को अनाथ की तरह, उसके पतियों के सामने ही, दुःशासन पकड़ लाया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि दुर्बुद्धि छली दुःशासन ने द्रौपदी को नङ्गी करने के लिए खींच-खींचकर कपड़ों के ढेर लगा दिये, पर उसे कपड़े का अन्त नहीं मिला, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि शकुनि ने कपट के पाँसों से युधिष्ठिर को हराकर उनका राज्य हर लिया और वे भाइयों को साथ ले वन को चल दिये, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि वनवासी धर्मात्मा पाण्डव कष्ट उठाकर भी धर्म को नहीं छोड़ते—बड़े भाई की प्रसन्नता के लिए छोटे भाई
१६० क्लेश सह रहे हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि हज़ारों स्नातक ब्राह्मण युधिष्ठिर के पास वन में रहते हैं और वे महात्मा ब्राह्मण युधिष्ठिर से भिक्षा पाते हैं तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि किरातरूपधारी देव-देव शङ्कर को युद्ध में प्रसन्न करके अर्जुन ने दिव्य पाशुपत अस्त्र पाया है, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की

आशा नहीं की। जब सुना कि सत्यवादी अर्जुन स्वर्ग में जाकर इन्द्र से यथाविधि दिव्य अस्त्रों को प्राप्त कर आये हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि वरदान के घमण्ड में भरे कालकेय और पौलोम असुरों को—जिन्हें देवता भी नहीं जीत सकते थे—



अर्जुन ने जीत लिया, तभी हे सञ्जय! मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि शत्रुओं का संहार करनेवाले अर्जुन असुरों को मारने के लिए स्वर्ग को गये और वहाँ से अपना काम करके सकुशल लौट आये, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि भीमसेन और अन्य चारों पाण्डव जहाँ मनुष्य नहीं जा सकते उस स्थान में जाकर यक्षराज कुबेर से मिल आये, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कर्ण की सलाह में लगे हुए मेरे पुत्रों को 'घोषयात्रा' में गन्धर्व लोग बाँध ले गये और फिर अर्जुन उनको छुड़ा लाये, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि धर्म यक्ष का रूप रखकर धर्मात्मा युधिष्ठिर के पास आये और उनसे उन्होंने कई प्रश्न किये, और युधिष्ठिर ने भी उनके प्रश्नों का ठीक-ठीक उत्तर दे दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि द्रौपदी के साथ पाँचों पाण्डव राजा विराट के यहाँ छिपकर रहे और मेरे पुत्र उनका पता न पा सके, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि राजा विराट के नगर में रहते समय अकेले अर्जुन ने मेरे पक्ष के सब श्रेष्ठ वीरों को भगा दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय

७० की आशा नहीं की। जब सुना कि राजा विराट ने अपनी कन्या उत्तरा अर्जुन को देनी चाही, और अर्जुन ने उसे अपने पुत्र अभिमन्यु के लिए स्वीकार किया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि जुए में जीते गये, धनहीन, वनवासी, स्वजनों से बिछुड़े हुए युधिष्ठिर के पास सात अक्षौहिणी सेना है, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि (वामनावतार में) एक पग से पृथ्वी भर को नापनेवाले वासुदेव कृष्ण सब तरह पाण्डवों की भलाई में लगे हुए हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब नारदजी के मुँह से सुना कि अर्जुन और श्रीकृष्ण नर-नारायण के अवतार हैं और नारदजी ने ब्रह्मलोक में उनको देखा है, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कृष्णचन्द्र लोगों का मङ्गल करने और कौरवों का विरोध मेटने के लिए दूत बनकर (दुर्योधन के यहाँ) आये और वहाँ उनका अपमान हुआ, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कर्ण और दुर्योधन ने कृष्ण को पकड़ लेना चाहा और उस समय कृष्ण ने अपना विराट् रूप दिखाया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि दुःखित कुन्ती को यात्रा के समय रथ के पास खड़े देखकर कृष्ण ने समझाया और धीरज दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि भगवान् कृष्ण और शान्तनु के पुत्र भीष्म पितामह पाण्डवों को सलाह देते हैं और द्रोणाचार्य नित्य आशीर्वाद देते हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कर्ण भीष्म से यह कहकर कि "जब तक तुम लड़ोगे तब तक मैं युद्ध नहीं करूँगा," सेना को छोड़कर हट गया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कृष्ण, अर्जुन और गाण्डीव



१८० धनुष, तीन उग्र वीर्य एकत्र हो गये हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि युद्ध के आरम्भ में रथ के ऊपर अर्जुन को मोह ने घेरा और कृष्ण ने विश्वरूप दिखाकर गीता का उपदेश किया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि गङ्गा के पुत्र भीष्म युद्ध में नित्य दस हज़ार शत्रुसेना मारते हैं, पर शत्रुपक्ष के एक भी प्रसिद्ध पुरुष को उन्होंने नहीं मारा, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि भीष्म पितामह ने पाण्डवों को अपने मरने का उपाय बता दिया और पाण्डवों ने प्रसन्न होकर वैसा ही किया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने शिखण्डी को आगे खड़ा

करके अत्यन्त शूर और युद्ध में अजेय भीष्म पितामह को गिरा दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि सोमकों का संहार करके वृद्ध, वीर, बाणों से घायल भीष्म पितामह बाणों की सेज पर सो रहे, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि शरशय्या पर लेटे हुए भीष्म ने अर्जुन से पीने के लिए पानी माँगा और अर्जुन ने धरती फोड़कर भीष्म को पानी पिलाया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि वायु, शक्र और सूर्य पाण्डवों की विजय के लिए उनके अनुकूल हैं और हमारे पक्ष के लोगों को भयानक .खूनी जानवर यात्रा के समय असगुन करके डर दिखाते हैं, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि विचित्र युद्ध करनेवाले द्रोणाचार्य युद्ध में अस्त्र-विद्या का कौशल दिखाकर भी पाँचों पाण्डवों में से एक को भी नहीं मारते, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने उनके मारने के लिए खड़े किये गये महारथी संशप्तकों को मार डाला, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि जिस व्यूह को बड़े-बड़े वीर नहीं तोड़ सकते और जिसकी रक्षा धनुष हाथ में लिये .खुद द्रोणाचार्य कर रहे थे उस चक्रव्यूह को अकेला सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु तोड़कर भीतर चला गया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन का सामना न कर सकनेवाले सात महारथियों ने अकेले ६० बालक अभिमन्यु को मारकर आनन्द मनाया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने अभिमन्यु के वध से मूढ़ हो रहे कौरवों को .खुशी मनाते सुनकर क्रोध से जयद्रथ के मारने की प्रतिज्ञा की है, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने जयद्रथ को मारने की प्रतिज्ञा करके उसे शत्रुओं के बीच सत्य कर दिखाया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन के थके-प्यासे घोड़ों को खोल-कर श्रीकृष्ण ने पानी पिलाकर फिर जोत लिया और कोई उनका कुछ बिगाड़-बना न सका, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि घोड़ों के थककर न चलने पर रथ पर बैठे हुए अकेले अर्जुन ने सब वीरों को बाण-वर्षा से विमुख कर दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय



की आशा नहीं की। जब सुना कि द्रोणाचार्य जिसकी रक्षा कर रहे थे उस हाथियों की सेना को मथकर सात्यकि कृष्ण और अर्जुन के पास पहुँच गया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कर्ण ने धनुष की नोक से भीमसेन को मारकर कटु वचन तो कहे किन्तु मारा नहीं—छोड़ दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कृतवर्मा, कर्ण, अश्वत्थामा और शल्य खड़े रह गये; अर्जुन से जयद्रथ को बचा न सके; तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कर्ण ने इन्द्र से जो दिव्य शक्ति पाई थी उसे कृष्ण ने कौशल से घटोत्कच राक्षस पर चलवा दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कर्ण ने अर्जुन को मारने के लिए एक-पुरुषघातिनी जो शक्ति
२०० रख छोड़ी थी उसे उसने घटोत्कच पर चला दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि रथ पर शस्त्र त्यागकर शरीर छोड़ने के लिए बैठे हुए द्रोणाचार्य को धृष्टद्युम्न ने अधर्म से मार डाला, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि महारथी अश्वत्थामा से माद्री के पुत्र नकुल ने सब लोगों के सामने घोर युद्ध किया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि पिता की हत्या से क्रोधित अश्वत्थामा नारायणास्त्र चलाकर भी पाण्डवों को नहीं मार सके, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि भीमसेन ने युद्ध में अपने भाई दुःशासन का रुधिर पिया और दुर्योधन आदि कोई भी उसको रोक नहीं सका, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि भाइयों के इस युद्ध में अर्जुन के हाथों अद्वितीय वीर कर्ण मारा गया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि धर्मराज युधिष्ठिर ने शूर अश्वत्थामा, दुःशासन और उग्र कृतवर्मा को जीत लिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि सदा संग्राम में कृष्ण की बराबरी का दावा करनेवाले शूर शल्य को युद्ध में धर्मराज ने मार डाला, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि सहदेव ने इस जुए से उत्पन्न लड़ाई की जड़ छली शकुनि को मार डाला, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि हीनबल, सहायहीन, थका हुआ दुर्योधन जल को बाँधकर सरोवर के भीतर घुसकर बैठा है, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि कृष्ण के साथ उस सरोवर के किनारे जाकर पाण्डवों ने
१० मेरे मानी पुत्र को ललकारा, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि गदा-युद्ध में तरह-तरह के पैंतरे बदलकर दुर्योधन ने अपनी खूब होशियारी दिखाई, किन्तु अन्त को भीमसेन ने कृष्ण का इशारा पाकर अधर्म से उसकी जाँघ तोड़ दी, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने सोते हुए धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों और द्रौपदी के पुत्रों की हत्या करके भयानक निन्दनीय काम किया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि भीमसेन के पीछा करने पर अश्वत्थामा ने क्रोध करके

सेंठे में लगाकर दिव्य ब्रह्मास्त्र चलाया और उससे उत्तरा के गर्भ की हत्या हुई, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अर्जुन ने "सबका भला हो" कहकर ब्रह्मास्त्र को शान्त करने के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ा और अश्वत्थामा ने हारकर अपने सिर का मणि-रत्न पाण्डवों को दे दिया, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। जब सुना कि अश्वत्थामा ने कहना न मानकर उत्तरा के गर्भ को अस्त्र से नष्ट करना ही चाहा और कृष्ण ने उसे फिर जिला देने की प्रतिज्ञा की, तभी हे सञ्जय, मैंने जय की आशा नहीं की। यह सुनकर कि कहा न मानने पर व्यासजी और कृष्णचन्द्र ने अश्वत्थामा को शाप दिया, पुत्रों और पोतों से हीन मैं बुद्धिहीन सा होकर भीतर ही भीतर जल रहा हूँ। पुत्रों, पोतों और पिता, भाई आदि से हीन गान्धारी शोचनीय दशा में पड़ी हुई है। पाण्डवों ने कठिन काम करके फिर निष्कण्टक राज्य प्राप्त कर लिया। बड़े कष्ट की बात है! इस क्षत्रियों के महायुद्ध में अठारह अक्षौहिणी सेना कट गई! केवल दस आदमी बचे हैं—सात पाण्डवों की ओर और तीन हमारी ओर! यह सब स्मरण करके मेरा हृदय विह्वल हो रहा है, आँखों के आगे अँधेरा आ रहा है, मैं अचेत सा हुआ जाता हूँ। २१८

उग्रश्रवा सूत कहते हैं—इस तरह विलाप करके बहुत दुःखित धृतराष्ट्र बेहोश हो गये। चेत आने पर धृतराष्ट्र ने सञ्जय से कहा—सञ्जय, इस तरह मेरा सर्वस्व चला गया, अब देर की ज़रूरत नहीं, मैं अभी प्राण-त्याग करूँगा। अपने जीने का अब मुझे कुछ भी फल नहीं देख पड़ता। उग्रश्रवा कहते हैं कि इस तरह कहकर विलाप कर रहे, नाग की तरह बार-बार लम्बी साँसें ले रहे और बार-बार बेहोश हो रहे राजा से बुद्धिमान् सञ्जय ने कहा—व्यासजी और नारदजी के मुँह से आपने महा उत्साह-वाले, महाबली, बड़े-बड़े घरानों में उत्पन्न और गुणी महारथी राजा शैव्य, वीर सृञ्जय, सुहोत्र, रन्तिदेव, काक्षीवान्, औशिज, बाह्लीक, दमन, शर्याति, अजित, नल, विश्वामित्र, महाबली अम्बरीष, मरुत्त, मनु, इक्ष्वाकु, गय, भरत, दशरथ के पुत्र राम, शशबिन्दु, भगीरथ, कृतवीर्य, जनमेजय और ययाति का वृत्तान्त सुना है। राजा ययाति को स्वयं देवताओं ने यज्ञ



कराये थे। उनके यज्ञ के खम्भों से यह सारी पृथ्वी व्याप्त है। ये सब राजा इन्द्र के समान तेजस्वी थे। धर्म से पृथ्वी को जीतकर, बड़ी-बड़ी दक्षिणाएँ दे-देकर, यज्ञ करके, इस लोक में यश कमाकर ये सब काल के गाल में चले गये हैं। पूर्व समय में पुत्रशोक से पीड़ित राजा
३० श्वैत्य से देवर्षि नारद ने इन चौबीस राजाओं की कथा कही थी। इन राजाओं से पहले और भी बली महारथी महात्मा सब गुणों से विभूषित पुरु, कुरु, यदु, शूर विष्वगश्व, महाद्युति, अणुह, युवनाश्व, ककुत्स्थ, पराक्रमी रघु, विजय, वीतिहोत्र, अङ्ग, भव, श्वेत, बृहद्गुरु, उशीनर, शतरथ, कङ्क, दुलिदुह, द्रुम, दम्भोद्भव, वेन, सगर, संस्कृति, निमि, अजयपरशु, पुण्ड्र, शम्भु, देवावृध, अनघ, देवाह्वय, सुप्रतिम, सुप्रतीक, बृहद्रथ, विनीत और उत्साही सुकृतु, नल, सत्यव्रत, शान्तभय, सुमित्र, सुबल, जानुजङ्घ, अनरण्य, अर्क, शुचिव्रत, बलबन्धु, निरामर्द, प्रियभृत्य, केतुशृङ्ग, बृहद्बल, धृष्टकेतु, बृहत्केतु, दीप्तकेतु, निरामय, अविक्षित्, चपल, धूर्त, कृतबन्धु, दृढ़ेषुधि, महापुराणसम्भाव्य, प्रत्यङ्ग, परहा, श्रुति—ये और और सैकड़ों हज़ारों राजा इस पृथ्वी पर हो गये हैं। उनके नाम अब तक सुन पड़ते हैं। ये सब बुद्धिमान् महाबली राजा बड़े-बड़े भोगों को यहीं छोड़कर मर गये। ये
२४० सब राजा तुम्हारे पुत्रों से सब बातों में बहुत बड़े थे। अनेक शास्त्रों के जाननेवाले कवि लोग पुराने इतिहासों का वर्णन करते समय इन राजाओं के असाधारण बल, प्रसिद्धि, उदारता, निष्कपट भाव, ईश्वर पर श्रद्धा, सत्य, पवित्रता और दया आदि गुणों का बखान करते हैं। सब सम्पत्तियों और गुणों से परिपूर्ण होकर भी ये राजा मृत्यु से नहीं बचे। फिर आपके पुत्र तो दुरात्मा, लोभी और क्रोधी थे। उनके लिए शोच करना आपको उचित नहीं। आप तो बुद्धिमान्, समझदार समझे जानेवाले और शास्त्रों को सुननेवाले हैं। जिनकी बुद्धि शास्त्र के पीछे चलती है वे मोह नहीं करते। राजन्, आप तो दैव के दण्ड और अनुग्रह को जानते हैं। पुत्रों को बचाने के लिए आप इतना सोच न करें। जो होना है वह अवश्य होगा। उसके लिए सोच न कीजिए। होनी को यत्न करके कौन मेट सकता है? होना न होना, सुख और दुःख, सब काल के अनुसार होता है। काल पाकर ही प्राणी उत्पन्न होते हैं, काल पाकर ही उनका संहार होता है। काल ही प्रलय करता है और वही उसको शान्त करता है। संसार में काल ही बुरे-भले भावों के रूप बदला करता है। काल ही जीवों को बढ़ाता और वही उनको कम करता है। सब प्राणी असावधान हैं, काल ही सदा अपने कर्तव्य में सावधान है। काल को कोई टाल नहीं सकता। काल का प्रभाव सब जगह सब प्राणियों में एक सा देख पड़ता है। जो हो गया है, जो हो रहा है और
५१ जो होगा, सब काल का काम है यह सोचकर आप अपनी बुद्धि को मोह में न पड़ने दीजिए।

उग्रश्रवा कहते हैं—सञ्जय ने पुत्रशोक से पीड़ित राजा धृतराष्ट्र को समझाकर शान्त किया। महर्षि वेदव्यास ने इसी प्रसङ्ग में एक पवित्र उपनिषद् कही है। चतुर विद्वान् लोग पुराण में उस उपनिषद् का वर्णन करते हैं।

श्रद्धा के साथ इस महाभारत का पाठ करने से पाप का नाश होता और पुण्य की बढ़ती होती है। यहाँ तक कि श्लोक का एक चरण भी पढ़ लेने से पापों का डर नहीं रहता। इस ग्रन्थ में देव, देवऋषि, ब्रह्मर्षि, यक्ष, राक्षस आदि का वर्णन है। जो अद्वितीय शुद्ध सनातन ज्योति और सत्य हैं, जो अविनाशी परब्रह्म हैं, शास्त्रों के जाननेवाले लोग जिनके दिव्य कर्मों का कीर्त्तन करते हैं, जो कार्य-कारण-रूप विश्व के चलानेवाले हैं, जिन अप्रमेय पुरुष का सुशासन अस्खलित अप्रतिहत रहकर इस विशाल विश्व की भलाई कर रहा है, योगी लोग योगबल से अपने हृदय में—शीशे में परछाहीं की तरह—जिनके आभास को पाकर आनन्द से सब सुध-बुध भूल जाते हैं, २६०
जिनकी प्रसन्नता के लिए सब तरह के नित्य-नैमित्तिक कृत्य किये जाते हैं, उन कारणरहित अक्षय जगत् के कारण भगवान् कृष्ण का अद्भुत चरित्र इस ग्रन्थ में बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। धार्मिक और भगवद्भक्त लोग इस अध्याय को पढ़ेंगे तो सब पापों से छूट जायँगे। ईश्वर और वेद पर विश्वास रखनेवाला जो पुरुष इस भारत के अनुक्रमणिका अध्याय को आदि से पढ़ता है वह कभी कष्ट में नहीं पड़ता। इस अध्याय का शाम-सवेरे कुछ भी पाठ करने से मनुष्य के दिन और रात के पाप दूर हो जाते हैं। यह अध्याय भारत का कलेवर है; इसमें सत्य और अमृत ही प्राप्त होता है। जैसे दही में मक्खन, मनुष्यों में ब्राह्मण, वेद में उपनिषद्, ओषधियों में अमृत, जलाशयों में समुद्र और चौपायों में गाय श्रेष्ठ है वैसे ही इतिहासों में यह भारत श्रेष्ठ है। श्राद्ध के समय महाभारत के किसी श्लोक का एक चरण भी पढ़े जाने से उस दिन का दिया अन्न-जल पितरों को अक्षय होकर मिलता है। इतिहास और पुराण से वेद की महिमा बढ़ानी चाहिए। कम पढ़े व्यक्ति से वेद डरता है कि यह मुझे बर्बाद कर डालेगा। व्यासजी के बनाये इस वेदमय ग्रन्थ को सुनाकर विद्वान् लोग धन-लाभ करते हैं। इसके पढ़ने-पढ़ाने से गर्भ-पात आदि के समान पाप भी निःसंशय दूर हो जाते हैं। जो पवित्रता के साथ हर पर्व के दिन इस अध्याय को पढ़ता है उसने, मेरी समझ में, सारा भारत पढ़ लिया। जो मनुष्य श्रद्धा के साथ इसे नित्य सुनता है वह बड़ी आयु, कीर्त्ति और स्वर्गलोक पाता है। एक ओर चारों वेद और एक ओर इस ७०
भारत को रखकर देवताओं ने पहले तौला था। जब यह चारों वेदों और वेदाङ्गों से भी बढ़कर निकला तभी से इसे संसार में महाभारत कहने लगे। इसका वेदों से अधिक महत्त्व (माहात्म्य) और भार ( सारांश ) है, इसी से इसे महाभारत कहते हैं। महाभारत शब्द के ठीक अर्थ को जो जानता है वह सब पापों से बरी हो जाता है। [यहाँ पर प्रश्न होता है कि वेदों से भी भारत क्यों अधिक है ? युद्धप्रधान कर्मों का—जो कि बन्धन के कारण हैं—इसमें कथन है, और उपनिषद् में तो मोक्ष के साधन धर्मों का और ब्रह्म का निरूपण है। इसी शङ्का का समाधान करने के लिए कहते हैं कि ] तप, जो कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत हैं, पाप का नाश नहीं करते। अपने-अपने वर्ण और आश्रम का स्वाभाविक वेदोक्त सन्ध्योपासन, अग्निहोत्र आदि कर्म और वेद पढ़ना

भी पापनाशक नहीं है। बलपूर्वक भूख आदि का दुःख सहकर शिल-उञ्छ आदि मुनिवृत्तियों
२७५ का पालन भी पापनाशक नहीं है। असल में भाव ही पाप का नाश करनेवाला है। [ भारत में भी मोक्षधर्म आदि के वर्णन में निष्काम कर्म का प्रतिपादन और ब्रह्म का निरूपण है। इसलिए वेद से भी भारत बढ़कर है। ]

---

## पर्वसंग्रहपर्व

## दूसरा अध्याय

समन्तपञ्चक का वर्णन। अक्षौहिणी आदि का परिमाण। सब पर्वों का संक्षेप से वृत्तान्त कहना। भारत सुनने का फल

ऋषियों ने कहा—हे सूतपुत्र, आपने समन्तपञ्चक तीर्थ का नाम लिया था। हम उस तीर्थ का वर्णन सुनना चाहते हैं।

उग्रश्रवा ने कहा—हे ऋषियो! मैं आप लोगों से समन्तपञ्चक की शुभ कथा और अन्य कथाएँ कहता हूँ, सुनिए। त्रेतायुग और द्वापरयुग की सन्धि ( त्रेता के अन्त और द्वापर के आरम्भ ) में पिता की हत्या से क्रोधित वीरश्रेष्ठ परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वीमण्डल भर के क्षत्रियों का संहार किया। अग्नि के समान तेजस्वी परशुराम ने अपने पराक्रम से सब क्षत्रियों का विनाश करके समन्तपञ्चक में पाँच रक्त के सरोवर बना दिये। हमने सुना है कि उन्हीं सरोवरों में भरे हुए रक्त से परशुराम ने अपने पितरों का तर्पण किया। तब ऋचीक आदि परशुराम के पितरों ने आकर उनसे कहा—हे महाभाग परशुराम, तुम्हारी यह पितरों की भक्ति और पराक्रम देखकर हम बहुत प्रसन्न हुए। अब जो चाहो वह वरदान हमसे माँगो।



परशुराम ने कहा—पितरो, यदि प्रसन्न होकर आप वरदान के लिए तैयार हैं तो यह वर दीजिए कि मैं इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार करने के पाप से छूट जाऊँ और वे रक्त से भरे पाँच कुण्ड तीर्थ माने जाने लगें। पितरों ने कहा—ऐसा ही होगा। अब तुम इस कार्य से निवृत्त हो जाओ। परशुराम ने अपने पितरों की आज्ञा शिरोधार्य की। उन पाँचों कुण्डों के आसपास का सब स्थान उन्हीं कुण्डों के नाम से समन्तपञ्चक कहलाता है। बुद्धिमान् लोग कहते हैं कि जिस देश में जो चिह्न देख पड़े उसी के नाम से उस देश को पुकारना चाहिए। इसी स्थान पर कलियुग के आदि और द्वापर के अन्त में कौरवों और पाण्डवों ने अत्यन्त घोर संग्राम किया था। हे ब्राह्मणो, उस निर्दोष तीर्थ-स्थान में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना लड़ने के लिए जमा हुई और मारी गई। हे ऋषियो, समन्तपञ्चक तीर्थ के नाम का अर्थ मैंने आपसे कहा। यह भूमि अत्यन्त पवित्र और मनोहर है। इस स्थान के प्रसिद्ध होने का कारण भी मैं आपको बतला चुका।

मुनियों ने कहा—हे सूतपुत्र! एक अक्षौहिणी सेना में कितने हाथी, घोड़े, रथ और सिपाही होते हैं, सो हमसे कहिए। आप सब जानते हैं। सूतपुत्र ने कहा—एक रथ, एक हाथी, पाँच पैदल सिपाही, तीन घोड़े—इतने को 'पत्ति' कहते हैं। तीन पत्तियों का एक 'सेनामुख' होता है। तीन सेनामुखों का एक 'गुल्म' होता है। तीन गुल्मों का एक 'गण' कहलाता है। तीन गणों की एक 'वाहिनी' होती है। तीन वाहिनियों की एक 'पृतना' होती है। तीन पृतनाओं की एक 'चमू' होती है। तीन चमूओं की एक 'अनीकिनी' होती है। दस अनीकिनिओं की एक 'अक्षौहिणी' होती है। एक अक्षौहिणी में २१८७० रथ, २१८७० हाथी, १०९३५० पैदल और ६५६१० घोड़े होते हैं। हे ब्राह्मणो, कौरवों और पाण्डवों की ऐसी अट्ठारह अक्षौहिणी सेना थी जो कौरवों को निमित्त बनाकर नष्ट हो गई। दस दिन भीष्म पितामह और पाँच दिन द्रोणाचार्य कौरव-सेना के सेनापति रहे। शत्रु-दलन कर्ण ने दो दिन और शल्य ने आधे दिन सेनापति रहकर घोर युद्ध किया। अन्त को आधे दिन भर भीमसेन और दुर्योधन ने गदा-युद्ध किया। उसी दिन सन्ध्या के समय अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा ने बेखटके सो रही युधिष्ठिर की सेना का संहार किया। हे शौनकजी, आपके यज्ञ में जो मैं यह महाभारत कह रहा हूँ, इसे व्यासजी के शिष्य बुद्धिमान् वैशम्पायन ने राजा जनमेजय के सर्पयज्ञ में कहा था। इसके आदिपर्व के अन्तर्गत पौष्य, पौलोम और आस्तीकपर्व में महानुभव राजाओं के असाधारण चरित्र विशेष रूप से कहे गये हैं। इसमें अनेक समय के विचित्र अर्थ-पदवाले इतिहास वर्णन किये गये हैं। जैसे मोक्ष की इच्छा रखनेवाले लोग वैराग्य का आश्रय लेते हैं वैसे ही बुद्धिमान् लोग इस महाभारत का आश्रय लेते हैं। जैसे जानने योग्य पदार्थों में आत्मा श्रेष्ठ है, प्रिय पदार्थों में जीवन श्रेष्ठ है, वैसे ही सब शास्त्रों में महाभारत श्रेष्ठ है।

जैसे बिना भोजन किये शरीर का रहना असम्भव है वैसे ही इस पृथ्वी पर ऐसी कोई कथा नहीं जिसका आधार यह महाभारत न हो। जैसे उन्नति चाहनेवाले नौकर कुलीन स्वामी की सेवा करते हैं वैसे ही कवि लोग इस महाभारत की आराधना करते हैं। जैसे स्वर और व्यञ्जन अक्षर—लौकिक और वैदिक—सब शास्त्रों में व्याप्त हैं वैसे ही यह अपूर्व उपाख्यान सब भली बुद्धियों की जड़ है। इस ज्ञान से परिपूर्ण, विचित्र पद और पर्ववाले, सूक्ष्म रीति-नीतियों से युक्त, वेद के अर्थों से सुशोभित महाभारत इतिहास के पर्वों का, क्रम से, वर्णन करता
४० हूँ। सुनिए। आदिपर्व में पहला अनुक्रमणिकापर्व है। दूसरा पर्व संग्रहपर्व है। फिर क्रम से पौष्यपर्व, पौलोमपर्व, आस्तीकपर्व, अंशावतरणपर्व, सम्भवपर्व, जतुगृहपर्व, हिडिम्बवधपर्व, वकवधपर्व, चैत्ररथपर्व, द्रौपदीस्वयंवरपर्व, वैवाहिकपर्व, विदुर के आगमन और राज्यलाभ का पर्व, अर्जुन-वनवासपर्व, सुभद्रा-हरणपर्व, यौतुकाहरणपर्व, खाण्डव-दाहपर्व और मयदर्शनपर्व है। सभापर्व में मन्त्रपर्व, जरासन्ध-वधपर्व, दिग्विजयपर्व, राजसूयपर्व, अर्घ्यहरणपर्व, शिशुपालवध-
४९ पर्व, द्यूतपर्व और अनुद्यूतपर्व है। वनपर्व में किर्मीरवधपर्व, अर्जुन-वन-गमनपर्व, शिव-अर्जुन के युद्ध का किरातपर्व, इन्द्रलोक-गमनपर्व, धर्म और करुणा के भाव से भरी राजा नल की कथा का पर्व, युधिष्ठिर की तीर्थयात्रा का पर्व, जटासुर-वधपर्व, यक्ष-युद्धपर्व, निवातकवच-युद्धपर्व, आजगरपर्व, मार्कण्डेयवृत्तान्तपर्व, द्रौपदी और सत्यभामा के संवाद का पर्व, घोषयात्रापर्व, मृगस्वप्नोद्भवपर्व, व्रीहिद्रौणिक और इन्द्रद्युम्न के उपाख्यान का पर्व, द्रौपदी-हरणपर्व, जयद्रथ के छुटकारे का पर्व, पतिव्रता सावित्री के अद्भुत माहात्म्य का पर्व, रामचन्द्र की कथा का पर्व, कुण्डलाहरणपर्व और आरणेयपर्व है। विराटपर्व में पाण्डव-प्रवेशपर्व, समयपालनपर्व, कीचक-
५८ वधपर्व, गोग्रहणपर्व और अभिमन्यु एवं उत्तरा के विवाह का पर्व है। अद्भुत उद्योगपर्व में सेनोद्योगपर्व, सञ्जय-यानपर्व, प्रजागरपर्व, अध्यात्मज्ञानपूर्ण सनत्सुजातपर्व, यान-सन्धि-पर्व और भगवद्यानपर्व है। भगवद्यानपर्व में मातलि की कथा, गालव का चरित्र, सावित्री, वामदेव, राजा पृथु और परशुराम की कथा, षोडशराजकपर्व, श्रीकृष्ण का सभा-प्रवेश और विदुला के पुत्र-शासन की कथा है। उसी उद्योगपर्व में सैन्यनिर्याणपर्व है। सैन्यनिर्याणपर्व के अन्तर्गत विश्वोपाख्यान, कर्ण-विवाद आदि हैं। रथातिरथ-संख्यानपर्व, उसके बाद क्रोध बढ़ानेवाले उलूक दूत के आने का पर्व और अम्बा के उपाख्यान का पर्व भी उद्योगपर्व में ही है। भीष्मपर्व में भीष्माभिषेक की कथा, जम्बूखण्ड-निर्माणपर्व, द्वीपविस्तार-वर्णन-युक्त भूमिपर्व, भगवद्वीतापर्व और भीष्मवधपर्व है। द्रोणपर्व में द्रोणाभिषेकपर्व, संशप्तक-वधपर्व, अभिमन्यु-वधपर्व, प्रतिज्ञा-
७० पर्व, जयद्रथ-वधपर्व, घटोत्कच-वधपर्व, द्रोण-वधपर्व और लोमहर्षण नारायणास्त्र छोड़ने का पर्व है। फिर कर्णपर्व है। शल्यपर्व में शल्य-वधपर्व दुर्योधन-जलप्रवेशपर्व और गदायुद्धपर्व तथा सारस्वततीर्थवंशानुकीर्त्तन है। फिर भयानक सौप्तिकपर्व में दारुण ऐषीकपर्व है। स्त्रीपर्व

में जलप्रदानपर्व, स्त्रीविलापपर्व और कुरुश्राद्धपर्व है। फिर विप्ररूपी चार्वाक राक्षस के मारने की कथा, युधिष्ठिर के अभिषेक की कथा और गृहविभाग की कथा है। शान्तिपर्व में राजधर्मपर्व, आपद्धर्म्मपर्व और मोक्षधर्म्मपर्व है। फिर शुक-प्रश्नाभिगमन, ब्रह्मप्रश्नानुशासन, दुर्वासा-प्रादुर्भाव और मायासंवाद है। फिर अनुशासनपर्व में भीष्मस्वर्गारोहणपर्व है। आश्वमेधिकपर्व में अश्वमेधपर्व और पापनाशक वेदान्तपूर्ण अनुगीतापर्व है। आश्रमवासिकपर्व में आश्रमवासपर्व, पुत्रदर्शनपर्व और नारदागमनपर्व है। फिर मौसलपर्व, महाप्रस्थानिकपर्व और स्वर्गारोहणपर्व ८०
है। परिशिष्ट में हरिवंशपर्व में श्रीकृष्ण की बाललीला और कंस-वध का वर्णन जिसमें है वह विष्णुपर्व और महा अद्भुत भविष्यपर्व है।

महर्षि वेदव्यास ने ये सौ पर्व कहे हैं। सूत रोमहर्षण के पुत्र ने नैमिषारण्य में उन सौ पर्वों को संक्षिप्त करके अठारह पर्वों में कहा है। अब यहाँ पर सब पर्वों की कथा संक्षेप में कही जाती है।

ऊपर जो सौ पर्व गिनाये गये हैं उनमें पौष्य, पौलोम, आस्तीक, अंशावतरण, सम्भव, जतुगृह, हिडिम्बवध, बकवध, चैत्ररथ, द्रौपदीस्वयंवर, वैवाहिक, विदुरागमन—राज्यलाभ, अर्जुन-वनगमन, सुभद्राहरण, खाण्डवदाह, और मयदर्शन, ये पर्व **आदिपर्व** में हैं। पौष्यपर्व में उत्तङ्क ऋषि की उदारता और पौलोमपर्व में भृगुवंश का विस्तार कहा गया है। ८९
आस्तीकपर्व में गरुड़ और नागों की उत्पत्ति, क्षीरसमुद्र का मथा जाना, उच्चैःश्रवा घोड़े का निकलना और जनमेजय राजा के सर्पयज्ञ में भरतवंश की इस भारत-कथा का आरम्भ कहा गया है। सम्भवपर्व में राजाओं, अन्यान्य वीर क्षत्रियों और महर्षि वेदव्यास की उत्पत्ति है। अंशावतार-पर्व में देवता, दैत्य, दानव, यक्ष, नाग, सर्प, गन्धर्व, पक्षी और अन्यान्य जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति, और भरतवंश के आदि-पुरुष, तपस्वी कण्व के आश्रम में शकुन्तला के गर्भ से उत्पन्न, दुष्यन्त के पुत्र महात्मा भरत की कथा कही गई है। इसी पर्व में शान्तनु राजा के औरस और गङ्गा के गर्भ से आठ वसुओं का जन्म और फिर स्वर्गारोहण तथा अंशावतारों का वर्णन है। इसी तरह क्रम से भीष्म पितामह की उत्पत्ति, राज्य-त्याग, ब्रह्मचर्य-धारण और प्रतिज्ञा, भीष्म का चित्राङ्गद की रक्षा करना, चित्राङ्गद के मरने पर उसके छोटे भाई विचित्रवीर्य की रक्षा करना और उसको सिंहासन पर बिठलाना, अणीमाण्डव्य के शाप से धर्म का मनुष्य-शरीर धारण करना, १००
व्यासजी के वरदान से धृतराष्ट्र और पाण्डु की उत्पत्ति, पाण्डवों का जन्म, पाण्डवों को वारणावत नगर में भेजने के लिए दुर्योधन की सलाह, दुर्योधन का पुरोचन को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजना, राह में म्लेच्छभाषा में विदुर का युधिष्ठिर को हित का उपदेश करना, विदुर के कहने से सुरङ्ग का खोदा जाना, पाँच पुत्रों के साथ सो रही मल्लाहिन और पुरोचन का लाख के बने घर में जल जाना, भयानक वन में पाण्डवों का हिडिम्बा राक्षसी को देखना, वहीं भीमसेन

के हाथों हिडिम्ब राक्षस का मारा जाना, घटोत्कच की उत्पत्ति, महर्षि व्यास के दर्शन, व्यासजी के कहने से एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण के घर में पाण्डवों का छिपकर रहना, वकासुर का वध और उससे नगर-वासियों का विस्मित होना, द्रौपदी और धृष्टद्युम्न की उत्पत्ति, ब्राह्मण से ख़बर मिलने पर और व्यासजी की आज्ञा पाकर द्रौपदी को पाने के लिए पाण्डवों का पाञ्चाल देश को
१० जाना, गङ्गा के तट पर अर्जुन का अङ्गारपर्ण नाम के गन्धर्व को जीतना, उससे मित्रता करना और उसके मुँह से तपती, वशिष्ठ और और्व की कथा सुनना, भाइयों के साथ पाञ्चाल देश में पहुँचना, वहाँ निशाना मार लेने के बाद अर्जुन को द्रौपदी मिलना, इसके लिए होनेवाले युद्ध में भीम और अर्जुन के हाथों शल्य, कर्ण आदि वीर राजाओं की हार, अलौकिक वीरता को देखकर उन्हें निश्चित रूप से पाण्डव जानकर उनसे मिलने के लिए श्रीकृष्ण और बलराम का उनके पीछे-पीछे कुँभार के घर जाना, 'द्रौपदी के पाँच पति होंगे' यह सुनकर राजा द्रुपद का उस बारे में चिन्ता करना, पाँच इन्द्रों की अद्भुत कथा, द्रौपदी का दैवी अद्भुत विवाह, पाण्डवों के पास धृतराष्ट्र के भेजे विदुर का दूत बनकर जाना, विदुर का पहुँचना, श्रीकृष्ण से भेंट, पाण्डवों का खाण्डवप्रस्थ में रहना, आधा राज्य पाना, नारदजी की आज्ञा से द्रौपदी के पास हर एक पाण्डव के रहने का समय निर्दिष्ट होना, सुन्द-उपसुन्द की कथा, प्रार्थी ब्राह्मण की गाय की
१२० रक्षा के लिए शस्त्र लेने को अर्जुन का भीतर जाना और वहाँ एकान्त में द्रौपदी के साथ युधिष्ठिर को बैठे देखने पर प्रतिज्ञा के अनुसार प्रायश्चित्त करने को अर्जुन का वन जाना, वनवास के समय नाग-कन्या उलूपी की अर्जुन से भेंट, पवित्र तीर्थ देखना, बभ्रुवाहन की उत्पत्ति, तपस्वी ब्राह्मण के शाप से 'ग्राह' हो गई पाँच अप्सराओं का शाप से छुटकारा, प्रभास तीर्थ में श्रीकृष्ण और अर्जुन की भेंट, द्वारका में मोहित अर्जुन का रीझी हुई सुभद्रा को—श्रीकृष्ण की अनुमति से—हर ले जाना, यौतुक लेकर श्रीकृष्ण का खाण्डवप्रस्थ को जाना, सुभद्रा के गर्भ से महापराक्रमी अभिमन्यु का जन्म, द्रौपदी के पुत्रों की उत्पत्ति, जलविहार के लिए यमुना-तट पर गये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन को चक्र और धनुष मिलना, खाण्डव वन का जलना, मय दानव और साँप का अग्नि से छुटकारा और शार्ङ्गी के गर्भ से महर्षि मन्दपाल की सन्तान की उत्पत्ति का वर्णन है। इस आदिपर्व में
३१ दो सौ सत्ताईस अध्याय और आठ हज़ार आठ सौ चौरासी श्लोक कहे हैं।

**दूसरा** सभापर्व है। इसमें पाण्डवों की सभा का बनना, दरबार, देवताओं की सभाओं में जानेवाले नारदजी के मुँह से लोकपालों की सभाओं का वर्णन, राजसूय यज्ञ का आरम्भ, जरासन्ध का वध, गिरिव्रज में क़ैद राजाओं का श्रीकृष्ण के हाथों छुटकारा, पाण्डवों का दिग्विजय, उपहार लेकर राजाओं का राजसूय यज्ञ में उपस्थित होना, अर्घ्यदान के लिए झगड़ा कर रहे शिशुपाल का वध, यज्ञ में पाण्डवों के ऐश्वर्य को देखकर दुःखित और क्रोधित दुर्योधन का भीमसेन के द्वारा उपहास, इसी कारण से दुर्योधन के मन में क्रोध उत्पन्न होना, कपट से जुआ

खेलना, छली शकुनि का जुए में धर्मराज को जीतना, चतुर धृतराष्ट्र का जुए के समुद्र में डूब रही परम दुःखित अपनी बहू द्रौपदी को उबारना और पाण्डवों को भी छुटकारा देना, यह देखकर दुर्योधन का फिर जुआ खेलने के लिए युधिष्ठिर को बुलाना, युधिष्ठिर का फिर हारना और भाइयों सहित वन को जाना कहा गया है। इस पर्व में अठहत्तर अध्याय और दो हज़ार पाँच सौ ग्यारह श्लोक हैं। १४१

**तीसरा** वनपर्व है। इस पर्व में वन को जा रहे युधिष्ठिर के पीछे पुरवासियों का जाना, आश्रित ब्राह्मण-मण्डली के भरण-पोषण के लिए अन्न और ओषधियों के वास्ते धौम्य के उपदेश के अनुसार युधिष्ठिर का सूर्य की उपासना करना, सूर्य के प्रसाद से इच्छा की पूर्ति होना, हित की बात कह रहे विदुर को धृतराष्ट्र का अपने यहाँ से निकाल देना, विदुर का पाण्डवों के पास जाना और फिर धृतराष्ट्र के बुलाने से उनके पास जाना, कर्ण के उत्साहित करने से वनवासी पाण्डवों को मारने के लिए दुष्ट दुर्योधन का सलाह करना, दुर्योधन के दुष्ट भाव को जानकर व्यासदेव का वहाँ उपस्थित होना और दुर्योधन को वन जाने से रोकना, सुरभी का उपाख्यान, महात्मा मैत्रेय का आना, धृतराष्ट्र को कर्त्तव्य सुझाना और फिर दुर्योधन और धृतराष्ट्र को शाप देना, भीमसेन के हाथों किर्मीर का वध, यादवों और पाञ्चालों का आना, शकुनि ने छल करके युधिष्ठिर को जीत लिया ५०
है—यह सुनकर श्रीकृष्णसहित यादवों और पाञ्चालों के बिगड़ने पर अर्जुन का उनको शान्त करना, द्रौपदी का श्रीकृष्ण के आगे रोना, श्रीकृष्ण का द्रौपदी को समझाना, सौभवध-कथन, पुत्र सहित सुभद्रा को श्रीकृष्ण का द्वारका को ले जाना और द्रौपदी के पुत्रों को धृष्टद्युम्न का पाञ्चाल देश को ले जाना, मनोहर द्वैतवन में पाण्डवों का प्रवेश, धर्मराज युधिष्ठिर के साथ द्रौपदी और भीमसेन का संवाद, पाण्डवों के पास व्यासजी का आना और युधिष्ठिर को 'प्रतिस्मृति' विद्या देना, व्यासजी के जाने पर पाण्डवों का काम्यक वन को जाना, दिव्य अस्त्र पाने के लिए अर्जुन का वनगमन, किरात-वेषधारी महादेव के साथ अर्जुन का युद्ध, लोकपालों के दर्शन और उनसे दिव्य अस्त्रों की प्राप्ति, दिव्य अस्त्र के लिए अर्जुन का इन्द्रलोक को जाना, यह सुनकर धृतराष्ट्र का चिन्तित होना, ऋषिश्रेष्ठ बृहदश्व के दर्शन, उनके आगे कष्ट में दुःखित युधिष्ठिर का रोना, करुणरस-पूर्ण नल-दमयन्ती की १६०
कथा, बृहदश्व से युधिष्ठिर का 'अक्षहृदय' नाम की विद्या प्राप्त करना, देवलोक से पाण्डवों के पास लोमश मुनि का आना और स्वर्ग में ठहरे हुए अर्जुन के समाचार कहना, अर्जुन के कहने से पाण्डवों की तीर्थयात्रा, तीर्थों की पवित्रता और तीर्थयात्रा के फल का वर्णन, नारदजी की पुलस्त्य-तीर्थ-यात्रा, पाण्डवों का भी वहाँ पहुँचना, दो कुण्डल देकर कर्ण का इन्द्र के हाथ से छुटकारा, गयासुर के यज्ञ का वर्णन, अगस्त्य की कथा, वातापि राक्षस का विनाश, पुत्र उत्पन्न करने के लिए लोपामुद्रा के साथ अगस्त्य का विवाह करना, कुमार-व्रतधारी ऋष्यशृङ्ग ऋषि का वृत्तान्त, परशुरामचरित, सहस्रबाहु अर्जुन का विनाश, हैहय-वंश का संहार, यादवों के साथ

प्रभास तीर्थ में पाण्डवों की भेंट, सुकन्या की कथा, शर्याति राजा के यज्ञ में भृगुवंशी च्यवन
७० ऋषि का अश्विनीकुमारों को सोमरस का भाग देना, अश्विनीकुमारों का प्रसन्न होकर च्यवन मुनि को जवान बना देना, मान्धाता राजा की कथा, जन्तु नाम के राजकुमार का वृत्तान्त, सोमक राजा का बहुत पुत्रों के लिए [ पुत्र की बलि देकर ] यज्ञ करना, सौ पुत्रों की प्राप्ति, अद्भुत बाज़ और कबूतर की कथा, इन्द्र-अग्नि और धर्म के द्वारा राजा शिबि की परीक्षा, अष्टावक्र-संवाद, जनक के यज्ञ में तार्किकशिरोमणि वरुण के पुत्र 'वन्दी' के साथ अष्टावक्र का शास्त्रार्थ और वन्दी की हार, अष्टावक्र का समुद्र को जीतकर अपने पिता 'कहोड' का उद्धार करना, यवक्रीत और महात्मा रैभ्य की कथा, पाण्डवों का गन्धमादन पर्वत को जाना, नर-नारायण के आश्रम में ठहरना, द्रौपदी के कहने से गन्धमादन पर भीमसेन का सुगन्धपुष्प लेने जाना, राह में कदलीवन के बीच हनुमान् का मिलना, कमल-पुष्प के लिए भीमसेन का कमल के वृक्षों को उजाड़ना, उसके लिए मणिमान् आदि यक्षों और राक्षसों के साथ भीमसेन का घोर युद्ध होना,
१८० भीमसेन का जटासुर राक्षस को मारना, पाण्डवों का वृषपर्वा राजर्षि से मिलना, आर्ष्टिषेण ऋषि के आश्रम में जाना और वहाँ रहना, द्रौपदी का भीमसेन को उत्साहित करना, भीमसेन का कैलास पर्वत को जाना, वहीं बली मणिमान् आदि यक्षों के साथ भीमसेन का घोर युद्ध होना, पाण्डवों को कुबेर के दर्शन मिलना, वहीं अर्जुन का भाइयों से मिलना, दिव्य अस्त्र प्राप्त करके इन्द्र के लिए अर्जुन का हिरण्यपुरवासी निवातकवच, पौलोम और कालकेय असुरों से युद्ध तथा वध, धर्मराज के आगे अर्जुन का अस्त्र दिखाने का उद्योग, नारदजी का आकर रोकना, गन्धमादन पर्वत से पाण्डवों का उतरना, वन में भारी अजगर का भीमसेन को लपेट लेना, युधिष्ठिर का आकर साँप के प्रश्नों के उत्तर देकर भीमसेन को छुड़ाना, पाण्डवों का फिर काम्यक वन को आना, वहाँ
९० पाण्डवों से मिलने के लिए श्रीकृष्ण का आना, मार्कण्डेय का वृत्तान्त, मार्कण्डेय के मुँह से राजा वेन के पुत्र राजा पृथु की कथा सुनना, सरस्वती और गरुड़ का वृत्तान्त, मत्स्यचरित, मार्कण्डेय-चरित का इतिहास, इन्द्रद्युम्न की कथा, धुन्धुमार की कथा, पतिव्रता-वृत्तान्त, अङ्गिरा ऋषि की कथा, द्रौपदी और सत्यभामा का संवाद, पाण्डवों का द्वैतवन में फिर आना, घोषयात्रा में गन्धर्वों का दुर्योधन को पकड़ ले जाना और अर्जुन का उसे छुड़ा लाना, युधिष्ठिर का मृगस्वप्न देखकर काम्यक वन को फिर लौट जाना, विस्तार से व्रीहिद्रोण की कथा, दुर्वासा की कथा, जयद्रथ का द्रौपदी को हरना, भीम का उसके पीछे दौड़ना, भीमसेन का उसके सिर में पाँच चोटियाँ रखना,
२०० विस्तार से रामचरित्र का वर्णन, सावित्री का उपाख्यान, कर्ण का इन्द्र को कुण्डल देना, इन्द्र का प्रसन्न होकर केवल एक ही का वध करनेवाली शक्ति कर्ण को देना, आरणेय उपाख्यान, धर्म का युधिष्ठिर को कर्त्तव्य का उपदेश करना और वरदान पाकर पाण्डवों का पश्चिम दिशा को जाना कहा गया है। इस पर्व में दो सौ उनहत्तर अध्याय और ग्यारह हज़ार छः सौ चौंसठ श्लोक हैं।

**चौथा** विराटपर्व है। इसमें विराट नगर में पहुँचकर मसान में बड़े भारी शमी के पेड़ पर पाण्डवों का अपने-अपने शस्त्र छिपाकर रखना, राजभवन में छिपकर रहना, कामबाण-पीड़ित कीचक का द्रौपदी को सताना और भीमसेन का उसे मार डालना, पाण्डवों का पता लगाने के लिए दुर्योधन के भेजे हुए जासूसों का दूर-दूर जाकर ख़ाली हाथ लौट आना, त्रिगर्त्त देश के क्षत्रियों का विराट राजा की गायें हरकर ले चलना, विराट राजा का उनसे विकट युद्ध, विराट राजा का शत्रु के हाथ में बन्दी होना, भीमसेन का उन्हें छुड़ाना, पाण्डवों का गायें हाँककर लौटा लाना, फिर कौरवों का विराट राजा का गोधन हरना, अर्जुन का सबको जीतकर गोधन लौटाना और विराट का अभिमन्यु के लिए अपनी कन्या उत्तरा का दान कहा गया है। इस पर्व में सड़सठ अध्याय और दो हज़ार पचास श्लोक हैं।

**पाँचवाँ** उद्योगपर्व है। इसमें जब पाण्डव उपप्लव्य नगर में थे उस समय युद्ध में सहायता पाने की इच्छा से श्रीकृष्ण के पास अर्जुन और दुर्योधन दोनों का जाना, प्रार्थना सुनकर श्रीकृष्ण का यह कहना कि एक ओर मैं केवल मन्त्री-रूप से रहूँगा, पर युद्ध न करूँगा और एक ओर मेरी एक अक्षौहिणी नारायणी सेना रहकर युद्ध करेगी, जिसकी जो इच्छा हो ले लो; दुर्बुद्धि दुर्योधन का नारायणी सेना लेना, अर्जुन का श्रीकृष्ण को लेना, दुर्योधन का पाण्डवों की ओर आ रहे मद्र देश के राजा शल्य को राह में ही उपहार आदि देकर प्रसन्न करना, शल्य के वरदान देने पर दुर्योधन का उनसे युद्ध में सहायता करने की प्रार्थना करना, शल्य का उसे स्वीकार करके पाण्डवों के पास जाना, शल्य का पाण्डवों के पास रहना और युधिष्ठिर को आश्वासन देना, इन्द्र के विजय की कथा, दुर्योधन के पास युधिष्ठिर का पुरोहित को भेजना, पुरोहित के मुँह से वृत्रासुर के वध और इन्द्र के विजय की कथा सुनकर शान्ति चाहनेवाले प्रतापी धृतराष्ट्र का विदुर की सलाह से सञ्जय को दूत बनाकर पाण्डवों के पास भेजना, श्रीकृष्ण और पाण्डवों के उद्योग की ख़बर पाकर चिन्ता से धृतराष्ट्र की नींद हट जाना, विदुर का राजा धृतराष्ट्र को विचित्र हित के वचन सुनाना, शोक से आतुर चिन्तित धृतराष्ट्र को सनत्सुजात ऋषि का अध्यात्मविद्या का ज्ञान सिखाना, सबेरे सभा में सञ्जय का अर्जुन और श्रीकृष्ण के "एक प्राण दो देह" वाले भाव का कहना, दया करके सन्धि की इच्छा से स्वयं श्रीकृष्ण का दूत बनकर हस्तिनापुर में आना, दोनों पक्षों की भलाई के लिए मेल चाहनेवाले श्रीकृष्ण के कहने पर दुर्योधन का अनादर दिखाना, दम्भोद्भव का उपाख्यान, मातलि का अपनी कन्या के लिए वर की खोज करना, गालव ऋषि का वृत्तान्त, विदुला का अपने पुत्र को उपदेश, कर्ण और दुर्योधन के दुष्ट विचार को जानकर श्रीकृष्ण का राजाओं को अपना योगबल दिखलाना, श्रीकृष्ण का कर्ण को अपने रथ पर बिठलाकर उपाय के साथ अपनी ओर मिलाने की चेष्टा करना और कर्ण का गर्व के साथ उसे अस्वीकार करना, हस्तिनापुर से उपप्लव्य नगर को आकर श्रीकृष्ण का पाण्डवों से सब हाल

कहना, श्रीकृष्ण के वचन सुनकर सलाह करके पाण्डवों का युद्ध के लिए तैयार होना, युद्ध के लिए हस्तिनापुर से रथ, घोड़े, हाथी आदि का बाहर निकलना, सेना की संख्या, युद्ध आरम्भ
२४० होने के पहले दिन युधिष्ठिर के पास धृतराष्ट्र का उलूक दूत को भेजना, रथ-संख्या, अतिरथ-संख्या और अम्बा का उपाख्यान कहा गया है। इस पर्व में एक सौ छियासी अध्याय और छः हज़ार छः सौ अट्ठानवे श्लोक हैं। इस पर्व में सन्धि और विग्रह की कथा है।

**छठा** भीष्मपर्व है। इसमें सञ्जय के मुँह से जम्बूखण्ड-वर्णन, युधिष्ठिर की सेना का विषाद, दस दिन का घोर युद्ध, श्रीकृष्ण का युद्ध के आरम्भ में होनेवाले अर्जुन के मोह को कर्म-योग के उपदेश और युक्तियों से दूर करना, युधिष्ठिर के हितू श्रीकृष्ण का चाबुक हाथ में लिये रथ से कूदकर भीष्म को मारने के लिए दौड़ना, श्रीकृष्ण का वाक्य-बाण छोड़कर अर्जुन को उत्तेजित करना, शिखण्डी को आगे खड़ा करके पैने बाण मारकर वीर अर्जुन का भीष्म पितामह को रथ से नीचे गिरा देना और भीष्म की शरशय्या का वर्णन है। इस पर्व में व्यासजी
५३ ने एक सौ सत्रह अध्याय और पाँच हज़ार आठ सौ चौरासी श्लोक कहे हैं।

**सातवाँ** द्रोणपर्व है। इस पर्व में द्रोणाचार्य का सेनापतित्व स्वीकार करना, दुर्योधन की प्रसन्नता के लिए द्रोणाचार्य का युधिष्ठिर को पकड़ लेने की प्रतिज्ञा करना, संशप्तकों का अर्जुन को समर से दूर हटा ले जाना, समर में भगदत्त राजा के सुप्रतीक नामक हाथी का आक्रमण, अर्जुन के हाथ से भगदत्त और उसके हाथी का विनाश, जयद्रथ आदि कई महारथियों का मिलकर अकेले शूर बालक अभिमन्यु को मारना, अभिमन्यु के मरने पर क्रोधित अर्जुन का सात अक्षौहिणी सेना मारकर जयद्रथ का वध करना, युधिष्ठिर की आज्ञा से सात्यकि
२६० और भीमसेन का अर्जुन को खोजने के लिए कौरवों की सेना के बीच घुसना, नव करोड़ में से बचे हुए संशप्तकों का वध, धृतराष्ट्र के पुत्रों का वध, नारायणी सेना का संहार, गोपालसेना का विनाश,—अलम्बुष, श्रुतायु, जलसन्ध, सोमदत्त, विराट, महारथी द्रुपद और घटोत्कच आदि वीरों का वध, युद्ध में द्रोणाचार्य के मारे जाने पर क्रोधित अश्वत्थामा का नारायणास्त्र चलाना, रुद्र के माहात्म्य का विस्तृत वर्णन, व्यासजी का आना और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के प्रताप का वर्णन है। इसी पर्व में लगभग सभी वीर राजाओं की मृत्यु का वर्णन है। इसमें एक सौ सत्तर
६९ अध्याय और आठ हज़ार नव सौ नव श्लोक हैं।

**आठवाँ** कर्णपर्व है। इसमें शल्य को कर्ण का सारथी बनाना, त्रिपुर-संहार का इतिहास, कर्ण और शल्य की कहा-सुनी, कर्ण की हँसी उड़ाने के लिए शल्य का हंस-काक-कथा कहना, अश्वत्थामा के हाथों पाण्ड्य का वध, दण्ड और दण्डसेन की मृत्यु, सब धनुषधारियों के आगे द्वन्द्वयुद्ध में कर्ण के हाथों युधिष्ठिर के प्राणों पर सङ्कट, युधिष्ठिर और अर्जुन का परस्पर क्रोध, अनुनय-विनय करके श्रीकृष्ण का अर्जुन के क्रोध को शान्त करना, युद्धभूमि में दुःशासन की

छाती पर चढ़कर उसका रक्त पीकर भीमसेन का अपनी प्रतिज्ञा पूरी करना और अर्जुन के हाथों कर्ण के मारे जाने का वृत्तान्त कहा गया है। इस पर्व में उनहत्तर अध्याय और चार हज़ार नव सौ चौंसठ श्लोक हैं। २७९

**नवाँ** शल्यपर्व है। इसमें शल्य को सेनापति बनाना, कुमार का उपाख्यान, शल्य का सेनापति के पद पर अभिषेक, अनेक वीरों के युद्ध का वर्णन, कौरव पक्ष के प्रधान-प्रधान वीरों की मृत्यु, युधिष्ठिर के हाथ से शल्य की मृत्यु, सहदेव के हाथ से शकुनि का वध, सब सेना मर जाने पर दुर्योधन का कुण्ड में घुसकर जल को बाँधकर रहना, बहेलियों से भीमसेन को दुर्योधन का पता मिलना, युधिष्ठिर के ताने के वचनों से उत्तेजित होकर मानी दुर्योधन का जल से बाहर निकलना, भीमसेन के साथ गदायुद्ध, बीच में ही बलराम का आना, सरस्वती और अन्यान्य तीर्थों की पवित्रता का वर्णन, और घोर गदायुद्ध में भीमसेन का दुर्योधन की जाँघ तोड़ना कहा गया है। इसमें उनसठ अध्याय और तीन हज़ार दो सौ बीस श्लोक हैं। ९०

**दसवाँ** सौप्तिकपर्व है। इसमें पाण्डवों के चले जाने पर युद्धभूमि में जाँघ टूट जाने से पड़े हुए दुर्योधन के पास सन्ध्या के समय कृपाचार्य, कृतवर्मा और अश्वत्थामा का आना, रक्त से भरे हुए युद्धभूमि में पड़े दुर्योधन को देखकर क्रोधित महारथी अश्वत्थामा का यह प्रतिज्ञा करना कि "मैं धृष्टद्युम्न आदि सब पाञ्चालों को और मन्त्री कृष्ण सहित पाण्डवों को मारे बिना कवच नहीं उतारूँगा", तीनों महारथियों का दुर्योधन से विदा होकर सूर्यास्त के समय वन में प्रवेश करना, बरगद के पेड़ के नीचे सबका विश्राम करना, उस पेड़ पर उल्लू पक्षी के द्वारा बहुत से कौओं का विनाश होते देखकर पिता के वध को स्मरण करके क्रोधित अश्वत्थामा का उसी तरह बेखटके रात को सो रहे पाञ्चालों का विनाश करने के लिए इरादा करना, पाण्डवों के शिविर के पास अश्वत्थामा का पहुँचना, वहाँ द्वार पर आकाश को छू रहे घोर रूपवाले राक्षस का देख पड़ना, राक्षस के द्वारा अपने अस्त्र-शस्त्रों को निष्फल होते देखकर अश्वत्थामा का महादेव की आराधना करना, कृपाचार्य और कृतवर्मा के साथ अश्वत्थामा का शिविर के भीतर घुसना, रात को बेखटके सो रहे धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चालों को—उनके परिवारों को—और द्रौपदी के पुत्रों को ३००
मारना, श्रीकृष्ण की सहायता से पाँचों पाण्डवों सहित सात्यकि का बचना, और सबका अश्वत्थामा के हाथ से संहार, धृष्टद्युम्न के सारथी से पाण्डवों को इस अनर्थ की ख़बर मिलना, पुत्र-भाई आदि के शोक से पीड़ित द्रौपदी का पाण्डवों के पास खाना-पीना छोड़कर धन्ना देना, द्रौपदी के कहने से उनका प्रिय करने के लिए गदा हाथ में लेकर महापराक्रमी भीम का गुरुपुत्र अश्वत्थामा के पीछे जाना, भीमसेन के डर से व्याकुल अश्वत्थामा का—श्रीकृष्ण का कहना न मानकर—पाण्डवों के विनाश के लिए ब्रह्मास्त्र छोड़ना, अर्जुन का अपने अस्त्र के द्वारा उस अस्त्र को शान्त करना, अश्वत्थामा और व्यास आदि का परस्पर अभिशाप और अश्वत्थामा से मणि लेकर

विजयी पाण्डवों का द्रौपदी को देना कहा गया है। इस पर्व में अठारह अध्याय और आठ ११ सौ सत्तर श्लोक कहे गये हैं।

**ग्यारहवाँ** करुणरस-पूर्ण स्त्रीपर्व है। इसमें पुत्रशोक-पीड़ित अन्धे राजा धृतराष्ट्र का श्रीकृष्ण की लाई हुई लोहे की बनी भीमसेन की प्रतिमा को छाती से दबाकर चूर-चूर कर डालना, संसार के मोह को छुड़ानेवाले मोक्षमार्ग को सुझानेवाले वचन कहकर विदुर का धृतराष्ट्र को



समझाना, रनिवास की स्त्रियों सहित शोकार्त्त धृतराष्ट्र का समरभूमि देखने जाना, वीर-पत्नियों का बहुत ही करुण विलाप, गान्धारी और धृतराष्ट्र का क्रोधित और मूर्च्छित होना, स्त्रियों का युद्ध में पीठ न दिखलानेवाले शूर क्षत्रिय पुत्र, भाई, पिता आदि की लाशों को देखना, श्रीकृष्ण का पुत्र-पौत्र आदि के वध से दुःखित गान्धारी के क्रोध को शान्त करना, धर्मराज युधिष्ठिर का युद्ध में मरे हुए वीर राजाओं की लाशों का विधिपूर्वक क्रिया-कर्म करवाना और मृतकों को तिलाञ्जलि देते समय कुन्ती का कर्ण के जन्म की छिपी बात प्रकट करना कहा गया है। इस पर्व में बहुत ही करुणा का भाव भरा हुआ है। इसे पढ़कर पत्थर का हृदय भी पसीज उठता है। इसमें ३२४ सत्ताईस अध्याय और सात सौ पचहत्तर श्लोक हैं।

**बारहवाँ** शान्तिपर्व है। इसमें पिता-भाई-पुत्र-सम्बन्धी-मामा आदि का वध कराने के कारण राजा युधिष्ठिर को वैराग्य होना और शरशय्या पर पड़े हुए विज्ञवर भीष्म पितामह के पास जाकर उनके मुँह से राजधर्म, आपद्धर्म और मोक्षधर्म सुनना कहा गया है। शान्तिपर्व पढ़ने या सुनने से मनुष्य की बुद्धि बढ़ती है। [इसलिए सभी को यह पर्व पढ़ना-सुनना और जानना ३१ चाहिए। ] इसमें तीन सौ उनतीस अध्याय और चौदह हज़ार सात सौ बत्तीस श्लोक हैं।

**तेरहवाँ** अनुशासनपर्व है। इसमें भीष्म के मुँह से धर्म का निश्चय सुनकर युधिष्ठिर का स्वस्थ होना, धर्म-अर्थ के सम्पूर्ण व्यवहार का वर्णन, तरह-तरह के दानों के फलों का वर्णन, दान के योग्य पात्रों का वर्णन, दान की विधि, सदाचार-निर्णय, सत्य की महिमा का वर्णन, गाय और ब्राह्मण के गौरव का वर्णन, और देश-काल के अनुसार धर्म के तत्त्व का रहस्य कहा गया है। इसी में भीष्म के स्वर्गारोहण का वृत्तान्त है। इसमें सब प्रकार के धर्मों का अनुशासन है। इस पर्व में व्यासदेव ने एक सौ छियालीस अध्याय और आठ हज़ार श्लोक कहे हैं।

**चौदहवाँ** अश्वमेधपर्व है। इसमें संवर्त्त और मरुत्त का उपाख्यान, युधिष्ठिर को सोने का ख़ज़ाना मिलना, परीक्षित का जन्म, पहले गर्भ में अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र की आग से जले

हुए बालक का श्रीकृष्ण की कृपा से जीना, अश्वमेध के घोड़े की रक्षा करते हुए अर्जुन का सब राजाओं को जीतना, चित्राङ्गदा के गर्भ में अपने ही वीर्य से उत्पन्न अपने ही पुत्र बभ्रुवाहन से अर्जुन का युद्ध, उसमें अर्जुन के प्राणों पर सङ्कट पड़ना और अश्वमेध में नकुल का वृत्तान्त कहा गया है। इस पर्व में व्यासदेव ने एक सौ तीन अध्यायं और तीन हज़ार तीन सौ बीस श्लोक कहे हैं। ३४४

**पन्द्रहवाँ** आश्रमवासिकपर्व है। इसमें गान्धारी को साथ लेकर विदुर सहित राजा धृतराष्ट्र का वन को जाना, उनको जाते देखकर गुरुजन की सेवा करनेवाली कुन्ती का भी उनके पीछे जाना, वन में व्यासदेव की कृपा से धृतराष्ट्र का युद्ध में मरे हुए और फिर स्वर्गलोक से आये हुए पुत्र-पौत्रों और अन्य वीर राजाओं को देखना, इस अद्भुत लीला को देखकर शोक को छोड़कर गान्धारी सहित धृतराष्ट्र की परमपद-प्राप्ति, धर्म का आश्रय लेकर विदुर और सञ्जय का भी परलोकवास,



युधिष्ठिर को नारदजी के दर्शन होना और उन्हीं से यादवों के विनाश की ख़बर मिलना कहा गया है। इस अद्भुत पर्व में व्यासजी ने बयालीस अध्याय और एक हज़ार पाँच सौ छः श्लोक कहे हैं। ५३

**सोलहवाँ** दारुण मौसलपर्व है। इसमें खारी समुद्र के किनारे ब्रह्मशाप से मूढ़ होकर मदिरा पीने के उपरान्त वज्रस्वरूप सेंठे उखाड़-उखाड़कर यादवों का परस्पर प्रहार करना और उसी में सबका कट मरना, अन्त को श्रीकृष्ण-बलराम की परमपद-प्राप्ति, अर्जुन का द्वारका में आकर उसे यादवों से ख़ाली देखकर खिन्न और शोक से व्याकुल होना, कुछ स्वस्थ होने पर अर्जुन का वसुदेव, श्रीकृष्ण, बलराम आदि मुख्य-मुख्य यादवों का अन्तकर्म कराकर बचे हुए वृद्ध, बालक, स्त्री आदि यादवों को द्वारका से ले जाना, राह में काम पड़ने पर कष्ट के समय गाण्डीव धनुष का शक्तिहीन होना, अस्त्र-शस्त्रों का काम न देना, इसके उपरान्त यादवों की स्त्रियों का छिन जाना और प्रभाव का नित्य न रहना देखकर अर्जुन को वैराग्य होना और व्यासजी की आज्ञा से अर्जुन का युधिष्ठिर के पास आकर उन्हें संन्यास की सलाह देना कहा गया है। इसमें आठ अध्याय और तीन सौ बीस श्लोक व्यासजी ने कहे हैं।

**सत्रहवाँ** महाप्रस्थानिकपर्व है। इसमें राज्य त्यागकर पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों का द्रौपदी सहित महाप्रस्थान करना, लोहित सागर के किनारे अग्नि से भेंट, अग्नि के कहने से अर्जुन का गाण्डीव धनुष फेंक देना, स्त्री का और भाइयों का गिर पड़ना देखकर भी उधर बिना देखे ही
३६९ युधिष्ठिर का जाना कहा गया है। इसमें तीन अध्याय और तीन सौ बीस श्लोक हैं।

**अठारहवाँ** अद्भुत स्वर्गारोहणपर्व है। इसमें युधिष्ठिर को ले जाने के लिए स्वर्ग से दिव्य रथ का आना, युधिष्ठिर का अपने साथी कुत्ते के बिना उस पर चढ़ना अस्वीकार करना,



धर्म में युधिष्ठिर की अटल श्रद्धा देखकर धर्म का कुत्ते के रूप को छोड़कर प्रकट होना, धर्म के साथ युधिष्ठिर का स्वर्ग पहुँचना, स्वर्ग-दूत का कौशल से युधिष्ठिर को नरक के दर्शन कराना, वहाँ पर युधिष्ठिर को भाइयों का आर्त्तनाद सुन पड़ना, युधिष्ठिर का कातर होना, धर्म और इन्द्र का यह कहकर युधिष्ठिर को धैर्य देना कि "विषय-भोग करने से अवश्य यह अवस्था प्राप्त होती है", फिर युधिष्ठिर का आकाशगङ्गा में स्नान करके मनुष्य-शरीर त्याग करना, उसके बाद अपने धर्म से जीते हुए स्वर्ग में पहुँचकर धर्मराज युधिष्ठिर का इन्द्र से सादर सत्कार पाकर प्रसन्न होना कहा गया है। इसमें पाँच अध्याय और दो सौ नव श्लोक हैं।

सम्पूर्ण महाभारत में ये अठारह पर्व हैं। परिशिष्ट में हरिवंश और भविष्यपर्व हैं। इनमें बारह हज़ार श्लोक व्यासजी ने कहे हैं। यह भारत के सब पर्वों का संग्रह पर्व-संग्रहाध्याय कहा गया है। अठारह अक्षौहिणी सेना लड़ने के लिए जमा हुई थी और अठा-
८। रह दिन तक यह महायुद्ध हुआ था।

वेद, वेदाङ्ग और सब उपनिषदों का मर्म अच्छी तरह जानने पर भी इस भारत उपाख्यान को जाने बिना मनुष्य चतुर पण्डित नहीं कहा जा सकता। इसमें व्यासजी ने धर्म-शास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, तीनों शास्त्रों का सारांश निकालकर रख दिया है। जैसे कोयल की आवाज़ सुन लेने पर कौए की कठिन वाणी अच्छी नहीं लगती वैसे ही इस उपाख्यान को सुन लेने पर और कुछ सुनने को जी नहीं चाहता। जैसे पञ्चभूतों से ये तीनों लोक बनते हैं वैसे ही इस उत्तम इतिहास से कवियों की बुद्धि को स्फूर्त्ति मिलती है। ऋषियो, जैसे चार प्रकार

के प्राणियों का आधार अन्तरिक्ष है, वैसे ही सब पुराणों का आधार यह इतिहास है। जैसे अज्ञेय मानसिक व्यापार सब इन्द्रियों को विषयों की ओर लगाते हैं वैसे ही यह भारत भी दान-धर्म आदि के अनुष्ठान और शम-दम आदि गुणों को फैलाता है। जैसे भोजन के बिना शरीर नहीं रह सकता, वैसे भारत के बिना पृथ्वी पर कोई कथा नहीं है। 'जैसे उन्नति चाहनेवाले अनुचर ऊँचे घराने के स्वामी की सेवा करते हैं, वैसे ही सब कविवर इस इतिहास का पठन-पाठन करते रहते हैं। जैसे चारों आश्रमों में गृहस्थ आश्रम प्रशंसनीय है, वैसे ही सब काव्यों में यह श्रेष्ठ है। हे ऋषियो, [ मैं प्रार्थना करता हूँ कि ] सदा आपकी बुद्धि धर्म में लगी रहे। एक धर्म ही परलोक में प्राणी का साथी है। प्राणपण से धन और स्त्रियों की सेवा करने पर भी वे नित्य नहीं रहते और इसी से वे कुछ नहीं हैं। व्यासजी के मुँह से निकले हुए अद्वितीय, पवित्र, पापहारी, कल्याणरूप भारत की कथा को जो सुनता है, उसे पुष्कर तीर्थ में नहाने की कोई ज़रूरत नहीं। ब्राह्मण लोग दिन को इन्द्रियों से जो कुछ पाप करते हैं वह सायङ्काल को भारत का पाठ करने से छूट जाता है और मन-वाणी-काया से जो पाप रात को होता है वह सबेरे पाठ करने से नष्ट हो जाता है। जो कोई सोने से सींग मढ़ाकर सौ गायें वेदपाठी विज्ञ ब्राह्मण को नित्य देता है और जो कोई पवित्र भारत की कथा को नित्य सुनता है, दोनों को तुल्य फल मिलता है। जैसे समुद्र के पार जाने के लिए जहाज़ या नाव आदि का सहारा लेना होता है वैसे ही इस पर्वसंग्रहाध्याय को पहले सुन लेने से सुविस्तृत महाभारत ग्रन्थ सुगम हो जाता है। ३-९६

---

## पौष्यपर्व

## तीसरा अध्याय

जनमेजय को सरमा का शाप। धौम्य के शिष्यों की कथा।
उत्तङ्क की कथा। पौष्य राजा का उपाख्यान

सूतपुत्र उग्रश्रवा बोले—परीक्षित के पुत्र जनमेजय श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन नामक तीन भाइयों के साथ बहुत दिनों में समाप्त होनेवाला यज्ञ कर रहे थे। एक दिन एक कुत्ता यज्ञ-मण्डप के भीतर घुस आया। जनमेजय के भाइयों ने उस कुत्ते को मारा। वह रोता हुआ अपनी माता देवताओं की कुतिया सरमा के पास गया। सरमा ने रो रहे अपने बेटे से पूछा—तू क्यों रो रहा है? किसने तुझको मारा? उसने अपनी माता से कहा—मुझको जनमेजय के भाइयों ने मारा है। माता ने फिर उससे कहा कि अवश्य तूने कुछ अपराध किया होगा;

इसी से जनमेजय के भाइयों ने तुझको मारा है। कुत्ते ने उत्तर दिया कि मैंने कुछ अपराध नहीं किया, न यज्ञ के हवि ( घी ) की ओर मैंने देखा और न उसमें मुँह डाला। यह



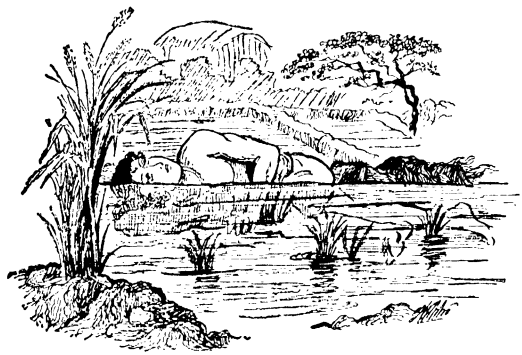
सुनकर पुत्र के दुःख से दुखी उसकी माता सरमा उस यज्ञ में आई जहाँ जनमेजय अपने भाइयों के साथ दीक्षा लिये बैठे थे। उसने क्रोध करके कहा—मेरे इस लड़के ने कुछ अपराध नहीं किया, न यज्ञ के हवि ( घी ) को देखा और न उसमें मुँह डाला; फिर इसे किसलिए मारा ? जनमेजय के भाइयों ने इसका कुछ जवाब नहीं दिया। तब सरमा ने कहा—तुमने अकारण बिना अपराध के मेरे पुत्र को मारा है, इसलिए तुमको अचानक भय प्राप्त होगा। देवताओं की कुतिया सरमा के शाप को सुनकर राजा जनमेजय को बहुत ही घबराहट और विषाद हुआ।

वह यज्ञ समाप्त होने पर जनमेजय हस्तिनापुर में आकर शाप से छुड़ाने में समर्थ एक पुरोहित की खोज करने लगे। राजा जनमेजय एक दिन अपने ही राज्य की सीमा में शिकार के लिए गये। वहाँ वन में उनको एक आश्रम देख पड़ा। उसमें श्रुतश्रवा ऋषि रहते थे। उनके पुत्र का नाम सोमश्रवा था। वे तपस्या कर रहे थे। जनमेजय ने उन ऋषि के पास जाकर उनको प्रणाम किया और उनसे उनके पुत्र को अपना पुरोहित बनाने के लिए माँगा। ऋषि को नमस्कार करके जनमेजय ने कहा—भगवन्, मैं चाहता हूँ कि आपके यह पुत्र मेरे पुरोहित हों। ऋषि ने कहा—हे जनमेजय, यह मेरा पुत्र मेरे वीर्य से साँपिन में पैदा हुआ है। वह साँपिन मेरे वीर्य को पी गई थी। उसकी कोख में यह महातपस्वी बालक उत्पन्न हुआ है। यह सब शापों को शान्त कर सकता है—केवल भगवान् शिव के शाप को नहीं मिटा सकता। इसकी एक गुप्त प्रतिज्ञा यह है कि कोई ब्राह्मण आकर कुछ भी माँगे तो उसे वही देना। यदि तुम इसके इस व्रत का निर्वाह कर सकते हो तो इसे ले जाओ। जनमेजय ने कहा—भगवन्, मुझे स्वीकार है। ये जो कहेंगे वही किया जायगा।

मनमाने पुरोहित को साथ लेकर राजा जनमेजय लौट आये। उन्होंने आकर अपने भाइयों से कहा—मैं इन मुनिवर को अपना आचार्य बनाकर लाया हूँ। इनकी जब जो आज्ञा हो तब उसे तुम बिना सोचे-विचारे पूर्ण कर देना। जनमेजय के भाई सब तरह

मुनिवर की आज्ञा का पालन करने लगे। राजा जनमेजय ने तक्षशिला पर चढ़ाई की और उस देश को जीत लिया। २०

इसी समय में ( प्रसङ्गवश यहाँ दूसरी कथा शुरू होती है ) अपोद ऋषि के पुत्र धौम्य ऋषि थे। उनके तीन शिष्य थे—उपमन्यु, आरुणि और वेद। एक दिन पाञ्चाल देश के रहनेवाले अपने शिष्य आरुणि से धौम्य ने कहा—जाओ, क्यारियों की मेड़ बाँधो [ जिसमें खेत का पानी बाहर न निकल जाय ]। आरुणि ने वहाँ जाकर बहुत चेष्टा की, परन्तु वे क्यारियों के पानी को रोक न सके। तब उन्हें एक उपाय सूझ पड़ा। वे स्वयं पानी की नाली में आड़े होकर लेट रहे। उनके यों करने पर पानी रुक रहा।



इधर आरुणि को न देखकर एक दिन धौम्य ने अन्य शिष्यों से पूछा कि पाञ्चाल देश का आरुणि कहाँ गया ? उपमन्यु और वेद ने कहा—भगवन्, आपने ही तो उसे खेत की नाली का पानी रोकने को भेजा है। यह सुनकर धौम्य ने कहा—तो चलो, देखें वहाँ वह अब तक क्या कर रहा है। खेत में पहुँचकर धौम्य आरुणि का नाम लेकर पुकारने लगे—हे आरुणि पुत्र, तुम कहाँ हो ! आओ। गुरु के शब्द को सुनकर आरुणि उस नाली से एकदम उठकर खड़े हो गये और वहाँ से गुरु के पास आये। आरुणि ने कहा—गुरुजी, मैं यहीं नाली में पानी को रोकने के लिए पड़ा हुआ था। मेड़ बाँधने की मैंने बहुत चेष्टा की, किन्तु नहीं बाँध सका, इसी से यह उपाय किया। आपके पुकारने का शब्द सुनते ही एकदम क्यारी से उठकर आपके पास चला आया हूँ। मैं प्रणाम करता हूँ। कहिए, क्या आज्ञा है। प्रसन्न होकर धौम्य ने कहा—तुम क्यारी को विदीर्ण करके उठ आये ३०
हो, इससे तुम्हारा नाम आज से उद्दालक होगा। तुमने कष्ट सहकर भी मेरी आज्ञा का पालन किया, इससे तुम्हारा कल्याण होगा; सब वेद और धर्मशास्त्र तुम्हारे अन्तःकरण में भासित हो जायगा। गुरु से यों आशीर्वाद पाकर उद्दालक अपनी इच्छा के अनुसार किसी देश को चले गये।

धौम्य ऋषि के दूसरे शिष्य उपमन्यु थे। गुरु ने उनको गायें चराने की और उनकी रखवाली करने की आज्ञा दी। वे दिन भर वन में गायें चराते और शाम को उन्हें लाकर

गुरु के घर बाँध देते थे। एक दिन शाम को उपमन्यु गुरु के पास गये और प्रणाम करके आगे खड़े हो गये। गुरु ने उनको खूब मोटा-ताज़ा देखकर पूछा—बेटा उपमन्यु, तुम क्या खाते-पीते हो, जिससे इतने मोटे हो रहे हो? उपमन्यु ने उत्तर दिया—मैं भिक्षा माँगकर खाता हूँ। गुरु ने कहा—मुझे अर्पण किये बिना भिक्षा-भोजन करना उचित नहीं है। "अच्छी बात है" कहकर उपमन्यु ने जो भिक्षा माँगी सो सब गुरु के आगे रख दी। गुरु ने भिक्षा में मिली हुई सब सामग्री ले ली। [ इसी तरह नित्य भिक्षा की सामग्री गुरु ले लेने लगे। उपमन्यु भी दिन भर गायें चराकर शाम को उन्हें ले आते थे। ] एक दिन फिर उपमन्यु ने आकर गुरु को प्रणाम किया। तब भी उपमन्यु को वैसा ही मोटा देखकर धौम्य ने कहा—बेटा उपमन्यु, मैं तुम्हारी भिक्षा की सब सामग्री ले लेता हूँ। अब तुम क्या खाते हो? उपमन्यु ने कहा—पहली बार भिक्षा माँगकर मैं आपको अर्पण कर देता हूँ और दुबारा भिक्षा माँगकर आप खाता हूँ। गुरु ने कहा—तुम्हारा यों जीविका चलाना न्याय-विरुद्ध है। इससे और भिक्षा माँगकर जीविका चलानेवालों की जीविका हरने का पाप होता है। तपस्वी के लिए यह लोभ अच्छा नहीं। उपमन्यु ने कहा—अच्छा, अब मैं ऐसा नहीं करूँगा। उपमन्यु फिर अपना गाय चराने का काम करने लगे। फिर एक दिन उपमन्यु को प्रणाम करके आगे खड़े देखकर धौम्य ने कहा—बेटा उपमन्यु, मैं तुम्हारी भिक्षा की सामग्री सब ले लेता हूँ और तुम दुबारा भिक्षा भी नहीं माँगते हो, तब भी तुम वैसे ही मोटे-ताज़े देख पड़ते हो। इसका क्या कारण है? उपमन्यु ने कहा—भगवन्, मैं इन गायों का दूध पी लेता हूँ। गुरु ने कहा—यह तो ठीक नहीं। गायें मेरी हैं। मेरी आज्ञा के बिना उनका दूध न पीना। उपमन्यु ने यह भी स्वीकार कर लिया और पहले की तरह अपना काम करने लगे। फिर एक दिन प्रणाम करके आगे खड़े हुए उपमन्यु को वैसा ही मोटा-ताज़ा देखकर धौम्य ने पूछा—बेटा उपमन्यु, अब तुम न भिक्षा का अन्न खाते हो, न दुबारा भिक्षा माँगते हो और न गायों का दूध पीते हो, फिर भी मोटे हो! अब काहे से जीविका चलाते हो? उपमन्यु ने कहा—आचार्य, मैं आजकल बछड़ों के मुँह से गिरे फेने को पीकर जीता हूँ। धौम्य ने कहा—यह ठीक नहीं। बछड़े तुम पर कृपा करके बहुत सा फेना उगलते हैं और अपना पेट भरने में कृपणता करते हैं। इसलिए तुम फेना भी न पियो। उपमन्यु ने फेना पीना भी बन्द कर दिया और निराहार रहकर गायों का पालन करने लगे। भिक्षा खाना, दुबारा भिक्षा माँगना, दूध पीना, फेना पीना आदि सब छोड़ देने पर उपमन्यु भूख के मारे मदार के पत्ते खाकर गायों की रक्षा करने लगे। खारी-तीखे-कड़वे-रूखे और हृदय में जलन पैदा करनेवाले मदार के पत्ते खाने से उपमन्यु की आँखों में गर्मी छा गई; वे अन्धे हो गये। न देख पड़ने के कारण घूमते-घूमते वे एक कुएँ में गिर पड़े। उस दिन सूर्य अस्त हो गये, किन्तु उपमन्यु वन से नहीं आये।

अब गुरु ने शिष्यों से कहा कि मैंने उपमन्यु को बार-बार रोका है। जान पड़ता है, कुछ भी खाने को न पाकर क्रोध करके वह कहीं चल दिया है, इसी से अब तक नहीं आया। चलो, उसे खोजना चाहिए। यह कहकर शिष्यों के साथ वन में जाकर धौम्य ऊँचे स्वर से पुकारने लगे—बेटा, उपमन्यु, कहाँ हो ? आओ।

ऋषि के शब्द को सुनकर उपमन्यु ने कुएँ के भीतर से चिल्लाकर कहा—भगवन्, मैं यहाँ कुएँ में गिर पड़ा हूँ। गुरु ने पूछा—तुम कुएँ में कैसे गिर पड़े ? उपमन्यु ने कहा—गुरुजी, मदार के पत्ते खाने से मैं बिलकुल अन्धा सा हो गया और इसी से अचानक इस कुएँ में गिर पड़ा। गुरु ने कहा—उपमन्यु, तुम देववैद्य अश्विनीकुमारों की स्तुति करो; वे प्रसन्न होकर तुम्हारी आँखें सुधार देंगे। गुरु की आज्ञा से उपमन्यु इस प्रकार वेदवाक्यों से अश्विनीकुमारों की स्तुति करने लगे—

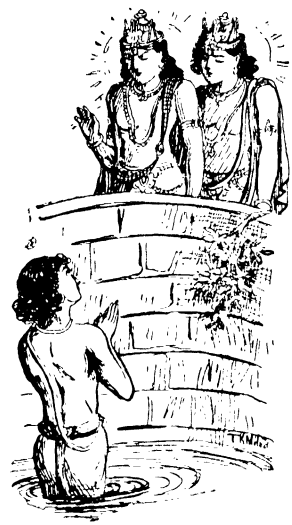


"हे अश्विनीकुमारो, मैं वाणी से तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम सृष्टि के पहले विद्यमान थे। तुम पूर्वज हो। तुम विचित्र प्रपञ्चाकार से भासित होते हो। तप (ज्ञान) के सामर्थ्य से तुम अनन्त रूप धारण करते हो। तुम सूर्य से उत्पन्न दिव्य हो; शरीर-रूप वृक्ष पर पक्षी (जीवात्मा, परमात्मा) रूप से आरूढ़ हो। तुम शोभन गतिवाले और रजोगुण से रहित हो। विश्वभुवन को तत्त्वगत विक्षेप शक्ति से तुम सञ्चालित करते हो। तुम लोग हिरण्मय ( ब्रह्म ) पक्षी-स्वरूप अर्थात् सुन्दर और सङ्गहीन हो; तुम्हीं में सबका लय हो जाता है; तुम स्वयं असत्य और अक्षयशीलता के अभावरूप (पारमार्थिक) सत्य हो; तुम्हारी अच्छी नाक है अर्थात् तुम शरीर-धर्म से युक्त होने पर भी काल को जीत चुके हो। तुम सूर्य को उत्पन्न करके उसके द्वारा सफ़ेद और काले (दिन-रात रूप) धागों से (संवत्सररूप) कपड़ा बुनते हो। उसी कपड़े के द्वारा तुम वेग से दो मार्गों (देवयान और पितृयान) को स्थापित करते हो। अर्थात् कर्मफल का भोग करने के लिए तुम्हीं उन लोकों के मार्गप्रद और समय के प्रवर्तक हो। परमात्मा के (कालशक्तिरूप) बल से ग्रसित बत्ती को, सुखरूपी जीव-पक्षी के सौभाग्य (मोक्ष) के लिए, तुमने मुक्त कर दिया है। अविद्याग्रस्त, रागादि विषयों में फँसे हुए मूढ़ व्यक्ति जब तक इन्द्रियों की ओर झुके रहते हैं तब तक शुद्ध और निर्दोष तुम लोगों को—जीवात्मारूप—देहधारी समझते हैं। अतएव राग आदि जीतने पर ही मोक्षप्राप्ति हो सकती है। अहोरात्ररूप ३६० (कामधेनुएँ) ६०
गायें ( संवत्सररूप ) १ बछड़ा जनती हैं। तत्त्व जानने की इच्छा रखनेवाले लोग जिस बछड़े के द्वारा भिन्न फलवाली अनेक क्रियाओं में तत्त्वज्ञान जानने की इच्छा रूप दूध दुह लेते हैं उस बछड़े

को तुम्हीं उत्पन्न करते और तुम्हीं तपाते (संहार करते) हो। उस परिवर्तनशील, अजर, अक्षय, बिना 'नेमि' के काल-रूप चक्र को तुमने नियुक्त किया है जिसकी एक 'नाभि' (वर्ष) और 'प्रधि' में ( दिन और रातरूप) ७२० अरे लगे हुए हैं। उल्लिखित कालचक्र [ उस माया द्वारा प्रवर्तित है जिस ] ने इस लोक और परलोक की प्रजा को अभिभूत कर रक्खा है अतएव त्याज्य है। जन्म आदि के दुःख से ग्रस्त मुझे तुम उस चक्र से अलग कर दो जिसमें कि १२ (राशिरूप) अरे हैं, ( ऋतुरूपी ) छः 'नाभि' हैं और ( वर्षरूप ) १ अक्ष है। वह चक्र ऋतु ( कर्मफल ) का आधार है; उसमें विश्वेदेवा ( कालाभिमानी देवता ) आसक्त हैं। हे अश्विनीकुमारो, तुम प्रपञ्चात्मक हो, तुम इन्दु और अमृत ( कर्म और उसके फलस्वरूप ऐहिक तथा पारलौकिक भोग-सामग्री ), दास और पत्नी आदि के प्रपञ्च को हटा दो। साधन-सम्पत्ति के उत्कर्ष को अनादि अविद्या के कारण छुड़ाकर तुम इन्द्रियों को विषयस्पर्श के हर्ष से विषयभूमि में चलाते हो। हे अश्विनी-कुमारो, तुमने सृष्टि के पहले दस दिशाओं को, आकाश को और सबमें समान रूप से वर्त्तमान सूर्य को उत्पन्न किया। दिशा और काल के अनुसार ऋषि लोग कर्म किया करते हैं; देवता और मनुष्य अपने अधिकारानुसार ऐश्वर्य का उपभोग करते हैं। हे अश्विनीकुमारो, तुम विविध रङ्गों (लाल आदि) के (परस्पर मिश्रण से उत्पन्न विचित्र आकार=) विकार से विश्व को आकार देते हो। वही रङ्ग समग्र भुवन को उत्पन्न करते हैं। जीव अंश होने पर भी देहेन्द्रिय आदि विकारवान् होकर घूमते फिरते हैं। देवता, मनुष्य और पशु आदि भूमण्डल पर रहते हैं। मैं प्रसिद्ध अश्विनीकुमारों की पूजा करता हूँ। तुम प्रकृति के कार्यों को—उनके भीतर रहकर—धारण करते हो। तुम अमृत हो, नित्यमुक्त हो और कर्मफल को बढ़ाते हो। तुम्हारे बिना वाक् आदि के अभिमानी देवता अपने-अपने विषय को प्राप्त नहीं कर सकते। हे अश्विनीकुमारो, तुम जीवनार्थ मेरी आँखें खोल दो—आँखों के पर्दे को खोल दो। तुम माता-पिता हो; तुम मुँह से अन्नरूप गर्भ प्राप्त करते हो, फिर उससे इस गर्भ—अचेतन देह—को इन्द्रिय द्वारा उत्पन्न करते हो ( पिता शुक्र-रूप से और माता शोणित-रूप से )। उत्पन्न होते ही गर्भ माता को भक्षण करता—भोग करता—दूध पीता है। तुम्हारे गुण अपार हैं। तुम्हारी स्तुति भला मैं क्या कर सकता हूँ। मेरी आँखें जाती रही हैं। राह में भटककर मैं इस कुएँ में गिर पड़ा हूँ। तुम शरणागत की रक्षा करनेवाले हो। मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ।"

सूत के पुत्र कहते हैं कि उपमन्यु ने इसी तरह और भी ऋचाएँ पढ़कर उनकी स्तुति की। स्तुति करने से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमार वहाँ पर आये और प्रसन्न होकर उपमन्यु से कहने लगे—यह मीठा पुआ है, इसे तुम खा लो। उपमन्यु ने कहा—आप लोगों का कहना ठीक
७० है। परंतु मैं यह पुआ गुरु को अर्पण किये बिना खाना नहीं चाहता। अश्विनीकुमारों ने कहा—तुम्हारे गुरु ने भी पहले हमारी इसी तरह स्तुति की थी। हमने प्रसन्न होकर उनको

पुआ दिया था। उन्होंने अपने गुरु को अर्पण किये बिना वह पुआ खा लिया था। तुम भी वैसा ही करो। उपमन्यु ने अस्वीकार करके कहा—आप क्षमा करें, मैं गुरु को अर्पण किये बिना किसी तरह इस पुए को नहीं खा सकता। अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर कहा—हम तुम्हारी इस निष्कपट गुरुभक्ति को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। तुम्हारे गुरु के लोहे के दाँत हैं; किन्तु तुम्हारे सुवर्ण के दाँत होंगे। तुम्हारी दृष्टि भी पहले की ऐसी हो जायगी। तुम्हारा कल्याण होगा।



इस प्रकार अश्विनीकुमारों की कृपा से दृष्टि प्राप्त करके उपमन्यु अपने गुरु के पास आये और आकर गुरु को प्रणाम किया। उपमन्यु ने गुरु से सब हाल कहा। गुरु सुनकर उन पर प्रसन्न हुए। गुरु ने कहा—अश्विनी-कुमारों के कहने के अनुसार तुम्हारा कल्याण होगा। सब वेदों का अर्थ तुम्हें भासित हो जायगा; सब धर्मशास्त्रों का तत्त्व तुम जान जाओगे। सूत-पुत्र कहते हैं कि इस प्रकार उपमन्यु की गुरुभक्ति की परीक्षा हो गई।

धौम्य के तीसरे शिष्य वेद थे। गुरु ने उनसे कहा—बेटा वेद, कुछ समय तक तुम यहाँ गुरुकुल में रहकर मेरी सेवा करो। तुम्हारा भला होगा। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करके वेद बहुत दिनों तक गुरुकुल में रहकर गुरु की सेवा करने लगे। गुरु उन्हें सदा बैल की तरह काम में लगाये रहते थे। वे जाड़ा, गर्मी, भूख-प्यास और दुःख सहकर भी सदा गुरु पर भक्ति बनाये रहे। बहुत दिनों में गुरुदेव उन पर प्रसन्न हुए। गुरु की प्रसन्नता से वेद को कल्याण प्राप्त हुआ; वे सर्वज्ञ हो गये। यह वेद की गुरुभक्ति की परीक्षा हुई। ८०

ब्रह्मचर्य समाप्त होने पर, गुरु की आज्ञा से गुरुकुल छोड़कर, वेद ने गृहस्थाश्रम ग्रहण किया। इनके भी तीन शिष्य हुए। वे अपने शिष्यों से कुछ नहीं कहते थे; न कुछ काम कराते थे, न गुरु-सेवा कराते थे। वे गुरुकुल-वास के दुःख को जानते थे, इसलिए शिष्यों से कुछ कष्ट का काम न करा सकते थे। एक दिन राजा जनमेजय और राजा पौष्य दोनों ने वेद ऋषि के पास आकर उनसे अपना आचार्य होने के लिए प्रार्थना की।

यजमान को यज्ञ कराने के लिए वेद जब जाने लगे तब उन्होंने अपने शिष्य उत्तङ्क से कहा—देखो, मेरे घर में जो आवश्यकता पड़े उसे तुम सर्वथा पूर्ण करना। यह कहकर वे चले गये। उत्तङ्क ऋषि गुरु के घर, उनकी आज्ञा का पालन करते हुए, रहने लगे। एक दिन ऋषि-

पत्नियों ने उत्तङ्क को बुलाकर कहा—तुम्हारे गुरु की स्त्री ऋतुस्नान कर चुकी हैं और तुम्हारे गुरु घर में नहीं हैं। उनका ऋतुस्नान जिसमें निष्फल न हो वही तुम करो। वे बहुत चिन्तित हैं।

उत्तङ्क ने उन स्त्रियों से कहा—स्त्रियों के कहने से मैं यह अकार्य नहीं कर सकता। गुरु ने मुझसे यह नहीं कहा है कि तुम अकार्य भी करना। कुछ समय के बाद उत्तङ्क के गुरु परदेश से लौटकर घर आये। उत्तङ्क का सब हाल सुनकर वेद उन पर बहुत प्रसन्न हुए। प्रसन्न होकर उन्होंने पूछा—बेटा उत्तङ्क! कहो, तुम्हारा क्या प्रिय मैं करूँ। तुमने धर्मपूर्वक मेरी सेवा की है। इससे मुझमें और तुममें परस्पर प्रीति बढ़ी है। मैं आशीर्वाद देता हूँ तुम्हारी सब कामनाएँ पूरी हों। अब तुम जाओ। उत्तङ्क ने कहा—गुरुजी, मैं आपका क्या प्रिय



६० करूँ? क्योंकि वृद्ध लोग कहते हैं कि गुरु यदि दक्षिणा नहीं लेता और शिष्य यदि गुरु-दक्षिणा नहीं देता तो गुरु-शिष्य में परस्पर विरोध होता है और दो में से एक की मृत्यु अवश्य हो जाती है। इसलिए आप मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या गुरु-दक्षिणा दूँ। गुरु ने कहा—अच्छा, बेटा उत्तङ्क! और कुछ दिन गुरुकुल में रहो, फिर कहूँगा। कुछ दिन गुरुकुल में और रहने के बाद उत्तङ्क ने गुरु से आकर कहा—आज्ञा कीजिए, मैं क्या वस्तु अर्पण करूँ। वेद ने कहा—बेटा उत्तङ्क, तुम मुझसे कई बार गुरु-दक्षिणा माँगने के लिए कह चुके हो; अच्छा जाकर अपनी गुरुआनी से पूछो। वे जो कहें वही गुरु-दक्षिणा देना। उत्तङ्क ने गुरुपत्नी के पास जाकर कहा—माता, गुरु ने मुझे घर जाने की आज्ञा दे दी है। मैं घर जाने के पहले गुरु-दक्षिणा देकर गुरु के ऋण को चुका जाना चाहता हूँ। गुरुजी ने आपसे पूछने को कहा है। आप बतलाइए, मैं क्या उपहार लाकर सेवा में अर्पण करूँ।

गुरु की स्त्री ने कहा—अच्छा, तुम पौष्य राजा के पास जाओ और उनसे वे कुण्डल माँग लाओ जिन्हें उनकी रानी पहने हुए हैं। आज के चौथे दिन पुण्यकर्म का उत्सव होगा। मैं अपने कानों में वही कुण्डल पहनकर ब्राह्मणों को भोजन परोसना चाहती हूँ। यदि तुम यह काम कर सके तो तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा तुम्हारा कल्याण नहीं।

"बहुत अच्छा" कहकर उत्तङ्क वहाँ से कुण्डल लाने को चल दिये। रास्ते में उन्होंने देखा कि एक बड़े भारी बैल की पीठ पर बैठा हुआ बड़ा भारी पुरुष उनसे कह रहा है कि हे

उत्तङ्क, तुम इस बैल का यह गोबर खाओ। उत्तङ्क ने ऐसा करना न चाहा। तब फिर उस पुरुष ने कहा—हे उत्तङ्क, इसे तुम खा लो, विचार न करो। पहले तुम्हारे गुरु ने भी इस बैल का गोबर खाया है। उत्तङ्क ने बहुत अच्छा कहकर उस बैल के गोबर और मूत्र को चीखा। इसके बाद जल्दी में उठकर जल से हाथ-मुँह धोते-धोते ही वे चल दिये। १०१

उत्तङ्क ने जाकर राजा पौष्य को देखा। उन्होंने आशीर्वाद देकर कहा—राजन्, मैं कुछ माँगने के लिए तुम्हारे पास आया हूँ। राजा ने अभिवादन करके कहा—भगवन्, मैं आपका सेवक पौष्य हूँ। आज्ञा दीजिए, क्या करूँ। उत्तङ्क ने कहा—गुरु की स्त्री को गुरु-दक्षिणा में देने के लिए मैं तुम्हारी रानी के दोनों कुण्डल माँगने आया हूँ। रानी से वे कुण्डल मुझको ला दीजिए। पौष्य ने कहा—आप अन्तःपुर के भीतर चले जाइए और रानी से माँग लीजिए। उत्तङ्क महल के भीतर गये। पर उन्हें वहाँ रानी न देख पड़ी। उत्तङ्क ने लौटकर पौष्य से कहा—राजन्, ब्राह्मण से झूठ बोलना आप ऐसे लोगों के लिए उचित नहीं। आपकी रानी रनिवास में कहीं मुझे नहीं देख पड़ती।



राजा ने दम भर सोचकर कहा—आप अवश्य जूठे हैं। याद कर लीजिए। पतिव्रता रानी के दर्शन जूठे-मुँह, अपवित्र अवस्था में, नहीं मिल सकते। अपवित्र पुरुष को वे देख नहीं पड़तीं। उत्तङ्क ने सोचकर कहा—राह में बैल का गोबर और मूत्र चीखकर जल्दी से उठकर कुल्ला करते-करते ही मैं चल दिया था। राजा ने कहा—भगवन्, यही आपकी भूल है। उठकर या चलते-चलते कुल्ला करना न करने के बराबर है। आप सचमुच इस समय अपवित्र हैं। तब उत्तङ्क ने मुँह और हाथ-पैर धोये। फिर पूर्व की ओर मुँह करके बैठकर स्वच्छ, शीतल और हृदय तक पहुँचने भर के जल से तीन बार चुपचाप आचमन किया और दो बार मार्जन किया। इसके उपरान्त जल से इन्द्रियों की शुद्धि करके फिर उत्तङ्क रनिवास के भीतर गये। वहाँ जाकर उन्होंने रानी को देखा। रानी ने देखते ही उठकर प्रणाम किया। फिर स्वागत-सत्कार करके रानी ने कहा—भगवन्, आज्ञा कीजिए, आप क्या चाहते हैं। १०

उत्तङ्क ने कहा—मैं गुरुपत्नी को गुरु-दक्षिणा में देने के लिए ये तुम्हारे कुण्डल चाहता हूँ। उत्तङ्क के सरल भाव से प्रसन्न होकर रानी ने सोचा कि ये सुपात्र हैं और ब्राह्मण को

विमुख भी नहीं करना चाहिए। रानी ने वे कुण्डल अपने कानों से उतारकर उत्तङ्क को दे दिये और कहा कि नागराज तक्षक इन कुण्डलों को हरने की ताक में लगा रहता है। तुम सावधानी के साथ इनको ले जाना। उत्तङ्क ने रानी से कहा—आप निश्चिन्त रहें, नागराज तक्षक इन्हें मेरे हाथ से नहीं छीन सकता। रानी से यों कहकर उनसे बिदा होकर उत्तङ्क राजा पौष्य के पास आये। अब उन्होंने राजा से कहा—हे पौष्य, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ।

राजा पौष्य ने कहा—भगवन्, सुपात्र ब्राह्मण बहुत दिनों में कहीं जाकर मिलते हैं। आप सर्वगुणसम्पन्न अतिथि हैं। मैं श्राद्ध में भोजन कराकर आपका सत्कार करना चाहता हूँ। कुछ देर ठहरिए। उत्तङ्क ने कहा—मैं ठहरा हुआ हूँ। जो अन्न इस समय तैयार हो वही मँगाओ। राजा ने भोजन मँगाकर ऋषि के आगे परोस दिया। उत्तङ्क ने देखा, वह भोजन ठण्डा है और उसमें बाल पड़े हुए हैं। उसे अपवित्र देख कुपित होकर उत्तङ्क ने पौष्य से कहा—तुमने मुझको अपवित्र अन्न परोसा है, इससे तुम अन्धे हो जाओगे। राजा पौष्य ने भी कहा—आपने पवित्र अन्न को दूषित बतलाया, इससे आपके कोई सन्तान न होगी। इस पर उत्तङ्क ने कहा—तुमने एक तो अपवित्र अन्न दिया और फिर उलटकर शाप भी दिया; यह तुमने उचित नहीं किया। इस अन्न को जाँचकर देखो, मेरा कहना सच है कि नहीं। पौष्य ने देखा, वह अन्न सचमुच अपवित्र है और उसमें बाल भी पड़े हुए हैं। राजा ने सोचा, बाल खोलकर स्त्री ने यह अन्न परोसा है और यह देर का बना हुआ भी है। अतएव वे इस प्रकार कहकर उत्तङ्क ऋषि को प्रसन्न करने लगे—भगवन्, यह बिना जाने मुझसे अपराध बन पड़ा है; मैंने यह दूषित ठण्डा अन्न लाकर आपको परोसा है। मैं आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हुआ यह चाहता हूँ कि मुझे अन्धा न होना पड़े।

उत्तङ्क ने कहा—मेरा कहा झूठ नहीं हो सकता। तुम अन्धे अवश्य होगे, पर शीघ्र ही तुम्हारा अन्धापन जाता रहेगा। मैं भी चाहता हूँ कि तुमने जो शाप मुझको दिया है, उससे मुझे मुक्त कर दो। तब राजा पौष्य ने उत्तङ्क से कहा—मैं अपने शाप को मेट नहीं सकता। मेरा क्रोध अभी तक शान्त नहीं हुआ। क्या आप यह नहीं जानते कि ब्राह्मण का हृदय मक्खन के समान मुलायम होता है, किन्तु उसकी वाणी छुरे की पैनी धार के समान तीक्ष्ण होती है। परन्तु क्षत्रिय का हृदय छुरे की धार के समान तीक्ष्ण और वाणी मक्खन के समान कोमल होती है। मेरा हृदय तीक्ष्ण है। इस कारण मैं अपने दिये शाप को अन्यथा नहीं कर सकता। आप जाइए। उत्तङ्क ने कहा—तुमने अन्न को अपवित्र देखकर मुझसे क्षमा-प्रार्थना की और मुझे प्रसन्न करके शाप शान्त करा लिया। उसके पहले अन्न को पवित्र समझकर तुमने मुझको शाप दिया था कि तुम पवित्र अन्न को दूषित बतलाते हो, इससे तुम्हारे सन्तान न होगी। अब अन्न सचमुच अपवित्र निकला, इस कारण तुम्हारा यह शाप मुझको

लग ही नहीं सकता। अब मैं जाता हूँ। इतना कहकर दोनों कुण्डल लेकर उत्तङ्क वहाँ से चल दिये। राह में उन्होंने देखा कि एक नङ्गा फ़क़ीर ( पाखण्डी ) उनके पीछे-पीछे छिपता हुआ आ रहा है—कभी देख पड़ता है और कभी छिप जाता है। उत्तङ्क स्नान-सन्ध्या करने के लिए एक सरोवर के किनारे, पृथ्वी पर, रानी के दिये कुण्डल रखकर जल के भीतर घुसे। इसी बीच वह फ़क़ीर जल्दी से उन कुण्डलों को उठाकर भागा। स्नान-सन्ध्या से निबटकर—देवता, गुरु आदि की वन्दना करके—उत्तङ्क वेग से उस फ़क़ीर के पीछे दौड़े।



वह फ़क़ीर असल में तक्षक नाग था। बहुत ही समीप पहुँचकर उत्तङ्क ने तक्षक को पकड़ लिया। ज्योंही उत्तङ्क ने पकड़ लिया त्योंही तक्षक ने उस रूप को छोड़कर अपना असली रूप धारण कर लिया। एकाएक वहाँ की पृथ्वी फट गई और तक्षक उसी बिल में घुसकर नागलोक में अपने घर पहुँच गया। उत्तङ्क को रानी का कहना याद हो आया। उन्होंने भी तक्षक के पीछे जाना चाहा। वे उस बिल को अपनी लाठी से खोदने लगे परन्तु उसमें सफलता नहीं प्राप्त कर सके। ब्राह्मण के क्लेश को देखकर इन्द्र ने अपने वज्र को भेजा। कहा, जाओ इस ब्राह्मण की सहायता करो। तब वज्र ने उस लकड़ी में प्रवेश करके बिल के द्वार को खोदकर चौड़ा कर दिया। उस बिल के द्वार से प्रवेश करके उत्तङ्क नागलोक में पहुँचे। उन्होंने देखा, वहाँ अनेक प्रकार के विचित्र महल बने हैं, इमारतें खड़ी हैं, ऊँचे-ऊँचे फाटक लगे हुए हैं, सर्वत्र सुन्दर विहार-भवन शोभायमान हैं। वहाँ पहुँचकर उत्तङ्क ऋषि इस प्रकार नागों की स्तुति करने लगे— ३०

"जिन सर्पों के राजा का नाम ऐरावत है, जो सर्प पवन-सञ्चालित और बिजली से सुशोभित मेघमाला की तरह युद्धस्थल में शोभा पाते हैं, जो सर्प सुन्दर रूपवाले, बहुत तरह के रूपवाले और कानों में विचित्र कुण्डल धारण किये हैं, जो ऐरावत नागराज के वंश में उत्पन्न सर्प सूर्य की तरह स्वर्गलोक में प्रकाशमान हुए और जो नाग गङ्गा के उत्तर तट पर रहते हैं, उन सबकी मैं स्तुति करता हूँ। सूर्य-किरणों की सेना में ऐरावत नागराज के सिवा और कौन विचर सकता है? मैं ऐरावत को प्रणाम करता हूँ। नागराज धृतराष्ट्र जब चलते हैं तब अट्ठाइस हज़ार आठ साँप उनके पीछे चलते हैं। जो सर्प धृतराष्ट्र के अनुचर हैं, जो सर्प दूर रहते हैं और जो ऐरावत नाग के बड़े भाई हैं, उन सबको मैं प्रणाम करता हूँ। जो नागराज तक्षक

पहले कुरुक्षेत्र में और फिर खाण्डव वन में रहते थे उनकी मैं, कुण्डल पाने के लिए, स्तुति करता हूँ। इक्षुमती नदी के निकट कुरुक्षेत्र में बसनेवाले, नित्य साथ रहनेवाले, तक्षक और अश्वसेन
१४२ नाम के दोनों नागों को मैं प्रणाम करता हूँ। नागराज होने के लिए सूर्य से प्रार्थना करते हुए कुरुक्षेत्र में रहनेवाले तक्षक के छोटे पुत्र श्रुतसेन को भी मैं प्रणाम करता हूँ।"

इस प्रकार प्रार्थना और स्तुति करने पर भी जब उत्तङ्क को कुण्डल नहीं मिले तब उन्हें बड़ा चिन्ता हुई। अब उत्तङ्क ने देखा कि दो स्त्रियाँ करघे में काले और सफ़ेद डोरों से वस्त्र बुन रही हैं। फिर देखा, छः कुमार बारह आरेवाले एक सुन्दर चक्र को घुमा रहे हैं। फिर देखा, एक दर्शनीय घोड़ा खड़ा है और उसके पास एक पुरुष भी है। महर्षि उत्तङ्क उन सभी की इन मन्त्रमय श्लोकों से स्तुति करने लगे—



"चौबीस शुक्ल-कृष्ण-पक्षरूप पर्वों से युक्त इस स्थिर काल-चक्र में तीन सौ साठ दिन-रात्रिरूपी डोरे लगे हैं। छः ऋतुएँ कुमाररूप से इसे घुमाया करती हैं। ये विश्वरूपिणी दो युवतियाँ दिन-रात्रिरूप श्वेत-कृष्ण डोरों को फिराकर संवत्सररूप वस्त्र को बुनती हैं और सब प्राणियों और भुवनों का सञ्चालन करती हैं। वज्र के अधिकारी, त्रिलोक के रक्षक, वृत्रासुर और नमुचि को मारनेवाले महात्मा इन्द्र वही कृष्ण वस्त्र धारण करके संसार में सत्य और मिथ्या का विचार करते हैं। समुद्र से उत्पन्न अश्वरूपी अग्नि जिनका वाहन है उन जगदीश्वर त्रिलोकीनाथ पुरन्दर को मैं प्रणाम करता हूँ।"

इस स्तुति से प्रसन्न होकर घोड़े के पास खड़े हुए पुरुषरूपधारी इन्द्र ने कहा—हे उत्तङ्क,
५० मैं इस स्तोत्र से तुम पर प्रसन्न हूँ। तुम क्या चाहते हो? माँगो। उत्तङ्क ने कहा—मैं यही चाहता हूँ कि सब नाग मेरे अधीन हो जायँ। तब उस पुरुष ने फिर कहा—तुम इस घोड़े के मल-द्वार में मुँह लगाकर ज़ोर से फूँक मारो।

उत्तङ्क ने वही किया। तब उस घोड़े के शरीर के छिद्रों से धुएँ सहित अग्नि की ज्वालाएँ निकलने लगीं। उस आग से नागलोक के जलने का ढङ्ग देख डरकर तक्षक नाग अपने भवन से निकला और वे कुण्डल उत्तङ्क को देकर कहने लगा—आप ये कुण्डल लीजिए। उन कुण्डलों को लेकर उत्तङ्क सोचने लगे कि आज वह चौथा पुण्यकर्म का दिन है और मैं इतनी दूर पर पड़ा हुआ हूँ! वहाँ आज मेरा पहुँचना सर्वथा असम्भव देख पड़ता है। उत्तङ्क को इस प्रकार

चिन्ता करते देखकर वही पुरुष ( इन्द्र ) कहने लगा—हे उत्तङ्क, इसी घोड़े पर चढ़ लो। यह क्षण भर में तुम्हें गुरु के घर पहुँचा देगा। उत्तङ्क उसी घोड़े पर चढ़कर गुरु के घर पहुँच गये।

इधर गुरु की स्त्री स्नान करके चोटी गूँथ रही थीं। चोटी गूँथ चुकने पर भी उत्तङ्क को न आते देखकर गुरुपत्नी ने शाप देना चाहा। इसी बीच में उत्तङ्क ने पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और उनके आगे कुण्डल रख दिये। गुरुपत्नी ने प्रसन्न होकर कहा—पुत्र, तुम बहुत अच्छे समय पर आ गये। अगर तुम्हारे आने में तनिक भी देर होती तो मैं तुमको शाप दे देती। जाओ, तुम्हारा कल्याण हो और तुम्हें सब कामों में सिद्धि प्राप्त हो। उत्तङ्क वहाँ से आशीर्वाद पाकर गुरु के पास आये और उनको प्रणाम किया। गुरु ने स्वागत करके कहा—
आओ बेटा उत्तङ्क, इतनी देर कहाँ लगाई ? उत्तङ्क ने गुरु से कहा—भगवन्, नागराज तक्षक ने १६०
मेरे इस काम में बाधा डाली थी, इसी से नागलोक को गया था। वहाँ मैंने देखा कि दो स्त्रियाँ ताँत में काले और सफ़ेद डोरों से एक कपड़ा बुन रही थीं। गुरुजी, वह क्या था ? उसके बाद मैंने बारह आरेवाला चक्र देखा; उसे छः कुमार घुमा रहे थे। वह क्या था ? एक पुरुष मैंने देखा। वह कौन था ? एक घोड़ा भी बहुत बड़ा देखा। वह कौन था ? राह में जाते समय मैंने एक बड़ा भारी बैल देखा। उस पर एक पुरुष सवार था। उसने मुझसे पुकारकर कहा कि हे उत्तङ्क, तुम इस बैल का गोबर खाओ। तुम्हारे गुरु भी इसका गोबर खा चुके हैं। तब मैंने उसके कहने से उस बैल का गोबर खाया। वह पुरुष और बैल कौन था ? मैं आपके मुँह से इन बातों का रहस्य सुनना चाहता हूँ। उत्तङ्क के यों प्रश्न करने पर गुरु ने कहा—वे दोनों स्त्रियाँ धाता और विधाता अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा थे। वे सफ़ेद और काले डोरे दिन और रातें थीं। छः ऋतुएँ ही वे छः कुमार थे। वह चक्र संवत्सर था। उसके बारह आरे बारहों महीने हैं। वह पुरुष पर्जन्यदेव थे। वह घोड़ा अग्निदेव थे। जाते समय बैल पर चढ़ा हुआ जो पुरुष मिला था वे इन्द्र थे और वह बैल ऐरावत हाथी था। उसका वह गोबर अमृत था। उस अमृत के प्रभाव से ही नागलोक में तुम मरे नहीं। वे भगवान् इन्द्र मेरे मित्र हैं। तुम पर दया करके उन्होंने इस विपत्ति से तुम्हारा उद्धार किया है। उन्हीं की कृपा से कुण्डल लेकर तुम यहाँ आ सके हो। हे पुत्र, तुम अब जाओ। मेरे आशीर्वाद से तुमको कल्याण प्राप्त हो।

गुरु की आज्ञा पाकर उत्तङ्क ऋषि वहाँ से चल दिये। उत्तङ्क को तक्षक नाग पर बड़ा
क्रोध आया। उससे बदला लेने का इरादा करके उत्तङ्क ऋषि हस्तिनापुर की ओर चले। ७०
ब्राह्मणों में श्रेष्ठ उत्तङ्क ऋषि शीघ्र ही हस्तिनापुर में पहुँचकर राजा जनमेजय से मिले। उस समय तक्षशिला पर चढ़ाई करके उसे जीतकर जनमेजय राजा अपने नगर में आये थे और अपनी सभा में मन्त्रियों के बीच विराजमान थे। विधिपूर्वक जय का आशीर्वाद देकर उत्तङ्क

ने जनमेजय से समयानुकूल वचन कहा—हे राजेन्द्र, जो काम अवश्य करना चाहिए उसे छोड़कर बालकों की तरह आप और ही काम में लगे हुए हैं।

सूतपुत्र उग्रश्रवा कहते हैं कि उत्तङ्क के यों कहने पर जनमेजय ने पहले उनको आदर से बिठलाया और फिर उनकी पूजा करके कहा—भगवन्, इस प्रजा का पालन करके मैं क्षत्रियों के धर्म का पालन कर रहा हूँ। मुझे क्या करना है? किस कार्य के लिए आप यहाँ पधारे हैं? बताइए। सूतपुत्र कहते हैं कि राजा के यों कहने पर पुण्यात्मा ब्राह्मण-श्रेष्ठ उत्तङ्क ने कहा—आप मेरा कार्य नहीं, अपना ही काम कीजिए। हे राजेन्द्र, दुष्ट साँप तक्षक ने आपके पिता के प्राण लिये हैं। उससे बाप का बदला लेना आपका सबसे पहला काम है। इस कार्य को करके आप अपने महात्मा पिता के ऋण से अपने को छुड़ाइए। राजा परीक्षित ने उसका कुछ अपराध नहीं किया था। उस दुष्ट ने दुष्टता के मारे उनको डस लिया। गाज गिरने से
१८० जैसे पेड़ गिर पड़ता है वैसे ही उक्त राजा की मृत्यु तक्षक के काटने से हुई। अपने बल के घमण्ड में फूले हुए अधम नाग तक्षक ने आपके पिता के प्राण लेकर बड़ा ही अन्याय किया है। राजन्, काश्यप ऋषि अपने मन्त्रबल से आपके पिता को जिलाने के लिए जा रहे थे, सो उन्हें भी धूर्त्त तक्षक ने धन देकर राह से ही लौटा दिया। महाराज, सर्पयज्ञ का अनुष्ठान करके जलती हुई आग में आप उस पापी नाग की आहुति देकर शीघ्र ही बाप का बदला चुकाइए। बस, यही मेरा उपदेश है। ऐसा करने से आप बाप के ऋण से भी छुटकारा पा जायँगे; साथ ही मेरा भी प्रिय हो जायगा। हे राजन्, मैं गुरु-दक्षिणा के लिए कुण्डल लेने गया था; राह में तक्षक ने विघ्न डालकर मुझे बहुत कष्ट दिया है।

उग्रश्रवा कहते हैं—राजा के क्रोध की आग में उत्तङ्क के वचनों ने घी का काम किया। राजा ने तक्षक पर घोर क्रोध करके दुःखित होकर उत्तङ्क के सामने ही मन्त्रियों से अपने पिता के मरने का हाल पूछा। पिता के मरने का संक्षिप्त वृत्तान्त सुनकर राजा को क्रोध हो आया
१८८ था। मन्त्रियों से विस्तार से वह वृत्तान्त सुनकर वे क्रोध से अधीर हो उठे।

---

## पौलोमपर्व

## चौथा अध्याय

### उग्रश्रवा और शौनक के संवाद से कथा का प्रारम्भ

नैमिषारण्य में कुलपति शौनक के बारह वर्ष में समाप्त होनेवाले यज्ञ में एकत्र मुनियों की मण्डली में उपस्थित रोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा, जिन्होंने पुराण पढ़कर पौराणिक की पदवी पाई है, हाथ जोड़कर मुनियों से बोले—हे मुनियो, [मैंने यह उत्तङ्क का चरित आपसे

कहा। जनमेजय के सर्पयज्ञ करने का दूसरा कारण इसे भी समझना चाहिए।] अब आप लोग क्या सुनना चाहते हैं? मैं क्या सुनाऊँ?

ऋषियों ने कहा—हे सूत, हम जो पूछेंगे उसे तुम फिर कहना। इस समय हमारे पूज्य कुलपति शौनकजी हवन कर रहे हैं। वे देवता, दैत्य, मनुष्य, नाग, गन्धर्व आदि सबकी कथाओं को अच्छी तरह जानते हैं। वे महर्षि विद्वान्, कुलपति, चतुर, व्रतधारी, बुद्धिमान्, शास्त्र के जाननेवाले, सत्यवादी, शान्त, तपस्वी और इस यज्ञ के मुखिया हैं। उनकी राह देखना हमारा कर्त्तव्य है। वे हमारे गुरुवर जब यहाँ आकर विराजमान होंगे तब उन्हीं के प्रश्न के अनुसार आप कथा का आरम्भ कीजिएगा। उग्रश्रवा ने कहा—अच्छी बात है। जब हम सबके गुरु महात्मा शौनकजी आकर बैठेंगे तब उनके प्रश्न के अनुसार कथा का आरम्भ किया जायगा।

शौनकजी जब सब नित्यकर्म कर चुके—वेद-पाठ से देवताओं को और तर्पण से पितरों को प्रसन्न कर चुके—तब यज्ञ-मण्डप में पधारे। वहाँ बड़े-बड़े ब्रह्मर्षि, सिद्ध आदि सुख से बैठे हुए थे। उनके बीच में सूत के पुत्र विराजमान थे। सब लोग जब वहाँ बैठ गये तब शौनकजी सूत से यों बोले। १२

---

## पाँचवाँ अध्याय

### भृगुवंश का वर्णन। पुलोमा का उपाख्यान। पुलोमा-हरण। पुलोमा और अग्नि का संवाद

शौनकजी बोले—हे सूतपुत्र, तुम्हारे पिता ने [ व्यासजी से ] सब पुराण पढ़े थे। क्या तुमने भी वे सब पुराण पढ़े हैं? पुराणों में दिव्य कथाएँ हैं, प्रतापियों के आदि-वंशों का वर्णन है। उन्हें तुम्हारे पिता के मुँह से पहले हम सुन चुके हैं। इस समय पहले हम भृगुवंश का वर्णन सुनना चाहते हैं। यह कथा तुम हमसे कहो। हम सुनने के लिए तैयार हैं।

उग्रश्रवा ने कहा—जिसे पहले वैशम्पायन आदि महात्मा श्रेष्ठ ब्राह्मणों ने पढ़ा और सुनाया है, मेरे पिता ने जो व्यासजी से पढ़ा है और मैंने जो उनके मुँह से सुना है, वह सब मैं आपको सुनाऊँगा। अच्छा, पहले इन्द्र सहित सब देवता और ऋषि जिसे मानते हैं उस पुराण-वर्णित भृगुवंश का वर्णन सुनिए। मैंने सुना है कि वरुण के यज्ञ में अग्नि द्वारा भगवान् स्वयंभू ब्रह्मा से महर्षि भृगु उत्पन्न हुए। भृगु के पुत्र च्यवन हुए। च्यवन के धर्मात्मा प्रमति उत्पन्न हुए। प्रमति के घृताची में रुरु उत्पन्न हुए। रुरु के प्रमद्वरा में वेद को अच्छी तरह जाननेवाले, धर्मात्मा, आपके पूर्व-पितामह, तपस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ, ब्रह्मज्ञ, धार्मिक, संसार में सत्यवादी और जितेन्द्रिय कहलानेवाले महर्षि शुनक उत्पन्न हुए। ११

शौनक ने कहा—हे सूत, च्यवन ऋषि का नाम च्यवन क्यों पड़ा ? आप कृपा करके हमसे कहिए। सूत ने कहा—सुनिए, भृगु की प्यारी स्त्री का नाम पुलोमा था। पुलोमा के भृगु के वीर्य से गर्भ रह गया। एक दिन भृगुजी अपनी स्त्री को कुटी में अकेली छोड़कर स्नान करने के लिए नदी की ओर चले गये। उसी अवसर में पुलोमा नाम राक्षस भृगु के आश्रम में घुस आया। आश्रम में प्रवेश करके भृगु की सुन्दरी स्त्री को देखकर वह राक्षस कामातुर होकर अपने आपे से बाहर हो गया। उस दुष्ट को अभ्यागत जानकर पुलोमा ने वन के फल-मूल आदि भेंट किये। काम के वशीभूत वह राक्षस सुन्दरी को अकेली देखकर, सहज ही हर ले जाने का सुभीता पाकर, मन में बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि अब काम बन गया।

पहले पुलोमा राक्षस ने सुन्दरी पुलोमा को उसके पिता से माँगा था। किन्तु पिता ने राक्षस को न देकर अपनी कन्या भृगु को ब्याह दी। उस राक्षस के मन में यह बात तब
२० से खटक रही थी। यही अच्छा मौक़ा है, यह सोचकर उस राक्षस ने जैसे ऋषिपत्नी को हरना चाहा वैसे ही उसे कुण्ड में अग्निहोत्र की प्रज्वलित आग देख पड़ी। राक्षस ने जलते हुए अग्निदेव से पूछा—हे अग्नि, तुम सच-सच बताओ, यह किसकी स्त्री है। हे पावक, तुम देवताओं का मुख हो। मुझसे सत्य कहो। पहले मैंने ही विवाह करने के लिए इस सुन्दरी को इसके पिता से माँगा था। पीछे से अपने वचन को झूठा करके इसके पिता ने भृगु के साथ इसका ब्याह कर दिया। यदि यह भृगु की स्त्री है तो सच-सच कहो। मैं इसे यहाँ से हर ले जाऊँगा। वह पहले का क्रोध आग की तरह अब तक मेरे हृदय को जला रहा है। मेरी माँगी हुई स्त्री को भृगु ने ब्याह लिया—इसी से मैं उनकी स्त्री को हर ले जाऊँगा।

उग्रश्रवा कहते हैं—अग्नि से वह राक्षस इसी तरह बार-बार पूछने लगा। उसने फिर कहा—हे अग्नि, तुम सब प्राणियों के भीतर रहते हो और सबके पुण्य-पाप के साक्षी हो। सच-सच कहो। मेरी माँगी हुई स्त्री को भृगु ने अन्याय करके छीन लिया है। यदि यह सुन्दरी वही है तो हे सर्वज्ञ, तुम सच-सच बताओ। तुमसे सुनकर तुम्हारे सामने मैं भृगु की भार्या को हर ले जाऊँगा। राक्षस के इन वाक्यों को सुनकर अग्नि बड़े सङ्कट में पड़ गये। यदि 'नहीं' कहते हैं तो झूठ बोलने का पाप होता है, और 'हाँ' कहते हैं तो भृगु ऋषि का शाप भोगना पड़ेगा। अग्नि ने धीरे से कहा—हे दानव, इस सुन्दरी पुलोमा को पहले तुम्हीं ने माँगा था। किन्तु विधिपूर्वक वेद के मन्त्र पढ़कर इसके साथ तुम्हारा ब्याह नहीं हुआ। पिता ने भृगु के साथ ही इसका ब्याह किया है। विधिपूर्वक मुझे साक्षी करके भृगु ने ही इस स्त्री को ग्रहण किया है। यह उन्हीं की स्त्री है—यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं
३४ झूठ नहीं बोल सकता। झूठ बोलने से संसार में अपमान होता है।

# छठा अध्याय

च्यवन की उत्पत्ति, राक्षस का विनाश, अग्निदेव को महर्षि भृगु का शाप

उग्रश्रवा कहते हैं—हे ऋषिवर, अग्नि के वचन सुनकर राक्षस ने शूकर का रूप धर लिया और उस सुन्दरी को लेकर वह बड़े वेग से भागा। हे भृगुवंशियों में श्रेष्ठ, वह गर्भ इस दुराचार को देखकर क्रोध के मारे एकाएक माता की कोख से बाहर निकल पड़ा। इसी से उस प्रतापी बालक का नाम च्यवन ( गिरा हुआ ) पड़ा। माता के गर्भ से निकले हुए सूर्य के समान तेजस्वी बालक के देखते ही उस राक्षस ने भृगु की पत्नी को छोड़ दिया और वह आप भस्म होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। दुःखित सुन्दरी पुलोमा भृगुपुत्र च्यवन को गोद में लेकर आश्रम की ओर चली। पुलोमा के नेत्रों से बहे हुए आँसुओं की धारा से एक नदी उसके पीछे-पीछे बह चली। ब्रह्माजी अपनी बहू को अर्थात् भृगु की स्त्री को यों रोते देखकर वहीं प्रकट हुए और उसे धीरज देने लगे। ब्रह्माजी ने बहू के पीछे-पीछे आनेवाली नदी का नाम वधूसरा रख दिया। वह नदी च्यवन के आश्रम के पास बहती है। इस प्रकार भृगु के पुत्र प्रतापी च्यवन ऋषि उत्पन्न हुए। इधर भृगुजी स्नान-पूजा समाप्त करके अपने आश्रम के पास आये तो उन्होंने देखा, उनकी स्त्री बालक को गोद में लिये रोती चली आ रही है। कुपित होकर भृगु ने अपनी स्त्री से हाल पूछा। भृगु ने कहा—उस पापी राक्षस को यह किसने बता दिया कि तुम मेरी स्त्री हो ? वह इस बात को नहीं जानता था। तुम मुझे शीघ्र बताओ, किसने यह दुष्टता की है। कौन मेरे शाप से नहीं डरता ? मैं उस दुष्ट को क्रोध करके शाप देना चाहता हूँ।



१०

भृगु की स्त्री पुलोमा ने कहा—भगवन्, अग्नि ने उस राक्षस से कह दिया कि मैं आपकी स्त्री हूँ। तभी वह राक्षस मुझको उठा ले गया। मैं चिल्ला-चिल्लाकर रो रही थी। आपके इस बालक पुत्र के तेज ने मेरी रक्षा की—वह राक्षस मुझको छोड़कर भस्म होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उग्रश्रवा कहते हैं—पुलोमा के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर परम क्रोधी भृगु ने क्रोध करके अग्नि को शाप दिया कि हे अग्नि, तुम आज से सर्वभक्षी हो जाओगे।

१५

# सातवाँ अध्याय

अग्नि का क्रोध; ब्रह्मा के समझाने से अग्नि का प्रसन्न होना

उग्रश्रवा कहते हैं—भृगु के शाप देने पर अग्नि ने क्रोध करके कहा कि हे ब्रह्मन्, आपने यह मेरे साथ क्या साहस किया ? मैंने धर्म का पालन करने के लिए जो सच था वह, उसके पूछने पर, कह दिया। इसमें मेरा क्या दोष है ? पूछने पर जो साक्षी सच्चा हाल जानकर भी ठीक नहीं कहता, वह अपने पहले की और आगे की सात-सात पीढ़ियों को नरक में डालता है। और जो जानकर चुप रह जाता है, कुछ नहीं कहता, उसे भी वही पाप होता है। मैं भी आपको शाप दे सकता हूँ। किन्तु मैं ब्राह्मणों को माननीय समझता हूँ, इससे शाप नहीं देता। आप सब जानते हैं, तब भी मैं कहता हूँ, सुनिए। मैं योगबल से आत्मा को अनेक भागों में बाँटकर मूर्त्तिभेद से अग्निहोत्र, सत्र, गर्भाधान आदि संस्कार कर्म में रहता हूँ। यज्ञ आदि में वेदोक्त विधि से जो मुझमें हवन किया जाता है उससे देवता और पितर तृप्त होते हैं। मुझमें आहुतिरूप से डाले गये सोमरस, आज्य आदि से ही देवताओं और पितरों के शरीर पुष्ट होते हैं। देवताओं का "दर्श" और "पौर्णमास" पितरों के साथ ही होता है। इसलिए देवता और पितर एक ही हैं। वे अलग-अलग पर्वों में एकत्र और अलग-अलग पूजे जाते हैं। मुझमें डाली गई सामग्री उनका भोजन है। पितरों के लिए अमावास्या को और देवताओं के लिए पूर्णिमा को हवन किया जाता है। मैं देवताओं और पितरों का मुख हूँ, फिर सर्वभक्षी कैसे होऊँगा ?

११

इसके बाद कुछ सोचकर अग्नि ने ब्राह्मणों के अग्निहोत्र और यज्ञ आदि कर्मों से अपने को हटा लिया। अग्नि के बिना ओङ्कार, वषट्कार, स्वधा, स्वाहा आदि सब नित्य-कृत्य बन्द हो गये। सब प्रजा को अग्नि के बिना बड़ा दुःख पहुँचने लगा। तब सब ऋषि लोग चिन्ता से आतुर होकर देवताओं के पास गये और कहने लगे—हे देवगण, अग्नि के न रहने से और काम-काज बन्द हो जाने से तीनों लोक अपने कर्तव्य धर्म का पालन नहीं कर सकते। घोर सङ्कट उपस्थित है। शीघ्र ही इसका कुछ उपाय कीजिए। तब देवता और ऋषि मिलकर ब्रह्माजी के पास गये और जिस तरह भृगु ने अग्नि को शाप दिया और अग्नि ने अपने को हटा लिया, सो सब कह सुनाया। सबने कहा—भगवन्, भृगु ने अग्नि को शाप दिया है। अग्नि देवताओं का मुख हैं और सबसे पहले यज्ञ में भाग पाते हैं। वे कैसे सर्वभक्षी हो सकते हैं ?

उग्रश्रवा कहते हैं—देवताओं और ऋषियों की बात सुनकर भगवान् ब्रह्मा ने अग्नि को बुलाया और कहा—हे अग्नि, तुम सब जीवों को उत्पन्न करनेवाले और उनका नाश करनेवाले

हो। तुम तीनों लोकों को धारण किये हुए हो। सब यज्ञ आदि कर्म तुम्हीं से सिद्ध होते हैं। हे त्रिलोकी के स्वामी अग्नि, ऐसा करो जिसमें कर्मकाण्ड का लोप न हो। तुम ईश्वर होकर २०
ऐसी मूढ़ता क्यों कर रहे हो? तुम सदा पवित्र हो। अन्त को सब प्राणियों की गति तुम्हीं हो। तुम सारे शरीर से सर्वभक्षी न होओगे। तुम्हारी अपान देश की ज्वालाएँ और तुम्हारा मांस-भक्षण करनेवाला अंश ही सब कुछ भक्षण करेगा। जैसे सूर्य की किरणों के स्पर्श से सब पवित्र समझा जाता है वैसे ही तुम्हारी ज्वालाओं से जले हुए सब पदार्थ पवित्र समझे जायँगे। हे अग्नि, तुम आपसे ही प्रकट परमज्योति हो। तुम समर्थ होकर भी अपने तेज से ऋषि के शाप को सत्य करो और पहले की तरह देवताओं और पितरों का मुख रहकर हवन की सामग्री ग्रहण करते रहो।



उग्रश्रवा कहते हैं—अग्नि ने भगवान् ब्रह्मा से कहा, ऐसा ही होगा। इसके बाद अग्नि देवता, ब्रह्मा की आज्ञा का पालन करने के लिए, फिर संसार में प्रकट हो गये। देवता और ऋषि लोग प्रसन्न होकर अपने-अपने स्थानों को चले गये। ऋषि लोग पहले की तरह अपने सब कर्म करने लगे। देवता और सब प्राणी प्रसन्न हुए। अग्नि भी शाप से मुक्त होकर परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए। इस प्रकार अग्नि को भृगु का शाप हुआ। यह अग्नि के शाप का इतिहास, पुलोमा राक्षस का विनाश और च्यवन की उत्पत्ति का वृत्तान्त मैंने आपके आगे वर्णन किया। २९

---

## आठवाँ अध्याय

रुरु का चरित्र, मेनका की कन्या प्रमद्वरा के साथ रुरु के विवाह का प्रसङ्ग, सर्प के काटने से प्रमद्वरा की मृत्यु और रुरु का दुःखित होना

उग्रश्रवा ने कहा—भृगु के पुत्र च्यवन के सुकन्या में परम तेजस्वी प्रमति उत्पन्न हुए। प्रमति के घृताची में रुरु उत्पन्न हुए। रुरु के प्रमद्वरा में शुनक उत्पन्न हुए। शुनक महर्षि महातेजस्वी, तपस्वी और यशस्वी हुए। महर्षि रुरु का चरित्र मैं आप लोगों के आगे विस्तार से कहता हूँ, सुनिए। पूर्व समय में तपस्वी, विद्वान्, सब प्राणियों का हित करनेवाले स्थूलकेश नाम के एक महर्षि थे। उसी समय गन्धर्वराज विश्वावसु के वीर्य से मेनका अप्सरा के गर्भ रह गया

था। दया और लज्जा से रहित अप्सरा प्रसव के समय उस गर्भ से उत्पन्न बच्चे को, स्थूलकेश ऋषि के आश्रम के पास, नदी-किनारे छोड़ गई। स्थूलकेश ऋषि ने आश्रम के पास देखा, एक देवकन्या सी कन्या पड़ी हुई है और वह साक्षात् लक्ष्मी के समान सुन्दरी है। कृपा-परवश होकर स्थूलकेश ऋषि उस कन्या को उठा ले गये और अपने आश्रम में रखकर



१० उसका पालन करने लगे। उनके आश्रम में वह कन्या दिन-दिन बढ़ने लगी। क्रम से विधि-पूर्वक मुनिवर ने उस कन्या के जात-कर्म आदि संस्कार भी किये। सब प्रमदाओं अर्थात् स्त्रियों में श्रेष्ठ समझकर ऋषि ने उस कन्या का नाम प्रमद्वरा रख दिया। एक समय स्थूलकेश ऋषि के आश्रम में प्रमद्वरा को देखकर महात्मा रुरु उस पर मोहित हो गये। रुरु ने मित्रों के मुँह से अपने पिता को सब हाल जताया। प्रमति ने ख़ुद अपने पुत्र रुरु के लिए स्थूलकेश ऋषि से प्रमद्वरा को माँगा। उन्होंने रुरु के साथ प्रमद्वरा का ब्याह कर देना स्वीकार कर लिया। पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में कन्यादान का मुहूर्त्त बना।

इसी बीच में एक दिन, जब विवाह के कुछ ही दिन बाक़ी रह गये थे, अपनी सखियों के साथ खेलती हुई प्रमद्वरा इधर-उधर दौड़ रही थी। उधर ही एक बड़ा साँप सो रहा था, उस पर धोखे से प्रमद्वरा का पैर पड़ गया। उसका काल आ गया। पैर पड़ते ही साँप ने उसको काट खाया। साँप के डसते ही प्रमद्वरा का सारा अङ्ग विष से काला पड़ गया और वह अकस्मात् मरकर पृथ्वी पर गिर पड़ी।



उसके अङ्ग के गहने और कपड़े इधर-उधर बिखर गये। उस सुन्दरी की ऐसी मृत्यु देखकर

२० सखियों को बड़ा खेद हुआ। मरने पर भी प्रमद्वरा के मुख की शोभा वैसी ही बनी हुई थी। जान पड़ता था, वह बेखटके आराम से आँखें बन्द किये सो रही है। स्थूलकेश और अन्यान्य—स्वस्ति, आत्रेय, महाजानु, कुशिक, शङ्खमेखल, उद्दालक, कठ, यशस्वी श्वेत, भरद्वाज, कौणिकुत्स्य

आर्ष्टिषेण, गौतम, प्रमति और उनके पुत्र रुरु आदि सब—वनवासी ऋषि करुणा से आतुर होकर वहाँ पर उपस्थित हुए। साँप के विष से मरी हुई प्रमद्वरा को देखकर सब ऋषि रोने लगे। रुरु शोक के मारे वहाँ से उठकर बाहर चले गये। वे सब ऋषिश्रेष्ठ वहीं पर बैठ गये। २७

---

## नवाँ अध्याय

रुरु का अपनी आधी आयु देकर प्रमद्वरा को जिलाना
और उसके साथ रुरु का विवाह

उग्रश्रवा बोले—महात्मा ऋषि लोग जब बैठ गये तब रुरु घने जङ्गल के भीतर जाकर बड़े दुःख से शोक के मारे ऊँचे स्वर से चिल्लाकर विलाप करने लगे। अपनी प्रमद्वरा को याद करके रुरु कहने लगे—यह मेरे शोक को बढ़ाती हुई मेरी प्यारी प्राणहीन होकर पृथ्वी पर पड़ी हुई है! सब बान्धवों के लिए इससे बढ़कर और दुःख क्या होगा! यदि मैंने तपस्या की है, दान किया है, अच्छी तरह गुरुजनों की सेवा की है, तो यह मेरी प्यारी जी उठे। यदि मैं जन्म से जितेन्द्रिय और ब्रह्मचारी हूँ तो यह प्रमद्वरा जी उठे।



इस प्रकार बैठकर रुरु को विलाप करते देख देवताओं का दूत शीघ्र रुरु के पास आया। उसने दुःखित रुरु से कहा—हे रुरु, दुःख के मारे वाणी से जो तुम कह रहे हो वह झूठ है, क्योंकि जिस मनुष्य की आयु बीत गई है उसका जीवन नहीं रह सकता। इस गन्धर्वकन्या की आयु बीत गई है, इसी से यह मर गई। यह समझकर तुम इसके लिए शोक मत करो। महात्मा देवताओं ने पहले से ही इसका एक उपाय भी कर रक्खा है। उसे अगर तुम करना चाहो तो यह प्रमद्वरा जीकर तुमको मिल भी सकती है। रुरु ने पूछा—हे आकाशचारी देवदूत, देवताओं ने क्या उपाय सोचा है? मैं सुनकर वही करूँगा। तुम बतलाकर मेरी जान बचाओ। देवदूत ने कहा—हे भार्गव, अगर तुम इस कन्या को अपनी आधी आयु दे डालो १०
तो यह तुम्हारी भार्या प्रमद्वरा अभी जी उठेगी। रुरु ने कहा—हे दूत, मैं अभी इसे अपनी आधी आयु देता हूँ। यह मेरी प्रिया उसी तरह शृङ्गार, रूप और आभूषणों से भूषित उठ खड़ी हो।

उग्रश्रवा कहते हैं—तब देवदूत और गन्धर्वराज विश्वावसु दोनों धर्मराज के पास पहुँचकर कहने लगे—हे धर्मराज, अगर आप चाहें तो यह रुरु की भार्या प्रमद्वरा उनकी आधी आयु पाकर जी उठे। धर्मराज ने कहा—हे देवदूत, जो तुम चाहते हो तो रुरु की आधी आयु पाकर प्रमद्वरा उठ खड़ी हो। सूत-पुत्र कहते हैं कि धर्मराज के यों कहते ही प्रमद्वरा रुरु की आधी आयु पाकर जैसे कोई सोते से उठ खड़ा हो वैसे ही उठकर खड़ी हो गई। सुदीर्घ आयुवाले रुरु की आधी आयु इस तरह भार्या के लिए कम हो गई। इसके बाद शुभ मुहूर्त्त में प्रमति और स्थूलकेश ने मिलकर रुरु और प्रमद्वरा का ब्याह कर दिया। परस्पर प्यार करनेवाले दोनों स्त्री-पुरुष सुखभोग करने लगे। कमल के समान कोमल अङ्गवाली सुन्दरी स्त्री को प्राप्त करके रुरु ने साँपों को मारने का व्रत ग्रहण कर लिया था। साँपों पर उनको इतना क्रोध था कि उन्हें जो साँप देख पड़ता था उसे वे अपने डण्डे से मार डालते थे। एक समय महर्षि रुरु वन में जा रहे थे। उन्होंने राह में देखा कि एक डुण्डुभ जाति का साँप (जल में रहनेवाला पनिहा साँप) पड़ा हुआ है। तुरन्त ही कालदण्ड के समान अपना दण्ड तानकर कुपित ब्राह्मण ने उसे मार डालना चाहा। तब डुण्डुभ ने कहा—हे विप्र, मैंने तुम्हारा कुछ भी अपराध नहीं
२३ किया। फिर तुम इतना क्रोध करके मुझे मार डालने के लिए क्यों तैयार हो?

---

## दसवाँ अध्याय

रुरु और डुण्डुभ का संवाद

रुरु ने कहा—मेरी प्राण से प्यारी स्त्री को पहले एक साँप ने डस लिया था। तब से हे सर्प, मैंने यह घोर प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं जिस साँप को देखूँगा उसको मार डालूँगा। इसी से मैं तुझे मार डालना चाहता हूँ। आज तू मेरे हाथ से बच नहीं सकता।

डुण्डुभ ने कहा—हे ब्रह्मन्, वे और साँप हैं जो मनुष्यों को काटते हैं। केवल साँप का रङ्ग-रूप देखकर ही डुण्डुभों को मारना तुम्हें योग्य नहीं। हम लोग और सर्पों की तरह प्राणियों के प्राण नहीं लेते, परन्तु अन्य सर्पों के पाप से लोग हमें भी मार डालते हैं। हम लोग और सर्पों की तरह बिल में रहने का दुःख भोगते हैं और मेढक आदि को खाकर आनन्द मनाते हैं। आप धर्म के जाननेवाले हैं; इसलिए डुण्डुभों की हत्या करना आपको उचित नहीं।

उग्रश्रवा कहते हैं—डुण्डुभ के इन वचनों को सुनकर रुरु ने समझा कि यह शान्त सर्प है और डर गया है। जान पड़ता है, यह कोई ऋषि इस योनि में हैं। इससे रुरु ने डुण्डुभ को नहीं मारा। इसके बाद उन्होंने डुण्डुभ से पूछा—हे सर्प, तुम कौन हो? किस कारण तुमको यह योनि मिली है? डुण्डुभ ने कहा—हे रुरु, मैं पहले जन्म में सहस्रपाद नामक ऋषि

था। एक ब्राह्मण के शाप से मुझे यह योनि प्राप्त हुई है। रुरु ने कहा—हे नाग, ब्राह्मण ने किसलिए कुपित होकर तुमको शाप दिया? और कब तक तुम इस योनि में रहोगे? ८

## ग्यारहवाँ अध्याय

डुण्डुभ-चरित्र

डुण्डुभ ने कहा—पूर्व जन्म में सत्यवादी परम तपस्वी खगम नाम के एक ऋषि मेरे मित्र थे। लड़कपन में खेलते-खेलते मैंने घास का एक साँप बनाया। मेरे मित्र अग्निहोत्र कर रहे थे। मैंने जाकर उस सर्प से उनको डरवाया। वे डरकर बेहोश हो गये। होश आने पर क्रोध से, जैसे मुझको जला देंगे इस तरह की दृष्टि से, मेरी ओर देखकर ऋषिवर ने कहा—जैसा विष-वीर्य-हीन तृण का साँप बनाकर तुमने मुझको डराया है वैसे ही विष-वीर्य-हीन सर्प की योनि तुमको मेरे शाप से प्राप्त होगी। हे ऋषिवर, उन मुनि के तप के बल को मैं अच्छी तरह जानता था। मैं घबराकर सामने पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर मैंने हाथ जोड़कर सामने खड़े होकर उनसे कहा—मित्र, मैंने तो यह काम हँसी में किया था। इसलिए हे ब्रह्मन्, आप क्षमा करके अपने शाप को लौटा लें।

मुझे व्याकुल देखकर गर्म लम्बी साँस लेकर खगम मुनि ने कहा—देखो, मेरा कहा कभी झूठ नहीं हो सकता। हे तपोधन, मैं जो कहता हूँ, सो सुनो। मेरी इस बात को याद रखना। भृगुवंश में प्रमति के पुत्र रुरु उत्पन्न होंगे। उनके दर्शन से शीघ्र ही तुम्हारा शाप छूट जायगा। सो हे ब्रह्मन्, आप वही प्रमति के पुत्र रुरु हैं। मैं इस समय अपने पूर्वरूप १०
को प्राप्त होकर आपको आपके हित की बात बताऊँगा। उग्रश्रवा कहते हैं—वे मुनिवर डुण्डुभ सर्प का रूप छोड़कर अपने प्रभा-परिपूर्ण पूर्वरूप को प्राप्त हो गये। इसके उपरान्त उन्होंने रुरु से कहा—देखो, सब देहधारियों का सबसे बढ़कर धर्म अहिंसा है। इसलिए ब्राह्मण को किसी जीव की हिंसा न करनी चाहिए। सदा से यही सुन पड़ता है कि ब्राह्मण लोग शुद्ध और सरल होते हैं। वेद-वेदाङ्ग जानना, सब प्राणियों को अभय देना, अहिंसा, सत्य बोलना, क्षमा और वेदपाठ, यह इतना ब्राह्मण का परम धर्म है। क्षत्रिय का जो धर्म है वह आपको नहीं सोहता। हे रुरु, दण्ड देना, उग्र भाव और प्रजा का पालन करना—ये क्षत्रिय के कर्म हैं। पूर्व समय में राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ करके उसमें सर्पों का संहार किया था। अन्त को तपस्वी वेद-वेदाङ्ग-पारगामी ब्राह्मण आस्तीक ने ही डरे हुए सर्पों की उस समय रक्षा की। १९

## बारहवाँ अध्याय

जनमेजय के सर्पयज्ञ का प्रस्ताव

रुरु ने पूछा—राजा जनमेजय ने किस तरह और किसलिए साँपों को मारा ? ब्राह्मण आस्तीक ने ही क्यों सर्पों की रक्षा की ? "हे रुरु, तुम पिता के मुँह से आस्तीक का सम्पूर्ण चरित्र सुन लेना। मुझे इस समय जाने की जल्दी है।" इतना कहकर सहस्रपाद ऋषि अन्तर्द्धान हो गये। रुरु को यह बड़ा अद्भुत मालूम हुआ। वे बड़े ज़ोर से इधर-उधर दौड़कर उन ऋषिवर को खोजने लगे। अन्त को थककर पृथ्वी पर गिर पड़े। रुरु को मोह हो गया। वे उस समय अचेत से देख पड़े। होश आने पर उन्हीं मुनि के कहने को बार-बार स्मरण करते हुए रुरु ने पिता से आकर सब हाल कहा। पुत्र के प्रश्न करने
६ पर पिता ( प्रमति ) उस कथा को कहने लगे।

---

आस्तीकपर्व

## तेरहवाँ अध्याय

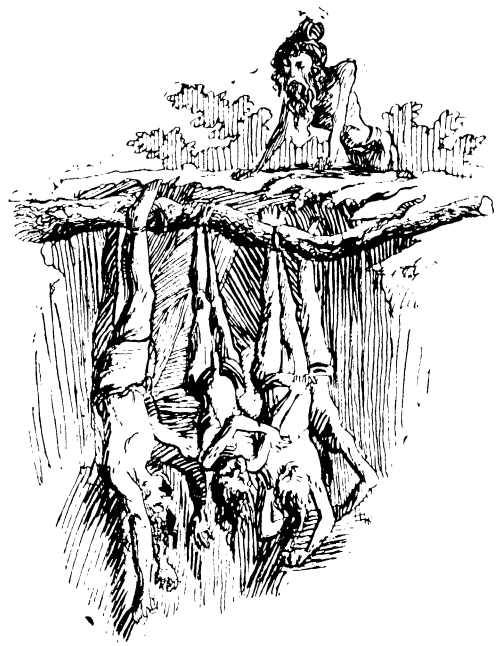
आस्तीक और जरत्कारु का उपाख्यान, जरत्कारु और उनके पितरों का संवाद

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र, राजा जनमेजय किसके पुत्र थे ? और उन्होंने सर्पयज्ञ करके सर्पों का संहार क्यों किया ? और आस्तीक ऋषि कौन थे ? आस्तीक ऋषि ने किस-लिए साँपों के प्राण बचाये ? यह सब कथा विस्तार से कहिए; हम सुनना चाहते हैं।

उग्रश्रवा ने कहा—आस्तीक का चरित्र बहुत बड़ा है। ऋषि लोग इसे एक जुदा पुराण कहते हैं। पूर्व समय में नैमिषारण्यवासी ऋषियों के प्रश्न करने पर व्यासजी के शिष्य मेरे पिता रोमहर्षण ने इस कथा का वर्णन किया था। उनसे जिस तरह जितना यह उपाख्यान मैंने सुना है सो सब तुमको सुनाता हूँ। यह उपाख्यान सब पापों को नष्ट करता है।

८ पूर्व समय में एक जरत्कारु ऋषि थे। आस्तीक उन्हीं के पुत्र हुए। जरत्कारु का जन्म यायावर-वंश में हुआ था। वे प्रजापति के समान, ब्रह्मचारी, थोड़ा आहार करने-वाले, तपस्वी, धर्म-तत्त्व के ज्ञाता और संयमी थे। वे तीर्थयात्रा के लिए पृथ्वी-परिक्रमा करते हुए विचरा करते थे। चलते-चलते जहाँ पर सन्ध्या हो जाती वहीं पर वे टिक जाते थे। वे प्रायः केवल वायु-भक्षण करके निराहार रहकर समय बिता देते थे। ऐसे कठिन व्रत के कारण वे दिन-दिन सूखते जाते थे। रात को वे सोते भी न थे। किन्तु उनका तेज जल रहे अग्नि के समान था। जरत्कारु ने इस तरह विचरते-विचरते एक दिन देखा कि एक जगह

पर बड़े भारी गढ़े में कुछ आदमी उलटे लटक रहे हैं। उनके पैर ऊपर और सिर नीचे हैं। [ उनके दुःख से व्यथित होकर ] जरत्कारु ने उनसे पूछा—तुम लोग कौन हो? इस गढ़े में क्यों उलटे लटके हुए हो? सूनी जगह में चूहों ने जिनकी जड़ खा ली है उन सिर्की के पेड़ों के झुण्ड में तले को सिर और ऊपर को पैर किये क्यों लटके हो? उन लोगों ने कहा—भैया, हम यायावर नाम के ऋषि हैं। हे ब्रह्मन्, हमारे वंश के आगे चलने की कोई आशा नहीं है इसी से हमारी यह अधोगति हुई है। हमारे वंश में एक जरत्कारु नाम का मनुष्य है। हम अभागों के वंश में इस समय वही एक अभागा है। वह मूर्ख तपस्या में लगा हुआ है; पुत्र उत्पन्न करने के लिए विवाह नहीं करता। उस मूढ़ जरत्कारु के रहते भी हम अनाथ की तरह दुर्गति भोग रहे हैं। भैया, तुम कौन हो जो बन्धु की तरह हमारी दुर्दशा देखकर खेद प्रकट कर रहे हो? हम जानना चाहते हैं कि तुम कौन हो और किसलिए हमसे सहानुभूति कर रहे हो?



२०

जरत्कारु ने कहा—मैं ही वह जरत्कारु हूँ। आप लोग मेरे ही पूर्वपुरुष हैं। आप मुझे क्या करने की आज्ञा देते हैं? जरत्कारु के पितरों ने कहा—पुत्र, वंश चलाने के लिए तुम यत्न करो। इससे तुम्हारा और हमारा कल्याण होगा, साथ ही धर्म भी नष्ट न होगा। किये हुए धर्मों के फल से या कठिन तपस्या करने से मनुष्यों को वह गति नहीं मिलती जो पुत्रवाले मनुष्यों को मिलती है। हे पुत्र, इसलिए हमारे कहने से ब्याह करके पुत्र उत्पन्न करने का यत्न करो। इसी से हमको सुख मिलेगा। जरत्कारु ने कहा—मैं अपने सुख की इच्छा से विवाह या धन का संग्रह न करूँगा। यह मेरा प्रण है। किन्तु अब आपके हित के लिए इस शर्त्त से ब्याह करने को राज़ी हूँ कि जो कोई कन्या मेरे ही नाम की मिलेगी और मुझको उसके पिता-भाई आदि अपनी इच्छा से भिक्षा की तरह वह कन्या दे देंगे तो मैं उससे ब्याह कर लूँगा। किन्तु मुझ ग़रीब को अपनी इच्छा से कन्या देना ही कौन चाहेगा?

ख़ैर, यह मैं आपसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस तरह ऐसी कन्या मिलेगी तो अवश्य व्याह
कर लूँगा। उस स्त्री से जो बालक उत्पन्न होगा वह आपको इस अधोगति से उबारकर
३२ अक्षय स्वर्ग में पहुँचावेगा।

## चौदहवाँ अध्याय

वासुकि नाग की बहन जरत्कारु के साथ जरत्कारु ऋषि का ब्याह होना

उग्रश्रवा कहते हैं कि ब्राह्मण जरत्कारु इस प्रकार पितरों के निकट ब्याह करने की प्रतिज्ञा करके स्त्री के लिए पृथ्वी पर बिचरने लगे, पर किसी ने उनको अपनी बेटी नहीं दी। एक दिन पितरों के वचन को याद करके वन में जाकर जरत्कारु ने तीन बार धीरे से कन्या की भिक्षा मांगी। उसी समय अपनी बहन को लेकर वासुकि नाग वहाँ पर आया और कहने लगा—ऋषिवर, इसे ग्रहण कीजिए। पर यह सोचकर कि शायद इसका और मेरा नाम एक न होगा, जरत्कारु ने पहले उस कन्या को स्वीकार नहीं किया। जरत्कारु ने सोचा कि मैंने तो यह प्रतिज्ञा की है कि मेरे ही नाम की जो कन्या होगी उसी से ब्याह करूँगा। इससे उन्होंने वासुकि से कहा—हे नाग, तुम्हारी इस बहन का क्या नाम है? सच बताओ। वासुकि ने कहा—जरत्कारुजी, यह मेरी छोटी बहन है, इसका नाम भी जरत्कारु है। इसे मैं आपको देता हूँ, आप ग्रहण कीजिए। यह आपके ही लिए है। बस, वासुकि ने उस कन्या का हाथ
७ ऋषि के हाथ में दे दिया। ऋषि ने भी उसके साथ विधिपूर्वक ब्याह कर लिया।

## पन्द्रहवाँ अध्याय

आस्तीक का जन्म और संक्षेप से सर्पों की रक्षा का वर्णन

सूतजी कहते हैं—हे ब्रह्मन्, पूर्व समय में साँपों को उनकी माता ने यह शाप दिया था कि जनमेजय के यज्ञ में तुम आग में जलोगे। उसी शाप की शान्ति के लिए नागराज वासुकि ने अपनी बहन जरत्कारु ऋषि को ब्याह दी। उसके गर्भ और जरत्कारु ऋषि के वीर्य से आस्तीक उत्पन्न हुए। आस्तीक ऋषि बड़े उदार, तपस्वी, महात्मा, वेद-वेदाङ्ग को अच्छी तरह जाननेवाले, समदर्शी और पिता-माता के दुःख को दूर करनेवाले हुए। सुना जाता है कि इस घटना के बहुत दिनों बाद राजा जनमेजय ने साँपों का विनाश करने के लिए सर्पयज्ञ का आरम्भ किया। उस यज्ञ में जब साँप जल-जलकर मरने लगे तब आस्तीक ने मामा, नाना आदि की और अन्यान्य साँपों की रक्षा की।

जरत्कारु ऋषि ने पुत्र उत्पन्न करके तथा तपस्या करके पितरों के ऋण से; अनेक यज्ञ-व्रत करके, वेदपाठ करके देवताओं के ऋण से; और ब्रह्मचर्य-पालन करके ऋषियों के ऋण से अपना उद्धार किया। इस प्रकार तीनों ऋणों से छुटकारा पाकर अपने पूर्व पुरुषों के साथ जरत्कारु ऋषि स्वर्गलोक को गये। यह मैंने आस्तीक ऋषि की कथा तुमसे कही। अब और बताओ, क्या सुनना चाहते हो ? ११

---

## सोलहवाँ अध्याय

विस्तार से आस्तीक की कथा का वर्णन। कद्रू और विनता को कश्यप से वरदान की प्राप्ति। कद्रू से सर्प और विनता से अरुण की उत्पत्ति। विनता को अरुण का शाप

शौनकजी ने कहा—हे सूतपुत्र, महात्मा आस्तीक की यह कथा फिर विस्तार से कहो। हमें सुनने की बड़ी इच्छा है। तुम्हारी वाणी बहुत ही मधुर है। तुम्हारे मुँह से मनोहर कथाएँ सुनकर हमें बड़ी प्रसन्नता होती है। तुम अपने पिता रोमहर्षण की तरह कथा कहते हो। वे सदा मन लगाकर हमें कथाएँ सुनाया करते थे। तुमने पिता के मुँह से जिस तरह यह कथा सुनी है, उसी तरह हमसे वर्णन करो। उग्रश्रवा ने कहा—हे बड़ी आयुवाले ऋषिवर, जिस तरह मैंने अपने पिता से सुना है उसी तरह यह आस्तीक का उपाख्यान मैं तुमसे कहता हूँ। पहले सत्ययुग में दक्ष प्रजापति के परम सुन्दरी कद्रू और विनता नाम की दो कन्याएँ थीं। दक्ष प्रजापति ने प्रसन्नता-पूर्वक कश्यप ऋषि के साथ उन दोनों का ब्याह कर दिया। प्रजापति ब्रह्मा के तुल्य प्रतापी कश्यप ने उन पर प्रसन्न होकर कहा—तुम अपनी-अपनी रुचि के अनुसार वर माँगो। कश्यप के यों कहने पर कद्रू और विनता दोनों बहनें बहुत प्रसन्न हुईं। कद्रू ने कश्यप से समान-तेजस्वी नाग-स्वरूप हज़ार पुत्र माँगे। विनता ने प्रार्थना की कि हे नाथ, मेरे दो पुत्र हों; किन्तु वे कद्रू के हज़ार पुत्रों से शरीर, बल, विक्रम आदि सब बातों में अधिक हों। कश्यप ने दोनों से कहा—ऐसा ही होगा। अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार दो और हज़ार पुत्रों का वर पाकर विनता और कद्रू दोनों बहनें बहुत प्रसन्न हुईं। कुछ ही समय में उनके गर्भ भी रह गया। "गर्भ को सावधानी से रखना" यह कहकर कश्यप मुनि वन को चले गये। १२

उग्रश्रवा कहते हैं—बहुत समय बीतने पर कद्रू के गर्भ से एक हज़ार अण्डे और विनता के गर्भ से दो अण्डे उत्पन्न हुए। दासियों ने दोनों के अण्डों को अलग-अलग गर्म बर्तनों में

रख दिया। वे अण्डे पाँच सौ वर्ष तक उन पात्रों में रक्खे रहे। इसके बाद हज़ारों अण्डे फोड़कर कद्रू के पुत्र हज़ार नाग बाहर निकले। किन्तु विनता के दोनों पुत्र उस समय भी अण्डे फोड़कर बाहर नहीं निकले। तब ईर्ष्या और लज्जा के मारे विनता ने पुत्र की इच्छा से एक अण्डे को तोड़ डाला। विनता ने देखा, उस अण्डे के भीतर जो बालक है उसका ऊपर का आधा शरीर तो पुष्ट हो चुका है पर नीचे का आधा शरीर कच्चा है। सुना जाता है, तब उस बालक ने क्रोध करके विनता को शाप दिया कि माता, तुमने लोभ के मारे मेरा कच्चा ही अण्डा तोड़ डाला, इसलिए तुम जिससे लाग-डाँट रखती हो उस अपनी बहन कद्रू की पाँच सौ वर्ष तक दासी रहोगी। यदि तुम मेरी ही तरह अण्डा तोड़कर इस बालक को भी अङ्ग-
२० हीन या बिलकुल ही नष्ट न कर डालोगी तो यह तुमको मेरे इस शाप से छुड़ावेगा। यह बालक प्रतापी होगा। यदि तुम चाहती हो कि यह बालक बड़ा बली हो तो धैर्य के साथ पाँच सौ वर्ष से अधिक समय तक इसके जन्म की राह देखना। इतना कहकर वह बालक आकाश की ओर उड़ गया। भगवन्, वही बालक सूर्य के सारथी अरुण हैं, जो प्रातःकाल देख पड़ते हैं। इसके बाद ठीक समय पर दूसरा अण्डा फोड़कर सर्पों को खा जानेवाले गरुड़ पैदा हुए। पैदा होते ही भूख के मारे व्याकुल गरुड़ विनता को छोड़कर आकाश
२५ में अपना आहार खोजने के लिए उड़ गये।

---

## सत्रहवाँ अध्याय

भगवान् के उपदेश से समुद्र मथकर अमृत निकालने के लिए देवताओं का विचार

उग्रश्रवा कहते हैं—इसी समय कद्रू और विनता दोनों ने आकाश में अपने समीप से जा रहे इन्द्र के घोड़े उच्चैःश्रवा को देखा। अमृत के लिए समुद्र मथने पर उससे निकले हुए इस घोड़े को देखकर सब देवता बहुत प्रसन्न हुए थे और सबने इसकी बड़ाई की थी। उच्चैःश्रवा देखने में सुन्दर, कभी बुड्ढा न होनेवाला, बड़े वेग से चलनेवाला और सब सुलक्षणों से युक्त घोड़ा है।

शौनकजी बोले—सूत-पुत्र, देवताओं ने कहाँ पर किस तरह अमृत के लिए समुद्र को मथा? और उससे महापराक्रमी परम सुन्दर उच्चैःश्रवा घोड़ा किस तरह निकला? यह सब कथा विस्तार से कहिए। उग्रश्रवा ने कहा—सुमेरु नामक एक बड़ा भारी पहाड़ है। उसके शिखर सुवर्ण के और बहुत ऊँचे मानो स्वर्ग को छू रहे हैं। जब उस पर सूर्य की आभा पड़ती है तब वह तेज की ढेरी जान पड़ता है। सब देवता और गन्धर्व उसी पर रहते हैं।



समुद्र-मन्थन

अधर्मी लोग न उसका अनुमान कर सकते हैं और न वहाँ पहुँच ही सकते हैं। उस पर प्रकाशित दिव्य ओषधियाँ लगी हुई हैं, घोर सर्प रहते हैं, बहुतेरी नदियाँ बहती हैं, अनेक वृक्ष लगे हैं, अनेक पक्षी तरह-तरह के शब्द किया करते हैं। देवयोनि के सिवा और कोई मन से भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकता। अनेक रत्नों से अलङ्कृत उस पहाड़ के शिखर पर बैठकर एक समय तप में लगे हुए देवगण एकत्र होकर अमृत पाने का उपाय सोचते हुए परस्पर सलाह करने लगे। सबको सोच-विचार में पड़े देखकर भगवान् नारायण ने ब्रह्माजी से कहा—मेरी सलाह है कि देवता और दानव दोनों मिलकर समुद्र को मथें। उसे मथने से अवश्य अमृत प्राप्त होगा। उससे सब ओषधियाँ, फिर रत्न और उसके बाद अमृत निकलेगा। १३

---

## अठारहवाँ अध्याय

मोहित दैत्यों से मोहिनी-रूप विष्णु का अमृत-कलश ले लेना

उग्रश्रवा कहते हैं—तब सब देवता [ नारायण के कहने से मथानी बनाने के लिए ] मन्दराचल को उखाड़ने चले। उस पर्वत की शोभा निराली है। उसके शिखर बादलों के इतने ऊँचे हैं। उस पर अनेक लताएँ लहलहाया करती हैं, अनेक पक्षी बोला करते हैं, बहुतेरे खूनी जानवर इधर-उधर घूमा करते हैं; किन्नर, अप्सरा और देवगण सदा विहार किया करते हैं। वह पहाड़ ग्यारह हज़ार योजन ऊँचा और उतना ही पृथ्वी के भीतर धँसा हुआ है। सब देवता जब उस पहाड़ को उखाड़ न सके तब विष्णु के पास बैठे हुए ब्रह्माजी के पास आकर उन्होंने कहा—आप हमारे हित के लिए मन्दराचल को उखाड़ने की चेष्टा कीजिए।

उग्रश्रवा कहते हैं—अचिन्त्यरूप नारायण और ब्रह्मा ने अनन्त नाग से यह काम करने के लिए कहा। हे ब्रह्मन्, नारायण की आज्ञा से महाबली नागराज ने जाकर वन और वनवासी जीवों सहित मन्दराचल को बलपूर्वक उखाड़ लिया। तब देवता लोग और नागराज उस महापर्वत को उठाकर समुद्र के निकट ले आये। इसके बाद उन्होंने समुद्र से कहा—हे सागर, हम अमृत के लिए तुमको मथेंगे। समुद्र ने कहा—मन्दराचल से मथोगे तो मुझे कष्ट होगा। वह कष्ट सहने के लिए मैं इस शर्त पर तैयार हूँ कि मुझको भी अमृत का भाग देना। इसके १०
बाद देवताओं और दैत्यों ने कच्छप से प्रार्थना की कि इस समुद्र के भीतर अपनी पीठ पर आप पर्वत को धारण किये रहिए। कच्छप ने देवताओं और दानवों की प्रार्थना स्वीकार करके उस पर्वत को अपनी पीठ पर रख लिया। तब इन्द्र ने वज्र से उस पहाड़ को ऊपर से दबाया। देवता और दानव मन्दराचल को मथानी और वासुकि नाग को उसकी रस्सी बनाकर समुद्र को

मथने लगे। सब देवता नारायण के साथ वासुकि नाग की पूँछ की ओर और सब दानव मुँह की ओर पकड़े हुए थे। अनन्त बार-बार नागराज के सिर को पकड़कर खींचने लगे। बार-बार रगड़ खाने से नागराज के मुँह से धुआँ और चिनगारियाँ तथा विष की लपटें निकलने लगीं। नागराज के मुँह से निकले हुए धुएँ के बादल बनकर घिर आये, उनमें बिजलियाँ चमकने लगीं। थकन और विष की गर्मी से मुरझा रहे देवताओं पर धीरे-धीरे ठण्डी-ठण्डी फुहारें गिरने लगीं। उस पर्वत के ऊपर जो वृक्ष लगे हुए थे उनसे देवताओं और दैत्यों पर फूलों की वर्षा होने लगी। मन्दराचल जब समुद्र के भीतर घूमने लगा तब मेघ के गरजने का ऐसा बड़ा भारी
२० शब्द होने लगा। खारी समुद्र के भीतर रहनेवाले अनेकों जलचर जीव मन्दराचल के नीचे पड़कर चूर-चूर हो गये। वरुणलोक और पाताल के रहनेवाले भी बहुत से प्राणी नष्ट हो गये। पहाड़ के घूमने से परस्पर टकराकर, उखड़कर, शिखरों पर के वृक्ष पत्तियों सहित नीचे गिरने लगे। उन वृक्षों के परस्पर रगड़ने से पहाड़ के ऊपर के वन में आग लग गई। धीरे-धीरे वह आग फैलकर पहाड़ भर में व्याप्त हो गई। जैसे बिजली से नीले बादल की शोभा होती है वैसे ही उस अग्नि से वह पर्वत मालूम पड़ने लगा। उस अग्नि से पहाड़ के ऊपर हाथी, सिंह आदि पशु जलने लगे। पर्वत पर के अनेक पशु जल-जलकर मरने लगे। इधर-उधर जला रही उस आग को इन्द्र ने मेघों के जल से शान्त कर दिया।

तब बड़े-बड़े वृक्षों के और ओषधियों के तथा दिव्य मणियों के रस बह-बहकर समुद्र के जल में मिलने लगे। उन अमृत का गुण रखनेवाली ओषधियों के रस से ही अमृत उत्पन्न हुआ, जिसको पीकर देवता अमर हो गये। उन उत्तम ओषधियों का रस मिलने से खारी समुद्र का जल दूध हो गया और फिर मथते-मथते उस दूध से घी पैदा हुआ। तब देवताओं ने ब्रह्माजी के पास आकर कहा—भगवन्! हम लोग मथते-मथते बहुत ही थक गये हैं, परन्तु सागर से अभी अमृत नहीं निकला। नारायण भगवान् के सिवा हम सब देवता और
३० दानव चूर हो रहे हैं। तब ब्रह्माजी ने नारायण भगवान् से कहा कि भगवन्, आप ही इन लोगों के सहायक हैं। इनको ऐसा बल दीजिए कि ये इस काम को कर सकें। विष्णु ने कहा—इस काम में लगे हुए सब देव-दानवों को मैं बल देता हूँ। अब ये लोग समुद्र में मन्दराचल को डालकर उसे मथना शुरू करें।

सूतजी कहते हैं—नारायण के वचन सुनकर और बल पाकर देव-दानव फिर समुद्र को मथने लगे। तब मथे जा रहे सागर से असंख्य किरणधारी, शान्तमूर्ति, उज्ज्वलवर्ण चन्द्रमा उत्पन्न हुए। उसके बाद घृत से कमलवासिनी लक्ष्मी देवी, फिर सुरा देवी, फिर उच्चैःश्रवा घोड़ा, फिर विष्णु के हृदय में शोभायमान दिव्य कौस्तुभ मणि उत्पन्न हुई। [ कामधेनु, कल्पवृक्ष, अप्सरा आदि और रत्न भी निकले। ] ये सब रत्न आकाश-मार्ग होकर देवताओं के पास पहुँच गये।

फिर सफ़ेद कमण्डलु (कलश) में अमृत लिये हुए साक्षात् धन्वन्तरि देव देख पड़े। इस अद्भुत घटना को देखकर अमृत के लिए "यह मुझको दो, यह मेरा है" कहकर सब दानव कोलाहल करने लगे। इसके उपरान्त चार दाँतोंवाला सफ़ेद गजराज ऐरावत निकला। उसे इन्द्र ने ले लिया। तब भी देवता और दैत्य बराबर ४० सागर को मथते गये। अब उससे कालकूट विष निकला। धुएँ सहित प्रज्वलित अग्नि की तरह उस भयङ्कर विष ने पृथ्वी भर को व्याकुल कर डाला। कालकूट की कड़वी गन्ध सूँघकर त्रिलोकी के जीव अचेत हो गये। यह देखकर ब्रह्मा ने त्रिलोकी की रक्षा के लिए भगवान् भवानीपति शङ्कर से कहा। शङ्कर ने उसी समय उस विष को पी लिया। तभी से शिव के गले में स्याही आ गई और वे नीलकण्ठ कहलाने लगे।



इस अद्भुत चरित्र को देखकर अमृत और लक्ष्मी की ओर से निराश दानवगण देवताओं से लड़ने-झगड़ने लगे [ और अमृत का कलश भी छीन ले गये ]। यह हाल देखकर नारायण ने माया से स्त्री का मोहिनी-रूप धारण कर दानवों को छलने का उपाय निकाला। मोहिनी को अधिक हेलमेल दिखाते देखकर दानव ऐसे मोहित हो गये कि उन्होंने मोहिनी को अमृत का कलश सौंप दिया। ४६

## उन्नीसवाँ अध्याय

देवताओं का अमृत पीना। राहु का सिर कटना।
देवता-दैत्यों का युद्ध। दैत्यों की हार

सूतजी कहते हैं—नारायण ने इस तरह दानवों से अमृत ले लिया और नरदेव के साथ वहाँ से देवताओं की ओर चले। अब दैत्य लोग अनेक अस्त्र-शस्त्र लेकर उनके पीछे दौड़े। बड़ा कोलाहल मच गया। नारायण ने वह अमृत लाकर देवताओं को दिया और उन्होंने उसे आनन्द से पीना शुरू किया। राहु ने माया से देवताओं का रूप धारण कर लिया और वह देवमण्डली में जाकर बैठ गया। राहु को भी अमृत मिल गया और उसने पी लिया। अमृत राहु के गले तक ही पहुँचा था कि देवताओं का हित करने के लिए चन्द्रमा और सूर्य ने कह

दिया कि यह राहु दानव है। तब नारायण ने सुदर्शन चक्र से उस दैत्य का सिर काट डाला। पर्वत-शिखर ऐसा राहु का सिर आकाश में पहुँचकर भयङ्कर शब्द करने लगा; और उसके रुण्ड ने गिरकर पर्वत-वन-द्वीप सहित पृथ्वी-मण्डल को हिला दिया। अमृत पीने के कारण राहु मरा नहीं। तभी से, इसी कारण, शत्रु समझकर समय-समय पर राहु चन्द्रमा
९ और सूर्य को ग्रसने के लिए दौड़ता है।



अब नारायण भी वह स्त्री का रूप छोड़कर अनेक अस्त्र-शस्त्रों से दानवों का नाश करने लगे। इस तरह खारी समुद्र के किनारे महाघोर देवासुर-संग्राम होने लगा। हज़ारों तीक्ष्ण प्रास, तोमर, तलवार, शक्ति, गदा आदि शस्त्र चलने लगे। चक्र से कट-कटकर रक्त उगलते हुए अनेक असुर पृथ्वी पर गिरने लगे। सुवर्ण की मालाएँ पहने वीरों के सिर पट्टिश आदि शस्त्रों से कटकर युद्ध-भूमि को भयानक बनाने लगे। मरे हुए दैत्यों की, रुधिर से लथपथ, लाशें धातु से रँगे हुए पहाड़ों के शिखर सी जान पड़ती थीं। सूर्य अस्त होते समय परस्पर शस्त्र चलाकर मार रहे और मर रहे वीरों का घोर हाहाकार आकाश में गूँज उठा। दूर पर बेलन आदि शस्त्रों से और पास आने पर घूसों से परस्पर प्रहार कर रहे वीरों का शब्द स्वर्ग में जाकर गूँज उठा। "दौड़ो,
१८ मारो, काटो, गिराओ, पीछा करो" इत्यादि घोर शब्दों के सिवा और कुछ न सुन पड़ता था।

इस प्रकार युद्ध ने जब भयानक रूप धारण किया तब नर-नारायण दोनों वहाँ पर उपस्थित हुए। नर ने दिव्य धनुष चढ़ाया। यह देखकर नारायण ने भी दानवों का नाश करनेवाले अपने सुदर्शन चक्र को याद किया। स्मरण करते ही शत्रु-नाशन, अग्नि के समान प्रकाशमान, युद्ध में भयानक सुदर्शन चक्र आकाश से नारायण के पास आ गया। विष्णु भगवान् ने शत्रुओं के नगरों को तोड़नेवाले अग्नितुल्य भयङ्कर चक्र को बड़े वेग से दैत्यसेना पर चलाया। भगवान् के हाथ से वेग के साथ छूटे हुए उस कालतुल्य चक्र ने बार-बार घूमकर हज़ारों दानवों को काटकर गिरा दिया। कहीं पर वह चक्र दानवसेना को अग्नि की तरह भस्म कर देता था, कहीं पर केवल सिर काटता और पिशाच की तरह रक्त चाटता चला जाता था।

महाबली दैत्यगण भी पस्त न होकर आकाश में जाकर पत्थरों की वर्षा से देवसेना को पीड़ित करने लगे। आकाश से मेघखण्ड ऐसे पहाड़ गिर-गिरकर देवताओं को भयभीत करने लगे। उनकी चोटियों से टूट-टूटकर बड़े-बड़े वृक्ष भयानक शब्द करते हुए गिरते जाते थे।

बड़े-बड़े पर्वतों के गिरने से यह पृथ्वी हिल उठी। परस्पर गरजकर युद्ध करने के लिए ललकार रहे वीरों का शब्द युद्धभूमि में चारों ओर गूँज रहा था। तब नर ने सुवर्ण-मण्डित बाणों से आकाशमण्डल को छा लिया। उनके बाणों से पर्वतों के शिखर चूर-चूर हो गये। आकाश में नारायण के चक्र ने अग्नि के समान दानवों का नाश करना शुरू किया। तब सब दानव, देवताओं के द्वारा, पीड़ित होकर पृथ्वी के नीचे और खारी समुद्र के भीतर चले गये।

देवताओं ने इस प्रकार अमृत और विजय पाकर मन्दराचल को पहली ही जगह पर जाकर रख दिया और उसके बाद आकाशमण्डल को प्रतिध्वनित करते हुए वे अपने-अपने लोक को चले गये। इन्द्र ने निधिस्वरूप अमृत का कलश नर के पास रख दिया। उसकी रक्षा करने का काम उन्हें सौंपकर इन्द्र और सब देवता निश्चिन्त हो गये। ३१

---

## बीसवाँ अध्याय

कद्रू और विनता का बाज़ी लगाना। सर्पों को कद्रू का शाप।
कश्यप को विष दूर करनेवाली विद्या मिलना

उग्रश्रवा कहते हैं—भगवन्! जिस तरह और जिस लिए देवताओं ने समुद्र को मथा और समुद्र से जैसे महाबली श्रीमान् उच्चैःश्रवा निकला, सो सब मैंने आपको सुनाया। अब आगे की कथा सुनिए। उच्चैःश्रवा को उस समय दूर से देखकर कद्रू ने विनता से कहा—बहन, भला बताओ, इस उच्चैःश्रवा का कैसा रङ्ग है? विनता ने कहा—इस श्रेष्ठ घोड़े का रङ्ग मुझे तो सफ़ेद ही जान पड़ता है। तुम बतलाओ, कैसा रङ्ग है? फिर हम तुम इस पर बाज़ी लगावेंगी। कद्रू ने कहा—मैं तो समझती हूँ कि इस घोड़े की पूँछ के बाल काले हैं। आओ, मैं बाज़ी लगाने को तैयार हूँ। जो हारे वह दूसरी की दासी होकर रहे।



उग्रश्रवा कहते हैं, यों दासी होने का दाँव बदकर दोनों बहनें यह कहकर अपने घर चली गईं कि अच्छा, कल सबेरे इस घोड़े को देखना होगा। कद्रू के मन में कपट था। वह छल करके विनता को दासी बनाना

चाहती थी। इसलिए उसने अपने हज़ार बेटों से कहा—तुम लोग उच्चैःश्रवा घोड़े की पूँछ में काले बाल बनकर लग जाओ, जिसमें मुझे विनता की दासी न बनना पड़े। कद्रू के पुत्रों ने माता की यह आज्ञा नहीं मानी। तब उनको कद्रू ने कुपित होकर शाप दिया कि राजर्षि जनमेजय के सर्पयज्ञ में तुम अग्नि में गिरकर जलोगे। दैवसंयोग से कद्रू के दिये हुए इस अत्यन्त घोर शाप को सुनकर सब देवताओं सहित ब्रह्मा ने उसका अनुमोदन किया। ब्रह्माजी ने सोचा कि ये साँप तीक्ष्ण विषवाले और प्राणियों का काल हैं। इनके कम होने में प्रजा का हित ही है। माता ने यह शाप देकर अच्छा ही किया। जो लोग दूसरों को सताते हैं उन्हें दैव की ओर से ऐसा ही कठिन दण्ड मिलता है। ब्रह्माजी ने इसके लिए कद्रू की सराहना की।

ब्रह्माजी ने कश्यप को बुलाकर कहा—पुत्र, तुम्हारे वीर्य से ये विषैले नाग उत्पन्न हुए हैं [ इनसे संसार की कुछ भलाई नहीं होती ]। इन क्रूर प्रकृति के साँपों को ऐसा शाप देकर कद्रू ने कुछ बुरा नहीं किया। इसके लिए तुम कद्रू पर क्रोध न करना। यज्ञ में सर्पों का नाश होना ही था। ऐसे वचनों से प्रसन्न करके प्रजापति ब्रह्मा ने कश्यप को विष दूर करनेवाली विद्या दी।

---

## इक्कीसवाँ अध्याय

### उच्चैःश्रवा को देखने के लिए कद्रू और विनता का जाना

सूतपुत्र कहते हैं— रात बीत गई, सबेरा हुआ; तब कद्रू और विनता दोनों बहनें बाज़ी लगाकर पास से उच्चैःश्रवा को देखने के लिए चलीं। राह में उन्हें जल की राशि समुद्र देख पड़ा। दोनों बहनों ने देखा, समुद्र का अथाह जल लहरा-लहराकर भयानक शब्द कर रहा है। उसमें विचित्र शरीरवाले तिमि, तिमिङ्गिल, मगर, कच्छप और अन्यान्य घोर रूपवाले हज़ारों जल-जन्तु बिचर रहे हैं। इन जलचर जीवों के डर से कोई उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकता। नदियों के स्वामी समुद्र को लोग रत्नों की खान, वरुण का घर और नागों का लोक कहते हैं। समुद्र में बड़वानल अग्नि और अमृत का निवास है। असुरगण और अनेक भयानक प्राणी समुद्र के भीतर रहते हैं। ऐसा कोई न होगा जो सागर को देखकर भयभीत न हो।

सागर का जल अत्यन्त पवित्र है, उसके दर्शन से भी पुण्य होता है। घोर समुद्र में जलचरों का और जल के टकराने का भयानक शब्द उठा करता है और भँवर पड़ा करते हैं। हवा की थपेड़ों से समुद्र का जल किनारे की भूमि से टकराया करता है और लहर पर लहर उठा करती है। जान पड़ता है, तरङ्गरूपी हाथ मटकाकर समुद्र चारों ओर नाच रहा है। चन्द्रमा की बढ़ती और घटती के अनुसार समुद्र में ज्वार-भाटा आया करता है।

उस समय बड़ी ऊँची लहरें उठकर दूर-दूर तक फैलने लगती हैं। परम पवित्र विष्णु का पाञ्चजन्य शङ्ख इसी समुद्र से निकला है। डूबी हुई पृथ्वी को ऊपर लाने के लिए वराह-रूप विष्णु इसी समुद्र के भीतर घुसे थे। तपस्वी अत्रि सौ वर्ष तक भीतर रहकर भी समुद्र की थाह नहीं पा सके। समुद्र पाताल तक गहरा है। [ समुद्र को सबने अपार और अनन्त माना है। ] प्रलय के उपरान्त सृष्टि के आरम्भ तक इसी समुद्र में शेषशय्या पर भगवान् नारायण योगनिद्रा में शयन करते हैं और नाभि-कमल से उत्पन्न ब्रह्मा उनकी आराधना करते हैं। इन्द्र के वज्र से डरे हुए मैनाक पर्वत को अपने में छिपाकर अभय देनेवाला सागर ही है। देवासुर-सङ्ग्राम में हारे हुए दानव समुद्र के ही शरणागत हुए थे। पानी पिलाकर बड़वानल को यही शान्त किया करता है। अभिसारिका स्त्रियों की तरह सैकड़ों नदियाँ, मानो आपस की लाग-डाँट से, तेज़ी के साथ चलती हुई समुद्र से आकर मिलती हैं। कद्रू और विनता दोनों ने आकाश से ऐसे गम्भीर, उग्र जलचर जन्तुओं से भरे हुए, अपार, अथाह समुद्र को देखा। १९

---

## बाईसवाँ अध्याय

### साँपों का माता को प्रसन्न करने के लिए आप से जाकर उच्चैःश्रवा की पूँछ में लिपटकर उसे काला कर देना

सूतजी कहते हैं—इधर माता के दिये शाप को सुनकर नागों ने परस्पर सलाह करके उसकी आज्ञा का पालन करने के लिए निश्चय कर लिया। उन्होंने कहा—भाइयो, हमारी माता का मनोरथ पूरा न होगा तो वह पुत्र-स्नेह को भुलाकर हमें शाप से भस्म कर देगी और यदि वह प्रसन्न हो जायगी तो अवश्य ही अपने शाप से हमको बचा देगी। इसलिए आओ, चलकर उच्चैःश्रवा की पूँछ के बाल काले कर दें।

यों सलाह करके सब नाग कद्रू और विनता के पहुँचने से पहले ही जाकर उच्चैःश्रवा की पूँछ में लिपट गये। उधर कद्रू और विनता गम्भीर और अपार समुद्र के किनारे की और भीतर की शोभा निहारती हुई आकाश-मार्ग से उस पार पहुँच गईं। १२

---

## तेईसवाँ अध्याय

### गरुड़ की उत्पत्ति और स्तुति

उग्रश्रवा कहते हैं—विनता और कद्रू दोनों जल्दी से समुद्र को लाँघकर उच्चैःश्रवा के पास पहुँच गईं। दोनों ने महावेगशाली श्रेष्ठ घोड़े को देखा। उसका रङ्ग चन्द्रमा की किरणों

से भी उज्ज्वल था; केवल पूँछ के बाल भर काले थे। यह देखकर विनता को बड़ा खेद हुआ। अब कद्रू ने, शर्त के अनुसार, विनता को अपनी दासी बना लिया। बाज़ी हार जाने के कारण विनता ने विवश होकर दुःखित भाव से अपनी सौत की दासी बनना स्वीकार कर लिया।

इसी बीच में ठीक समय पर यहाँ, माता की सहायता के बिना, आप ही अण्डा फोड़कर गरुड़ बाहर निकल आये। अपनी इच्छा के अनुसार रूप रखने की, अपनी इच्छा के अनुसार जहाँ चाहें वहाँ जाने की और अपनी इच्छा के अनुसार बल रखने की शक्ति धारण करनेवाले महाबली पक्षियों के राजा गरुड़ अग्निराशि के समान बढ़कर अपने तेज से दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए आकाश में पहुँचकर घोर शब्द करने लगे। बिजली के समान चमक रही आँखों से भयानक और प्रलयकाल की आग के समान तेजस्वी
५ गरुड़ को देखकर सब देवताओं को विस्मय और भय हुआ।

तब सब डरे हुए देवता भगवान् अग्नि की शरण में जाकर प्रणाम करके कहने लगे—हे अग्निदेव, आप अकस्मात् ऐसा भयानक रूप रखकर हमको जलाने के लिए क्यों आ रहे हैं? यह देखिए, पर्वत के समान अग्नि का ढेर हमारी ओर बढ़ता चला आ रहा है। अग्नि ने कहा—हे देवगण, तुम्हारा यह समझना ठीक नहीं। यह अग्निराशि नहीं है। ये मेरे तुल्य तेजस्वी और बलवान् पक्षियों के राजा गरुड़ अभी उत्पन्न होकर आकाश में आये हैं। ये विनता के पुत्र परम तेजस्वी गरुड़ सर्पों और दैत्यों के शत्रु तथा तुम लोगों के हितकारी हैं—तुम डरते क्यों हो? गरुड़ के असीम तेज को देखकर ही तुम लोग इस भ्रम में पड़ गये हो।

उग्रश्रवा कहते हैं कि अग्नि के यों कहने पर सब देवता और ऋषि गरुड़ के आगे दूर पर खड़े होकर इस प्रकार उनकी स्तुति करने लगे—हे महाभाग, पक्षियों के राजा, तुम ऋषि हो। तुम देवता हो। तुम स्वामी हो। तुम त्रिलोकी में तपनेवाले सूर्य हो। तुम प्रजापति और ब्रह्मा हो। तुम इन्द्र हो। तुम महादेव हो। तुम जगत् के स्वामी हो। तुम मुख्य हो। तुम ब्राह्मण हो। तुम अग्नि और पवन हो। तुम जीवात्मा और परमात्मा हो। तुम देवताओं में श्रेष्ठ विष्णु हो। तुम ज्ञान और मोह हो। तुम महत्तत्त्व हो। तुम अमृत हो। तुम यश हो। तुम प्रभा हो। तुम बुद्धि-वृत्ति हो। तुम हम देवताओं की रक्षा करनेवाले हो। तुम बलधारी, परोपकारी, परम पराक्रमी, समृद्धिशाली और असह्य तेजवाले हो। हे यशस्वी, भूत-भविष्य-वर्त्तमान सब तुम्हीं से प्रकट हुआ है। तुम उत्तम हो। यह चराचर जगत्, सूर्य्य से किरणों के समान, तुम्हीं से प्रकाशित होता है। तुम्हारा तेज सूर्य के तेज से भी
२० बढ़कर है। तुम अन्तक हो। ये सब स्थिर और अस्थिर पदार्थ तुम्हारा ही अंश हैं। हे अग्नि के समान तेजवाले, तुम कुपित होकर सूर्य्य के समान सारी प्रजाओं को जला सकते हो। युग-परिवर्तन करने को प्रलयकाल का अग्नि जिस तरह प्रकट होकर त्रिलोकी को भस्म

करता है उसी तरह तुम भयङ्कर रूप से देख पड़ रहे हो। हे महापराक्रमी, अग्नि के समान तेजस्वी, बिजली के समान प्रकाशमान, पक्षियों के राजा गरुड़! हम तुम्हारी शरण में आये हैं। हे जड़-चेतन-स्वरूप, वरदानी, अजेय, जगत् के स्वामी! तुम्हारे तेज से सब संसार तप रहा है। तपे हुए सुवर्णसदृश तेज से तुम हम सब देवताओं की रक्षा करो। विमानों पर विचरनेवाले देवगण भय के मारे आकाश में इधर-उधर भाग रहे हैं। हे प्रभु, तुम दयासिन्धु महर्षि कश्यप के पुत्र हो। क्रोध न करके सारे संसार पर दया करो। तुम ईश्वर हो, इससे शान्त भाव धारण करो। महावज्र की कड़कड़ाहट के समान तुम्हारे भयङ्कर शब्द से स्वर्ग और पृथ्वी दोनों काँप रहे हैं। डर से हमारा हृदय भी काँप रहा है। हे पक्षियों के राजा, इस अग्नि-तुल्य अपने शरीर को अब न बढ़ाओ। कुपित काल के समान तुम्हारे अत्यन्त भयानक रूप को देखकर हमारा हृदय धड़क रहा है। हम प्रार्थना कर रहे हैं। हम पर प्रसन्न होकर सबका भला करो। २७

---

## चौबीसवाँ अध्याय

राहु के उपद्रव से सूर्य का क्रोध। अरुण का ब्रह्मा की आज्ञा से सूर्य का रथ हाँकना स्वीकार करना

उग्रश्रवा कहते हैं—देवताओं के मुँह से सुनकर और आप देखकर गरुड़ ने अपने शरीर और तेज को कम कर लिया। गरुड़ ने कहा—सब लोग मेरे भयानक रूप को देखकर व्याकुल हो रहे हैं, इससे अब मैं अपने तेज को समेटे लेता हूँ। उग्रश्रवा कहते हैं कि अपने तेज को समेटकर पराक्रमी गरुड़ बड़े भाई अरुण को अपनी पीठ पर सवार करके, कश्यप के घर से समुद्र के किनारे, माता के पास जा पहुँचे। इसी समय सूर्यनारायण [ देवताओं पर कोप करके ] अत्यन्त उग्र तेज से तीनों लोकों को जलाने के लिए तैयार हुए। यह देखकर गरुड़ ने अरुण को सूर्य के आगे स्थापित कर दिया।

महर्षि रुरु ने अपने पिता प्रमति से पूछा—सूर्य ने किस कारण तीनों लोकों को जलाना चाहा? और देवताओं ने ही उनका ऐसा क्या अपराध किया था, जिससे उन्होंने देवताओं पर इतना क्रोध किया? प्रमति ऋषि बोले—पहले कहा जा चुका है कि देवमण्डली में जिस समय राहु अमृत पी रहा था उस समय सूर्य-चन्द्र के चिताने से विष्णु ने उसका सिर काट डाला था। तब से राहु चन्द्रमा और सूर्य से वैर मानकर समय-समय पर उनको ग्रसने के लिए जाता और कष्ट पहुँचाता है। राहु के द्वारा सताये जाने पर सूर्य को क्रोध हो आया। उन्होंने अपने मन में कहा—मैंने सब देवताओं की भलाई के लिए राहु से वैर मोल लिया।

अब देखता हूँ कि उस अनर्थकारी पाप का फल अकेले मुझी को भोगना पड़ता है। कष्ट के समय अपनी सहायता करनेवाला कोई नहीं देख पड़ता। राहु मुझे ग्रसता है और सब देवता चुपचाप देखते हैं। इसलिए अब मैं सारे संसार को नष्ट कर दूँगा। यह निश्चय करके सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँचे। वहाँ सूर्य ने सारे विश्व को नष्ट करने के लिए अपना तेज बढ़ाया। यह देखकर सब ऋषि लोग देवताओं के पास पहुँचे और कहने लगे—आज आधी रात के समय सब लोगों के लिए भयानक अग्नि-दाह देख पड़ेगा। उसमें तीनों लोक भस्म हो जायँगे। तब सब ऋषियों को साथ लेकर देवता लोग ब्रह्माजी के पास पहुँचे। देवताओं ने नम्रता के साथ निवेदन किया कि भगवन्, आज अचानक यह अग्निदाह की आशङ्का कैसी है? अभी सूर्य का उदय नहीं हुआ, तो भी ताप से तीनों लोक मानो जले जा रहे हैं। सूर्य का उदय होने पर न जाने कैसी शोचनीय दशा होगी।

ब्रह्मा ने कहा—सूर्य ने कुपित होकर तीनों लोकों को जलाने का विचार कर लिया है। वे उदय होते ही त्रिलोकी को जलाकर भस्म कर देंगे। [ किन्तु तुम डरो नहीं। ] इसका उपाय मैंने पहले ही सोच रक्खा है। बड़े भारी शरीरवाले, महातेजस्वी ( कश्यप के पुत्र ) अरुण सूर्य के आगे [ रथ पर ] बैठेंगे। वे सूर्य के सारथी होकर उनके तेज को धीमा कर देंगे। इस प्रकार देवताओं, ऋषियों और सब लोकों का कल्याण होगा।

प्रमति कहते हैं—अरुण ने ब्रह्मा की आज्ञा के अनुसार उसी तरह सब काम किया। सवेरे सूर्योदय होने पर सूर्य के तेज को ढकते हुए अरुण उनके आगे बैठे और सारथी का काम करने लगे। सूर्य के कुपित होने का और अरुण के सारथी बनने का वृत्तान्त तुमने सुन लिया। अब पहले के अपने प्रश्न का उत्तर सुनो।

---

## पचीसवाँ अध्याय

विनता का दासीभाव, कद्रू की की हुई इन्द्र की स्तुति

उग्रश्रवा कहते हैं—इसके उपरान्त महाबली, महापराक्रमी, मनमाने स्थान को जाने की शक्ति रखनेवाले गरुड़ समुद्र के उस पार अपनी माता के पास पहुँच गये जहाँ पर कि बाज़ी लगाकर हारी हुई विनता अपनी सौत कद्रू के पास उसकी दासी होकर दुःखित भाव से रहती थीं। गरुड़ भी वहीं अपनी माता के पास रहने लगे। एक दिन विनता अपने पुत्र गरुड़ के पास बैठी हुई थीं। इसी समय कद्रू ने उनको बुलाकर कहा—बहन विनता, समुद्र के भीतर एकान्त में रमणीय दर्शनीय एक द्वीप है; उसमें सब नाग रहते हैं। तुम अपनी पीठ पर चढ़ाकर मुझको

वहाँ ले चलो। सूतजी कहते हैं—तब गरुड़ की माता विनता ने कद्रू को अपनी पीठ पर लाद लिया और माता के कहने से गरुड़ ने भी नागों को अपनी पीठ पर सवार कर लिया। गरुड़जी आकाश-मार्ग होकर सूर्य के सामने ही चले। गरुड़ की पीठ पर सवार नाग, सूर्य के तेज से, विह्वल होकर अचेत हो गये। पुत्रों की यह दशा देखकर कद्रू इस प्रकार इन्द्र की स्तुति करने लगी—



हे सब देवताओं के ईश्वर, तुमको प्रणाम है। हे इन्द्राणी के स्वामी, हे सहस्र-लोचन, हे बल और नमुचि दानव को मारनेवाले, तुमको प्रणाम है। सूर्य के तेज से जल रहे नागों को जल बरसाकर जलने से बचाओ। हे देवराज, इस समय तुम्हीं हमारी रक्षा कर सकते हो। हे पुरन्दर, तुम खूब जल बरसा सकते हो। तुम्हीं मेघ हो, तुम्हीं वायु हो, तुम अग्नि हो। आकाश में तुम्हीं बिजली के रूप से चमकते हो। तुम्हारी ही आज्ञा से मेघ घिर आते हैं। लोग तुम्हीं को महामेघ कहते हैं। तुम्हीं अद्वितीय घोर वज्र हो। तुम्हीं गरजने- १०
वाले बादल हो। तुम्हीं संसार की सृष्टि और संहार करते हो। तुम अपराजित हो। तुम सब प्राणियों की ज्योति सूर्य हो। तुम अग्नि हो। तुम्हीं विचित्र महाभूत हो। तुम सब देवताओं के राजा हो। तुम विष्णु हो, सहस्र-नयन हो, देव ( प्रकाशक ) हो, परमगति हो। तुम अक्षय अमृत हो। तुम परम पूजित चन्द्रमा हो। तुम मुहूर्त्त हो, तिथि हो, लव-क्षण आदि समय हो। तुम शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष हो। कला, काष्ठा, त्रुटि आदि समय के छोटे-छोटे हिस्से हो। संवत्सर, ऋतु, महीने, रात और दिन सब तुम्हारे ही रूप हैं। पर्वतों और वनों से युक्त पृथ्वी तुम हो। सूर्य-सहित अन्धकार-रहित आकाश तुम हो। तिमि-तिमिङ्गिल-मकर आदि जल-जन्तुओं से युक्त और बड़ी-बड़ी लहरों से भयानक समुद्र तुम हो। तुम महा यशस्वी हो। इसी से बुद्धिमान् महर्षिगण शान्त चित्त से तुम्हारी आराधना करते हैं। यज्ञों में तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम प्रसन्न होकर यजमान की भलाई करने के लिए स्वाहाकार से प्रदत्त हवि और सोमरस ग्रहण करते हो। परलोक में मङ्गल प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण सदा तुम्हारी उपासना किया करते हैं। हे महापराक्रमी, सारे वेद और वेदाङ्ग तुम्हारी ही अचिन्त-नीय अनन्त महिमा का कीर्त्तन करते हैं। यज्ञपरायण ब्राह्मण लोग तुम्हारे स्वरूप का निश्चय करने के लिए यत्न के साथ वेदों के अङ्गों का मनन किया करते हैं। १७

## छब्बीसवाँ अध्याय

स्तुति से प्रसन्न होकर इन्द्र का जल बरसाना

उग्रश्रवा कहते हैं—कद्रू के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् इन्द्र ने उसी समय नीले रङ्ग के बादलों से आकाश को घेर लिया। इन्द्र ने मेघों को आज्ञा दी कि हे मेघो, तुम शीतल अमृत-सदृश पानी बरसाओ। बिजली के प्रकाश से उज्ज्वल वे मेघ गरज-गरजकर जल बरसाने लगे। जान पड़ा, जैसे आकाश में प्रलयकाल उपस्थित हो गया है; या बादलों के गरजने, बिजली के चमकने और मेंह के बरसने से आकाश-मण्डल नृत्य कर रहा है। उस बदली के दुर्दिन में चन्द्रमा और सूर्य बिलकुल छिप गये। इन्द्र के जल बरसाने से नागों को बड़ा हर्ष हुआ। पृथ्वीमण्डल में चारों ओर जल ही जल देख पड़ने लगा। शीतल वर्षा का जल पृथ्वी के बिलों से रसातल तक पहुँच गया। उधर अपनी माता कद्रू के साथ सब साँप
८ समुद्र के भीतर रमणक द्वीप में पहुँच गये।

---

## सत्ताईसवाँ अध्याय

गरुड़ का विनता से दासी होने का कारण पूछना। साँपों का दासीभाव से विनता के छूटने का उपाय बताना

उग्रश्रवा कहते हैं—गरुड़ की पीठ पर सवार सब नाग जल बरसने की ठण्डक से आनन्द के साथ उस द्वीप में पहुँच गये। उस द्वीप को विश्वकर्मा ने बनाया है। वहाँ जल के जीव मगर बहुत रहते हैं। वहाँ पहुँचकर नागों ने पहले खारी समुद्र की सैर की। फिर वे गरुड़-सहित सुन्दर बाग़ के भीतर गये। नागों ने देखा, सागर का पानी उस बाग़ के भीतर तक लहराता है। विचित्र फलों और फूलों से सुशोभित वृक्षों पर बैठे हुए अनेक पक्षी तरह-तरह की बोलियाँ बोल रहे हैं। वहाँ सुन्दर भवन बने हैं। बड़े-बड़े सरोवर हैं, जिनमें स्वच्छ जल भरा है और कमल के फूल खिल रहे हैं। दिव्य सुगन्ध को लिये मानो पवन पङ्खा करता है। चन्दन के वृक्ष इतने ऊँचे हैं मानो आकाश को छूने के लिए ऊपर की ओर हाथ उठा रहे हैं। हवा से हिल रहे वृक्षों से फूलों की वर्षा हुआ करती है। वहाँ के वृक्ष मानो जान-जानकर आदर के मारे नागों पर पुष्प-वृष्टि किया करते हैं। मतवाले भौंरे इधर-उधर गुनगुनाते हुए घूम रहे हैं। उस बाग़ के भीतर जाने से ही मन प्रसन्न हो जाता है। गन्धर्वों और अप्सराओं को वह बाग़ बहुत प्यारा है। वह बाग़ रमणीय, पवित्र, दर्शनीय

और सबके—विशेषकर कद्रू के पुत्रों के—मन को हरनेवाला है। उस बाग़ में कुछ समय तक सब नाग विहार करते रहे। फिर उन्होंने महापराक्रमी पक्षिराज गरुड़ से आकर कहा—गरुड़, तुम हमको अब किसी और स्वच्छ जलवाले रमणीय द्वीप में ले चलो। तुम आकाश में उड़नेवाले होने के कारण अनेक मनोहर देशों को देखते हो। ११

साँपों की बात सुनकर, कुछ सोचकर, गरुड़ ने अपनी माता विनता से पूछा—माता, साँपों की आज्ञा मानने के लिए मैं क्यों विवश किया जाता हूँ? विनता ने कहा—बेटा गरुड़, मेरी सौत कद्रू ने दग़ा करके मुझसे बाज़ी जीत ली है; इसी से मैं उसकी दासी हो गई हूँ। सूतजी कहते हैं—माता से सब वृत्तान्त सुनकर गरुड़ को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने नागों के पास जाकर कहा—भाइयो, क्या लाकर देने, क्या पता लाने या पौरुष करने से मैं अपनी माता-सहित तुम्हारे दासभाव से छुटकारा पा सकता हूँ? इसके बदले में तुम जो कहो वह करने को मैं तैयार हूँ। यह सुनकर साँपों ने गरुड़ से कहा—तुम हमारे लिए अमृत ला दो तो तुमको और तुम्हारी माता को हम छुटकारा दे देंगे। १६

---

## अट्ठाईसवाँ अध्याय

### अमृत लेने के लिए गरुड़ का जाना

उग्रश्रवा कहते हैं—साँपों का अभिमत सुनकर गरुड़ ने अपनी माता से कहा—माता, मैं अमृत लेने जाता हूँ। परन्तु मुझे भूख बहुत लगी है। कुछ खाने के लिए बताओ। विनता ने कहा—समुद्र के भीतर एक एकान्त टापू में कई हज़ार मल्लाह रहते हैं। तुम उनको भक्षण करके अमृत ले आओ। किन्तु बेटा देखो, किसी ब्राह्मण को मारने या खाने का इरादा कभी न करना। ब्राह्मण अग्नि के समान है। ब्राह्मण की हत्या करने से किसी का भला नहीं हो सकता। ब्राह्मण अवध्य है। यदि ब्राह्मण कोप करे तो वह अग्नि, सूर्य, विष और शस्त्र के समान विनाश कर सकता है। ब्राह्मण सब जातियों का गुरु है। इसी से सब लोग उसका आदर करते हैं। बेटा, अत्यन्त क्रोधित होकर भी तुम कभी किसी ब्राह्मण की हत्या या ब्राह्मण से द्रोह न करना। अग्नि और सूर्य उस तरह भस्म नहीं करते जिस तरह सदाचारी ब्राह्मण कुपित होकर सपरिवार भस्म कर देता है। इन अनेक लक्षणों से तुम ब्राह्मणों को पहचान लेना। ब्राह्मण सब वर्णों में श्रेष्ठ, अन्य वर्णों का पिता और गुरु के समान पूजनीय है।

गरुड़ ने कहा—माता! ब्राह्मण का रूप, स्वभाव और पराक्रम कैसा होता है? ब्राह्मण देखने में अग्नि के समान उग्र होता है या सौम्यमूर्त्ति? मुझे ब्राह्मण के लक्षण बताओ, जिनसे

मैं वहाँ ब्राह्मण को पहचान लूँ। विनता ने कहा—"पुत्र, जो तुम्हारे गले में पहुँचकर अङ्गारे
१० के समान जलाने लगे—मछली के काँटे के समान खटकने लगे उसे तुम ब्राह्मण समझना। जो तुम्हारे पेट के भीतर जाकर पचने न पावे उसे तुम ब्राह्मण समझकर उगल देना।" फिर गरुड़ के अमित पराक्रम को जानकर भी पुत्र के स्नेह से विनता ने आशीर्वाद देकर कहा—बेटा गरुड़, वायु तुम्हारे दोनों परों की रक्षा करें, चन्द्रमा और सूर्य तुम्हारी पीठ की रक्षा करें, अग्नि तुम्हारे मस्तक की रक्षा करें और वसुगण तुम्हारे सब शरीर की रक्षा करें। पुत्र, मैं भी तुम्हारे मङ्गल के लिए यहीं देवताओं की आराधना किया करूँगी। जाओ, कार्य सिद्ध करके शीघ्र लौट आओ।

उग्रश्रवा कहते हैं—माता के वचन सुनकर, दोनों पर फैलाकर, गरुड़ आकाश की ओर उड़े। भूखे काल और मृत्यु की तरह बलवान् गरुड़ उस मल्लाहों की बस्ती में पहुँच गये। उन निषादों का संहार करने के लिए गरुड़ ने परों से इतनी धूल उड़ाई कि वह आकाश भर में छा गई। उस धूल से समुद्र का जल सूख गया। गरुड़ के वेग से आसपास के वृक्ष हिल उठे। अब गरुड़, मुँह फैलाकर, मल्लाहों के निकलकर जाने की राह में बैठ गये। अचानक होनेवाले इस उत्पात से घबरा-घबराकर निषाद अपने घरों से निकल पड़े और साँपों को खानेवाले गरुड़ के मुँह के भीतर घुसने लगे। जैसे प्रबल आँधी से वन के वृक्ष हिलने पर घबराये हुए पक्षी उड़कर आकाश को जाते हैं वैसे ही गरुड़ के परों की हवा और धूल से विह्वल हज़ारों मल्लाह गरुड़ के फैले हुए मुँह के भीतर घुस गये। तब महाबली भूखे गरुड़ मुँह
२१ चलाकर हज़ारों मल्लाहों को खाने लगे।

---

## उनतीसवाँ अध्याय

गले को जला रहे ब्राह्मण को गरुड़ का उगल देना। गरुड़ और कश्यप की बातचीत। गज-कच्छप का वृत्तान्त। गज-कच्छप को गरुड़ का पकड़ना। वृक्ष की शाखा का टूटना

उग्रश्रवा कहते हैं—मल्लाहों के साथ एक ब्राह्मण अपनी स्त्री-सहित गरुड़ के गले में चला गया। वहाँ पहुँचकर आग के अङ्गारे के समान वह गले को जलाने लगा। तब, आकाश में अवस्थित, गरुड़ ने उससे कहा—हे ब्राह्मण, तुम शीघ्र निकल जाओ। मैं मुँह फैलाता हूँ। सदा पापकर्म करनेवाले ब्राह्मण को भी मैं मार नहीं सकता। इस प्रकार कह रहे गरुड़ से उस ब्राह्मण ने कहा—यह मेरी स्त्री जाति की मल्लाहिन है। इसे भी मेरे साथ

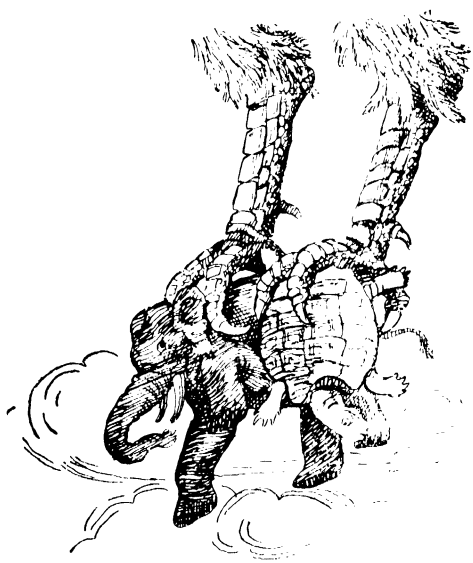
निकल जाने दीजिए। गरुड़ ने कहा—अच्छी बात है, इस मल्लाहिन को भी लेकर तुम शीघ्र निकल जाओ। अभी तुम भस्म नहीं हुए, इससे जल्दी निकलकर अपने प्राण बचाओ। यह सुनकर वह ब्राह्मण उस मल्लाहिन के साथ निकल आया और गरुड़ को आशीर्वाद देता हुआ अपनी इच्छा के अनुसार चला गया। अपनी स्त्री के साथ जब वह ब्राह्मण निकल गया तब पक्षियों के राजा गरुड़ अपने पर फैलाकर उड़ते हुए आकाश-मार्ग से चले। राह में उन्होंने अपने पिता कश्यप ऋषि को देखा। उनके पूछने पर गरुड़ ने सब हाल कहा। तब महर्षि कश्यप ने गरुड़ से कहा—पुत्र, तुम नित्य कुशल से रहते हो? मनुष्य-लोक में तुमको पेट भर भोजन मिलता है न? गरुड़ ने कहा—पिताजी! मैं, मेरी माता और भाई सब कुशलपूर्वक हैं। किन्तु मुझे मनुष्य-लोक में पेट भर भोजन नहीं मिलता। साँपों ने अमृत माँगा है। माता को दासीभाव से छुड़ाने के लिए मैं अमृत लेने जाता हूँ। माता ने मुझसे मार्ग में मल्लाहों को खाने के लिए कहा था। भगवन्, उन मल्लाहों को खाकर भी मैं तृप्त नहीं हुआ। इससे अब आप मुझे और कुछ खाने को बताइए, जिसे खाकर मैं मज़े में अमृत ले आऊँ। भूख और प्यास के मारे मैं बेचैन हो रहा हूँ।



कश्यप ने कहा—पुत्र, पास ही जो सरोवर देख रहे हो यह देवलोक तक प्रसिद्ध और बड़ा पवित्र है। इसमें सिर नीचा किये एक हाथी कच्छप-रूप अपने बड़े भाई को ऊपर की ओर खींच रहा है। इन दोनों के डील-डौल और पूर्व जन्म के वैर का वर्णन सुनो। विभावसु नाम एक बड़े क्रोधी ऋषि थे। उनके छोटे भाई महातपस्वी सुप्रतीक ऋषि थे। सुप्रतीक अपने बड़े भाई के साथ एक में रहना नहीं चाहते थे, इसलिए वे नित्य अपने भाई से कहा करते थे कि पिता की सम्पत्ति का बटवारा कर डालो। एक दिन विभावसु ने सुप्रतीक से कहा—देखो, अनेक लोग मोह के वश होकर पिता के धन का बटवारा कर डालना चाहते हैं। फिर बटवारा हो जाने पर, धन के मोह से, उनमें परस्पर सद्भाव नहीं रहता। स्वार्थी मूढ़ लोगों को जब इस तरह धन मिल जाता है तब मित्र का रूप रखनेवाले शत्रु घुसकर आपस में फूट डाल देते हैं—उधर की इधर और इधर की उधर लगाकर क्रोध बढ़ाते हैं और वैरभाव की जड़ जमाते हैं। इस प्रकार मनुष्य के निर्बल हो जाने पर शत्रु लोग मौक़ा पाकर ख़ुलासा चोट करते हैं। जिनमें इस प्रकार फूट पड़ गई है उनका सर्वनाश होते देर नहीं लगती। इस कारण समझदार, अच्छे आदमी भाइयों का अलग होना पसन्द नहीं करते। विभावसु के समझाने पर भी

सुप्रतीक ने न माना और बराबर बटवारे के लिए कहते रहे। तब, एक दिन, विभावसु ने क्रोध करके सुप्रतीक को शाप दिया —तुम दबाव नहीं मानते और भेदभाव के कारण धन बाँटना चाहते हो इसलिए हाथी हो जाओ। सुप्रतीक ने भी विभावसु को शाप दिया कि तुम भी जल के भीतर रहनेवाले कच्छप हो जाओ।

कश्यपजी कहते हैं—इस प्रकार परस्पर के शाप से सुप्रतीक और विभावसु गज और कच्छप हो गये। धन के लिए उन दोनों मूढ़ों की यह गति हुई। पहले का क्रोध बना रहने के कारण इस योनि में भी वे परस्पर वैरभाव रखकर युद्ध करते हैं। दोनों को अपने बड़े शरीर और अमित बल का घमण्ड है। वह देखो, हाथी के गरजने का शब्द सुनकर बड़ा भारी कच्छप भी सरोवर के जल में हलचल मचाता हुआ ऊपर आ रहा है। उसे देखकर गजराज सूँड़ को फटकारता हुआ, दाँत, सूँड़, पूँछ और पैरों के वेग को दिखाता हुआ, पानी के भीतर घुसा जा रहा है। हाथी के वेग से जलचर जीवों सहित सरोवर को मथा जाता देख पराक्रमी कच्छप भी सिर उठाये हुए युद्ध के लिए आ रहा है। हाथी छः योजन ऊँचा और बारह योजन चौड़ा है। कच्छप तीन योजन ऊँचा और दस योजन के घेर का है। हे पुत्र, ये दोनों एक दूसरे को मारने के लिए युद्ध कर रहे हैं। तुम इस कच्छप को और पर्वताकार हाथी को खाकर अपना कार्य सिद्ध करो—अमृत ले आओ।



३१

उग्रश्रवा कहते हैं—इतना कहकर कश्यप ने गरुड़ को आशीर्वाद दिया कि पुत्र, देवताओं से युद्ध करते समय तुम्हारा कल्याण हो। पूर्ण कलश, ब्राह्मण, गायें और जो शुभ स्वस्त्ययन पदार्थ हैं वे तुम्हारा मङ्गल करें। देवताओं के साथ जिस समय तुम युद्ध करोगे उस समय ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, यज्ञ का पवित्र हवि और वेद-वेदाङ्ग तुम्हारे बल को बढ़ावें। कश्यपसे आशीर्वाद पाकर गरुड़ वहाँ से चल पड़े। थोड़ी ही दूर पर उन्हें वह पक्षियों से घिरा हुआ निर्मल जलवाला सरोवर देख पड़ा। बड़े वेगवाले गरुड़ ने पिता की बात याद करके आकाश-मार्ग से झपटकर एक नख से गज को और एक नख से कच्छप को उठा लिया। दोनों को उठाकर गरुड़ आकाश में बहुत ऊँचे पर चले गये। वहाँ से,

[ बैठकर भोजन करने के लायक़ जगह देखते हुए ] वे सुमेरु के शिखर पर अलम्ब-तीर्थ में देव-वृक्षों के पास पहुँचे। वहाँ के सब वृक्ष गरुड़ के परों की हवा से हिलने लगे। [ मानों वे इस डर से काँप उठे कि गरुड़ अपने बोझ से कहीं हमको तोड़ न डालें! ] मनमाने फल
को देनेवाले कल्पवृक्षों की यह दशा देखकर गरुड़ उनसे ऊँचे और दृढ़ वृक्षों के पास गये। उन ४०
महावृक्षों के फल सोने-चाँदी के और डालियाँ वैदूर्य मणि की थीं। समुद्र अपनी लहरों से उनके पैर धो रहा था। इन वृक्षों में एक बहुत ऊँचा और पुराना रौहिण नाम बरगद का पेड़ था। उसने गरुड़ को बड़े वेग से आते देखकर कहा—गरुड़जी, यह मेरी बड़ी भारी शाखा सौ योजन तक फैली हुई है। इसी पर बैठकर तुम इन दोनों प्राणियों को खा जाओ।

वृक्ष की उस डाल में घने पत्ते थे। हज़ारों पक्षी उस पर बसेरा करते थे। गरुड़ बड़े वेग से उस पर जा बैठे तो वह वृक्ष हिल उठा और वह शाखा टूट गई। ४४

---

## तीसवाँ अध्याय

वालखिल्य ऋषियों की रक्षा। गरुड़ का हिमाचल पर जाकर गज-कच्छप को खाना। उत्पात देखकर देवताओं का अमृत की रक्षा के लिए विशेष उपाय करना

उग्रश्रवा कहते हैं—महाबली गरुड़ के पैर रखते ही वह शाखा टूट गई। गरुड़ ने उसे पकड़ लिया। उस शाखा के टूटने से उन्हें विस्मय हुआ। गरुड़ ने देखा कि उस शाखा में [ साठ हज़ार ] वालखिल्य नाम के [ अँगूठे की पोर के बराबर शरीरवाले ] ऋषि सिर नीचे किये लटक रहे हैं। गरुड़ ने मन में कहा कि इस शाखा के सहारे लटके हुए वालखिल्य ऋषि तपस्या कर रहे हैं। यह शाखा अगर मुझसे छूट जायगी तो अवश्य इन ऋषियों की हत्या होगी। इससे ऐसा करना चाहिए जिसमें इनके प्राण बच जायँ। पञ्जों से गज और कच्छप को पकड़े हुए गरुड़ ने चोंच से उस शाखा को दृढ़ता के साथ पकड़ लिया। पक्षिराज के इस देवताओं से भी न हो सकनेवाले अद्भुत कर्म को देखकर—इतना भारी बोझ लेकर अनायास उड़ते देखकर—विस्मित ऋषियों ने, कार्य के अनुसार, उनका नाम महाखग (गरुड़) रख दिया। अब गरुड़ ऐसे स्थान की खोज में उड़ने लगे कि जहाँ वालखिल्य ऋषियों को तो छोड़ दें और आप गज-कच्छप का आहार कर जायँ। परन्तु कहीं ऐसा एकान्त स्थान न देख पड़ा। ८

अन्त को वे पर्वतराज गन्धमादन के ऊपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि उनके पिता कश्यप ऋषि तपस्या कर रहे हैं। दिव्य रूप, तेज, पराक्रम और बल से परिपूर्ण, मन और वायु के समान वेगवाले, पहाड़ के शिखर के समान ऊँचे, ब्रह्मदण्ड के समान उग्र, अचिन्त्य, अद्भुत विकट आकारवाले, साक्षात् अग्नि के सदृश, देवता-दानव-राक्षस आदि के लिए अजेय और

अधृष्य, पर्वतों के शिखरों को तोड़ने की—समुद्र के जल को सोखने की और त्रिलोकी को नष्ट कर डालने की—शक्ति रखनेवाले, कालान्तक-तुल्य पक्षिराज गरुड़ को देखकर और उनके सङ्कल्प को जानकर कश्यपजी ने उनसे कहा—पुत्र, सावधान रहो, साहस न करना। ऐसा करो जिसमें सूर्य की किरणें खाकर रहनेवाले वालखिल्य ऋषि कुपित होकर तुमको भस्म न कर डालें।

तपस्या के द्वारा पापरहित वालखिल्य ऋषियों को अपने पुत्र की ओर से प्रसन्न करने के लिए कश्यप ने कहा—ऋषियो, गरुड़ ने सब लोगों की भलाई के लिए यह काम करना विचारा है। ये इस समय एक बड़ा भारी काम करना चाहते हैं। आप लोग उसके लिए गरुड़ को अनुमति दीजिए। सूतजी कहते हैं—कश्यप मुनि के यों कहने पर वे मुनि उस शाखा को छोड़कर तप करने के लिए हिमालय पर्वत पर चले गये। वालखिल्य ऋषियों के चले जाने पर उस शाखा को चोंच में दबाये हुए गरुड़ ने धीरे से कश्यपजी से पूछा—भगवन्, वृक्ष की इस
२० शाखा को मैं कहाँ छोड़ूँ ? ऐसा कौन मनुष्य-शून्य स्थान है ? तब कश्यप ने गरुड़ को एक पर्वत बता दिया। उस पर्वत की कन्दराओं में बर्फ़ जमी रहती है। उस पहाड़ पर कोई पुरुष नहीं रहता—कोई वहाँ तक जा भी नहीं सकता। उस शाखा, गज और कच्छप को लिये हुए गरुड़ उसी बड़ी-बड़ी कन्दराओंवाले पहाड़ की ओर बड़े वेग से उड़कर चले। वृक्ष की जिस शाखा को गरुड़ चोंच में दबाये हुए थे वह सौ पशुओं के चमड़े की बनी रस्सी से भी नहीं बाँधी जा सकती। पक्षियों के राजा गरुड़ थोड़े ही समय में सौ हज़ार योजन उड़कर उस पर्वत पर पहुँचे। पिता की आज्ञा के अनुसार वहीं पर उन्होंने वह शाखा छोड़ दी। उस शाखा के गिरने से बड़ा भारी शब्द हुआ। गरुड़ के परों की हवा लगने से वह पहाड़ हिल उठा। उसके ऊपर के वृक्षों से फूल बरसने लगे। सुवर्ण और मणियों से सुशोभित उस पहाड़ के शिखर फट-फटकर नीचे गिर पड़े। सुनहरे फूलों से सुशोभित वृक्ष उस शाखा की चोट से गिरकर बिजली सहित बादलों के समान देख पड़े। सुनहरे फूलों से लदी हुई डालियोंवाले वृक्ष पहाड़ी
२९ धातुओं की चट्टानों पर गिर पड़े। उन पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था।

पक्षियों के राजा गरुड़ ने उस पर्वत के शिखर पर बैठकर गज और कच्छप दोनों का भक्षण किया। उन्हें खाकर गरुड़ वहाँ से बड़े वेग से उड़े। उस समय देवताओं को भय की सूचना देनेवाले अनेक उत्पात स्वर्ग में होने लगे। इन्द्र का प्रिय अस्त्र वज्र डर से जल उठा। धुएँ सहित जल रहे तारे आकाश से गिरने लगे। वसु, रुद्र, आदित्य, साध्य, मरुद्गण आदि सब देवताओं के शस्त्र आपस में टकरा-टकराकर भिड़ने लगे। देवासुर-संग्राम जब हुआ था तब भी ऐसी अद्भुत भयानक बातें नहीं हुई थीं। बड़े ज़ोर से आँधी चलने लगी और उससे बार-म्बार भयानक शब्द उठने लगा। हज़ारों तारे आकाश से टूट-टूटकर गिरने लगे। आकाश में मेघ न होने पर भी बिजली की कड़कड़ाहट सुन पड़ने लगी। फिर रक्त की वर्षा होने लगी।

देवताओं के गले की मालाएँ मुरझा गईं और चेहरे फीके पड़ गये। तेज जाता रहा। उत्पात की सूचना देनेवाले बादलों से मूसलाधार रक्त की वर्षा होते और देवताओं के मुकुटों को धूलि-धूसरित होते देखकर देवताओं सहित इन्द्र बहुत ही डरे। उन्होंने शङ्कित होकर बृहस्पतिजी से कहा—भगवन्, अचानक ऐसे घोर उत्पात होते क्यों देख पड़ते हैं? इस समय तो ऐसा कोई शत्रु देख नहीं पड़ता जो हमें युद्ध में जीत सके! ४०

बृहस्पति ने कहा—हे इन्द्र! तुम्हारे पहले के अपराध और असावधानी से तथा महात्मा महर्षि वालखिल्य ऋषियों के तप के प्रभाव से विनता में कश्यप ऋषि के द्वारा उत्पन्न, पक्षियों के राजा, महाबली और मनमाना रूप धारण कर सकनेवाले गरुड़ इस समय अमृत लेने यहाँ आ रहे हैं। यहाँ से अमृत ले जाने की शक्ति गरुड़ में है। वे असाध्य काम को भी सिद्ध कर सकते हैं। सूतजी कहते हैं—बृहस्पति के वचन सुनकर इन्द्र ने अमृत की रक्षा करनेवाले देवताओं को बुलाकर कहा कि देखो, महाबली पक्षी यहाँ अमृत लेने आ रहा है। गुरुजी कहते हैं कि वह बड़ा पराक्रमी है। मैं तुमसे कहे रखता हूँ, किसी तरह वह यहाँ से अमृत न ले जाने पावे।

इन्द्र की ये बातें सुनकर अमृत की रक्षा करनेवाले देवगणों को बड़ा अचरज हुआ। वे विशेष यत्न के साथ अमृत को घेरकर उसकी रक्षा करने लगे। इन्द्र भी हाथ में वज्र लेकर अमृत की रखवाली करने लगे। और-और देवता भी सोने के मणि-जटित विचित्र कवच पहने, दृढ़ ढालें लिये, भयङ्कर तीक्ष्ण चक्र, बेलन, त्रिशूल, फरसा, शक्ति, खड्ग, गदा आदि शस्त्र लेकर उसी जगह एकत्र हुए। इस प्रकार अग्नि के समान प्रकाशमान और अनुपम बल-वीर्य तथा तेजवाले असुर-शत्रु देवता अमृत की रक्षा के लिए जमा हुए। उनके और उनके शस्त्रों के प्रकाश से वह युद्धभूमि सूर्य-किरणों से प्रकाशमान आकाश-मण्डल के समान जान पड़ने लगी। ५२

## इकतीसवाँ अध्याय

### वालखिल्य ऋषियों के तप से गरुड़ की उत्पत्ति का वर्णन करके उनके पक्षिराज होने का वृत्तान्त कहना

शौनकजी ने सूतपुत्र उग्रश्रवा से पूछा—हे सूतपुत्र, इन्द्र का कौन सा अपराध था? उन्होंने क्या असावधानी की थी? वालखिल्य ऋषियों के तप से गरुड़ कैसे उत्पन्न हुए? कश्यप ऋषि के पक्षिराज पुत्र कैसे हुए? गरुड़ में इच्छानुरूप रूप रखने की—मनमानी जगह जाने की शक्ति कहाँ से आई? आपने कहा कि गरुड़ को कोई जीत नहीं सकता, सो वे अजेय कैसे हुए? यदि पुराण में इन बातों का वर्णन हो तो आप कहिए।

उग्रश्रवा ने कहा—ब्रह्मन्, यह आपका प्रश्न पुराण का ही विषय है। मैं इन सब प्रश्नों का उत्तर संक्षेप में देता हूँ, सुनिए।

एक समय पुत्र की इच्छा से प्रजापति कश्यप ने यज्ञ करना चाहा। उस यज्ञ में देवता, ऋषि, गन्धर्व आदि सब मिलकर कश्यप की सहायता करने लगे। यज्ञ के लिए लकड़ियाँ लाने की आज्ञा कश्यप ने इन्द्र आदि देवताओं को और वालखिल्य ऋषियों को दी। इन्द्र बड़े बली थे। वे अपनी शक्ति के अनुसार पहाड़ ऐसा लकड़ियों का ढेर अनायास उठाकर ले आये। राह में इन्द्र ने अँगूठे की पोर के बराबर नाटे वालखिल्य ऋषियों को देखा कि वे सब मिलकर एक छोटी सी ढाक की लकड़ी उठाये लिये आ रहे हैं। निराहार रहकर तपस्या करने के कारण वे ऋषि और भी दुर्बल हो रहे थे। वे गाय के पैर से बने हुए गढ़े में फँसकर क्लेश पा रहे थे—उससे बाहर नहीं निकल सकते थे। अपने बल का घमण्ड रखनेवाले इन्द्र उन ऋषियों को देखकर हँसने लगे और उनको निरादर के भाव से



देखते हुए चले आये। तब, इस बात से, क्रोधित और दुःखित होकर महातपस्वी वालखिल्य ऋषि इन्द्र के लिए एक भयङ्कर महायज्ञ करने को तैयार हुए। वेद के मन्त्र पढ़कर वे विधिपूर्वक आग में आहुतियाँ छोड़ने लगे। उनकी यह कामना थी कि महापराक्रमी, इच्छा के अनुसार सब जगह जाने की शक्ति रखनेवाला, इन्द्र के लिए भी भय का कारण और दूसरा देवताओं का इन्द्र उत्पन्न हो। ऋषियों ने यह कहकर आहुति छोड़ी कि मन के समान वेगवाला और पराक्रम में इन्द्र से सौ गुना अधिक दूसरा इन्द्र उत्पन्न हो। यह जानकर इन्द्र बहुत घबराये और महाप्रतापी कश्यप ऋषि की शरण में गये। इन्द्र के मुँह से सब वृत्तान्त सुनकर कश्यपजी ने वालखिल्य ऋषियों के पास जाकर पूछा—आप लोग जिस काम के लिए यज्ञ कर रहे हैं वह सिद्ध हुआ? सत्यवादी वालखिल्य ऋषियों ने कहा—अवश्य सिद्ध होगा। तब उन्हें समझाते हुए प्रजापति कश्यप ने कहा—देखो, विधाता ने त्रिलोकी का स्वामी बनाकर पुरन्दर को इन्द्र का पद दिया है। किन्तु इस समय आप लोग तपोबल से और एक इन्द्र उत्पन्न करने की चेष्टा कर रहे हैं। ब्रह्मा के वाक्य को मिथ्या करना आप लोगों के लिए उचित नहीं।

साथ ही आप लोगों का यह सङ्कल्प भी मिथ्या नहीं हो सकता। इन्द्र क्षमा-प्रार्थना कर रहे हैं। आप लोग उन पर प्रसन्न होकर ऐसा कीजिए कि आप लोगों का उत्पन्न किया हुआ पराक्रमी पुरुष देवताओं का इन्द्र न होकर पक्षियों का इन्द्र हो। २०

उग्रश्रवा कहते हैं—कश्यप के समझाने से तपस्वी वालखिल्य ऋषि उनकी प्रशंसा करके कहने लगे कि कश्यपजी, हमने इस उद्देश्य से यह यज्ञ किया है कि आपके वीर्य से एक और इन्द्र उत्पन्न हो। अब आप ही इस सफल कर्म को जिस तरह अच्छा समझिए उस तरह कीजिए।

सूतजी कहते हैं—इसी समय दक्ष की कन्या देवी यशस्विनी विनता, पुत्र की इच्छा से, ऋतुस्नान के उपरान्त पवित्र भाव से तप करके अपने स्वामी कश्यप के पास गईं। कश्यप ने उनसे कहा—हे देवि, तुम्हारा मनोरथ पूरा होगा। मेरे सङ्कल्प और वालखिल्य ऋषियों के तप के प्रभाव से तुम्हारे दो वीर पुत्र उत्पन्न होंगे। तीनों लोकों के लोग उनकी पूजा करेंगे। वे त्रिभुवन के स्वामी अर्थात् त्रिभुवन में अद्वितीय होंगे। कश्यप ने फिर कहा—देखो, इस गर्भ की रक्षा सावधानी से करना। इसमें से उत्पन्न एक बालक कामरूपी पक्षी सब पक्षियों का राजा होकर त्रिलोकी में पूजित होगा। फिर कश्यप ने इन्द्र पर प्रसन्न होकर उनसे कहा—ये दोनों महापराक्रमी तुम्हारे भाई तुम्हारी सहायता करेंगे। इनसे तुम्हारी कुछ बुराई न होगी। ३० हे इन्द्र, तुम कुछ चिन्ता न करो। देवताओं का इन्द्र तुम्हारे सिवा और कोई न होगा। किन्तु देखो, इस तरह फिर कभी मोह-वश होकर तपस्वी ब्राह्मणों का अपमान या अनादर न करना। ब्राह्मणों का शाप वज्र से भी बढ़कर होता है। उनका कोप बड़ा ही दारुण हुआ करता है।

इस प्रकार कश्यप के कहने पर इन्द्र की शङ्का जाती रही और वे स्वर्ग को चले गये। कामना पूर्ण होने से विनता भी परम प्रसन्न हुई। यथासमय विनता के अरुण और गरुड़ नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। अरुण का शरीर अधूरा ही रह गया और वे सूर्य के सारथी हुए। गरुड़ पक्षियों के इन्द्र हुए। अब गरुड़ के अद्भुत कार्य का वर्णन सुनो। ३५

---

## बत्तीसवाँ अध्याय

### देवताओं के साथ गरुड़ का युद्ध और देवताओं का हारना

उग्रश्रवा कहते हैं—[ हे शौनकजी, यह तो पहले ही कह चुके हैं कि बृहस्पति से गरुड़ के बल का और आने का वृत्तान्त सुनकर सब देवता एकत्र हुए और अपने-अपने शस्त्र लेकर अमृत की रक्षा करने लगे। ] अब पक्षियों के राजा गरुड़ बड़े वेग से देवताओं के सामने पहुँच गये। महाबलशाली गरुड़ को देखते ही सब देवता डर के मारे काँपने लगे और [ कुछ कर्त्तव्य निश्चित न कर सकने के कारण ] घबराकर आपस में ही एक दूसरे पर शस्त्र चलाने लगे। अमितपराक्रमी, अग्नि के समान तेजस्वी विश्वकर्मा ही अमृत की रक्षा करनेवाले देवताओं के

मुखिया थे। पहले कुछ देर तक उन्हीं के साथ गरुड़ का घोर युद्ध हुआ। घड़ी भर घोर युद्ध करके गरुड़ के नखों, चोंच और परों की चोट से घायल होकर वे मुर्दे की तरह अचेत होकर गिर पड़े। इसके बाद अपने परों की हवा से खूब धूल उड़ाकर गरुड़ ने चारों ओर अँधेरा कर दिया। उस धूल में अमृत की रक्षा करनेवाले देवता मोह को प्राप्त हो गये। उन्हें कुछ भी न सूझ पड़ता था। इस प्रकार स्वर्गलोक में हलचल डालकर गरुड़ ने चोंच और परों के प्रहार से अनेक देवताओं को घायल और बेकाम कर डाला। तब इन्द्र ने वायु से कहा कि तुम जल्दी से धूल को उड़ाकर दूर कर दो। यह तुम्हारा काम है।

वायु ने उसी समय सारी धूल उड़ाकर दूर फेंक दी। अँधेरा हटने पर सब देवता मिलकर गरुड़ पर प्रहार करने लगे। उनके प्रहार करने पर बलवान् गरुड़ सब प्राणियों को डराते हुए आकाश में महामेघ के समान गरजने लगे। शत्रुनाशन महापराक्रमी गरुड़ एकाएक उड़-

११



कर देवताओं के ऊपर अन्तरिक्ष में पहुँच गये। कवच पहने हुए सब देवता भी गरुड़ पर अनेक अस्त्र-शस्त्र चलाने लगे। चारों ओर से इन्द्र आदि देवता पट्टिश, परिघ, शूल, गदा, बाण, चक्र आदि अनेक शस्त्र मारते थे। घोर युद्ध कर रहे पक्षियों के राजा गरुड़ इससे तनिक भी विचलित नहीं हुए। वे आकाश में बढ़ रहे अपने तेज से अग्नि के समान सब देवताओं को मानो जलाने लगे। उनके परों की चोट और छाती की चपेट से चूर होकर देवगण गिर पड़े। अन्त को वे इधर-उधर प्राण लेकर भागने लगे। गरुड़ की चोंच, नखों और परों के प्रहार से देवताओं के शरीरों से रक्त बहने लगा। साध्य, देवता और गन्धर्वगण पूर्व दिशा को भागे। वसुगण और रुद्रगण गरुड़ के डर से दक्षिण दिशा को भागे। बारहों आदित्य पश्चिम दिशा को और अश्विनीकुमार उत्तर दिशा को भागे। भागते हुए देवगण बार-बार फिरकर युद्ध कर रहे महावीर गरुड़ को देखते जाते थे [कि कहीं हमारा पीछा तो नहीं किया जा रहा है]। अब वीर अश्वक्रन्द, रेणुक, क्रथन, तपन, उलूक, श्वसन, निमेष, प्ररुज, पुलिन आदि के साथ गरुड़ का घोर युद्ध हुआ। शत्रुनाशन गरुड़ ने प्रलयकाल में कुपित रुद्र की तरह महाबली देवताओं को नखों, चोंच और परों के प्रहार से घायल कर डाला। उनके शरीरों से रक्त बह रहा था और वे

२१ रुधिर की वर्षा करनेवाले बादलों के समान जान पड़ते थे।

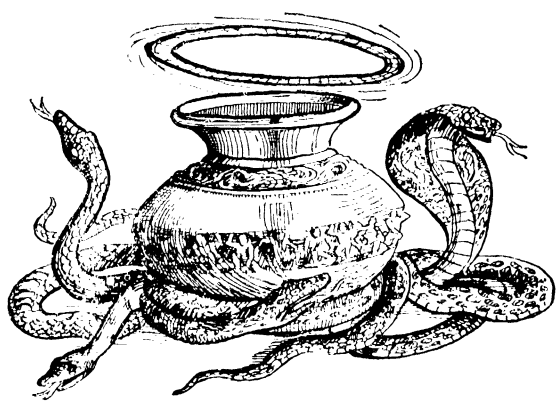
सब देवताओं को जीतकर गरुड़जी अमृत के कलश के पास पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि प्रज्वलित घोर अग्नि उसको चारों ओर से घेरे हुए है। वायु के वेग से बढ़ रहे उस अग्नि की ज्वालाएँ आकाश तक पहुँच रही हैं मानो सूर्य को भस्म कर डालेंगी। यह देखकर गरुड़ वहाँ से वेग के साथ उड़कर चल दिये। उन्होंने उस समय आठ हज़ार एक सौ (अर्थात् बहुत से) मुख कर लिये और बहुत सी नदियों का जल पीकर वे फिर बड़े वेग से उसी स्थान पर पहुँचे। उन नदियों के जल से गरुड़ ने उस आग को बुझा दिया। इसके बाद दूसरा छोटा शरीर धारण करके उन्होंने अमृत के पास जाने का विचार किया। २५

---

## तेंतीसवाँ अध्याय

गरुड़ का अमृत के समीप पहुँचना। अमृत लेकर जा रहे गरुड़ से विष्णु की भेंट। विष्णु और गरुड़ का परस्पर वर देना

उग्रश्रवा कहते हैं—प्रभापरिपूर्ण सुवर्णमय शरीर रखकर, समुद्र के भीतर जल के प्रवाह की तरह, एकाएक गरुड़जी उस अमृत के पात्र के पास पहुँच गये। वहाँ उन्होंने देखा कि अमृत के पास एक तीक्ष्ण धारावाला लोहे का चक्र तेज़ी के साथ घूम रहा है। उस चक्र का तेज सूर्य और अग्नि के समान है। अमृत ले जाने का यत्न करनेवाले लोगों को काट डालने के लिए देवताओं ने वह चक्र-यन्त्र वहाँ लगा रक्खा था। गरुड़ और भी छोटा रूप रखकर चक्र के आरों की सन्धि के भीतर से उस पार निकल गये। चक्र के नीचे जाकर उन्होंने देखा, दो जलते हुए अग्नि के ढेर ऐसे, आँखों से विष बरसानेवाले घोर सर्प बिजली की तरह जीभें लपलपाते हुए फन उठाये अमृत की रक्षा कर रहे हैं। वे एकटक अमृत के कलश ही को ताक रहे थे। वे बहुत ही क्रोध से भरे हुए जान पड़ते थे। उनमें इतना विष था कि दो में से एक भी जिसकी ओर देख दे वह उसी दम भस्म हो जाय।



गरुड़ ने परों से धूल उड़ाकर उन साँपों को अन्धा कर दिया और मौक़ा पाकर उन्हें बीच से काट डाला। अब महाबली गरुड़ ने उस यन्त्र को तोड़-फोड़कर अमृत का कलश उठा

लिया। उस अमृत को लेकर वहाँ से गरुड़ बड़े वेग से आकाश की ओर उड़े। उन्होंने इतने परिश्रम से अमृत पाकर भी आप नहीं पिया। गरुड़ को कुछ भी थकन नहीं हुई; वे सूर्य की प्रभा को भी अपने तेज से फीकी करते हुए आकाश-मार्ग में चले। राह में उन्हें नारायण भगवान् मिले। गरुड़ के धैर्य और पराक्रम से सन्तुष्ट होकर नारायण ने कहा—गरुड़, मैं तुमको वर देने के लिए आया हूँ; जो जी चाहे, माँग लो। गरुड़ ने कहा—अगर आप वर देते हैं तो मैं सदा आप ( की ध्वजा ) के ऊपर रहने का वर माँगता हूँ; और अमृत पिये बिना ही मैं बुढ़ापे और मौत के डर से छूट जाऊँ। नारायण ने कहा—"ऐसा ही होगा।" विष्णु से दो वर पाकर गरुड़ ने भी उनसे कहा—मैं आपको भी वर देना चाहता हूँ। आप भी मुझसे वर माँगिए। विष्णु ने गरुड़ से यह वर माँगा कि तुम मेरे वाहन बनो। गरुड़ ने यह स्वीकार कर लिया। विष्णु ने अपने ऊपर, रथ की ध्वजा पर, गरुड़ को स्थापित करके उनकी इच्छा पूरी की।

वहाँ से गरुड़ वेग से चले। अमृत लेकर जा रहे गरुड़ का पीछा करते हुए इन्द्र के पास पहुँचकर, बड़े वेग से, उनको वज्र मारा। वज्र के लगने से गरुड़ को कुछ भी व्यथा नहीं हुई। उन्होंने हँसकर कहा—हे इन्द्र, यह वज्र दधीचि ऋषि की हड्डियों से बना है। उनका, तुम्हारा और दिव्य अस्त्र वज्र का मान रखने के लिए यह मैं अपना एक पर छोड़े देता हूँ। तुम इस पर का भी अन्त नहीं पा सकते। वज्र के प्रहार से मुझे कुछ भी कष्ट नहीं पहुँचा। बस, गरुड़ ने वहाँ पर अपना एक पर छोड़ दिया। उस पवित्र पर को गिराते देखकर सब लोगों ने गरुड़ का 'सुपर्ण' (सुन्दर पङ्खोंवाला) नाम रख दिया। यह अद्भुत घटना देखकर इन्द्र को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा, यह साधारण पक्षी नहीं, कोई बड़ा प्रतापी प्राणी है। अतएव उन्होंने गरुड़ से कहा—हे पक्षिराज, मैं तुम्हारे बल को जानना और तुम्हारे साथ मित्रता करना चाहता हूँ।

## चौंतीसवाँ अध्याय

**गरुड़ से इन्द्र की मित्रता। इन्द्र का गरुड़ को वर देना। विनता का दासीभाव से छुटकारा। साँपों के दो जीभ होने का कारण**

गरुड़ ने कहा—हे इन्द्र, अच्छी बात है; तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं तुमसे मित्रता करता हूँ। और बल तो मेरा बहुत अधिक है। कोई उसको सह नहीं सकता। समझदार लोग अपने मुँह से अपने बल या गुणों का वर्णन करना पसन्द नहीं करते। तुम मित्र-भाव से पूछ रहे हो, इसलिए मैं कहता हूँ। अकारण अपनी सच्ची बड़ाई भी न करनी चाहिए। पर्वत-वन-समुद्र सहित इस सारी पृथ्वी को, और उस पर अगर तुम बैठ जाओ तो तुमको भी, मैं एक पर पर रखकर उड़ सकता हूँ। अधिक क्या कहूँ, इस चराचर विश्व को भी एकत्र करके, एक साथ लेकर, सहज ही उड़ सकता हूँ। इतना बल मुझमें है।

उग्रश्रवा कहते हैं कि हे शौनकजी, गरुड़ के वचन सुनकर देवराज इन्द्र ने कहा—गरुड़, तुम्हारा कहना सच है। तुम सब कुछ कर सकते हो। अब तुम मेरे साथ सदा के लिए गहरी मित्रता कर लो। [ मेरी यह भी प्रार्थना है कि ] जो अमृत का कुछ काम न हो तो वह मुझे दे दो ; क्योंकि तुम जिनको यह अमृत दोगे वे हमको सतावेंगे। गरुड़ ने कहा—हे इन्द्र, मैं अपने प्रयोजन से अमृत लिये जा रहा हूँ। परन्तु [यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि] अमृत किसी को पीने न दूँगा। जहाँ ले जाकर मैं इस अमृत को रक्खूँगा वहाँ से तुम उसी घड़ी इसे ले आना। इन्द्र ने कहा—हे पक्षिराज, तुम्हारी इस प्रतिज्ञा से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। तुम जो चाहो सो वर मुझसे माँग लो। ११

उग्रश्रवा कहते हैं—तब अपने साथ सर्पों के बुरे व्यवहार और माता के दासी-भाव का कारण जो कद्रू का कपट है उसे याद करके गरुड़ ने कहा—मैं सब काम के लिए स्वयं समर्थ होकर भी तुमसे यही वर माँगता हूँ कि सभी साँप मेरा आहार हो जायँ। "ऐसा ही होगा" कहकर दानवों के शत्रु इन्द्र देवदेव योगीश्वर हरि के पास गये और वहाँ जाकर गरुड़ के साथ जो बातचीत हुई थी सो सब कह सुनाई। गरुड़ ने जो कहा था उसका अनुमोदन नारायण ने भी किया। इन्द्र भी नारायण से यह कहकर अपने लोक को चले गये कि गरुड़ जब अमृत का कलश रक्खेंगे तब मैं उसे वहाँ से उसी दम ले आऊँगा।

गरुड़जी आकाश-मार्ग में उड़ते हुए शीघ्र ही अपनी माता के पास पहुँच गये। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक सर्पों से कहा—यह देखो, मैं अमृत ले आया हूँ। इस अमृत के पात्र को मैं कुशों के ऊपर रक्खे देता हूँ। तुम लोग स्नान और मङ्गल के कृत्य कर आओ और फिर अमृत पियो। मैंने तुम लोगों की आज्ञा पूरी कर दी। अब इस घड़ी से मेरी माता तुम्हारी दासी नहीं रही।



[ इधर इन्द्र अमृत ले जाने की ताक में लगे हुए थे। ] ज्योंही सब नाग नहाने-धोने गये त्योंही इन्द्र अमृत का कलश लेकर स्वर्ग को चल दिये। सर्पगण स्नान-जप और माङ्गलिक कृत्य करके प्रसन्नता-पूर्वक अमृत पीने के लिए जब उस स्थान पर पहुँचे तब उन्हें कुशों के ऊपर अमृत का पात्र न देख पड़ा। सर्पों ने जान लिया कि जैसे छल करके हमने विनता को दासी बनाया था वैसे ही छल करके गरुड़ ने उनको दासी-भाव से छुड़ा लिया। साँपों ने सोचा कि इन कुशों पर अमृत का पात्र रक्खा हुआ था इससे २०

कुशों में अवश्य ही कुछ अमृत लग गया होगा। अतएव वे उन कुशों को चाटने लगे। ऐसा करने से उनकी जीभें बीच से फट-फटकर दो-दो हो गईं। अमृत छू जाने के कारण कुश भी, तब से, पवित्र समझे जाने लगे। इस प्रकार गरुड़ ने अमृत लाकर साँपों को दिया। साँपों को अमृत तो मिला नहीं, उलटे फटकर दो जीभें हो गईं।

अब परम प्रसन्न गरुड़ साँपों को भक्षण करते हुए उसी वन में अपनी माता के साथ सुख से रहने लगे। जो मनुष्य इस कथा को सुनता या पढ़ता है, अथवा ब्राह्मणों में बैठकर सुनाता है
२६ वह गरुड़ के चरित्र का कीर्त्तन करने से पुण्यभागी होता है और अन्त समय उसे स्वर्ग प्राप्त होता है।

---

## पैंतीसवाँ अध्याय

सांपों के नामों का वर्णन

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र, जिस कारण कद्रू ने अपने पुत्रों को शाप दिया और अरुण ने अपनी माता विनता को शाप दिया सो तुमने कहा। कश्यप से कद्रू और विनता के वर पाने का वृत्तान्त भी तुमने सुनाया। उसी प्रसङ्ग में विनता के पुत्र अरुण और गरुड़ का नाम हमको मालूम हो गया। किन्तु कद्रू के प्रधान-प्रधान पुत्रों के नाम अभी तक तुमने नहीं कहे। हम सुनना चाहते हैं, कृपा करके कहिए।

उग्रश्रवा ने कहा—शौनकजी, साँप हज़ारों हैं और उनके नाम भी हज़ारों हैं। इसी से उनके नाम मैंने नहीं कहे। अब मुख्य-मुख्य साँपों के नाम कहता हूँ, सुनिए। कद्रू के पहले शेष नाग उत्पन्न हुए। शेष के बाद वासुकि नाग का जन्म हुआ। फिर ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय, कालिय, मणि, आपूरण, पिञ्जरक, एलापत्र, वामन, नील, अनील, कल्माष, शबल, आर्य, उग्र, कलशपोत, सुमना, दधिमुख, विमलपिण्ड, आप्त, कर्कोटक, शङ्ख, वालिशिख, निष्टानक, हेमगुह, नहुष, पिङ्गल, बाह्यकर्ण, हस्तिपद, मुद्गरपिण्डक, कम्बल, अश्वतर, काली-
१० यक, वृत्त, संवर्त्तक, पद्म, महापद्म, शङ्खमुख, कूष्माण्डक, क्षेमक, पिण्डारक, करवीर, पुष्पदंष्ट्र, बिल्वक, बिल्वपाण्डुर, मूषकाद, शङ्खशिरा, पूर्णभद्र, हरिद्रक, अपराजित, ज्योतिक, श्रीवह, कौरव्य, धृतराष्ट्र, शङ्खपिण्ड, विरजा, सुबाहु, शालिपिण्ड, हस्तिपिण्ड, पिठरक, सुमुख, कौणप-भोजन, कुठर, कुञ्जर, प्रभाकर, कुमुद, कुमुदाक्ष, तित्तिर, हलिक, कर्दम, बहुमूलक, कर्कर, अक-र्कर, कुण्डोदर और महोदर आदि नाग उत्पन्न हुए। ये नाग प्रधान हैं। अन्य छोटे नाग बहुत हैं, इसलिए उनके नामों का उल्लेख नहीं किया। इन नागों के पुत्रों और पोतों की संख्या
१९ करना असम्भव है। इसी से उनका वर्णन न करूँगा। सर्प असंख्य हैं।

---

# छत्तीसवाँ अध्याय

शेष को ब्रह्मा का पृथ्वी को सिर पर धारण करने की आज्ञा और वर देना

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र, तुमने महाबली विषधर नागों के नाम कहे। अब यह सुनाओ कि माता के शाप को सुनकर उन साँपों ने क्या किया।

उग्रश्रवा ने कहा—[ माता के शाप देने के बाद ] नागों में श्रेष्ठ शेष नाग अपनी माता कद्रू के पास से चल दिये और तीर्थों में घूम-घूमकर तप करने लगे। गन्धमादन, बदरिकाश्रम, गोकर्ण, पुष्करक्षेत्र और हिमालय पहाड़ पर व्रत धारण करके उन्होंने कभी केवल हवा खाकर और कभी निराहार रहकर तप करना आरम्भ किया। वे एकाग्र होकर, इन्द्रियों को वश में करके, घोर तप करने लगे। तब ब्रह्माजी प्रसन्न होकर वर देने के लिए शेष नाग के पास आये। उन्होंने देखा, [ निराहार रहकर घोर तप करने से ] शेष का शरीर सूख गया है, केवल हड्डियों का ढाँचा रह गया है। वे जटा और वल्कल धारण किये मुनियों के वेष से तपस्या कर रहे हैं। ब्रह्माजी ने कहा—हे नागराज शेष, तुम यह क्या कर रहे हो? तुम्हारी कठोर तपस्या से सब प्रजा तप रही है। ऐसा करो जिसमें संसार को शान्ति प्राप्त हो। तुम क्या चाहते हो? मुझसे माँगो। ७

शेष ने कहा—भगवन्, मेरे सब भाई मूर्ख और बुरे स्वभाववाले हैं। वे आपस में ही शत्रुओं की तरह लड़ा-भिड़ा करते हैं। इससे खीझकर मैं तप कर रहा हूँ। मैं उन दुष्टों के पास रहना कैसा, उन्हें देखना भी नहीं चाहता। हमारी मौसी विनता का पुत्र आकाशचारी गरुड़ अपने पिता महात्मा कश्यप के वरदान से सबसे अधिक बली है। मेरे भाई दुष्ट हैं, वे गरुड़ को और उसकी माता को देख नहीं सकते। यह सब देखकर मैं तप कर रहा हूँ। मेरी इच्छा है कि इसी तरह तप करके इस शरीर को छोड़ दूँ। मैं मरकर परलोक में भी ऐसे दुष्ट भाइयों का मुँह देखना नहीं चाहता। शेष की बातें सुनकर ब्रह्माजी ने उनसे कहा—नागराज, मैं तुम्हारे सब भाइयों के चरित को अच्छी तरह जानता हूँ। माता के शाप से नागों के ऊपर आनेवाले सङ्कट का हाल मुझको मालूम है। शेष, मैंने पहले से ही उस शाप की भयानकता कम करने का उपाय कर रक्खा है। तुम कुछ सोच न करो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ; जो तुम्हारी इच्छा हो वह वर मुझसे माँग लो। बड़े भाग्य की बात है कि तुम्हारी बुद्धि धर्म में लगी हुई है। मैं तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारी बुद्धि सदा धर्म में स्थिर रहे। शेष ने ब्रह्माजी से कहा—भगवन्, मैं यही वरदान चाहता हूँ कि मेरी बुद्धि सदा धर्म, शान्ति और तपस्या में लगी रहे। ब्रह्माजी ने कहा—हे नागराज, तुम्हारे शान्त स्वभाव से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। मैं तुमको प्रजा की भलाई के लिए एक काम करने की आज्ञा

देता हूँ ; आशा है, तुम उसे अवश्य करोगे। देखो, पर्वत-वन-समुद्र-नगर सहित इस 'चल' पृथ्वी को इस तरह [ अपने सिर पर ] धारण किये रहो कि यह तनिक भी हिले-डुले नहीं।

शेषजी ने कहा—भगवन्! आप वर देनेवाले प्रजापति, पृथ्वीपति, भूतपति और जगत्पति हैं। आप जिस तरह कहते हैं उसी तरह मैं पृथ्वी को धारण करने के लिए तैयार हूँ। आप कृपा करके इसे मेरे सिर पर रख दीजिए।

ब्रह्माजी ने कहा—नागराज, तुम पृथ्वी के नीचे जाओ। यह पृथ्वी आप ही तुमको जाने की राह देगी। इस पृथ्वी को धारण करके तुम मेरा बहुत ही प्रिय काम करोगे। सूतजी कहते हैं—तब शेष नाग वैसे ही बिल की राह से पृथ्वी के नीचे पहुँचे। उन्होंने पृथ्वी को अपने सिर पर रख लिया। समुद्र तक फैली हुई पृथ्वी को तब से वे अपने सिर पर रक्खे हुए हैं और वह तनिक भी हिलने-डुलने नहीं पाती।

शेष नाग का यह अद्भुत कर्म देखकर ब्रह्माजी बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा—हे नागराज अनन्त, तुम परमधर्मात्मा होने के कारण धर्म के बल से अपने फनों पर पृथ्वी को इस तरह धारण किये हुए हो। मेरे या इन्द्र के सिवा और कोई इस तरह यह काम नहीं कर सकता।

सूतपुत्र कहते हैं—शौनकजी, इस तरह ब्रह्माजी की आज्ञा से अकेले ही सिर पर पृथ्वीमण्डल को धारण किये प्रतापी शेष नाग पाताल में रहते हैं। ब्रह्माजी ने उसी समय शेष नाग से गरुड़ की मित्रता भी करा दी थी।

---

## सैंतीसवाँ अध्याय

माता के शाप से बचने का उपाय निकालने के लिए साँपों का सलाह करना

उग्रश्रवा कहते हैं—[ शेष के चले जाने पर वासुकि नाग को नागराज की पदवी मिली। ] नागराज वासुकि को दिन-रात यही चिन्ता लगी रहती थी कि माता के शाप से हम लोग किस तरह बच सकते हैं। अन्त को ऐरावत आदि अपने सब भाइयों को जमा करके वासुकि, इसी बारे में, उनसे सलाह करने लगा। वासुकि ने कहा—भाइयो, माता ने जिस तरह दारुण शाप हम लोगों को दिया है सो तुमसे छिपा नहीं है। मैं चाहता हूँ कि हम सब भाई उस शाप से छुटकारा पाने के लिए सलाह करके कुछ यत्न करें। देखो, सब तरह के शापों से तो उद्धार हो सकता है ; किन्तु माता के शाप से उद्धार होने का उपाय कहीं किसी शास्त्र में नहीं लिखा। माता ने अविनाशी अप्रमेय भगवान् ब्रह्मा के आगे हमको घोर शाप दिया [और ब्रह्माजी ने उन्हें ऐसा करने से नहीं रोका]। यह सुनकर मारे डर के मेरा हृदय धड़क रहा है। अवश्य



सिर पर पृथ्वी-मण्डल को धारण किये प्रतापी शेषनाग

हिंदी महाभारत
Post Graduate
College of Arts & Commerce.



ही हम सबके विनाश का समय आ गया है; नहीं तो ब्रह्माजी हमारी माता के दिये शाप का अनुमोदन न करते। इसलिए आओ, हम सब विलम्ब न करके, ऐसा उपाय सोचें जिससे सब नागों का भला हो। हम सब नाग बुद्धिमान् और अपना कर्त्तव्य सोचने में चतुर हैं। हम सब मिलकर सलाह करेंगे तो अवश्य कोई न कोई भलाई का उपाय निकल आवेगा। देखो, जब पूर्वसमय में अग्निदेव ने क्रोध करके अपने को संसार से हटा लिया था तब देवताओं ने मिलकर, सलाह करके, उपाय सोचकर, फिर उन्हें प्राप्त किया था। इससे आओ, हम भी ऐसा कोई उपाय सोचें, जिससे राजा जनमेजय का सर्पयज्ञ न हो, या हो भी तो सफल न हो। १८

उग्रश्रवा कहते हैं—'अच्छी बात है' कहकर सब बुद्धिमान् नाग शाप से अपने उद्धार का उपाय सोचने लगे। कुछ नागों ने कहा—"हम ब्राह्मणों का वेष बनाकर राजा जनमेजय के पास जायँगे और उनसे सर्पयज्ञ न करने की भिक्षा माँगेंगे।" अपने को चतुर समझनेवाले और नागों ने कहा—"आओ, हम लोग प्रियतम मन्त्री बनकर राजा के पास रहें। वे अवश्य ही हमसे सलाह लेकर सब काम करेंगे। तब हम राजा को ऐसी सलाह देंगे जिसमें यज्ञ ही न हो। राजा बुद्धिमान् समझकर हमारा बड़ा आदर करने लगेंगे। बस, जब वे हमसे सर्प-यज्ञ के लिए पूछेंगे तब हम कहेंगे कि आप सर्पयज्ञ न कीजिए। सर्पयज्ञ करने से इस लोक और परलोक में अनेक दारुण दोष बताकर और अन्यान्य कारण दिखाकर हम ऐसा करेंगे कि राजा यज्ञ ही न करेंगे।" और नागों ने कहा—"यह कुछ नहीं। सर्प-यज्ञ की विधि को जाननेवाला जो ऋषि राजा का यज्ञ कराने के लिए आवे उसे कोई साँप जाकर काट खाय। वह ब्राह्मण मर जायगा। इसके बाद जो-जो ऋषि यज्ञ कराने आवेंगे उन्हें हम सब इसी तरह मार डालेंगे। यज्ञ करानेवाले आचार्यों के मरने पर वह यज्ञ आप ही पूर्ण और सफल न होगा।" उनमें जो नाग धर्मात्मा और दयालु थे उन्होंने कहा—"तुम्हारी यह सलाह ठीक नहीं। यह तुम्हारी नासमझी है। ब्रह्महत्या न करनी चाहिए। विपत्ति के समय धर्म के मार्ग पर चल करके ही विपत्ति को दूर करने की चेष्टा करनी चाहिए। क्योंकि अधर्म से एक जाति का तो क्या, सारे जगत् का नाश होना भी कुछ आश्चर्य नहीं।" कुछ और नागों ने कहा—"हम बादल २० बनकर मूसलाधार जल बरसाकर यज्ञ-कुण्ड की आग को बुझा देंगे; या रात के समय जब यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण असावधान हों तब वहाँ पहुँचकर हम लोग स्रुवा आदि यज्ञ की सामग्री को उठा लावें। इस तरह यज्ञ में विघ्न पड़ जायगा। या यह किया जाय कि सैकड़ों-हज़ारों नाग एक साथ यज्ञमण्डप में पहुँचकर वहाँ जितने लोग हों उन्हें काटने के लिए तैयार हों। ऐसा करने से सब लोग डरकर भाग जायँगे और यज्ञ में विघ्न हो जायगा। अथवा यह करो कि नाग वहाँ जाकर सब भोज्य पदार्थों को दूषित करनेवाले अपने मल-मूत्र से यज्ञ की पवित्र सामग्री को खराब कर डालें। इससे भी यज्ञ में विघ्न हो जायगा।" और सर्पों ने कहा—

"हम लोग ब्राह्मणों का रूप रखकर राजा के यज्ञ में ऋत्विज का काम करेंगे और पहले ही असम्भव दक्षिणा माँगकर यज्ञ में विघ्न डाल देंगे। धर्मात्मा राजा हमारे कहने को टाल न सकेंगे।" यह सुनकर और नागों ने कहा—"राजा जब जल-विहार करने के लिए जल में घुसेंगे तब हम उन्हें वहाँ से अपने लोक में पकड़ लावेंगे और क़ैद कर लेंगे। ऐसा करने से फिर सर्पयज्ञ न हो सकेगा।" यह सुनकर अपने को पण्डित समझनेवाले और नागों ने कहा—"हम राजा जनमेजय को ही डस लेंगे। वही सब अनर्थों की जड़ हैं। उनके मरने से हमारा सब काम बन जायगा।" अन्त को सब नाग वासुकि से कहने लगे—"राजन्, हमने अपनी-अपनी समझ के अनुसार शाप से उद्धार होने के उपाय आपसे कहे। अब जिसे आप पसन्द कीजिए वही
३० उपाय शीघ्र कीजिए।" अब सब नाग वासुकि के मुख की ओर देखने लगे।

सबके वचन सुनकर घड़ी भर विचार करके वासुकि ने कहा—भाइयो, तुम लोगों ने जितने उपाय मुझसे कहे उनमें से एक भी मुझको पसन्द नहीं। मैं ऐसा उपाय करना चाहता हूँ जिससे तुम सब लोगों की भलाई हो। मुझे तो इस काम के लिए महात्मा कश्यप ऋषि को प्रसन्न करना ही ठीक जान पड़ता है। अपनी जाति की और अपनी भलाई के ख़याल से ही मैं तुम लोगों के बताये उपायों में से कोई भी उपाय करना नहीं चाहता। तुम सबसे मैं बड़ा हूँ। इसलिए मेरा वही कर्त्तव्य है जिसमें तुम सबकी भलाई हो। इस काम में होनेवाली
३४ भलाई या बुराई मेरे ही मत्थे पड़ेगी—इसी से मुझे बड़ी चिन्ता है।

---

## अड़तीसवाँ अध्याय

एलापत्र नाग की सलाह। ब्रह्मा और देवताओं के संवाद में आस्तीक की उत्पत्ति का वर्णन

उग्रश्रवा कहते हैं कि शौनकजी, सब सर्पों की और वासुकि नाग की सलाह सुनकर एलापत्र नाम के नाग ने कहा—'हे नागराज, वह सर्पयज्ञ अवश्य होगा; उसे रोकने की चेष्टा करना व्यर्थ है। राजा जनमेजय, जिनसे हमको यह बड़ा भारी खटका है, इस प्रकार मारे नहीं जा सकते। [ क्योंकि मन्त्र-बल रखनेवाले ब्राह्मण उनकी रक्षा करेंगे। ] राजन्, मैं तो यह समझता हूँ कि जिस पर दैव का कोप हो उसको दैव का ही आश्रय लेना चाहिए। हम लोगों को दैव के कोप से यह बड़ा भारी सङ्कट आ पड़ा है। इसलिए हमको इस समय दैव का ही आश्रय लेना चाहिए। मैं इस विषय में जो कुछ कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुनो। जिस समय माता ने हम लोगों को शाप दिया था उस समय डरा हुआ मैं माता की गोद में छिपा हुआ था। उसी समय मैंने ब्रह्माजी के साथ देवताओं की यह बातचीत सुनी थी। देवताओं ने अत्यन्त दुःखित हो ब्रह्माजी से जाकर कहा कि हे देवदेव, तीक्ष्ण हृदयवाली कद्रू के सिवा और

कौन माता इस तरह अपने प्रिय पुत्रों को शाप दे सकती है! भगवन्, आपके आगे कद्रू ने शाप दिया और आपने भी उसे अच्छा कहा, इसका क्या कारण है? आपने कद्रू को अपने आगे ऐसा क्रूर कर्म करते देखकर भी मना क्यों नहीं किया?

ब्रह्माजी ने कहा—देखो, तीक्ष्ण घोर रूपवाले विषधर सर्प अनेकों हैं। उनका स्वभाव क्रूर है। उनसे प्रजा की भलाई नहीं होती। प्रजा के हित के लिए ही मैंने कद्रू को नहीं रोका। जो क्षुद्र सर्प क्रूर, पापी और अपने विष से लोगों को हानि पहुँचानेवाले हैं उन्हीं का इस सर्पयज्ञ में नाश होगा; किन्तु जो धर्मात्मा हैं और किसी को हानि नहीं पहुँचाते वे बच जायँगे। सर्प- १०
यज्ञ के समय जिस प्रकार धर्मात्मा सर्प इस सङ्कट से—प्राण के भय से—छुटकारा पावेंगे सो मैं कहता हूँ। यायावर नामक ऋषियों के वंश में असाधारण बुद्धिवाले, तपस्वी, जितेन्द्रिय एक जरत्कारु ऋषि उत्पन्न होंगे। उनके वीर्य से आस्तीक नाम का एक पुत्र होगा। वह जाकर राजा जनमेजय के सर्पयज्ञ को रुकवा देगा। इस प्रकार धर्मात्मा साँप उसमें जल मरने से बच जायँगे।

[ ब्रह्माजी के इस कथन को सुनकर ] देवताओं ने पूछा—ब्रह्मन्, मुनियों में श्रेष्ठ महातपस्वी जरत्कारु ऋषि की स्त्री यानी आस्तीक की माता का क्या नाम होगा? ब्रह्माजी ने कहा—ब्राह्मणश्रेष्ठ जरत्कारु ऋषि अपने ही नामवाली कन्या के गर्भ से [ वेद-वेदाङ्ग के पारगामी ] पुत्र को उत्पन्न करेंगे। सर्पराज वासुकि के जरत्कारु नाम की एक बहन है। उसी के साथ जरत्कारु ऋषि का ब्याह होगा। उसके गर्भ से उत्पन्न पुत्र आस्तीक साँपों की रक्षा करेंगे। हे नागराज, देवताओं ने 'ऐसा ही हो' कहा और ब्रह्माजी ब्रह्मलोक को सिधारे। इसलिए मेरी यह सलाह है कि तुम, नागों का भय दूर करने के लिए, उन्हीं कन्या की भिक्षा माँगनेवाले तपस्वी जरत्कारु को अपनी बहन भिक्षा में दे डालो। ऐसा करने से नागों का उद्धार हो जायगा। मैंने नागों के उद्धार का जो उपाय सुन रक्खा था सो तुमसे कह दिया। १९

---

## उनतालीसवाँ अध्याय

एलापत्र की सलाह से वासुकि का जरत्कारु ऋषि के लिए अपनी बहन को रख छोड़ना

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, एलापत्र की यह सलाह सुनकर सब नाग बहुत प्रसन्न हुए और "वाह-वाह" कहकर उसकी बड़ाई करने लगे। वासुकि नाग भी इस वृत्तान्त को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उस समय से बड़े यत्न के साथ अपनी बहन जरत्कारु की रक्षा करने लगा।

कुछ समय बीतने पर देवताओं और दैत्यों ने मिलकर अमृत के लिए समुद्र को मथना शुरू किया। उसमें महाबली नागराज वासुकि मथानी की रस्सी बनाया गया। समुद्र के

मथने के कार्य को समाप्त करके, वासुकि को साथ लेकर, सब देवता ब्रह्माजी के पास गये। उन्होंने ब्रह्माजी से कहा—भगवन्, शाप के डर से इस नागराज वासुकि को चिन्ता घेरे हुए है। जाति का हित चाहनेवाले नाग के हृदय में माता के शाप का जो काँटा खटका करता है उसे आप कृपा करके निकाल डालिए। यह नागराज सदा हमारा हित चाहता और प्रिय करता है। इस पर प्रसन्न होकर आप इसके मन की व्यथा मिटाइए।

ब्रह्मा ने कहा—पहले किसी समय एलापत्र नाग ने इससे जो कहा था वह मेरी ही इच्छा से कहा था। उसी के अनुसार नागराज वासुकि कार्य करें। उसका समय अब आ गया है। वैसा करने से पापी साँपों का नाश तो होगा, पर धर्मात्मा साँप बच जायँगे। जरत्कारु ऋषि उत्पन्न हो चुके हैं; वे इस समय उग्र तपस्या कर रहे हैं। यह नागराज समय पर उन्हीं ऋषि को
११ भिक्षा-स्वरूप अपनी बहन ब्याह दे। एलापत्र नाग ने जो कहा है उसी से नागों की भलाई होगी।

उग्रश्रवा कहते हैं—नागराज वासुकि ने, सब लोगों के पितामह ब्रह्माजी के वचन सुनकर, जरत्कारु ऋषि के साथ अपनी बहन के ब्याहने का पक्का निश्चय कर लिया। उसने जरत्कारु ऋषि को खोजने के लिए बहुत से सर्पों को आज्ञा दी। वासुकि ने उनसे कह दिया कि जरत्कारु ऋषि जब ब्याह करने की इच्छा करें तब तुम बहुत जल्द मुझको ख़बर करना।
१४ इसी से हम लोगों का कल्याण होगा।

---

## चालीसवाँ अध्याय

जरत्कारु नाम का अर्थ। शौनक का सूत-पुत्र से आस्तीक की उत्पत्ति पूछना। प्रसंगवश राजा परीक्षित के शिकार करने जाने का वर्णन। परीक्षित का शमीक ऋषि के कन्धे पर मरा हुआ साँप डालना

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र, तुमने जिन जरत्कारु ऋषि का नाम लिया उनका यह नाम क्यों पड़ा? जरत्कारु शब्द का अर्थ क्या है? हम सुनना चाहते हैं। उग्रश्रवा ने कहा—जरा नाम है क्षय का और कारु शब्द का अर्थ है दारुण। [ काम क्रोध आदि उपद्रवों की जड़ होने के कारण ] दारुण—बहुत मोटे—शरीर को तप आदि के द्वारा क्षीण करने से महर्षि का नाम जरत्कारु पड़ा। वासुकि की बहन के जरत्कारु नाम का भी यही अर्थ है। सूतपुत्र के यों कहने पर शौनक ऋषि यह सोचकर हँसे कि अत्यन्त जीर्ण होने पर भी दोनों ने विवाह करके ब्रह्मचर्य को नष्ट किया—कैसे आश्चर्य की बात है! उन्होंने उग्रश्रवा से कहा—[ समान अवस्थावाले ऋषि और नागकन्या का विवाह ठीक ही हुआ। ] तुमने जरत्कारु नाम का अर्थ हमसे कहा; अब जिस तरह आस्तीक ऋषि का जन्म हुआ सो हम सुनना चाहते हैं।

शौनकजी के प्रश्न को सुनकर सूत के पुत्र उग्रश्रवा शास्त्र के अनुसार आगे की कथा कहने लगे। पहले जैसा कह आये हैं, सब नागों से जरत्कारु ऋषि की खोज करने के लिए कहकर बुद्धिमान् वासुकि राजकाज करने लगा। बहुत समय बीत गया, तो भी तपस्या में लगे हुए जरत्कारु ऋषि ने विवाह करने की इच्छा नहीं की। वेदपाठी ब्रह्मचारी जरत्कारु ऋषि तपस्या करते हुए पृथ्वी पर निर्भय विचरते फिरते थे। उनके मन में ब्याह करने का विचार ही न उठता था। हे शौनकजी, इन्हीं दिनों कुछ समय बीतने पर कौरव वंश के राजा परीक्षित का राज्य हुआ। वे अपने बाबा पाण्डु के समान धनुष से युद्ध करने में अद्वितीय और शिकार करना पसन्द करते थे। वे अक्सर मृग, वराह, तेंदुए, भैंसे आदि जङ्गली जानवरों का शिकार करते वनों में फिरा करते थे। एक समय परीक्षित ने एक मृग को बाण मारा। इससे घायल होकर वह भागा। जैसे यज्ञरूपी मृग के पीछे भगवान् शङ्कर दौड़े थे वैसे ही धनुष लिये राजा परीक्षित उस मृग के पीछे दौड़े। [ वह मृग एक घने जङ्गल में घुस गया। ] परीक्षित का बाण खाकर कोई भी मृग जीता नहीं बचता था। वह कोई, शाप से मृगयोनि को प्राप्त, देव-योनि का पुरुष था; परीक्षित का बाण लगने से वह शाप से मुक्त हो गया। १०

राजा परीक्षित मृग का पीछा करते हुए बहुत दूर निकल आये थे। [ हिरन भी नज़रों से ग़ायब हो गया। ] राजा थक गये थे। उन्हें भूख और प्यास सता रही थी। जल का पता लगाते हुए परीक्षित ने देखा कि एक आश्रम है, वहाँ कई गायें हैं और एक ऋषि [ ध्यान लगाये मौन ] बैठे हैं। वे गायें जब बछड़ों को दूध पिलाती हैं तब [ जी चाहता है तो ] वे मुनिवर उन बछड़ों के मुँह का फेना चाट लेते हैं। [इसके सिवा और कुछ आहार नहीं करते। यही नियम उन्होंने ले रक्खा था।] थके-माँदे प्यासे परीक्षित ने समाधि लगाये बैठे हुए उन मुनि से जाकर कहा—भगवन्, मैं अभिमन्यु का पुत्र राजा परीक्षित हूँ। मैंने अभी एक मृग को बाण मारा है किन्तु वह भाग गया है। क्या आपने उसे इधर से जाते देखा है? शमीक ऋषि मौनव्रत धारण किये बैठे थे, इस कारण उन्होंने कुछ नहीं कहा। इससे राजा को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने वहीं पड़े हुए मरे साँप को धनुष की नोक से उठाकर मुनि के गले में डाल दिया। शान्त- २०



स्वभाव मुनि ने भला या बुरा कुछ नहीं कहा। राजा ने अपना अपमान समझकर ऋषि का अपमान किया; मगर उससे उन्हें कुछ प्रसन्नता नहीं हुई। वे वहाँ से नगर को लौट आये। राह में क्रोध उतर गया और अपने किये पर उन्हें पछतावा होने लगा। स्वभाव से ही क्षमा करनेवाले मुनि राजा परीक्षित को धर्मात्मा और श्रेष्ठ राजा समझते थे; इसी से राजा के अपराध करने पर भी उन्होंने शाप नहीं दिया। राजा परीक्षित शमीक ऋषि के तपोबल को अच्छी तरह नहीं जानते थे, इसी से उन्होंने ऐसा अपराध कर डाला। शमीक ऋषि के पुत्र शृङ्गी ऋषि थे। वे उग्र-प्रकृति, महातपस्वी, क्रोधी और फिर बड़ी कठिनता से प्रसन्न होनेवाले तथा युवा होने पर भी बड़े प्रतापी थे। शृङ्गी ऋषि अक्सर ब्रह्माजी की सभा में जाया करते थे। जिस दिन परीक्षित ने शमीक ऋषि का अपमान किया उस दिन वे ब्रह्मलोक से अपने आश्रम को आ रहे थे। राह में उन्हें उनका साथी ऋषिकुमार 'कृश' मिला। शमीक ऋषि के अपमान का वृत्तान्त आदि से अन्त तक कहकर उपहास करते हुए ताने के तौर पर उसने कहा—शृङ्गी, तुम अपने को तेजस्वी और तपस्वी कहते हो। तुम्हारे पिता के गले में मुर्दा साँप पड़ा हुआ है। तुम्हारा गर्व करना वृथा है। हम ऐसे सिद्ध ब्रह्मज्ञानी तपस्वी ऋषि-पुत्रों की मण्डली में अब तुम बात नहीं कर सकते। तुम्हारा वह आत्माभिमान और वे अभिमान की बातें कहाँ चली गईं! जाकर देखो, तुम्हारे पिता के गले में अभी तक मरा साँप पड़ा है। तुम्हारे पिता ने कुछ ऐसा काम नहीं किया था, जिसके लिए राजा ने उनका
३२ अपमान किया। यह देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है।

---

## इकतालीसवाँ अध्याय

शृङ्गी ऋषि का परीक्षित को शाप देना

उग्रश्रवा कहते हैं कि कृश के मुँह से यह वृत्तान्त सुनकर महाप्रतापी शृङ्गी ऋषि क्रोध से लाल होकर कहने लगे—मित्र, किस कारण मेरे पिता के गले में मुर्दा साँप डाला गया? कृश ने कहा—मृग का शिकार करते हुए राजा परीक्षित तुम्हारे आश्रम में आये और तुम्हारे पिता के गले में मरा साँप डालकर चले गये। शृङ्गी ऋषि ने फिर कहा—यह तो मैंने जाना, लेकिन मैं यह पूछता हूँ कि मेरे पिता ने उस नीच राजा का क्या अपराध किया था? शीघ्र बताओ। अभी तुम मेरे तपोबल की शक्ति देखोगे। कृश ने कहा कि राजा ने मृग को बाण मारा, वह घायल होकर भागा। उसका पीछा करते हुए राजा तुम्हारे आश्रम में आये। उन्होंने तुम्हारे पिता से बार-बार मृग के विषय में पूछा। तुम्हारे पिता मौनव्रत धारण किये समाधि लगाये बैठे थे। उनसे कुछ उत्तर न पाकर, क्रुद्ध हो रहे, भूखे-प्यासे राजा ने मरे साँप को

धनुष की नोक से उठाकर तुम्हारे पिता के गले में डाल दिया। तुम्हारे पिता वैसे ही समाधि लगाये बैठे हैं और राजा हस्तिनापुर को चले गये हैं।

[ अपने पिता के कुछ अपराध न करने पर भी राजा की ] इस ढिठाई का हाल सुनकर शृङ्गी ऋषि क्रोध के मारे आग की तरह जल उठे। उनकी आँखें लाल हो आईं। हाथ में जल १०
लेकर शृङ्गी ऋषि ने राजा परीक्षित को शाप दिया कि मौनव्रती मेरे बूढ़े पिता के गले में जिस पापी राजा ने मुर्दा साँप डाल दिया है उस ब्राह्मण के अपमान करनेवाले कुरु-कुल-कलङ्क को आज से सातवें दिन विषधर तक्षक नाग डस लेगा। मेरे वाक्य से इस तरह उसकी बुरी मौत होगी।

क्रोध के मारे इस तरह राजा को शाप देकर शृङ्गी ऋषि अपने पिता के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने पिता को उसी अवस्था में बैठे देखा। उनके गले में मुर्दा साँप पड़ा हुआ था। क्रोध और दुःख के मारे शृङ्गी की आँखों से आँसू बहने लगे। उन्होंने ऋषि से कहा—पिताजी, पापी परीक्षित के द्वारा आपका अकारण अपमान होने की बात सुनकर मैंने उसी घड़ी उसको शाप दे दिया कि सातवें दिन तक्षक नाग के डसने से उसकी मृत्यु हो जायगी। वह इसी योग्य है।

क्रोधित पुत्र के वचन सुनकर शमीक ऋषि ने कहा—तुम्हारे इस कार्य से मुझे कुछ प्रसन्नता नहीं हुई। यह तपस्वियों का धर्म नहीं है। हम राजा परीक्षित के राज्य में रहते हैं। २०
वे न्याय से हमारी रक्षा करते हैं। इस कारण [ कुछ अपराध करने पर भी ] राजा को शाप देना ठीक नहीं। पुत्र, हम लोगों का तो धर्म ही क्षमा करना है। देखो, जो मनुष्य धर्म को मिटा देता है उसे धर्म भी मिटा देता है। यदि राजा अच्छी तरह रक्षा न करे तो हम लोग निश्चिन्त होकर अपने धर्म का पालन नहीं कर सकते। साथ ही हमको तरह-तरह के क्लेश भी मिलें। राजा की सहायता से हम लोग धर्म-पालन करते हैं। धर्म की दृष्टि से उसमें उनका भी अंश है। इस कारण राजा कभी अनुचित आचरण भी कर बैठे तो उसका अनिष्ट न करना चाहिए। फिर राजा परीक्षित तो अपने परबाबा की तरह विशेष यत्न और न्याय के साथ हमारी रक्षा करते हैं। [ अपने कर्त्तव्य के पालन में तनिक भी कमी नहीं होने देते। ] मेरे मौन-व्रत का हाल उन्हें मालूम नहीं था; इसी से भ्रम में पड़कर और भूख-प्यास के मारे व्याकुल होने के कारण वे ऐसा कर बैठे। जिस देश में राजा नहीं होता वहाँ अनेक दोष होते हैं—चोर-ठग आदि का डर बना रहता है। नीति छोड़कर मनमानी राह से चलनेवाले बदमाशों को दण्ड देकर राजा शान्ति स्थापित करता है। दण्ड से डर पैदा होता है और डर से शान्ति स्थापित होती है। जब तक मनुष्य बेखटके नहीं होता तब तक न तो वह अच्छी तरह धर्म का पालन कर सकता है और न यज्ञ आदि कर्मों को ही कर सकता है। राजा धर्म की स्थापना करता है और धर्म से स्वर्ग मिलता है। राजा की सहायता से ही यज्ञ होते हैं। यज्ञ में भाग पाकर देवता प्रसन्न होते हैं। देवता प्रसन्न होकर वृष्टि करते हैं। वर्षा से [ अन्न और ] ओषधियाँ उत्पन्न

होती हैं। अन्न [ और ओषधि ] से प्रजा का हित होता है। राजा सब मनुष्यों का पालन करनेवाला है। इसी से मनु ने कहा है कि अकेला राजा वेद को अच्छी तरह जाननेवाले दस ब्राह्मणों के समान है। मृग को खोज रहे, भूख और प्यास से व्याकुल, थके हुए राजा ने अवश्य ही मेरे मौनव्रत को न जानने के कारण ऐसा कर डाला था। तुमने लड़कपन से यह क्या अनर्थ कर डाला। राजा किसी तरह हमसे शाप पाने के योग्य नहीं।

## बयालीसवाँ अध्याय

शृङ्गी और शमीक का संवाद। शमीक के शिष्य से परीक्षित की बातचीत। मन्त्रियों से राजा का सलाह करना। तक्षक और काश्यप का संवाद

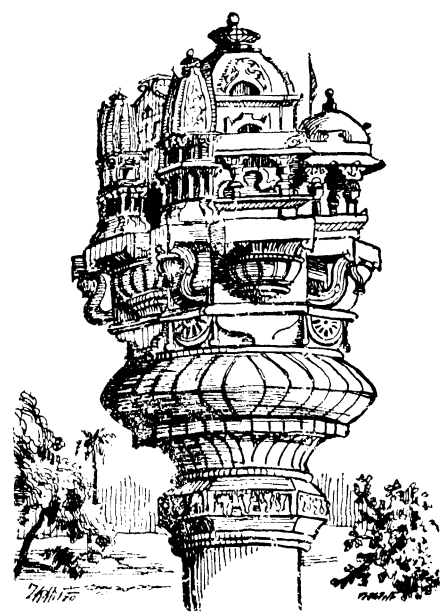
शृङ्गी ऋषि ने कहा--पिताजी! मैंने चाहे बिना समझे-बूझे अन्याय किया हो, और वह आपको रुचे या न रुचे, पर जो मैं कह चुका सो झूठ नहीं हो सकता। यह तो मैंने 'शाप' दिया है, मेरे मुँह से तो कभी हँसी-दिल्लगी में भी झूठ नहीं निकलता।

शमीक ने कहा--पुत्र! मैं जानता हूँ, तुम उग्र स्वभाववाले और सत्यवादी हो। जब से जन्म लिया तब से तुम झूठ नहीं बोले। तुम्हारा यह शाप भी झूठ नहीं होगा। हे पुत्र! क्या करने से अच्छे गुण और यश प्राप्त होता है, इस विषय में पिता अपने सयाने लड़के को भी उपदेश दे सकता है। तुम तो अभी बालक ही हो, तप के प्रभाव से गर्वित होकर वृद्ध महात्मा भी प्रायः क्रोध के वेग को सँभाल नहीं सकते। बेटा, तुम धर्मात्मा होने पर भी अभी बालक हो। तुमने बिना समझे-बूझे ऐसा दारुण कर्म कर डाला है। इस कारण मैं तुमको उपदेश करता हूँ--सुनो। अब तुम क्रोध करने के स्वभाव को छोड़कर शान्ति का आश्रय लेकर वन के कन्द-मूल-फलों का आहार करते हुए धर्म का पालन करो। यतियों के कष्ट-सञ्चित धर्म को क्रोध नष्ट कर देता है। धर्म से हीन लोगों को अच्छी गति नहीं मिलती। शान्ति से ही योगियों की इष्टसिद्धि होती है। जो क्षमा रखते हैं उनका यह लोक और परलोक दोनों बन जाते हैं। इससे हे पुत्र, तुम सदा क्षमाशील और जितेन्द्रिय रहने की चेष्टा करो। क्षमा से तुम्हें ब्रह्मलोक प्राप्त होगा। [ अब और कोई उपाय नहीं; ] मैं इसी समय अपने किसी शिष्य के द्वारा राजा के पास यह कहलाये भेजता हूँ कि "कच्ची समझवाले मेरे बालक पुत्र ने, मेरे अपमान को देखकर, क्रोध के मारे तुमको शाप दे दिया है"। फिर दयालु मुनिवर ने [ गौरमुख नाम ] अपने शिष्य को उसी समय राजा परीक्षित के पास भेज दिया।

गौरमुख वहाँ से चलकर बहुत जल्द नगर में पहुँचकर राजभवन के द्वार पर गया। द्वारपालों ने जाकर राजा को ख़बर दी। राजा ने ऋषि के शिष्य को सादर भीतर बुलाकर उसकी पूजा की। तब गौरमुख ने राजा से कहा—राजन्! धर्मात्मा, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, महातपस्वी

शमीक ऋषि आपके राज्य में रहते हैं। [ आप इधर शिकार का पीछा करते हुए वन के भीतर उनके आश्रम में गये थे। ] ऋषि उस समय मौनव्रत धारण किये ध्यान लगाये बैठे थे। [ अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर क्रोध के मारे ] ऋषि के कन्धे में धनुष की नोक से मरा हुआ साँप डालकर आप इधर चले आये। दयालु शान्त मुनि ने तो आपको क्षमा कर दिया, किन्तु उनके पुत्र शृङ्गी ऋषि ने [ यह हाल सुनकर, कुपित होकर, ] पिता के न जानते में, आपको शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक नाग आपको डसेगा और उससे आपकी मृत्यु होगी। २०
[ शमीक ऋषि से आकर जब उनके पुत्र ने यह हाल कहा तब वे बहुत दुखी हुए। ] शमीकजी ने शृङ्गी ऋषि से शान्त होने के लिए—क्षमा करने के लिए—बारम्बार कहा; पर अब क्या हो सकता था। उस शाप को कोई मेट नहीं सकता। क्रोधित पुत्र को जब शान्त न कर सके तब और उपाय न देखकर मुनिवर ने मुझे आपके पास ख़बर देने के लिए भेजा।

यह सुनकर राजा बहुत ही विषादग्रस्त और चिन्तित हुए। मरने की ख़बर पाकर वे उतने चिन्तित नहीं हुए किन्तु "मौनव्रत-धारी शान्तस्वभाव महातपस्वी का अकारण अपमान करके मैंने बहुत ही बुरा किया"—यही चिन्ता उन्हें पीड़ित करने लगी। अपने अपराध और शमीक की इतनी दयालुता का विचार करने से राजा को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने गौरमुख का सत्कार करके उसे विदा किया और कहला भेजा कि शान्त-स्वभाव महर्षि मेरे अपराध को क्षमा करके दया बनाये रहें।



गौरमुख के चले जाने पर राजा ने मन्त्रियों से सलाह करके एक खम्भे के ऊपर एक सुरक्षित भवन बनवाया। उसमें प्रतिष्ठित अनुभवी अनेक वैद्य, ओषधियाँ और साँप के विष को मन्त्र के बल से दूर करने की विद्या जाननेवाले ब्राह्मण रक्खे गये। उसी सुरक्षित महल में रहकर राजा राज-काज करने लगे। हर घड़ी मन्त्री [ और शरीर-रक्षक योद्धा ] पास रहकर उनकी रक्षा किया करते थे। राजा के पास, बिना आज्ञा के, कोई भी नहीं जा सकता था। यहाँ तक कि छिपकर हवा भी नहीं जा सकती थी, ऐसा कड़ा पहरा था। ३०

[ इस तरह छः दिन बीत गये । ] सातवें दिन विद्वान् ब्राह्मण काश्यपजी इस इरादे से राजा के पास चले कि आज जब तक्षक उन्हें काटेगा तब मैं मन्त्र-बल से जिला दूँगा । काश्यप को शाप की घटना का वृत्त अवगत था ही । उन्होंने सोचा, इस तरह धन भी मिलेगा और धर्म का पालन भी होगा । उधर से तक्षक नाग भी राजा को डसने के लिए आ रहा था । राह में उसने काश्यप को देखा । बूढ़े ब्राह्मण का रूप रखकर तक्षक ने उनसे पूछा—आप कौन हैं ? किस काम के लिए इतनी जल्दी जा रहे हैं ? काश्यप ने कहा—राजा परीक्षित को आज नागराज तक्षक काटेगा । मैं उन्हीं को चटपट जिलाने के लिए जा रहा हूँ । तक्षक ने कहा—ब्राह्मण, मैं वही तक्षक नाग हूँ ; राजा को डसने जा रहा हूँ । आप लौट जाइए । मेरे डसने पर आप राजा को जिला नहीं सकते । काश्यप ने कहा—मैं सर्पों के विष को दूर करने की विद्या बहुत
४१ अच्छी तरह जानता हूँ । मुझे निश्चय है कि मैं राजा को अवश्य जिला दूँगा ।

## तेंतालीसवाँ अध्याय

### काश्यप का विष से जले बरगद को मन्त्र के बल से हरा कर देना । तक्षक का काश्यप को धन देकर लौटा देना

तक्षक ने कहा—अगर आप मेरे डसे हुए को जिला सकते हैं तो मैं इस वृक्ष को अपने विष से जलाता हूँ—आप इसे जिला दें । देखें आपका मन्त्र-बल । काश्यप ने कहा—तक्षक, जो यह बात है तो तुम इस बरगद के वृक्ष को जलाओ । मैं इसे अभी हरा कर दूँगा ।

उग्रश्रवा कहते हैं—काश्यप के यों कहने पर तक्षक ने उस बरगद के पेड़ को डस लिया । डसते ही वह बड़ा भारी वृक्ष विष की आग से जल उठा । उस पेड़ को जलाकर तक्षक ने फिर काश्यप से कहा—अब आप यत्न करके इसको हरा कर दीजिए । यह सुनकर काश्यप ने उस वृक्ष की राख बटोरकर एक जगह की और तक्षक से कहा—तक्षक, अब मेरी विद्या का प्रभाव देखो । मैं तुम्हारे सामने ही इस वृक्ष को जिलाता हूँ । बात की बात में काश्यप ने अपनी विद्या के बल से उस वृक्ष को जिला दिया । पहले उस भस्म के ढेर से अंकुर निकला, फिर उसमें दो कोपलें निकलीं । फिर क्रमशः उसमें वैसी ही घनी डालियाँ और बड़े-बड़े डाले
१० निकल आये । काश्यप के मन्त्र-बल से वृक्ष को हरा होते देखकर तक्षक को बड़ा अचरज हुआ । उसने कहा—ब्रह्मन्, वृक्ष को जिला देना आपके लिए कुछ बड़ी बात नहीं । मेरे या मुझ ऐसे विषधर नाग के विष को आप दूर कर सकते हैं । भला यह तो बताइए कि किस वस्तु की अभिलाषा से आप राजा को जिलाने जा रहे हैं ? दुर्लभ होने पर भी मैं वह आपकी कामना पूरी कर दूँगा । [ राजा के यहाँ जाने का आपको कष्ट न उठाना पड़ेगा । ] इसके सिवा ब्राह्मण के

शाप से राजा की आयु क्षीण हो गई है। वहाँ यत्न करने से आपको सफलता नहीं भी प्राप्त हो सकती। यदि वहाँ ब्रह्मशाप से नष्ट राजा को आप न जिला सके तो त्रिलोक-प्रसिद्ध आपका उज्ज्वल यश, राहु के ग्रसे सूर्य के तेज की तरह, फीका पड़ जायगा।

काश्यप ने कहा—हे नागराज, मैं धन के लिए राजा को जिलाने जा रहा हूँ। यदि तुम मुझे धन दे दो तो मैं यहीं से लौट जाऊँगा। तक्षक ने कहा—जितने धन के लिए आप राजा के पास जा रहे थे उससे दूना धन मैं आपको देता हूँ। आप लौट जाइए। तक्षक की बात सुनकर काश्यप ने ध्यान करके दिव्य दृष्टि से देखा कि राजा परीक्षित की आयु सचमुच क्षीण हो आई है। तब तक्षक से मनमाना धन लेकर वे लौट गये। २०

इस तरह काश्यप ऋषि को लौटाकर तक्षक हस्तिनापुर को चला। राह में उसने सुना कि अनेक विष-वैद्य और साँप के विष को झाड़नेवाले लोग राजा की रक्षा कर रहे हैं। तब तक्षक ने माया के द्वारा राजा को धोखा देने का विचार किया। उसने सोचकर एक उपाय निकाला। अपने अनुचर नागों को उसने तपस्वी के वेष से राजा के पास भेजा। तक्षक ने उनसे कह दिया कि तुम लोग मुनियों का रूप बनाकर राजा के पास जाओ और उन्हें आशीर्वाद में फल-मूल [ कुशा, पानी ] अर्पण करो। देखो, उनके आगे जाकर घबरा न जाना।

तक्षक की आज्ञा के अनुसार वे नाग रूप बदलकर राजा परीक्षित के पास गये। [ कुश, जल आदि से अभिषेक करके ] उन्होंने फल-मूल आदि राजा को दिये। उन (नागों) का जो काम था वह करके राजा ने उनको बिदा किया। उनके चले जाने पर परीक्षित ने अपने मुसाहबों और मन्त्रियों से कहा—आओ, हम लोग मुनियों के लाये हुए इन स्वादिष्ठ फलों को खावें। राजा ने उनमें से एक फल उठा लिया। दैव की प्रेरणा से और ब्राह्मण के शाप से राजा ने वही फल खाने के लिए उठाया जिसमें तक्षक नाग उन्हें डसने के लिए बैठा था। ३० उस फल को खाते-खाते राजा ने देखा कि उसमें एक बहुत ही छोटा कीड़ा बैठा है। उसकी आँखें काली और शरीर का रङ्ग लाल है। सूतजी कहते हैं—हे शौनकजी, उस कीड़े को चुटकी से उठाकर राजा ने मन्त्रियों से कहा कि सूर्य अस्त हो रहे हैं; अब मुझे विष से कुछ डर नहीं। इस समय यह कीड़ा तक्षक होकर मुझे काट खाय तो ऋषि के बालक का वचन भी सत्य हो जाय और मैं भी शाप से छूट जाऊँ।

दैव की प्रेरणा से मोहित मन्त्रियों ने भी राजा की हाँ में हाँ मिला दी। राजा ने हँसते-हँसते उस कीड़े को अपनी गर्दन पर रख लिया। वैसे ही तक्षक अपना रूप धारण करके राजा की गर्दन में लिपट गया। बड़े ज़ोर से फुफकार मारकर उसने राजा को काट खाया। ३६

———

# चवालीसवाँ अध्याय

## जनमेजय का राज्याभिषेक और विवाह

उग्रश्रवा कहते हैं—राजा को सर्प से घिरा हुआ देखकर मन्त्रियों को बड़ा दुःख हुआ। वे रोने लगे। वहाँ पर जो लोग उपस्थित थे वे नागराज की फुफकार से डरकर इधर-उधर भागने लगे। इसके बाद सबने देखा कि लाल कमल के रङ्ग का नागराज आकाशमार्ग से चला गया। जैसे स्त्री की माँग में सेंदुर की लकीर देख पड़ती है वैसे ही आकाश में नागराज जान पड़ता था। तदनन्तर उस खम्भे पर बने हुए भवन के, तक्षक के विष से, जलने पर सब लोग राजा को छोड़कर वहाँ से भाग निकले। अब राजा वज्राघात से हत पुरुष के समान गिर पड़ा।



तब मन्त्री और राजपुरोहित आदि ने मिलकर राजा का क्रिया-कर्म करवाया। इसके बाद शुद्धि हो जाने पर सबने राजा परीक्षित के बालक पुत्र जनमेजय को गद्दी पर बिठला दिया। बालक होने पर भी जनमेजय की बुद्धि तीक्ष्ण थी। वे उसी समय अपने परबाबा युधिष्ठिर की तरह धर्म से राज्य करने लगे। जनमेजय के पराक्रम और बुद्धि को देखकर मन्त्रियों ने उनके लिए काशी के राजा सुवर्णवर्मा के पास जाकर राजकुमारी वपुष्टमा को माँगा। सुवर्णवर्मा ने परीक्षा के द्वारा कौरव-कुल-दीपक जनमेजय को सर्वथा योग्य समझकर उनके साथ अपनी कन्या का ब्याह कर दिया। वपुष्टमा को पाकर राजा जनमेजय बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने पराई स्त्री की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। उर्वशी अप्सरा के साथ पहले जैसे राजा पुरूरवा ने आनन्दभोग किया था वैसे ही वपुष्टमा को पाकर उसके साथ पराक्रमी राजा जनमेजय जल-विहार, वन-विहार आदि में समय बिताने लगे। पतिव्रता वपुष्टमा भी अपने अनुरूप पति राजा जनमेजय को पाकर विहार के समय अपने भावों से आनन्द देने लगी।

११

# पैंतालीसवाँ अध्याय

जरत्कारु ऋषि से उनके पितरों की भेंट और बातचीत

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, इन्हीं दिनों महातपस्वी जरत्कारु ऋषि पृथ्वी पर सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा कर रहे थे। पहले कहा जा चुका है कि जरत्कारु ऋषि ने एक गढ़े में सेंठों की जड़ों के सहारे उलटे लटक रहे अपने पुरखों से उनकी इस दशा का कारण पूछा था। जरत्कारु ने देखा कि जिस जड़ के सहारे वे पुरखा लटक रहे हैं उसके सब डोरों को एक मूसा काट चुका है, केवल एक सूत लगा हुआ है। जरत्कारु ने उनसे पूछा—तुम लोग कौन हो जो इस तरह गढ़े में लटक रहे हो? जो एक डोरा लगा हुआ है उसे काटने के लिए भी यह मूसा लपक रहा है। जब मूसा इस डोरे को भी काट डालेगा तब तुम इसी गढ़े में सिर के बल गिर पड़ोगे। तुम्हें इस कष्ट में पड़े देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ है। तुम लोग इस कष्ट से छूट सको तो मैं उसके लिए अपना तिहाई, आधा अथवा सारा तप दे डालने को तैयार हूँ। ११

यह सुनकर उन पितरों ने कहा—हे ब्राह्मणश्रेष्ठ, तुम ब्रह्मचारी जान पड़ते हो और अपने तप का फल देकर हमारा दुःख दूर करने की दया दिखा रहे हो। किन्तु तप के द्वारा हमारी यह दशा दूर नहीं हो सकती। हमने भी तप करके बहुत पुण्य-सञ्चय किया है। केवल वंश के आगे न चलने से ही हम अपवित्र नरक में गिर रहे हैं। भगवान् ब्रह्मा ने कहा है कि सन्तान उत्पन्न करना मनुष्य का परम धर्म है। तुम अवश्य कोई प्रसिद्ध पुरुष हो। किन्तु हम मूढ़ अवस्था में इस गढ़े के भीतर उलटे लटके हैं; इसी से तुमको पहचान नहीं सकते। तुम वृद्ध और महात्मा हो, इसी से हमारी यह शोचनीय दशा देखकर तुमको दया आई। अब हम अपना वृत्तान्त कहते हैं—सुनो। हम यायावर नाम से प्रसिद्ध ऋषि हैं। हमने जन्म भर अनेक प्रकार के व्रत करके पुण्य-सञ्चय किया है। इस समय हमारा वंश संसार से उठ जाने को है। वंश आगे चलने की आशा नहीं है—इसी से हम पवित्र स्वर्गलोक से यहाँ, इस अवस्था में, गिर पड़े हैं। हमारा तप व्यर्थ हो गया। हमारे वंश में अभी एक मनुष्य है। उसका नाम जरत्कारु है। किन्तु हमारे अभाग्य से वह ब्रह्मचर्य धारण करके घोर तपस्या कर रहा है। उसका होना न होने के बराबर है। वह वेद-पाठ, व्रत और इन्द्रियों के दमन में ही अपनी आयु बिताये देता है। उस अभागे ने तप से फल की आशा करके हमारी यह दुर्दशा की है। उसके न स्त्री है, न पुत्र है और न कोई बन्धु-बान्धव है। इसी से हम अनाथ की तरह इस नरक-रूपी गढ़े में इस तरह—बेहोश जैसे—लटक रहे हैं। तुम दया २० करके हमें उबारना चाहते हो; इससे हम इतनी प्रार्थना करते हैं कि जरत्कारु से मिलकर इतना कह देना कि तुम्हारे पुरखे वंशनाश होने के कारण गढ़े में उलटे लटके हुए दुःख भोग रहे हैं।

तुम बुद्धिमान् और अपने वंश की एकमात्र सन्तान हो। अपने पुरखों को नरक से बचाने के लिए ब्याह करके पुत्र उत्पन्न करो। हे ब्राह्मण, यह सेंठे की जड़—जिसके सहारे हम लटके हुए हैं—हमारे कुल को बढ़ानेवाला वंश है। ये इस जड़ के डोरे हमारी सन्तान हैं। यह मूसा काल है। इसने हमारी सन्तानों को नष्ट कर दिया है। यह जो एक डोरा लगा हुआ देख पड़ता है सो वही विवाह से विमुख जरत्कारु है। इसी के सहारे हम इस गढ़े के ऊपर लटके हैं। यह अनिवार्य काल तपस्या में लगे हुए मूढ़ जरत्कारु को धीरे-धीरे क्षीण करता चला जाता है। भगवन्, वह जरत्कारु तप और ब्रह्मचर्य से हमारी रक्षा नहीं कर सकता। यह डोरा कटते ही हम इस नरकरूपी गढ़े में, पापियों की तरह, गिरकर नरक की यन्त्रणा भोगेंगे। हम जब गिर पड़ेंगे तब कुछ समय के बाद जरत्कारु भी इसी गढ़े में गिरकर नरक
३० की यन्त्रणा भोगेगा। तप, यज्ञ आदि सब पुण्यकर्म पुत्र उत्पन्न करने के समान नहीं हैं। तुमने जो कुछ यहाँ देखा है सो सब उस जरुत्कारु से मिलकर कह देना। हमारी तरफ़ से तुम उसे ऐसा उपदेश करना कि वह विवाह करके पुत्र उत्पन्न करने की चेष्टा करे। हमारे दुःख को देखकर तुमने जैसी सहानुभूति दिखाई उससे तो जान पड़ता है कि तुम कोई हमारे स्वजन ही हो। कुल का सम्बन्ध हुए बिना ग़ैर पर किसी के सुख-दुःख का ऐसा असर पड़
३३ नहीं सकता। बतलाओ, तुम कौन हो।

---

## छियालीसवाँ अध्याय

जरत्कारु का पितरों से बातचीत करना और स्त्री की खोज करना

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, पितरों के मुँह से यह हाल सुनकर जरत्कारु को बड़ा दुःख और शोक हुआ। उनका गला भर आया। उन्होंने पितरों से कहा—पितृगण, आप मेरे ही पूर्व-पुरुष हैं। मैं ही आपका वंशधर अपराधी जरत्कारु हूँ। आप जो चाहिए, वह दण्ड मुझको दीजिए। बतलाइए, अब आपके उद्धार के लिए मुझे क्या करना चाहिए।

पितरों ने कहा—पुत्र, यह हमारे सौभाग्य का उदय हुआ जो तुम घूमते-घूमते यहाँ पहुँच गये। भला यह तो बताओ, तुमने अभी तक विवाह क्यों नहीं किया। जरत्कारु ने कहा—पितृगण, मेरी यह इच्छा थी कि जन्म भर ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी रहूँ। मैंने निश्चय कर लिया था कि ब्याह करूँगा ही नहीं। किन्तु यहाँ आप लोगों को पक्षी की तरह लटकते देखकर, अत्यन्त प्रिय होने पर भी, मैं ब्रह्मचर्य को छोड़ दूँगा। आप लोगों को उबारने के लिए प्रिय कार्य करूँगा। किन्तु शर्त यह है कि अगर कहीं मेरे ही नामवाली कन्या मिलेगी और उसके भाई, पिता आदि स्वजन भिक्षा के तौर आप ही आकर मुझे देंगे तभी मैं ब्याह करूँगा।

उस कन्या का भरण-पोषण भी मुझे न करना पड़े। यह जो मैं कह रहा हूँ सो अवश्य करूँगा। उस स्त्री में जो बालक पैदा होगा वह आप लोगों का उद्धार करेगा। उससे आप लोगों को उत्तम अक्षय लोक प्राप्त होंगे। १०

उग्रश्रवा कहते हैं—इस प्रकार पितरों से ब्याह करने की प्रतिज्ञा करके जरत्कारु ऋषि फिर पृथ्वी पर विचरने लगे। शौनकजी! परन्तु उन्हें वृद्ध देखकर कन्या देने को कोई राज़ी नहीं हुआ। तब पितरों की आज्ञा को स्मरण करके उच्च स्वर से रोते हुए बहुत ही खिन्न होकर जरत्कारु ने वन में धीरे-धीरे तीन बार पत्नी की भिक्षा माँगी। जरत्कारु ने कहा—मैं स्त्री की भिक्षा माँग रहा हूँ; यहाँ पर चर या अचर जो कोई उपस्थित हैं या छिपे हुए हैं, सब सुन लें। मैं जन्म से कठोर तप कर रहा हूँ। इस समय दुर्दशा में पड़े हुए पितरों की आज्ञा से पुत्र उत्पन्न करने के लिए मैं ब्याह करना चाहता हूँ। किन्तु सारी पृथ्वी में घूमकर कन्या की भिक्षा माँगने पर भी किसी ने मुझको अपनी कन्या नहीं दी। मैं ग़रीब हूँ और कष्ट से जीवन बिताता हूँ। इस समय जिन प्राणियों के आगे मैं यह भिक्षा माँग रहा हूँ उनमें से यदि किसी के मेरे ही नाम की कन्या हो, और विवाह के उपरान्त भी उसे कन्या का भरण-पोषण करना स्वीकार हो, तो वह भिक्षा के तौर पर अपनी कन्या मुझको दे। १८

जिन साँपों को वासुकि नाग ने जरत्कारु का पता लगाने का काम सौंप रक्खा था उन्होंने उसी समय नागराज से जाकर कहा कि इस समय जरत्कारु ऋषि विवाह की इच्छा से कन्या की भिक्षा माँग रहे हैं। यह ख़बर पाते ही वासुकि नाग कपड़े-गहने आदि पहनाकर अपनी बहन को साथ लिये वन में जरत्कारु ऋषि के पास पहुँचा। उसने भिक्षा के तौर पर जरत्कारु ऋषि को अपनी बहन देने की इच्छा प्रकट की। जरत्कारु ने यह सोचा कि यह कन्या मेरे ही नाम की शायद न हो और शायद इसका भरण-पोषण भी मुझे ही करना पड़े, इसलिए पहले एकाएक उसे लेना स्वीकार नहीं किया।

जरत्कारु ने वासुकि से कहा—इस कन्या का नाम क्या है? दूसरे, यह मैं पहले ही कहे देता हूँ कि ब्याह करने के बाद इसका भरण-पोषण मैं न करूँगा। २३

---

## सैंतालीसवाँ अध्याय

जरत्कारु का गर्भवती होना। प्रतिज्ञा-भङ्ग से
कुपित मुनि का स्त्री को छोड़कर वन की ओर चल देना

उग्रश्रवा कहते हैं कि हे शौनकजी, जरत्कारु के वचन सुनकर वासुकि ने कहा—भगवन्, यह मेरी बहन तपस्विनी और आपके ही नाम की है। इसका भी नाम जरत्कारु है। मैंने

आपके ही लिए इसको अब तक रख छोड़ा है; इसका विवाह नहीं किया है। विवाह के उपरान्त मैं यथाशक्ति इसका भरण-पोषण और रक्षण भी करूँगा।

जरत्कारु ने कहा—[ तो हे नागराज, मुझे इसके साथ ब्याह करना स्वीकार है। किन्तु ] यह फिर मैं कहे देता हूँ कि एक तो मैं इसका भरण-पोषण नहीं करूँगा; दूसरे यह मेरा अप्रिय कभी न करे। यदि अप्रिय करेगी तो मैं इसे छोड़ दूँगा।

वासुकि ने दोनों बातें स्वीकार कर लीं। तब जरत्कारु उसके साथ नाग-लोक को गये। वहाँ वेदपाठी तपस्वी धर्मात्मा जरत्कारु ने विधिपूर्वक नागकन्या के साथ विवाह किया। विवाह हो जाने पर वासुकि ने मुनि के रहने के लिए एक सुन्दर भवन दे दिया। वहाँ सुन्दर बिछौने बिछे हुए पलँगों पर जरत्कारु ऋषि अपनी स्त्री के साथ बड़े सुख से रहने लगे। ऋषि ने अपनी स्त्री से कह दिया कि देखो, तुम ऐसी बात कभी न कहना और न करना जो मुझे अप्रिय हो। यदि कभी ऐसा करोगी तो मैं तुम्हारे घर को और तुमको छोड़कर चला जाऊँगा। ऋषि [ के कोप ] से डरती हुई नाग-कन्या को स्वीकार ही करना पड़ा। वह सदा उनका मन लिये रहने लगी। कुत्ता जैसे स्वामी की सेवा में सावधान रहता है उस तरह वह सावधान रहती थी। मृग जैसे शिकारी से डरता है उस तरह वह जरत्कारु से डरा करती थी। नाग-कुमारी अपनी बुद्धि से मुनि के मन
११ का भाव पहले से ही, कौए की भाँति, समझकर उन्हें प्रसन्न रखने की चेष्टा में लगी रहती थी।

एक दिन ऋतु-स्नान करके वासुकि की बहन अपने पति के पास रही। उसी रात को उसके अग्नि के समान तेजस्वी गर्भ रह गया। गर्भ के भीतर वह बालक शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगा। इसी बीच में एक दिन महायशस्वी जरत्कारु ऋषि अपनी स्त्री की गोद में सिर रखकर थके हुए की तरह सो रहे। सूर्य अस्त होने लगे, तब भी ऋषि की आँख नहीं खुली। तब, धर्मनाश के डर से, चिन्तित होकर नागराज की बहन सोचने लगी कि अब मैं क्या करूँ! स्वामी को सोने दूँ या जगा दूँ? ये दिन भर कष्ट सहा करते हैं। इस समय ये थके हुए अचेत सो रहे हैं। ये धर्मात्मा और क्रोधी हैं। यदि मैं न जगाऊँगी तो सायङ्काल की सन्ध्या रह जाने से इनका धर्म नष्ट हो जायगा और अगर जगा दूँगी तो ये अवश्य क्रोध करके मुझको छोड़ देंगे। मेरी समझ में इनके कोप को सह लेना
२० अच्छा है। धर्म को नष्ट न होने देना चाहिए।

यों सोचकर नाग-कन्या ने मधुर स्वर में कहा—भगवन्, सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँच गये। उठिए, सन्ध्यावन्दन कीजिए। आचमन करके अग्निहोत्र कीजिए। यह समय जैसा रम्य है वैसा ही दारुण भी है। ऋषि उठ बैठे। क्रोध के मारे उनके ओठ फरकने लगे। ऋषि ने कहा—नाग-कन्या! तूने सोते से जगाकर मेरा अपमान किया, इससे अब मैं—प्रतिज्ञा के अनुसार—तेरे पास नहीं रह सकता। मेरी आँखें खुले बिना सूर्य कभी अस्त हो ही

नहीं सकते, यह मेरा दृढ़ निश्चय है। मैं या मेरे समान और कोई धार्मिक पुरुष, जहाँ अपमान हो वहाँ रहना कभी पसन्द न करेगा।

हृदय को हिला देनेवाले पति के ये दारुण वचन सुनकर वासुकि की बहन ने मुनि से कहा—ब्रह्मन्, अपमान करने के इरादे से मैंने आपको नहीं जगाया। सन्ध्या का समय हो गया था। मैंने यही सोचकर आपको जगाया कि सन्ध्यावन्दन का समय बीत जायगा तो धर्म की हानि होगी। ऋषि ने उसी तरह क्रोध के साथ कहा—हे नाग-कुमारी, मेरा कहा अन्यथा नहीं हो सकता। मैं तुमको छोड़कर चला जाऊँगा। मैं तुमसे पहले ही यह प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। सुन्दरी, अब मैं जाता हूँ। मैं तुम्हारे यहाँ इतने दिन तक सुख से रहा। मेरे चले जाने पर तुम अपने भाई को मेरे जाने की ख़बर दे देना। और देखो, मेरे चले जाने से तुम भी कुछ शोक न करना।



३२

यह सुनकर नाग-कन्या का हृदय दुःख और चिन्ता के मारे धड़कने लगा, गला भर आया, मुँह सूख गया, आँखों से आँसू बहने लगे। धैर्य धर करके हाथ जोड़कर उसने कहा—हे धर्मज्ञ, आप मुझे छोड़कर न जाइए। मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया। मैंने सदा धर्म का पालन करते हुए आपका प्रिय और हित किया है। इसके सिवा जिस प्रयोजन से मेरे भाई ने आपके साथ मेरा ब्याह किया है, वह अभी सिद्ध नहीं हुआ। आप चल देंगे तो भाई वासुकि मुझसे क्या कहेंगे! आपसे पुत्र होने में ही मेरी जातिवालों की भलाई है। आपके वीर्य से मेरे गर्भ में जो बालक होगा वही सब साँपों को माता के शाप से बचावेगा। वह पुत्र अभी उत्पन्न नहीं हुआ। मेरा आपका यह विवाह-सम्बन्ध निष्फल न होना चाहिए। मैं अपनी जाति के हित के लिए आपको मनाती हूँ। क्षमा कीजिए, अभी मुझे छोड़कर न जाइए। मेरे गर्भ है, पर यह निश्चय नहीं कि उसमें बालक ही उत्पन्न होगा। आप महात्मा हैं; मुझ निर्दोष पत्नी को छोड़कर अभी न जाइए।

जरत्कारु ऋषि ने कहा—हे सुन्दरी, तुम्हारे इस गर्भ में अग्नि के समान तेजस्वी परम धर्मात्मा बालक है। यह चारों वेदों और वेदाङ्ग का जाननेवाला विद्वान् होगा। सूत कहते हैं—हे शौनकजी, महर्षि जरत्कारु अपनी स्त्री से यों कहकर फिर उग्र तप करने के विचार से चले गये।

४३

# अड़तालीसवाँ अध्याय

वासुकि से और उसकी बहन से बातचीत। आस्तीक की उत्पत्ति

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, जरत्कारु ऋषि के जाते ही नाग-कन्या ने अपने भाई से जाकर सब हाल कहा। इस अप्रिय समाचार को सुनकर वासुकि नाग बहुत ही दुखी हुआ। उसने अपनी बहन से कहा—मैंने जिस मतलब से ऋषि के साथ तुम्हारा ब्याह किया है, सो तुम जानती हो। मैंने ब्रह्माजी से सुना था कि जरत्कारु ऋषि के वीर्य से तुम्हारे गर्भ में जो पुत्र होगा वह जनमेजय के सर्पयज्ञ से हमारी रक्षा करेगा। बताओ, तुम गर्भवती हो या नहीं। मैं यह नहीं चाहता कि उन मुनिवर का ब्याह करना निष्फल हो। मैं जानता हूँ कि मुझे तुमसे ऐसा प्रश्न न करना चाहिए। लेकिन क्या किया जाय, काम की लाचारी से सब करना पड़ता है। तुम्हारे स्वामी कठोर तपस्वी हैं। उनको लौटाकर लाना बहुत ही कठिन है। उनके पीछे जाने का भी साहस नहीं होता। कहीं क्रोध करके वे शाप न दे दें। इसलिए जो कुछ
८ हुआ हो सो सब सुनाकर मेरे हृदय के सन्ताप को दूर करो।

वासुकि की बहन जरत्कारु ने आश्वासन देकर कहा—नागराज, मैं गर्भवती हूँ। जाते समय मुनि भी "अस्ति" ( है ) कह गये हैं। वे सत्यवादी ऋषि हँसी में भी झूठ नहीं बोलते, फिर विपत्ति के समय मुझसे उनका झूठ बोलना तो सर्वथा असम्भव है। उनका कहना झूठ न होगा। वे कह गये हैं कि मेरे गर्भ से अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र होगा। अब तुम कुछ चिन्ता न करो। अपनी बहन से यह शुभ समाचार सुनकर वासुकि ने बड़ी प्रसन्नता से कहा—ऐसा ही हो। शौनकजी, इस प्रकार निश्चिन्त होकर वासुकि धन और यथोचित पुरस्कार देकर बहन के पति-वियोग-दुःख को दूर करता हुआ यत्न के साथ उसकी सेवा करने लगा। महातेजस्वी वह बालक शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान नाग-कन्या के गर्भ में बढ़ने लगा। कुछ दिन बाद, समय उपस्थित होने पर, जरत्कारु के एक देव-कुमार सा सुन्दर बालक उत्पन्न हुआ। पिता और माता दोनों के कुल को तारनेवाले उस बालक ने नागराज के ही यहाँ पलकर ब्रह्मचर्य-व्रत की दीक्षा ली। तीक्ष्ण बुद्धिवाले उस बालक का नाम आस्तीक हुआ। जब आस्तीक गर्भ में थे तब उनके पिता 'अस्ति' कहकर चल दिये थे, इसी से उनका नाम 'आस्तीक' पड़ा। आस्तीक ने भार्गवश्रेष्ठ च्यवन ऋषि से सब वेद और वेदाङ्ग पढ़े। वासुकि के यहाँ यत्नपूर्वक आस्तीक की रक्षा होने लगी और वे शूलपाणि महादेव की तरह
२२ दिन-दिन बढ़कर सब नागों को प्रसन्न करने लगे।

# उनचासवाँ अध्याय

जनमेजय और मन्त्री के संवाद से फिर परीक्षित के चरित्र का वर्णन

शौनकजी ने कहा—[ उत्तङ्क ऋषि के उत्तेजित करने पर ] राजा जनमेजय ने मन्त्रियों से अपने पिता की मृत्यु का वृत्तान्त वर्णन करने के लिए कहा था, सो वही कथा फिर विस्तार से हमको सुनाइए। उग्रश्रवा ने कहा—राजा ने मन्त्रियों से जिस तरह पूछा और मन्त्रियों ने जिस प्रकार वर्णन किया, सो सुनिए।

राजा जनमेजय ने अपने मन्त्रियों से कहा—आप लोग मेरे पिता के चरित्र को और स्वर्गवास के वृत्तान्त को अच्छी तरह जानते हैं। आप लोग मेरे आगे सब हाल कहें। सुनकर जो उचित होगा वही करूँगा। मन्त्रियों ने कहा—राजन्, महाराज परीक्षित का चरित्र और उनके मरने का वृत्तान्त हम कहते हैं, सुनिए। महायशस्वी धर्मात्मा स्वर्गीय महाराज साक्षात् धर्म की तरह धर्म से प्रजा का शासन और पृथ्वी का पालन करते थे। उनके राज्य-काल में ब्राह्मण आदि चारों वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन करते थे। राजा किसी से द्रोह न रखते थे। इसी कारण उनसे भी कोई द्रोह न करता था। प्रजापति ब्रह्मा के समान वे सबको एक दृष्टि से देखते थे। चारों वर्ण उनके राज्य में रहकर आनन्द से अपना-अपना काम करते थे। [ धन की सहायता देकर गुप्त रूप से ] वे विधवा, अनाथ, अपाहिज और दीन-दुखियों का पालन करते थे। चन्द्रमा के समान उनके शान्त सुन्दर मुख को देखकर सबको प्रसन्नता होती थी। वे श्रीमान् सत्यवादी और महापराक्रमी थे। उनके अनुचर भी हृष्ट-पुष्ट रहते थे। उन्होंने कृपाचार्य से धनुर्वेद की शिक्षा पाई थी। राजन्, आपके पिता कृष्णचन्द्र को बहुत प्यारे थे। प्रजा उनको प्यार करती थी। कौरव-वंश के 'क्षीण' होने पर उत्पन्न होने के कारण उनका नाम परीक्षित पड़ा था। वे [ अभिन्यु के औरस से ] उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। महाराज परीक्षित राजधर्म में निपुण, नीति-शास्त्र के अच्छे जानकार, बुद्धिमान, षड्वर्ग-विजयी और जितेन्द्रिय थे। आपके धर्मात्मा पिता इस तरह साठ वर्ष की अवस्था तक प्रजा का पालन करके अन्त को परलोकवासी हुए। उनकी मृत्यु से सबको बड़ा दुःख हुआ। महाराज का स्वर्गवास होने पर बचपन में ही आपका राज्याभिषेक हुआ। अपने पिता की तरह सब जीवों की रक्षा करनेवाले आप हजारों वर्ष तक इस कुरुवंश के राज्य का शासन करें।

यह सुनकर राजा जनमेजय ने कहा—इस कुरुवंश में केवल मेरे पिता ही नहीं, बल्कि सभी राजा धर्मात्मा, प्रजा-पालक और प्रजा के प्यारे हुए हैं। फिर मेरे पिता ने तो अपने पितामह पाण्डवों के पवित्र आदर्श को देखा था—उनमें इन गुणों का होना स्वाभाविक ही था। अब आप लोग उनकी मृत्यु का वृत्तान्त वर्णन करें।

मन्त्रियों ने कहा—राजन्, कुछ समय के बाद आपके पिता अपने परदादा महाबाहु पाण्डु की तरह हम लोगों को राजकाज सौंपकर शिकार के शौक में पड़ गये। एक दिन वन में महाराज परीक्षित ने एक मृग के बाण मारा। वह मृग घायल होकर भागा। महाराज उस मृग का पीछा करते हुए पैदल ही बहुत दूर वन में निकल गये। राजा की साठ वर्ष की अवस्था थी। मृग का पीछा करने से वे थक गये थे। उन्हें भूख और प्यास ने भी सताया था। राजा ने वन में एक स्थान पर एक मुनि को देखा। वे मौन व्रत धारण किये ध्यान लगाये बैठे थे। राजा ने उनसे मृग के बारे में पूछा। किन्तु मुनि ने कुछ उत्तर न दिया। भूखे-प्यासे राजा को मुनि के मौन व्रत का हाल मालूम न था। उन्होंने उत्तर न पाने से अपना अपमान समझकर क्रोध करके मरे हुए साँप को धनुष की नोक से उठाकर मुनि के गले में डाल
३१ दिया। फिर भी मुनि ने भला या बुरा कुछ नहीं कहा; वैसे ही बैठे रहे।

---

## पचासवाँ अध्याय

सूने जङ्गल में होनेवाले तक्षक और काश्यप के संवाद की ख़बर
किस तरह मन्त्रियों को लगी, इसका वर्णन

मन्त्री कहते हैं—राजन्, थके और भूखे-प्यासे राजा इस तरह महामुनि का अपमान करके अपने नगर को लौट आये। उन महर्षि का नाम शमीक था। उनके, गाय के गर्भ से उत्पन्न, शृङ्गी नाम एक पुत्र थे। वे उग्र तपस्वी, महातेजस्वी और बड़े क्रोधी थे। [ वे प्रायः ब्रह्माजी के पास रहते थे—कभी-कभी अपने पिता के पास आ जाते थे। दैवयोग से ] इसी दिन वे ब्रह्मलोक से आ रहे थे। राह में उनके मित्र कृश नामक ऋषि-कुमार मिल गये। कृश ने यह कहकर उनका उपहास किया कि तपस्वी, जितेन्द्रिय, विशुद्ध, आत्मदर्शी, व्रतधारी, सदाचारी, सत्यवादी, धीर, उदार, ईर्ष्याहीन, मौन, वृद्ध तुम्हारे पिता के गले में मरा हुआ साँप पड़ा हुआ है। राजा परीक्षित ने उनका यह अपमान किया है। [ यह सब वृत्तान्त सुनकर ] महातेजस्वी शृङ्गी ऋषि ने क्रोधित होकर आपके पिता परीक्षित को शाप दिया कि आज के सातवें दिन तक्षक नाग
११ के काटने से उनकी मृत्यु होगी। ऋषिकुमार शृङ्गी शाप देकर अपने पिता के पास पहुँचे। उन्होंने पिता के पास जाकर सब वृत्तान्त कहते हुए कहा कि मैंने परीक्षित को ऐसा शाप दिया है। [ यह सुनकर ऋषि को बड़ा खेद हुआ। ] उन्होंने अपने शिष्य 'गौरमुख' के द्वारा राजा के पास यह समाचार भेज दिया। गौरमुख ने जाकर राजा को सब हाल कह सुनाया। यह समाचार पाकर राजा को बहुत पछतावा हुआ। [ वे चिन्तित होकर एक सुरक्षित भवन के भीतर रहकर राजकाज करने लगे। ] सातवें दिन तक्षक नाग राजा को डसने चला और उधर

एक गुणी काश्यप ऋषि भी विष से जले हुए राजा को जिलाकर धन पाने की इच्छा से राजा के पास आने को चले। राह में तक्षक से उनकी भेंट हो गई। तक्षक ने [ ब्राह्मण का रूप रख-कर ] उनसे पूछा कि तुम कौन हो? किस काम से, कहाँ, जा रहे हो? काश्यप ने कह दिया कि मैं राजा परीक्षित को जिलाकर धन पाने को जा रहा हूँ। मेरे बचाने से तक्षक के २०
किये कुछ न होगा। तक्षक ने कहा—[ आप लौट जाइए। ] मेरे काटे हुए को आप नहीं बचा सकते। तक्षक ने परीक्षा लेने के लिए एक बड़े भारी बरगद के पेड़ को अपने विष से भस्म कर दिया। काश्यप ने उसी घड़ी मन्त्र के बल से उस वृक्ष को हरा-भरा कर दिया। [ यह देखकर तक्षक को बड़ा अचरज हुआ। ] उसने काश्यप से कहा—जो चाहो सो माँग लो। काश्यप ने धन माँगा। तक्षक ने कहा—जितना धन तुम राजा से माँगने जाते थे उससे दूना मुझसे ले लो। काश्यप ने स्वीकार कर लिया। वे तक्षक से धन लेकर लौट गये। ब्राह्मण के चले जाने पर कपट से आकर तक्षक ने आपके पिता को डस लिया। वे बड़ी सावधानी से अलग सुरक्षित स्थान में रहते थे, परन्तु छल करके तक्षक वहाँ पहुँच गया। इस प्रकार तक्षक के काटने से जब आपके पिता का स्वर्गवास हो गया तब आपका राज्याभिषेक हुआ। राजन, जो कुछ हमने देखा और सुना था सो सब आपके आगे वर्णन कर दिया। अपने पिता का और उत्तङ्क ऋषि का पराजय वृत्तान्त आप सुन चुके। अब जो उचित समझिए सो कीजिए। ३१

यह सुनकर जनमेजय ने कहा—तक्षक ने अपने विष से उस वृक्ष को जला डाला और काश्यप ने फिर उस वृक्ष को हरा कर दिया, यह वृत्तान्त तुमने किससे सुना? उस वृक्ष को फिर हरा होते देखकर दुष्ट तक्षक ने यह सोचा होगा कि मेरे काटने पर ये ब्राह्मण देवता अवश्य राजा को जिला देंगे। तब सब लोग संसार में निर्विष कहकर मेरा उपहास करेंगे। यही सोचकर उस दुष्ट ने धन देकर काश्यप को बीच ही से लौटा दिया। अच्छा, अब यह बताओ कि तुमने तक्षक और काश्यप का संवाद किससे सुना। फिर मैं साँपों का नाश करने के लिए कोई उपाय अवश्य करूँगा। ३८

मन्त्रियों ने कहा—राजन, हमने जिससे यह वृत्तान्त सुना है, सो कहते हैं—सुनिए। इसी समय एक मनुष्य ईंधन लेने के लिए उस बरगद पर चढ़ा हुआ सूखी डाल ढूँढ़ रहा था। तक्षक और काश्यप, किसी ने उसको नहीं देखा। उस वृक्ष के साथ वह भी भस्म हो गया था। काश्यप की विद्या के प्रभाव से वह भी फिर वृक्ष के साथ जी उठा। राजन, उसी पुरुष ने आकर हमसे यह सब वृत्तान्त कहा था। हमने आपसे सब वृत्तान्त कह दिया; अब आपका जैसा जी चाहे, वैसा कीजिए।

सुनकर राजा जनमेजय को बड़ा दुःख और क्रोध हुआ। वे हाथ मलकर रह गये। एक लम्बी साँस लेकर देर तक रोने के बाद क्रोधित जनमेजय ने आँखें धोकर मन्त्रियों से कहा—

तुम लोगों से पिता के मरने का वृत्तान्त सुनकर मैंने यह निश्चय कर लिया है कि बहुत शीघ्र तक्षक से पिता की हत्या का बदला लेना चाहिए। शृङ्गी ऋषि का वचन तो कारणमात्र हो गया; किन्तु वह दुष्ट मेरे पिता के प्राण लेना ही चाहता था। नहीं तो, उस दुष्ट ने धन देकर राह से ही काश्यप को क्यों लौटा दिया? काश्यप आते तो मेरे पिता के प्राण कभी न जाते। मन्त्रियों के विनय और काश्यप की कृपा से यदि मेरे पिता जीते रहते तो उस दुष्ट की क्या हानि होती? उस मूढ़ ने राजा को जिलाने के लिए आ रहे ब्राह्मण को धन देकर लौटा दिया, यही उसकी बड़ी दुष्टता है। बस, अब मैं शीघ्र ही उत्तङ्क ऋषि का, अपना और तुम्हारा प्रिय करने के लिए तक्षक से अपने पिता का बदला चुकाता हूँ।

---

## इक्यावनवाँ अध्याय

जनमेजय का सर्पयज्ञ की प्रतिज्ञा करना। यज्ञ की सामग्री जमा होना। यज्ञ की दीक्षा लेना

उग्रश्रवा कहते हैं—भगवन्, श्रीमान् परीक्षित के पुत्र जनमेजय ने सर्पयज्ञ की प्रतिज्ञा करके पुरोहित आदि को बुलाकर कहा—अपने पिता की हत्या करनेवाले तक्षक से मैं बदला लेना चाहता हूँ। जिस तरह मेरे पिता को तक्षक ने विष की आग में जला डाला था उसी तरह मैं भी तक्षक को उसके बान्धवों समेत आग में जलाना चाहता हूँ। आप ऐसा कोई उपाय जानते हों तो बताइए। यदि कोई ऐसा यज्ञ हो तो बताइए, मैं वही करूँगा। ऋत्विजों ने कहा—राजन्, एक महायज्ञ है। उसे सर्पयज्ञ कहते हैं। देवताओं ने आप ही के लिए उसकी सृष्टि की है। पौराणिक लोग कहते हैं कि आपके सिवा और कोई उस यज्ञ को नहीं कर सकता। हम उस यज्ञ की विधि जानते हैं।

[ ऋत्विजों के मुँह से यह सुनकर ] राजा ने समझ लिया कि अब तक्षक बच नहीं सकता। राजा ने उसको अग्नि के मुँह में जला हुआ सा समझकर प्रसन्नतापूर्वक उन ब्राह्मणों से कहा—मैं वही यज्ञ करूँगा। आप लोग यज्ञ की सामग्री एकत्र कीजिए। राजा की आज्ञा पाकर वे वेदज्ञ बुद्धिमान् ब्राह्मण यज्ञ के योग्य पृथ्वी शोधकर उसे मापने लगे; फिर यज्ञमण्डप बन जाने पर उसमें यथाविधि वेदी बनाकर और धन-धान्य के ढेर लगाकर उसे सुशोभित किया। चारों ओर सब ब्राह्मण बैठे। बीच में बैठकर राजा ने यज्ञ की दीक्षा ली। हे शौनकजी, इसी समय एक विघ्न डालनेवाला कारण देख पड़ा। वास्तुविद्याविशारद जाति के सूत और पुराण के ज्ञाता श्रवई ने राजा से आकर कहा—राजन्, जिस समय और जिस स्थान में यज्ञभूमि बनी है उससे, जान पड़ता है कि, यह यज्ञ सम्पूर्ण न होगा। ब्राह्मण ही इस यज्ञ को बन्द करा देगा।

यह सुनकर राजा ने दीक्षा लेने के पहले ही द्वारपाल से कह दिया कि मेरी आज्ञा के बिना कोई भी यहाँ आने न पावे। १७

## बावनवाँ अध्याय

आग में साँपों का आ-आकर गिरना

उग्रश्रवा कहते हैं—अब विधिपूर्वक सर्पयज्ञ होने लगा। काले रङ्ग के कपड़े पहने सब यज्ञ करानेवाले ब्राह्मण अपना-अपना काम करने लगे। होम का धुआँ लगने से उनकी आँखें लाल हो आईं। वे लोग प्रज्वलित आग में मन्त्र पढ़-पढ़कर साँपों के हृदय हिलानेवाली आहुतियाँ छोड़ने लगे। आवाहन करते ही सब साँप विवश होकर चिल्लाते हुए आ-आकर अग्निकुण्ड में गिरने लगे। सफ़ेद, काले, नीले रङ्ग के, छोटे-बड़े, बच्चे-बूढ़े, सब तरह के साँप तरह-तरह के शब्द करते—तड़पते—एक दूसरे से लिपटते—आ-आकर उसी जलती हुई आग में गिरने लगे। माता के शाप से—घोड़े ऐसे, हाथी की सूँड़ ऐसे, बेलन ऐसे, कोस भर के लम्बे, योजन भर के लम्बे, गाय के कान ऐसे, छोटे और बड़े,—अनेक रङ्ग के विषधर लाखों-करोड़ों साँप बड़े वेग से आ-आकर अग्निकुण्ड में जलने लगे। १०



## तिरपनवाँ अध्याय

ऋत्विजों के नामों का उल्लेख। इन्द्र का तक्षक को आश्वास देना। वासुकि और उसकी बहन की बातचीत

शौनक ने पूछा—हे सूतपुत्र, साँपों का संहार करनेवाले जनमेजय के भयानक यज्ञ में सर्पयज्ञ की विधि जाननेवाले ऋत्विज कौन-कौन थे? और सदस्य कौन-कौन थे? उनके नाम हमारे आगे कहो। उग्रश्रवा ने कहा—मैं सब महर्षियों के नाम कहता हूँ, मन लगाकर सुनिए। जनमेजय के सर्पयज्ञ में च्यवन ऋषि के वंश में उत्पन्न वेद के ज्ञाता प्रसिद्ध महर्षि चण्डभार्गव होता थे। शास्त्र के जाननेवाले वृद्ध तपस्वी कौत्स ऋषि उद्गाता थे। जैमिनि ऋषि ब्रह्मा का काम करते थे। शार्ङ्गरव और पिङ्गल ऋषि अध्वर्यु थे। पुत्र शुकदेव और शिष्य वैशम्पायन आदि सहित वेदव्यास, उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु, पिङ्गल, असित, देवल, नारद, पर्वत, आत्रेय, कुण्ड,

जठर, कालघट, वात्स्य, स्थविर, श्रुतश्रवा, जप और वेदपाठ में निरत सदाचारी वृद्ध कोहल, देव-
१० शर्मा, मौद्गल्य, समसौरभ और अन्यान्य अनेक वेदज्ञ ब्राह्मण सदस्य थे।

ऋत्विजों के आहुति डालने पर प्राणियों के लिए भयानक घोर सर्प आपसे आकर अग्नि-कुण्ड में गिर रहे थे। उन नागों की चर्बी और मेदा इतनी निकली कि उसकी नदी सी बहने लगी। जल रहे मांस की दुर्गन्ध चारों ओर फैल गई। अग्नि में जल रहे, आकाश से गिर रहे और आ रहे नागों के आर्तनाद से कान मानो फटने लगे। अपराधी तक्षक ने जब सुना कि राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ की दीक्षा ली है तब वह उसी समय प्राण बचाने के लिए इन्द्र के पास पहुँचा। अपराधी होने के कारण डरे हुए तक्षक ने इन्द्र की शरण में जाकर सब हाल कह दिया। इन्द्र ने प्रसन्न होकर तक्षक से कहा—नागराज, तुमको सर्पयज्ञ से कुछ भी डर नहीं है। मैंने पहले ही तुम्हारी ओर से विधाता को प्रसन्न कर लिया है। तुम कुछ चिन्ता न करो।
१८ इस प्रकार इन्द्र से आश्वास पाकर नागराज तक्षक इन्द्र के लोक में सुख से रहने लगा।

इधर हज़ारों लाखों साँप अग्नि में गिरकर स्वाहा हो गये। बहुत थोड़े नाग रह गये। यह देखकर वासुकि को बड़ा खेद हुआ। शोक के वेग से उसका हृदय धड़कने लगा और आँखों के आगे अँधेरा छा गया। वासुकि ने अपनी बहन को बुलाकर कहा—बहन, मेरा शरीर जला सा जा रहा है, सब तरफ़ अँधेरा देख पड़ रहा है। मोह के मारे मैं शिथिल सा हो रहा हूँ, सिर में चक्कर सा आ रहा है। मेरा हृदय मानो फटा जा रहा है। जान पड़ता है, मैं भी विवश होकर सब साँपों की तरह अग्निकुण्ड में गिरकर भस्म हो जाऊँगा। हम नागों का विनाश करने के लिए जनमेजय ने यह सर्पयज्ञ किया है। मुझे भी यमराज के यहाँ अवश्य जाना होगा। बहन, मैंने जरत्कारु ऋषि के साथ जिस लिए तुम्हारा विवाह किया था सो तुम्हें याद होगा। यही वह समय है। इस समय तुम मेरी और बचे हुए साँपों की रक्षा करो। मैं पहले ही ब्रह्मा का वाक्य तुमसे कह चुका हूँ कि सर्पयज्ञ को आस्तीक ऋषि रोकवावेंगे। इस कारण बहन, अब तुम विज्ञपूजित वेदार्थ के पण्डित अपने पुत्र से हम
२६ साँपों की रक्षा करने के लिए कहो।

## चौवनवाँ अध्याय

आस्तीक के साथ उनकी माता की बातचीत। वासुकि को आश्वास देना। आस्तीक का सर्पयज्ञ में जाना

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, तब नागकन्या जरत्कारु ने वासुकि के कहने से अपने पुत्र आस्तीक को बुलाकर कहा—बेटा, मेरे भाई ने जिस प्रयोजन से तुम्हारे पिता के साथ मेरा

ब्याह किया था उसका समय आ गया है। इस समय जो उचित है वही करो। आस्तीक ने कहा—माता, मामा ने किस प्रयोजन से मेरे पिता के साथ तुम्हारा ब्याह किया था, सो कहो। सुनकर जो मुझे करना चाहिए वह मैं करूँगा। तब नागकुल का हित चाहनेवाली नागराज की बहन जरत्कारु ने अपने पुत्र से कहा—साँपों की माता कद्रू ने जिसलिए कुपित होकर अपने पुत्रों को शाप दिया, सो कहती हूँ—सुनो। कद्रू ने एक समय अपनी सौत विनता से दासीभाव की बाज़ी लगाकर अपने बेटे साँपों से कहा कि तुम लोग उच्चैःश्रवा घोड़े की पूँछ में लिपटकर उसकी सफ़ेद पूँछ को काली बना दो। इस पर बहुत से नाग राज़ी नहीं हुए। इससे क्रोध करके कद्रू ने उनको शाप दिया कि तुम लोग मेरी आज्ञा नहीं मानते, इससे जनमेजय राजा के यज्ञ में तुम आग में जलोगे। इस प्रकार तुम लोगों की मृत्यु होगी। ब्रह्माजी ने कद्रू के इस दारुण शाप को सुनकर उनको रोका नहीं, बल्कि उनके शाप ही का अनुमोदन किया। वासुकि भी ब्रह्मा के वाक्य को सुनकर समुद्रमन्थन के बाद देवताओं की शरण में गया। दुर्लभ अमृत पाकर सब देवता मेरे भाई को साथ लिये ब्रह्माजी के पास गये। देवों ने वासुकि की ओर से १०
ब्रह्माजी को प्रसन्न करके कहा—भगवन, अपनी जातिवालों पर आनेवाले सङ्कट का ख़याल करके नागराज वासुकि बहुत दुःखित हैं। आप कृपा करके ऐसा कोई उपाय कीजिए कि साँपों की माता का शाप निष्फल हो जाय। ब्रह्माजी ने कहा—जरत्कारु ऋषि इसी नाम की स्त्री से ब्याह करके उसके गर्भ से जिस पुत्र को उत्पन्न करेंगे वही द्विज साँपों को इस शाप से छुड़ावेगा। यह सुनकर नागराज वासुकि ने पहले ही तुम्हारे पिता से मेरा ब्याह कर दिया। तुमने मेरे गर्भ से इसी लिए जन्म लिया है। यही वह साँपों पर सङ्कट उपस्थित होने का समय है। इस समय तुम मेरे भाई को और अन्य नागों को आग में जलने से बचाओ। तुम्हारा यह कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य के पालन से तुम्हारे पिता के साथ मेरा विवाह होना सफल हो जायगा।

माता के वचन सुनकर, वासुकि को निश्चिन्त और निडर करते हुए, तपस्वी आस्तीक ने कहा—हे नागराज, मैं सत्य कहता हूँ, इस शाप से तुमको अवश्य छुड़ाऊँगा। अपने चित्त को स्वस्थ करो, अब तुम्हें कुछ डर नहीं है। मैं ऐसा करूँगा, जिसमें तुम्हारा भला हो। मैं हँसी-दिल्लगी में भी झूठ नहीं बोला; फिर इस समय मेरा कहना कैसे झूठ हो सकता है! सुनो मामा, यज्ञ की दीक्षा लिये हुए राजा जनमेजय के पास जाकर मैं आशीर्वाद के २०
वचनों से उन्हें सन्तुष्ट करूँगा और यज्ञ रोकवा दूँगा। हे नागराज, मैंने जो कुछ कहा है उसे पूरा करने की शक्ति मुझमें है। मेरे कहने पर विश्वास रक्खो। "यह हमको माता के शाप से छुड़ावेगा" यह तुम्हारी आशा निष्फल नहीं हो सकती।

वासुकि ने कहा—आस्तीक, मैं इस समय ब्रह्मदण्ड (माता के शाप) से पीड़ित और मोहित हो रहा हूँ। मेरा हृदय फटा जाता है, सिर में चक्कर आ रहा है, मुझे दिशाओं का

ज्ञान तक नहीं रहा। आस्तीक ने कहा—नागराज, तुम चिन्ता न करो। तुमको जो अग्नि और प्रलयकालीन अग्नि से बढ़कर महाघोर ब्रह्मदण्ड का डर है उसे मैं दूर किये देता हूँ।

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, इस तरह वासुकि की घोर चिन्ता को स्वयं लेकर साँपों की रक्षा के लिए आस्तीक ऋषि राजा जनमेजय के सर्वाङ्गपूर्ण यज्ञ की ओर चले। वहाँ पहुँचकर आस्तीक ने यज्ञमण्डप को देखा। सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी सदस्य ऋषि वहाँ चारों ओर बैठे हुए थे। भीतर जाते समय द्वारपालों ने आस्तीक को रोका। तब परम तपस्वी, पुण्यात्मा, ब्राह्मण-श्रेष्ठ आस्तीक ऋषि भीतर पहुँचने की प्रार्थना करते हुए राजा की, ऋत्विजों की, सदस्यों की, यज्ञ की और अग्नि की स्तुति करने लगे।



## पचपनवाँ अध्याय

आस्तीक की की हुई जनमेजय के यज्ञ की प्रशंसा

आस्तीक ने कहा—प्रयाग क्षेत्र में सोम, वरुण और प्रजापति ने यज्ञ किया था। हे भरतकुलतिलक परीक्षितपुत्र जनमेजय, आपका यज्ञ भी उन्हीं यज्ञों के समान हो रहा है। प्रार्थना करता हूँ, मेरे प्रिय व्यक्तियों का भला हो। इन्द्र ने पूरे एक सौ यज्ञ किये थे, किन्तु आपका यह एक ही यज्ञ उन सौ यज्ञों के समान हो रहा है। हे भरतकुलतिलक परीक्षित के पुत्र जनमेजय, मेरे प्रिय व्यक्तियों का भला हो। पूर्व समय में यम ने यज्ञ किया था, हरिमेधा ने यज्ञ किया था, राजा रन्तिदेव ने यज्ञ किया था। राजन्, आपका यह यज्ञ उन्हीं यज्ञों के समान हो रहा है। प्रार्थना करता हूँ, मेरे प्रिय व्यक्तियों का भला हो। गय, शशबिन्दु और राजाधिराज कुबेर ने यज्ञ किया था। हे भरतकुलतिलक परीक्षित के पुत्र जनमेजय, आपका यज्ञ भी वैसा ही हो रहा है। प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्रिय व्यक्तियों का कल्याण हो। सुना है, राजा नृग, अजमीढ़, दाशरथि राम और अजमीढ़वंशी धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने भी महायज्ञ किया था। हे भरतश्रेष्ठ, आपका यह यज्ञ भी वैसा ही हो रहा है। प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्रिय व्यक्तियों का मङ्गल हो। पूर्व समय में सत्यवती-सुत द्वैपायन व्यास ने भी यज्ञ की दीक्षा लेकर आप ही उसके सब कृत्य किये थे। हे भरतश्रेष्ठ, आपका यह यज्ञ भी

वैसा ही हो रहा है। प्रार्थना करता हूँ कि मेरे प्रिय व्यक्तियों का कल्याण हो। इन्द्र के यज्ञ के समान आपके इस यज्ञ में सूर्य के जैसे तेजस्वी ये सदस्य ब्राह्मण विराजमान हैं। संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं जिसे इन्होंने न प्राप्त किया हो। इन सुपात्रों को दान देने से कभी उसका क्षय नहीं हो सकता। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि महर्षि वेदव्यास के समान ऋत्विज तीनों लोकों में नहीं है। अपने-अपने कर्म में निपुण सब व्यासजी के ही शिष्य पृथ्वी पर सबको यज्ञ कराते हैं। ये कृष्णवर्त्मा हिरण्यरेता विचित्र शिखाओं से शोभित और हवन की सामग्री को जलानेवाले अग्निदेव आपके यज्ञ में प्रज्वलित होकर दक्षिण की ओर से घूम रही लपटों से आहुति लेते हैं। [इन्हीं के मुख से सब देवता अपना-अपना भाग पाते हैं।] राजन, १०
इस समय संसार में आपकी तरह प्रजा का पालन करनेवाला कोई दूसरा राजा नहीं है। आपका अलौकिक धैर्य देखकर मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ। आप वरुण, धर्मराज और यम के समान महाराज हैं। साक्षात् वज्रपाणि इन्द्र की तरह आप इस लोक में प्रजा का पालन करते हैं। हे पुरुषसिंह, आपके तुल्य राजा न कभी कोई हुआ है, न इस समय है। आप महाराज खट्वाङ्ग, नाभाग और दिलीप के समान हैं। आपका प्रभाव ययाति और मान्धाता के समान है। आप सूर्य के समान तेजस्वी हैं। आप भीष्म-पितामह के समान सत्यप्रतिज्ञ हैं। आपका वीर्य वाल्मीकि के प्रभाव के समान गुप्त है। आपका कोप, वशिष्ठ के कोप के समान, अपने वश में है। आपकी प्रभुता इन्द्र की प्रभुता के समान और शोभा नारायण की शोभा के समान है। आप धर्म निर्णय के काम में यम के समान हैं। आप कृष्णचन्द्र के समान सब गुणों से अलङ्कृत हैं। आप लक्ष्मी के निवासस्थान, धन के अधीश्वर और यज्ञों के करनेवाले हैं। आप बल में दम्भोद्भव के समान, शास्त्र और शस्त्रविद्या में परशुराम के समान, तेज में और्व और त्रित ऋषि के समान और तत्परता में भगीरथ के समान हैं।

उग्रश्रवा कहते हैं—शौनकजी, आस्तीक के इन स्तुति-वाक्यों को सुनकर राजा जनमेजय, सदस्यगण, ऋत्विज और स्वयं अग्निदेव, सभी बहुत प्रसन्न हुए। स्पष्ट प्रकट चिह्नों के द्वारा उनकी प्रसन्नता को जानकर राजा जनमेजय ने कहा। १७

---

## छप्पनवाँ अध्याय

राजा और ऋत्विजों की बातचीत। मन्त्रबल से तक्षक-सहित इन्द्र का आना।
इन्द्र के डरकर भाग जाने पर अग्नि के पास तक्षक का आना।
आस्तीक का यज्ञ-समाप्ति का वर मांगना

जनमेजय ने कहा—ये ब्राह्मणकुमार बालक होने पर भी वृद्धों की तरह बातें कर रहे हैं। जान पड़ता है, ये बालवेषधारी कोई वृद्ध पुरुष ही हैं। मैं इनको वर देना चाहता हूँ।

ब्राह्मणगण, आप लोग एकमत होकर इस बारे में सलाह दीजिए। सदस्यों ने कहा—बालक हो या बूढ़ा, ब्राह्मण हर अवस्था मे राजा के लिए माननीय है। यदि वह विद्वान् है तो और भी अधिक सम्मान का पात्र है। इस कारण ये ब्राह्मण-कुमार तक्षक के सिवा और जो माँगें वही आप दे सकते हैं। उग्रश्रवा कहते हैं—इसके बाद राजा ने ज्योंही आस्तीक से "वर माँगो" कहना चाहा त्योंही कुछ असन्तुष्ट होकर होता ने कहा—महाराज, ठहर जाइए, तक्षक को आकर अग्नि में भस्म हो लेने दीजिए। यह सुनकर जनमेजय ने कहा—अब आप लोग वही चेष्टा कीजिए जिसमें मेरा यह कर्म सफलता के साथ समाप्त हो और तक्षक नाग शीघ्र ही आ जाय। वही मेरा घोर शत्रु है।

ऋत्विजों ने कहा—राजन्, शास्त्र के प्रभाव और अग्नि के माहात्म्य से हमको मालूम हुआ है कि डरा हुआ तक्षक इन्द्र की शरण में जाकर छिपा है। पहले कहा जा चुका है कि दीक्षा लेने से प्रथम महात्मा पौराणिक लोहिताक्ष सूत ने राजा से कह दिया था कि महाराज, यह यज्ञ समाप्त न होगा। उनसे भी राजा ने पूछा। उन्होंने कहा—राजन्, ये ब्राह्मण जो कह रहे हैं वही ठीक है। पूर्व कल्प के वृत्तान्त को जानने के कारण मैं आपसे यह कहता हूँ। इन्द्र ने अभय देकर तक्षक से कहा है कि हे तक्षक, तुम मेरे लोक में रहो। यहाँ सुरक्षित रहने पर अग्नि तुमको जला न सकेंगे।

यह सुनकर जनमेजय को बड़ा सन्ताप हुआ। उन्होंने होता से आगे का कृत्य करने के लिए कहा। होता भी मन्त्र पढ़कर तक्षक के आने के लिए अग्नि में आहुति छोड़ने लगे। उसी समय विमान पर बैठे हुए देवराज इन्द्र आकाश में आ गये। देवता, गन्धर्व, विद्याधर और अप्सराएँ उनकी स्तुति कर रही थीं। मेघमण्डली उनके साथ थी। घबराया और डरा हुआ बेचैन तक्षक नाग प्राण बचाने के लिए इन्द्र के दुपट्टे में छिपा था। तक्षक का विनाश चाहनेवाले कुपित जनमेजय ने मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों से कहा—ब्राह्मणो, यदि तक्षक नाग सचमुच इन्द्र के भवन में छिपा हुआ है—इन्द्र उसकी रक्षा कर रहे हैं—तो आप लोग
११ इन्द्रसहित उसे शीघ्र अग्नि में डाल दीजिए।

उग्रश्रवा कहते हैं—जनमेजय के यों कहने पर होता ने तक्षक के बुलाने के लिए अग्नि में आहुति डाली। आहुति डालते ही इन्द्र के साथ व्याकुल तक्षक नाग आकाश में देख पड़ा। उस यज्ञ को देखकर इन्द्र बहुत ही डरे और तक्षक को वहीं छोड़कर अपने लोक को चले गये। इन्द्र के चले जाने पर डर से अचेत तक्षक नाग, मन्त्र की शक्ति से विवश होकर, अग्नि की ज्वाला की ओर बढ़ने लगा। तब ऋत्विजों ने राजा से कहा – महाराज, यह तक्षक नाग भयानक आर्त्तनाद करता चला आ रहा है। इन्द्र ने इसको छोड़ दिया है; अब यह मन्त्रबल से विवश अचेत होकर बड़ी-बड़ी फुफकारें मारता हुआ जलने के लिए स्वर्ग से गिर रहा है।

आपका काम विधिपूर्वक हो रहा है। इन ब्राह्मण-कुमार को अब जो चाहे वर दीजिए। ब्राह्मणों की आज्ञा पाकर राजा ने आस्तीक से कहा—हे अज्ञेयरूप ब्राह्मणकुमार, मैं तुम्हारे मनोहर बालरूप को देखकर प्रसन्न हूँ, तुमको तुम्हारी इच्छा के अनुसार वर देना चाहता हूँ। जो तुम्हारी इच्छा हो मुझसे माँग लो, न देने लायक़ होने पर भी मैं वही तुमको दूँगा। १८



उग्रश्रवा कहते हैं—हे शौनकजी, तक्षक के अग्नि में गिरने में कुछ भी देर न देख राजा ने आस्तीक से वर माँगने के लिए कहा था। ठीक मौक़ा देखकर आस्तीक ने कहा—महाराज जनमेजय, यदि आप मुझे वर देते हैं तो मैं यही माँगता हूँ कि अब आप इस सर्पयज्ञ को बन्द कर दीजिए। इसमें साँप भस्म न हों। आस्तीक की यह प्रार्थना सुनकर राजा प्रसन्न नहीं हुए। उन्होंने आस्तीक से कहा—ब्रह्मन्! सोना, चाँदी, गायें या और जो कुछ जितना आप चाहें मुझसे माँग लें; किन्तु मेरा यह यज्ञ न बन्द करावें। आस्तीक ने कहा—राजन्! सोना, चाँदी, गायें आदि और कुछ मुझे न चाहिए। मैं यही चाहता हूँ कि आपका यह यज्ञ बन्द हो जाय और मेरे ननिहालवालों का कल्याण हो। महाराज, जनमेजय ने बारम्बार आस्तीक से कहा—भगवन्, आप और कुछ वर माँग लीजिए; परन्तु आस्तीक और वर माँगने के लिए किसी तरह राज़ी न हुए। तब सब वेदज्ञ सदस्यों ने एकमत होकर राजा से कहा—महाराज, जो ये ऋषिकुमार माँगते हैं वही आप इनको दीजिए। २७

---

## सत्तावनवाँ अध्याय

सर्पयज्ञ में जले हुए नागों के नाम गिनना

शौनकजी ने कहा—हे सूतपुत्र, जनमेजय के सर्पयज्ञ में जो साँप आग में गिरकर जले, उनके नाम हम सुनना चाहते हैं। उग्रश्रवा ने कहा—सर्पयज्ञ में लाखों, करोड़ों, अर्बुदों नाग जल गये। इतने असंख्य नाग जले कि उनके नाम यहाँ पर गिनाये नहीं जा सकते। मैं उनमें से प्रधान-प्रधान नागों के नाम आपके आगे कहता हूँ—सुनिए। कोटिश, मानस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमक, पिच्छल, कौणप, चक्र, कालवेग, प्रकालन, हिरण्यबाहु, शरण, कक्ष, कालदन्त,

आदि वासुकि के वंश में उत्पन्न, तरह-तरह के, सफ़ेद, नीले, लाल और काले रङ्ग के, भयानक, बड़े शरीरवाले विषैले साँप जनमेजय के यज्ञ में जले। इनके सिवा और भी वासुकि के वंश के [छोटे-छोटे] साँप जलकर मरे। प्रच्छाण्डक, मण्डलक, पिण्डसेक्ता, रभेणक, उच्छिख, शरभ, भङ्ग, विल्वतेजा, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेपन, मुद्गर, शिशुरामा, सुरोमा और महाहनु आदि तक्षक के वंश के नाग अग्नि में जले। पारावत, पारियात, पाण्डर, हरिण, कृश, विहङ्ग, शरभ, मेद, प्रमोद, संहतापन आदि ऐरावत के वंश के नाग जल मरे। एरक, कुण्डल, वेणी, वेणीस्कन्ध, कुमारक, बाहुक, शृङ्गवेर, धूर्तक, प्रात: और आतक आदि कौरव्य वंश के नाग जले। शंकुकर्ण, पिठरक, कुठार, मुखसेचक, पूर्णाङ्गद, पूर्णमुख, प्रहास, शकुनि, दरि, अमाहठ, कामठ, सुपेण, मानस, अव्यय, भैरव, मुण्डवेदाङ्ग, पिशङ्ग, उदपारक, ऋषभ, वेगवान, पिण्डारक, महाहनु, रक्ताङ्ग, सर्वसारङ्ग, समृद्ध, पटवासक, वराहक, वीरणक, सुचित्र, चित्रवेग, पराशर, तरुण, मणिस्कन्ध और आरुणि आदि वेगशाली विषधर धृतराष्ट्र नाग के वंश के साँप यज्ञ की आग मे जलकर मरे। ब्रह्मन, प्रधान-प्रधान सापों के नाम मैंने आपके आगे कहे। सब साँप असंख्य थे, इसलिए उनके नाम नहीं गिनाये जा सकते। इन सापों के पुत्र, पोते और परपोते अनेक और असंख्य थे। वे भी सर्पयज्ञ मे भस्म हो गये। इनमे तीन सिरवाले, सात सिरवाले, दस सिरवाले, [सौ सिरवाले, और भी अधिक सिरवाले,] घोर विष धारण करनेवाले, बड़े भारी, बड़े वेग से चलनेवाले, पहाड़ के शिखर ऐसे ऊँचे, चार और आठ कोस के लम्बे, मनमाना रूप और बल रखनेवाले नाग थे। ये सब अग्निकुण्ड मे गिर-गिरकर भस्म हो गये।

---

## अट्ठावनवाँ अध्याय

यज्ञ की समाप्ति। आस्तीक का सांपों से वर पाना

उग्रश्रवा ने कहा—ब्रह्मन, परीक्षित के पुत्र राजा जनमेजय जिस समय आस्तीक को वर देने के लिए तैयार हुए उस समय और भी एक अद्भुत घटना हुई। उसका वर्णन सुनिए। डर से व्याकुल नागराज तक्षक को इन्द्र ने छोड़ दिया तो भी वह अग्नि में नहीं गिरा, आकाश ही में ठहरा रहा। यह देखकर राजा जनमेजय बहुत चिन्तित हुए। शौनक ने पूछा—हे सूत, तक्षक आकाश ही मे क्यों रुका रहा? उस समय क्या मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों के मन्त्र शक्तिहीन हो गये थे? उग्रश्रवा ने कहा—शौनकजी, यह बात नहीं हुई। नागराज तक्षक को छोड़कर जैसे इन्द्र चल दिये और वह गिरने लगा वैसे ही आस्तीक ने "तिष्ठ, तिष्ठ, तिष्ठ" ( ठहरो, ठहरो, ठहरो ) कहा। इसी कारण तक्षक पृथ्वी के ऊपर और स्वर्ग के नीचे

अन्तरिक्ष में ठहरा रहा। इधर सदस्यों के बार-बार प्रार्थना करने पर राजा जनमेजय ने कहा—अच्छी बात है। जो आस्तीक चाहते हैं वही हो। इस यज्ञ को समाप्त करो। साँप निडर हो जायँ। ये ऋषिकुमार आस्तीक प्रसन्न हों। पौराणिक सूत का वाक्य सत्य हो। ८

जनमेजय ने जब जरत्कारु के पुत्र आस्तीक को यह वर दिया तब चारों ओर प्रसन्नता-सूचक कोलाहल सुन पड़ने लगा। राजा जनमेजय का सर्पयज्ञ इस प्रकार समाप्त हुआ। भरतकुलदीपक जनमेजय को भी बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने ऋत्विजों को, सदस्यों को और अन्यान्य आये हुए ब्राह्मणों को बहुत सा धन और रत्न दिये। शौनकजी, जिस वास्तुविज्ञान के पण्डित लोहिताक्ष सूत ने पहले ही राजा से कहा था कि आपका यह यज्ञ पूर्ण न होगा, ब्राह्मण ही इसकी समाप्ति में विघ्न डालेगा; उसका भी राजा ने भोजन-वस्त्र, धन-रत्न आदि देकर यथोचित सत्कार किया। इस प्रकार सबको सन्तुष्ट करके प्रसन्नचित्त राजा ने विधिपूर्वक यज्ञ के अन्त का अवभृथ स्नान किया। फिर कृतकृत्य बुद्धिमान् राजा ने पूजन-सत्कार करके आस्तीक को विदा किया और कहा—ब्रह्मन्, फिर कृपा करके आइएगा। मैं अश्वमेध यज्ञ करूँगा। उसमें आपको सदस्य का काम करना होगा। कार्य सिद्ध होने से प्रसन्नचित्त आस्तीक अश्वमेध यज्ञ में आने के लिए अङ्गीकार करके वहाँ से चल दिये। वहाँ से चलकर आस्तीक नागलोक में अपनी माता और मामा के पास आये। उन्होंने माता और मामा को प्रणाम करके वहाँ का सब हाल कह सुनाया।

उग्रश्रवा कहते हैं—आस्तीक के मुँह से सब वृत्तान्त सुनकर वहाँ पर जितने नाग थे सब बहुत प्रसन्न हुए। वे आस्तीक से बारम्बार कहने लगे—आस्तीक, तुमने हमको शाप के डर से छुड़ाकर बड़ा भारी काम किया। बेटा, हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। बताओ, हम तुम्हारा क्या प्रिय करें? तुम्हारी जो इच्छा हो सो हमसे माँगो। २०

आस्तीक ने कहा—संसार में जो कोई ब्राह्मण या और कोई सायङ्काल और प्रातःकाल प्रसन्न-चित्त होकर मेरी इस पवित्र धर्म-कथा को पढ़े-सुने उसे तुम लोगों से कुछ भी खटका न हो। साँपों ने प्रसन्न होकर अपने भानजे आस्तीक से कहा कि तुमने जो हमसे माँगा वह हमने तुमको दिया। जो कोई पुरुष दिन को या रात को असित, आर्त्तिमान् और सुनीथ नाग का स्मरण करेगा उसे कभी साँप का डर न होगा; जो कोई कहेगा—"हे महाविषधर नाग लोगो, जनमेजय के सर्पयज्ञ में तुम्हारी रक्षा करनेवाले महर्षि जरत्कारु के वीर्य से नागकन्या जरत्कारु के गर्भ में उत्पन्न आस्तीक ऋषि को मैं स्मरण करता हूँ—तुम मुझे न काटो; हे महाविषधर सर्प, तुम मेरे आगे से हट जाओ; जनमेजय के यज्ञ के अन्त में आस्तीक ने जो कहा था उसे स्मरण करो;"—उसे साँप का डर कभी न होगा। जो साँप आस्तीक का वचन सुनकर न हटेगा उसके सिर के उसी दम सौ टुकड़े हो जायँगे।

शौनकजी, धर्मात्मा जरत्कारु ऋषि के पुत्र आस्तीक साँपों से वरदान पाकर प्रसन्न होकर यथेष्ट स्थान को चल दिये। इस प्रकार अपने पिता के और माता के कुल को विपत्ति से उबारकर इस लोक में अपने पुत्र-पोते आदि को छोड़कर महात्मा आस्तीक अन्त-समय परमधाम को गये। भगवन्, यह आस्तीक का चरित्र मैंने विस्तार के साथ आदि से अन्त तक आपको सुना दिया। इस [ धर्म-भाव से पूर्ण ] उपाख्यान को सुनने से साँपों से डर नहीं होता।

हे शौनकजी, अपने पुत्र रुरु के पूछने पर आपके पूर्वपुरुष प्रमति ने जिस तरह यह कथा उनसे कही, और मैंने [ अपने पिता से ] जिस तरह यह उपाख्यान सुना था, उसी तरह आपको सुना दिया। आपने डुण्डुभ साँप का वचन सुनकर यही पुण्य को बढ़ानेवाली कथा
३२ मुझसे पूछी थी, सो मैंने आपको सुना दी।

---

## अंशावतरणपर्व

## उनसठवाँ अध्याय

### उग्रश्रवा की भारत-वर्णन की प्रतिज्ञा

शौनक ने कहा—हे सूतपुत्र, तुमने भृगुवंश से लेकर यहाँ तक यह कथा विस्तार से सुनाकर मुझे बहुत प्रसन्न किया। अब मैं तुमसे व्यासजी की कही हुई कथाएँ कहने के लिए कहता हूँ। मैं वे विचित्र मनोहर कथाएँ सुनना चाहता हूँ जो जनमेजय के अपार सर्पयज्ञ में महात्मा ब्राह्मणों और ऋत्विजों ने अवसर के समय कही हैं।

उग्रश्रवा ने कहा—अवसर के समय उस यज्ञ में ब्राह्मणों ने अनेक वेदवर्णित उपाख्यान सुनाये थे और व्यासजी ने अति विस्तृत विचित्र भारत की कथा सुनाई थी। शौनक ने कहा—हे सज्जनों में श्रेष्ठ सूतपुत्र, जनमेजय के पूछने पर वेदव्यासजी ने पाण्डवों के यश को बढ़ानेवाला जो भारत उपाख्यान सुनाया था वही, महर्षि के मनरूपी सागर से उत्पन्न, रत्नमयी पवित्र कथा मैं सुनना चाहता हूँ। उग्रश्रवा ने कहा—शौनकजी, कृष्ण द्वैपायन का कहा हुआ [ वैशम्पायन-वर्णित ] वही महाभारत-इतिहास मैं आदि से तुम्हारे आगे कहता हूँ; सुनो। यह विचित्र
१० उपाख्यान कहने में मुझे भी बड़ी प्रसन्नता होती है।

---

# साठवाँ अध्याय

व्यासजी का जनमेजय के यज्ञ में आना और वैशम्पायन को भारत-वर्णन के लिए व्यासजी का आज्ञा देना

उग्रश्रवा कहते हैं—हे शौनकजी, जनमेजय ने सर्पयज्ञ की दीक्षा ली है, यह सुनकर सर्वविद्याविशारद महर्षि वेदव्यास वहाँ पर आये। महर्षि व्यास ने शक्ति ऋषि के पुत्र पराशर के वीर्य से, यमुना द्वीप में, कुमारी काली ( सत्यवती ) के गर्भ में जन्म लिया है। वही पाण्डवों के पूर्वपुरुष हैं। व्यास ने जन्म लेते ही अपनी इच्छा से शरीर को बढ़ा लिया और वेदों, वेदाङ्गों तथा इतिहासों को जान लिया। तपस्या, वेदपाठ, व्रत-उपवास, यज्ञ और सन्तान उत्पन्न करने आदि में कभी कोई उनसे श्रेष्ठ नहीं हुआ। महाकवि सर्वज्ञ ब्रह्मर्षि व्यास ने ही एक वेद के चार भाग किये हैं। शान्तनु का वंश चलाने के लिए महायशस्वी पुण्यकीर्त्ति व्यास ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया।

भगवन्, वही महात्मा व्यास वेद वेदाङ्ग के पूरे पण्डित अपने शिष्यों को साथ लिये राजा जनमेजय की सभा में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर व्यासजी ने देखा कि सदस्य, सामन्त नरेश और ब्रह्मा के तुल्य पुरोहित वहाँ उपस्थित हैं। देवमण्डली के बीच साक्षात् इन्द्र के समान महाराज जनमेजय उनके बीच बैठे हैं। महर्षि को देखते ही सब सभासदों सहित महाराज जनमेजय अपने आसन से उठ खड़े हुए। उन्होंने आगे बढ़कर प्रसन्नता प्रकट करते हुए उनकी अभ्यर्थना की। इन्द्र जिस प्रकार बृहस्पति को आसन देते हैं उसी प्रकार राजा ने महर्षि के बैठने को सुन्दर आसन दिया। व्यासजी के आसन ग्रहण करने पर राजा ने शास्त्रोक्त विधि से पाद्य और आचमन के लिए जल देकर तथा अर्घ एवं गोदान दे करके उनका पूजन किया। व्यासजी ने प्रसन्नता से राजा का किया पूजन और



१०

गोदान स्वीकार किया। राजा भी भक्ति-सहित पूजा करके व्यासजी के सामने बैठकर कुशल-प्रश्न करने लगे। व्यासजी ने अपने कुशल-समाचार कहकर राजा की कुशल पूछी। फिर सब सभासदों ने व्यासदेव की अभ्यर्थना की और उन्होंने भी सबका सादर सत्कार किया।

अब जनमेजय ने हाथ जोड़कर व्यासजी से पूछा—भगवन्, कौरवों और पाण्डवों का सब हाल आपने प्रत्यक्ष देखा है। मैं आपके मुँह से उनका चरित्र सुनना चाहता हूँ। अलौकिक कर्म करनेवाले मेरे प्रपितामहों में परस्पर ऐसा वैरभाव क्यों उत्पन्न हुआ? वह महाभयानक युद्ध ही क्यों होने पाया जिसमें अनेक वीरों का विनाश हुआ? अनुग्रह
२० करके सब हाल आप विस्तार के साथ कहिए।

उग्रश्रवा कहते हैं—राजा के वचन सुनकर व्यासजी ने अपने पास बैठे हुए प्रिय शिष्य वैशम्पायन से कहा—पुत्र, जिस तरह कौरवों और पाण्डवों में परस्पर फूट हुई सो सब, जिस तरह तुमने मुझसे सुना है, जनमेजय को सुनाओ। व्यासजी की आज्ञा पाकर द्विजश्रेष्ठ वैशम्पायन ने राजा जनमेजय और उनके सदस्यों के आगे पुराने इतिहास
२४ महाभारत का आरम्भ किया।

---

## इकसठवाँ अध्याय

### संक्षेप से महाभारत का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—मैं हृदय से ध्यानपूर्वक गुरु के चरणों की वन्दना करके अन्यान्य पण्डित ब्राह्मणों को प्रणाम करता हुआ त्रिलोक-प्रसिद्ध बुद्धिमान् महात्मा महर्षि वेदव्यास का मत तुमको सुनाता हूँ। महाराज, आपमें उस अद्भुत भारत-कथा को सुनने की योग्यता है। इसके सिवा गुरुदेव स्वयं वर्णन करने के लिए आज्ञा दे रहे हैं। इससे मेरा हृदय बहुत ही उत्साहित हो रहा है। राज्यलाभ की चेष्टा में जिस तरह कौरवों और पाण्डवों में फूट पड़ी, जुए में हारकर जिस तरह आपके प्रपितामह पाण्डव वनवासी हुए, पृथ्वी भर के वीरों के विनाश का कारण घोर युद्ध जिस तरह हुआ, सो सब मैं आपके आगे कहता हूँ—सुनिए।

महाराज, पिता पाण्डु का देहान्त होने पर पाँचों पाण्डव वन से अपने घर आये और बहुत ही शीघ्र वेद पढ़कर, धनुर्विद्या सीखकर, विद्वान् और योद्धा हो गये। उनके शरीर और मन के बल तथा उत्साह को देखकर सब पुरवासी उनका बड़ा आदर करने लगे। पाण्डवों के इस अभ्युदय को कुरुवंश के दुर्योधन आदि न देख सके। क्रूर दुर्योधन, कर्ण और शकुनि के साथ, यही सलाह करने लगा कि किस तरह पराक्रमी पाण्डवों को अपमान के साथ निकाल-

कर कष्ट दिया जाय। पापी दुर्योधन ने निष्कण्टक होने के लिए पाण्डवों से छल करना आरम्भ कर दिया; उसने छल से भीमसेन को विष दिया। किन्तु महाबली भीमसेन अन्न के साथ विष को भी पचा गये। एक दिन गङ्गातट पर बने प्रमाणकोटि-तीर्थ के भवन में सो रहे भीमसेन के हाथ-पैर बाँधकर दुर्योधन ने उनको गङ्गा के भीतर डलवा दिया और आप घर चला आया। भीमसेन की जब आँख खुली तब वे बन्धन तोड़कर वहाँ से चले आये। उन्हें तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। एक बार भीमसेन सो रहे थे, दुर्योधन ने विषधर साँपों से उनके सब अङ्गों में कटवाया; परन्तु उससे भी भीमसेन की मृत्यु नहीं हुई। विदुर सदा पाण्डवों को विपत्ति से बचाने का यत्न किया करते थे। जैसे स्वर्ग में स्थित इन्द्र सब जीवों का हित करते हैं वैसे ही विदुर भी पाण्डवों को विपत्तियों से बचाते थे। इसके उपरान्त दुर्योधन ने जब देखा कि [ भावी अर्थ की सिद्धि के लिए ] दैव ने सभी सङ्कटों से पाण्डवों को बचा दिया तब [ दुष्ट स्वभाव के ] मन्त्री कर्ण और दुःशासन से सलाह करके तथा धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर एक लाख का घर (जतुगृह) बनवाया। पुत्रों का प्रिय करने की इच्छा रखनेवाले राजा धृतराष्ट्र ने राज्य-भोग की लालसा से पाण्डवों को अपने यहाँ से निकाल दिया। माता कुन्ती के साथ पाँचों पाण्डव हस्तिनापुर से वारणावत नगर को चले। उस समय विदुर की ही सलाह पर पाँचों पाण्डव चलते थे। फिर महाराज धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को जतुगृह में रहने की आज्ञा भेजी। एक साल उस मकान में रहकर विदुर की सलाह से पाँचों पाण्डवों ने गुप्त रूप से एक सुरङ्ग खुदवाई। उस समय दुर्योधन की ओर से पुरोचन पाण्डवों की देखरेख रखता था। अन्त को उस घर में आग लगाकर और दुर्योधन के दुष्ट मन्त्री पुरोचन को जलाकर, चुपचाप रात को, माता के साथ उसी सुरङ्ग से पाँचों पाण्डव निकल गये। वे सुरङ्ग से बाहर निकलकर वन में पहुँचे। वहाँ जङ्गली झरने के पास हिडिम्ब राक्षस मिला। उसे भीमसेन ने मार डाला। धृतराष्ट्र के जासूसों में से किसी को यह ख़बर न लग जाय, इस डर से पाँचों पाण्डव रात ही को वहाँ से भाग गये। यहीं पर हिडिम्बा राक्षसी भीम को मिली। इसी राक्षसी के गर्भ से घटोत्कच का जन्म हुआ।

इसके बाद पाण्डव एकचक्रा नगरी में पहुँचे। वहाँ वे संयत वेदपाठ-निरत ब्रह्मचारी का वेष धारण करके माता के साथ एक ब्राह्मण के घर रहने लगे। यहीं नरमांस-भोजी भूखे बक राक्षस को बाहुबल से मार करके भीमसेन ने पुरवासियों को प्रसन्न किया। वहीं पाण्डवों को ख़बर मिली कि पाञ्चाल देश में राजकुमारी द्रौपदी का स्वयंवर होनेवाला है। पाण्डव वहाँ पहुँचे। द्रौपदी इन्हीं को मिली। वर्ष भर पाञ्चाल देश में रहकर पाण्डव प्रकट हो गये। फिर वहाँ से पाँचों पाण्डव द्रौपदी को लेकर हस्तिनापुर आये। तब उनसे धृतराष्ट्र और भीष्म-पितामह ने कहा—देखो, भाई-भाई में परस्पर झगड़ा न हो, यह सोचकर हमने तुम्हारे रहने के लिए खाण्डवप्रस्थ राजधानी ठीक की है। वह देश बहुत ही उत्तम है, वहाँ

के मार्ग सुडौल, साफ़ और चौड़े हैं। आपस का द्रोह छोड़कर तुम खाण्डवप्रस्थ में रहो। पाण्डवों ने उनका कहना मान लिया। इष्ट-मित्र तथा धन-रत्न आदि साथ ले जाकर [ खाण्डव-प्रस्थ नगर को उन्होंने बसाया। ] खाण्डवप्रस्थ मे पाण्डव बहुत दिनों तक रहे। उन्होंने अनेक राजा-महाराजाओं को जीतकर अपने अनुगत कर लिया। महाराज युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ धर्मनिरत, सत्यपरायण, सावधान और क्षमाशील होकर [ पृथ्वी का पालन तथा ] दुष्टों का दमन करते थे। महायशस्वी भीमसेन ने पूर्व दिशा के राजाओं को, अद्वितीय वीर अर्जुन ने उत्तर दिशा के राजाओं को, नकुल ने पश्चिम के और सहदेव ने दक्षिण के राजाओं को जीता। इस प्रकार सारी पृथ्वी को वश में करके पाँचों पाण्डव, पाँच सूर्यों के समान, अपने तेज-
३९ प्रताप से इस पृथ्वी को प्रकाशित करने लगे।

राजन, इस तरह कुछ समय बीतने पर किसी कारण युधिष्ठिर ने शान्तचित्त, पुरुष-श्रेष्ठ, सर्वगुण-भूषित और प्राणों से भी प्यारे अपने भाई अर्जुन को कुछ समय के लिए वनवास की आज्ञा दी। तेरह महीने वन में रहकर अर्जुन द्वारकापुरी में कृष्ण के पास आये। वहाँ उन्हें कृष्ण की छोटी बहन कमलनयनी सुभद्रा मिलीं। इन्द्राणी और इन्द्र, लक्ष्मी और नारा-यण की ऐसी यह जोड़ी थी। अर्जुन को पाकर सुभद्रा बहुत प्रसन्न हुईं। फिर अर्जुन ने कृष्ण के साथ जाकर अग्नि को खाण्डव-दाह से तृप्त किया। जैसे बुद्धि की सहायता से विष्णु भगवान् सहज ही दानवों का संहार करते हैं वैसे ही कृष्ण की सहायता से अर्जुन ने सहज ही यह कठिन काम कर दिया। अग्नि ने प्रसन्न होकर अर्जुन को उत्तम गाण्डीव धनुष, अक्षय बाणपूर्ण दो तरकस और दिव्य रथ दिया जिसकी ध्वजा पर हनुमान् अङ्कित थे। अर्जुन ने मया-सुर को अग्नि से बचाया था इसलिए उसने एक रत्नों से शोभित अपूर्व सभाभवन युधिष्ठिर के लिए बना दिया। दुष्ट दुर्बुद्धि दुर्योधन उस सभा-भवन के लिए ललचा उठा। उसने शकुनि के द्वारा कपट के पाँसों से युधिष्ठिर को जीत लिया और बारह वर्ष के लिए वन को भेज
५० दिया। उसमें एक साल तक अज्ञातवास की भी शर्त थी।

तेरह वर्ष बीत जाने पर चौदहवें वर्ष के आरम्भ में पाण्डव [ लौट आये ]। उन्होंने दुर्योधन से अपना हिस्सा माँगा। दुर्योधन जब किसी तरह देने को राज़ी नहीं हुआ तब युद्ध छिड़ गया। उस युद्ध में क्षत्रिय-वंश का विनाश करके दुर्योधन [ सहित सौ भाइयों ] को मारकर पाण्डवों ने फिर अपना उजड़ा हुआ राज्य पाया। महाराज, यह मैंने संक्षेप से
५३ भाइयों की घर की फूट, युद्ध और विजय का वृत्तान्त आपको सुना दिया।

———

# बासठवाँ अध्याय

भारत की प्रशंसा। भारत सुनने का फल

जनमेजय ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, आपने कुरुवंशियों के चरित्रों से विभूषित बहुत विस्तृत भारत-इतिहास की सब कथा संक्षेप से मुझे सुना दी; किन्तु इतने संक्षेप में सुनने से मेरी तृप्ति नहीं हुई। इन कथाओं को मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ। अब आप फिर से विस्तार के साथ महाभारत सुनाइए। पाण्डव धर्म के जाननेवाले थे। उन्होंने साधारण कारण से अवध्य भीष्म-द्रोण आदि की हत्या नहीं की होगी। संसार के लोग उनके इस काम की निन्दा न करके बड़ाई ही करते हैं। भगवन्, निर्दोष पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों ने समर्थ शक्ति-शाली होकर भी कष्ट देनेवाले धृतराष्ट्र के पुत्रों को बहुत दिनों तक क्यों क्षमा किया? दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाले भीमसेन अनेक क्लेश पाकर भी अपने क्रोध को क्यों रोके रहे? दुःशासन आदि ने जब भरी सभा में अपमान किया उस समय समर्थ होने पर भी पतिव्रता द्रौपदी ने उन्हें क्रोध की दृष्टि से भस्म क्यों नहीं कर दिया? भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव ने जुआरी युधिष्ठिर के साथ वन में जाकर क्यों अनेक कष्ट सहे? धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर ने क्यों अनुचित कष्ट सहे? कृष्ण को सारथी बनाकर अकेले अर्जुन ने किस तरह बाणवर्षा करके अनेक वीरों को और असंख्य सेना को यमपुर भेज दिया? भगवन्, यह सब वृत्तान्त मुझे सुनाइए। महारथी वीरों ने जो-जो अद्भुत कर्म किये हैं उन्हें सुनने के लिए मुझे बड़ी उत्कण्ठा है। ११

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, तनिक धैर्य धारण कीजिए। यह भारत उपाख्यान बहुत बड़ा है। अब मैं आरम्भ करता हूँ। क्रम से सब वर्णन करूँगा। महातेजस्वी त्रिलोक-पूजित महर्षि व्यास का सब मत मैं आपको सुनाऊँगा। इस महाभारत में सत्यवती के पुत्र व्यास ने एक लाख श्लोक रचे हैं। जो विद्वान पुरुष इसे सुनाता है और जो सुनता है, वे दोनों देवतुल्य होकर ब्रह्मलोक को जाते हैं। ऋषियों-द्वारा प्रशंसित यह पुराण वेदार्थयुक्त, पवित्र, श्रेष्ठ और सब सुनने-योग्य शास्त्रों में उत्तम है। इस महा पवित्र इतिहास में अर्थ, काम और तत्त्वज्ञान का पूर्ण उपदेश है। विद्वान् ब्राह्मण लोग यशस्वी, दानशील, सत्यवादी, आस्तिक पुरुषों को यह व्यास का बनाया [ पञ्चम ] वेद सुनाकर धन प्राप्त करते हैं। इसे सुनने से गर्भहत्या आदि महापाप भी छूट जाते हैं। इस इतिहास को सुनकर क्रूर कर्म करनेवाला दारुण पुरुष भी सब पातकों से छूटकर राहु से छूटे हुए चन्द्रमा के समान उज्ज्वल हो जाता है। इस इतिहास का एक नाम "जय" है। इस कारण जय की इच्छा रखनेवाले पुरुष को अवश्य यह सुनना चाहिए। इसे सुननेवाले राजा शत्रुओं को जीतकर राज्य पाते हैं। इसे सुनने से २० श्रेष्ठ सन्तान होती है, कल्याण होता है। युवराजों को चाहिए कि अपनी रानी के साथ

बारम्बार इस इतिहास को सुनें। इसे सुनने से रानियों के वीर पुत्र या राज्य पानेवाली कन्या उत्पन्न होती है। यह व्यासवर्णित ग्रन्थ धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का शास्त्र है। इस पुराण को वर्त्तमान समय में बहुत लोग सुनते-सुनाते हैं और आगे चलकर भी इसकी बहुत चर्चा होगी। इसे सुननेवाले पुत्र पिता का प्रिय करनेवाले और माता-पिता के सेवक होते हैं। इसे सुनने से मन-वाणी-काया के सब पाप छूट जाते हैं। भरतवंश के वीर पाण्डवों के जन्म की कथा को जो लोग सुनते हैं उन्हें कोई व्याधि कभी नहीं सताती और उनका परलोक भी बन जाता है। द्वैपायन व्यास ने संसार का कल्याण, पाण्डवों की कीर्ति का कीर्त्तन, सर्वविद्याविशारद अन्यान्य प्रसिद्ध क्षत्रियों के बल और ऐश्वर्य का वर्णन करने के लिए इस आयु और यश को बढ़ानेवाले प्रशंसनीय पवित्र स्वर्गीय इतिहास की रचना की है। जो [ विद्वान् ] पुण्य के लिए
३० सदाचारी ब्राह्मणों को यह पवित्र इतिहास सुनाता है उसे अक्षय धर्म प्राप्त होता है। इस कुरु-वंश के चरित को पवित्रता के साथ जो नित्य पढ़ता है उसका वंश बढ़ता है और वह संसार में पूजनीय होता है। चौमासे भर जो ब्राह्मण एकाग्रचित्त होकर इस भारत का पाठ करता है वह सब पापों से छूट जाता है। समग्र भारत को जिसने पढ़ा हो उसे वेदों का ज्ञाता कहना चाहिए। इस महाभारत में देवता, राजर्षि और ब्रह्मर्षि आदि के चरित्रों का वर्णन है; भगवान् कृष्णचन्द्र की महिमा का भी कीर्त्तन है। इस पुराण में भगवान् शङ्कर और देवी पार्वती का अनिर्वचनीय माहात्म्य, कार्त्तिकेय की उत्पत्ति और गो-ब्राह्मणों का गौरव कहा गया है। यह ग्रन्थ सब वेदों के अर्थ का संग्रह है। धर्मात्मा लोगों को सदा इसे सुनना चाहिए। जो हर एक पर्व के दिन ब्राह्मणों को महाभारत की कथा सुनाता है उसके पाप नष्ट हो जाते हैं, वह स्वर्ग को जीत लेता है। अन्त को उसे ब्रह्मलोक मिलता है। श्राद्ध के समय जो कोई कम से कम महाभारत के श्लोक का एक चरण भी सुनाता है उसके पितरों को अक्षय तृप्ति होती है। जाने या बिना जाने मनुष्य दिन को इन्द्रियों और मन के द्वारा जो पाप करता है वह महाभारत को सुनते ही उड़ जाता है। भरतवंश के राजाओं का जन्म-वृत्तान्त होने से ही इस ग्रन्थ का नाम महाभारत पड़ा है। महाभारत नाम के इस अर्थ को जो कोई जानता है वह भी सब पापों से छुटकारा पा जाता है। व्यासजी का कथन है कि भरतवंशियों के इस महा अद्भुत इतिहास
४० को नित्य सुनने-सुनाने से बड़े-बड़े महापातक भी छूट जाते हैं।

राजन्, महर्षि व्यास ने नित्य उत्साही, पवित्र, तपस्यानिरत और संयमी रहकर तीन वर्ष में इस महाभारत की रचना की है। इसलिए ब्राह्मणों को इसे नियम-पूर्वक सुनना चाहिए। जो ब्राह्मण इस व्यास-कथित भारत पुराण को सुनते या सुनाते हैं उनकी संसार में अक्षय कीर्त्ति होती है; वे कृतकृत्य हो जाते हैं। 'यह काम नहीं किया, यों कहकर उन्हें पश्चात्ताप नहीं करना पड़ता। धर्म कमाने की कामना रखनेवाले पुरुष को यह इतिहास पूरा

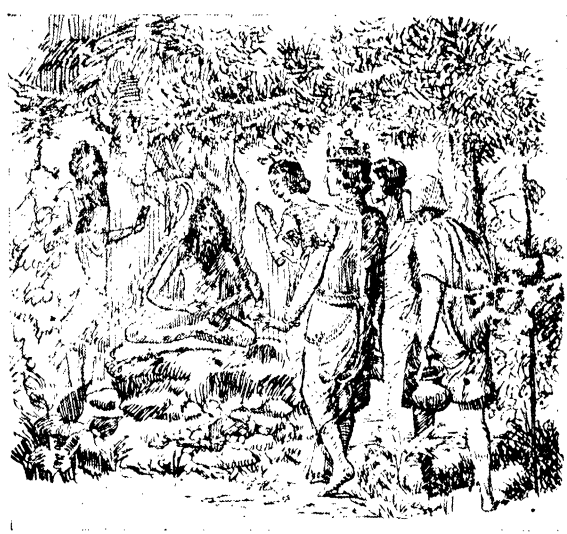
सुनना चाहिए। ऐसा करने से उसे अवश्य सिद्धि प्राप्त होती है। इस पवित्र कथा को सुनने से जो आनंद मिलता है वह स्वर्ग में भी नहीं है। श्रद्धा के साथ इस इतिहास को सुनने-सुनाने से राजसूय और अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। जैसे समुद्र रत्नाकर है और सुमेरु पर्वत रत्नपूर्ण है वैसे ही यह महाभारत भी रत्नों की खान है। इसे सुनने से चरित्र शुद्ध होता है। जो पुरुष कथा सुनानेवाले को महाभारत की पोथी देता है उसे समुद्र-पर्यन्त पृथ्वी के दान करने का फल मिलता है। राजन्, मैं यह आनन्द बढ़ानेवाला सम्पूर्ण महापुराण आपको सुनाता हूँ, ५०
सुनिए। इससे आपको पुण्य और विजय की प्राप्ति होगी। महाराज, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की जो बात इसमें नहीं है वह किसी भी शास्त्र में नहीं है और जो इसमें है वही सब शास्त्रों में है। ५३

---

## तिरसठवाँ अध्याय

राजा उपरिचर का उपाख्यान। भीष्म आदि के जन्म का वृत्तान्त

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पुरु के वंश में उपरिचर नाम के एक राजा थे। उनको वसु भी कहते थे। राजा को शिकार का बड़ा शौक़ था। वे सदा स्वाध्यायपाठ और अपने धर्म का पालन करते थे। इन्द्र के कहने से उन्होंने चेदि देश को जीतकर अपने अधिकार में कर लिया। [ कुछ दिन के बाद ] महाराज उपरिचर अस्त्र-शस्त्र त्यागकर आश्रम में रहने और घोर तप करने लगे। इन्द्र आदि देवताओं ने राजा को तप करते देखकर यह सोचा कि ये घोर तप करके इन्द्र-पद लेना चाहते हैं। इसलिए इन्द्रसहित सब देवता राजा के आश्रम में आये। उन्होंने समझा-बुझाकर राजा को तप से निवृत्त कर दिया। देवताओं ने कहा—महाराज, आप यदि अपना धर्म प्रजापालन छोड़कर तप करने में लग जायँगे तो धर्म की रक्षा कौन करेगा? सम्पूर्ण जगत् को धारण करनेवाले धर्म के रक्षक आप ही हैं। इन्द्र ने कहा—



राजन्, बहुत ही एकाग्र होकर नित्य उद्योग के साथ धर्म में लगे रहकर धर्म का पालन करने से ही आप अन्त को अक्षय पवित्र लोक पा सकेंगे। मैं स्वर्गवासी हूँ और आप पृथ्वी पर रहते हैं तथापि मैं आपको अपना मित्र बनाता हूँ। आप मुझे बहुत प्रिय हैं। पृथ्वी पर जिस देश को आप अत्यन्त रमणीय, पशुओं के स्वच्छन्दता के साथ रहने योग्य, पवित्र, बहुत से धन और अन्न से परिपूर्ण, स्वर्ग की तरह सुरक्षित, अनेक भोग के पदार्थों से युक्त और अच्छी भूमिवाला समझें उस स्थान में आप रहें। यह चेदि देश भी अनेक धन-रत्नों से विशेष समृद्ध है। इस देश में पृथ्वी के नीचे बहुत सी सम्पत्ति है। यहाँ के रहनेवाले धर्मात्मा हैं। सब परोपकारी और
१० सन्तोषी हैं। यहाँ कोई हँसी में भी झूठ नहीं बोलता। यहाँ पुत्र पिता से अलग होकर गुरुजन को दुःख नहीं पहुँचाते; सदा बड़ों की आज्ञा मानते हैं—स्वजनों के हित में लगे रहते हैं। दुर्बल बैलों से यहाँ हल चलाने का या बोझ लादने का काम नहीं लिया जाता। दुर्बल पशु बँधे-बँधे खाकर खूब मोटे-ताज़े होते हैं। चारों वर्ण के लोग सदा अपने-अपने धर्म के पालन में लगे रहते हैं। इसलिए आप यहीं रहकर पृथ्वी का पालन कीजिए। [ मेरी कृपा से आपको दिव्यदृष्टि प्राप्त होगी। ] त्रैलोक्य में जो कुछ होगा वह आपसे छिपा न रहेगा। मैं आपको देवताओं के योग्य और आकाश में चलनेवाला एक बिल्लौर का बना हुआ दिव्य विमान देता हूँ। वह सदा आपके पास बना रहेगा। मनुष्यों में आप ही को विमान पर चढ़कर शरीर-धारी देवता के समान आकाश में विचरने का सौभाग्य प्राप्त होगा। इसके सिवा एक कमल की माला भी मैं आपको देता हूँ। इसके फूल कभी न मुरझायेंगे। इस वैजयन्ती माला को पहनकर संग्राम करने से कभी शरीर में शस्त्र का घाव नहीं लगता। राजन्, यह माला इन्द्रमाला नाम से आपका अद्वितीय महान् चिह्न होगी। फिर इन्द्र ने राजा को प्रसन्न करने के लिए शिष्ट पुरुषों का पालन करनेवाली बड़ी भारी बाँस की लाठी भी दी। इस प्रकार राजा को सन्तुष्ट करके देवगण-सहित इन्द्र चले गये।

एक वर्ष बीतने पर राजा उपरिचर ने इन्द्र की पूजा करने के लिए उस बाँस की लाठी को पृथ्वी में गाड़ दिया। तभी से, राजा उपरिचर के दृष्टान्त के अनुसार, सब राजा लोग इन्द्र की ध्वजा पृथ्वी में गाड़कर इन्द्र का पूजन करते हैं। दूसरे दिन चन्दन-पुष्प आदि चढ़ाकर अनेक अलङ्कारों से अलङ्कृत कर इन्द्र की ध्वजा को उठाते और उसमें मालाएँ चढ़ाते हैं। उसमें इन्द्र की पूजा की जाती है। इन्द्र भी उपरिचर राजा की प्रसन्नता के लिए हंस का रूप
२१ धारण करके उस पूजा को ग्रहण करते हैं।

उपरिचर ने इन्द्रध्वज गाड़कर इन्द्र की पूजा की। इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने वहाँ आकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—राजन्, राजा और अन्य जो कोई प्रसन्नतापूर्वक उत्साह के साथ—आपकी तरह—मेरी पूजा करेंगे और मेरे नाम का यह उत्सव करावेंगे उन्हें जय और श्री

प्राप्त होगी; उनके देश का कल्याण होगा। उनकी प्रजा की बढ़ती होगी और उनके देश की श्रीवृद्धि होगी। [ उनके राज्य में खूब अन्न उत्पन्न होगा। ] पुरन्दर ने प्रसन्न होकर राजा उपरिचर को आदर और प्रेम के साथ यह आशीर्वाद दिया। राजन, जो लोग राजा उपरिचर की तरह पृथ्वी और रत्न आदि दान करके इन्द्र का उत्सव करेंगे वे पृथ्वीमण्डल में पूजनीय होंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन, राजा उपरिचर इस तरह इन्द्र की प्रसन्नता प्राप्त करके उसी चेदि देश में रहकर दान, यज्ञ, इन्द्रोत्सव आदि करते हुए धर्म के अनुसार पृथ्वी का पालन करने लगे। उपरिचर के मगध देश के नरेशों में प्रसिद्ध—महारथी बृहद्रथ, प्रत्यग्रह, कुशाम्ब ( इनका दूसरा नाम मणिवाहन था ), मावेल्ल और अपराजित यदु, ये महातेजस्वी पाच पुत्र उत्पन्न हुए। इन पाँचों ने अपने-अपने नाम से देश और नगर अलग-अलग बसाये। महाराज, ३१
उपरिचर के इन पाँच पुत्रों से अलग-अलग पाँच वंश चले। राजा उपरिचर स्फटिक-विमान पर चढ़कर आकाश में विचरते थे—इन्द्र के भवन में रहते थे। गन्धर्व और अप्सराएँ सदा उनकी सेवा में हाज़िर रहती थीं। ऊपर आकाश में विचरने के कारण वे उपरिचर नाम से प्रसिद्ध हुए।

महाराज, उपरिचर राजा की राजधानी के पास शुक्तिमती नाम की नदी बहती थी। सचेतन कोलाहल नाम के पर्वत ने एक दिन कामातुर होकर उस नदी को घेरा। तब राजा ने क्रोध करके उस पर्वत के एक लात मारी। राजा की लात लगने से पहाड़ में एक छेद हो गया। उसी छेद से शुक्तिमती बाहर निकल आई।

[ कुछ दिन बाद ] पर्वत के समागम से उस नदी के एक साथ ही एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। नदी को राजा ने छुटकारा दिलाया था इस कारण उसने दोनों बच्चे लाकर राजा को दे दिये। राजा ने बालक को अपना सेनापति और कन्या को अपनी रानी बनाया; वह कन्या गिरिका नाम से प्रसिद्ध हुई। कुछ दिन बीतने पर एक दिन ऋतुस्नान करके गिरिका ने स्वामी के पास आकर अपनी इच्छा प्रकट की। किन्तु इसी समय पितरों ने प्रसन्न होकर राजा से मृगों का शिकार करने के लिए कहा। इस कारण राजा अपनी रानी की ४०
अभिलाषा पूर्ण किये बिना ही वन को चल दिये। किन्तु वन में साक्षात् लक्ष्मी के समान सुन्दरी गिरिका की याद राजा को नहीं भूली। वसन्त ऋतु थी। वह वन भी गन्धर्वराज के चैत्ररथ वन के समान शोभायमान हो रहा था। अशोक, चम्पा, आम, अतिमुक्तक, पुन्नाग, कनेर, मौलसिरी, दिव्यपाटल, पाटल ( गुलाब ), नारियल, चन्दन, अर्जुन आदि के अनेक स्वादिष्ट फलों से परिपूर्ण, वृक्ष उस वन की शोभा बढ़ा रहे थे। चारों ओर कोकिलाओं का कुहू शब्द गूँज रहा था—मस्त भौंरों के झुण्ड इधर-उधर घूम-घूमकर गुनगुना रहे थे। गिरिका की याद करते हुए कामबाण-पीड़ित राजा उसी वन में इधर-उधर घूमने लगे। राजा ने घूमते-घूमते पल्लवों से शोभित, फूलों के गुच्छों से लदा हुआ एक रमणीय अशोक का पेड़ देखा। उपरिचर

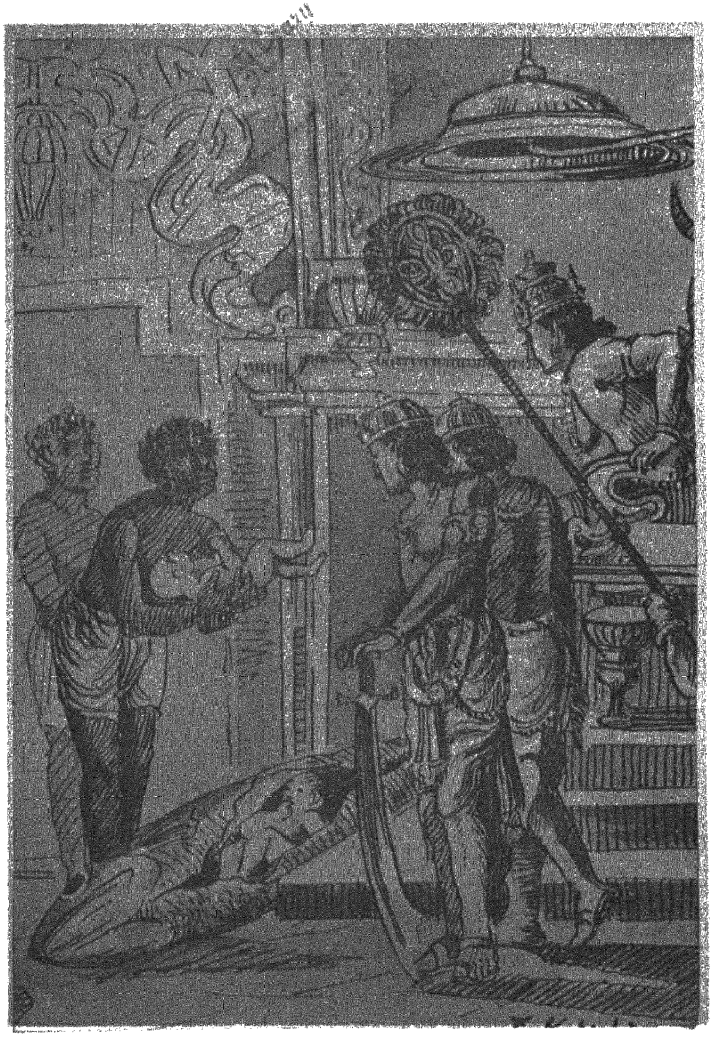
राजा उसी वृक्ष के तले छाया में सुखपूर्वक बैठ गये। सुगन्धित वायु फूलों की मनोहर महक लाकर कामोद्दीपन करने लगा। उस समय कामदेव के प्रताप से राजा का वीर्य स्खलित हो गया। राजा ने वैसे ही उसे उठाकर वृक्ष के पत्ते में रख लिया। उन्होंने सोचा कि यह मेरा वीर्य यों गिरकर वृथा नष्ट न हो जाय। राजा ने सोचा कि आज रानी गिरिका ने ऋतुस्नान किया है और यह निकला हुआ वीर्य भी अमोघ है; अतएव किसी तरह इसे रानी के पास भेजना चाहिए। राजा को अपने पास बैठा हुआ एक बाज पक्षी देख पड़ा। उस अपने वीर्य को मन्त्रों से अभिमन्त्रित करके राजा ने उस बाज से कहा—हे पक्षिराज, मेरी रानी ने आज ऋतुस्नान किया है; इसलिए तुम यह वीर्य लेकर मेरे घर जाओ और रानी को दे दो।

राजा की प्रार्थना के अनुसार पत्ते के दोने में रक्खे हुए उस वीर्य को लेकर वह पक्षी वेग के साथ आकाश में उड़ा। राह में दूसरे एक बाज ने उस बाज के पास वह वीर्य का दोना देख उसे मांस समझकर पहले बाज का पीछा किया। आकाशमार्ग में दोनों पक्षी चोंच [ और पक्षों ] से युद्ध करने लगे। वह वीर्य का दोना बाज के पञ्जे से छूटकर नीचे यमुना के जल में गिर पड़ा। यमुना में अद्रिका नाम की सुन्दरी अप्सरा, ब्रह्मा के शाप से, मछली होकर रहती थी। अद्रिका ने उस वीर्य को वेग से आकर निगल लिया।

अद्रिका को जल में रहते दस महीने हो गये। इसी बीच एक दिन यमुना में जाल डालकर मछुओं ने उसको पकड़ लिया। मछुओं ने उसका पेट फाड़ा तो उन्हें उसके भीतर एक पुत्र और एक कन्या देख पड़ी। यह देखकर मछुओं को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने राजा के पास पुत्र और कन्या को ले जाकर कहा—महाराज, इस मछली के पेट में हमको यह पुत्र और कन्या मिली है। उपरिचर ने उस बालक को ले लिया। वही बालक महाधार्मिक सत्यवादी मत्स्य नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ। मछुए के हाथ से मरकर, दो मनुष्य बालक उत्पन्न करके, वह अप्सरा शाप से छूट गई और शीघ्र ही अपना मनोहर दिव्य रूप धारण करके सिद्ध-चारणसेवित आकाशमार्ग में चली गई।

उपरिचर ने मछली के गर्भ से उत्पन्न बालक को तो आप ले लिया और वह रूपवती, गुणवती कन्या उसी दाशराज मछुए को देकर कहा—इसे तुम अपनी कन्या समझकर अपने यहाँ रक्खो। उस कन्या का नाम सत्यवती हुआ। मछुओं के पास रहने से कुछ समय तक उस सुन्दरी के शरीर से मछली की ही गन्ध आती रही। इससे उसका नाम मत्स्यगन्धा था। वह घाट पर, पिता की आज्ञा से, नाव पर यात्रियों को बिठाकर इस पार से उस पार पहुँचाया करती थी।

कुछ समय के उपरान्त तीर्थ-यात्रा करते हुए महर्षि पराशर उसी स्थान पर आये। देवताओं और सिद्धों के भी मन को चलायमान कर देनेवाली उस परम सुन्दरी को देखकर



मत्स्यगन्धा का जन्म—पृष्ठ १२८

पराशर मुग्ध हो गये। उन्होंने सत्यवती से कहा—हे सुन्दरी, तुम मेरी इच्छा पूर्ण करो। सत्यवती ने कहा—भगवन्, नदी के उस पार ऋषि लोग इस पार आने के लिए खड़े हैं। वे देख रहे हैं। मैं आपकी आज्ञा का पालन कैसे कर सकती हूँ? सत्यवती के यों कहने पर पराशर ने उसी समय कुहरा उत्पन्न किया—उस जगह चारों ओर अँधेरा सा छा गया। यह देखकर सत्यवती को बड़ा अचरज हुआ। उसने लजाकर कहा—भगवन्, मैं अभी कुमारी और



पिता के अधिकार में हूँ। आपकी आज्ञा का पालन करने से मेरा कन्या-भाव दूषित हो जायगा। तब मैं अपने घर किस तरह जाऊँगी? [ लोगों को मुँह किस तरह दिखलाऊँगी? ] आप विचार करके जो उचित हो वह कीजिए। पराशर ने प्रसन्न होकर कहा—सुन्दरी, मेरा प्रिय करने से तुम कन्या ही बनी रहोगी। जो तुम्हारा जी चाहे, मुझसे वर माँगो। मेरा वचन कभी झूठ नहीं हो सकता। ७९

सत्यवती ने कहा—यदि आप प्रसन्न होकर वर देते हैं तो मैं यह माँगती हूँ कि मेरे शरीर से मछली की गन्ध दूर होकर सुगन्ध आने लगे। मुनि ने यही वर दिया। इसके उपरान्त उसी समय स्त्री-भाव के गुणों से भूषित होकर सत्यवती ने मुनि की इच्छा पूरी की। तभी से सत्यवती गन्धवती और योजन-गन्धा नाम से प्रसिद्ध हुई। शरीर सुगन्धित होने के कारण गन्धवती और योजन भर तक शरीर की सुगन्ध जाने के कारण योजन-गन्धा नाम पड़ा। [ पराशरजी अपने आश्रम को चल दिये। ]

अभीष्ट वरदान पाने से प्रसन्न सत्यवती ने पराशर के सहवास से गर्भ धारण करके उसी घड़ी यमुना-तट पर तेजस्वी सुन्दर बालक उत्पन्न किया। प्रतापी पराशर के पुत्र, उत्पन्न होते ही, तप करने के लिए वन को चल दिये। जाते समय उन्होंने माता से कह दिया कि ज़रूरत पड़ने पर तुम मुझे स्मरण करना—मैं आ जाऊँगा। इस प्रकार महर्षि पराशर के वीर्य से सत्यवती के गर्भ में भगवान् वेदव्यास का जन्म हुआ। यमुना-तट के द्वीप में पैदा होने के कारण लोग उन्हें द्वैपायन कहते हैं।

महर्षि पराशर के पुत्र ने देखा कि हर एक युग में धर्म का एक चरण नष्ट हो रहा है। मनुष्यों की आयु और शक्ति युग-धर्म के अनुसार दिन-दिन घटती जा रही है। तब ब्राह्मणों की भलाई और ब्रह्मरूप वेद की रक्षा करने के लिए पराशर के पुत्र ने वेद का व्यास किया, अर्थात् एक वेद के चार भाग किये। इसी से उनको वेदव्यास कहते हैं। वेदव्यास ने चारों वेद और यह पाँचवें वेद के समान महाभारत संहिता अपने पुत्र शुकदेव को और सुमन्तु, जैमिनि, पैल तथा वैशम्पायन नाम चार शिष्यों को पढ़ाई। इन्होंने भारतसंहिता को
९० भिन्न-भिन्न रूप से अलग-अलग प्रकाशित किया।

उधर वसुओं के अंश से, गङ्गा के गर्भ से, शान्तनु के पुत्र बलशाली अतुल पराक्रमी महायशस्वी भीष्म-पितामह उत्पन्न हुए।

पूर्व समय में एक ऋषि वेदज्ञ महात्मा अणीमाण्डव्य थे। चोर न होने पर भी उन्हें राजदरबार से चोर समझकर शूली का दण्ड मिला। महर्षि अणीमाण्डव्य ने धर्म को बुलाकर उनसे कहा—देखो धर्म, जहाँ तक मुझे याद है, मैंने बचपन में सींक से एक टिड्डी (या पतिङ्गे) को पकड़कर छेदने के सिवा जन्म भर कोई पाप नहीं किया। तब से जन्म भर मैंने तप करने ही में बिताया है। क्या वह उस अज्ञान अवस्था का पाप इतना तप करने से भी नष्ट नहीं हुआ? ब्रह्महत्या सब हत्याओं से बढ़कर पाप है। तुम मुझे यह अकारण शूली का दण्ड दिलाकर ब्रह्महत्या के पाप के भागी हुए। इससे मैं शाप देता हूँ कि तुमको शूद्रयोनि में जन्म लेना पड़े। इसी पाप और ऋषि के शाप से धर्म भी शूद्रा दासी के गर्भ से उत्पन्न होकर विदुर नाम से प्रसिद्ध हुए।

गवल्गण के मुनितुल्य सूत सञ्जय उत्पन्न हुए। कुन्ती के कुमारी-अवस्था में सूर्य के अंश से महाबली कर्ण ने जन्म लिया। महाबली कर्ण दिव्य कवच और कुण्डल धारण किये ही माता के गर्भ से उत्पन्न हुए। त्रिलोक-पूजित भगवान् नारायण, संसार की भलाई के लिए, वसुदेव के
९९ यहाँ देवकी के गर्भ से प्रकट हुए। उन्हीं को सब लोग अनादि, अनन्त, देवदेव, जगत् के स्वामी, अव्यक्त, अक्षर ब्रह्म, त्रिगुणमय प्रधान तत्त्व, मायारूप, प्रभु, पुरुष, विश्वकर्मा, हंस, नारायण, विधाता और परमात्मा कहते हैं। वे ही धर्म को स्थापित करने के लिए अन्धक-वृष्णि-

वंश में उत्पन्न होकर कृष्ण नाम से प्रसिद्ध हुए। अस्त्रविशारद, शास्त्रों के ज्ञाता, महाबली, कृष्ण के भक्त सात्यकि और कृतवर्मा, सत्यक और हृदिक के यहाँ उत्पन्न हुए।

एक समय उग्र तपस्वी महर्षि भरद्वाज का वीर्य निकल पड़ा। उसको उठाकर उन्होंने दोने में रख दिया। उस दोने में उसी वीर्य से द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए। ऐसे ही गौतम ऋषि के वंशज शरद्वान् का वीर्य सेठों की जड़ में गिर पड़ा था। उससे अश्वत्थामा की माता कृपी और कृपाचार्य उत्पन्न हुए। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा हुए।

इसी समय राजा द्रुपद के यहाँ साक्षात् अग्नि के समान तेजस्वी धृष्टद्युम्न दिव्य धनुष हाथ में लिये अग्निकुण्ड से, द्रोण को मारने के लिए, उत्पन्न हुए। उसी वेदी से तेजस्विनी त्रिलोक-सुन्दरी द्रौपदी भी उत्पन्न हुई। ११०

इसके बाद प्रह्लाद के शिष्य नग्नजित् और सुबल का जन्म हुआ। देवकोप से उनकी सन्तान धर्म को नष्ट करनेवाली हुई। गान्धार देश के राजा सुबल के शकुनि नाम पुत्र और दुर्योधन की माता पतिव्रता गान्धारी उत्पन्न हुईं। वेदव्यास ने [ नियोगधर्म के अनुसार ] विचित्रवीर्य की रानियों के गर्भ से धृतराष्ट्र और पाण्डु को उत्पन्न किया। धर्म के मर्म को जाननेवाले, बुद्धिमान्, विचारशील, निष्पाप, नीतिनिपुण विदुर भी व्यासजी के वीर्य से शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुए। पाण्डु के कुन्ती और माद्री दो रानियाँ थीं। उनके, देवताओं के अंश से उत्पन्न, पाँच देव-तुल्य पराक्रमी पुत्र हुए। युधिष्ठिर उनमें बड़े थे। युधिष्ठिर धर्म के अंश से, भीमसेन वायु के अंश से, अर्जुन इन्द्र के अंश से और नकुल-सहदेव अश्विनीकुमार के अंश से उत्पन्न हुए। राजा धृतराष्ट्र के सौ पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें दुर्योधन, दुःशासन, दुःसह, दुर्मर्षण, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति, जय, सत्यव्रत, पुरुमित्र, और—वैश्या के गर्भ से उत्पन्न—युयुत्सु, ये ग्यारह महारथी थे। कृष्ण के भानजे और पाण्डु के पौत्र महावीर अभिमन्यु अर्जुन २० के—सुभद्रा के गर्भ से—उत्पन्न हुए। इनके सिवा पाण्डवों के द्रौपदी के गर्भ से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर के पुत्र का नाम प्रतिविन्ध्य, भीमसेन के पुत्र का नाम सुतसोम, अर्जुन के पुत्र का नाम श्रुतकीर्त्ति, नकुल के पुत्र का नाम शतानीक और सहदेव के पुत्र का नाम श्रुतसेन था। भीमसेन के हिडिम्बा राक्षसी के गर्भ से घटोत्कच उत्पन्न हुआ।

शिखण्डी पहले राजा द्रुपद की कन्या था। स्थूण नाम के यक्ष ने उसे, उसका प्रिय करने के लिए, पुरुष बना दिया।

राजन्, उस महायुद्ध में सैकड़ों-हज़ारों राजा दोनों ओर से आकर लड़े थे। हज़ारों वर्ष तक गिनाने पर भी उनके नामों की गिनती नहीं की जा सकती। उनमें से प्रधान-प्रधान पुरुषों के नाम यहाँ पर गिनाये गये हैं। उन्हीं के चरित्र इस महाभारत में हैं। १२७

# चौसठवाँ अध्याय

परशुराम के द्वारा पृथ्वी के क्षत्रियरहित होने पर ब्राह्मण के वीर्य से क्षत्रिय की उत्पत्ति। देवताओं और असुरों का मनुष्ययोनि में जन्म लेना

जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—ब्रह्मन्, आपने जिन राजाओं के नाम कहे हैं और जिनके नहीं कहे, उन सबके चरित्रों को मैं विशेष रूप से सुनना चाहता हूँ। भगवन्, ये सब देवतुल्य महारथी जिस लिए पृथ्वी पर उत्पन्न हुए सो अच्छी तरह मेरे आगे वर्णन कीजिए। वैशम्पायन ने कहा—राजन, देवताओं के इस गुप्त कार्य को, मैंने जिस तरह गुरु से सुना है उसी तरह, नारायण के चरणों में प्रणाम करके, आपके आगे कहता हूँ।

एक समय महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से ख़ाली कर दिया। इसके उपरान्त वे महेन्द्र पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगे। इस बीच में अनेक क्षत्रियकुल की स्त्रियाँ ब्राह्मणों के पास आकर उनसे अपने में पुत्र उत्पन्न कराने की प्रार्थना करने लगीं। व्रतधारी ब्राह्मणों ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और ऋतुस्नान के उपरान्त उनकी अभिलाषा पूरी की। काम के वश होकर या ऋतुकाल के सिवा और समय किसी ब्राह्मण ने यह काम नहीं किया। हज़ारों क्षत्रियों की स्त्रियाँ इस तरह गर्भवती हुईं। यथा-समय उनके अनेक पराक्रमी बालक और सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न हुईं। इस तरह क्षत्रिय-जाति की फिर वृद्धि हो चली।

ब्राह्मणों के वीर्य से धर्मानुसार क्षत्रिया के गर्भ से उत्पन्न क्षत्रिय चिरजीवी रहकर वंश को बढ़ाने लगे। फिर पृथ्वी पर पूरे चारों वर्ण ब्राह्मण-प्रधान हो गये। उस समय पूर्ण रूप से धर्मराज्य देख पड़ता था। उस समय मनुष्यों की कौन कहे, पशु-पक्षी तक ऋतुकाल ही में
१० स्त्री-सम्भोग करते थे। ऋतुकाल के सिवा, कामवश होकर और समय वे ऐसा न करते थे। [ शास्त्र में लिखा है कि ] केवल ऋतुकाल में स्त्री-भोग करने से जो सन्तान उत्पन्न होती है वह रोगरहित और बड़ी आयुवाली होती है। क्षत्रिय लोग बढ़कर पर्वत-वन-नदी-नद पूर्ण समुद्र पर्यन्त पृथ्वी-मण्डल का फिर शासन करने लगे। धर्म से राज्यशासन होने पर ब्राह्मण आदि वर्णों को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा लोग काम-क्रोध आदि छहों शत्रुओं को अपने वश में किये हुए थे। वे विचार करके यथार्थ दोषी को ही दण्ड देते थे। उस धर्मराज्य के समय में प्रसन्न इन्द्र भी ठीक समय पर पानी बरसाकर प्रजा का पालन करते थे। बाल्या-वस्था में कोई मरता न था। वयस्क हुए बिना कोई गर्भाधान न करता था। हे भरतश्रेष्ठ जनमेजय, पृथ्वीमण्डल में सब जगह हृष्ट-पुष्ट और बहुत दिनों तक जीनेवाले लोग देख पड़ते थे। ब्राह्मण लोग साङ्गोपाङ्ग वेद पढ़ते थे। क्षत्रिय लोग अनेक दक्षिणा देकर बड़े-बड़े यज्ञ

करते थे। उस समय के ब्राह्मण धन लेकर वेद या कोई विद्या नहीं पढ़ाते थे, और न शूद्र के आगे वेद-पाठ करते थे। वैश्य लोग बैलों से खेती करते थे, परन्तु दुर्बल बूढ़े बैलों से काम न २० लेकर उन्हें बाँधकर खिलाते थे। पालनेवाले लोग दूध-पीते बच्चेवाली गाय को न दुहते थे। बनिये और सौदा बेचनेवाले लोग न तो कम तौलते और न दग़ाबाज़ी करते थे। सब लोग सदा धर्म का ध्यान रखते थे, धर्म के मार्ग पर चलते थे और धर्म के अनुसार ही सब काम करते थे। ठीक समय पर गायें और स्त्रियाँ सन्तान उत्पन्न करती थीं। ठीक समय पर वृक्ष फूलते-फलते थे। राजन्, इस प्रकार पूर्ण रूप से सत्ययुग का दृश्य देख पड़ने पर सारी पृथ्वी प्राणियों से पूर्ण होकर आनन्द की खान बन गई।

महाराज, इसी समय अनेक असुर, राजाओं के यहाँ, पुत्र रूप से उत्पन्न हुए। देवताओं ने बारम्बार दैत्यों को हराकर सब सम्पत्ति छीनकर स्वर्ग से निकाल दिया। वे असुर मनुष्य-लोक में अनेक राजाओं और अन्यान्य मनुष्यों के यहाँ उनकी स्त्रियों के गर्भ से उत्पन्न होने लगे।



पृथ्वी पर मनमानी प्रभुता (या देवत्व) करने के विचार से वे दानव गाय, घोड़े, गधे, ऊँट, भैंसे, हाथी और मृग आदि की योनियों से बराबर उत्पन्न होकर पृथ्वी को व्याकुल करने लगे। उनके भारी भार से दबी हुई पृथ्वी में मानो अपने को भी रोक रखने की सामर्थ्य नहीं रही। ३१

सब दैत्य और दानव राज-घरानों में पैदा होकर, पराक्रमी मदान्ध राजा के रूप से, चारों वर्णों के मनुष्यों को और अन्यान्य प्राणियों को सताने लगे। वे दुष्ट अनेक रूपों से पृथ्वी पर सब प्राणियों को डराते, धमकाते, सताते और मारते फिरते थे। मदमत्त, दयाहीन और ब्राह्मणों पर श्रद्धा न रखनेवाले वे दुष्ट आश्रमनिवासी महर्षियों का भी अपमान करते थे। उनके असह्य भार से दबी जा रही पृथ्वी को शेषनाग, दिग्गज, कच्छप आदि कोई धारण न कर सका। तब बोझ से दबी और

डरी हुई पृथ्वी भगवान् ब्रह्मा की शरण में गई। ब्रह्मलोक में पहुँचकर पृथ्वी ने देखा कि सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी विराजमान हैं। भाग्यशाली देवता, ब्राह्मण, महर्षि आदि उनके आस-
४१ पास बैठे हैं। अप्सरा, गन्धर्व आदि उनकी सेवा में उपस्थित हैं।

पृथ्वी ने सब लोकपालों के आगे भगवान् ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा कि प्रभो, मैं दुष्टों के भार से पीड़ित होकर आपकी शरण में आई हूँ। ब्रह्मा को यह बात पहले ही विदित हो गई थी क्योंकि सृष्टिकर्त्ता लोकनाथ ब्रह्मा अन्तर्यामी होने के कारण देवता, दैत्य, मनुष्य आदि सबके मन का भाव जानते हैं। ब्रह्माजी ने पृथ्वी से कहा—हे भूमि, तुम जिस लिए मेरे पास आई हो उसके—तुम्हारी पीड़ा हरने के—लिए मैं सब देवताओं को आज्ञा दूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, विधाता ने पृथ्वी को यों आश्वास देकर विदा कर दिया। इसके बाद सब देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओं को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम सब पृथ्वी का भार उतारने के लिए अपने-अपने अंश से मनुष्यलोक में जन्म लो। ब्रह्माजी की यह आज्ञा
५० प्रयोजन से पूर्ण और हितकारिणी थी। सब देवताओं ने ब्रह्माजी की आज्ञा को मान करके उसके अनुसार काम करना स्वीकार कर लिया।

ब्रह्माजी के आगे अपने-अपने अंशों से पृथ्वी पर उत्पन्न होने की प्रतिज्ञा करके सब देवता नारायण के पास वैकुण्ठ लोक को गये। वहाँ शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी, पीताम्बर पहने-ओढ़े, पद्मनाभ, दैत्यदलन, कमलनयन, हृदय में श्रीवत्स का चिह्न धारण करनेवाले, प्रजापतियों के स्वामी, देवदेव, महापराक्रमी नारायण को देखकर सब देवता बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्र ने प्रणाम और प्रार्थना करके विष्णु से कहा—भगवन्, पृथ्वी का भार उतारने के लिए आप भी अपने अंश
५४ से अवतार लीजिए। हरि ने "तथास्तु" कहकर इन्द्र की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

---

## सम्भवपर्व

## पैंसठवाँ अध्याय

### अदिति आदि दक्ष की कन्याओं के वंश का विस्तृत वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, नारायण से अवतार लेने की प्रार्थना करके और सब देवताओं को अपने-अपने अंश से पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा देकर इन्द्र अपने लोक को गये। अब सब देवता, दैत्यों के नाश और विश्व की भलाई के लिए, इच्छानुसार ब्रह्मऋषियों के और राजर्षियों के वंशों में उत्पन्न हुए। मनुष्य-मांसभोजी दानव, राक्षस आदि क्रूरों को और दुष्ट गन्धर्व, नाग आदि को मारकर देवता अपना कर्त्तव्य करने लगे।

राजन्, देवताओं के अवतार ऐसे सुरक्षित और बलशाली थे कि बाल्यावस्था में भी दुष्ट राक्षस आदि उनका कुछ न बिगाड़ सके।

जनमेजय ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, इन देवता, दानव, गन्धर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस और मनुष्य आदि के जन्म-वृत्तान्त को मैं और भी विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। आप कृपा करके कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—स्वयम्भू नारायण को पहले नमस्कार करके मैं आपके आगे देवता प्रभृति की उत्पत्ति आदि का वर्णन करता हूँ। मैंने सुना है कि सबसे पहले ब्रह्मा के मन से मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु, ये छः महर्षि उत्पन्न हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए। कश्यप से ही यह सारा संसार उत्पन्न हुआ है। [ दक्षप्रजापति भी ब्रह्मा के पुत्र हैं। ] उनके अदिति, दिति, दनु, काला, दनायु, सिंहिका, क्रोधा, प्राधा, विश्वा, विनता, कपिला, मुनि और कद्रू ये तेरह कन्याएँ हुईं। इनके महापराक्रमी पुत्र और पोते इतने हुए कि उनकी गिनती नहीं की जा सकती।

राजन्, अदिति के गर्भ से त्रिलोकी के ईश्वर धाता, मित्र, अर्यमा, इन्द्र, वरुण, अंशु, भग, विवस्वान्, पूषा, सविता, त्वष्टा और सबसे छोटे होने पर भी प्रभाव में बड़े विष्णु, ये बारह आदित्य उत्पन्न हुए। दिति के केवल एक पुत्र हिरण्यकशिपु उत्पन्न हुआ। प्रतापी हिरण्यकशिपु के प्रह्लाद, संह्लाद, अनुह्लाद, शिवि और बाष्कल, ये पाँच पुत्र हुए। प्रह्लाद के विरोचन, कुम्भ और निकुम्भ, ये तीन पुत्र हुए। विरोचन के पुत्र राजा बलि हुए। राजा बलि के रुद्र का भक्त और महाकाल नाम से प्रसिद्ध बाणासुर उत्पन्न हुआ। दनु के चालीस पुत्र हुए। उनमें महा- यशस्वी राजा विप्रचित्ति बड़ा था। विप्रचित्ति के भाइयों में शम्बर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, अयःशिरा, अश्वशिरा, पराक्रमी अश्वशङ्कु, गगनमूर्धा, वेगवान्, केतुमान्, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अज, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, महाबली तुहुण्ड, इषुपाद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचन्द्र, निकुम्भ, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य और चन्द्रमा ये प्रधान हुए। सूर्य और चन्द्रमा जो देवता हैं वे इन दानव सूर्य-चन्द्रमा से जुदे हैं। दनु के और भी एकाक्ष, मृतप, प्रलम्ब, नरकासुर, वातापि, शत्रुतापन, शठ, गविष्ठ, वनायु और दीर्घजिह्व, ये दस प्रसिद्ध दानव हुए। इनके पुत्र और पोते असंख्य हैं। सिंहिका के गर्भ से चन्द्रमा और सूर्य को पीड़ा पहुँ- चानेवाला राहु, सुचन्द्र, सुचन्द्रहन्ता और चन्द्रमर्दन नाम के चार पुत्र उत्पन्न हुए। क्रूरा के क्रूर स्वभाववाले पुत्र और पोते भी असंख्य हैं। उनमें से कुछ क्रूर कर्म करनेवाले क्रोधवश नाम से प्रसिद्ध हैं। दनायु के विक्षर, बल, वीर और वृत्रासुर, ये चार पुत्र हुए।

काला के कालतुल्य, प्रसिद्ध महापराक्रमी, कालकेय नाम से प्रसिद्ध विनाशन, क्रोध, क्रोधहन्ता और क्रोधशत्रु आदि कई पुत्र उत्पन्न हुए।

महर्षि शुक्राचार्य असुरों के गुरु थे। असुरों के आचार्य शुक्र के, सूर्य के समान तेजस्वी, तपस्वी चार पुत्र हुए। ये भी असुरों के पुरोहित हुए। शुक्राचार्य के रौद्र कर्म करनेवाले त्वष्टाधर और अत्रि नाम के दो पुत्र और भी हुए। राजन्, पराक्रमी देवताओं और दैत्यों के जन्म का यह वृत्तान्त, पुराणों के अनुसार, मैंने आपको सुना दिया। इनके पुत्र और पोते असंख्य हैं। उनकी गिनती करना भी असम्भव है।

विनता के तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, अरुण, आरुणि और वारुणि नाम के कई पुत्र
४० उत्पन्न हुए। कद्रू के अनन्त, शेषनाग, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक, ये नागराज उत्पन्न हुए। मुनि के भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, सत्यवाक्, अर्कपर्ण, प्रयुत, भीम, चित्ररथ, शालिशिरा और पर्जन्य, ये चौदह देवता और गन्धर्व उत्पन्न हुए। मुनि के कलि और नारद नाम के दो पुत्र और भी उत्पन्न हुए। प्राधा के अनवद्या, मनु, वंशा, असुरा, मार्गणप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी, ये कन्याएँ उत्पन्न हुईं। इनके सिवा प्राधा के सिद्ध, पूर्ण, बर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वासु, सुचन्द्र और भानु ये दस देवता और गन्धर्व भी उत्पन्न हुए। प्राधा ने कश्यप के वीर्य से अलम्बुषा, मिश्रकेशी, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरजा और सुप्रिया नाम की अप्सराओं को और अतिबाहु, हाहा, हूहू और तुंबुरु, इन चार गन्धर्वराजों को उत्पन्न किया। पुराणों में कहा है कि कपिला के गाय, ब्राह्मण, अमृत
५२ और अन्यान्य गन्धर्व तथा अप्सराएँ पैदा हुईं।

महाराज, मैंने आपके आगे यह गन्धर्व, अप्सरा, नाग, गरुड़, रुद्र, मरुद्गण, गाय, ब्राह्मण आदि सबकी उत्पत्ति का वृत्तान्त वर्णन किया है। यह उपाख्यान आयु को बढ़ानेवाला, पुण्यदायक, धन्य, कानों को सुख पहुँचानेवाला होने के कारण सदा पवित्र हृदय से सुनने और सुनाने के योग्य है। जो मनुष्य देवता और ब्राह्मणों के आगे इस महात्मा महर्षियों की वंशावली
५६ का नियम से पाठ करता है उसको पुत्र, धन, कीर्ति और अन्त को उत्तम गति प्राप्त होती है।

---

## छासठवाँ अध्याय

### ऋषियों के वंश का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, ब्रह्मा के पूर्वोक्त छः मानस पुत्रों के सिवा स्थाणु नाम एक और पुत्र थे। स्थाणु के मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग, ये महातेजस्वी ग्यारह रुद्र उत्पन्न हुए। [ पहले कहा जा

चुका है कि ] ब्रह्मा के मरीचि, अत्रि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु ये छः मानस पुत्र उत्पन्न हुए। अङ्गिरा के बृहस्पति उतथ्य और संवर्त्त ये तीन त्रिलोकप्रसिद्ध पुत्र हुए। अत्रि के कई बेटे हुए। वे सब वेदमर्मज्ञ, सिद्ध क्षमाशील और महातपस्वी थे। राजन, पुलस्त्य ऋषि के वंश में राक्षस, वानर, किन्नर और यक्ष उत्पन्न हुए। पुलह के शरभ, सिंह, किंपुरुष, बाघ, रीछ, भेड़ियें आदि प्राणी उत्पन्न हुए। क्रतु के यज्ञ सदृश पवित्र, सर्वलोक-प्रसिद्ध, सत्यवादी, व्रततत्पर, सूर्य के आगे चलनेवाले, महातेजस्वी साठ हजार बालखिल्य ऋषि उत्पन्न हुए। ब्रह्मा के दाहने अँगूठे से महातपस्वी शान्तचित्त दक्ष प्रजापति उत्पन्न हुए। उसके बाद १०
बायें अँगूठे से एक कन्या उत्पन्न हुई। ब्रह्मा ने उस कन्या से दक्ष प्रजापति का व्याह कर दिया। दक्ष के उस स्त्री से पचास सुन्दरी कन्याएँ उत्पन्न हुईं। दक्ष प्रजापति के सब पुत्र जब नारद के बहकाने से विरक्त होकर निवृत्तिमार्ग में चले गये तब दक्ष ने अपना वंश चलाने के लिए पुत्रिकाधर्म* के अनुसार अपनी कन्याएं योग्य वरों को व्याह दीं। दक्ष ने दस कन्याएँ धर्म को सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमा को और तेरह कन्याएँ कश्यप को दीं। कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा और मति—ये धर्म की दस स्त्रियाँ हैं। ब्रह्मा ने ये धर्म के द्वार बनाये हैं। चन्द्रमा की सत्ताईस स्त्रियां काल-निरूपण करती हुई संसार का काम चलाने के लिए अश्विनी, भरणी आदि नक्षत्रों के नाम से प्रसिद्ध हैं। दक्ष के वसु नाम की एक और कन्या थी। वह भी धर्म को व्याही थी। उसके— धर्म से—धर, ध्रुव, सोम, अहः, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास, ये आठ वसु उत्पन्न हुए। [ किसी-किसी का यह मत है कि ] ब्रह्मा के मनु और मनु के प्रजापति हुए। प्रजापति के धूम्रा नाम स्त्री से धर और ब्रह्मवेत्ता ध्रुव, मनस्विनी में सोम, श्वासा में अनिल, रता में अहः (दिन), शाण्डिल्या में अनल और प्रभाता में प्रत्यूष और प्रभास—इस प्रकार आठ वसु उत्पन्न हुए। २०

धर के द्रविण और हुतहव्यवह नाम के दो पुत्र हुए। ध्रुव के सर्वलोकसञ्चालक भगवान् काल हुए। सोम के वर्चा नाम पुत्र हुआ, जिससे लोग तेजस्वी और कान्तिशाली होते हैं। सोम के मनोहरा नाम दूसरी स्त्री में शिशिर, रमण और प्राण ये तीन पुत्र और हुए। अहः ( दिन ) के ज्योति, शम, शान्त और मुनि, ये चार पुत्र हुए। अनल अर्थात् अग्नि के श्रीमान् कुमारदेव उत्पन्न हुए। इनका जन्म सेंठे के वन के भीतर हुआ था। छः कृत्तिकाओं ने माता बनकर कुमार का पालन किया, इससे इन्हें कार्त्तिकेय भी कहते हैं। अग्नि के शाख, विशाख और नैगमेय, ये तीन पुत्र और भी हुए। अनिल अर्थात् वायु के शिवा नाम स्त्री में मनोजव और अविज्ञातगति नाम के दो पुत्र हुए। प्रत्यूष के देवल ऋषि उत्पन्न हुए। देवल के क्षमावान् और मनीषी, ये दो पुत्र हुए। स्त्रियों में श्रेष्ठ बृहस्पति की बहन पहले

* कन्या के बड़े बेटे को अपना पुत्र बनाने के लिए गोद लेने की शर्त पुत्रिकाधर्म है।

ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर योगाभ्यास से सिद्धावस्था को पहुँचकर निर्लिप्तभाव से सब जगह विचरा करती थीं। अन्त को आठवें वसु प्रभास के साथ उनका ब्याह हुआ। उनके गर्भ से प्रभास के शिल्पाचार्य विश्वकर्मा उत्पन्न हुए। विश्वकर्मा ने सैकड़ों कारीगरियाँ अपनी बुद्धि से निकाली हैं। ये देवताओं के कारीगर, सब तरह के गहनों का प्रथम आविष्कार करनेवाले और देवताओं के दिव्य विमान बनानेवाले हैं। इन्हीं के निकाले कामों से सब मनुष्य अपनी जीविका चलाते हैं। इसी से विश्वकर्मा सबके पूजनीय हैं।

सब लोगों को सुख देनेवाले धर्मदेव मनुष्य-रूप धारण करके ब्रह्माजी की छाती ( दक्षिण भाग ) से उत्पन्न हुए। उनके लोकरक्षक और परमसुन्दर शम, काम और हर्ष नाम के तीन पुत्र पैदा हुए। शम की स्त्री का नाम प्राप्ति, काम की स्त्री का नाम रति और हर्ष की स्त्री का नाम नन्दा था। इन्हीं से सब लोकों की स्थिति है।

मरीचि ऋषि के पुत्र कश्यप का वंश संसार में फैला हुआ है। कश्यप से ही देवता और दैत्य उत्पन्न हुए हैं। वही सबके आदि-पुरुष हैं।

त्वष्टा की कन्या अश्विनी ( घोड़ी का रूप धारण करनेवाली ) सूर्य की स्त्री है। उसमें सूर्य से अंतरिक्ष में अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए।

कश्यप की स्त्री अदिति के बारह पुत्र हुए। उनमें इन्द्र सबसे बड़े और विष्णु सबसे छोटे हैं। विष्णु ही सब संसार के आधार हैं।

आठ वसु, ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, प्रजापति और वषट्कार, ये तेंतीस प्रधान देवता हैं। इनके वंश, पक्ष, कुल और गण आदि का वर्णन करता हूँ। रुद्र, साध्य, मरुत्, वसु, भार्गव और विश्वेदेवा—ये भिन्न-भिन्न देवताओं के गण हैं। विनता के पुत्र गरुड़, अरुण और बृहस्पति की आदित्यों में ही गिनती है। अश्विनीकुमार, यक्ष, सब ओषधियाँ और पशु आदि की भी गिनती देवताओं में ही है।

महाप्रतापी भृगु ऋषि ब्रह्मा के हृदय से उत्पन्न हुए। भृगु के पुत्र विद्वान् कवि महात्मा शुक्राचार्य हुए। विधाता की इच्छा के अनुसार ग्रहरूप से, त्रैलोक्य की रक्षा के लिए वर्षा-अवर्षण तथा भय अभय की सूचना देते हुए, आकाश में विचरते हैं। महायोगी महाबुद्धिशाली शुक्राचार्य असुरों के गुरु हैं। [किसी-किसी का मत है कि ] यही योगबल से, ब्रह्मचर्यव्रततत्पर—बृहस्पति के रूप से—देवताओं के भी गुरु हैं।

ब्रह्माजी की आज्ञा के अनुसार शुक्राचार्य जब दैत्यों के गुरु हो गये, तब भृगु ने च्यवन नाम के महातपस्वी धर्मात्मा पुत्र को उत्पन्न किया। राक्षस के द्वारा माता का हरा जान देखकर उसकी रक्षा के लिए, क्रोध के मारे, असमय में ही गर्भ से निकल आने के कारण वे 'च्यवन' कहलाये। मनु की कन्या आरुसी के साथ च्यवन का विवाह हुआ। आरुसी के,

उसकी जाँघ फोड़कर, और्व ऋषि उत्पन्न हुए। और्व ऋषि लड़कपन में ही महातेजस्वी, महापराक्रमी और बड़े गुणवान् थे। और्व के पुत्र ऋचीक हुए। ऋचीक के जमदग्नि हुए। जमदग्नि के चार पुत्र हुए। गुणों में श्रेष्ठ परशुराम सब भाइयों में छोटे थे। ये शस्त्र-विद्या-निपुण और क्षत्रियविध्वंसक थे। और्व के जमदग्नि-समेत सौ पुत्र हुए तथा जमदग्नि के और उनके भाइयों के हज़ार पुत्र हुए। इस प्रकार पृथ्वी पर भृगुवंश का विस्तार हुआ। ४९

धाता और विधाता नाम के दो पुत्र ब्रह्मा ने और उत्पन्न किये। ये ब्रह्मलोक में मनु के पास रहते हैं। धाता और विधाता के एक बहन भी हुई। वे कमलवासिनी सुलक्षणा लक्ष्मी हैं। आकाशचारी घोड़े लक्ष्मी के मन से उत्पन्न पुत्र हैं।

वरुण की बड़ी स्त्री शुक्र से उत्पन्न हुई। उससे वरुण के 'बल' नाम पुत्र और देवताओं को प्यारी 'सुरा' नाम कन्या उत्पन्न हुई।

इसके बाद जब सब प्रजा भूख के मारे व्याकुल होकर परस्पर एक दूसरे को मारकर भक्षण करने लगी तब उससे सब प्राणियों का नाश करनेवाले अधर्म की उत्पत्ति हुई। अधर्म की स्त्री का नाम निर्ऋति है। उससे नैर्ऋत नाम राक्षस उत्पन्न हुए। अधर्म के तीन और घोररूप और पाप कर्म करनेवाले पुत्र हुए—भय, महाभय और जीवों का संहार करनेवाला मृत्यु। मृत्यु के न स्त्री है, न पुत्र। वह आप ही अन्तक कहा जाता है।

कश्यप की स्त्री ताम्रा के काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री और शुकी ये पाँच कन्याएँ उत्पन्न हुईं। काकी के गर्भ से उल्लू पक्षी, श्येनी के गर्भ से बाज पक्षी, भासी के गर्भ से मुर्ग़े और गिद्ध, धृतराष्ट्री के गर्भ से हंस, कलहंस और चकवा पक्षी, और शुकी के गर्भ से तोते पैदा हुए। कश्यप की दूसरी स्त्री क्रोधा के मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातङ्गी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और सुरसा, ये नौ कन्याएँ उत्पन्न हुईं। मृगी के गर्भ से मृग, मृगमन्दा के गर्भ ६१
से रीछ और छोटी जाति के हरिण, भद्रमना के गर्भ से गजराज ऐरावत, हरी के गर्भ से बन्दर और लङ्गूर, शार्दूली के गर्भ से सिंह, बाघ और चीते आदि, मातङ्गी के गर्भ से हाथी, श्वेता के गर्भ से श्वेत नाम दिग्गज और सुरभि के गर्भ से रोहिणी, गन्धर्वी, विमला और अनला नाम की चार कन्याएँ उत्पन्न हुईं। रोहिणी के गर्भ से गायें और गन्धर्वी के गर्भ से घोड़े उत्पन्न हुए। [विमला के गर्भ से लता-वनस्पति और ] अनला के गर्भ से खजूर, ताल, हिन्ताल, तालो, खर्जूरिका, सुपारी और नारियल के सात पिण्ड-फल वृक्ष पैदा हुए। अनला के शुकी नाम की एक कन्या भी हुई। क्रोधा की नवीं कन्या सुरसा के गर्भ से कङ्कपक्षी और नाग उत्पन्न हुए।

कश्यप की स्त्री विनता के गर्भ से अरुण और गरुड़ नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। कश्यप की स्त्री कद्रू के साँप उत्पन्न हुए। अरुण के श्येनी में दो महाबली पुत्र उत्पन्न हुए—सम्पति और जटायु।

राजन्, यह मैंने आपके आगे सब प्राणियों की उत्पत्ति का वृत्तान्त वर्णन किया है। इस
७२ कथा को सुनने से सब पाप छूट जाते हैं और सृष्टि के क्रम का ज्ञान प्राप्त होता है।

---

## सड़सठवाँ अध्याय

### अंशावतारों का वर्णन

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, अब मुझको देवता, दानव, गन्धर्व, सरीसृप, सिंह, व्याघ्र, मृग, भुजङ्ग, पक्षी और मनुष्य आदि के अंशावतारों का वर्णन सुनाइए। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पहले दानवों और देवताओं के अंशावतारों का वर्णन करता हूँ। सुनिए।

दैत्यराज विप्रचित्ति जरासन्ध नाम का राजा हुआ। हिरण्यकशिपु दैत्य शिशुपाल नाम का राजा हुआ। प्रह्लाद का छोटा भाई संह्लाद वाह्लीक देश का राजा शल्य हुआ। उसी का छोटा भाई अनुह्लाद धृष्टकेतु नाम का राजा हुआ। शिवि दैत्य द्रुम नाम का राजा हुआ। बाष्कल असुर भगदत्त नाम का राजा हुआ। अयःशिरा, अश्वशिरा, अयःशङ्कु, गगनमूर्द्धा और वेगवान्, ये पाँच महाबली असुर कैकय देश के प्रधान-प्रधान राजा होकर पृथ्वी पर उत्पन्न
११ हुए। केतुमान् नाम का महाप्रतापी असुर अमितौजा नाम अत्यन्त निर्दय राजा हुआ। स्वर्भानु असुर उग्रकर्म करनेवाला उग्रसेन नाम का राजा हुआ। अश्व नाम का असुर अपराजित महापराक्रमी अशोक नाम का राजा हुआ। अश्व का छोटा भाई अश्वपति हार्दिक्य राजा हुआ। वृषपर्वा असुर दीर्घप्रज्ञ नाम का राजा हुआ। वृषपर्वा का छोटा भाई अजक शाल्व नाम का राजा हुआ। अश्वग्रीव असुर रोचमान नाम का राजा हुआ। सूक्ष्मासुर राजा बृह-
२० द्रथ हुआ। तुहुण्ड नाम का असुर सेनाबिन्दु नाम का राजा हुआ। इषुपात् नाम का असुर नग्नजित् नाम का राजा हुआ। एकचक्र नाम का असुर प्रतिविन्ध्य नाम का राजा हुआ। विरूपाक्ष असुर चित्रधर्म्मा राजा हुआ। हर नाम का असुर सुबाहु राजा हुआ। अहर नाम का असुर वाह्लीक नाम का राजा हुआ। निचन्द्र नाम का असुर मुञ्जकेश नाम का राजा हुआ। निकुम्भ दैत्य देवाधिप राजा हुआ। शरभ नाम का असुर पौरव नाम का राजा हुआ। कुपट नाम का असुर सुपार्श्व नाम का प्रतापी राजा हुआ। कपट नाम का असुर
३० सुमेरु सदृश ऊँचा पार्वतेय नाम का राजा हुआ। शलभ नाम का महा असुर वाह्लीक प्रदेश का प्रह्लाद नाम का राजा हुआ। चन्द्र नाम का दैत्य चन्द्रवर्म्मा नाम से काम्बोज देश का राजा हुआ। अर्क नाम का दानव ऋषिक नाम का राजर्षि हुआ। मृतपा नाम दैत्य पश्चिम अनूप देश का राजा हुआ। गविष्ठ नाम का दानवराज द्रुमसेन राजा हुआ। मयूरासुर विश्व नाम

का राजा हुआ। मयूर का भाई सुपर्ण दैत्य कालकीर्ति नाम का राजा हुआ। चन्द्रहन्ता नाम का असुर शुनक नाम का राजर्षि हुआ। चन्द्रविनाशन असुर जानकि नाम का राजा हुआ। दीर्घजिह्व नाम का दैत्य काशिराज हुआ। सिंहिका राक्षसी का पुत्र राहु क्राथ नाम का राजा हुआ। दनायु के चार लड़के हुए जिनमें विक्षर नाम का असुर वसुमित्र ४० नाम का राजा हुआ। विक्षर का भाई पाण्ड्य देश का राजा हुआ। बली वीर असुर पौण्ड्र मत्स्य देश का राजा हुआ। वृत्रासुर मणिमान् नाम का राजा हुआ। क्रोधहन्ता नाम का असुर दण्ड नाम का राजा हुआ। क्रोधवर्द्धन नाम का असुर दण्डधार नाम का राजा हुआ। कालेय नाम के आठ असुर मगधनरेश जयत्सेन, अपराजित, निषाद नरेश, भीमपराक्रम, श्रेणिमान्, महौजा, अभीरु, समुद्रसेन और बृहत् नाम के राजा हुए। कुक्षि ५० नाम का दानव पार्वतीय नाम से प्रसिद्ध राजा हुआ। क्रथन नाम का असुर सूर्याक्ष नाम का राजा हुआ। सूर्य नाम का असुर दरद नाम का राजा हुआ। क्रोधवश नाम के असुरगण पृथ्वी पर मद्रक, कर्णवेष्ट, सिद्धार्थ, कीटक, सुवीर, सुबाहु, महावीर, बाल्हिक, क्रथ, विचित्र, सुरथ, नील, श्रीमान, चीरवासा, भूमिपाल, दन्तवक्त्र, दुर्जय, रुक्मी, आपाढ़, वायुवेग, भूरितेजा, एकलव्य, सुमित्र, वाटधान, गोमुख, करूप देश के राजगण, क्षेमधूर्त्ति, श्रुतायु, उद्गह, बृहत्सेन, ६२ क्षेम, उग्रतीर्थ, कलिङ्ग-नरेश कुहर, मतिमान् और ईश्वर आदि नामोंवाले नरेश हुए। महा-पराक्रमी कालनेमि असुर—राजा उग्रसेन का पुत्र—कंस हुआ। इन्द्र के समान सुन्दर देवक नाम का असुर गन्धर्वपति नाम का राजा हुआ।

महाराज, अयोनिज भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य देवर्षि बृहस्पति के अंश से उत्पन्न हुए। ये सब अस्त्रों के ज्ञाता और श्रेष्ठ योद्धा हुए। इनको बाण-विद्या के अनेक अद्भुत कौशल मालूम ७० थे। ये वेद और धनुर्वेद के अच्छे पण्डित माने जाते हैं। इनके पुत्र महापराक्रमी, शत्रुपक्ष-नाशक, कमलनयन अश्वत्थामा ने महादेव, यम, काम और क्रोध के अंश से जन्म लिया। आठों वसु वशिष्ठ के शाप और इन्द्र की आज्ञा से, गङ्गा के गर्भ से, राजा शान्तनु के यहाँ उत्पन्न हुए। शान्तनु के आठवें पुत्र सबसे छोटे प्रतापी भीष्म हुए। बुद्धिमान्, वेदज्ञ, कौरवों को अभय देनेवाले और शत्रुपक्ष का नाश करनेवाले, अस्त्रविद्या में निपुण भीष्मपितामह ने परशुरामजी से युद्ध किया। महापराक्रमी ब्रह्मर्षि कृपाचार्य रुद्रगण के अंश से उत्पन्न हुए। शत्रुमर्दन महावीर राजा शकुनि का जन्म द्वापर के अंश से हुआ। सत्यप्रतिज्ञ यादव सात्यकि ने मरुद्गण के पक्ष से जन्म लिया। राजर्षियों में श्रेष्ठ द्रुपद भी मरुद्गण के ही अंश से उत्पन्न हुए। कृतवर्मा और राजा विराट् भी मरुद्गण के अंश से उत्पन्न हुए। व्यासजी के पुत्र ८० प्रज्ञाचक्षु महातेजस्वी राजा धृतराष्ट्र अरिष्टा के पुत्र हंस नाम गन्धर्वपति के अंश से उत्पन्न हुए। ये अपनी माता के दोष और ऋषि के रोष से अन्धे ही पैदा हुए। महाराज, ( आपके

पूर्वपुरुष ) महात्मा पाण्डु धृतराष्ट्र के छोटे भाई थे। [ उनका भी जन्म मरुद्गण के अंश से हुआ। ] बुद्धिमानों में श्रेष्ठ विदुरजी अत्रि के* अंश से उत्पन्न हुए। दुर्बुद्धि दुर्मति और कौरववंश के लिए कलङ्क का टीका राजा दुर्योधन कलियुग के अंश से उत्पन्न हुआ। सब जगत् से द्रोह रखनेवाले कलियुग के अवतार दुर्योधन ने ही वैर बढ़ाकर युद्ध की आग में सारी पृथ्वी के वीरों को स्वाहा करा दिया। अत्यन्त क्रूर कर्म करनेवाले दुःशासन, दुर्मुख, दुस्सह आदि दुर्योधन के सौ भाई पौलस्त्य नाम के दानवों के अंश से उत्पन्न हुए। धृतराष्ट्र के वैश्या के गर्भ
९१ से युयुत्सु नाम का एक और भी पुत्र हुआ।

जनमेजय ने कहा—भगवन्, कृपा करके बड़े-छोटे के क्रम से दुर्योधन के सौ भाइयों के नाम भी कहिए। वैशम्पायन ने कहा—सुनिए। धृतराष्ट्र के गान्धारी में दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, दुर्मुख, विविंशति, विकर्ण, जलसन्ध, सुलोचन, विन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारु, चित्राङ्गद, दुर्मद, दुष्प्रहर्ष, विवित्सु, विकट, सम, ऊर्णनाभ, पद्मनाभ, नन्द, उपनन्द, सेनापति, सुषेण, कुण्डोदर, महोदर, चित्रबाहु, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विरोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रचाप, सुकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, भीमविक्रम, उग्रायुध, भीमशर, कनकायु, दृढ़ायुध, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्त्ति, अनूदर†, जरासन्ध, दृढ़सन्ध, सत्यसन्ध,
१०० सहस्रवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, क्षेममूर्त्ति, अपराजित, पण्डितक, विशालाक्ष, दुराधन, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अनुयायी, कवची, निषङ्गी, दण्डी, दण्डधार, धनुर्ग्रह, उग्र, भीमरथ, वीर, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, दीर्घलोचन, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरु, कनकाङ्गद, कुण्डज और चित्रक ये सौ पुत्र और एक दुःशला नाम की कन्या उत्पन्न हुई। वैश्या के गर्भ से उत्पन्न एक और पुत्र युयुत्सु था। ये सब अतिरथ, शूर, युद्धनिपुण, वेद-शास्त्र के ज्ञाता और पराक्रमी थे। धृतराष्ट्र ने यथासमय योग्य क्षत्रिय वंशों में अपने सब लड़के ब्याह कर अपनी कन्या दुःशला
१० सिन्धुराज जयद्रथ को ब्याह दी।

राजन्, धर्म के अंश से युधिष्ठिर, वायु के अंश से भीमसेन, इन्द्र के अंश से अर्जुन और अश्विनीकुमार के अंश से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। राजन, सोम के प्रतापी पुत्र वर्चा अर्जुन के पुत्र और तुम्हारे पिता अभिमन्यु हुए। देवताओं ने जब सोम से जाकर वर्चा के अवतार के लिए निवेदन किया तब उसने देवताओं से कहा—देखो, मैं अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र को बहुत दिनों के लिए नहीं दे सकता। यह सब देवताओं का कर्त्तव्य है कि वे पृथ्वी

* प्रसिद्ध टीकाकार नीलकण्ठ पण्डित ने अत्रि का अर्थ सूर्य किया है। | अनुदय।

पर जाकर असुरों का वध करें। इस कारण मैं अपने पुत्र को इस शर्त पर पृथ्वी पर भेज सकता हूँ कि यह वहाँ बहुत दिनों तक न रहेगा। नारायण के सखा नर, पृथ्वी पर इन्द्र के अंश से उत्पन्न, अर्जुन नाम के मँझले पाण्डव होंगे। मेरा पुत्र वर्चा पृथ्वी पर जाकर उन्हीं का पुत्र होगा। यह लड़कपन में ही महारथी योद्धा होगा। सोलह वर्ष तक यह पृथ्वी पर रहेगा। जिस समय यह सोलह वर्ष का होगा उस समय घोर युद्ध होगा, जिसमें तुम्हारे अंश से उत्पन्न वीर पुरुष अद्भुत कर्म करेंगे। एक दिन नर-नारायण के अवतार अर्जुन और कृष्ण के उपस्थित न रहने पर शत्रुगण चक्रव्यूह बनाकर युद्ध करेंगे। यह मेरा पुत्र उस समय अभेद्य चक्रव्यूह को तोड़कर—भीतर घुसकर—अनेक महारथी वीरों को विमुख करके शत्रुसेना को चौपट करेगा। यह आधे दिन युद्ध करके शत्रुओं की चौथाई २१
सेना नष्ट कर डालेगा। उसके बाद सब महारथी मिलकर सायङ्काल को इसे मारेंगे। उस समय यह फिर मेरे पास चला आवेगा। इसके एक वंश चलानेवाला वीर पुत्र होगा। उसी से कौरवों का नष्ट हुआ वंश फिर चलेगा। राजन्, सोम का कहना स्वीकार करके सब देवताओं ने उनकी प्रशंसा की। महाराज यह मैंने आपके पिता और पितामहों के जन्म का पूर्व-वृत्तान्त आपको सुना दिया।

राजन्, अग्नि के अंश से धृष्टद्युम्न का जन्म हुआ। एक राक्षस के अंश से शिखण्डी का जन्म हुआ। शिखण्डी पहले स्त्री था। द्रौपदी के प्रतिविन्ध्य, सुतसोम, श्रुतकीर्ति, शतानीक और श्रुतसेन नाम के पाँचों पुत्र विश्वेदेवाओं के अंश से उत्पन्न हुए। अब कुन्ती का वृत्तान्त सुनिए। परम सुन्दरी कुन्ती यदुवंशी वसुदेव के पिता शूरसेन की कन्या थी। शूरसेन की बुआ के पोते कुन्तिभोज के कोई लड़की-लड़का न था। शूरसेन उनसे कह चुके थे कि "मेरे सबसे पहले जो सन्तान होगी वह मैं तुमको दे डालूँगा"। इसी प्रतिज्ञा के अनुसार उन्होंने अपनी कन्या कुन्ती कुन्तिभोज को दे डाली। अपने पिता के घर में ३१
कुन्ती सदा आये हुए अभ्यागत ब्राह्मणों की सेवा किया करती थी। एक समय उग्रस्वभाव, व्रत-

ण, धर्म के गूढ़ तत्त्व को जाननेवाले, भोगी, संयमी, महर्षि दुर्वासा आकर कुन्तिभोज के यहाँ ठहरे। कुन्ती ने यत्न के साथ सेवा करके दुर्वासा को सन्तुष्ट किया। चलते समय दुर्वासा ने आशीर्वाद देकर कुन्ती से कहा—देवी, मैं प्रसन्न होकर तुमको यह मन्त्र देता हूँ। इस मन्त्र को पढ़कर तुम जिस देवता का आवाहन करोगी वह तुम्हारे पास आवेगा और उसके प्रसाद से तुम्हारे पुत्र होगा। राजन्, दुर्वासा ऋषि मन्त्र देकर चले गये। कुन्ती ने कौतूहल के लिए उसी समय मन्त्र पढ़कर सूर्य देव का आवाहन किया। जगत्प्रकाशक सूर्य उसी समय आये और उनसे कुन्ती के कन्या-अवस्था में ही गर्भ रह गया। कुन्ती के यथा-समय सूर्य के समान तेजस्वी, कवच और कुण्डल पहने, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, सुन्दर बालक

उत्पन्न हुआ। बन्धुओं के डर से उस कुमार को, छिपाने के लिए, कुन्ती ने नदी के जल में फेंक दिया। राधा के स्वामी अधिरथ नाम के सूत ने उस वीर बालक को पाया और पाला। अधिरथ और राधा ने उस बालक का नाम वसुषेण रक्खा। वसुषेण दिन-दिन बढ़कर महाबली हो उठा। उस प्रतापी बालक ने कुछ ही समय में वेद-वेदाङ्ग और धनुर्विद्या को भली भाँति सीख लिया। विद्याध्ययन के समय वसुषेण की यह प्रतिज्ञा थी कि ब्राह्मण जो कुछ माँगेगा उसको वही दूँगा। इसी समय इन्द्र, ब्राह्मण का रूप रखकर, वसुषेण के पास आये। इन्द्र ने अपने पुत्र अर्जुन की भलाई के लिए वसुषेण से दिव्य कवच और कुण्डल माँगे। वसुषेण ने उसी समय इन्द्र को उनकी माँगी हुई वस्तुएँ दे डालीं। इन्द्र ने बहुत चकराकर और प्रसन्न होकर वसुषेण को एक शक्ति नाम का शस्त्र दिया और कहा—देखो, तुमको कोई सहज में जीत न सकेगा। देवता, दानव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि चाहे जो हो, 'एक व्यक्ति' इस शक्ति के प्रहार से जीता नहीं बच सकेगा। इसी से इसका नाम एकघातिनी है। राजन्, सूर्य के पुत्र पहले वसुषेण नाम से प्रसिद्ध थे, अब इस कठिन कर्म के करने से उनका नाम वैकर्त्तन* कर्ण पड़ा। कर्ण महाप्रतापी और दुर्योधन के प्रिय मन्त्री थे।



महाराज, सनातन देवदेव नारायण के अंश से वासुदेव कृष्णचन्द्र उत्पन्न हुए। बलदेवजी शेषनाग के अंश से उत्पन्न हुए। महातेजस्वी प्रद्युम्न सनत्कुमार ऋषि के अंश से उत्पन्न हुए। इनके सिवा और अनेकों देवता अपने-अपने अंश से वसुदेव के कुल में यादवों के बीच उत्पन्न हुए। राजन्, सब अप्सराओं के अंश से कृष्णचन्द्र की सोलह हज़ार रानियाँ उत्पन्न हुईं। [ राजा भीष्मक की कन्या देवी रुक्मिणी लक्ष्मीजी के अंश से उत्पन्न हुईं। इन्द्राणी के अंश से ] सुन्दरी द्रौपदी राजा द्रुपद के यहाँ अग्नि की वेदी से उत्पन्न हुईं। द्रौपदी का मँझोला क़द था। उनके अङ्गों से नीले कमल की सुगन्ध आती थी। उनके घुँघराले चिकने काले केश बहुत ही मनोहर थे। सुलक्षणा द्रौपदी के शरीर का रङ्ग पन्ने का ऐसा सुन्दर था। उन

* अपने शरीर से सटे हुए कवच को कतरकर दे डालने से कर्ण की चमड़ी उधड़ गई थी।

पर पाँचों पाण्डवों का पूरा प्रेम था। महाराज, सिद्धि और धृति नाम की देवियों के अंश से पाण्डु की स्त्री कुन्ती और माद्री का जन्म हुआ। मति के अंश से सुबल की कन्या—धृतराष्ट्र की स्त्री—देवी गान्धारी का जन्म हुआ। ६०

राजन्! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि के घरानों में और यादवों के प्रसिद्ध कुल में जिन-जिन देवता, दैत्य, गन्धर्व, अप्सरा, राक्षस आदि का जिस-जिस नाम से अंशावतार हुआ सो सब मैंने आपको सुना दिया। इस यश और आयु को बढ़ानेवाले, जय और पुण्य को देनेवाले प्रशंसनीय अंशावतरण के अध्याय को जो मन लगाकर श्रद्धा से सुनता है वह ब्रह्मज्ञानी हो जाता है और किसी प्रकार के आपत्ति-काल में कष्ट नहीं पाता। १६४

---

## अड़सठवाँ अध्याय*

कुरुवंश का वर्णन। संक्षेप से ययाति का उपाख्यान

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! दक्षप्रजापति, वैवस्वत मनु, भरत, कुरु, पूरु, आजमीढ़, यदु आदि के वंशों का विस्तार से वर्णन सुनो। यह कथा यश और आयु को बढ़ानेवाली, पवित्र और स्वस्त्ययन-स्वरूप है। महाराज, प्राचेता प्राचीनबर्हि के महातेजस्वी तपस्वी दस पुत्र उत्पन्न हुए। उन दस भाइयों ने एक समय कुपित होकर, अपने मुँह से अग्नि निकालकर, सब वृक्षों और वनस्पतियों को जला दिया था। उनके पुत्र दक्षप्रजापति हुए। दक्ष से ही सब प्रजा उत्पन्न हुई। इसी से दक्ष को सर्वलोक-पितामह अथवा आदि-पुरुष कहते हैं। प्राचेतस् दक्ष ने वीरिणी नाम की स्त्री में अपने तुल्य पराक्रमी एक हज़ार पुत्र उत्पन्न किये। उनको ब्रह्मर्षि नारद ने सांख्य-ज्ञान की शिक्षा देकर मोक्ष की राह बता दी। तब दक्ष ने फिर पचास कन्याएँ उत्पन्न कीं। उन कन्याओं के बड़े लड़के को अपना पुत्र बनाने की शर्त करके दक्ष ने सबका विवाह कर दिया। प्रजापति ने दस कन्याएँ धर्म को, सत्ताईस नक्षत्र-रूपिणी कन्याएँ चन्द्रमा को और तेरह कन्याएँ कश्यप को दीं। मरीचि के पुत्र कश्यप ने दक्ष की बड़ी लड़की अदिति के गर्भ से इन्द्र आदि बलशाली देवताओं को और सूर्य को उत्पन्न किया। सूर्य के ११
मनु और यम नाम के दो पुत्र हुए। मनु धर्मात्मा, बुद्धिमान् और वंश चलानेवाले हुए। सब ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि मनुष्य मनु के ही वंश में उत्पन्न हैं, इसी से उनको मानव कहते हैं। महाराज, तभी से ब्राह्मण और क्षत्रिय का सङ्गम हुआ। मनु के वंश में जो ब्राह्मण हुए वे वेद और वेदाङ्ग के पढ़ने-पढ़ाने में लग गये। वैवस्वत मनु के वेन, धृष्णु, नरिष्यन्त, नाभाग,

* ययाति के वंश में दुष्यन्त की उत्पत्ति हुई है। इस कारण पहले ययाति के आख्यान का ही वर्णन किया गया है जिसमें प्रसङ्ग ठीक रहे।

इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, पृषध्र, नाभागारिष्ट, ये नौ पुत्र और एक कन्या इला उत्पन्न हुई। इला मनु की आठवीं सन्तान थी और पीछे से पुरुष हो गई थी। ये सब पुत्र क्षत्रिय हुए। सुना है, इनके सिवा मनु के पचास पुत्र और हुए थे; पर वे सब आपस में लड़-भिड़कर नष्ट हो गये। इला के गर्भ से बुध के पुत्र विद्याविशारद पुरूरवा हुए। राजा पुरूरवा बड़े प्रतापी हुए। वे मनुष्य होकर भी अमानुष अनुचरों के साथ समुद्र के तेरहों द्वीपों का शासन करते थे। अपने प्रताप के घमण्ड में भूलकर पुरूरवा ने ब्राह्मणों पर अत्याचार किया—ब्राह्मणों की प्रार्थना
२० और आर्त्तनाद पर ध्यान न देकर उनके धन-रत्न छीन लिये। सनत्कुमार ऋषि ने ब्रह्मलोक से आकर पुरूरवा को बहुत समझाया, उपदेश किया। इतने पर भी उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। अन्त को ऋषियों ने क्रोध करके उनको शाप के द्वारा नष्ट कर दिया।

महाराज, यह इला के पुत्र पुरूरवा ही गन्धर्वलोक से क्रिया के लिए विधिविहित तीनों अग्नियों के साथ उर्वशी अप्सरा को ले आये थे। पुरूरवा के उर्वशी में आयु, धीमान्, अमावसु, दृढ़ायु, वनायु और शतायु ये छः पुत्र हुए। आयु के स्वर्भानु की कन्या के गर्भ में नहुष, वृद्धशर्म्मा, रजि, गय और अनेना ये पाँच पुत्र हुए। आयु के बड़े पुत्र नहुष बुद्धिमान् और शक्तिशाली थे। पिता के बाद राजगद्दी पर बैठकर पितर, देवता, ऋषि, गन्धर्व, नाग, राक्षस, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि प्रजा का धर्म से पालन करते हुए प्रतापी नहुष ने त्रिभुवन में अपना नाम कर दिया। नहुष ने दस्युगण को मारकर उनसे ऋषियों को 'कर' दिलाया। एक बार इन्होंने ऋषियों से पशुओं जैसा सवारी का काम लिया था। तेज, तप, पराक्रम और पुरुषार्थ से देवताओं को वश में करके राजा नहुष ने इन्द्रत्व प्राप्त कर लिया था। नहुष के यति, ययाति, संयाति, आयाति, अयति और ध्रुव, ये छः प्रियवादी
३० पुत्र हुए। उनमें यति योगाभ्यास करके ब्रह्मरूप हो गये। इस कारण ययाति को राज्य मिला। सम्राट् सत्यपराक्रमी ययाति ने धर्म से पृथ्वी का पालन करते हुए अनेक बड़े-बड़े यज्ञ किये। वे भक्तिपूर्वक देवताओं और पितरों का पूजन करते थे। सारी पृथ्वी उनके अधिकार में थी। वे कभी कहीं किसी से हारे नहीं।

ययाति के दो स्त्रियाँ थीं—देवयानी और शर्मिष्ठा। उनके इन दोनों स्त्रियों के गर्भ से गुणी पुत्र उत्पन्न हुए। देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु, और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पूरु नाम के पुत्र हुए। इस प्रकार बहुत दिनों तक धर्म से प्रजापालन करते-करते रूप को नष्ट करनेवाला बुढ़ापा आया देखकर ययाति ने अपने यदु, पूरु, तुर्वसु, अनु और द्रुह्यु नाम के पाँचों पुत्रों से कहा कि पुत्रो, मैं जवानी पाकर जवान स्त्रियों के साथ जवानी का सुख भोगना चाहता हूँ—तुम मेरी सहायता करो। यह सुनकर देवयानी के गर्भ से उत्पन्न बड़े पुत्र यदु ने कहा—हम आपकी क्या सहायता कर सकते हैं? क्या आप हमारी जवानी चाहते हैं?

ययाति ने कहा—पुत्रो, तुममें से कोई मेरा बुढ़ापा ले ले। मैं उस पुत्र की जवानी लेकर विषय-भोग करूँगा। बहुत दिनों तक यज्ञ करने से और शुक्राचार्य के शाप से मैं पुरुषार्थ-हीन बुड्ढा हो गया हूँ; परन्तु मेरी भोग की इच्छा वैसी ही प्रबल है। इससे मुझे बड़ा कष्ट और सन्ताप है। तुममें से कोई मेरी यह अवस्था लेकर राज्य करे और मैं उसकी जवानी लेकर अपनी इच्छा पूरी करूँगा।

ययाति की इस बात को किसी ने न माना। तब सब से छोटे बेटे पूरु ने कहा—पिता, आप मेरी जवानी लेकर अपनी इच्छा पूरी कीजिए; मैं आपका बुढ़ापा लेकर राजकाज देखूँगा। पूरु के स्वीकार कर लेने पर ययाति ने तपस्या के बल से अपना बुढ़ापा पूरु को दे दिया और उसकी जवानी आप ले ली। ययाति की अवस्था से पूरु राजकाज चलाने लगे और पूरु की अवस्था से ययाति भोग-विलास करने लगे। हज़ार वर्ष तक राजा ययाति के शरीर में सिंह का सा पराक्रम बना रहा और इतने दिनों तक दोनों स्त्रियों से विषय-भोग करके भी वे तृप्त न हुए। इसके बाद वे चैत्ररथ वन में विश्वाची अप्सरा के साथ बहुत दिनों तक विहार करते रहे। जब किसी तरह महायशस्वी राजा को भोग-विलास से तृप्ति नहीं हुई तब एक दिन आप ही आप विचार करके उन्होंने कहा कि कामभोग करने से कामना कभी शान्त नहीं होती। घी डालने से जैसे आग और भी जल उठती है वैसे ही भोग से लालसा बढ़ती ही जाती है। पृथ्वीमण्डल भर के सोने, रत्न, पशु, स्त्री आदि भोग की सामग्रियों को अकेले भोगकर भी कोई उनसे तृप्त नहीं हो सकता। यह सोचकर शान्ति का आसरा लेना चाहिए। मनुष्य जब मन-वाणी-काया से किसी प्राणी की कुछ बुराई नहीं करता, जब उसे किसी का डर नहीं रहता और उससे कोई नहीं डरता, जब वह न इच्छा करता है और न द्रोह करता है, तब साक्षात् ब्रह्म का रूप हो जाता है।

महाराज, राजा ययाति ने मन में विषयभोग की असारता समझकर विचार से अपने मन को शान्त किया और—विषय-वासना पूर्णरूप से शान्त न होने पर भी—पूरु को उसकी जवानी देकर अपना बुढ़ापा उससे लिया। फिर पूरु को राज्य देकर ययाति ने कहा—पुत्र, तुम्हीं मेरे सच्चे बेटा और वंश चलानेवाले हो। इसलिए मेरा वंश तुम्हारे ही नाम से पौरव वंश कहलावेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पूरु को राज्य देकर राजा ययाति तप करने के लिए भृगुतुङ्ग पर्वत पर चले गये। वहाँ बहुत दिनों तक तपस्या करके, अन्त को निराहार रहकर स्त्री-सहित स्वर्ग सिधार गये।

# उनहत्तरवाँ अध्याय

विस्तार से ययाति की कथा का आरम्भ। बृहस्पति के पुत्र कच का उपाख्यान

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, प्रजापति से लेकर दसवीं पीढ़ी में उत्पन्न हमारे पूर्वपुरुष महाराज ययाति को, क्षत्रिय के लिए परम दुर्लभ, ब्राह्मण शुक्राचार्य की बेटी कैसे मिली? इस कथा को मैं विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। वंश चलानेवाले राजाओं के चरित्र भी अलग-अलग कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, इन्द्र के समान तेजस्वी सुन्दर राजा ययाति को शुक्राचार्य और वृषपर्वा असुर, दोनों ने जिस तरह अपनी-अपनी कन्या दी, जिस तरह ब्राह्मण-कन्या देवयानी से क्षत्रिय ययाति का विवाह-सम्बन्ध हुआ, सो सब वृत्तान्त मैं कहता हूँ, सुनो। इस त्रिलोकी के राज्य के लिए देवता और दैत्य दोनों में एक समय घोर युद्ध हुआ। उस समय जय पाने की इच्छा से देवताओं ने अङ्गिरा के पुत्र बृहस्पति को अपना आचार्य बनाया। दैत्यों ने भी यज्ञ के लिए शुक्राचार्य को अपना पुरोहित बनाया। इन दोनों ब्राह्मणों में भी परस्पर लाग-डाँट हो गई। युद्ध में देवता जिन दैत्यों को मारते थे उन्हें शुक्राचार्य अपनी मृत-सञ्जीविनी विद्या के प्रभाव से फिर जिला देते थे जिससे वे फिर देवताओं से भिड़ जाते थे; किन्तु वह विद्या न जानने के कारण बृहस्पति मरे हुए देवताओं को नहीं जिला सकते थे।



यह देखकर देवताओं को बड़ा खेद
१० हुआ। शुक्राचार्य के इस कर्म से डरे और घबराये हुए देवताओं ने बृहस्पति के बड़े बेटे कच के पास जाकर कहा—देखो कच, हम तुम्हारे हितचिन्तक हैं। तुम हमारे गुरु-पुत्र हो। इस सङ्कट के समय तुम हमारी कुछ सहायता करो। महातेजस्वी शुक्राचार्य के पास जाकर तुम उनसे मृतसञ्जीविनी विद्या सीख आओ; हम तुमको अपने साथ यज्ञ में भाग देंगे। तुमको वृषपर्वा दानव के यहाँ शुक्राचार्य मिलेंगे। वे दानवों की ही रक्षा करते हैं, देवताओं की नहीं। तुम नौजवान हो। तुम आराधना सेवा करके उनको

अनुकूल बना लोगे। शुक्राचार्य अपनी कन्या देवयानी को बहुत चाहते हैं। सच्चरित्र, अनुराग, प्रीति, आचार और विनय के द्वारा देवयानी को प्रसन्न कर लोगे तो वह विद्या अवश्य तुमको मिल जायगी।

वैशम्पायन कहते हैं—कच ने देवताओं से उनका कहना करने के लिए हामी भर ली। देवगण उनकी बड़ाई करके चले गये। अब देवताओं के भेजे हुए कच वृषपर्वा असुर की नगरी को चले। वहाँ पहुँचकर आचार्य शुक्र से मिलकर कच ने कहा—भगवन्, मैं अङ्गिरा का पोता और बृहस्पति का बेटा कच आपका शिष्य होना चाहता हूँ। कृपा करके मेरी इच्छा पूरी कीजिए। मैं आपको गुरु मान करके हज़ार वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत धारण करूँगा। प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिए। शुक्राचार्य ने कहा—कच, तुम्हारे आने से मैं बहुत प्रसन्न हुआ, मैं तुमको शिष्य बनाना स्वीकार करता हूँ। मैं बृहस्पति की प्रसन्नता के लिए तुम्हारा सत्कार करता हूँ। २०

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कच ने शुक्राचार्य की आज्ञा के अनुसार यथासमय ब्रह्मचर्य की दीक्षा ली और वहीं रहकर वे आचार्य और आचार्य-कन्या देवयानी की सेवा करने लगे। नौजवान कच शुक्र को प्रसन्न रखकर नाच, गाने-बजाने, फूल-फल लाने और सेवक की तरह आज्ञा-पालन के द्वारा देवयानी को सन्तुष्ट करने की धुन में विशेष रूप से लगे रहते थे। देवयानी भी एकान्त में सङ्गीत और लालित्य के द्वारा ब्रह्मचारी कच को प्रसन्न रखने की चेष्टा करती थी। इस तरह पाँच सौ वर्ष तक कच ने ब्रह्मचर्य का पालन किया।

एक दिन कच वन में अकेले गायें चरा रहे थे। दानवों ने कच को देखकर मृतसञ्जीविनी विद्या की रक्षा के विचार से और बृहस्पति के साथ वैरभाव होने के कारण उन्हें मार डाला। दानवों ने बोटी-बोटी काटकर कच का शरीर भेड़िये और बाघ आदि को खिला दिया। शाम को सब गायें घर को चलीं आईं, परन्तु कच नहीं आये। गायों के साथ कच को आये न देखकर देवयानी ने शुक्र से कहा—पिताजी, दिन डूब गया। आप अग्निहोत्र भी कर चुके। गायें लौट आईं; परन्तु कच का अभी तक पता नहीं। अवश्य ही कच की मृत्यु हो गई—किसी ने उसे मार डाला है। आपसे सच कहती हूँ, कच के बिना मैं जी नहीं सकती। शुक्र ने कहा—बेटी, जो ऐसी बात है, तो मैं अभी उसे जिला लूँगा। "आओ" कहकर मैं मरे हुए लोगों को अपनी विद्या के बल से फिर जिला देता हूँ। ३०

अब मृतसञ्जीविनी विद्या का प्रयोग करके शुक्राचार्य ने कच को उसी तरह पुकारा। सञ्जीविनी विद्या के प्रभाव से कच उन भेड़ियों और बाघों के शरीर फाड़कर बाहर निकल आये और उसी समय आकर देवयानी के पास बैठ गये। देवयानी ने पूछा—तुमने इतनी देर कहाँ लगाई? कच ने कहा—मैं समिध, कुश और लकड़ी का गट्ठा लादे चला आ रहा था।

राह में थककर बरगद के पेड़ की छाँह में बैठ गया—वहीं गायें भी बैठी विश्राम कर रही थीं। इतने में असुरों ने आकर मुझसे पूछा कि तुम कौन हो मैंने कहा—मैं बृहस्पति का पुत्र कच हूँ। यह कहते ही असुरों ने मुझे मार डाला, और मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियों को खिला दिये। फिर वे अपने-अपने घर चले गये। इस समय आचार्य ने बुलाया तो मैं उनकी विद्या के बल से फिर जी उठा और किसी तरह जीवन पाकर तुम्हारे



३९ पास आया हूँ।

राजन्, कुछ समय बीतने पर फिर देवयानी ने कच को फूल लेने के लिए वन को भेजा। फिर दानव मिल गये। उन्होंने कच के शरीर को पीसकर समुद्र के जल में डाल दिया और आप अपने घर चले गये। उस दिन भी देर तक कच के न आने पर देवयानी ने शुक्राचार्य से उसको जिलाने के लिए कहा। शुक्राचार्य ने फिर विद्या का प्रयोग करके कच को पुकारा। कच ने फिर उसी तरह जीकर देवयानी को सब वृत्तान्त कह सुनाया।

महाराज, तीसरी बार फिर दानवों ने कच को पाकर पकड़ लिया। अब की बार उन्होंने कच को जलाकर उनके शरीर की राख मदिरा में मिलाकर शुक्राचार्य को ही पिला दी। फिर देर तक कच के न आने पर देवयानी ने शुक्र से कहा कि पिताजी, कच मेरे लिए फूल लेने गया था। बड़ी देर हुई। अभी तक नहीं आया। अवश्य उसे दानवों ने मार डाला है। सच जानिए, उसके बिना मेरा जीवन नहीं रह सकता। शुक्राचार्य ने कहा—बेटी, बृहस्पति के पुत्र कच की मृत्यु का समय ही आ गया है। मैं विद्या के बल से उसको जिलाता हूँ और दैत्य मार डालते हैं। मैं क्या करूँ? देवयानी, इस प्रकार रोना और शोक करना तुमको नहीं सोहता। तुम ऐसी अमर भाव को प्राप्त कुमारी को मरणशील व्यक्ति के लिए शोक करना उचित नहीं। मेरे कारण स्वयं ब्रह्म (वेद या ब्रह्मा), ब्राह्मण, इन्द्र आदि देवता, वसुगण, अश्विनी-कुमार, असुरगण और सारे जगत् के प्राणी तुम्हारी आराधना करते और विनय दिखाते हैं। मैं कच को बार-बार जिलाता हूँ और असुर मार डालते हैं। अतएव इसको अब मैं जिला नहीं सकता। देवयानी ने कहा—पिताजी, कच साधारण पुरुष नहीं। वह ब्रह्मा के पुत्र वृद्धतम अङ्गिरा का पोता और तपोनिधि बृहस्पति का बेटा है। उस ऋषि के पोते और ऋषिकुमार के



राक्षसों का कच को जला कर उनके शरीर की राख मदिरा में मिला कर
शुक्राचार्य को पान कराना—पृ० १२०



रोती हुई देवयानी को शुक्राचार्य का समझाना।—पृ० १५७

लिए मैं कैसे न शोक करूँ ? कैसे न रोऊँ ? पिताजी ! कच ब्रह्मचारी, तपस्वी, चतुर और सदा कार्य करने के लिए तैयार रहनेवाला पुरुषार्थी है। वह मुझे बहुत प्यारा है। उसके बिना मैं जी नहीं सकती—खाना-पीना छोड़कर प्राण दे दूँगी। शुक्र ने कहा— ५०
अवश्य ही असुर लोग मेरा विरोध कर रहे हैं। वे मेरे निर्दोष शिष्य को बार-बार मारकर मेरे विरुद्ध आचरण करते हैं। रौद्र कर्म करनेवाले दुष्ट असुर मुझे भी इस ब्रह्म-हत्या के पाप में फँसाना चाहते हैं। अहो, इस पाप का अन्त नहीं। ब्रह्महत्या का पाप इन्द्र को भी जला सकता है।

अपनी कन्या का प्रिय करने के लिए व्यग्रता के साथ शुक्राचार्य ने कच को पुकारा। गुरु का शब्द सुनते ही कच डरकर धीरे से गुरु के पेट के भीतर से बोले। कच को अपने पेट के भीतर बोलते देख शुक्राचार्य ने पूछा—कच, तुम मेरे पेट के भीतर किस राह से पहुँच गये ? उसने कहा—गुरुवर, आपकी कृपा से इस समय भी मुझे पहले की सब बातें याद हैं। आपका पेट फाड़कर बाहर निकलने से तप की हानि न हो, इसी विचार से मैं यहाँ घोर कष्ट सह रहा हूँ। भगवन्, असुरों ने मुझे मारकर जला दिया, फिर मेरे शरीर की राख मदिरा में मिलाकर आपको पिला दी है। आप ब्राह्मी, आसुरी और दैवी तीनों मायाओं को अच्छी तरह जानते हैं। अतएव आपके पेट को फाड़कर बाहर निकलना मेरे लिए सब तरह कठिन है।

तब शुक्र ने कहा—बेटी, अब मैं किस तरह तुम्हारा प्रिय करूँ ? मेरे मरने पर कच का जीवन हो सकता है। मेरी कोख फाड़े बिना और किसी राह से कच नहीं निकल सकता। देवयानी ने कहा—कच का नाश और आपकी मृत्यु, ये दोनों शोक अग्नि के समान मेरे हृदय को जलानेवाले हैं। कच के न मिलने से मुझे चैन नहीं मिलेगा और आपकी मृत्यु से मैं जीवित नहीं रह सकती।

कन्या के दुःख को न देख सकने के कारण शुक्र ने कच से कहा—हे बृहस्पति के पुत्र, तुमको आज सिद्धि प्राप्त हो गई, क्योंकि देवयानी तुमको इतना चाहती है। यदि तुम कच के रूप में इन्द्र नहीं हो तो मैं तुमको यह मृतसञ्जीविनी विद्या देता हूँ। किन्तु इन्द्र का सन्देह करना वृथा है—मेरे पेट के भीतर जाकर ब्राह्मण के सिवा और कोई जीता नहीं रह सकता। मैं तुमको जिलाता हूँ; तुम विद्या पाकर मेरे शरीर से निकलकर मुझको भी जिला देना। तुम आज से मेरे पुत्र के समान हुए। देखो, गुरु से विद्या पाकर सदा शिष्य के धर्म का ख़याल रखना—कृतघ्नता न करना। वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, बृहस्पति के पुत्र कच गुरु से मृत- ६०
सञ्जीविनी विद्या पाकर, उनकी कोख फाड़कर सूर्य के अस्त होने पर पूनो की रात को पूर्ण चन्द्रमा के समान, बाहर निकल आये। वैसे ही ब्रह्मतेज के ढेर के समान गिरे पड़े शुक्राचार्य को

कच ने उसी विद्या के बल से जिला दिया। इस प्रकार सिद्ध हुई विद्या को पाकर गुरु के चरणों में प्रणाम करके कच ने कहा—जो विद्याहीन पुरुष के कानों में विद्यारूपी अमृत डाले उस आर्य ( श्रेष्ठ ) पुरुष को मैं माता और पिता के तुल्य जानता हूँ। उसके किये उपकार को सदा याद रखकर कभी उससे द्रोह न करना चाहिए। जो लोग विद्या पढ़कर, सबसे उत्तम सत्य के उपदेशक और सबसे बढ़कर विद्या की निधि देनेवाले पूजनीय गुरु का आदर नहीं करते वे इस लोक में अपयश पाकर परलोक में दुर्गति भोगते हैं।



वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, शुक्राचार्य ने जब यह जाना कि मदिरा पिलाकर ही असुरों ने उनको धोखा दिया—मदिरा पीने से ही वे ऐसे अचेत हो गये कि कच की राख मदिरा में पी गये और उन्हें मालूम नहीं हुआ—तब महाशयस्वी शुक्राचार्य को बड़ा क्रोध हुआ। ब्राह्मणों की भलाई के लिए मद्य-पान की निन्दा करते हुए शुक्र ने कहा—जो कोई मन्दमति ब्राह्मण आज से मोहवश होकर मदिरापान करेगा वह धर्म से भ्रष्ट हो जावेगा; उसे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा; उसकी इस लोक में निन्दा और परलोक में दुर्गति होगी। साधु, ब्राह्मण, गुरु की सेवा करनेवाले ब्रह्मचारी, देवता और सब संसार के लोगों को सुनाकर आज से मैं ब्राह्मणों के धर्म की यह मर्यादा बाँधता हूँ।

महाराज, तपस्वी शुक्राचार्य ने यों कहकर उसी समय दैवमोहित दानवों को अपने पास बुलाया। उन्हें बुलाकर आचार्य ने कहा—हे मूर्ख दानवो, मैं तुमसे कहे देता हूँ कि ये कच मुझसे सञ्जीविनी विद्या पाकर साक्षात् ब्रह्मा के और मेरे समान प्रभावशाली हो गये हैं। ये अब यहीं, मेरे पास, रहेंगे। शुक्राचार्य की यह बात सुनकर दानवों को बड़ा अचरज हुआ। वे चुपचाप अपने घरों को चले गये। इसके बाद हज़ार वर्ष तक गुरु के पास
७२ रहकर कच ने स्वर्ग को जाने की इच्छा प्रकट की।

---

*

# सत्तरवाँ अध्याय

कच और देवयानी का व्याह के लिए झगड़ा और परस्पर एक दूसरे को शाप देना

वैशम्पायन ने कहा—राजन् ! व्रत पूरा करके, गुरु से विदा होकर, कच जब स्वर्ग के लिए चले तब उनसे देवयानी ने कहा कि कच ! तुम महर्षि अङ्गिरा के पोते, कुलीन, सच्चरित्र, विद्वान्, तपस्वी और जितेन्द्रिय हो। महर्षि अङ्गिरा जैसे मेरे पिता के मान्य हैं वैसे ही बृहस्पतिजी मेरे भी मान्य और पूजनीय हैं। यह विचारकर तुम मेरा कहा मानो। तुम जानते हो कि जब तुम ब्रह्मचर्य पालन करते हुए विद्या पढ़ रहे थे तब मैंने तुम्हारे साथ कैसा सलूक किया है—किस तरह बार-बार प्रार्थना करके पिता से तुम्हारे जीवन की रक्षा करवाई है। इस समय तुम ब्रह्मचर्य व्रत समाप्त कर चुके हो। मैं तुमको चाहती हूँ, तुम मुझे भजो—विधिपूर्वक मेरे साथ व्याह कर लो।



कच ने कहा—सुन्दरी, जिस तरह तुम्हारे पिता मेरे मान्य और पूजनीय हैं उसी तरह मैं तुमको भी समझता हूँ। तुम भार्गव की प्राणों से भी प्यारी बेटी हो। तुम गुरु-कन्या होने के कारण धर्म की दृष्टि से मेरे लिए पूजनीय हो। देवयानी, तुम ऐसा न कहो। जैसे तुम्हारे पिता को मैं गुरु मानता हूँ वैसे ही तुमको गुरुकन्या मानता हूँ—तुम मेरी धर्म की बहन हो। तुम ऐसी बात मत कहो।

देवयानी ने कहा—कच, तुम मेरे पिता के पुत्र नहीं हो। मेरे पिता के गुरु-पुत्र बृहस्पति के बेटे हो; इसी कारण तुम भी मेरे मान्य और पूजनीय हो। याद करो, जब असुरों ने तुमको बार-बार मार डाला तब मैंने ही पिता से कहकर तुम्हें ज़िन्दा कराया है। तभी से मुझे तुमसे प्रीति हो गई है। मेरे अनुराग और उत्तम भक्ति को तुम जानते हो। हे धर्मज्ञ, मुझे अङ्गीकार करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। ११

कच ने कहा—देवयानी, न करने योग्य काम करने के लिए तुम मुझसे हठ न करो। देवी, तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। मैं तुम्हें गुरु से भी बढ़कर हृदय से मानता हूँ। तुम शुक्राचार्य की जिस कोख में रही हो, उसी में मैं भी रह चुका हूँ। इस कारण तुम मेरी

धर्म की बहन हो। तुम ऐसे वचन न कहो। मैं तुम्हारे यहाँ इतने दिनों तक बड़े सुख से रहा—मैं तुमसे किसी तरह असन्तुष्ट नहीं हूँ। अब मैं तुमसे जाने की आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आशीर्वाद दो कि राह में किसी तरह का अनिष्ट न हो। धर्म के विरोध को बचाकर कभी-कभी मुझे याद किया करना। नित्य सावधानी से तत्परता के साथ रहकर मेरे गुरु की सेवा करती रहना।

देवयानी ने कहा—कच, मैं तुमसे स्वयं प्रार्थना करती हूँ; यदि तुम धर्म और काम की इच्छा से मुझे स्वीकार नहीं करते तो मैं तुमको शाप देती हूँ कि यह मृत-सञ्जीविनी विद्या तुम्हें सिद्ध न होगी।

कच ने कहा—गुरुकन्या समझकर ही मैंने तुम्हारा कहना नहीं माना; तुममें कोई दोष समझकर मैंने यह काम नहीं किया। गुरु ने भी इस बारे में मुझसे कुछ नहीं कहा। इस पर भी यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं तुम्हारा शाप स्वीकार करने को तैयार हूँ। देवयानी, मैंने ऋषियों के धर्म को मानकर तुम्हारी प्रार्थना नहीं स्वीकार की। तुमने धर्म का विचार न करके कामवश होकर मुझे शाप दिया है। मैं शाप के योग्य न था। मैं भी कहता हूँ कि तुम्हारी इच्छा पूरी न होगी—कोई ऋषिकुमार तुम्हारा पति न होगा। और तुमने जो मुझे शाप दिया उससे मेरी कुछ हानि नहीं। मैं वह विद्या दूसरों को
२० बता दूँगा; उनको तो विद्या सिद्ध होगी।

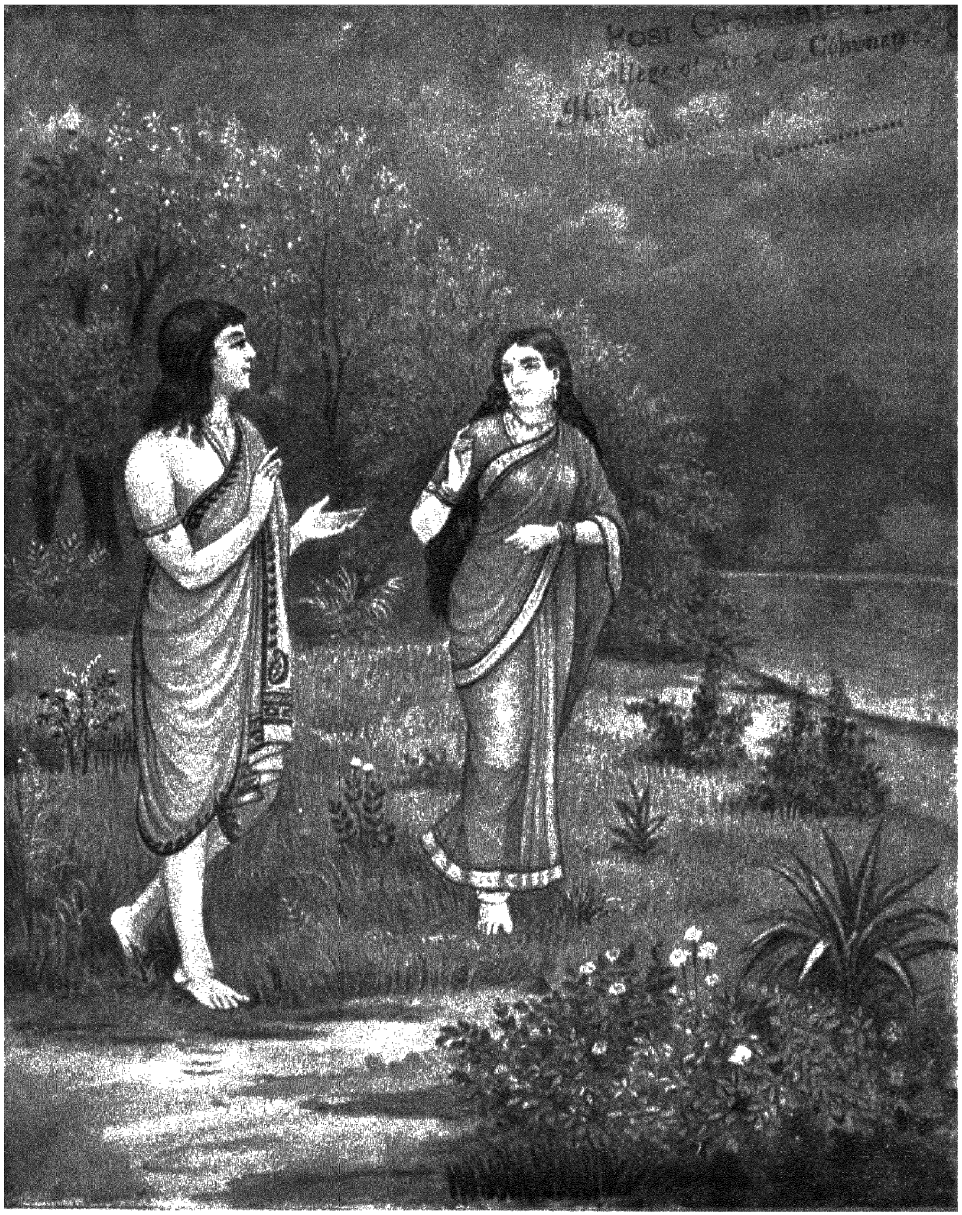
वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, देवयानी से यों कहकर कच वहाँ से स्वर्ग को चल दिये। कच को लौटकर आये देखकर इन्द्र आदि देवताओं ने उनका यथोचित सत्कार किया। फिर बृहस्पति की बड़ाई करके कच से कहा—तुमने हमारे हित के लिए यह अद्भुत काम किया
२४ है; इससे तुम्हारा यश अक्षय होगा और तुमको हमारे साथ यज्ञ में भाग मिलेगा।

---

## इकहत्तरवाँ अध्याय

### शर्मिष्ठा और देवयानी का झगड़ा

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, सब देवताओं ने कच से वह विद्या पढ़ ली। तब देवता लोग अपने को कृतार्थ समझकर बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने इन्द्र से आकर कहा—पुरन्दर, अब आप अपना पराक्रम शत्रुओं को दिखा सकते हैं; दैत्यों पर झटपट चढ़ाई कीजिए। इन्द्र ने देवताओं का कहना मानकर दैत्यों पर चढ़ाई कर दी। राह में जाते हुए इन्द्र ने देखा कि चैत्ररथ वन के समान मनोहर वन में कुछ कन्याएँ किनारे पर कपड़े रखकर जल के भीतर



कच और देवयानी ।—पृ० १५४

घुसी जल-विहार कर रही हैं। तब इन्द्र ने वायु का रूप रखकर उनके कपड़ों को उड़ाकर उलट-पुलट कर दिया। सबके कपड़े एक में गड़बड़ हो गये। सब कन्याएँ जब नहा-धोकर किनारे पर आईं तब जिसके हाथ में जो कपड़ा आया उसने उसी को उठाकर पहन लिया। वृषपर्वा दैत्य की कन्या शर्मिष्ठा ने धोखे से देवयानी के कपड़े उठाकर पहन लिये। इसी बात पर शर्मिष्ठा और देवयानी के बीच झगड़ा होने लगा।

देवयानी ने कहा—असुरकुमारी, तूने मेरे पिता के शिष्य की लड़की होकर मेरे कपड़े कैसे पहन लिये? तूने सदाचार की रक्षा नहीं की इससे तेरा भला न होगा। यह सुनकर शर्मिष्ठा ने कहा—देवयानी, [ मेरी बराबरी करते तुझे लज्जा नहीं आती! ] मेरे पिता चाहे बैठे रहें, चाहे लेटे, तेरे पिता बन्दीजनों की तरह विनय के साथ उनके गुण गाया करते हैं। तू माँगनेवाले, स्तुति करनेवाले, लेनेवाले की लड़की है; और मैं स्तुति सुननेवाले और देनेवाले की बेटी हूँ। भिक्षुकी! तू चाहे छाती पीटकर सन्ताप कर, चाहे धूल में लोट, चाहे सदा के लिए मन में द्रोह रख, चाहे कोप करके इसी समय बदला लेने की चेष्टा कर—सब व्यर्थ है। तू दरिद्र की कन्या है, कुढ़ने के सिवा और कुछ नहीं कर सकती। मैं राजा की बेटी हूँ—तुझ को कुछ नहीं समझती।



कपड़ों के लिए बिगड़कर और भी कड़ी बातें सुनाने पर शर्मिष्ठा को और भी क्रोध चढ़ आया। वह मार डालने के इरादे से देवयानी को एक सूखे हुए उथले कुएँ में ढकेलकर अपने घर को चल दी। उसने समझा कि देवयानी मर गई। उधर इसी समय नहुष के पुत्र राजा ययाति शिकार का पीछा करते हुए उसी जगह पहुँचे। उनका घोड़ा और साईस थक गया था। राजा को भी प्यास लगी थी। उन्होंने वहाँ पहुँचकर पानी देखने के लिए उस कुएँ में झाँका तो देखा कि उसके भीतर एक अग्निशिखा के समान तेजस्विनी कन्या खड़ी है। राजा ने अकचकाकर मधुर स्वर से समझाते हुए देवयानी से पूछा—सुन्दरी, तुम कौन

हो ? तुम्हारे लाल नाखून हैं, अलौकिक रूप है और तुम मणिकुण्डल पहने हुए हो; भला तुम किसलिए चिन्ता में डूबी हुई लम्बी साँसें ले रही हो ? लता-घास आदि से भरे इस अन्धे कुएँ में तुम कैसे गिर पड़ीं ? तुम किसकी कन्या हो ?

देवयानी ने कहा—अपनी मृतसञ्जीविनी विद्या के प्रभाव से युद्ध में मरे हुए दानवों को जिलानेवाले शुक्राचार्य की मैं बेटी हूँ। उनको मेरे यहाँ गिरने की ख़बर नहीं मिली। राजन्, मैं आपको कुलीन समझती हूँ। आप मेरा
२० यह दाहना हाथ पकड़कर ऊपर निकाल लीजिए। मैं आपको जानती हूँ; आप शान्तचित्त, पराक्रमी और यशस्वी हैं। आप हाथ पकड़कर इस कुएँ से मेरा उद्धार कीजिए।



राजन् ! देवयानी को ब्राह्मणकन्या जानकर, उसका दाहना हाथ पकड़कर, ययाति ने कुएँ से निकाल लिया। अब देवयानी को वहीं छोड़कर राजा अपने नगर को चले गये। ययाति के चले जाने पर सर्वाङ्गसुन्दरी देवयानी दुःखित होकर वहीं बैठी रही। इतने में उधर से घूर्णिका नाम की शुक्र की दासी, देवयानी को खोजने, निकली। देवयानी को देखकर उसने घर चलने के लिए कहा। देवयानी ने कहा—तू जल्द जाकर मेरे पिता से सब हाल कह दे। मैं इस तरह वृषपर्वा के नगर में पैर न रक्खूँगी।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, घूर्णिका वहाँ से लौटकर वृषपर्वा के यहाँ शुक्राचार्य के पास पहुँची। शुक्र से उसने सब हाल कहा और यह भी कहा कि शर्मिष्ठा ने देवयानी को मार डालने के इरादे से कुएँ में ढकेल दिया था। यह सुनकर घबराये हुए शुक्र देवयानी को ढूँढ़ने के लिए जल्दी से वन को दौड़े गये। वहाँ देवयानी को देखकर शुक्र ने गले से लगा लिया। वे कन्या के दुःख से दुःखित होकर उसे समझाते हुए कहने लगे—बेटी, सब लोग अपने गुण-दोष से ही सुख-दुःख भोगते हैं। तुमने कुछ ऐसा काम किया होगा
३० जिसका फल यह तुमको मिला।

देवयानी ने कहा—मुझे चाहे जिस दोष का फल मिला हो, किन्तु मुझसे वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा ने जो कहा है वह मेरे हृदय में काँटे के समान खटक रहा है। असुर-कन्या ने क्रोध से लाल आँखें करके मुझे स्तुति करनेवाले, मँगता और लेनेवाले की लड़की कहकर दुत-

कारा और अपने को देनेवाले, स्तुति सुननेवाले राजा की कन्या बताकर अहङ्कार दिखलाया। मैंने उसके इन तीक्ष्ण कठोर वाक्यों को सुनकर यही कहा था कि यदि मैं स्तुति करनेवाले भिक्षुक की लड़की हूँ तो अवश्य ही पैरों पड़कर तुझे मनाऊँगी।

शुक्र ने कहा—बेटी, तुम स्तुति करनेवाले—हाथ पसारनेवाले—की लड़की नहीं हो। तुम तो मेरी पुत्री हो। मैं किसी की स्तुति नहीं करता, सब मेरी ही स्तुति करते हैं। नहुष के पुत्र राजा ययाति और इन्द्र इस बात को जानते हैं और स्वयं वृषपर्वा से भी यह बात छिपी नहीं है। मेरा यह ईश्वर-सम्बन्धी ब्रह्मबल अचिन्त्य और अद्वितीय है। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर मुझे पृथ्वी और स्वर्ग के सब पदार्थों का स्वामी अर्थात् अधिकारी बनाया है। मैं ही प्रजा के मङ्गल के लिए पानी बरसाता हूँ। मैं ही वृष्टि से सब अन्नों और ओषधियों को पुष्ट करता हूँ।

शोक और विषाद से पीड़ित हो रही कन्या को शुक्राचार्य इस प्रकार के मधुर मनोहर वचनों से समझाने लगे। ४१

---

## बहत्तरवाँ अध्याय

शुक्र और देवयानी का संवाद

शुक्र ने कहा—देवयानी! जो कोई नित्य अपनी निन्दा को सुनकर सह लेता है, उसने मानो सबको जीत लिया। जो कोई बिगड़े हुए घोड़े के समान क्रोध के वेग को रोक लेता है वही सचमुच जितेन्द्रिय है। केवल घोड़े की बागडोर पकड़नेवाला सवार नहीं कहा जा सकता; घोड़े को क़ाबू में रख सकनेवाला ही सच्चा सवार है। देवयानी, जो कोई क्षमा के द्वारा क्रोध को शान्त कर लेता है उसने सचमुच सब कुछ जीत लिया। जो कोई, साँप की केंचुल की तरह, क्रोध को चित्त से हटा देता है वही पुरुष है। जो क्रोध को रोक सकता है, जो दूसरे की की हुई अपनी निन्दा सुनकर भी टाल जाता है, जो औरों से सताये जाने पर भी उसे कष्ट देना नहीं चाहता, वही पुरुषार्थ ( चतुर्वर्ग ) पाने का अधिकारी है। जो सौ वर्ष तक हर महीने यज्ञ करे और जो किसी पर कभी क्रोध न करे, उन दोनों में कभी क्रोध न करनेवाला ही श्रेष्ठ समझा जायगा। बलाबल को न जाननेवाले बालक-बालिका आपस में कहा-सुनी करते और लड़ते-झगड़ते रहते हैं। उनकी उस लड़ाई में पड़कर बड़ों को आपस में वैर न करना चाहिए।

देवयानी ने कहा—मैं बालिका होने पर भी धर्म के मर्म और अक्रोध तथा क्षमा के अन्तर को अच्छी तरह जानती हूँ। पिताजी! शिष्य होकर जो कोई शिष्य का ऐसा व्यवहार नहीं करता, उसे क्षमा करना ठीक नहीं।* इन आपके शिष्य असुरों का व्यवहार हमारे साथ

अच्छा नहीं देख पड़ता। इसी से मैं अब इनके यहाँ रहना नहीं चाहती। जो लोग चरित्र और कुलीनता का अनादर करें उन पापबुद्धियों के बीच भलाई की इच्छा रखनेवाले को कभी
१० न रहना चाहिए। जो लोग कुलीनता और चरित्र के गौरव को अच्छी तरह जानते हों उन्हीं के बीच में रहना चाहिए—वही निवास श्रेष्ठ है। आग की इच्छा रखनेवाला जैसे लकड़ी से आग बनाता है वैसे ही वृषपर्वा की कन्या के दारुण कठोर वचनों की याद से मेरा जी जल रहा है। दुर्दशा में पड़कर श्रीमान् शत्रु की सेवा करने से बढ़कर संसार में कोई कठिन काम नहीं
१३ है। पण्डितों का कहना है कि ऐसी ज़िन्दगी से मरना ही अच्छा है।

---

## तिहत्तरवाँ अध्याय

शुक्र और वृषपर्वा का संवाद। पिता के कहने से शर्मिष्ठा का देवयानी की दासी होना अङ्गीकार करना। देवयानी के साथ शुक्र का वृषपर्वा के नगर में जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, बेटी के दुःख को देखकर शुक्र को भी क्रोध हो आया। उन्होंने उसी समय वृषपर्वा के पास जाकर कहा—देखो दानवराज, यदि अधर्म करो तो वह पृथ्वी की तरह [ जैसे कि बीज बोने पर अंकुर निकल आते हैं ] तुरन्त नहीं फल दे देता—वह तो [ आरे की तरह ] धीरे-धीरे घूमकर [ किया जाकर ] अधर्म करनेवाले की जड़ को काटता है। अपना किया अधर्म तीन-तीन पीढ़ियों के बाद तक अवश्य अपना फल दिखाता है। बहुत करके देखा जाता है कि पिता के अधर्म का फल पुत्र को और दादा के किये अधर्म का फल पोते को भोगना पड़ता है। भारी भोजन जैसे नहीं पचता वैसे अधर्म भी फल दिखाये बिना नहीं रहता। तुम लोगों ने पुण्यात्मा, धर्म के जानकार, गुरु की सेवा में लगे और मेरे घर में ठहरे हुए ब्राह्मण कच को कई बार मार डाला। तुम्हारी बेटी ने भी मेरी कन्या को अपनी जान में मार ही डाला था। इस कारण अब मैं तुमको छोड़कर यहाँ से चला जाता हूँ—मेरा रहना नहीं



हो सकता। मैं समझता हूँ, तुम मुझे झूठा समझ रहे हो। यदि ऐसा न होता तो तुम दोष स्वीकार करके क्या मुझसे क्षमा माँगने की चेष्टा न करते!

वृषपर्वा ने कहा—भगवन्, मेरी समझ से न तो आपमें रत्ती भर अधर्म है और न झूठ ही। आप सत्यवादी और धर्मात्मा हैं। आप प्रसन्न हूजिए। गुरुवर, जो आप हम लोगों को छोड़कर चले जायँगे तो मैं आपके जाने से पहले ही अपने बन्धु-बान्धवों के साथ समुद्र में या पाताल में चला जाऊँगा। [यदि आप मुझे छोड़कर देवताओं के पास चले जायँगे तो हम लोगों के लिए इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।]

शुक्राचार्य ने कहा—तुम लोग समुद्र में चले जाओ, या चाहे जहाँ भाग जाओ; मैं यहाँ नहीं रहूँगा। देवयानी मुझे प्राणों से भी प्यारी है; उसके दुःख को मैं देख नहीं सकता। मेरा जीवन उसी के अधीन है। तुम देवयानी को प्रसन्न कर लो। बृहस्पति जैसे इन्द्र की भलाई चाहते हैं वैसे ही मैं तो तुम्हारे अनुकूल और तुम्हारा हितचिन्तक हूँ। १०

वृषपर्वा ने कहा—गुरुजी! असुरों के पास जो कुछ धन है, पृथ्वी है, हाथी-घोड़े-गाय आदि हैं उनके और मेरे भी आप स्वामी हैं। यह सुनकर शुक्राचार्य ने कहा—दैत्यराज, जो यह सच है तो तुम पहले देवयानी को, उसकी इच्छा पूरी करके, प्रसन्न करो।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, वृषपर्वा ने कहा कि देवयानी की प्रसन्नता जिसमें हो वह करने के लिए मैं तैयार हूँ। तब शुक्राचार्य ने देवयानी के पास जाकर सब हाल कहा। देवयानी ने कहा—जो आप सचमुच राजा वृषपर्वा की सारी सम्पत्ति के मालिक हैं तो इस बात को वह स्वयं मेरे आगे आकर अपने मुँह से कहे। [शुक्र ने जाकर वृषपर्वा से कहा। तब] अपने बन्धु-बान्धवों-सहित वृषपर्वा ने आप देवयानी के पास आकर कहा कि देवयानी, प्रसन्न होओ। जो तुम्हारी इच्छा हो वह मुझसे माँगो, दुर्लभ होने पर भी मैं वही तुमको दूँगा। देवयानी ने कहा—अच्छा, तो मैं यह चाहती हूँ कि मेरे पिता जहाँ मेरा ब्याह करें वहाँ राजकुमारी शर्मिष्ठा हज़ार कन्याओं के साथ दासी होकर मेरे साथ रहे।

यह सुनकर वृषपर्वा ने शर्मिष्ठा की धाय से कहा—उठो, जाओ, शर्मिष्ठा को जल्द यहाँ ले आओ। जो देवयानी चाहती हैं उसे शर्मिष्ठा स्वीकार करे। राजा की आज्ञा से धाय ने शर्मिष्ठा से जाकर कहा—राजकुमारी, चलो, जाति (परिवार)-वालों की सहायता करो। देवयानी के कहने से बिगड़कर शुक्राचार्य अपने शिष्य दैत्यों को छोड़े चले जाते हैं। इस समय चलकर तुमको देवयानी की इच्छा पूरी करके उसे प्रसन्न करना होगा। १९

शर्मिष्ठा ने कहा—जो देवयानी का प्रिय करने के लिए [पिता ने] मुझको बुलाया है तो मैं अभी चलकर देवयानी की इच्छा पूरी करूँगी। मेरे दोष से देवयानी और गुरु शुक्राचार्य दैत्यों को छोड़कर न जायँ। वैशम्पायन कहते हैं—हज़ार कन्याओं के साथ पालकी पर

बैठकर शर्मिष्ठा रनिवास से देवयानी के पास गई। वहाँ जाकर उसने देवयानी से कहा—देवयानी, जहाँ आचार्य तुम्हारा ब्याह करेंगे वहाँ हज़ार कन्याओं के साथ तुम्हारी दासी होकर तुम्हारे साथ चलने के लिए मैं तैयार हूँ। देवयानी ने कहा—असुरनन्दिनी, मैं स्तुति करनेवाले भिखमङ्गे की बेटी हूँ। तुम स्तुति सुननेवाले राजा की कन्या होकर भला किस तरह मेरी दासी बनोगी? शर्मिष्ठा ने कहा—चाहे जिस तरह हो, स्वजनों को सुखी करने के लिए जहाँ तुम्हारे पिता तुम्हारा ब्याह करेंगे वहाँ मैं तुम्हारे साथ दासी होकर जाऊँगी।



५. वैशम्पायन कहते हैं—इस प्रकार शर्मिष्ठा ने जब दासी-भाव स्वीकार कर लिया तब देवयानी ने अपने पिता से कहा—पिताजी, आपका विज्ञान और विद्या का बल अमोघ है। अब मैं प्रसन्न हुई। आइए, बस्ती के भीतर चलिए। तब शुक्राचार्य कन्या की प्रसन्नता से
२७ प्रसन्न होकर नगर में आये। सब दानवों ने आचार्य का बड़ा सत्कार किया।

---

## चौहत्तरवाँ अध्याय

शिकार के लिए गये हुए ययाति से फिर देवयानी की भेंट। शुक्र की आज्ञा से दोनों का विवाह। ययाति का अपने नगर को जाना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, इसके उपरान्त बहुत समय बीत जाने पर एक दिन देवयानी फिर क्रीड़ा करने के लिए उसी वन में गई। अपनी हज़ार दासी कन्याओं के साथ शर्मिष्ठा भी वहाँ गई। सब कन्याएँ अपनी-अपनी रुचि के अनुसार मदिरा पीने, अनेक प्रकार के भोजन करने और फलों को तोड़कर उनका स्वाद लेने लगीं। महाराज, दैवयोग से राजा ययाति भी फिर शिकार करते हुए उसी स्थान पर पहुँचे। उस दिन भी राजा थके हुए और प्यास से व्याकुल हो रहे थे।

ययाति ने वहाँ उन मदिरा पी रही—क्रीड़ा कर रही—हँस-बोल रही कन्याओं के बीच में दिव्य गहने पहने शर्मिष्ठा को और एक सुन्दर आसन पर बैठी हुई अनुपम सुन्दरी देवयानी को

देखा। शर्मिष्ठा उसकी सेवा कर रही थी। तब ययाति ने शर्मिष्ठा और देवयानी से पूछा—हे सुन्दरियो, दो हज़ार कन्याएँ तुम्हारी सेवा में लगी हुई हैं; तुम दोनों कौन हो? किस वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है? तुम्हारा नाम क्या है? इस पर देवयानी ने कहा—महाराज, सुनिए। मैं असुरों के गुरु शुक्राचार्य की बेटी देवयानी हूँ। और यह मेरी सखी और दासी वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा है। जहाँ मैं जाती हूँ वहाँ यह मेरे साथ दासी की तरह जाती है। १०

ययाति ने कहा—असुरराज वृषपर्वा की यह परम सुन्दरी कन्या तुम्हारी सखी होकर भी दासी कैसे हुई? मुझसे कहो। यह जानने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। देवयानी ने कहा—राजन्, सब कुछ भाग्य के अनुसार दैव की इच्छा से होता है। यह सोचकर आपको दैव के कामों में अचरज न करना चाहिए। आकार, पहनावे और संस्कृत ( सुधरी हुई ) वाणी बोलने से आप मुझे कोई राजा जान पड़ते हैं। कृपा करके कहिए, आपका नाम क्या है? आप किसके पुत्र हैं? आप यहाँ पर कहाँ से आये हैं? ययाति ने कहा—ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके मैंने सब वेदों का स्वाध्याय किया है। मैं राजा का पुत्र और स्वयं महाराज हूँ। मेरा नाम ययाति है।

देवयानी ने पूछा—राजन्, आप यहाँ किसलिए आये हैं? आप मछलियों की तलाश में आये हैं या कमल के फूल लेने? या मृग के शिकार की खोज में आपका यहाँ आना हुआ है? ययाति ने कहा—हे कल्याणरूपिणी, मैं मृग का शिकार करने वन में आया था। जल की खोज में इधर निकल आया हूँ। मैं बहुत थक गया हूँ। अब मुझे जाने की आज्ञा दो। देवयानी ने कहा—राजन्, मैं इन दो हज़ार कन्याओं के साथ और शर्मिष्ठा दासी सहित आपके अधीन हूँ। मेरी प्रार्थना स्वीकार करके आप मेरे सखा और स्वामी हूजिए। ययाति ने कहा—हे शुक्राचार्य की कन्या, मैं तुम्हारे साथ ब्याह करने के योग्य नहीं। तुम्हारे पिता क्षत्रिय राजाओं को अपनी कन्या नहीं दे सकते। देवयानी ने कहा—राजन्, क्षत्रियों और ब्राह्मणों का परस्पर मेल हो चुका है। क्षत्रियों का वंश परशुराम ने जब नष्ट कर दिया था तब क्षत्रियों की स्त्रियों ने ब्राह्मणों से नियोग करके क्षत्रिय वंश चलाया था; उधर क्षत्रियकन्या लोपामुद्रा आदि में ब्राह्मणों की उत्पत्ति हुई है। आप प्रतापी महाराज नहुष के पुत्र किसी ऋषि या ऋषिपुत्र से कम नहीं हैं। मेरे कहने से आप मुझे स्वीकार करें। १९

ययाति ने कहा—सुन्दरी, यह सच है कि चारों वर्ण एक ब्रह्मा के ही शरीर से उत्पन्न हुए हैं किन्तु सबके धर्म और कर्म अलग-अलग हैं। ब्राह्मण तो चारों वर्णों में श्रेष्ठ हैं। देवयानी ने कहा—महाराज, पहले किसी ने मेरा हाथ नहीं पकड़ा था। उस दिन कुएँ से ऊपर निकालते समय पहले-पहल आपने ही मेरा हाथ पकड़ा था। इसी से मैं आपको अपना

पति बनाती हूँ। यही ठीक धर्म है। हाथ पकड़ते ही, धर्म के अनुसार, आप मेरे पति हो चुके। राजन्, मैं साधारण स्त्री नहीं हूँ। ऋषिपुत्र या ऋषि के तुल्य आप जब एक बार मेरा हाथ पकड़ चुके तब फिर अब और कौन मेरा पाणि-ग्रहण कर सकता है? ययाति ने कहा—जो लोग जानकार हैं वे क्रोधित विषैले साँप और चारों ओर फैल रही जलती हुई आग से भी बढ़कर ब्राह्मण के क्रोध को भयङ्कर समझते हैं। देवयानी ने कहा—पुरुषश्रेष्ठ, आपने क्रोधित विषैले नाग और जलती हुई आग से भी बढ़कर ब्राह्मण को भयानक कैसे कहा? ययाति ने कहा—देखो, साँप एक ही के प्राण लेता है, शस्त्र से एक ही की हत्या होती है, किन्तु कोपित ब्राह्मण नगरों-सहित बड़े-बड़े राज्यों को नष्ट कर देता है। इसी से मैं ब्राह्मण को बड़ा दुर्धर्ष समझता हूँ। तुम्हारे पिता के दिये बिना मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकता।

देवयानी ने कहा—अच्छी बात है, पिता के देने पर आप मुझे ग्रहण करना। बिना माँगे पिता जो आपको मुझे दें तो ग्रहण करने में आपको आगा-पीछा न करना चाहिए। वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, देवयानी ने उसी समय धाय के मुँह से यह समाचार पिता के पास कहला भेजा। उसने तुरन्त जाकर सब वृत्तान्त शुक्राचार्य से कहा। महर्षि शुक्र उसी समय देवयानी के पास आये। शुक्र को देखते ही प्रणाम करके हाथ जोड़कर ययाति उनके आगे खड़े हो गये। तब देवयानी ने शुक्र से कहा—पिताजी, ये नहुष के पुत्र महाराज ययाति हैं। इन्हीं ने विपत्ति के समय हाथ पकड़कर मुझे कुएँ से निकाला था। ये मेरा पाणिग्रहण कर चुके हैं, इस कारण मैं इनके सिवा और किसी को पति बनाना नहीं चाहती। मैं आपको प्रणाम करती हूँ, आप मुझे इन्हीं
३० को अर्पण कर दीजिए।



शुक्र ने ययाति से कहा—[ कच के शाप से देवयानी को ब्राह्मण वर नहीं मिल सकता। ] हे वीर, मेरी कन्या ने अपनी इच्छा से तुमको अपना पति पसन्द किया है इसलिए मैं तुम्हें यह कन्या देता हूँ। ययाति ने कहा—भगवन्, आपकी आज्ञा स्वीकार करके मैं आपसे यह वर माँगता हूँ कि यह विवाह करने से वर्ण-सङ्करता का अधर्म

मुझे न हो। शुक्राचार्य ने कहा—महाराज, मैं वर देकर तुमको अधर्म से छुड़ाये देता हूँ। तुम उदास न होओ; ब्राह्मणकन्या के साथ विवाह करने से होनेवाले तुम्हारे पाप को मैं मिटा दूँगा तुम धर्म-पूर्वक देवयानी के साथ विवाह करो। मैं आशीर्वाद देता हूँ, इसके साथ तुमको परम प्रसन्नता प्राप्त हो। राजन्, इस दैत्य-कन्या कुमारी शर्मिष्ठा का भी निरादर न करना; किन्तु कभी इसको अपने साथ पलँग पर न सुलाना।

ययाति ने विधिपूर्वक देवयानी के साथ ब्याह किया। वे शुक्राचार्य से बहुत-सा धन, सुन्दरी देवयानी और दो हज़ार कन्याओं-सहित शर्मिष्ठा दासी पाकर अपने नगर को चले। चलते समय शुक्राचार्य और सब दैत्यों ने राजा का यथोचित सत्कार किया। ३८

---

## पचहत्तरवाँ अध्याय

देवयानी और शर्मिष्ठा के ययाति से सन्तान होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इन्द्रपुरी के समान श्रीसम्पन्न मनोहर अपने नगर में पहुँचकर ययाति ने देवयानी को रनिवास में रक्खा। देवयानी की आज्ञा के अनुसार अशोक वन के पास एक घर बनवाकर उसी मे वृषपर्वा की बेटी शर्मिष्ठा के रहने का प्रबन्ध किया गया। शर्मिष्ठा के पास हज़ार दासियाँ भी रहती थीं। राजा ने शर्मिष्ठा और उसकी दासियों के खाने-पीने-पहनने का उचित प्रबन्ध कर दिया। अब निश्चिन्त ययाति राजा देवताओं की तरह अनेक वर्षों तक देवयानी के साथ सुख भोगते रहे। एक समय ऋतु-स्नान के उपरान्त देवयानी के गर्भ रह गया और ठीक समय पर एक मनोहर बालक उत्पन्न हुआ।

हज़ार वर्ष बीतने पर युवती शर्मिष्ठा ने भी ऋतुस्नान किया। ऋतुस्नान के उपरान्त उसने सोचा कि मेरा विवाह अभी तक नहीं हुआ और ऋतुकाल आ गया। अब मुझे क्या करना चाहिए? क्या करने से मुझे सुख मिलेगा? देवयानी के पुत्र भी हो चुका है। मेरी यह नई जवानी पति के बिना वृथा है। देवयानी ने जिस तरह अपने आप राजा को अपना पति बनाया है उसी तरह क्या मैं भी राजा से प्रार्थना करूँ? यही करूँगी; राजा ययाति ही मुझे पुत्र-रूप फल दे सकते हैं। इस समय एकान्त में यदि महात्मा राजा के दर्शन मिलें तो सब काम बन जाय।

शर्मिष्ठा जिस समय यों सोच रही थी उसी समय अपनी इच्छा से टहलते हुए राजा अशोक वन में, जहाँ शर्मिष्ठा थी वहाँ, पहुँच गये। एकान्त में अपने पास आकर खड़े राजा १०
को देखकर शर्मिष्ठा उनके पास गई और हाथ जोड़कर कहने लगी—महाराज! चन्द्र,

इन्द्र, विष्णु, यम, वरुण आदि देवताओं के और आपके रनिवास की स्त्रियों को कोई नहीं देख सकता। राजन्, आप जानते हैं कि मैं कुलीन वंश की सच्चरित्रा सुन्दरी कन्या हूँ। मैं आपसे ऋतुकाल में गर्भाधान की प्रार्थना करती हूँ—ऐसा कीजिए कि मेरा ऋतुस्नान निष्फल न हो।



ययाति ने कहा—मैं जानता हूँ कि तुम परमसुन्दरी, कुलीन वंश की कन्या और सुशीला हो। तुममें मुझको तनिक भी दोष नहीं देख पड़ता। परन्तु शुक्राचार्य ने मुझसे कह दिया है कि तुम शर्मिष्ठा को कभी अपनी शय्या पर न बुलाना। इसी से लाचार हूँ। क्या करूँ? यह सुनकर शर्मिष्ठा ने कहा—महाराज, पण्डितों का कहना है कि हँसी-दिल्लगी में, ब्याह-काज में, भोग्य स्त्री के बारे में, प्राणों पर सङ्कट आ पड़ने पर और सर्वस्व छिन जाने के अवसर पर झूठ बोलने से पाप नहीं होता। झूठी गवाही देना और अन्यथा-विचार करना ही महापातक है। ययाति ने कहा—असुरनन्दिनी, राजा को ही सब लोग अपना आदर्श मानते हैं। मिथ्या बोलने से [ या स्वीकार की हुई बात को अन्यथा करने से ] राजा का नाश हो जाता है। इसी कारण अर्थकष्ट या धर्म-सङ्कट के अवसर पर भी मैं मिथ्या आचार को अङ्गीकार न करूँगा।

शर्मिष्ठा ने कहा—राजन्, अपना पति और सखी का पति, दोनों बराबर माने जाते हैं। इस प्रकार एक का विवाह होने से उसी के साथ दूसरी का भी विवाह होना शास्त्र-सिद्ध है। जब मेरी सखी ने आपको पति बना लिया तब आप मेरे भी पति हो चुके। ययाति ने सोचकर कहा—शर्मिष्ठा, प्रार्थी की इच्छा पूरी करने का मैंने व्रत ले रक्खा है। कहो, मुझसे क्या करने के लिए कहती हो? शर्मिष्ठा ने कहा—मैं यही माँगती हूँ कि अधर्म से बचाकर मेरे धर्म की रक्षा कीजिए। आपसे पुत्र पाकर मैं धर्म का पालन कर सकूँगी। देखिए, स्त्री, पुत्र और दास, इनका अपनी सम्पत्ति पर कुछ अधिकार नहीं होता। वह सम्पत्ति उनके स्वामी की ही होती है। मैं देवयानी की दासी हूँ और देवयानी हैं आपके अधिकार में; अतएव देवयानी और मैं दोनों ही आपके भोग की सामग्री हैं। इसलिए आप मुझे अङ्गीकार कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा ने शर्मिष्ठा को अङ्गीकार करके उसके धर्म की रक्षा की। इस प्रकार शर्मिष्ठा को प्रसन्न और सनाथ करके राजा चले गये। शर्मिष्ठा के गर्भ रह गया और ठीक समय पर एक सुन्दर देवकुमार सा बालक उत्पन्न हुआ। २७

---

## छियत्तरवाँ अध्याय

देवयानी का कोप। शुक्राचार्य का शाप

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शर्मिष्ठा के पुत्र होने की ख़बर पाकर देवयानी को बड़ा दुःख हुआ। वह अपने मन में सोचने लगी कि शर्मिष्ठा के किसका पुत्र हुआ है। अन्त को शर्मिष्ठा के पास जाकर उसने पूछा—सखी, काम-वश होकर तुमने यह कैसा पाप-कर्म कर डाला? शर्मिष्ठा ने कहा—सखी, एक वेद के जानकार धर्मात्मा ऋषि मेरे पास आये थे। वे मुझे वर देने के लिए तैयार हुए तो मैंने अपने धर्म की रक्षा के लिए उनसे पुत्र पाने की ही इच्छा प्रकट की। मैंने कामवश होकर अधर्म नहीं किया। मैं सच कहती हूँ, उन्हीं ऋषि के वीर्य से यह बालक उत्पन्न हुआ है।



देवयानी ने प्रसन्न होकर कहा—सखी, यदि तुम्हारी बात सच है तो तुमने अच्छा ही किया। अच्छा, यह तो बताओ, उन ऋषि का नाम और गोत्र क्या है? शर्मिष्ठा ने कहा—तप के तेज से सूर्य के समान प्रकाशमान उन ऋषि से यह तो मैं कुछ पूछ ही नहीं सकी। देवयानी ने कहा—शर्मिष्ठा, यदि ऐसी बात है तो मुझे तुम पर तनिक भी क्रोध नहीं। तुमने किसी श्रेष्ठ महर्षि को अपना पति बनाया सो अच्छा ही किया।

शर्मिष्ठा की बात को सच जानकर देवयानी मुसकुराकर अपने घर चली गई। महाराज, ययाति ने ठीक समय पर देवयानी के गर्भ से यदु और तुर्वसु नाम के दो बालक और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्यु, अनु और पूरु नाम के तीन बालक उत्पन्न किये। कुछ समय के १०

बाद एक दिन देवयानी ययाति के साथ अशोक वन में सैर करने गई। देवयानी वहाँ देव-रूपी तीन कुमारों को खेलते-कूदते देखकर बहुत ही चकराई। उसने राजा से पूछा—महाराज, देवकुमार ऐसे मनोहर ये तीन कुमार किसके हैं? रूप और तेज में तो ये आप ही के समान मुझे देख पड़ते हैं। राजा से पूछकर उसने उन कुमारों से भी पूछा कि तुम्हारे पिता का नाम क्या है? किस वंश में तुम पैदा हुए हो? सच-सच बताओ, मैं जानना चाहती हूँ। तब उन कुमारों ने पास ही खड़े हुए राजा की ओर उँगली उठाकर कहा—ये हमारे पिता हैं और शर्मिष्ठा हमारी माता हैं।



अब वे बालक राजा के पास आ गये। किन्तु देवयानी के डर से राजा न उनको गोद में ले सके और न उनका प्यार ही कर सके। [ उलटे राजा ने उनको झिड़क दिया। ] तब वे बालक रोते हुए शर्मिष्ठा के पास दौड़े गये। [ शर्मिष्ठा भी थोड़ी ही दूर पर सिर नीचा किये बैठी थी। ] राजा देवयानी और शर्मिष्ठा दोनों से बहुत ही लज्जित हुए। किसी से कुछ न कह सके। उन बालकों का राजा पर ऐसा स्नेह देखकर देवयानी को निश्चय हो गया कि ये राजा के ही पुत्र हैं।

उसने शर्मिष्ठा से कहा—तू बड़ी दुष्टा है। मेरी दासी होकर मेरा अप्रिय करने का साहस तुझको कैसे हुआ? फिर आसुरी काम करते तुझे डर नहीं लगा? शर्मिष्ठा ने कहा—देवयानी, मैंने जो तुमसे कहा था कि ऋषि से मेरे पुत्र हुआ है सो कुछ झूठ नहीं था। मैंने न्याय और धर्म के अनुसार यह काम किया है। इसमें तुमसे डरने का कोई कारण नहीं। जब तुमने राजा को अपना पति बनाया तभी मैंने भी उन्हें अपना पति माना था। सखी, धर्म के जाननेवालों का कहना है कि सखी का पति धर्म से पति के तुल्य होता है। तुम ब्राह्मणकन्या होने के कारण मुझसे जाति में श्रेष्ठ और पूजा तथा मान पाने की अधिकारिणी हो। क्या तुम यह नहीं जानती कि राजर्षि ययाति तुमसे भी बढ़कर मेरे पूजनीय और माननीय हैं?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शर्मिष्ठा के वचन सुनकर देवयानी ने कोप करके राजा से कहा—मैं अब तुम्हारे यहाँ नहीं रहूँगी। तुमने मेरा अनिष्ट और अप्रिय किया है। अब

सुन्दरी देवयानी रोती हुई शुक्राचार्य के पास चली। राजा भी घबराकर विनय के वचनों से देवयानी को शान्त करने का उपाय करते हुए उसके पीछे-पीछे चले। देवयानी की आँखें क्रोध के मारे लाल हो रही थीं। वह किसी तरह शान्त नहीं हुई और तुरन्त अपने पिता के पास जा पहुँची। पिता को प्रणाम करके वह जैसे खड़ी हुई वैसे ही ययाति भी वहाँ पहुँचे। राजा भी प्रणाम करके शुक्राचार्य के सामने खड़े हो गये। तब देवयानी ने कहा—पिताजी, अधर्म से धर्म हार गया। नीच की बढ़ती और श्रेष्ठ की घटती हुई। शर्मिष्ठा राजा से तीन पुत्र पाकर मुझसे बढ़ गई। मेरे केवल दो ही पुत्र हुए हैं। ये राजा धर्मात्मा माने जाते हैं, परन्तु इन्होंने धर्म की मर्यादा न मानकर मेरी दासी को मुझसे बढ़कर सौभाग्यवती बनाया है। ३०



यह सुनकर क्रोधित शुक्राचार्य ने ययाति से कहा—महाराज, धर्म के जानकार होकर भी तुमने अधर्म किया ; इस कारण मेरे शाप से तुम शीघ्र ही बूढ़े हो जाओ। तब ययाति ने घबराकर कहा—भगवन्, दानवराज की कन्या शर्मिष्ठा ने ऋतुस्नान करके धर्मरक्षा के लिए मुझसे प्रार्थना की थी। मैंने कामवश होकर नहीं, केवल धर्म और कर्त्तव्य का पालन करने के लिए उसकी प्रार्थना स्वीकार की है। ब्रह्मन्, शास्त्र के जाननेवाले धार्मिक लोगों का कहना है कि ऋतुस्नान करके स्त्री यदि रति की प्रार्थना करे तो उसे पूरा करना ही पुरुष का धर्म है। जो कोई प्रार्थना करनेवाली स्त्री के ऋतुकाल को सफल नहीं करता उसे गर्भहत्या का पाप होता है। सङ्गम-योग्य स्त्री के कामवश होकर एकान्त में रति की प्रार्थना करने पर जो कोई उसकी इच्छा पूरी नहीं करता उसे घोर अधर्म होता है। भगवन्, इन्हीं कारणों से, अधर्म से डरकर, मैंने शर्मिष्ठा की इच्छा पूरी की है।

शुक्र ने कुछ शान्त होकर कहा—राजन्, तुम मेरे अधीन हो, इस कारण तुम्हें इस बारे में मुझसे आज्ञा ले लेनी थी। अपनी प्रतिज्ञा के विरुद्ध तुमने यह काम चुराकर किया है।

क्रोधित शुक्र के शाप देते ही राजा ययाति बूढ़े हो गये। तब उन्होंने शुक्र से कहा—आचार्य, देवयानी के साथ जवानी के सुख भोग करके अभी तक मैं तृप्त नहीं हुआ। इस कारण प्रसन्न होकर ऐसा उपाय कर दीजिए कि मैं अभी बुड्ढा न होऊँ। शुक्र ने कहा—

राजन्, मेरा कहना झूठ नहीं हो सकता; बूढ़े तो तुम हो ही गये। हाँ, मैं इतना किये देता हूँ कि तुम चाहो तो अपना बुढ़ापा किसी और को देकर उसकी जवानी आप ले सकते हो। ययाति ने कहा—अच्छी बात है, मैं अपने पुत्रों से ऐसा करने के लिए कहूँगा। मैं चाहता हूँ कि जो मेरा पुत्र मेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दे वही मेरे राज्य का अधिकारी हो। उसे ही पुण्य और यश मिले।

शुक्र ने कहा—राजन्, मुझे याद करके तुम दूसरे के शरीर में अपना बुढ़ापा पहुँचा सकोगे और अपने शरीर में दूसरे की जवानी ले सकोगे। ऐसा करने से तुमको कुछ पाप न होगा। जो पुत्र तुम्हारा बुढ़ापा लेना स्वीकार करेगा वही राजा होगा। उसका वंश बढ़ेगा।
४२ उसे ही कीर्त्ति मिलेगी। वही चिरायु होगा।

---

## सतहत्तरवाँ अध्याय

ययाति का पूरु को वरदान और अन्य पुत्रों को शाप देना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, बुढ़ापे से घिरे ययाति ने अपने घर आकर सबसे बड़े और प्यारे लड़के यदु से कहा—बेटा, शुक्र के शाप से मैं बे-वक्त बूढ़ा हो गया हूँ; बाल पक गये हैं; झुर्रियाँ पड़ गई हैं। मगर जवानी के सुख भोगकर अभी मैं तृप्त नहीं हुआ हूँ। बेटा यदु, मेरे पाप के फल बुढ़ापे को लेकर तुम अपनी जवानी मुझे दे दो। मैं हज़ार वर्ष तक जवानी से सुख भोग करके तुमसे अपना बुढ़ापा ले लूँगा।

यदु ने कहा—महाराज, बुढ़ापे में अनेक दोष हैं। एक तो खाया-पिया नहीं जाता। खाने-पीने पर भी वह पचता नहीं, जिससे अनेक रोग सताते हैं। इस कारण मैं आपका बुढ़ापा नहीं लेना चाहता। बुढ़ापे में मनुष्य के बाल पक जाते हैं, आनन्द दूर भाग जाता है, झुर्रियाँ सब अङ्गों को सुस्त कर देती हैं; शरीर कमज़ोर, दुबला और कुरूप हो जाता है। कुछ काम करने की शक्ति नहीं रह जाती, इष्ट-मित्रों और साथियों का साथ भी छूट जाता है। इस कारण ऐसा अनिष्ट करनेवाले बुढ़ापे को मैं नहीं लेना चाहता। आपके और भी मुझसे प्यारे कई पुत्र हैं। उनमें किसी से बुढ़ापा लेकर जवानी देने के लिए कहिए। ययाति ने कहा—यदु, मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मुझे अपनी अवस्था नहीं देते इससे तुम्हारे वंश
९ के लोग राजगद्दी के अधिकारी न होंगे।

इसके बाद राजा ने तुर्वसु से कहा—बेटा तुर्वसु, तुम मेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी दे दो। मैं तुम्हारी अवस्था से हज़ार वर्ष तक सुख भोग करके फिर अपना बुढ़ापा तुमसे ले

लूँगा। तुर्वसु ने कहा—पिताजी, मैं बुढ़ापा लेना नहीं चाहता। बुढ़ापा आकर काम-भोग की शक्ति, बल, रूप, बुद्धि और प्राणों का नाश कर देता है। ययाति ने क्रोध करके तुर्वसु से कहा—मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी तुम मुझे अपनी अवस्था नहीं देते इससे तुम्हारा वंश नहीं चलेगा और तुम अत्यन्त सङ्कीर्ण धर्म आचारवाले, नीच जाति होकर उच्च जाति की कन्या में सन्तान उत्पन्न करनेवाले, मांसभक्षी, चाण्डाल, गुरु-स्त्री-गामी, पशु-पक्षियों के समान आचरण-वाले, पापी, म्लेच्छ लोगों के राजा होओगे।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इस प्रकार तुर्वसु को शाप देकर शर्मिष्ठा से उत्पन्न पुत्र द्रुह्यु से ययाति ने कहा कि पुत्र द्रुह्यु, तुम रङ्ग-रूप मिटानेवाला मेरा बुढ़ापा लेकर अपनी जवानी मुझको दे दो। हज़ार वर्ष तक सुख भोग करके अपना बुढ़ापा मैं तुमसे ले लूँगा। द्रुह्यु ने कहा—पिता, बूढ़ा मनुष्य हाथी, घोड़े, रथ और स्त्री आदि भोग की सामग्रियों को सुख नहीं भोग सकता। उसका स्वर काँपने लगता है। ऐसे बुढ़ापे को मैं नहीं लेना चाहता। ययाति ने द्रुह्यु को भी शाप दिया कि मेरे हृदय से उत्पन्न होकर तुम मुझे अपनी अवस्था नहीं देते, इससे तुम्हारी कोई इच्छा कभी पूरी न होगी। और जिस देश के मार्गों में घोड़े, रथ, २०
हाथी, पालकी, ख़च्चर, बकरे, बैल आदि की कोई सवारी नहीं चल सकती; लोग केवल डोंगियों पर ही घूमते हैं वहाँ रहकर तुम बिना राज्य के नाम-मात्र के राजा कहलाओगे। वहीं तुम्हारे वंश के लोग भी भोज नाम से रहेंगे।

द्रुह्यु को शाप देकर राजा ययाति चौथे पुत्र अनु के पास गये और कहा—बेटा अनु, तुम मेरा बुढ़ापा ले लो। मैं हज़ार वर्ष तक तुम्हारी जवानी से विषय-भोग करना चाहता हूँ। अनु ने कहा—पिता, बूढ़ा मनुष्य बच्चे की तरह भूख नहीं सह सकता, सदा अपवित्र ही बना रहता है और ठीक समय पर अग्निहोत्र आदि धर्म के कर्म भी नहीं कर सकता। इस कारण मैं आपका बुढ़ापा न लूँगा। ययाति ने कुपित होकर कहा—तुम मेरे हृदय से उत्पन्न होकर भी मेरा बुढ़ापा नहीं लेना चाहते, इससे बुढ़ापा न आने पर भी बुढ़ापे के सब दोष तुम्हारे शरीर में पैदा हो जायँगे और जवान होने पर तुम्हारी सन्तान भी जीवित न रहेगी। श्रुति-स्मृति में जिनका वर्णन है उन अग्निहोत्र आदि कर्मों से विमुख होकर तुम अनेक कष्ट सहोगे।

सबके पीछे ययाति ने छोटे पुत्र पूरु के पास जाकर कहा—बेटा पूरु, तुम मुझे बहुत प्यारे हो। शुक्र के शाप से मैं बूढ़ा हो गया हूँ। शरीर में झुर्रियाँ पड़ गई हैं और बाल पकने से सुन्दरता जाती रही है। तुम मेरी यह अवस्था ले लो और अपनी जवानी दे दो। मुझे अभी विषय-भोग से तृप्ति नहीं हुई। एक हज़ार वर्ष तक भोग करके मैं फिर तुम्हारी अवस्था तुमको लौटा दूँगा। इससे तुम सब भाइयों में श्रेष्ठ समझे जाओगे। ३०

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पिता के वचन सुनकर पूरु ने कहा—पिताजी, आपकी जो आज्ञा है उसे मैं स्वीकार करता हूँ। मैं आपका बुढ़ापा लेने के लिए तैयार हूँ। आप मेरी जवानी लेकर जी भरकर विषयभोग कर लीजिए। ययाति ने कहा—बेटा पूरु, मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ। तुमको आशीर्वाद देता हूँ कि तुम्हारे मनोरथ पूरे होंगे और तुम्हारा वंश पृथ्वी पर फैलेगा। तुम्हारे राज्य में प्रजा फूले-फलेगी।

अब शुक्राचार्य का स्मरण करके राजा ने अपना बुढ़ापा पूरु को दे दिया
३४ और उसकी जवानी आप ले ली।

---

## अठहत्तरवाँ अध्याय

ययाति को वैराग्य। पूरु का राज्याभिषेक। ययाति का वन को जाना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, पूरु की जवानी लेकर राजा ययाति प्रसन्नता-पूर्वक फिर इच्छा के अनुसार विषयभोग करने में लग गये। परन्तु कर्त्तव्य-पालन में कभी कमी नहीं होने पाई। धर्म पर ध्यान रखकर राजर्षि ययाति कामभोग करने लगे। महायशस्वी राजा ने देवताओं को यज्ञों से, पितरों को श्राद्ध से और दीन-दुखियों को कृपा द्वारा सन्तुष्ट किया। ब्राह्मणों को उनकी इच्छा पूर्ण करके, अतिथियों को सेवा-सत्कार-भोजन आदि से, वैश्यों को उनका प्रतिपाल और रक्षा करके, शूद्रों को न सताने से, और दुष्ट दस्युगण को दण्ड देकर अपने वश में किया। वे साक्षात् इन्द्र की तरह धर्म से प्रजापालन करते हुए पृथ्वी का राज्य करने लगे। सिंह के समान पराक्रमी युवा राजा ययाति ने धर्म की रक्षा करते हुए मनमाना विषय-भोग करके अपनी इच्छा पूरी की। वे विश्वाची अप्सरा के साथ कभी नन्दन वन में, कभी अलकापुरी में और कभी सुमेरु पर्वत के सुन्दर शिखर पर विहार करते रहे। हज़ार वर्ष पूरे हो
१० जाने पर राजा ने अवधि पूरी हुई देखकर पूरु से कहा—बेटा पूरु, मैंने जो भरकर उमङ्ग के साथ तुम्हारी जवानी से ख़ूब विषय-भोग कर लिया। इससे मुझे यही अनुभव हुआ कि भोग की सामग्रियों के उपभोग से भोग की वासना, शान्त न होकर, घी की आहुति पड़ने से आग की ज्वाला के समान, और भी बढ़ती है। संसार में धन, अन्न, सोना, पशु, स्त्री आदि भोग की जितनी सामग्री है वह एक पुरुष को भी तृप्त नहीं कर सकती। इसलिए भोग की तृष्णा को छोड़ देना ही ठीक है। दुर्मति लोग जिस विषयवासना के जाल से अपने को छुड़ा नहीं सकते, जो भोग की लालसा शरीर जर्जर होने पर भी सुस्त नहीं होती उसे प्राण-घातक रोग समझकर उससे बचने में ही सच्चा सुख मिल सकता है। आज मुझे मनमाना विषय-भोग करते पूरे हज़ार वर्ष हो गये, तो भी नित्य विषय-भोग की लालसा बढ़ती ही जाती है। अब

मैं इस भोगवासना को छोड़, ब्रह्म में मन लगाकर, निर्द्वन्द्व निर्लिप्त होकर वन में मृगों के साथ रहूँगा। पूरु, मैं तुम पर प्रसन्न हूँ; यह अपनी जवानी और मेरा राज्य लो। तुम्हारा भला हो; क्योंकि तुम्हीं मेरे प्रिय आज्ञाकारी पुत्र हो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब ययाति ने पूरु को जवानी देकर अपना बुढ़ापा ले लिया। राजा ययाति ने जब छोटे पुत्र पूरु को राजगद्दी देने का उद्योग किया तब ब्राह्मण आदि सब प्रजा उनसे आकर कहने लगी—महाराज, शुक्राचार्य के नाती और देवयानी के पुत्र बड़े लड़के यदु को छोड़कर आप सबसे छोटे पूरु को क्यों राज्य दे रहे हैं? बड़ों को छोड़कर सबसे छोटा लड़का कैसे राज्य पा सकता है? जो धर्म था, वह हमने आपको जता दिया। आपको धर्म का पालन करना चाहिए। २०

ययाति ने कहा—ब्राह्मण आदि सब वर्णों के लोगो, बड़े पुत्रों को छोड़कर छोटे को राज्य देने का कारण सुनो। बड़े बेटे यदु ने मेरी आज्ञा नहीं मानी। पिता का विरोधी पुत्र सज्जनों की राय में पुत्र ही नहीं है। माता-पिता का कहा करनेवाला, सब तरह से नम्र, और भक्त पुत्र ही सच्चा पुत्र है। यदु के और भाई तुर्वसु, द्रुह्यु और अनु ने भी मेरा निरादर किया, मेरा कहना नहीं माना। केवल पूरु ने मेरा कहा माना और मेरे मान की रक्षा की। वही छोटा पुत्र, जिसने बुढ़ापा लेकर जवानी दी, मेरी सम्पत्ति का अधिकारी है। शुक्राचार्य ने भी मुझको यह वर दिया है कि तुम्हारी आज्ञा माननेवाला पुत्र ही राज्य पावेगा। इस कारण मैं तुम लोगों से प्रार्थना करता हूँ कि पूरु के राज्याभिषेक का विरोध न करो। २९

राजा के वचन सुनकर प्रजा ने कहा—महाराज, आपका कहना ठीक है। माता-पिता का हित करनेवाला गुणी पुत्र छोटा होने पर भी सब सुखों और भलाइयों का अधिकारी हो सकता है। पूरु ने आपका प्रिय काम किया है, दूसरे शुक्र ने वर भी ऐसा ही दिया है। इसलिए पूरु को ही आप राजा बनाइए।

प्रसन्न होकर पुरवासियों के यों कहने पर ययाति ने अभिषेक करके पूरु को राजगद्दी पर बिठा दिया। उसको राज्य देकर वानप्रस्थ आश्रम ले करके राजा ययाति तपस्वी ब्राह्मणों के साथ वन को चल दिये।

राजन्, यदु के यादव हुए। तुर्वसु के वंश में यवन हुए। द्रुह्यु के वंश में भोज नाम से प्रसिद्ध पुत्र हुए। अनु के वंश में म्लेच्छ हुए। राजा पूरु से पौरव वंश चला। आप इसी पूरु के वंश में, हज़ार वर्ष तक राज्य करने के लिए, उत्पन्न हुए हैं। ३५

# उन्नासीवाँ अध्याय

## ययाति की स्वर्गयात्रा

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा ययाति इस प्रकार अपने प्यारे पुत्र को राज्य देकर प्रसन्नतापूर्वक वानप्रस्थ हो गये। वन में कुछ दिनों तक केवल कन्द-मूल-फल खाकर नियमपूर्वक तपस्या करते हुए ब्राह्मणों के साथ रहकर, राजा ययाति अन्त को स्वर्गवासी हुए। स्वर्ग में जाकर राजा ययाति बहुत दिनों तक वहाँ का सुख नहीं भोग सके। इन्द्र ने बहुत जल्द उन्हें स्वर्ग से गिरा दिया।

जनमेजय ने कहा—भगवन्, मैंने सुना है कि स्वर्ग से गिरकर महाराज ययाति अन्तरिक्ष में ही रुक गये, पृथ्वी पर नहीं आये। यह भी सुना है कि वे फिर वसुमान्, अष्टक, प्रतर्दन और शिवि के साथ स्वर्गलोक को गये। मैं यह सुनना चाहता हूँ कि राजा ययाति फिर किस कर्म से स्वर्ग में पहुँचे। इस ऋषिमण्डली के समाने आप कृपा करके यह सब कथा विस्तार से कहिए। कुरुवंशवर्द्धन महाराज ययाति इन्द्र के तुल्य प्रभावशाली थे। उन महायशस्वी
९ राजा ने पृथ्वी पर और स्वर्ग में जो कुछ किया सो मैं आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, मैं आपसे ययाति का पृथ्वी और स्वर्ग से सम्बन्ध रखनेवाला पापनाशक चरित्र कहता हूँ, सुनिए। राजा ययाति यदु आदि पुत्रों को धर्मभ्रष्ट म्लेच्छ होने का शाप और छोटे पुत्र पूरु को राज्य देकर वन को चले गये। वन में फल-मूल खाकर, क्रोध को जीतकर, वानप्रस्थ आश्रम की विधि के अनुसार पितरों और देवताओं को सन्तुष्ट करते हुए राजा ययाति तपस्या करने लगे। वे वहाँ विधिपूर्वक अग्निहोत्र करते थे। जो कोई अभ्यागत-अतिथि आता था उसका वन के फल-फूल और दूध-घी आदि से वे सत्कार करते थे और आप कटे हुए खेत में गिरे हुए अन्न के दाने बीन लाकर--आपसे सूखकर गिरे हुए फल उठा लाकर--अपना निर्वाह करते थे। इस प्रकार पूरे हज़ार वर्ष तक तपस्या करके उन्होंने और भी कठिन व्रत धारण किया। मन और वाणी को रोककर उन्होंने तीस वर्ष तक केवल जल पीकर तपस्या की; फिर एक वर्ष तक केवल वायु का आहार किया और एक वर्ष तक पञ्चाग्नि तापकर उन्होंने तप किया। अन्त को छः महीने तक केवल हवा पीते हुए, एक पैर से खड़े
१७ रहकर, पुण्यात्मा ययाति स्वर्ग को गये।

---

# अस्सी अध्याय

इन्द्र और ययाति का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, हमने सुना है कि स्वर्ग में जाने पर सब देवताओं ने राजा ययाति का बड़ा आदर किया। वे कभी देवलोक में मरुद्गण, वसुगण आदि देवताओं के साथ रहते थे और कभी ब्रह्मलोक में विचरते थे। इस तरह वे बहुत दिनों तक स्वर्ग में रहे। एक दिन महाराज ययाति इन्द्र के भवन में गये। बातें करते-करते प्रसङ्गवश इन्द्र ने पूछा—राजन्, जब पूरु ने तुम्हारा बुढ़ापा ले लिया और अपनी जवानी तुमको दे दी तब पूरु को राजकाज सौंपकर तुमने उनसे क्या कहा था?

ययाति ने कहा—देवराज, मैंने पूरु से कहा था कि पुत्र, गङ्गा और यमुना के बीच का सब पवित्र देश तुम्हारे अधिकार में रहेगा। भरतखण्ड के बीच के तुम राजा हो। तुम्हारे भाई सीमान्त प्रदेश का राज्य पावेंगे और अन्त्यजों का शासन करेंगे। इसके सिवा मैंने कहा कि क्रोध करनेवाले से क्रोध न करनेवाला श्रेष्ठ है; सहने की शक्ति जिसमें नहीं उससे सहनशील पुरुष श्रेष्ठ है; पशु-पक्षी आदि सब प्राणियों से मनुष्य श्रेष्ठ है; मूर्खों से विद्वान् श्रेष्ठ है। यदि कोई अपने से जले तो उससे आप भी द्रोह न करें। क्रोध को रोककर क्षमा करना चाहिए। किसी से अकारण जलनेवाला आदमी अपने हृदय की जलन से आप ही जला करता है और जो कोई द्रोह नहीं रखता वह उसके किये पुण्य के फल का भागी होता है। किसी के जी को दुखानेवाले कठोर वचन कभी न कहे। गरीब आदमी से अन्यायपूर्वक प्राप्य धन से अधिक न ले। जिस बात से किसी को दुःख पहुँचे वह बात अपने मुँह से न निकाले। जो कोई हृदय में लगनेवाले कठोर तीक्ष्ण वचन कहता है, वाक्य-बाणों से लोगों के हृदय को चोट पहुँचाता है वह संसार में लक्ष्मीहीन अभागा कहलाता है। उसके चेहरे पर अलक्ष्मी के चिह्न स्पष्ट देख पड़ते हैं। [वह नरपिशाच है।] सच्चरित्र लोग ऐसे कार्य करते हैं जिनकी प्रशंसा सज्जन करते हैं। आर्यपुरुष सदा दुष्टों की की हुई निन्दा और घमण्ड की बातें सुनकर सह लेते हैं और सज्जनों के मार्ग पर चलते हैं। दुष्ट जन अपने मुँह से निकले हुए वाक्यों के बाण मारकर दूसरों के हृदय १०
को चोट पहुँचाते हैं। जिसको चोट पहुँचाई जाती है वह दिन-रात उन वचनों को याद करके कष्ट पाता है। इस कारण सज्जन को ऐसे दुर्वचन कभी न कहने चाहिएँ जिनसे दूसरों को कष्ट पहुँचे। तीनों लोकों में जीवों पर दया, प्राणियों से मित्रता, दान और मीठे वचनों से बढ़कर वशीकरण का उपाय नहीं है। इससे देखो, सदा सबसे मीठे वचन बोलना, कठोर वचन मुँह से न निकालना। पूज्य पुरुषों की पूजा करना और, किसी से कभी कुछ माँगना नहीं। १३

# इक्यासी अध्याय

स्वर्ग से ययाति का गिरना। अष्टक का राजा ययाति से प्रश्न

इन्द्र ने कहा—राजन्, तुमने सब कर्त्तव्य पूरे करके घर छोड़कर वनवास किया है। इसलिए मैं पूछता हूँ कि तुमने किसके समान तपस्या की है? ययाति ने कहा—इन्द्र! देवता, मनुष्य, गन्धर्व, महर्षि आदि कोई भी मुझे तपस्या में अपने समान नहीं देख पड़ता। इन्द्र ने कहा—राजन्, तुमने औरों का प्रभाव जाने बिना अपने से उत्तम, अपनी बराबरी के, और अपने से छोटे लोगों का अपमान किया, इस कारण तुम्हारा पुण्य क्षीण हो गया। तुम अभी देवलोक से गिरोगे। ययाति ने कहा—हे इन्द्र! देवता, ऋषि, गन्धर्व, मनुष्य आदि का अपमान करने से यदि मेरा पुण्य क्षीण हो गया है तो मैं यहाँ से सज्जनों के बीच में गिरना चाहता हूँ। [इतनी आप मुझ पर कृपा करें।] इन्द्र ने कहा—राजन्, तुम यहाँ से सज्जनों की मण्डली में ही गिरोगे। वहाँ तुम्हें फिर अच्छी गति और प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। किन्तु देखो, अब कभी अपने से उत्तम और अपनी बराबरी के लोगों का निरादर न करना।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, देवराज इन्द्र के यों कहते ही पवित्र स्वर्गलोक से राजा ययाति गिर पड़े। धर्मपरायण राजर्षि अष्टक ने स्वर्ग से ययाति को गिरते देखकर पूछा—हे युवक, इन्द्र के समान सुन्दर और अग्नि के समान तेजस्वी तुम कौन हो? तुमको प्रचण्ड सूर्य के समान आकाश से गिरते देखकर हम लोग अचरज के साथ तर्क-वितर्क कर रहे थे। सूर्य और अग्नि के समान प्रकाशमान तुमको आकाश से गिरते देखकर "यह कौन गिर रहा है?" यह तर्कणा करते हुए हम भूल रहे थे। इन्द्र, सूर्य और विष्णु के समान प्रभावशाली तुमको अन्तरिक्ष में स्थित देखकर तुमसे तुम्हारा नाम-धाम और तुम्हारे गिरने का कारण पूछने के लिए हम लोग तुम्हारे पास आये हैं। पहले हम तुमसे कुछ पूछने का साहस नहीं कर सके। तुमने भी हमसे हमारे बारे में कुछ नहीं पूछा। हे सुन्दर पुरुष, मैं तुमसे पूछता हूँ कि तुम कौन हो? किसके पुत्र हो? देवलोक
१० में तुम क्यों गये थे? हे महानुभव, अब तुम्हें कुछ डर नहीं है। खेद और मोह को छोड़ो। हे

इन्द्र के समान प्रभावशाली पुरुष, साधु-समाज में स्थित होने पर इन्द्र भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकते। साधुजन ही दुःख में पड़े हुए सज्जनों के लिए आश्रय-स्वरूप हैं। इस समय तुम अपने समान पुण्यात्मा सज्जनों के पास आ गये हो। जैसे आग ही गर्मी पहुँचा सकती है, पृथ्वी ही बीज धारण कर सकती है, सूर्य ही प्रकाश कर सकते हैं, वैसे अभ्यागत पुरुष ही सज्जनों पर प्रभुता कर सकते हैं। १३

---

## बयासी अध्याय

ययाति का अपना परिचय देकर अष्टक से बातचीत करना। ययाति का स्वर्ग से अपने गिरने का कारण कहना

ययाति ने कहा—हे सिद्ध पुरुष, मैं नहुष का पुत्र और पूरु का पिता राजा ययाति हूँ। सब प्राणियों का निरादर करने से मेरा पुण्य घट गया। इसी से अब देवता, सिद्ध और ऋषियों के लोक से भ्रष्ट होकर नीचे गिर रहा हूँ। मैं अवस्था में तुम लोगों से बड़ा हूँ। इसी से तुमको मैंने प्रणाम नहीं किया। जो विद्या, तपस्या अथवा अवस्था में बड़ा होता है, वही द्विज वर्णों में पूज्य समझा जाता है।

अष्टक ने कहा—राजन्, आपने कहा कि अवस्था मे जो बड़ा है वह श्रेष्ठ है। किन्तु जो विद्या और तप में बड़ा है वही द्विजमण्डली में सबसे अधिक पूज्य समझा जाता है। आप अवस्था में ही नहीं, विद्या और तप में भी बड़े हैं।

ययाति ने कहा—जो पुरुष नम्रता नहीं रखता उसमें सब पुण्य कर्मों को मिटा देनेवाला पापरूप गर्व रहता है। नरक में ढकेलनेवाले गर्व को असाधु लोग ही धारण करते हैं, सज्जन नहीं। पहले के लोग पुण्य-कर्मों को बढ़ाने के लिए दम्भ-दर्प आदि से बचे रहते थे। मैंने गर्व किया, इसी से इन्द्र ने मुझे स्वर्ग से गिरा दिया। मेरे अपार पुण्यरूपी धन था। इस समय गर्व से वह सब नष्ट हो गया। उपाय करने पर भी वह अब मुझे नहीं मिल सकता। यह जानकर जो पुरुष अपने हित—पुण्य करने और गर्व के त्याग—में लगता है वही सच-मुच जानकर और साधु है। जो लोग अनेक प्रकार के याग-यज्ञ करते हैं, सब विद्याएँ जानकर भी नम्र रहते हैं, वेद पढ़कर तपस्या करके अन्त को मोहरहित हो स्वर्ग को जाते हैं, वे ही "महाधन" कहलाते हैं। यदि कहो कि फिर तुमने तप का अहङ्कार क्यों किया? तो इस जीवलोक में जीवों के स्वभाव जुदे-जुदे हुआ करते हैं। सब जीव दैव के अधीन हैं। दैव के विरुद्ध उनका सब उद्योग और सामर्थ्य व्यर्थ हो जाता है। दैव को ही प्रबल जानकर अपने कर्म के फल-स्वरूप सुख-दुःख को पाकर हर्ष-शोक से अपने को नष्ट न करना चाहिए। बहुत

पुण्यरूपी धन इकट्ठा करके भी प्रसन्न होना ठीक नहीं। अहङ्कार छोड़कर वेद पढ़ना चाहिए। भरसक यत्न करने पर भी कोई अपनी इच्छा से सुखी या दुखी नहीं हो सकता। इस कारण यदि दैव की प्रबलता से सुख या दुःख आ पड़े तो दैव को ही प्रबल मानकर न तो प्रसन्न ही हो और न दुःखित ही। दैव को प्रबल मानकर सब दशाओं में एक ही भाव से रहना चाहिए। हे अष्टक, विधाता ने जो लिख दिया है वह मिटने का नहीं, यह जानकर न मुझे डर है और न मेरे मन में इस गति से कुछ सन्ताप ही है। स्वेदज ( पसीने से पैदा होनेवाले ), अण्डज ( अण्डा फोड़कर पैदा होनेवाले ), उद्भिद् ( ज़मीन फोड़कर पैदा होनेवाले ), जरायुज ( मनुष्य आदि ), साँप, कीड़े-मकोड़े, मछली, पत्थर, घास-फूस, लकड़ी आदि सभी प्रारब्ध (पूर्वकृत पुण्य-पाप ) क्षीण होने पर अपनी असली अवस्था को पहुँच जाते हैं। अष्टक, सुख-दुःख के अनित्य होने की बात जानकर भी मैं कैसे दुःखित हो सकता हूँ ? यह कोई नहीं जान सकता कि क्या करने से दुःख न भोगना होगा। इसी से सन्ताप करना वृथा है। मैंने सावधान होकर सब सन्ताप छोड़ दिया है।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन् यों कह रहे, स्वर्ग में वैसे ही ठहरे हुए, अपने नाना महात्मा राजा ययाति से फिर अष्टक ने पूछा—राजन्, आत्मज्ञानी पुरुषों की तरह आप धर्म की बातें कह रहे हैं; आपकी बातें सुनने को मेरा जी चाहता है। कृपा करके यह कहिए कि कितने समय तक किस-किस लोक में आप रहे हैं ?

ययाति ने कहा—अष्टक, अपने बाहु-बल से दिग्विजय करके मैंने पृथ्वी पर अपना साम्राज्य स्थापित किया था। वहाँ अच्छे लोक पाने के लिए यज्ञ आदि पुण्यकर्म करता हुआ मैं हज़ार वर्ष तक राज्य करता रहा। पृथ्वी पर साम्राज्य-सुख भोगकर मैं स्वर्ग-लोक में गया। सौ योजन की लम्बी हज़ार द्वारवाली इन्द्र की सुन्दर पुरी में हज़ार वर्ष तक रह करके फिर उससे भी ऊपर के लोक को गया। दुर्लभ, जहाँ बुढ़ापे और मौत का खटका नहीं है ऐसे, दिव्य ब्रह्मलोक में हज़ार वर्ष तक रहकर पुण्यभोग करके मैं देवदेव महादेव के स्थान कैलास पर्वत पर कुछ दिन रहा। मेरा प्रभाव और तेज देवताओं के तुल्य था और सब देवता मेरा आदर-सत्कार करते थे। इसके बाद इच्छानुसार रूप रखने की शक्ति पा करके दस हज़ार शताब्दियों तक मैं इन्द्र के नन्दन वन में पवित्र सुगन्धवाले सुन्दर फूले हुए वृक्षों की शोभा देखता हुआ अप्सराओं के साथ सुख भोगता रहा। देवताओं के योग्य सुख भोगता हुआ मैं वहाँ बहुत दिनों तक विहार करता रहा। इसी बीच में उग्ररूप देव-दूत ने आकर तीन बार ऊँचे स्वर से पुकारकर मुझसे तीन बार गिरो ! गिरो ! गिरो ! कहा। हे नरेन्द्र, मुझे इतना ही याद है। पुण्य क्षीण होने पर नन्दन वन से जब मैं गिरा तब राह में अन्तरिक्ष में करुण स्वर से मेरे लिए शोक कर रहे देवताओं की बातें मुझे सुन पड़ीं। वे कह रहे थे—अहो, बड़े कष्ट की

बात है! पुण्य कर्म करनेवाले पवित्र-कीर्त्ति राजा ययाति, पुण्य क्षीण होने से, स्वर्ग से भ्रष्ट होकर गिर रहे हैं! देवताओं को यों सहानुभूति दिखाते देखकर गिरते हुए मैंने उनसे कहा—आप लोग ऐसा उपाय करें कि मैं साधुमण्डली मे जाकर गिरूँ। अष्टक, उन्होंने तुम्हारी यह यज्ञभूमि मुझको दिखा दी। उसी के अनुसार हवि की गन्ध सूँघकर और अग्नि का धुआँ देखकर मैं तुम्हारी इस यज्ञभूमि में आ पहुँचा हूँ। २३

---

## तिरासी अध्याय

स्वर्ग आदि भोगने के उपरान्त मरे हुए के फिर जन्म लेने का वर्णन

अष्टक ने पूछा—हे निष्पाप पुरुषों में श्रेष्ठ, आप कामरूपी होकर दस लाख वर्ष तक नन्दन वन में रहकर फिर किस कारण पृथ्वी पर आये, सो हमसे कहिए।

ययाति ने कहा—जैसे यहाँ निर्धन होने पर मनुष्य को, चाहे वह जातिवाला हो, चाहे इष्ट-मित्र या स्वजन, सब लोग छोड़ देते हैं वैसे ही इन्द्र-सहित सब देवता भी पुण्य क्षीण होने पर प्राणी को छोड़ देते हैं।

अष्टक ने कहा—परलोक में पुण्य का क्षय किस तरह होता है? कौन कर्म करके मनुष्य किस लोक में जाता है? यह कुछ मेरी समझ में नहीं आता। आप सब कुछ जानते हैं। यह सब मुझसे कहिए।

ययाति ने कहा—हे नरदेव, पुण्य क्षीण होने पर जीव विलाप करते हुए इस पृथ्वी के नरक में गिरते हैं। यहाँ जन्म लेकर वे गिद्धों और सियारों के आहार इस शरीर के लालन-पालन में ही लगे रहते हैं। हे नरश्रेष्ठ, इस कारण संसार में काम्यकर्म ( विषयभोग ) को निन्दनीय और दूषित समझकर उसमें लिप्त न होना चाहिए। तुमने जो पूछा था सो मैंने कह दिया। अब क्या सुनना चाहते हो?

अष्टक ने कहा—जब मनुष्यों के शरीर को [ मरने पर ] गिद्ध-सियार आदि खा लेते हैं तब उन्हें दूसरा शरीर कैसे मिलता है? और आप इस पृथ्वी को नरक क्यों कहते हैं? भौम नरक क्या है?

ययाति ने कहा—ये जीव माता के गर्भ से कर्म-प्राप्त देह पाने पर पृथ्वी पर आकर कर्म-फल भोगते हैं। इसी से इस पृथ्वी को भौम नरक कहा है। यहाँ आकर जीव ऐसा मूढ़ हो जाता है कि आयु व्यर्थ ही बीत जाती है और वह अपनी यथार्थ भलाई का यत्न नहीं कर पाता। स्वर्ग में सुख भोगनेवाले जीव साठ हज़ार या अस्सी हज़ार वर्ष तक रहकर अन्त को वहाँ से गिरते हैं। यहाँ भौम नरक में भयानक भौम-राक्षस ( स्त्री आदि ) अपनी पैनी दाढ़ों

( कटु वचन, कलह आदि ) से उन्हें काट-काटकर खाते हैं; तब वे यहाँ नरक की यातना का अनुभव करते हैं।

अष्टक ने कहा—पाप के कारण स्वर्ग से भ्रष्ट जिन जीवों को भीम राक्षस दुःख पहुँचाते हैं वे ऊपर से गिरी हुई वस्तु की तरह एकदम नष्ट क्यों नहीं हो जाते? फिर वे इन्द्रिययुक्त कैसे होते हैं? और, गर्भ-रूप दशा उन्हें किस तरह मिलती है?

ययाति ने कहा—यह जीव स्वर्ग से गिरने के दुःख से जलमय होकर पानी में सूक्ष्म-भूत के रूप में स्थित होता है। वही पानी पुरुष का वीर्य बनकर स्थूल देह का बीज बनता है। इस प्रकार स्वर्ग से गिरा हुआ प्राणी ईश्वर की प्रेरणा से वीर्य-रूप बनकर फूल में फल की तरह स्त्री के गर्भ में पहुँचता है और वहाँ स्त्री के रज से मिलकर गर्भ की कलिल आदि अनेक
१० अवस्थाओं को प्राप्त होता है। इसी प्रकार यह जीव जल-रूप होकर वृक्ष, ओषधि, जल, वायु और अन्तरिक्ष में मिल जाता है और इसी प्रकार से माता के गर्भ में पहुँचकर मनुष्य और पशु आदि के शरीर धारण करता है।

अष्टक ने कहा—हे श्रेष्ठ पुरुष, मनुष्य-योनि को प्राप्त जीव गर्भ में दूसरा शरीर धारण करता है या अपने पहले ही शरीर से गर्भ में पहुँचता है? माता के शरीर में जीव का गर्भ-देह कैसे बढ़ता है? उसमें आँख-कान आदि इन्द्रियाँ कैसे प्रकट होती हैं? आप सब जानते हैं; कृपा करके मेरे इन प्रश्नों का विषय समझाकर कहिए।

ययाति ने कहा—ऋतुकाल में एक प्रकार का वायु स्त्री के रज में, फूल-फल की तरह मिश्रित, पुरुष के वीर्य को गर्भाशय के भीतर पहुँचाता है। प्राणी सूक्ष्म से इसी प्रकार गर्भाशय के भीतर पहुँचता है। गर्भाशय में वही वायु क्रमशः उस गर्भ को बढ़ाता है। पहले से ही सूक्ष्म वासनामय शरीर को धारण किये हुए जीव गर्भ में क्रमशः अङ्ग-प्रत्यङ्ग, इन्द्रिय और चैतन्य से युक्त होकर गर्भ से बाहर निकलता है। मनुष्य-योनि में उत्पन्न होते ही प्राणी—जीव संज्ञा पाकर—कानों से शब्द सुनता है, आखों से रूप देखता है, नाक से गन्ध सूँघता है, जीभ से रस का स्वाद लेता है, त्वचा से स्पर्श का अनुभव करता है और मन से सब भावों को जानता है। हे अष्टक, जीव के शरीर में ये इन्द्रियाँ ईश्वर की दी हुई हैं।

अष्टक ने कहा—मनुष्य जब मरता है तब लोग उसके शरीर को जलाकर, गाड़कर या किसी प्रकार से नष्ट कर देते हैं। इस प्रकार नष्ट हो जाने पर जीव फिर दूसरे शरीर में पहुँचे हुए अपने को किस तरह जानता है?

ययाति ने कहा—जीव देह से भिन्न पदार्थ है। हे राजसिंह! यह जीव प्राण निकल जाने पर स्थूल शरीर को जब छोड़ता है तब, स्वप्न देख रहे पुरुष की तरह, अपने पुण्य या पाप को आगे रखकर, आतिवाहिक पवन के साथ, वासनामय सूक्ष्म शरीर के द्वारा दूसरी योनि में जाता है।

पुण्यात्मा जीव पवित्र योनि में जन्म लेते हैं और पापी लोग कीट-पतङ्ग आदि ओछी और नीच योनियों में पैदा होते हैं। जिस प्रकार दो पैर, चार पैर और छः पैरवाले प्राणी गर्भाशय में पहुँचकर फिर पृथ्वी पर प्रकट होते हैं सो सब मैंने तुमको सुना दिया। अब क्या सुनना चाहते हो? २०

अष्टक ने कहा—पूज्यवर! मनुष्य क्या करके, किस तप और विद्या के प्रभाव से श्रेष्ठ लोकों में जाता है? पुण्यात्मा मनुष्य किस क्रम से शुभ लोकों में जाते हैं? यह सब कहिए।

ययाति ने कहा—साधु पुरुषों का कहना है कि मनुष्य के जाने के लिए तपस्या, दान, शान्ति, इन्द्रिय-सहित मन का दमन, लोकलज्जा, सरलता और सब प्राणियों पर दया करना, ये ही सात स्वर्ग के फाटक हैं। जो लोग तमोगुण के वश होकर अपने श्रेष्ठ होने का अहङ्कार करते हैं उनके ये सातों गुण मिट्टी में मिल जाते हैं और इस प्रकार उनके दोनों लोक बिगड़ जाते हैं। जो व्यक्ति वेद-शास्त्र पढ़कर अपने को पण्डित मानकर घमण्ड करके अपनी विद्या के द्वारा औरों के यश को मिटाना चाहता है उसे अक्षय लोक नहीं मिलते, और इस प्रकार उसकी वह विद्या सफल नहीं होती। वेद-शास्त्र का पढ़ना, मौनव्रत, अग्निहोत्र और यज्ञ, ये चारों कर्म श्रेष्ठ और अभय देनेवाले हैं। किन्तु अभिमान से बिगड़ जाने पर ये ही डर का कारण बन जाते हैं। साधु पुरुष को चाहिए कि अधिक सम्मान मिलने पर प्रसन्न न हो और अपमान होने पर दुःखित न हो। संसार में साधु पुरुष ही साधुजनों का सम्मान करते हैं। असाधु पुरुषों की बुद्धि कभी साधुओं की ऐसी नहीं होती। अहङ्कार से सबके आगे यह कहना ही डर का कारण है कि मैंने इतना दान दिया, इतने यज्ञ किये, इतने शास्त्र पढ़े, इतने व्रत किये। इस कारण अपने मुँह से अपने कामों की बड़ाई न करनी चाहिए। विद्वान् साधुजन पुराण-पुरुष पर-ब्रह्म को अपना आश्रय मानकर समाधिमग्न हो अपने हृदय में उसी का ध्यान करते हैं। यही एक उत्तम अक्षय सुख का साधन है। ऐसा करनेवाले पुरुष इस लोक में शान्ति से जीवन बिताकर परलोक में मुक्ति पाते हैं। २७

---

## चौरासी अध्याय

### चारों आश्रमों के धर्म का वर्णन

अष्टक ने कहा—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास, इन चारों आश्रमों में सन्मार्ग पर चलकर धर्मोपार्जन करने के अनेक ढङ्ग वेदवेत्ता लोगों ने कहे हैं। कृपा करके आप इस विषय में अपना मत प्रकट कीजिए।

ययाति ने कहा--गुरुकुल में रहने के समय गुरु के बुलाते ही पढ़ने के लिए जाना, गुरु के कामों को बिना कहे ही कर डालना, गुरु से पहले जागकर उठना और पीछे सोना, और विनीत जितेन्द्रिय धैर्यशाली सावधान और पढ़ने-लिखने मे तत्पर रहना ब्रह्मचारी का धर्म है। इसी व्रत से ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है। प्राचीन उपनिषद् में लिखा है कि धर्म के साथ धन कमाकर यज्ञ करना, सदा शक्ति के अनुसार दान देने के लिए तैयार रहना, अतिथियों का भोजन आदि से सत्कार करना, दूसरे की वस्तु को बिना उसके दिये न लेना गृहस्थ का कर्त्तव्य है। वानप्रस्थ का धर्म यह है कि परिश्रम करके अपनी जीविका चलावे, पापकार्य से बचा रहे, जो कुछ हो औरों को दे दे, दूसरे को कष्ट न पहुँचावे और अपने आहार तथा इन्द्रियों की चेष्टाओं को वश में रक्खे। ऐसे ही वनवासी मुनि को सिद्धि मिलती है। भिक्षुक अर्थात् संन्यासी को चाहिए कि किसी तरह की कारीगरी से अपनी जीविका न चलावे, अस्तेय सत्य आदि गुणों से युक्त रहे, जितेन्द्रिय होकर निर्लिप्त रहे, इधर-उधर रात को पड़ रहे, स्त्री को—पुत्र आदि को सौंपकर—त्याग दे, अकेले धीरे-धीरे अनेक देशों में विचरता रहे। भिक्षु के ये ही सच्चे लक्षण हैं। जिस समय यज्ञ प्रभृति पुण्यकर्मों से स्वर्ग आदि लोकों को पाने का अधिकार प्राप्त कर ले और संसार-सुख भोगकर विषय-वासनाओं से जी भर जाय उसी समय आत्मज्ञानी शुद्धचित्त पुरुष को घर और गृहस्थी छोड़कर वन में जाने का प्रयत्न करना चाहिए। जो पुरुष वन में जाकर संन्यासपूर्वक शरीर छोड़ता है वह अपने को, अपने पहले की दस पीढ़ियों को और आगे की दस पीढ़ियों को तार देता है।

अष्टक ने कहा—मुनियों के कितने भेद हैं? संन्यास ( मोक्षमार्ग ) के प्रकार का होता है? यह मैं सुनना चाहता हूँ।

ययाति ने कहा—[ संन्यासियों के कुटीचक, बहूदक, हंस, परमहंस, ये चार भेद हैं। ] गाँव को पीछे रखकर जो वन मे रहता है वह कुटीचक मुनि है और जो वन को पीछे रखकर गाँव में रहता है वह बहूदक मुनि है।

अष्टक ने पूछा--वन में रहने से गाँव कैसे पीछे रहता है? और गाँव में रहने से
१० वन कैसे पीछे रहता है?

ययाति ने कहा—वन में रहकर जो मुनि ग्राम्य वस्तुओं का उपयोग नहीं करता—उन्हें पाने के लिए यत्न नहीं करता—उसके पीछे गाँव है। जो मुनि गाँव में रहकर भी अग्निहोत्र नहीं करता, जिसके रहने का कोई निर्दिष्ट स्थान नहीं है, जो अगोत्रचारी और केवल कौपीन भर का कपड़ा अपने पास रखता है तथा प्राण-धारण भर के लिए थोड़ा सा भोजन चाहता है उसी के पीछे वन है। [ ये दोनों कुटीचक और बहूदक मुनियों के लक्षण हैं। अब हंस और परम-हंस के लक्षण सुनो। ] जो मुनि सब इच्छाओं और उनके विषयों को छोड़कर कर्म-त्याग कर

देता है और जितेन्द्रिय होकर मौनव्रत धारण करता है वह हंस है। वह इस लोक में सिद्धि पा लेता है। शुद्ध आहार करनेवाले, हिंसा के साधनों को छोड़े हुए अहिंसाव्रतधारी, नित्य शुद्धचित्त, शम आदि गुणों से युक्त, बन्धनरहित, निर्लिप्त, शुद्ध निष्काम कर्म करनेवाले मुनि सबके पूजनीय हैं। तप से शरीर को सुखाकर, मांस हड्डी रक्त आदि धातुओं को क्षीण कर, सुख-दुःख आदि द्वन्द्व-भावों से बचा हुआ परमहंस इस लोक को जीतकर परलोक को भी जीत लेता है। अर्थात् इस शरीर को छोड़ने पर ब्रह्म में लीन हो जाता है। जब परमहंस अवस्था में पहुँचा हुआ मुनि, पशुओं की तरह, मुख से ही आहार करता है—हाथ-पैर नहीं चलाता—और रस के स्वाद को न जानकर शरीर-धारण-मात्र को जो मिल जाय वही खा लेता है तब उसके आगे दोनों लोकों में शान्ति हाथ जोड़े खड़ी रहती है—वह ब्रह्म में लीन हो जाता है। १८

---

## पचासी अध्याय

ययाति का स्वर्गभूमि से गिरकर यज्ञभूमि में अपने आने का कारण कहना। प्रतर्दन से ययाति का संवाद

अष्टक ने पूछा—सूर्य और चन्द्रमा के समान इन योगी और ज्ञानी दोनों प्रकार के मुनियों में से कौन पहले ब्रह्म में लीन होकर देवताओं की समता पाता है?

ययाति ने कहा—ज्ञानी मुनि विषयभोग करनेवाले मनुष्यों के बीच गाँव में रहकर भी इन्द्रियों को विषयों मे फँसने नहीं देता। वह संयत और बिना घर का रहकर धारणा, ध्यान और समाधि में लगा रहता है। वही पहले सिद्धि पाता है। [ क्योंकि उपनिषद् आदि पढ़कर और युक्तियों से विचारकर भी वह निश्चित रूप से जगत् को मिथ्या जान लेता है। इस कारण क्षण भर के लिए भी ब्रह्म-साक्षात्कार होने से वह ब्रह्म को अद्वितीय जान लेता है। ] किन्तु योगी को यह ज्ञान नहीं है। अद्वितीय रूप से ब्रह्म-चिन्तन का अभ्यास करने पर कहीं उसका द्वित्व-ज्ञान दूर होगा। इसी कारण उसे मुक्ति पाने में देर लगती है। जो योगी इस प्रकार का अभ्यास करने के लिए, आयु कम होने के कारण, यथेष्ट समय न पाकर योग-सिद्धि के बल से बीच में ही दिव्य और लौकिक विषयों का भोग करने लगता है और इस प्रकार अपनी तपस्या को क्षीण कर देता है वह अन्त को बहुत पछताता है। उसे मुक्ति के लिए फिर दूसरा तप करना पड़ता है। ज्ञानी पुरुष अपने को ब्रह्मरूप जान पाते हैं। इस कारण उन्हें पापकर्म से बचकर यथेष्ट विषय-सुख भोगते हुए भी मुक्ति मिल जाती है। जिन्हें मोक्ष की प्रवृत्ति नहीं है ऐसे पुरुष स्वर्ग आदि की प्राप्ति के लिए जिस धर्म को करते हैं वह अजितेन्द्रिय पुरुष के तप के

समान निष्फल है। मोक्ष ही धर्म-कर्म का ठीक फल है। मोक्ष के लिए पुण्यकार्य करना ही योगसिद्धि का मूल है। जाने का श्रेष्ठ मार्ग मोक्ष ही है।

अष्टक ने कहा—राजन्, आप मनोहर तेजस्वी युवा देख पड़ते हैं। आपके गले में दिव्य फूलों की मालाएँ पड़ी हैं। आप कहाँ से आये हैं? किसने आपको किधर भेजा है? क्या आप पृथ्वी को जा रहे हैं?

ययाति ने कहा—पुण्य क्षीण होने के कारण मैं स्वर्ग से गिरकर इस पृथ्वीरूप भौम नरक में जाऊँगा। आप लोगों से जब तक बातें कर रहा हूँ तब तक यहाँ ठहरा हुआ हूँ; इसके बाद पृथ्वी पर चला जाऊँगा। नीचे गिरने के लिए लोकपाल मुझे जल्दी करने को कह रहे हैं। गिरते समय मैंने इन्द्र से यह वर माँग लिया था कि मैं सज्जनों की मण्डली में जाकर ठहरूँ। इसी के अनुसार मैं यहाँ ठहर सका हूँ।

अष्टक ने कहा—आप अभी नीचे न गिरिए। आप सब कुछ जानते हैं, इस कारण मैं आपसे पूछता हूँ कि स्वर्ग में, अन्तरिक्ष में या यहाँ मेरे धर्म से उपार्जित कुछ लोक है या नहीं?

ययाति ने कहा—पृथ्वी पर गाय-घोड़े आदि और जङ्गली तथा पहाड़ी जितने पशु हैं उतने ही लोक तुम्हारे भोग के लिए अन्तरिक्ष में हैं।

अष्टक ने कहा—राजेन्द्र, तो फिर आप नीचे न गिरिए। स्वर्ग और अन्तरिक्ष में अपने भोग के लिए नियत सब लोक मैं आपको देता हूँ। आप खेद छोड़कर उन्हीं में रहिए।

ययाति ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, वेद के जाननेवाले ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण ही दान ले सकते हैं। मेरे ऐसे क्षत्रिय दान नहीं लेते। मैंने पहले विधिपूर्वक यथोचित रूप से ब्राह्मणों को दान दिये हैं। क्षत्रिय की स्त्री और क्षत्रिय माँगने और लेने की हीनता नहीं स्वीकार कर सकते—उनका यह धर्म नहीं। जो पहले कभी नहीं किया वह करके भी क्या मैं साधु (भला) समझा जा सकता हूँ? कभी नहीं।

तब उस साधुमण्डली में से प्रतर्दन नाम के एक राजा ने कहा—हे सुन्दर पुरुष, मेरा नाम प्रतर्दन है। आप सब जानते हैं, इस कारण मैं आपसे पूछता हूँ कि अन्तरिक्ष या स्वर्ग में मेरे धर्म से उपार्जित कुछ लोक हैं या नहीं?

ययाति ने कहा—राजन्! अन्तरिक्ष और स्वर्ग में सुखदायक तथा प्रभापूर्ण, शोकरहित इतने लोक आपके लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं कि एक-एक में सात-सात दिन रहकर भी आप उनका अन्त नहीं पा सकते।

प्रतर्दन ने कहा—तो आप नीचे न गिरिए। मैं अपने सब लोक आपको देता हूँ। अन्तरिक्ष और स्वर्ग के उन सब लोकों में आप रहिए।

ययाति ने कहा—राजन्, समान-तेजस्वी होकर कोई राजा किसी राजा से योग-सिद्ध पुण्य नहीं माँग सकता। दैव की इच्छा से विपत्ति में पड़कर दान लेने का निन्दनीय काम करना मुझ ऐसे विद्वान् राजा के लिए कभी उचित नहीं। मुझ सरीखे धार्मिक राजा धर्म का पालन करते हुए यश को बढ़ानेवाले धर्म के मार्ग पर चलने का ही उद्योग करते हैं। आपने जो करने के लिए मुझसे कहा उसे ओछा काम समझकर क्षत्रिय राजा कभी नहीं कर सकता। पहले किसी राजा ने ऐसा नहीं किया है। ऐसा करके मैं साधु नहीं कहला सकता।

राजा ययाति के ये वाक्य सुनकर वसुमान् नाम के राजा ने उनसे यों कहना आरम्भ किया। १९

## छियासी अध्याय

### ययाति का फिर स्वर्ग जाना

वसुमान् ने कहा—राजन्, मैं ओषदश्व का पुत्र वसुमान् हूँ। आप सब कुछ जानते हैं, इसलिए आपसे पूछता हूँ कि अन्तरिक्ष या स्वर्ग में मेरे, धर्म से उपार्जित, कुछ लोक हैं या नहीं?

ययाति ने कहा—अन्तरिक्ष, पृथ्वी और सब दिशाओं के जितने स्थानों को सूर्यदेव प्रकाशित करते हैं उतने अक्षय स्थान स्वर्ग में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।

वसुमान् ने कहा—तो आप न गिरिए। ये सब अपने लोक मैं आपको देता हूँ। आप इन स्थानों में रहकर अनन्त सुख भोगिए। यदि आप दान लेना नहीं पसन्द करते तो एक तृणमात्र ही देकर इनको मोल ले लीजिए।

ययाति ने कहा—मैंने बचपन से अब तक कभी इस तरह अनुपयुक्त मूल्य देकर झूठा सौदा नहीं किया। पहले भी और किसी ने ऐसा नहीं किया है। भला मैं क्यों ऐसा करने लगा!

वसुमान् ने कहा—राजन्, यदि आप इस तरह बेजा सौदा नहीं करना चाहते तो मैं आपको अपने सब लोक योंही दिये डालता हूँ। मैं उन लोकों में जाकर सुख भोग नहीं करूँगा। आप ही उन लोकों में जाकर रहिए।

इसके बाद राजा शिवि ने कहा—मैं उशीनर का बेटा शिवि हूँ। मैं आपको सर्वज्ञ समझकर पूछता हूँ कि अन्तरिक्ष या स्वर्ग में मेरे भी कुछ धर्म से उपार्जित लोक हैं या नहीं?

ययाति ने कहा—राजन्, तुमने कभी वाणी या मन से याचक साधुओं का अपमान नहीं किया—उनको विमुख नहीं किया। इससे स्वर्ग में सङ्गीत आदि की ध्वनि से युक्त, बिजली के समान जगमगा रहे श्रेष्ठ अनन्त लोक तुम्हारी अपेक्षा कर रहे हैं।

शिवि ने कहा—राजन्, यदि आप इस प्रकार मोल लेना नहीं चाहते तो मैं वे सब अपने लोक आपको योंही देता हूँ। जहाँ जाने से धीर पुरुषों का शोक से पीछा छूट जाता है उन लोकों में आप जाइए; मैं न जाऊँगा।

ययाति ने कहा—शिवि, तुम इन्द्र के समान प्रभावशाली हो और पुण्य से प्राप्त तुम्हारे लोक भी अनन्त हैं। किन्तु मैं दूसरे के दिये लोकों में सुख भोगना नहीं चाहता। इसी से मैं तुम्हारे दिये इस भाग को स्वीकार नहीं कर सकता।

फिर अष्टक ने कहा—राजन्, यदि आप हम लोगों में से एक-एक के दिये लोकों को लेना नहीं पसन्द करते तो हम लोग अपना सब पुण्य आपको देकर स्वयं भीम नरक को
१० जाने के लिए तैयार हैं।

ययाति ने कहा—तुम लोग सत्यप्रिय और साधुजन हो। अतएव मैं जिसके योग्य हूँ उसी के लिए यत्न करो। जो पहले कभी नहीं किया है उसे मैं अङ्गीकार नहीं कर सकता।

अष्टक ने पूछा—जिन पर चढ़कर मनुष्य अक्षय लोकों को जाता है वे ये पाँच सुवर्णमय प्रकाशमान् रथ किसके हैं?



ययाति ने कहा—अग्निशिखा के समान चमक रहे ये सोने के पाँच रथ तुम लोगों के लिए आये हैं। ये तुम लोगों को स्वर्ग ले जायँगे।

अष्टक ने कहा—राजन्, आप ही इन रथों पर बैठकर आकाशमार्ग से स्वर्ग को जाइए। जब समय आवेगा तब हम लोग भी आपके पीछे आवेंगे।

ययाति ने कहा—इस समय हम सबने निष्पाप होकर एक साथ स्वर्ग को जीत लिया है। हम लोग साथ ही स्वर्ग को चलेंगे। वह देखो, स्वर्ग का शुद्ध मार्ग देख पड़ता है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके उपरान्त सब पुण्यात्मा नरेश रथों पर चढ़कर स्वर्ग को चले। उनके पुण्य की प्रभा आकाशमण्डल भर में व्याप्त हो गई। राह में जाते-जाते अष्टक ने पूछा—मैंने सोचा था कि महात्मा इन्द्र मेरे बड़े मित्र हैं, इसलिए मैं ही अकेला सबसे पहले स्वर्ग को जाऊँगा। किन्तु यहाँ उशीनर के पुत्र शिवि किस पुण्य के प्रभाव से हम

सब लोगों के आगे स्वर्ग को जा रहे हैं? ययाति ने कहा—इन उशीनर के पुत्र शिवि ने ब्रह्मलोक पाने के लिए याचकों को अपना सर्वस्व दे डालने में भी नाहीं नहीं की; इसी कारण ये तुम सबसे श्रेष्ठ हैं। इसके सिवा दान की प्रवृत्ति, तप का आचरण, सत्य और धर्म का पालन, लज्जा, श्री, क्षमा, शान्तभाव, अच्छे कामों में अनुराग आदि सद्गुण शिवि में इतने अधिक हैं कि मनुष्य-बुद्धि से उनका अनुमान भी नहीं किया जा सकता। इसी कारण शिवि का रथ सबके आगे स्वर्ग में पहुँच गया।

महाराज, अब अष्टक ने फिर कौतूहलवश होकर इन्द्र तुल्य अपने नाना ययाति से पूछा—राजन्, २०
आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? कहाँ से आ रहे हैं? इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वी पर आपने जो कर्म किये हैं उन्हें संसार में आपके सिवा और कोई ब्राह्मण या क्षत्रिय नहीं कर सकता।

ययाति ने कहा—मैं नहुष का पुत्र, और पूरु का पिता, राजा ययाति हूँ। पृथ्वी पर मैं चक्रवर्त्ती राजा था। मैं तुम्हारा नाना हूँ। मैंने सब पृथ्वी अपने अधिकार में कर ली थी। मैंने ब्राह्मणों को सब पृथ्वी का दान भी दिया है। एक सौ सुन्दर घोड़ों का महादान भी, देवताओं की प्रसन्नता के लिए, किया है। इन दानों से पुण्यात्मा लोग देवतुल्य हो जाते हैं। मैंने सुपात्र ब्राह्मण को वाहन, गाय, सोना, रत्न-धन आदि से युक्त पृथ्वीमण्डल का दान दिया है। दस करोड़ गोदान ब्राह्मणों को दिये हैं। मेरा कहा कभी झूठ नहीं हुआ। आकाश और पृथ्वी दोनों मेरे ही सत्य के बल पर टिके हैं। सत्य ही के प्रताप से अग्निदेव भूमण्डल में जलते हैं। इसी से साधुजन सत्य का आदर करते हैं। हे अष्टक, हे प्रतर्दन, हे वसुमान्, मैं जो तुमसे कह रहा हूँ यह सब सत्य है। मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि सब प्राणी, मुनि और देवता सत्य की निष्ठा से ही पूजनीय होते हैं। जो कोई शुद्धचित्त होकर ब्राह्मणों को हम लोगों के स्वर्गलाभ का यह वृत्तान्त सुनावेगा वह भी हमारे लोकों को प्राप्त होगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, अपने नाती के पुण्य-फल से उद्धार होने पर महात्मा राजा ययाति स्वर्ग में पहुँच गये। उनकी अनन्त कीर्त्ति इस समय भी संसार में फैली हुई है। २८

---

## सत्तासी अध्याय

### पूरु के वंश का वर्णन

जनमेजय ने वैशम्पायन से कहा—भगवन्, ययाति के पुत्र पूरु के वंश में जो पराक्रमी राजा हुए हैं उनका वर्णन कीजिए। इस वंश में कोई राजा चरित्रहीन, निर्वीर्य और निःसन्तान नहीं हुआ। विज्ञानी विख्यात चरित्रवाले उन राजाओं का वर्णन मैं विस्तारपूर्वक सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पूरु के वंश का वर्णन करता हूँ, सुनिए। पुरुषसिंह पूरु सभी बातों में अपने पिता के समान थे। इन्द्र के तुल्य पराक्रमी पूरु ने धर्मपूर्वक राज्य किया। उनके पौष्टि नाम की रानी के गर्भ से प्रवीर, ईश्वर और रौद्राश्व नाम के तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए। प्रवीर के शूरसेनी रानी में चक्रवर्ती पुत्र मनस्यु हुआ। मनस्यु के सौवीरी रानी में शक्त, संहनन और वाग्मी नाम के तीन पुत्र हुए। ये तीनों महारथी और शूर थे। पूरु के पुत्र रौद्राश्व के मिश्रकेशी अप्सरा के गर्भ से अन्वग्भानु आदि दस पुत्र हुए। ये सब योद्धा यज्ञ करनेवाले, शूर, शास्त्रज्ञ, वंश चलानेवाले, धर्मात्मा और अस्त्रविद्या में निपुण हुए। इन दसों के ऋचेयु, कक्षेयु, कृकणेयु, स्थण्डिलेयु, वनेयु, जलेयु, तेजेयु, सत्येयु, धर्मेयु, और सन्नतेयु नाम के
११ दस पुत्र उत्पन्न हुए। इन्द्र के तुल्य पराक्रमी ऋचेयु ने अनाधृष्टि नाम से एकछत्र राज्य किया। अनाधृष्टि के पुत्र परम धर्मात्मा और राजसूय, अश्वमेध आदि यज्ञों के करनेवाले मतिनार नाम राजा हुए। मतिनार के महापराक्रमी तंसु, महान्, अतिरथ द्रुह्यु नाम के चार पुत्र हुए। इनमें महापराक्रमी तंसु बड़े यशस्वी और दिग्विजय करनेवाले हुए। तंसु के ईलिन नाम का पुत्र हुआ। इसने भी समग्र पृथ्वीमण्डल का शासन किया। उसके रथन्तरी नाम की रानी के गर्भ से पञ्चमहाभूतों के समान पाँच पुत्र उत्पन्न हुए—दुष्यन्त, शूर, भीम, प्रवसु और वसु। इनमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ दुष्यन्त ही राजा हुए। दुष्यन्त के शकुन्तला के गर्भ से महायशस्वी भरत उत्पन्न
१९ हुए। उन्हीं से भरतवंश चला। भरतवंश का यश संसार में व्याप्त है।

---

## अट्ठासी अध्याय

शकुन्तला की कथा का आरम्भ

[ जनमेजय ने कहा—भगवन्, मैं प्रतापी महाराज भरत के जन्म का हाल और उनका चरित्र विस्तार से सुनना चाहता हूँ, कृपा करके कहिए। ]

वैशम्पायन ने कहा—पूरु के वंश में महाराज दुष्यन्त बड़े प्रतापी राजा हुए। चारों समुद्रों तक सब पृथ्वी उनके अधिकार में थी। वे पृथ्वी में उत्पन्न अन्न का चौथाई हिस्सा 'कर' में लेते थे। कई द्वीप भी उनके शासनाधीन थे। उन्होंने म्लेच्छों के अधिकार-भुक्त देश तक विजय का डङ्का बजाया था। [ वहाँ उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित किये थे। ] उनके राज्य में चारों वर्ण की प्रजा सुख से रहती और अपने धर्म का पालन करती थी। उस समय वर्ण-संकर की जड़ व्यभिचार का नाम कहीं न सुन पड़ता था। पृथ्वी बे-जोते-बोये अन्न के ढेर लगा देती थी, इस कारण कोई खेती न करता था। राज्य में सब जगह धन-रत्नों के ढेर लगे हुए थे। कोई खान खोदकर रत्न निकालने का प्रयत्न न करता था। राज्य भर में कहीं

कोई पापी न देख पड़ता था। सब लोग धर्म में लगे रहकर धर्म और अर्थ प्राप्त करते थे। दुष्यन्त के शासनकाल में न चोर का खटका था, न दुर्भिक्ष का डर था और न महामारी आदि व्याधियों का नाम सुन पड़ता था। चारों वर्ण अपने-अपने धर्म का पालन करने में ही सन्तुष्ट रहते थे। किसी इच्छा की सिद्धि के लिए अनुष्ठान आदि नहीं किये जाते थे। दुष्यन्त के राज्यकाल में प्रजा के लोग निडर और निश्चिन्त होकर सुखभोग करते थे। समय पर वर्षा होती थी, सब अन्नों में रस होता था। पृथ्वी धन-अन्न-चारे आदि से भरी-पुरी और रत्नपूर्ण थी। ऐश्वर्य-वैभव अपार था। सब ब्राह्मण अपने कर्म में लगे हुए सत्यवादी थे। युवा राजा दुष्यन्त का १०
शरीर वज्र के समान दृढ़ था। उनका पराक्रम भी अद्भुत था। वृक्ष आदि सहित मन्दराचल को दोनों हाथों से उठाकर तान सकते थे। वे चतुष्पथ-युद्ध, गदायुद्ध आदि में और हाथी-घोड़े आदि की सवारी में बड़े ही निपुण थे। महाराज दुष्यन्त विष्णु के समान बलवान्, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्र के समान गम्भीर और पृथ्वी के समान क्षमाशील थे। पुर और राज्य की सब प्रजा उनसे प्रसन्न थी—उनको चाहती थी; क्योंकि राजा दुष्यन्त धर्मभाव से राज्य करते थे। १५

---

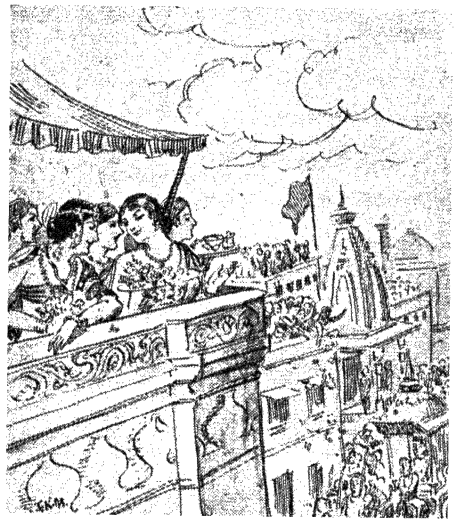
## नवासी अध्याय

### शिकार के लिए दुष्यन्त का वन को जाना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, भरत का जन्म, चरित्र और शकुन्तला की उत्पत्ति तथा उसे जिस तरह दुष्यन्त ने पाया, सो सब वृत्तान्त मैं विस्तार से सुनना चाहता हूँ; कृपा करके कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, एक समय महाबाहु राजा दुष्यन्त बहुत सी चतुरङ्गिणी सेना और हाथी-घोड़े आदि अनेकों वाहन साथ लेकर शिकार खेलने वन को चले। खड्ग, शक्ति, गदा, मूसल, प्रास, तोमर आदि अनेक अस्त्र-शस्त्र हाथ में लिये सैकड़ों योद्धा चारों ओर से महाराज को घेरकर चले। योद्धाओं का सिंहनाद, शंख-नगाड़े आदि का बड़ा शब्द, रथों के पहियों की घरघराहट, हाथियों की चिग्घार, घोड़ों का हिनहिनाना और इसी प्रकार के अन्यान्य विकट शब्द चारों ओर आकाशमण्डल में गूँज उठे। महलों पर बैठी और खड़ी स्त्रियाँ यशस्वी शूर इन्द्रतुल्य दुष्यन्त को राजचिह्नों से अलङ्कृत देखकर अपने को कृतार्थ समझकर आपस में कहने लगीं। देखो, ये शत्रुनाशन पराक्रमी पूरुवंशी पुरुषसिंह महाराज दुष्यन्त हैं। ये १०
अपने बाहुबल से शत्रुओं को मारकर सारी पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य करनेवाले हमारे महाराज हैं। इस प्रकार प्रेमपूर्ण वचनों से स्तुति और प्रशंसा करती हुई स्त्रियाँ जगह-जगह पर महाराज के ऊपर फूलों की वर्षा करती जाती थीं। मार्ग में ब्राह्मण लोग वेदपाठ करके आशीर्वाद देते और प्रशंसा करते हुए मिलते थे। मृगों का शिकार करने के लिए राजा दुष्यन्त

इस प्रकार नगर से निकलकर वन की ओर चले। मस्त हाथी के हौदे पर इन्द्र के समान बैठे हुए राजा के पीछे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि सब आशीर्वाद देते, जयजयकार करते और बढ़तियाँ मनाते चले। बहुत दूर नगर के फाटक तक पहुँचाकर सब लोग राजा की आज्ञा से नगर को लौट गये। वहाँ से राजा गरुड़ के समान वेगवाले रथ पर चढ़कर उसकी घरघराहट त्रिभुवन में करते हुए वन को चले।



आगे राजा को एक नन्दन वन के समान मनोहर वन देख पड़ा। राजा ने देखा कि उसमें बेल, मदार, खैर और कैथ आदि के अनेक वृक्ष हैं। पहाड़ी से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थर इधर-उधर पड़े हैं। वहाँ की ऊँची-नीची भूमि बड़ी बीहड़ है। कई योजन तक फैले हुए उस वन में दूर तक किसी मनुष्य या जल का पता नहीं है। चारों ओर मृग और सिंह आदि अनेक
१९ वनचारी घोर जीव-जन्तु ही देख पड़ते हैं।

उस वन में सेना-अनुचर-वाहन आदि के साथ जाकरके राजा दुष्यन्त सिंह, बाघ आदि जानवरों का शिकार करने लगे। दुष्यन्त ने अपने बाणों का निशाना बनाकर अनेक मृगों को मारा और घायल किया। दूर पर भागे जा रहे बाघों के शरीर भी राजा के बाणों से छिन्न-भिन्न हो गये। दूर के मृगों को तो बाणों से मारा और जो पास थे उन्हें तलवार से काट डाला। बाण, खड्ग, शक्ति, गदा, तोमर आदि शस्त्रों के द्वारा जब राजा और राजा के अनुचर इधर-उधर दौड़कर पशु-पक्षियों का संहार करने लगे तब सिंह आदि पशु प्राण बचाने के लिए भागे। झुण्ड के मुखिया मृगों के मारे जाने पर या भाग जाने पर झुण्ड से बिछड़े अनेक हिरन डर से चिल्लाते छलाँगें मारते इधर-उधर भागते देख पड़ने लगे।

बहुत देर तक दौड़ने के परिश्रम से थके और प्यास से व्याकुल अनेक पशु सूखी नदियों में जल न पाकर वहीं गिर पड़े—उनमें चलने-फिरने की भी ताव नहीं रही। कुछ सैनिकों ने भूख से व्याकुल होकर मृगों का कच्चा ही मांस खा लिया; और कुछ लोग आग बनाकर उसमें कुटे हुए मांस को विधिपूर्वक पकाकर खाने-पीने लगे।

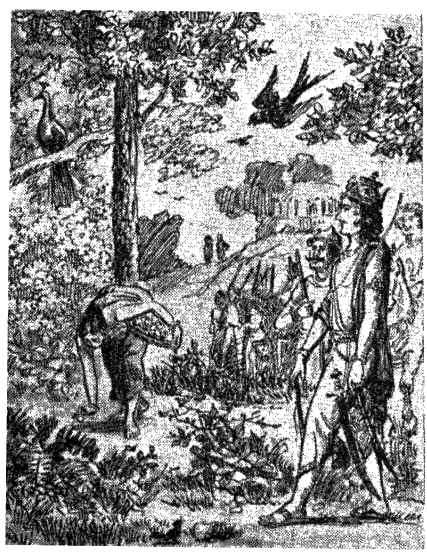
सूँड़ समेटे डरे हुए अनेक जङ्गली हाथी वेग से भागते हुए देख पड़ते थे। वीर शिकारियों के तीर लगने से वे घायल हो रहे थे। उनके शरीरों से रक्त बह रहा था। मारे डर के उनके मल-मूत्र निकला पड़ता था। उन जङ्गली हाथियों के झुण्डों के बीच में जो सेना पड़ गई उसे उन्होंने रौंद डाला। राजा की सेना मेघ के समान उस वन को घेरे हुए थी और बाणों की वर्षा जल की वर्षा के समान जान पड़ती थी। ३१

---

## नब्बे अध्याय

शिकार खेलते-खेलते दुष्यन्त का कण्व ऋषि के आश्रम में पहुँचना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इस प्रकार असंख्य पशु-पक्षियों का शिकार करते-करते राजा थक गये और भूख-प्यास ने भी उन्हें सताया। मृगों का पीछा करते [ और वेग से रथ दौड़ाते हुए राजा सब सेना को वहीं छोड़कर ] केवल एक अनुचर को साथ लिये आगे की ओर एक वन में पहुँचे। जिस वन में राजा सेना-सहित शिकार खेल रहे थे उसके एक छोर पर राजा को एक बहुत बड़ा ऊसर मैदान मिला। उस ऊसर को लाँघ जाने पर और एक बड़ा भारी मनोहर वन मिला। उस तपोवन में जाकर राजा ने मुनियों के अनेक उत्तम आश्रम देखे। उन्हें देखते ही राजा की आँखें तृप्त हुईं और मन प्रसन्न हो गया। वहाँ ठण्डी हवा चल रही थी। बहुत ही कोमल घास लगी हुई थी। अनेक फूले हुए वृक्ष, जहाँ देखो तहाँ लगे हुए थे। मधुर बोलियाँ बोलनेवाले अनेक पक्षियों के शब्द चारों ओर गूँज रहे थे। बड़े-बड़े वृक्ष सर्वत्र अपनी फैली हुई डालों से छाँह किये हुए थे। उस तपोवन में कहीं कोकिला अपनी मीठी तान सुना रही थी, कहीं झींगुरों की झनकार सुन पड़ती थी, कहीं सुगन्धित फूलों के पेड़ों के पास भौंरे भन्नाते हुए एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर उड़-उड़कर घूमते-फिरते थे।



उस तपोवन में फल-फूल से हीन या काँटेवाला कोई पेड़ न था। पक्षियों के शब्द से पूर्ण, फूलों से अलङ्कृत, सब ऋतुओं में फूलने-फलनेवाले और घनी छाया से मनोहर वृक्षों से सुशोभित उस रमणीय तपोवन में राजा के प्रवेश करते ही हवा से हिल रहे वृक्ष उनके मस्तक पर बारम्बार पुष्पवर्षा करने लगे, पेड़ों की ऊँची डालियों पर बैठे हुए पक्षी मधुर बोलियों से मानों उनका स्वागत करने लगे और फूलों के बोझ से झुकी हुई डालियों पर गूँज रहे भौंरे मानो उनका गुणगान करने लगे। वहाँ पुष्पमण्डित लता-कुञ्ज आदि मनोहर स्थानों को देखकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। राजा ने देखा, बड़े-बड़े वृक्ष डालियाँ फैलाकर मानो एक दूसरे से गले मिल रहे हैं। वे ऊँचे वृक्ष इन्द्र की ध्वजा ( झण्डे ) के समान शोभायमान हो रहे हैं। वहाँ सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सराएँ, विद्याधर आदि विचरते रहते हैं। वानर, लंगूर आदि वन के जीव इधर-उधर मौज से घूम रहे हैं। सुखदायक, शीतल, पुष्पपराग से सुगन्धित पवन मानो सैर करता हुआ उस रमणीय स्थान में टहलता रहता है।

वह वन नदी के किनारे पर कछार में था। उस वन की सैर करते-करते राजा को एक परम रमणीय आश्रम देख पड़ा। [ वह आश्रम साक्षात् शान्ति का स्वरूप था। ] उस आश्रम के वृक्षों पर प्रसन्न पक्षी कलोलें कर रहे थे। अग्निहोत्र के अग्नि का धुआँ उठ रहा था। वहाँ यति और वालखिल्य ऋषि विराजमान थे। अग्निहोत्र के स्थानों में सुगन्धित फूल बिछे पड़े थे। आश्रम के पास ही मालिनी नदी बह रही थी। उसके बड़े-बड़े कछार आसपास पड़े हुए थे। उस नदी का पवित्र जल छूते ही सब तरह का ताप मिटा देता था। उस आश्रम की भूमि में सिंह, साँप आदि जीवों को भी शान्त भाव से विचरते देखकर राजा को बड़ी प्रसन्नता हुई। महाराज दुष्यन्त स्वर्ग-सदृश मनोहर उस आश्रम के समीप बहनेवाली, सब जीवों की जननी के तुल्य, पवित्र जल से भरी मालिनी नदी की शोभा देखते हुए घूमने लगे। राजा ने देखा, नदी के तट पर चक्रवाक पक्षी कलोलें कर रहे हैं; जल में पूजा के फूल और फेना बह रहा है; कहीं किन्नर, कहीं वानर, कहीं रीछ टहल रहे हैं; किनारे पर बैठे ब्राह्मण वेदपाठ कर रहे हैं; कहीं मस्त हाथी, सिंह, साँप आदि जीव विचर रहे हैं।



उस नदी के किनारे कश्यप के वंश में उत्पन्न महात्मा कण्व का वह आश्रम देखकर राजा ने उसके भीतर जाने का विचार किया। गङ्गा से शोभित नर-नारायण के आश्रम के सदृश उस मालिनी नदी से युक्त कण्व के आश्रम के पास पहुँचकर राजा ने अपनी सब सेना को वहीं रोक दिया और कहा—"मैं निष्पाप महात्मा तेजस्वी कण्व ऋषि के दर्शन करने जाता हूँ; जब तक मैं न आऊँ तब तक सब सेना यहीं ठहरे।" छत्र, चमर, मुकुट आदि सब राजसी ३२
ठाट वहीं छोड़कर मन्त्री और पुरोहित के साथ राजा उस आश्रम के भीतर गये। आश्रम के भीतर पैर रखते ही राजा की भूख-प्यास और थकन मानो जाती रही। फूल-फलवाले वृक्षों से शोभित, पक्षियों और भौंरों की भीड़ से भरे उस आश्रम की शोभा निहारकर राजा को एक साथ अचरज और आनन्द हुआ। उन्होंने देखा, कहीं वृक्षों की शाखाओं पर बैठे हुए पक्षी विचित्र बोलियाँ बोल रहे हैं; कहीं पर ऋग्वेदी ऋषि यज्ञमण्डप में उदात्त आदि स्वरों से वेद-पाठ कर रहे हैं; कहीं पर चारों वेदों के ज्ञाता ब्रह्मचारी महर्षि बैठे हैं; कहीं पर नियतात्मा, जितेन्द्रिय, अथर्ववेद के ज्ञाता और सामगान करनेवाले ऋषि पद-क्रम आदि के साथ संहिता के मन्त्रों का उच्चारण कर रहे हैं; कहीं पर शब्द-संस्कार-सम्पन्न ब्राह्मण लोग ब्रह्मलोक-सदृश आश्रम में वेदगान कर रहे हैं; कहीं पर यज्ञविधि, पुराण, न्याय, तत्त्वशास्त्र, वेदान्तशास्त्र, शब्दशास्त्र, छन्दःशास्त्र, निरुक्त, वेद-वेदाङ्ग आदि के पूरे विद्वान्, विशेष कार्यों के ज्ञाता, मोक्षधर्मपरायण, ऊहापोह-सिद्धान्त-चतुर, द्रव्य और कर्म के गुणों को जाननेवाले, कार्य-कारण के ज्ञाता, पक्षी और वानर आदि जीवों की बोलियों का मतलब समझने की विद्या के पण्डित अनेक महर्षि बैठे हुए पूर्वोक्त विविध शास्त्रों के विषयों पर विचार कर रहे हैं। कहीं पर इस लोक को ही मानने-वाले चार्वाक आदि के मत-वाले लोग भी अपने मत की व्याख्या कर रहे हैं। ४६

उस आश्रम में जगह-जगह पर व्रतधारी, जप-होम में निरत ब्राह्मणों को राजा ने देखा। मुनियों के बिछे हुए सुन्दर विचित्र आसनों को देखकर राजा को बड़ा विस्मय हुआ। देव-स्थानों में ब्राह्मणों को पूजा करते देखकर राजा ने समझा कि मैं ब्रह्मलोक में हूँ। राजा जितना ही उस आश्रम की शोभा देखते थे उतना ही देखने से जी नहीं भरता था। ५१

---

## इक्यानबे अध्याय

शकुन्तला और दुष्यन्त की बातचीत

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, कण्व के आश्रम में पहुँचकर राजा ने मन्त्रियों को बाहर ही छोड़ दिया। वे अकेले भीतर गये। आश्रम के भीतर कण्व ऋषि को न देखकर अपने

गम्भीर शब्द से वन भर को कम्पायमान करते हुए राजा ने पूछा—यहाँ कौन है ? राजा का शब्द सुनकर तापसी का वेष धारण किये साक्षात् लक्ष्मी के समान सुन्दरी एक कन्या कुटी से बाहर निकल आई। राजा को देखकर उस कन्या ने उनका स्वागत-सत्कार किया, बैठने के लिए आसन दिया, हाथ-पैर-मुँह धोने के लिए जल दिया, और कन्दमूल-फल आदि दिये। इस प्रकार सत्कार और कुशल-प्रश्न करके मधुर स्वर से उस कुमारी ने कहा—महाराज, कहिए, और क्या आपकी सेवा की जाय ?

उस मधुरभाषिणी कुमारी की पूजा ग्रहण करके राजा ने कहा—सुन्दरी, मैं महर्षि कण्व के दर्शन करने आया हूँ। वे इस समय कहाँ हैं ?

[ उस कन्या का नाम शकुन्तला था। ]

शकुन्तला ने कहा—मेरे पिताजी आश्रम [ के निकटवर्ती वन ] से फल लाने को गये हैं। घड़ी भर ठहर जाइए, वे आते ही होंगे।

राजा ने भी ऋषि को न देखा था और उस सुन्दरी कन्या ने भी कहा कि ऋषि आश्रम में नहीं हैं। इससे राजा ऋषि से मिलने का विचार करके ठहर गये। उस तापस-कन्या के अनुपम सौन्दर्य और जवानी को देखकर राजा मन ही मन मुग्ध हो गये। उन्होंने उस सीधी-सादी किशोरी से कहा—सुन्दरी, तुम कौन हो ? किसकी बेटी हो ? ऐसी सुन्दरी युवती होकर भी किसलिए, कहाँ से आकर, वन में रहती हो ? हे शुभरूपिणी, तुमने एक बार देखकर ही मेरे मन को हर लिया है। इसलिए मैं जानना चाहता हूँ कि तुम कौन हो ?

शकुन्तला ने मुसकाते हुए मधुर स्वर से कहा—महाराज, धर्मज्ञ धीर तपस्वी महात्मा कण्व की मैं कन्या हूँ। यह सुनकर दुष्यन्त ने कहा—सुन्दरी, त्रिलोकपूजित महर्षि तो उर्ध्वरेता ब्रह्मचारी हैं। धर्म चाहे अपनी मर्यादा से विचलित हो जाय किन्तु वे धर्म से नहीं डिग सकते। फिर तुम किस तरह उनकी कन्या हुईं ? सब हाल कहकर मेरे इस संशय को दूर करो। शकुन्तला ने कहा—महाराज, एक बार एक ऋषि ने आकर महर्षि कण्व से यही प्रश्न किया था। महर्षि ने उनसे जो कहा था सो मैंने सुना था। वही मैं कहती हूँ। सुनिए।

ऋषि के यह पूछने पर कि आप तो ब्रह्मचारी हैं, फिर यह शकुन्तला आपकी कन्या कैसे हुई ? मेरे पिता कण्व ने उनसे कहा—हे मुनिवर, पूर्व समय में महर्षि विश्वामित्र ऐसा घोर तप करने लगे कि उसे देखकर इन्द्र बहुत ही डरे उनको यह चिन्ता हुई कि ऐसी कठिन तपस्या करके महर्षि कहीं मेरा पद न ले लें। इससे इन्द्र ने अपना काम निकालने के लिए मेनका अप्सरा को बुलाकर उससे कहा कि स्वर्ग की जितनी अप्सराएँ हैं उनमें सबसे बढ़कर सुन्दरी और श्रेष्ठ तुम्हीं हो। तुम मेरा एक उपकार करो। जो मैं कहता हूँ उसे ध्यान देकर सुनो। ये सूर्य के समान तेजस्वी विश्वामित्र घोर तपस्या कर रहे हैं। इनकी तपस्या देखकर इन्द्र-पदवी छिनने की चिन्ता और डर से मेरा हृदय धड़क रहा है। इसलिए तुमको वही उपाय करना होगा जिसमें ऋषि तपोबल के द्वारा मेरे पद को न छीन सकें। इनके पास जाकर तुम ऐसा करो कि तुम पर आसक्त होकर ये तप करना छोड़ दें। रूप, जवानी, माधुरी, हाव भाव, मुसकान, बातचीत और कटाक्ष आदि से मुनि का मन लुभा लो। ऐसा करो कि वे तप करना छोड़ दें।



इन्द्र की प्रार्थना सुनकर मेनका ने कहा—देवराज, महातपस्वी भगवान विश्वामित्र बड़े तेजस्वी और क्रोधी हैं। उनका क्रोध बड़ा भयानक प्रसिद्ध है। उनके तेज, तप और क्रोध से जब आप ही डर रहे हैं तब मैं क्या चीज़ हूँ ! ये वही मुनि हैं जिन्होंने कोप करके महर्षि वशिष्ठ को प्यारे पुत्रों के वियोग का दुःख दिया है। वे क्षत्रिय वंश में जन्म लेकर अपने तपोबल से ब्राह्मण हो गये हैं। उन्हीं ने स्नान के लिए पवित्र अथाह जलवाली कौशिकी नदी की सृष्टि की है। एक समय घोर दुर्भिक्ष पड़ने पर व्याध-रूप को प्राप्त राजर्षि मतङ्ग ( इन्हीं का दूसरा नाम त्रिशंकु था ) ने मुनि विश्वामित्र की स्त्री का पालन और रक्षा की थी। वह दुर्भिक्ष का समय बीत जाने पर इन्हीं विश्वामित्र ने आश्रम में आकर उसी नदी के किनारे मतङ्ग को स्वर्गप्राप्ति के लिए यज्ञ कराया था और उस नदी का नाम 'पारा' रख दिया था। हे इन्द्र, याद करो—त्रिशंकु को जब आपने स्वर्ग से ढकेल दिया तब इन्हीं ने कुपित होकर और स्वर्ग तथा अन्य नक्षत्रों की नई सृष्टि करना आरम्भ कर दिया था। इन्हीं के डर से आपको त्रिशंकु के यज्ञ में सोमरस पीने जाना ३०

पड़ा था। ब्रह्मर्षि गुरु वशिष्ठ ने त्रिशंकु को शाप दिया था। उन्हें उस शाप से छुड़ाकर स्वर्ग में भेजनेवाले महातपस्वी विश्वामित्र के प्रभाव को कौन नहीं जानता! वे ऋषि ऐसे अद्भुत उग्र कर्म करनेवाले हैं; इसी से मैं डरती हूँ। देवराज, मुझे ऐसी आज्ञा दीजिए जिसमें कुपित मुनि मुझे नष्ट न कर दें। देखिए, वे मुनिवर अपने तेज से त्रिभुवन को जला सकते हैं, पैर की ठोकर से पृथ्वी को हिला सकते हैं, महामेरु पर्वत को उठाकर फेंक सकते हैं, सब दिशाओं को एकाकार कर सकते हैं। ऐसे प्रज्वलित अग्नि के समान और जितेन्द्रिय तपस्वी को मुझ ऐसी स्त्री छू भी तो नहीं सकती। उनके मुँह में अग्नि, नेत्रों में सूर्य-चन्द्रमा और जिह्वा में काल है। उनके पास भी मुझ सरीखी स्त्री नहीं जा सकती। यम, सोम, महर्षि-गण, साध्यगण और तेजस्वी तपस्वी वालखिल्य ऋषि भी जिन मुनि के प्रभाव से डरते हैं उनसे मैं स्त्री जाति होकर कैसे न डरूँ? और उधर आपकी आज्ञा को भी मैं नहीं टाल सकती। आपकी आज्ञा का पालन करने के लिए मुझको ऋषि के पास जाना ही होगा। आप मेरी रक्षा का कोई उपाय सोचिए। ऐसा कीजिए, जिसमें मैं मुनि के कोप से बच जाऊँ और आपका काम भी सिद्ध हो जाय। देव, मैं मुनिवर के पास जाकर क्रीड़ा करती हुई इधर-उधर फिरूँगी। आप पवन को आज्ञा दीजिए, वे उस समय मेरे अङ्ग पर से कपड़ा हटा दें। उस समय कामदेव को भी मेरी सहायता करनी पड़ेगी। मैं जिस समय ऋषि का मन लुभाने की चेष्टा करूँ उस समय वायु फूलों की सुगन्ध लिये मन्दगति से डोलने लगें।

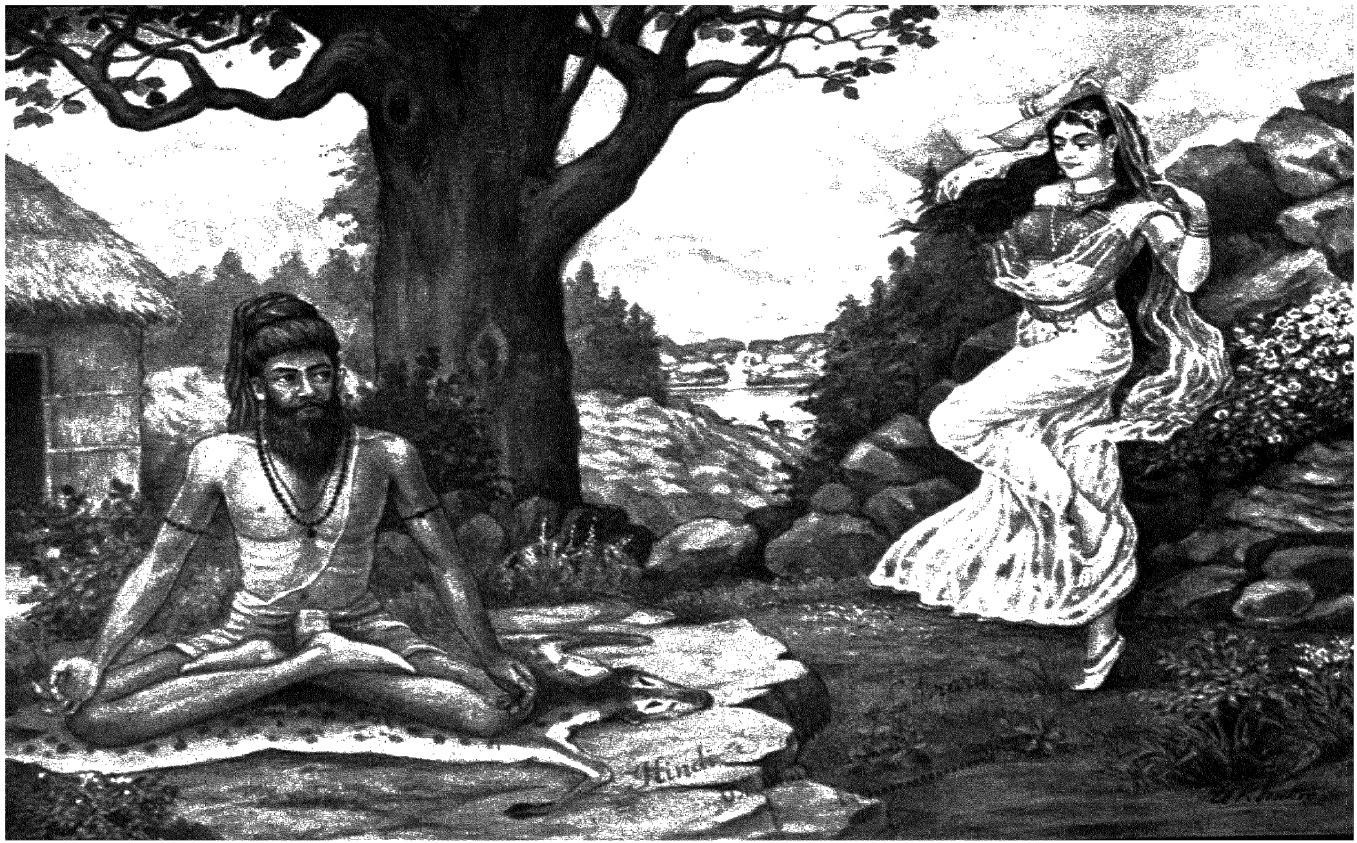
इन्द्र ने मेनका का कहना मान करके कामदेव और वसन्त-पवन को उसके साथ कर
४२ दिया। तब मेनका विश्वामित्र के आश्रम को गई।

---

## बानवे अध्याय

### विश्वामित्र से मेनका में शकुन्तला का जन्म

शकुन्तला दुष्यन्त से कहती है कि महाराज, महर्षि कण्व ने उन ऋषि से कहा—मुनिवर, इन्द्र की आज्ञा से पवन मेनका के साथ हो लिये। मेनका स्वर्ग से चलकर विश्वामित्र के आश्रम में आई। उसने डरते-डरते आश्रम में जाकरके देखा कि निष्पाप पवित्र-शरीर मुनि विश्वामित्र तपस्या कर रहे हैं। मेनका ने पहले उनको प्रणाम किया और फिर वह हाव-भाव प्रकट करके वहीं इधर-उधर टहलती हुई गेंद लेकर खेलने लगी। इसी समय वायु ने उसके शरीर से उज्ज्वल कपड़ा उड़ाकर अलग कर दिया। वायु पर खीझने का ऐसा भाव प्रकट करके लज्जा का अभिनय करती हुई वह अप्सरा उस वस्त्र को उठाने के लिए दौड़ी। मुनि का ध्यान बँट गया, आखें खुल गईं। उन्होंने देखा कि परम सुन्दरी युवती अप्सरा नङ्गी कपड़ा उठाने का



विश्वामित्र का तपोभङ्ग ।—पृ० १६४

उद्योग कर रही है। उस परम रमणीय सुन्दरी को नङ्गी देखकर, उसकी जवानी और रूप पर रीझकर, मुनि कामवश हो गये। अङ्ग-सङ्ग की इच्छा करके मुनि ने उसको अपने पास बुलाकर अपना मनोरथ प्रकट किया। मेनका तो इसके लिए आई ही थी।

इस प्रकार अप्सरा के सङ्ग में पड़कर महर्षि विश्वामित्र बहुत दिनों तक सुख भोगते रहे। उतना समय उन्हें एक दिन के समान जान पड़ा। इसी समय में मुनि के, मेनका के गर्भ से, शकुन्तला कन्या उत्पन्न हुई। हिमवान् पर्वत की तराई में मालिनी नदी के किनारे उस तुरन्त की पैदा हुई बालिका को छोड़कर वह अप्सरा, अपना काम करके, स्वर्ग को चली गई। ११

सिंह, बाघ आदि ख़ूनी जानवर जिसमें भरे पड़े हैं ऐसे निर्जन वन में उस बालिका को पड़े देखकर वन के पक्षियों ने इस तरह उसे घेर लिया कि गिद्ध आदि मांसभोजी पक्षी उसे कुछ हानि न पहुँचा सकें। इसी समय मैं स्नान करने को नदी के तट पर गया। वहाँ निर्जन वन के बीच पक्षियों से घिरी हुई तुरन्त की उपजी बालिका को देखकर मैं आश्रम में उठा लाया और अपनी कन्या की तरह इसका पालन करने लगा। यह वही कन्या है। इसको मैंने अपनी कन्या माना है। धर्मशास्त्र की दृष्टि से पिता तीन प्रकार के हैं—शरीरकर्ता, प्राणदाता और अन्नदाता। शकुन्त ( पक्षी ) निर्जन वन में घेरकर रक्षा कर रहे थे, इसी से इसका नाम मैंने शकुन्तला रक्खा है। यह शकुन्तला इस प्रकार मेरी कन्या है। यह भी मुझे अपना पिता समझती है।

महाराज दुष्यन्त, मुनि के पूछने पर पिता कण्व ने जो मेरे जन्म का वृत्तान्त उनसे कहा था, सो मैंने आपके आगे कह दिया। मैं अपने पिता को नहीं पहचानती; कण्व को ही पिता जानती और मानती हूँ। १९

---

## तिरानवे अध्याय

गान्धर्व विवाह की रीति से शकुन्तला का पाणिग्रहण। कण्व और शकुन्तला की बातचीत। कण्व का शकुन्तला को वर देना

दुष्यन्त ने कहा—कल्याणी, मैं पहले ही समझ गया था कि तुम ब्राह्मण की बेटी नहीं हो, अब तुम्हारे कहने से और भी स्पष्ट हो गया कि तुम क्षत्रिय की कन्या हो। हे सुन्दरी, तुम मेरी भार्या होना स्वीकार करो। कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? सोने की माला, कपड़े, सोने के कुण्डल, अनेक देशों के अमूल्य अनोखे मणि और रत्न, अनेक अलङ्कार, मृगचर्म, सब अपनी सम्पत्ति, यहाँ तक कि सारा राज्य भी मैं तुमको देता हूँ। तुम गान्धर्व विधि से मेरे साथ विवाह करो। [ क्षत्रिय-क्षत्रिया के लिए ] गान्धर्व विवाह सब विवाहों में श्रेष्ठ भी है।

शकुन्तला ने कहा—राजन्, मैं कह चुकी हूँ कि पिता कण्व फल लाने को गये हैं। घड़ी भर ठहर जाइए। वही आकर मुझे तुमको देंगे।

दुष्यन्त ने कहा—सुन्दरी, मैं चाहता हूँ कि तुम आप अपनी इच्छा से मुझको भजो। मैं तुम्हारे ऊपर मुग्ध हो रहा हूँ—मेरा मन तुममें ही लग गया है—अपनी भलाई को मनुष्य आप ही समझ सकता है। मनुष्य आप ही अपनी गति निश्चित करता है। इस कारण धर्मपूर्वक तुम आप ही मुझे आत्मसमर्पण करो। धर्मशास्त्र में इन आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख है—ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच। मनु भगवान् ने कहा है कि इन आठ प्रकार के विवाहों में से पहले से चौथे तक ब्राह्मण के लिए और पहले से छठे तक
१० क्षत्रिय के लिए विहित हैं। राजा लोग सातवाँ—राक्षस-विवाह—भी कर सकते हैं। वैश्य और शूद्र आसुर विवाह भी कर सकते हैं। पहले से पाँचवें प्रकार के विवाह तक पहले के तीन—ब्राह्म, दैव और प्राजापत्य—धर्मविहित अर्थात् उत्तम हैं और चौथे व पाँचवें प्रकार के—आर्ष और आसुर—विवाह धर्मविहित नहीं हैं। पैशाच और आसुर विवाह द्विजों को कभी न करने चाहिएँ, क्योंकि वे उनके लिए प्रशंसनीय नहीं हैं। विवाह की यही धर्मानुमोदित विधि है। एक की इच्छा से, या दोनों की राज़ी से, होनेवाले गान्धर्व और राक्षस विवाह ही क्षत्रियों के लिए श्रेष्ठ हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। मेरी तुमसे विवाह करने की बड़ी इच्छा है, इसलिए तुम भी इच्छा-पूर्वक गान्धर्व विवाह करके मुझे कृतार्थ करो।

शकुन्तला ने कहा—महाराज, यदि यही धर्म का मार्ग है और यदि मुझे अपने को आप देने का अधिकार है तो मैं आपको गान्धर्व रीति से आत्मसमर्पण करना अङ्गीकार करती हूँ। किन्तु पहले आपको एक प्रतिज्ञा करनी होगी। आप सत्यपूर्वक प्रतिज्ञा कीजिए कि मेरे गर्भ से आपके जो पुत्र होगा उसी को आप राज्य का उत्तराधिकारी बनावेंगे। यदि आप यह शर्त मान लें तो मैं भी आपको अपना पति बनाने के लिए तैयार हूँ।

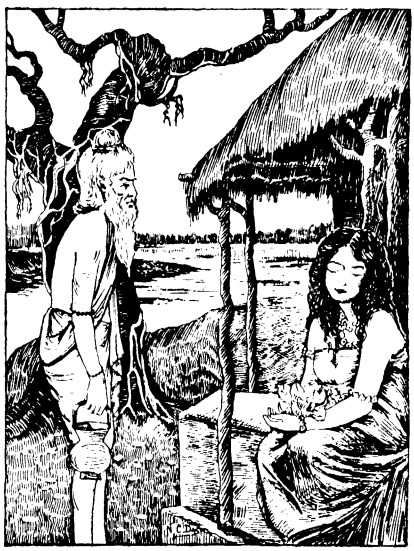
राजा दुष्यन्त ने कुछ भी सोचे-विचारे बिना उसी दम यह शर्त मान ली। और, कहा कि हे सुन्दरी, मैं शीघ्र ही तुमको अपनी राजधानी में ले जाऊँगा। तुम महाराजाओं के रनिवास में ही रहने के योग्य हो।

यों कहकर गान्धर्व विधि से राजा ने शकुन्तला के साथ विवाह किया और वहीं [ लताकुञ्ज में ] अपनी इच्छा पूरी की। इसके उपरान्त चलते समय दुष्यन्त ने बारम्बार शकुन्तला से कहा—सुन्दरी, तुम विश्वास रक्खो, तुम्हें लेने के लिए मैं
२१ चतुरङ्गिणी सेना भेजूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, इस प्रकार शकुन्तला से प्रतिज्ञा करके "कण्व यह सब सुनेंगे तो क्या कहेंगे!" यही सोचते हुए राजा अपने नगर में पहुँच गये।


दुष्यन्त-शकुन्तला मिलन
T.K. Mitra

उधर थोड़ी देर में महर्षि कण्व अपने आश्रम में आये। शकुन्तला लज्जा के मारे पहले की तरह बेधड़क उनके सामने न जा सकी। महर्षि कण्व ने अपने दिव्य ज्ञान से सब हाल जान लिया। तब उन्होंने शकुन्तला से कहा—



पुत्री, तुमने आज मुझको जताये बिना जो पुरुष को स्वीकार किया है उसके लिए तुम कुछ चिन्ता न करो। उससे धर्म की कुछ भी हानि नहीं हुई। [ शास्त्र में लिखा है कि ] इच्छा होने पर सकाम क्षत्रिय सकामा स्त्री के साथ, चाहे वेद के मन्त्र पढ़कर और चाहे यों ही, एकान्त में गान्धर्व विवाह कर सकता है। शकुन्तला, तुमने पुरुषश्रेष्ठ महात्मा धर्मपरायण राजा दुष्यन्त को आत्म-समर्पण किया सो अच्छा ही किया। [ मेरे आशीर्वाद से ] तुम्हारे एक महाबली पराक्रमी प्रभावशाली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। वह समुद्र के किनारे तक सारे पृथ्वीमण्डल का राज्य करेगा। दिग्विजय में या युद्ध में वह अजेय होगा और उसकी आज्ञा सर्वत्र मानी जायगी। ३०

तब शकुन्तला ने मुनि के हाथ से फलों का बोझ लेकर उनके हाथ-पैर धोये। ऋषि के कुछ विश्राम कर चुकने पर शकुन्तला ने कहा—पिता, मैंने दुष्यन्त को आत्मसमर्पण किया और पति बनाया है। अतएव कृपा करके उन पर और उनके मन्त्रियों पर प्रसन्न हूजिए। उन्होंने कहा—पुत्री, मैं तुम्हारे स्नेह के कारण उन लोगों पर प्रसन्न ही हूँ। तुम्हारी जो इच्छा हो वह वर मुझसे माँग लो। शकुन्तला ने दुष्यन्त के हित की इच्छा से यही वर माँगा कि पुरुवंश के लोग कभी धर्म और राज्य से भ्रष्ट न हों। ३४

---

## चौरानबे अध्याय

### शकुन्तला के पुत्र का जन्म और उस बालक का सर्वदमन नाम पड़ना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शीघ्र ही सेना भेजकर शकुन्तला को अपने पास बुलाने की प्रतिज्ञा करके दुष्यन्त अपने नगर को चले गये। इधर ठीक समय पर शकुन्तला को एक असाधारण पराक्रमी तेजस्वी बालक उत्पन्न हुआ। पुण्यकार्यों के जानकार महर्षि कण्व ने ही सौन्दर्य,

औदार्य आदि श्रेष्ठ गुणों से अलङ्कृत उस अग्नि के समान तेजस्वी बालक के जातकर्म आदि संस्कार किये। वह दिन-दिन बढ़ता हुआ असाधारण बलशाली हो उठा। उसके दाँत नुकीले और चमकीले थे, हाथ में चक्र का चिह्न था, सिर बहुत बड़ा था।

वह कुमार छः वर्ष की अवस्था में ही सिंह, व्याघ्र, वराह, भैंसे, मस्त हाथी आदि आश्रम मे फिरनेवाले जङ्गली जानवरों को पकड़ लेता था। किसी को पेड़ में बाँध देता, किसी की पीठ पर चढ़ता, किसी के पीछे दौड़ता और इस प्रकार उनके साथ खेला करता था। उस बालक के इन अलौकिक कर्मों को देखकर सब आश्रमवासी ऋषियों ने सबका दमन करनेवाले उस बालक का नाम सर्वदमन रख दिया।

उस बालक के ऐसे अलौकिक कर्म और पराक्रम देखकर कण्व ने शकुन्तला से कहा कि
१० पुत्री, तुम्हारा पुत्र अब युवराज होने योग्य हो गया। अब उन्होंने अपने शिष्यों को आज्ञा दी कि तुम शकुन्तला को उसके पुत्र-सहित झटपट स्वामी के घर पहुँचा आओ। विवाहिता स्त्रियों के लिए बहुत दिनों तक पिता-माता के घर रहना उचित नहीं। इससे उनके यश, चरित्र और धर्म में धब्बा लगता है। इस कारण शीघ्र यह काम कर आओ।

शिष्य लोग "जो आज्ञा" कहकर प्रभातकाल के सूर्य के समान तेजस्वी, कमललोचन, देवकुमार-तुल्य मनोहर बालक के साथ शकुन्तला को लेकर हस्तिनापुर की ओर चले। राजा की सभा में पहुँचकर मुनिशिष्यों ने राजा से कहा—महाराज, आपकी यह स्त्री और पुत्र आपके पास पहुँचाकर हम आश्रम को जाते हैं। तपस्वी ऋषिकुमार यह कहकर कण्व के आश्रम को लौट गये। शकुन्तला ने उचित रूप से प्रणाम करके दुष्यन्त से कहा—महाराज, यह देवताओं के समान बल-वीर्य्य और कान्तिवाला बालक आपसे मेरे गर्भ मे उत्पन्न हुआ है। अब यह योग्य और सयाना हुआ है। इस कारण महर्षि कण्व के आश्रम मे प्रथम समागम के समय मेरे साथ आपने जो प्रतिज्ञा की थी उसके अनुसार इसे युवराज बनाइए।

राजा को सब याद था; तथापि शकुन्तला के ये वचन सुनते ही उन्होंने कहा—अरी दुष्टा, तू किसकी स्त्री है? और यह किसका बालक है? मुझे तो तुझसे मिलने की और ऐसी प्रतिज्ञा करने की याद ही नहीं। मैं धर्म, अर्थ या काम के सम्बन्ध में तेरे साथ अपना कुछ भी संसर्ग नहीं जानता। इसलिए तू चाहे जहाँ जा, मैं न तुझसे ठहरने ही के
२० लिए कहता हूँ और न जाने के लिए ही।

[ निरपराधिनी सत्यवादिनी ] ऋषिकन्या शकुन्तला के सिर पर मानो गाज गिर पड़ी। वह थूनी की तरह कुछ समय तक लज्जा और दुःख से अचेत सी खड़ी रही। क्रोध के मारे शकुन्तला के नेत्र लाल हो आये और दोनों ओठ [ कठिन उत्तर देने के लिए ] फड़कने लगे। सुन्दरी शकुन्तला बीच-बीच में तिरछे तीक्ष्ण कटाक्षों से इस तरह राजा की ओर देखने लगी



भरत की क्रीड़ा—पृ० १६८

मानो जला देगी। क्रोध से प्रदीप्त सञ्चित तपोबल स्पष्ट ही प्रज्वलित हो उठा; किन्तु उसे शकुन्तला ने आप ही शान्त कर लिया—अर्थात् शाप नहीं दिया।

इस तरह घड़ी भर असह्य चिन्ता में पड़े रहकर शकुन्तला ने राजा की ओर देखकर क्रोध और दुःख के क्षोभ को प्रकट करनेवाले स्वर में कहा—महाराज, आप सब जानते हैं, आपको सब स्मरण है। तो भी साधारण नीच पुरुषों की तरह बेधड़क "कुछ नहीं जानता—मुझे कुछ याद नहीं" यह कैसे कह रहे हैं? इस विषय की सचाई और झूठाई को आपका



हृदय जानता होगा। आप सच और झूठ के साक्षी आत्मा का अनादर कर रहे हैं! आप सच कहिए, अपने आत्मा को ही झूठा न बनाइए। जो कोई अपने को जानता कुछ है और दूसरे के आगे प्रकट करता कुछ है उस आत्मापहारी को चोरी का पाप लगता है। ऐसे पुरुष के लिए कोई भी पाप कठिन नहीं। आप सोचते हैं कि इस मामले को अकेले आप ही जानते हैं, किन्तु महाराज, यह आपका भ्रम है। हृदय में अन्तर्यामी नारायण का निवास है—वे मनुष्य के सब कर्मों के साक्षी हैं। आप उन्हीं नारायण के सामने पापभागी हो रहे हैं। पाप करनेवाले लोग अपने मन में यह समझते हैं कि मेरे पाप को किसी ने नहीं देखा—वे नहीं जानते कि सब देवता और हृदय में आत्मा-रूप से विराजमान नारायण उसके साक्षी हैं। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात्रि, प्रातःकाल, सायङ्काल और धर्म ये मनुष्य के आचरणों को सदा देखा करते हैं। ३०
हृदय में रहनेवाले नारायण जिसके कामों को देखकर सन्तुष्ट होते हैं उसको सूर्यपुत्र यमराज छोड़ देते हैं। और, वे नारायण जिसके कर्मों से रुष्ट होते हैं उसी को पापी समझकर यमराज अनेक यातनाएँ देते हैं। जो आत्मा का अपमान करके अपने को और का और प्रकट करता है, उसे देवता या परमात्मा किसी से कल्याण नहीं मिलता। मैं पतिव्रता हूँ; अपने आप आई हूँ, यह समझकर ऐसा निरादर न कीजिए। मैं आदर की अधिकारिणी भार्या आपके पास स्वयं आई हूँ; आप क्यों नहीं आदर के साथ मुझे ग्रहण करते? महाराज, साधारण जनों की तरह आप भरी सभा में क्यों मेरा अपमान कर रहे हैं? मैं जङ्गल में खड़ी नहीं रो रही हूँ; फिर आप क्यों नहीं मेरी प्रार्थना पर ध्यान देते? राजन्, मैं बारम्बार प्रार्थना कर रही हूँ; यदि इतने पर भी आप मेरे कहे पर ध्यान न देंगे तो याद रखिए आपके सिर के सौ

टुकड़े हो जायँगे ! वेदज्ञ शास्त्रकारों ने स्पष्ट रूप से कहा है कि स्वामी भार्या के उदर में प्रवेश करके आप ही पुत्ररूप से उत्पन्न होता है, इसी से स्त्री को जाया कहते हैं। धर्मपत्नी से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह वंश बढ़ाकर पूर्वपुरुषों का उद्धार करता है। लड़का पुं-नाम के नरक से पितरों की रक्षा करता है, इसी से उसको पुत्र कहते हैं। जो स्त्री गिरिस्ती के कामों में होशियार, पुत्रवाली, पति से अनन्य प्रेम रखनेवाली पतिव्रता होती है वही वास्तव में भार्या
४० है। भार्या पुरुष का आधा अङ्ग है। भार्या सबसे उत्तम मित्र है। भार्या से ही धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि होती है। भार्या ही मुक्ति की जड़ है। भार्या के बिना पुरुष धर्म-कर्म नहीं कर सकता। भार्या से ही गृहस्थाश्रम पूरा होता है। भार्या से ही मनुष्य सौभाग्यशाली होता है और भार्या से ही सुख मिलता है। मधुर वचन बोलनेवाली स्त्री एकान्त में मित्र की तरह सुख देती है, धर्मकार्य में पिता की तरह लगाती रहती है, और रोग आदि की पीड़ा के समय माता की तरह सेवा करती है। स्त्री साथ में रहने से मनुष्य घने सूने जङ्गल में भी सुख से रह सकता है। जिसके स्त्री नहीं है, उस पर कोई विश्वास नहीं करता। इसलिए स्त्री ही पुरुष की श्रेष्ठ गति है। विपत्ति के समय और मरने पर पतिव्रता स्त्री ही (सती होकर) पुरुष का साथ देती है। जो पतिव्रता स्त्री पहले मर जाती है तो परलोक में पति के लिए अपेक्षा करती है; किन्तु पति जो पहले मर जाता है तो वह उसी समय उसके साथ परलोक सिधारती है। इसी कारण महाराज, विवाह की चाल चली है। जो स्त्री होती है उसे उसका पति इस लोक में और परलोक में भी पाता है। पण्डितों का कहना है कि पुरुष पुत्ररूप से आप ही स्त्री में उत्पन्न होता है; इस कारण पुत्रवती स्त्री का माता के समान आदर करना चाहिए। जैसे स्वर्ग को पाकर पुण्यात्मा पुरुष को प्रसन्नता होती है वैसे पिता अपने पुत्र को, शीशे में अपने चेहरे की तरह, देखकर आनन्दित होता है। जैसे धूप में जला हुआ मनुष्य ठण्डे पानी में नहाकर प्रसन्न होता है वैसे ही शरीर की पीड़ा और मन के सन्ताप से व्याकुल पुरुष स्त्री के सङ्ग
५० से शान्ति पाता है। रति, प्रीति और धर्म भार्या के ही अधीन है। इसलिए कुछ गर्म पड़ने पर भी पण्डितजन स्त्री से अप्रिय वचन नहीं कहते। स्त्रियों से ही पुरुष पैदा होते हैं—वे ही पुरुषों की उत्पत्ति का पवित्र और नित्य स्थान हैं। स्त्रियों के बिना बड़े-बड़े ऋषि भी प्रजा उत्पन्न नहीं कर सकते। जब मिट्टी में लोटा हुआ बालक दौड़कर पिता से लिपट जाता है तब पिता को जो सुख मिलता है उस सुख से बढ़कर संसार में कोई सुख ही नहीं। देखिए, यह तेजस्वी सुन्दर आपका बालक, आपके पास आने की इच्छा से, बारम्बार आपकी ओर निहार रहा है—आप क्यों नहीं इसे प्रेम से बुलाकर गोद में ले लेते ? महाराज, चींटियाँ भी अपने अण्डे लिये-लिये फिरती और उन्हें पालती हैं। आप धर्मज्ञ और समर्थ होकर ऐसे पुत्र का अनादर कर रहे हैं ! मुझसे उत्पन्न अपने पुत्र का भरण-पोषण आप क्यों न

करेंगे ? पुत्र के लिपटने से बड़ा सुख मिलता है—कलेजे में ठण्डक पड़ती है। वस्त्र, स्त्री का स्पर्श और जल भी वैसा शीतल और सुखदायक नहीं है। जैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, चौपायों में गाय और पूजनीय पुरुषों में गुरु श्रेष्ठ है वैसे ही सुख-स्पर्श वस्तुओं में पुत्र श्रेष्ठ है। आप बुलाकर इस प्रिय-दर्शन बालक को छाती से लगा लीजिए। पुत्र-स्पर्श से बढ़कर सुख इस संसार में नहीं है। पूरे तीन वर्ष गर्भ में रहकर यह परम पराक्रमी आपका पुत्र पैदा हुआ है। जब मैं सौर में थी तब मैंने आकाशवाणी सुनी थी कि यह आपका पुत्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके अपना यश बढ़ावेगा। मनुष्यों में देखा जाता है कि थोड़ी दूर पर दूसरे गाँव की यात्रा से ६०
लौटकर जब घर आते हैं तब स्नेह के मारे बालकों को गोद में लेकर प्रीति से उनका माथा सूँघते हैं। आप जानते हैं, जातकर्म-संस्कार के समय जो वैदिक मन्त्र पढ़े जाते हैं उनका मतलब क्या है ? उन मन्त्रों का आशय यह है कि "पुत्र, तुम्हारे अङ्ग मेरे अङ्ग से और तुम्हारा हृदय मेरे हृदय से उत्पन्न हुआ है। हे पुत्र, तुम केवल नाममात्र को मुझसे अलग हो—तुम मेरे आत्मा ही हो—तुम्हारी पूरे सौ वर्ष की आयु हो। पुत्र, मेरा जीवन और वंश तुम्हारे अधीन है; तुम सुख से पूरे सौ वर्ष तक जियो।" इस आशय के मन्त्र पढ़कर पिता पुत्र के मस्तक को सूँघता है। आप पहले एक थे, अब इस पुत्र से दो हो गये हैं। यह पुत्र आप के ही अङ्ग से उत्पन्न हुआ है। निर्मल सरोवर के जल में अपने प्रतिबिम्ब के समान सामने खड़े हुए अपने इस पुत्र को देखिए। जैसे गार्हपत्य अग्नि से आहवनीय अग्नि उत्पन्न होता है वैसे यह पुत्र भी आप से ही उत्पन्न हुआ है। यह और कोई नहीं, आप का ही दूसरा रूप है। राजन्, स्मरण कीजिए; आप जब शिकार के लिए वन में जाकर मृग का पीछा करते-करते मेरे पिता कण्व के आश्रम में पहुँचे थे तब वहीं मुझसे आपसे भेंट हुई थी और आपने मुझसे गान्धर्व विवाह किया था। उर्वशी, पूर्वचित्ति, सहजन्या, मेनका, विश्वाची और घृताची, स्वर्ग की ये छः प्रधान अप्सराएँ हैं। इनमें भी ब्रह्मवीर्य से उत्पन्न मेनका सबसे श्रेष्ठ है। मेनका ने स्वर्ग से पृथ्वी पर आकर विश्वामित्र ऋषि के सहवास से गर्भ धारण किया और अन्त को हिमालय के शिखर पर मुझे उत्पन्न करके पराये बच्चे की तरह छोड़कर वह देवलोक को चली गई। राजन्, मैंने पूर्वजन्म में ऐसा कौन पाप किया था ७०
कि बचपन में माता-पिता ने तज दिया और अब आप त्यागे देते हैं ! आप मुझे भले ही छोड़ दें, मैं महात्मा मुनि के आश्रम को लौट जाने के लिए तैयार हूँ; किन्तु इस अपने प्रतापी बालक को तो आप रख लीजिए।

राजा ने कहा—शकुन्तला, तुम्हारे गर्भ से बालक उत्पन्न करने की मुझको बिल्कुल याद ही नहीं। स्त्रियाँ झूठ बोलने के लिए प्रसिद्ध हैं। इस कारण तुम्हारी इन बातों पर कौन विश्वास करेगा ? ममताहीन वेश्या मेनका तुम्हारी माता है, जो निर्माल्य की तरह हिमालय पर तुमको

छोड़कर चली गई। क्षत्रिय होकर ब्राह्मण होने की इच्छा रखनेवाले कामातुर निर्दय विश्वामित्र तुम्हारे पिता हैं। अप्सराओं में मेनका और मुनियों में विश्वामित्र श्रेष्ठ समझे जाते हैं। उनकी कन्या होकर तुम कुलटा स्त्रियों की ऐसी बातें करके मेरे गले क्यों पड़ रही हो? हे दुष्ट तापसी, तुम जो मेरे सामने ये अश्रद्धेय बातें कह रही हो, इसमें तुमको लज्जा नहीं आती? तुम ऐसी दीन तापसी का राजर्षि विश्वामित्र और श्रेष्ठ अप्सरा की कन्या होना असम्भव जान पड़ता है। तुम्हीं बताओ, तुम्हारा यह पुत्र, इतने थोड़े समय में, साखू के लट्ठे के समान दृढ़ कैसे हो उठा? तुम नीच जाति की हो; तुम कैसे मेरी स्त्री हो सकती हो! मेनका ने शायद कामवश होकर तुम्हें गर्भ में धारण किया था। जो हो, तुम जो कह रही हो उसका ख़याल मुझे नहीं आता।
८१ मैं तुमको नहीं पहचानता; जहाँ तुम्हारा जी चाहे, चली जाओ।

शकुन्तला ने कहा—राजन्, आप पराये सरसों बराबर ऐब को तो देखते हैं, किन्तु अपने बेल बराबर ऐब को देखकर भी उस पर ध्यान नहीं देते। देवनारियों में जैसे मेनका श्रेष्ठ है, वैसे मेरी जाति भी आपकी जाति से श्रेष्ठ है। आप धरती में भ्रमण करते हैं, किन्तु मैं आकाशमार्ग में भी विचर सकती हूँ। इतने से ही आप समझ सकते हैं कि मुझमें और आपमें सुमेरु और सरसों का इतना अन्तर है। मैं महेन्द्र, कुबेर, यम, वरुण आदि सब देवताओं के लोकों में जा सकती हूँ; इसी से आप मेरे प्रभाव को अच्छी तरह जान लें। महाराज, संसार में एक कहावत प्रसिद्ध है। क्षमा कीजिएगा, मैं दृष्टान्तस्वरूप उसको कहूँगी। कुरूप मनुष्य जब तक आईने में अपना चेहरा नहीं देखता तब तक वह अपने को सबसे बढ़कर सुन्दर समझा करता है। परन्तु जब कभी वह आईने में अपनी सूरत देख पाता है तब उसे मालूम पड़ता है कि दूसरे का रूप उसके रूप से कितना अच्छा है। जो सचमुच सुन्दर पुरुष है वह किसी का निरादर नहीं करता। लगातार दुर्वचन कहनेवाले मनुष्य निन्दक और दूसरों को पीड़ा पहुँचानेवाले कहलाते हैं। शूकर जैसे विष्ठा की ओर ही झुकता है वैसे मूर्ख पुरुष दूसरे की बड़ाई
९० और निन्दा में निन्दा को ही ग्रहण करता है। किन्तु चतुर लोग हंस के समान होते हैं; वे दूध की तरह उज्ज्वल बड़ाई को ही ग्रहण करते हैं। दूसरों की निन्दा सुनकर साधुओं को जैसे दुःख होता है वैसे ही दुष्टों को उसमें आनन्द मिलता है। सज्जन पुरुष अच्छे आदमियों की बड़ाई करके प्रसन्न होते हैं और दुर्जन पुरुष निन्दा करके आनन्द पाते हैं। जो लोग औरों के ऐब नहीं ढूँढ़ा करते वे बड़े सुख से जीवन बिताते हैं। मूर्ख की ही आयु औरों के दोष देखने में बीतती है। जिन कारणों से साधुजन दुष्टों को बुरा कहते हैं उन्हीं कारणों का आरोप करके दुष्ट लोग भी साधुओं की निन्दा करते हैं। राजन्, इससे बढ़कर संसार में हँसी की बात और क्या हो सकती है कि दुर्जन लोग सज्जनों को दुर्जन कहते हैं! नास्तिक पुरुष भी धर्म और सत्य को छोड़नेवाले मनुष्य से डरते हैं, आस्तिक की तो कुछ बात ही नहीं। जो पुरुष आप पैदा करके पुत्र

को अपना नहीं स्वीकार करता उसे देवता लोग श्रीभ्रष्ट कर देते हैं। उस मूढ़ को स्वर्गलोक भी नहीं मिलता। पितरों का कहना है कि पुत्र कुल और वंश को चलाता है; इस कारण पुत्र उत्पन्न करना सब धर्मों से श्रेष्ठ है। इसलिए पुत्र का त्याग न करना चाहिए। मनु ने—अपनी पत्नी के गर्भ से उत्पन्न ( औरस ), अन्य से प्राप्त, ख़रीदा हुआ, पाला हुआ और क्षेत्रज ये पाँच प्रकार के पुत्र कहे हैं। [ इनमें पहले प्रकार का पुत्र ही श्रेष्ठ है। ] पुत्र उत्पन्न होकर पिता की कीर्त्ति को और कुल के धर्म को बढ़ाता है; माता-पिता को अपूर्व आनन्द देता है। इस कारण पुत्र १००
का त्याग करना आपके लिए उचित नहीं। ऐसा छल न कीजिए; अपनी, सत्य की और धर्म की रक्षा कीजिए। देखिए, सौ कुएँ खुदवाने की अपेक्षा एक बावली ( सरोवर ) बनवाना श्रेष्ठ है। सौ बावली ( सरोवर ) बनवाने की अपेक्षा एक यज्ञ करना श्रेष्ठ है। एक सौ यज्ञ करने की अपेक्षा एक पुत्र उत्पन्न करना श्रेष्ठ है। सौ पुत्र उत्पन्न करने की अपेक्षा सत्यवादी होना श्रेष्ठ है। एक तरफ़ सत्य और दूसरी ओर हज़ार अश्वमेध यज्ञों का फल रखकर देख लो, सत्य का पल्ला ही भारी रहेगा। वेदार्थ को जानने और सब तीर्थों में नहाने से जो पुण्य होता है वह केवल सत्यवादी होने से ही मिल सकता है। सत्य के समान दूसरा धर्म नहीं है। सत्य से श्रेष्ठ भी और कुछ नहीं है। झूठ से बढ़कर कोई पाप भी नहीं है। सत्य ही परब्रह्म है, सत्य ही उत्तम नियम है। इसलिए सत्य की हत्या करके धर्म का नाश न कीजिए। राजन्, यदि आपको मेरी सब बातें झूठी जान पड़ती हैं और मेरे कहे पर विश्वास नहीं होता तो मैं आप वन को चली जाती हूँ। क्योंकि आप ऐसे पुरुष के पास रहना ठीक नहीं जान पड़ता। किन्तु यह याद रखिए यह मेरे गर्भ से उत्पन्न आपका बालक, आपके आगे न सही, स्वर्गवास के उपरान्त, अवश्य ही हिमाचलयुक्त सारी पृथ्वी का सम्राट् होगा। ८

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब शकुन्तला ज्योंही जाने के लिए तैयार हुई त्योंही मन्त्री, पुरोहित और प्रजामण्डली के बीच बैठे हुए राजा को सुनाकर यह आकाशवाणी हुई कि हे महाराज दुष्यन्त, मातारूपी चर्मकोष ( थैली ) से उत्पन्न होनेवाला पुत्र सब तरह पिता का ही रूप है। कारण पिता है, कार्य पुत्र है, माता तो सहायक आधार मात्र है। आप इस बालक का भरण-पोषण कीजिए। शकुन्तला का भी अपमान करना आपके लिए उचित नहीं। पिता पुत्ररूप से आप ही अपने को नरक से उबारता है। यह पुत्र आपका है, शकुन्तला का कहना सच है। जाया ( स्त्री ) अपने स्वामी के आधे अंश को लेकर पुत्र उत्पन्न करती है। अतएव आप इस सन्तान का भरण-पोषण करें। महाराज, जीवित रहकर भी अपने पुत्र को छोड़कर उससे अलग रहना अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है। अतएव आप इसका प्रतिपालन कीजिए। और, आप हम देवताओं के कहने से इसका भरण करेंगे, इस कारण यह बालक 'भरत' नाम से प्रसिद्ध होगा।

यह देववाणी सुनकर राजा दुष्यन्त ने प्रसन्नतापूर्वक अपने मन्त्रियों और पुरोहितों से कहा—आप लोग भी यह आकाशवाणी सुन लीजिए। मैं इस बालक को अच्छी तरह अपना पुत्र जानता हूँ। किन्तु यदि मैं केवल शकुन्तला के कहने से इस बालक को अपना पुत्र मान लेता तो संसार में लोग तरह-तरह के सन्देह करते और यह मेरी सन्तान लोक-दृष्टि से पवित्र न समझी जाती।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, आकाशवाणी के द्वारा पुत्र के यों पवित्र प्रमाणित होने पर प्रसन्नचित्त राजा ने उसे सादर अपनी गोदी में ले लिया। वे प्रीति से उसका माथा सूँघने लगे। अब राजा ने पितरों की प्रसन्नता के लिए शास्त्रोक्त विधि से पितृश्राद्ध किया। ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये। बन्दीजन स्तुतिपाठ करने लगे। पुत्र-स्पर्श का अनुभव करके राजा को असीम आनन्द हुआ।



राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का विशेष आदर किया और समझाते हुए कहा—प्रिये, किसी को जनाये बिना मैंने अकेले में तुमसे ब्याह किया था। इसी से अब तक मैं चिन्ता में पड़ा हुआ था, उपाय सोच रहा था जिसमें तुम्हारी बदनामी न हो। मैं सोचता था, "मेरी प्रजा कहीं मन में यह न समझे कि शकुन्तला ने केवल कामवश होकर राजा से ओछा सम्बन्ध कर लिया है, राजा के साथ विधिपूर्वक इसका विवाह नहीं हुआ, और राजा उसी के अपवित्र पुत्र को राजगद्दी पर बिठावेंगे!" सुन्दरी, यही सोचकर तुम्हारे साथ ऐसा व्यवहार किया है। कमलनयनी, मेरे अन्याय करने से क्रोध करके तुमने जो दुर्वचन मुझे कहे हैं, उनके लिए मैं तुमको क्षमा करता हूँ। तुम मेरी प्यारी पत्नी हो।

राजा ने प्रिया को यों समझाकर भोजन, कपड़े, गहने, दिव्य भोग आदि से प्रसन्न कर लिया। फिर शुभ मुहूर्त्त देखकर दुष्यन्त ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए भरत का राज्याभिषेक करके उन्हें युवराज बना दिया।*

*इस अध्याय के ८ श्लोकों का सम्बन्ध भरत-चरित्र से है इसलिए उनका अर्थ अगले अध्याय में किया गया है।

# पञ्चानबे अध्याय

भरत का चरित्र। भरत के वंश का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, दुष्यन्त के पुत्र प्रतापी महाराज भरत ( पिता के स्वर्गवास के उपरान्त ) अपने प्रसिद्ध दिव्य रथ के पहियों से पृथ्वीमण्डल को प्रतिध्वनित करते हुए दिग्विजय करने के लिए निकले। सब राजाओं को जीतकर, अपने वश में करके, धर्मपूर्वक राज्य का पालन करते हुए महाराज भरत का सुयश सब जगह फैल गया। क्रमशः सबको जीतकर वे चक्रवर्त्ती सार्वभौम राजाधिराज हो गये। महाराज भरत ने इन्द्र की तरह अनेक महायज्ञ किये। बहुत-बहुत दक्षिणावाले उन यज्ञों में पुरोहित का काम महर्षि कण्व ने किया। महात्मा भरत ने गोमेध और अश्वमेध प्रभृति यज्ञ करके उपाध्याय कण्व को दक्षिणा में सहस्र पद्म सोने की मुद्राएँ दीं। महाराज, भरत से ही भारत-वंश की प्रसिद्धि हुई। उनके उपरान्त जो राजा हुए वे संसार में भारत नाम से प्रसिद्ध हैं। भरत-वंश में अनेकों देव-तुल्य तेजस्वी, ब्राह्मणों के समान सदाचारी, राजर्षि हो गये हैं। उनमें मुख्य नरपतियों का वर्णन आगे किया जाता है।

महाराज भरत के तीन रानियाँ थीं। उनमें एक-एक के तीन-तीन पुत्र उत्पन्न हुए। राजा ने उनमें से किसी को अपने सदृश नहीं समझा। राजा को असन्तुष्ट देखकर रानियों ने २०*
क्रोधित हो उन बालकों की हत्या कर डाली। इस कारण भरत का पुत्र उत्पन्न करना व्यर्थ हो गया। अब राजा ने बड़े-बड़े यज्ञ किये। इससे, भरद्वाज ऋषि की कृपा से राजा को भुमन्यु नाम का पुत्र प्राप्त हुआ। भरत ने भुमन्यु को युवराज बनाया। भुमन्यु की रानी का नाम पुष्करिणी था। उनके उसके गर्भ से सुहोत्र, सुहोता, सुहविः, सुयजु, ऋचीक और दिविरथ नाम के छः पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े सुहोत्र को राज्य मिला। महायशस्वी राजा सुहोत्र ने राजसूय, अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये। वे धर्मपूर्वक रत्नपूर्ण समुद्रपर्यन्त पृथ्वी के शासक हुए। उनके यहाँ हाथी, घोड़े, रथ, पैदल सेना और प्रजा इतनी थी कि उनके बोझ से दबी हुई पृथ्वी मानो धँसी जाती थी। पृथ्वीमण्डल पर सब जगह देवताओं के मन्दिर और यज्ञों के यूप देखे जाते थे। अन्न अपरिमित उत्पन्न होता था। प्रजा में बढ़ती देख पड़ती थी। सुहोत्र की रानी का नाम ऐक्ष्वाकी था। उसके गर्भ से सुहोत्र के अजमीढ़, सुमीढ़ और पुरुमीढ़ नाम के तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सबसे बड़े अजमीढ़ राजा हुए। उन्हीं के नाम से उनके वंश के आगे ३०
के राजा आजमीढ़ कहलाते हैं। अजमीढ़ के धूमिनी, नीली और केशिनी ये तीन रानियाँ थीं। धूमिनी के गर्भ से ऋक्ष नाम पुत्र हुआ; नीली के गर्भ से दुष्यन्त और परमेष्ठी नाम के

* श्लोकांक का क्रम अध्याय ८७ और ९५ से सम्बद्ध है।

दो पुत्र हुए; केशिनी के गर्भ से जह्नु, व्रजन और रूपी ये तीन पुत्र हुए। सब पञ्चाल-नरेश दुष्यन्त और परमेष्ठी के वंश में उत्पन्न हैं। जह्नु के वंश में कुशिक उत्पन्न हुए। व्रजन और रूपी से ऋक्ष बड़े थे। इससे वही राजा हुए। महाराज जनमेजय, तुम्हारे वंश के पूर्वपुरुष राजा संवरण ऋक्ष के ही पुत्र थे। हमने सुना है कि संवरण के राज्यकाल में प्रजा के नाश करनेवाले अनेक अनर्थ हुए—भूख, मृत्यु, अनावृष्टि, व्याधि आदि आपत्तियों ने प्रजा का नाश करके राज्य को उजाड़ सा दिया। शत्रुसेना चढ़कर भरतवंश का संहार करने लगी। इसी समय पञ्चालराज अपने पराक्रम से पृथ्वी को जीतता हुआ दस अक्षौहिणी सेना लिये महाराज संवरण पर चढ़ आया। उससे लड़ाई में हारने पर महाराज संवरण डर से अपने स्त्री, पुत्र, मन्त्री और बन्धुओं को लेकर भागे। वहाँ से भागकर वे सिन्धुनद के पास पहाड़ी स्थानों में
४० एक दृढ़ दुर्ग बनाकर रहने लगे। भरतवंश के लोग हज़ार वर्ष तक वहीं रहे।

इसके उपरान्त एक दिन भगवान् वशिष्ठजी संवरण के पास आये। भरतवंश के परिवार ने बड़ी आव-भगत से पाद्य-अर्घ्य देकर तेजस्वी ब्रह्मर्षि को प्रणाम किया। महात्मा वशिष्ठ जब आसन पर स्वस्थ होकर बैठे तब राजा ने आदि से अन्त तक सब वृत्तान्त सुनाकर कहा—भगवन्, आप हमारे पुरोहित हों; हम फिर अपना पैतृक राज्य पाने का उद्योग करेंगे। महर्षि ने संवरण की प्रार्थना मान ली और सब क्षत्रियों का स्वामी बनाकर संवरण का साम्राज्याभिषेक किया। ऋक्ष के पुत्र संवरण ने अभिषेक हो जाने पर शत्रुओं पर चढ़ाई कर दी और [ मुनि के मन्त्र-बल के प्रभाव से ] शत्रुओं को जीतकर बाप-दादे के राज्य और राजधानी पर फिर अधिकार कर लिया। फिर वे सब राजाओं से कर लेने लगे। महाराज संवरण ने बहुत-बहुत दक्षिणाएँ देकर अनेक
४८ बड़े-बड़े यज्ञ भी किये।



सूर्य की कन्या तपती संवरण की रानी थीं। उनसे राजा के कुरु नाम का महाप्रतापी बालक उत्पन्न हुआ। कुरु को परमधार्मिक देखकर राजा ने राजगद्दी पर बिठलाया। धर्मात्मा कुरु ने जाङ्गल प्रदेश में तप किया था, इसी से उस पवित्र स्थान को कुरुजाङ्गल और कुरुक्षेत्र कहते हैं।

उनकी परमसुशीला रानी का नाम वाहिनी था। उसके गर्भ से उनके अविचित्, अभिष्यन्त, चैत्ररथ, मुनि और जनमेजय नाम के पाँच पुत्र हुए। अविचित् के परिचित्, शबलाश्व, आदिराज, विराज, महाबली शाल्मलि, उच्चैःश्रवा, भङ्गकार और जितारि नाम के पुत्र हुए। इनके वंश में अपने कर्मों और गुणों से प्रसिद्ध जनमेजय आदि सात महारथी और अन्य पुत्र उत्पन्न हुए। परिचित् के धर्म-अर्थ के ज्ञाता कक्षसेन, उग्रसेन, चित्रसेन, इन्द्रसेन, सुपेण और भीमसेन ये छः पुत्र हुए। जनमेजय के धृतराष्ट्र, पाण्डु, वाह्लीक, निषध, जाम्बूनद, कुण्डोदर, पदाति और वसाति, ये आठ पुत्र हुए। ये सब धार्मिक और सब प्राणियों पर दया करनेवाले हुए।

इनमें सबसे बड़े धृतराष्ट्र राजा हुए। धृतराष्ट्र के कुण्डिक, हस्ती, वितर्क, क्राथ, कुण्डिन, हविश्रवा, इन्द्राभ और भुमन्यु नाम के आठ पुत्र हुए। धृतराष्ट्र के पुत्रों के जो पुत्र हुए, उनमें प्रतीप, धर्मनेत्र और सुनेत्र यही तीन प्रधान हुए। इनमें सबसे बड़े प्रतीप ही त्रिलोकप्रसिद्ध प्रतापी हुए। प्रतीप के देवापि, शान्तनु और महारथी वाह्लीक ये तीन पुत्र हुए। इनमें से ६० देवापि धर्मोपार्जन और भाइयों की भलाई के विचार से संन्यास लेकर तप करने को चले गये। तब शान्तनु और वाह्लीक को राज्य मिला।

महाराज, इनके सिवा देवतुल्य पराक्रमी और मनोहर अनेक राजा इस भरतवंश में उत्पन्न हुए हैं। उन सबका वर्णन हो नहीं सकता। इस तरह मनु के वंश में सत्य-परायण धार्मिक परमप्रतापी अनेक महाराजाओं ने जन्म लिया है। ६४

---

## छियानबे अध्याय

### विस्तार से पूरुवंश का वर्णन

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, आपके श्रीमुख से अपने पूर्वपुरुषों का वृत्तान्त सुनकर भरतवंश के राजाओं का उदार चरित्र विदित हुआ; किन्तु आपने यह मनोहर उपाख्यान संक्षेप में कहा है। इस कारण तृप्ति नहीं हुई। इसलिए कृपा करके प्रजापति मनु से लेकर सब राजाओं का चरित्र विस्तार के साथ कहिए। इस अपूर्व कथा को सुनकर किसे आनन्द न होगा? मनुवंश के राजाओं में अनेक गुण थे। उनके शरीर और मन में अलौकिक शक्ति थी। वे सब क्षोभ से शून्य और उत्साही हुए हैं। उनकी कीर्त्ति—धर्म, गुण और माहात्म्य से बढ़कर—अब तक त्रिलोकी को उज्ज्वल करती हुई बढ़ती ही जाती है।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, मैंने व्यासजी के मुँह से आपके शुभ वंश का ब्योरा जिस तरह सुना है उसी तरह कहता हूँ; सुनिए।

[ नित्य अव्यय सनातन ब्रह्मा अव्यक्त पुरुष से उत्पन्न हुए। उनके पुत्र मरीचि और दक्ष प्रजापति हुए। ब्रह्मा की आँखों से मरीचि और पैर के अँगूठे से दक्ष उत्पन्न हुए। मरीचि के पुत्र कश्यप हुए और ] दक्ष के अदिति नाम की एक कन्या हुई। [ कश्यप से अदिति का विवाह हुआ। ] कश्यप के अदिति के गर्भ से विवस्वान् ( सूर्य ) उत्पन्न हुए। विवस्वान् के वैवस्वत मनु हुए। मनु के इला नाम की कन्या हुई। इला के बुध से पुरूरवा हुए। पुरूरवा के आयु हुए। आयु के नहुष और नहुष के ययाति हुए। इनके दो रानियाँ थीं; एक शुक्र की कन्या देवयानी और दूसरी वृषपर्वा दानव की बेटी शर्मिष्ठा। यहाँ पर प्राचीन लोग वंश-कीर्त्तन का एक श्लोक कहते हैं। [ उसका अर्थ यह है ] "देवयानी के यदु और तुर्वसु, और वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा के द्रुह्यु, अनु और पूरु उत्पन्न हुए।" यदु के यादव हुए और पूरु
१० के पौरव। पूरु की रानी का नाम कौसल्या था। कौसल्या में पूरु के पुत्र जनमेजय हुए। जनमेजय ने तीन बार अश्वमेध और एक बार विश्वजित् यज्ञ करके यथासमय वानप्रस्थ आश्रम ले लिया। माधव की बेटी अनन्ता जनमेजय की स्त्री थी। उसमें प्राचीन्वान् नाम का पुत्र हुआ। जहाँ सूर्योदय होता है वहाँ तक पूर्व दिशा जीतने के कारण उनका यह नाम पड़ा। उन्होंने यादव वंश में उत्पन्न अश्मकी नाम की राजकुमारी से विवाह किया। प्राचीन्वान् के अश्मकी में संयाति हुए। संयाति की रानी दृषद्वान् की कन्या वराङ्गी थी। उसमें उनके अहंयाति नाम का पुत्र हुआ। अहंयाति ने कृतवीर्य की कन्या भानुमती से विवाह किया। उसमें उनके सार्वभौम नाम का पुत्र हुआ। सार्वभौम ने स्वयंवर में से हर लाकर केकयकन्या सुनन्दा के साथ विवाह किया। उसमें उनके जयत्सेन नाम का पुत्र हुआ। जयत्सेन ने विदर्भ देश की राजकुमारी सुश्रवा से विवाह किया। उसमें उनके अवाचीन नाम का पुत्र हुआ। अवाचीन ने विदर्भ देश की और एक राजकुमारी मर्यादा के साथ विवाह किया। उसमें उनके अरिह नाम का पुत्र हुआ। अरिह ने अङ्ग देश की राजकुमारी के साथ ब्याह किया। उसमें उनके महाभौम हुआ। महाभौम ने प्रसेनजित् की कन्या सुयज्ञा से ब्याह किया। उसमें उनके अयुतनायी हुए। उन्होंने दस
२० हज़ार पुरुषमेध यज्ञ किये थे इसी से उनका अयुतनायी नाम पड़ा। अयुतनायी ने पृथुश्रवा की कन्या कामा से ब्याह किया। उसमें उनके अक्रोधन नाम का पुत्र हुआ। अक्रोधन ने कलिङ्ग देश की राज-कन्या करम्भा के साथ ब्याह किया। उसमें उनके देवातिथि हुए। देवातिथि ने विदेह देश की राजकुमारी मर्यादा से ब्याह किया। उसमें उनके अरिह नाम पुत्र हुआ। अरिह ने अङ्गराजकुमारी सुदेवा से ब्याह किया। उसमें उनके ऋक्ष हुए। ऋक्ष ने तक्षक की कन्या ज्वाला के साथ ब्याह किया। उसमें उनके मतिनार हुए। मतिनार ने सरस्वती के तट पर बारह वर्ष में पूरा होनेवाला एक यज्ञ किया। यज्ञ के अन्त में सरस्वती ने स्त्रीरूप से प्रकट होकर उनसे अपना पति होने के लिए कहा। उनके सरस्वती के गर्भ से तंसु नाम का

पुत्र हुआ। यहाँ पर वंशकीर्त्तन का यह श्लोक है—"सरस्वती ने मतिनार से तंसु को उत्पन्न किया और तंसु ने कालिङ्गी में ईलिन को उत्पन्न किया।" ईलिन ने रथन्तरी में दुष्यन्त आदि पाँच पुत्र उत्पन्न किये। दुष्यन्त ने विश्वामित्र की कन्या शकुन्तला से व्याह किया। उसमें उनके भरत नाम का महाप्रतापी बालक उत्पन्न हुआ। यहाँ पर ये दो श्लोक कहे जाते हैं—"माता चर्मकोप के समान है। पिता उसी में पुत्र उत्पन्न करता है। कार्य और कारण एक ही होने के कारण पिता और पुत्र में कुछ भेद नहीं। दुष्यन्त, तुम अपने पुत्र का भरण करो; शकुन्तला का अपमान न करो। जन्मदाता पिता आप ही पुत्र-रूप से उत्पन्न होकर नरक से अपना उद्धार करता है। तुम्हीं इस पुत्र के उत्पन्न करनेवाले हो। शकुन्तला सच कहती है।" इस देववाणी को सुनकर ही दुष्यन्त ने शकुन्तला के पुत्र का भरण किया, इसी से उस कुमार का नाम भरत पड़ा। भरत ने काशी के राजा सर्वसेन की कन्या सुनन्दा से व्याह किया। उसमें उनके भुमन्यु हुए। भुमन्यु ने दशार्ह देश की राजकन्या विजया से व्याह किया। उसमें उनके सुहोत्र हुए। सुहोत्र ने इक्ष्वाकु की कन्या सुवर्णा से व्याह किया। उसमें उनके हस्ती हुए। इन्हीं ने हस्तिनापुर बसाया है। इसी से इस नगर का नाम हस्तिनापुर पड़ा। हस्ती ने त्रिगर्त देश की राजकुमारी यशोधरा से व्याह किया। उसमें उनके विकुण्ठन हुए। उन्होंने दशार्ह देश की राजकन्या सुदेवा से व्याह किया। उसमें उनके अजमीढ़ हुए। अजमीढ़ के कैकेयी, गान्धारी, विशाला और ऋक्षा नाम की चार रानियाँ थीं। उनमें उनके चौबीस सौ पुत्र हुए। इनमें सबसे बड़े ऋक्षा के पुत्र संवरण ही अजमीढ़ के वंशधर हुए। [ अन्य पुत्रों ने अपने-अपने अलग वंश चलाये। ] संवरण ने सूर्य की कन्या तपती से व्याह किया। उसमें उनके महाराज कुरु हुए। कुरु ने दशार्ह देश की राजकुमारी शुभाङ्गी से व्याह किया। उसमें उनके विदूर हुए। विदूर ने माधवी संप्रिया से व्याह किया। उसमे उनके अनश्वान् हुए। अनश्वान् ने मगध देश की राजकन्या अमृता से व्याह किया। उसमें उनके परिक्षित् हुए। परिक्षित् ने बाहुदा सुयशा से व्याह किया। उसमें उनके भीमसेन हुए। भीमसेन ने केकय-कन्या कुमारी से व्याह किया। उसमें उनके प्रतिश्रवा उत्पन्न हुए। इनका पुत्र प्रतीप था। प्रतीप ने राजा शिवि की कन्या सुनन्दा से व्याह किया। उसमें उनके देवापि, शान्तनु और बाह्लीक नाम के तीन पुत्र हुए। देवापि ब्रह्मचर्य के उपरान्त ही वानप्रस्थ हो गये। तब शान्तनु राजा हुए। यहाँ पर यह श्लोक कहा जाता है—"जिस-जिस जीर्ण पुरुष के वे हाथ लगा देते थे वह जवान होकर सुख भोगता था; इसी से उनका नाम शान्तनु पड़ा।" शान्तनु ने गङ्गा से व्याह किया। उनमें उनके देवव्रत भीष्म हुए। भीष्म ने पिता का प्रिय करने के लिए जन्म भर ब्रह्मचारी रहने का प्रण किया और सत्यवती को लाकर पिता को प्रसन्न किया। सत्यवती*

* देखो पृष्ठ १२८, सत्यवती की उत्पत्ति-कथा।

का ही दूसरा नाम गन्धकाली था। इनके कुमारी अवस्था में पराशर से व्यास उत्पन्न हुए। सत्यवती में शान्तनु के चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र हुए। चित्राङ्गद
५० बचपन में एक गन्धर्व के हाथों मारे गये। तब विचित्रवीर्य राजगद्दी पर बैठे। विचित्रवीर्य ने काशिराज की कन्या अम्बिका और अम्बालिका के साथ व्याह किया। विचित्रवीर्य के कोई सन्तान नहीं हुई। क्षयी रोग से उनकी मृत्यु हो गई। तब सत्यवती ने शान्तनु का पिण्डलोप न होने देने के विचार से व्यासजी का स्मरण किया। स्मरण करते ही वे आ गये। उन्होंने माता से पूछा—क्या आज्ञा है? सत्यवती ने कहा—तुम्हारे भाई के सन्तान-हीन होकर मरने से वंश-नाश हो रहा है। तुम उसका वंश चलाने के लिए उसकी स्त्री में पुत्र उत्पन्न करो। माता की आज्ञा मानकर व्यासजी ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को उत्पन्न किया। व्यासजी के वरदान से धृतराष्ट्र के गान्धारी में सौ पुत्र उत्पन्न हुए।



उनमें दुर्योधन, दुश्शासन, विकर्ण और चित्रसेन, प्रधान थे। पाण्डु के कुन्ती और माद्री नाम की दो श्रेष्ठ स्त्रियाँ थीं। पाण्डु एक दिन शिकार खेलने वन को गये। एक ऋषि मृग का रूप रक्खे हुए मृगी-रूपिणी अपनी स्त्री से रति कर रहे थे। उसी समय पाण्डु ने बाण चलाकर ऋषि को मार डाला। बाण लगने पर मृगरूपी ऋषि ने कहा—तुमने धार्मिक होकर भी क्रूरों की तरह मेरी इच्छा पूरी होने के पहले ही बाण से मुझे मार डाला; इससे मैं शाप देता हूँ कि तुम भी रति के समय मर जाओगे। ऋषि के शाप से राजा का रङ्ग बदल गया।
६० वे अपनी स्त्रियों के सहवास से बचने लगे। इसके उपरान्त पाण्डु ने कुन्ती से कहा—अपने दोष से ही मुझे ऐसा शाप मिला है। मैंने शास्त्रों में सुना है कि पुत्र उत्पन्न हुए बिना पुरुष को स्वर्ग नहीं मिलता। इस कारण तुम मेरे लिए पुत्र उत्पन्न करो। कुन्ती ने पति की आज्ञा पाकर धर्म से युधिष्ठिर को, वायु से भीमसेन को और इन्द्र से अर्जुन को उत्पन्न किया। तब प्रसन्न होकर पाण्डु ने कुन्ती से कहा—तुम्हारी सौत माद्री के पुत्र नहीं हैं। इनके भी इसी तरह पुत्र उत्पन्न कराओ। कुन्ती ने पति की आज्ञा मान ली और जिस विद्या के बल से

उन्होंने धर्म, वायु और इन्द्र को बुलाया था वही विद्या माद्री को भी बता दी। माद्री के अश्विनीकुमार से नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए। एक दिन माद्री ने खूब शृंगार किया था। भावीवश उस दिन पाण्डु अपने को नहीं सँभाल सके। माद्री को स्पर्श करते ही उनकी मृत्यु



हो गई। माद्री पाण्डु के साथ चिता पर बैठकर सती हो गई। सती होते समय वह अपने दोनों पुत्र कुन्ती को सौंप गई। पाँचों पुत्रों के [ सयाने होने पर उनके ] साथ कुन्ती को ऋषि लोग हस्तिनापुर में ले आये। वहाँ तपस्वियों ने ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सबके सामने भीष्म और विदुर से पाण्डु के मरने का सब हाल कहा। वहाँ से ऋषियों के अन्तर्द्धान होने पर उनकी बात का अनुमोदन करने को आकाश से पुष्प-वर्षा हुई और दुन्दुभियों का शब्द हुआ। भीष्म आदि ने पाण्डु-पुत्रों को स्वीकार कर लिया। उस समय पाँचों पाण्डवों ने अपने पिता की मृत्यु का वृत्तान्त कहकर विधिवत् उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया की। दुर्योधन बचपन से ही पाण्डवों से डाह करने लगा। इस दुरात्मा ने राक्षसी बुद्धि स्वीकार करके अनेक उपायों से पाण्डवों को उस स्थान से हटाने का उद्योग किया किन्तु भावी को कौन टाल सकता है! इस कारण उसका उद्योग विफल हुआ। इसके बाद धृतराष्ट्र की सलाह से दुर्योधन ने वारणावत में पहुँचाकर कुन्ती-सहित पाण्डवों को जतुगृह में जलाने की चेष्टा की। विदुर की सावधानी से ७०
कुन्ती और पाण्डव उस सङ्कट से बच गये। फिर भीम ने वन में हिडिम्ब दानव को मारा। [ उसकी बहन हिडिम्बा से ब्याह किया और उसमें घटोत्कच नाम का पुत्र उत्पन्न किया। ]

इसके बाद पाँचों पाण्डव कुशल-पूर्वक एकचक्रा नगरी में पहुँचे। वहाँ उन्होंने वक को मारा। वहाँ से पाञ्चाल देश में जाकर स्वयंवर में द्रौपदी को प्राप्त किया। फिर आधा राज्य पाकर पाँचों पाण्डव इन्द्रप्रस्थ मे रहने लगे। पाँच पाण्डवों से द्रौपदी के पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकीर्त्ति, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतकर्मा हुए। युधिष्ठिर ने शैव्य की कन्या देविका से भी ब्याह किया था। उसमें उनके यौधेय नाम का पुत्र हुआ। भीमसेन ने काशी के राजा की कन्या बलन्धरा को स्वयंवर से हर लाकर उससे विवाह किया। उसमे उनके सर्वग नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। अर्जुन द्वारका में जाकर कृष्ण की बहन सुभद्रा को हरण कर अपने देश में ले गये। उसमें उनके बड़े गुणी अभिमन्यु हुए। नकुल ने चेदि देश के राजा की कन्या करेणुमती से ब्याह किया। उसमें उनके निरमित्र नाम का पुत्र हुआ। सहदेव ने स्वयंवर से मद्र-नरेश की कन्या विजया
८० को हर लाकर उससे ब्याह किया। उसमें उनके सुहोत्र नाम का पुत्र हुआ भीमसेन पहले ही हिडिम्बा राक्षसी के गर्भ से घटोत्कच नाम का एक पुत्र उत्पन्न कर चुके थे। [ अर्जुन के एक स्त्री और थी। वह नागकन्या थी। उसका नाम उलूपी था। उसके इरावान् नाम का पुत्र हुआ। मणलूरु देश की राजकुमारी चित्राङ्गदा भी अर्जुन की स्त्री थी। उसमें उनके बभ्रुवाहन नाम का पुत्र हुआ। ] पाण्डवों के ये ग्यारह पुत्र हुए। उनमें अभिमन्यु का ही वंश चला। राजा विराट की बेटी उत्तरा के साथ अभिमन्यु का ब्याह हुआ। उसमें उनके मरा हुआ बालक उत्पन्न हुआ। श्रीकृष्ण की आज्ञा से उस बालक को कुन्ती ने गोद में ले लिया। भगवान् ने कहा, 'अस्त्र के तेज से नष्ट इस छः महीने के गर्भ को मैं अभी अपने तेज से जिला दूँगा।' बस, [ अपना पैर छुआकर ] श्रीकृष्ण ने उस बालक को जिला दिया। उस बालक का नाम परिक्षित् रक्खा गया। कुरुवंश क्षीण होने पर उत्पन्न होने के कारण ही उत्तरा के पुत्र का नाम परिक्षित् पड़ा। परिक्षित् ने माद्रवती के साथ ब्याह किया। उसमें उनके आप जनमेजय उत्पन्न हुए। वपुष्टमा रानी में आपके शतानीक और शंकुकर्ण नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं। शतानीक का विवाह विदेह देश की राजकुमारी से हुआ है। उसमें उनके अश्वमेध-दत्त नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ है।

राजन्, यह मैंने आपके आगे पूरु और पाण्डवों के वंश का वर्णन किया। यश को बढ़ानेवाली यह पवित्र कथा पढ़-सुनकर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र कृतार्थ हो जाते हैं।
९० इसको पढ़ने-सुननेवाले लोग स्वर्ग को जाते हैं और इस लोक में भी सम्मान पाते हैं।

---

# सत्तानवे अध्याय

महाभिषक् राजा का उपाख्यान। महाभिषक् और गङ्गा को शाप।
वसुओं का और गङ्गा का संवाद

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, इक्ष्वाकु के वंश में सत्यवादी और सत्यपराक्रमी महाभिषक् नाम के राजा थे। उन्होंने हज़ार अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करके ब्रह्मा को सन्तुष्ट किया और अन्त को वे स्वर्ग पहुँचे।

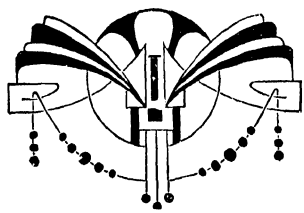
एक समय सब देवता और राजर्षि ब्रह्मा की सभा में बैठे हुए थे। महाभिषक् राजा भी वहाँ पर थे। इसी अवसर में श्रेष्ठ नदी गङ्गा, सुन्दरी स्त्री के रूप से, वहां पर आईं। हवा के झोंके से उनका उज्ज्वल वस्त्र अङ्ग पर से उड़ गया। यह देखकर देवताओं ने एकाएक अपने सिर झुका लिये; किन्तु राजर्षि महाभिषक् बिना किसी झिझक के उस ओर देखते रहे। ब्रह्मा ने राजा की इस अशिष्टता से रुष्ट होकर उनको शाप दे दिया। कहा—तुम यहाँ से जाकर पृथ्वी पर जन्म लो। वहाँ कुछ दिन रहकर फिर इस लोक में आना। जिस गङ्गा ने तुम्हारा मन हर लिया है वह तुम्हारा अप्रिय करेगी। अन्त में क्रोध आने पर तुम शाप से छूटोगे। राजा महाभिषक् ने विचार कर ब्रह्मा से प्रार्थना की कि मैं पृथ्वी पर राजा प्रतीप का पुत्र होऊँ। राजा के चित्त को चलायमान देखकर उन्हीं का ध्यान करती हुई गङ्गा भी ब्रह्मलोक से चलीं। राह में जाते समय गङ्गा ने देखा कि आठों वसु दुःखित और अचेत होकर स्वर्ग से पृथ्वी पर गिर रहे हैं। गङ्गा ने उनसे पूछा— १०



तुम लोग किस कारण पृथ्वी पर जा रहे हो? देवलोक में कुशल तो है? वसुओं ने कहा—हे महानदी, थोड़े ही अपराध के कारण महात्मा वशिष्ठ ने क्रोध करके हमको शाप दे दिया है। हम लोगों से यह अपराध हुआ था कि वे गुप्त रूप से सन्ध्यावन्दन कर रहे थे। उन्हें न पहचानने के कारण प्रणाम किये बिना ही हम आगे चले गये। वशिष्ठ ने क्रोध करके हमको

शाप दिया है कि हम पृथ्वी पर मनुष्य-योनि में उत्पन्न हों। ब्रह्मवादी मुनि का कहा कभी झूठ नहीं हो सकता। इससे तुम मानुषी होकर हमें पुत्र रूप से उत्पन्न करो। हम किसी मानुषी के गर्भ में नहीं रहना चाहते। गङ्गा ने वसुओं की प्रार्थना स्वीकार करते हुए पूछा—मनुष्यों में तुम पिता किसे बनाना चाहते हो ? वसुओं ने कहा—प्रतीप के पुत्र त्रिलोक-प्रसिद्ध महाराज शान्तनु के द्वारा हम जन्म लेंगे। गङ्गा ने कहा—तुम्हारे मत से मेरा मत मिलता है। मैं राजा शान्तनु का प्रिय करना चाहती हूँ; साथ ही तुम्हारी भी इच्छा पूरी हो जायगी। वसुओं ने कहा—जो बालक उत्पन्न हो उसे तुम जल में फेंक देना। ऐसा करने से शीघ्र हमारा छुटकारा हो जायगा; हमको बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रहना न पड़ेगा। गङ्गा ने कहा—तुम जो कहते हो वही मैं करूँगी। किन्तु तुमको ऐसा उपाय करना चाहिए जिसमें मेरे गर्भ से महाराज शान्तनु का पुत्र उत्पन्न करना वृथा न हो। [ उनका एक पुत्र जीवित रहना चाहिए। ] वसुओं ने कहा—हम लोग अपने-अपने तेज का आठवाँ अंश देंगे उससे तुम्हारा और राजा का प्यारा परम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा। मनुष्य-लोक में उस तुम्हारे पुत्र का वंश नहीं चलेगा। इस प्रकार तुम्हारा वह पुत्र पुत्रहीन होकर जियेगा।

२३ गङ्गा से यों कह-सुनकर वसुगण यथेष्ट स्थान को चले गये।





गंगा और अष्टवसु ।—पृ० २१४



प्रतीप और गङ्गा।—पृ० १५

# अट्ठानवे अध्याय

शान्तनु की उत्पत्ति और राज्याभिषेक

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इधर सब प्राणियों का हित चाहनेवाले महाराज प्रतीप गङ्गा ( हरि ) द्वार में बहुत दिनों से तप कर रहे थे। इसी बीच में एक दिन गङ्गा देवी लुभानेवाले रूप और गुण से युक्त स्त्री का रूप रक्खे हुए जल के भीतर से निकलकर वेदपाठ कर रहे राजर्षि प्रतीप की दाहनी जाँघ पर बैठ गईं। सर्वाङ्ग-सुन्दरी देवी को देखकर राजा प्रतीप ने पूछा—सुन्दरी, तुम क्या चाहती हो? कहो, मैं तुम्हारा क्या प्रिय करूँ? स्त्री-रूपधारिणी गङ्गा ने कहा—राजन, मैं कामवश होकर तुमको भजने के लिए आई हूँ। तुम मेरी इच्छा पूरी करो। कामवती स्त्री के त्याग की सज्जनों ने निन्दा की है। प्रतीप ने कहा—सुन्दरी, मैं पराई स्त्री या दूसरे वर्ण की स्त्री को कामवश होकर स्वीकार नहीं कर सकता। यही मेरा धर्मसङ्गत नियम है। गङ्गा ने फिर कहा—महाराज, मुझमें कोई कुलक्षण नहीं है। मैं गमन के अयोग्य या निन्दा के योग्य स्त्री नहीं हूँ। मैं पराई स्त्री भी नहीं, दिव्य कन्या हूँ। मैं अनुरक्त होकर प्रार्थना करती हूँ; मुझे स्वीकार करो। प्रतीप ने कहा—सुन्दरी, तुमने मेरी दाहिनी जाँघ पर बैठकर मुझे अपनी इच्छा पूरी करने योग्य नहीं रक्खा। अब यदि मैं तुम्हें स्वीकार करूँगा तो धर्म में बट्टा लगेगा। तुम मेरी दाहिनी जाँघ पर आकर बैठ गई हो। यह स्थान बहू-बेटी और बेटे के बैठने का है। स्त्री के बैठने का स्थान तो बाईं जाघ है। इसलिए तुमको मैं अपनी पुत्रवधू बना सकता हूँ—स्त्री नहीं बना सकता। १०

गङ्गा ने कहा—राजन, आप धर्मज्ञ हैं। आपकी इच्छा के अनुसार आपके पुत्र की स्त्री होना मुझे स्वीकार है। आप पर मुझे भक्ति है, इससे मैं इस प्रसिद्ध भरतवंश को ही भजूँगी। भरतवंश के राजा सब नरेशों से श्रेष्ठ समझे जाते हैं; सब राजा इस वंश का मान करते हैं। इस वंश के राजाओं के अपार गुणों को सौ वर्ष तक कहकर भी मैं समाप्त नहीं कर सकती। इस वंश के पुरुषों का उत्कर्ष और साधु-स्वभाव भी प्रशंसनीय है। महाराज, किन्तु मैं इस प्रतिज्ञा से आपकी पुत्रवधू होना स्वीकार करती हूँ कि जो मैं करूँगी उसके सम्बन्ध में आपके पुत्र को कुछ पूछ-ताछ करने का अधिकार न होगा। इस प्रतिज्ञा के अनुसार आपके पुत्र चलेंगे तो मैं सदा उनसे प्रेम करूँगी। श्रेष्ठ सुकृती प्रिय पुत्रों से तुम्हारे पुत्र को स्वर्ग प्राप्त होगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इतना कहकर गङ्गा देवी अन्तर्द्धान हो गईं। इधर राजा पुत्र के जन्म की राह देखने लगे। अब राजा प्रतीप अपनी रानी-सहित सन्तान की इच्छा से तप करने लगे। बुढ़ापे में प्रतीप के महाभिषक् नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ। वृद्ध प्रतीप के शान्त ( निराश ) होने पर उत्पन्न होने के कारण महाभिषक् का दूसरा नाम शान्तनु पड़ा। [ वे स्पर्श

करके बूढ़े को जवान कर देते थे, इससे लोग उनको शान्तनु भी कहते थे। ] महाराज शान्तनु
१९ धर्म-कर्म को पुण्यलोक पाने का उपाय समझकर धर्म का आचरण करने लगे।

शान्तनु के जवान होने पर प्रतीप ने उनसे कहा—बेटा, जब तुम उत्पन्न नहीं हुए थे तब एक दिन एक स्वर्गीय सुन्दरी तुम्हारा हित करने की इच्छा से मेरे पास आई थी। यदि वह अनुपम सुन्दरी युवती देवी, पुत्र की इच्छा से, एकान्त में तुम्हारे पास आवे तो तुम मेरी आज्ञा से उसकी इच्छा पूरी करना। उससे यह कभी न पूछना कि तुम कौन हो; किसकी कन्या हो। वह जो करे उस विषय में भी उससे कुछ पूछ-ताछ न करना और उसके कर्त्तव्याकर्त्तव्य के सम्बन्ध में भी कुछ न कहना।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अपने पुत्र शान्तनु को यों आज्ञा देकर और राजगद्दी पर बिठाकर महाराज प्रतीप वानप्रस्थी हो गये। इन्द्र के समान तेजस्वी शान्तनु राजा होकर राज्य करने लगे। वे प्रायः वनों में शिकार के लिए जाया करते थे। शान्तनु एक दिन मृग और भैंसे आदि जङ्गली जानवरों का शिकार करते हुए सिद्ध-चारण-सेवित गङ्गातट के समीप विचर रहे थे। इसी बीच साक्षात् लक्ष्मी के समान कान्तिवाली, सर्वाङ्गसुन्दरी, बढ़िया गहने पहने स्त्री उनको वहाँ देख पड़ी। कमल के गाभे के समान रङ्गवाली, सूक्ष्म वस्त्र पहने उस स्त्री को वहाँ अकेली देखकर राजा को बड़ा अचरज हुआ। उनके शरीर में रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्र-चकोर उस चन्द्रमुखी के रूप की चाँदनी को पीकर किसी तरह तृप्त नहीं हुए। वह सुन्दरी स्त्री रूपवान् तेजस्वी राजा को देखकर उन्हें अपने हृदय का भाव और अनुराग जताने लगी।
३० [ वह राजा को एकटक दृष्टि से देखकर मानो रूप-सुधा पीने लगी। ]

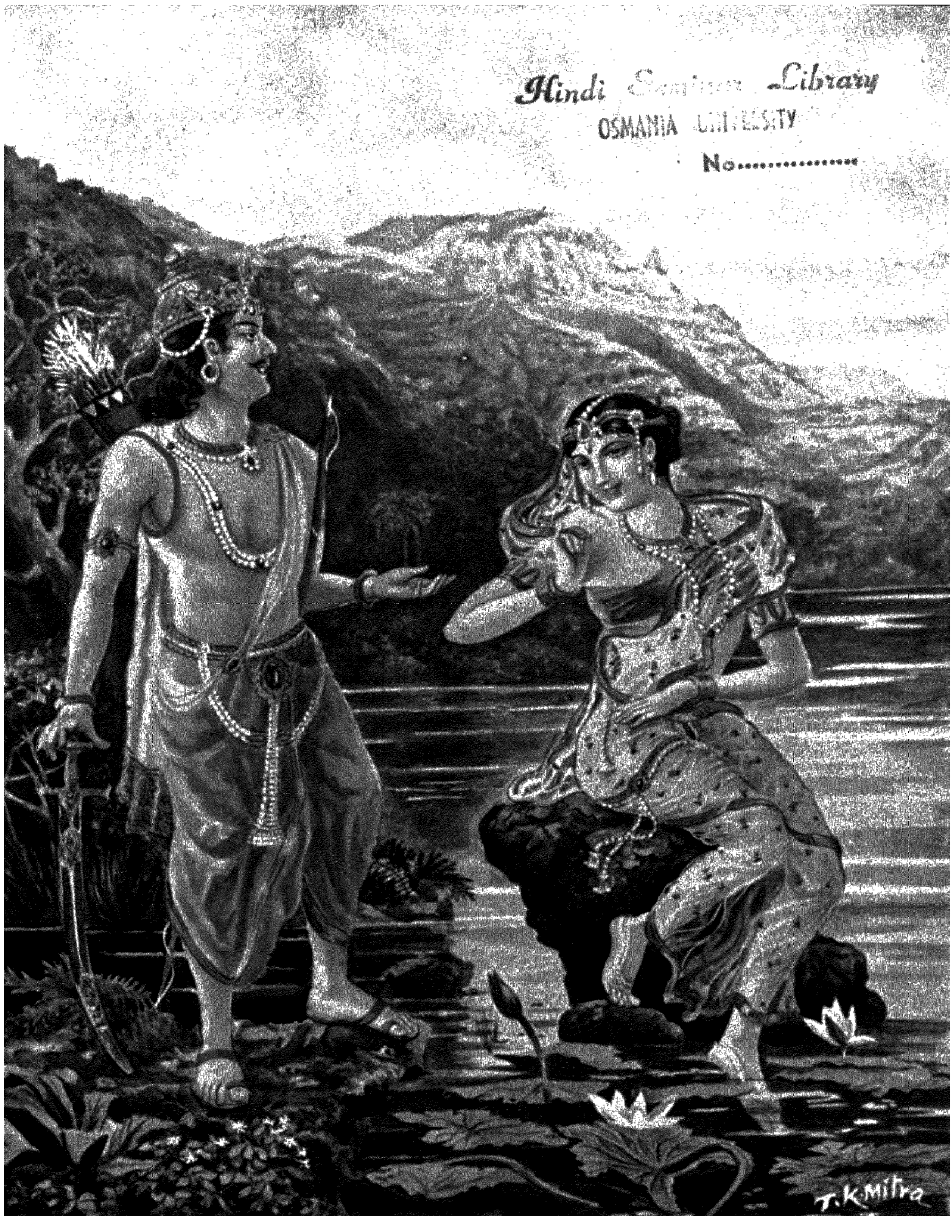
तब मधुर वाणी से उसे सन्तुष्ट करते हुए राजा शान्तनु ने कहा—सुन्दरी, तुम कौन हो? तुम देवता, दानव, गन्धर्व, यक्ष, नाग या मनुष्य, किसकी कन्या हो? तुम क्या कोई दिव्य अप्सरा
३२ हो? तुम कोई भी हो, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी भार्य्या होकर मुझे कृतार्थ करो।

---

## निन्नानबे अध्याय

### प्रतिज्ञापूर्वक गङ्गा और शान्तनु का विवाह

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, मधुर मन्द मुसकान के साथ राजा के कहे इन वचनों को सुनकर और वसुओं से की हुई अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करके सुन्दरी गङ्गा ने कहा—राजन्, मैं रानी होकर आपकी इच्छा पूरी करूँगी और सदा आपकी आज्ञा का पालन करती रहूँगी। किन्तु आपको एक प्रतिज्ञा करनी पड़ेगी। मैं आपका प्रिय या अप्रिय चाहे जो करूँ, आप न तो मुझे




Hindi Section Library
OSMANIA UNIVERSITY
No.....

शान्तनु और गङ्गा का मिलन।—पृ० ३१६

मना कर सकेंगे और न कुछ कठोर वचन ही कह सकेंगे। जब तक आप इस प्रतिज्ञा का पालन करेंगे तब तक मैं आपके पास रहूँगी। मुझे आप जब किसी काम से रोकेंगे या कठोर अप्रिय वाक्य कहेंगे तब मैं छोड़कर चली जाऊँगी।

उस देवी के रूप-गुण पर रीझे हुए राजा ने सब मान लिया। अद्वितीय वीर प्रतापी और सुन्दर राजर्षि को पाकर वह स्त्री बहुत प्रसन्न हुई। [ राजा शान्तनु उस स्त्री-रत्न को रथ पर बिठाकर राजधानी में ले आये। ] उसके साथ बड़े सुख से शान्तनु का समय बीतने लगा। न पूछने की प्रतिज्ञा करने के कारण राजा शान्तनु उससे, उसके बारे में, कुछ भी न पूछ सके। पत्नी के चरित्र, आचरण, उदारता और सेवा से शान्तनु बड़े प्रसन्न रहते थे। दिव्यरूपिणी त्रिपथगामिनी गङ्गा देवी इस तरह मनुष्यदेह पाकर, इन्द्रतुल्य महाराज शान्तनु के पास रहकर, उनकी आज्ञा का पालन करती हुई, सम्भोग प्रणय-चातुरी हाव-भाव नृत्य-गीत आदि के द्वारा उनका मनोरञ्जन करने लगीं। १०

राजा शान्तनु भी उत्तम स्त्री के गुणों पर मोहित होकर उसके साथ रमण में आसक्त हो गये। इस तरह अनेक ऋतुएँ और वर्ष बीत गये; किन्तु राजा को कुछ भी विचार न था कि कितना समय बीत गया। ऋतुकाल में देवी गङ्गा ने गर्भ धारण किया। इस तरह क्रमशः अपने मा-बाप के अनुरूप आठ बालक उत्पन्न हुए। उत्पन्न हुए बेटे को गङ्गा हर बार, यह कहकर कि मैं तुम्हें प्रसन्न करने के लिए ऐसा करती हूँ, गङ्गा के जल में फेंक देती थीं। राजा को गङ्गा का यह काम बहुत ही अप्रिय था; परन्तु इस डर से कि वे छोड़-कर चली न जायँ, कुछ न कह सकते थे। गङ्गा ने सात पुत्र जल में फेंक दिये। यथा-समय आठवाँ बालक उत्पन्न हुआ। हँसती हुई गङ्गा [ ने उसे भी जब डुबो देना चाहा तब उनसे दुःखित राजा ने उन] से उस पुत्र की जान बचाने के लिए कहा—देखो, तुम इस बालक को न मारो। तुम किसकी कन्या हो? तुम्हारा नाम क्या है? तुम इन पुत्रों की हत्या क्यों कर डालती हो? हे पुत्रों की हत्या करनेवाली, तुमको पुत्र-वध का महापाप हुआ।



गङ्गा ने कहा—हे पुत्र की चाह रखनेवाले महाराज, इस तुम्हारे पुत्र को मैं न मारूँगी। इस पुत्र से तुम पुत्र उत्पन्न करनेवाले पुरुषों में श्रेष्ठ समझे जाओगे। अब तुम्हारे पास रहने की मेरी अवधि बीत गई। प्रतिज्ञा के अनुसार अब मैं नहीं रहूँगी। मैं जह्नु की कन्या हूँ, मेरा नाम गङ्गा है। महर्षिगण सदा मेरी सेवा किया करते हैं। देवताओं का कार्य सिद्ध करने के लिए इतने दिनों तक मैं तुम्हारे पास रही। ये तुम्हारे आठ पुत्र महातेजस्वी आठों वसु थे। वशिष्ठ ऋषि के शाप से इन्हें मनुष्ययोनि में जन्म लेना पड़ा। पृथ्वी पर तुम्हारे समान पिता और मेरे समान माता उन्हें नहीं मिल सकती थी। इसी कारण उनकी माता होने के लिए मैंने मनुष्य-शरीर धारण किया था। आठों वसुओं के पिता होकर तुमने अक्षय लोक जीत लिये। वसुओं ने मुझसे यह प्रार्थना कर रक्खी थी कि उत्पन्न होते ही मैं उनमें से हर एक को जल में डुबाकर मनुष्य-योनि और ऋषि के शाप से छुड़ा दूँ। मैंने उनकी यह प्रार्थना मान ली थी। अब आठों वसु महात्मा आपव के शाप से छुटकारा पा गये हैं। तुम्हारा भला हो; अब मैं भी चली। तुम इस महात्मा पुत्र का पालन करना। मैंने वसुओं से जो प्रतिज्ञा की थी सो पूरी कर दी। तुम मेरे इस पुत्र का नाम गङ्गादत्त रखना।

---

## सौ अध्याय

भीष्म को लेकर गङ्गा का स्वर्ग को जाना

शान्तनु ने गङ्गा से पूछा—आपव ऋषि कौन हैं? वसुओं ने कौन अपराध किया था जिससे, लोकेश्वर होने पर भी, उनको मनुष्य-शरीर में आना पड़ा? मुझे दिये हुए तुम्हारे इस कुमार ने कौन ऐसा कर्म किया है, जिससे यह मनुष्य-लोक में रहेगा? जाह्नवी, यह सब वृत्तान्त मैं जानना चाहता हूँ, मुझसे कहो।

गङ्गा ने कहा—राजन्, जो पहले वरुणदेव के पुत्र हुए उन्हीं वशिष्ठ मुनि का नाम आपव है। आपव मुनि का पवित्र आश्रम सुमेरु पर्वत के पास है। वहाँ मृग आदि अनेक प्रकार के जङ्गली पशु और तरह-तरह के पक्षी रहते हैं; सब ऋतुओं के फूल सदा खिले रहते हैं। वहाँ स्वादिष्ठ फल-मूल और जल सदा सब जगह सुलभ है। पुण्यात्मा वशिष्ठ मुनि उसी आश्रम में तपस्या कर रहे थे। दक्ष की कन्या सुरभि ने जगत् के उपकार के लिए कश्यप से नन्दिनी नाम की कामधेनु उत्पन्न की थी, वही उन मुनि की हवन-सामग्री देनेवाली गाय थी। मुनियों के निवासस्थान उस पवित्र आश्रम में सब जगह वह नन्दिनी गाय बेखटके विचरती थी।

एक दिन पृथु आदि आठों वसु अपनी स्त्रियों के साथ उस देव-ऋषि-सेवित तपोवन में आकर इधर-उधर विचरते हुए पहाड़ के कुञ्जों में विहार करने लगे। इस अवसर में वसुओं

में से एक की स्त्री ने देखा कि सब कामधेनुओं में श्रेष्ठ, शील-सम्पत्ति से युक्त, बड़े-बड़े थनोंवाली, बहुत दूध देनवाली, सुन्दर पूँछ और खुरोंवाली, दर्शनीय, सब गुणों से युक्त नन्दिनी गाय विचर रही है। उसे देखकर वसु की स्त्री को बड़ा अचरज हुआ। उसने अपने पति द्यु नाम के वसु को वह गाय दिखलाई। द्यु वसु कामधेनु के गुणों का वर्णन करते हुए कहने लगे—प्रिये, इस मनोहर आश्रम के अधिष्ठाता वरुण-पुत्र वशिष्ठ मुनि की यह नन्दिनी गाय है। जो कोई मनुष्य इसके स्वादिष्ट दूध को पी ले वह स्थिर-यौवन पाकर दस हज़ार वर्ष तक जी सकता है। २०

वैशम्पायन कहते हैं—राजन, यह सुनकर सर्वाङ्गसुन्दरी वसु-पत्नी ने अपने तेजस्वी पति से कहा—नाथ, मनुष्य-लोक में सत्यवादी बुद्धिमान राजा उशीनर की कन्या जितवती रूप और जवानी से मनोहर है। वह मेरी सखी है। उसके लिए बछड़े सहित यह गाय मैं लेना चाहती हूँ। हे पुण्यरूप, आप शीघ्र इस गाय को ले चलिए। मेरी सखी इसका दूध पी लेगी तो बुढ़ापे से और रोगों से बच जायगी तथा मनुष्य-लोक में सदा जवान रहने का सुख भोगेगी। प्यारे, आप यह मेरा प्रिय कार्य अवश्य कीजिए।



द्यौ नाम के वसु, स्त्री के ये वचन सुनकर, उसका प्रिय करने के लिए पृथु आदि अपने भाइयों के साथ उस गाय को हर ले गये। कमलनयनी प्रियतमा के कहने से, अनुराग से अन्धे हो रहे, वसु ने मुनि के तप के प्रभाव का विचार नहीं किया। उन्होंने यह नहीं सोचा कि यह काम करने से मुनि शाप दे देंगे और उससे मेरा अधःपात हो जायगा।

द्यौ जब गाय को हर ले गये तब, थोड़ी देर में, फल-मूल लेकर वरुण के पुत्र ऋषिवर आश्रम में आये। उन्होंने देखा कि वहाँ न नन्दिनी है और न उसका बछड़ा। वन में जाकर मुनि ने बहुत खोजा, पर वहाँ भी पता न लगा। अन्त को दिव्यदृष्टि से उन्होंने देखा कि ० वसुगण उनकी गाय को हर ले गये हैं। तब क्रोध करके उन्होंने शाप दिया कि वसुगण मेरी सुन्दर पूँछवाली दुधार गाय को ले गये हैं, इससे वे मनुष्ययोनि में उत्पन्न हों। हे भरतश्रेष्ठ, मुनियों में श्रेष्ठ आपव क्रोध करके वसुओं को शाप देकर फिर तप करने लगे।

इधर वसुओं को जब वशिष्ठ के शाप देने का हाल मालूम हुआ तब वे फिर वशिष्ठ के आश्रम में आये और अनेक प्रकार से ऋषि को मनाने लगे। परन्तु ऋषि किसी तरह सन्तुष्ट नहीं हुए। सब धर्मों के ज्ञाता ऋषिश्रेष्ठ वरुण के पुत्र ने किसी तरह क्षमा न करके कहा—मैंने पृथु आदि तुम सब वसुओं को शाप दिया है; किन्तु तुम सब लोग एक ही वर्ष के भीतर इस शाप से छुटकारा पा जाओगे। परन्तु ये द्यौ, जिनके कारण तुम सबको शाप मिला है, बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रहकर अपने कर्म का फल भोगेंगे; क्योंकि यही असल में अपराधी हैं। मैंने क्रोध के वश होकर जो कह दिया है, वह झूठ नहीं हो सकता। इसके सिवा द्यौ का
४० वंश पृथ्वी पर नहीं चलेगा। ये धर्मात्मा और धर्मशास्त्र के पूरे पण्डित होकर, स्त्रीभोग त्याग करके, पिता का प्रिय और हित करेंगे। वसुओं से यह कहकर महात्मा वशिष्ठ चले गये। इसके उपरान्त सब वसु मेरे पास आये। मुझसे वरदान की प्रार्थना करते हुए उन्होंने कहा—गङ्गा देवी, हममें से जो जन्म लें उसे तुम जल में डुबा देना। मैंने उनसे ऐसा करना स्वीकार कर लिया। राजन्, इस प्रकार वसुओं को शाप से छुड़ाने के लिए ही मैंने इन बालकों को डुबोया है। अब ऋषि के शाप के कारण केवल ये द्यौ नामक वसु बहुत दिनों तक पृथ्वी पर रहेंगे। [ यह कुमार सयाना होने पर तुम्हारे पास चला आवेगा और मैं भी तुम्हारे बुलाने से तुम्हारे पास आऊँगी। ]

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इतना कहकर और आठवें कुमार को लेकर गङ्गा देवी अन्तर्द्धान हो गईं। वही द्यौ नाम के वसु शान्तनु के पुत्र होकर देवव्रत और गाङ्गेय नाम से प्रसिद्ध हुए। लोग उन्हें पिता से भी अधिक गुणी समझकर उनकी प्रशंसा करते थे।

राजा शान्तनु अन्त को दुःखित होकर अपनी नगरी को चले आये। उन्हीं भरतवंश में उत्पन्न शान्तनु राजा के गुणों का और उनके भाग्यशाली होने का वर्णन करता हूँ। उन्हीं
४९ का इतिहास महाभारत नाम से प्रसिद्ध है।

---

## एक सौ एक अध्याय

शान्तनु और भीष्म का चरित। भीष्म की कठिन प्रतिज्ञा और
शान्तनु का प्रसन्न होकर उनको वर देना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महात्मा राजा शान्तनु त्रिभुवन में धर्मात्मा और सत्यवादी प्रसिद्ध हुए। देवता और राजर्षिगण उनको विशेष सम्मान की दृष्टि से देखते थे। जितेन्द्रियता, दान, क्षमा, बुद्धि, लोक-लज्जा, धैर्य, असाधारण तेज आदि सद्गुण महाबली पुरुषश्रेष्ठ शान्तनु

में स्थिररूप से सदा विराजमान थे। भरतकुलदीपक राजा शान्तनु धार्मिक, सब गुणों से अलङ्कृत, और भरतवंश तथा प्रजा के रक्षक थे। उनकी गर्दन शङ्ख के समान, पराक्रम मस्त हाथी का ऐसा और दोनों कन्धे बैल के ऐसे ऊँचे थे। सब राजलक्षण यथार्थ होकर उनके शरीर में स्थित थे। यशस्वी महाराज के आचरण को देखकर सब लोगों को निश्चय हो गया कि धर्म ही अर्थ और काम से श्रेष्ठ है। महाराज शान्तनु के समान धार्मिक और कोई राजा नहीं हुआ। उनके धर्मभाव को देखकर सब राजाओं ने उन्हें राजराज ( सम्राट् ) बनाया। उनके शासन के समय में किसी को शोक, भय और चिन्ता नहीं रह गई। सब सदा सुख से सोते और जागते थे। कीर्त्तिशाली शान्तनु के सम्राट् होने पर और भी सब राजा यज्ञ, दान तथा कर्मकाण्ड में तत्पर देख पड़ने लगे। विशेष रूप से सामाजिक नियमों पर ध्यान रखने के कारण शान्तनु आदि भरतवंशी राजाओं के राज्यकाल में चारों वर्णों के धर्म उत्तरोत्तर बढ़ते गये। १०
क्षत्रियगण ब्राह्मणों की, वैश्यगण ब्राह्मणों और क्षत्रियों की और शूद्रगण तीनों वर्णों की सेवा करते थे। महाराज शान्तनु कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर में रहकर समुद्र तक सारी पृथ्वी का शासन करते थे। दान, धर्म और तप के संयोग से वे अलौकिक सम्पत्ति और शोभा का आधार थे। राग और द्वेष न होने के कारण वे चन्द्रमा के समान सौम्य थे। धर्मज्ञ, सत्यवादी, सरल, इन्द्रतुल्य राजा शान्तनु का तेज सूर्य के समान था। बल तथा विक्रम में वे वायु के समान थे। कुपित होने पर साक्षात् काल के समान होने पर भी वे पृथ्वी के समान क्षमावान् थे। उनके राज्यकाल में मृग, वराह आदि पशुओं और पक्षियों का शिकार करने की मनाही थी। उनके राज्य में अहिंसारूप ब्राह्मणों का धर्म ही प्रधान धर्म माना जाता था। राजा स्वयं काम-क्रोध-रहित रहकर नम्रता के साथ समान भाव से सब प्राणियों की रक्षा करते थे। देवयज्ञ, ऋषियज्ञ और पितृयज्ञ में ही वे हिंसा करते थे। अकारण किसी जीव की हिंसा करना उन्हें नापसन्द था। वे दुखी, अनाथ, पशु, पक्षी आदि सबके राजा और पिता थे। शान्तनु के राजराजेश्वर होने पर सब लोग सत्य ही बोलते थे, दानी और धर्मात्मा थे। छत्तीस वर्ष तक गृहस्थाश्रम का सुख भोगकर शान्तनु वन को चले गये। २०

शान्तनु के आठवें पुत्र, द्यौ नाम के वसु के अवतार, गङ्गा के गर्भ से उत्पन्न, महात्मा देवव्रत रूप, आचरण, स्वभाव, विद्या आदि सभी बातों में अपने पिता के ही तुल्य हुए। क्या पृथ्वी के और क्या दिव्य, सब प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग उन्हें मालूम था।

एक दिन वीर्यशाली, बलवान् महाराज शान्तनु एक मृग को बाण से घायल करके उसका पीछा करते हुए गङ्गातट पर पहुँचे। वहाँ उन्होंने देखा कि नदी का जल बहुत घट गया है। तब वे सोचने लगे, आज पहले की तरह गङ्गा की बड़ी धारा नहीं देख पड़ती; बात क्या है? पता लगाने पर उन्हें देख पड़ा कि लम्बा-चौड़ा सुन्दर इन्द्र-तुल्य एक कुमार जल के प्रवाह को बाणों

से रोके हुए दिव्य अस्त्रों का प्रयोग कर रहा है। उस बालक के इस अमानुषिक अति विचित्र कार्य को देखकर राजा बहुत ही चकराये। उन्होंने जन्मकाल में ही अपने पुत्र को एक बार देखा था, इस कारण उस कुमार को वे अपना ही बालक न जान सके। अपने पिता शान्तनु को माया से मोहित करके वह बालक वहीं पर अन्तर्द्धान हो गया।



महाराज शान्तनु ने उस अत्यन्त अद्भुत कार्य को देखकर अन्त को गङ्गा से कहा—देवी! यह बालक, जो अभी अन्तर्द्धान हो गया है, किसका है? मुझे
३० फिर उसे दिखाओ। नदियों में श्रेष्ठ गङ्गाजी कपड़े-गहने पहनकर स्त्री मूर्त्ति धारण करके उस अनेक आभूषणों से अलङ्कृत कुमार का दाहना हाथ पकड़े हुए राजा के आगे आईं। विशेष परिचित होने पर भी शान्तनु उस समय गङ्गा को नहीं पहचान सके। गङ्गा ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, अब से पहले आपने मेरे गर्भ से जो आठवाँ बालक उत्पन्न किया था वह यही बालक है। यह आपका बेटा सब अस्त्र-विद्या सीखकर अच्छी तरह निपुण हो गया है। राजन्, युद्ध में इसका सामना कोई वीर नहीं कर सकता। इसका वीर्य और विक्रम अमित है। आपके इस कुमार ने महर्षि वशिष्ठ से वेद और वेद के छहों अङ्ग पढ़े हैं। सुर और असुर दोनों को यह प्रिय है। असुरों के गुरु शुक्राचार्य जिन विद्याओं को जानते हैं और देवता-दैत्य सब जिनकी वन्दना करते हैं वे बृहस्पति जो कुछ जानते हैं, सो सब इस बालक ने सीख लिया है। प्रतापी अजेय महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम जिन दिव्य अमोघ अस्त्रों को जानते हैं वे सब अस्त्र उन्होंने इसको दे दिये हैं। राजन्, अब मैं आपके इस धर्म-अर्थ के पण्डित और अद्वितीय धनुर्द्धर पुत्र को आपके पास
३९ छोड़े जाती हूँ—इसे आप ले जाइए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा शान्तनु गङ्गा की आज्ञा से सूर्य के समान प्रतापी और तेजस्वी उस पुत्र को लेकर देवनगरी अमरावती के समान समृद्धिशाली अपनी नगरी में आये। उस पुत्र को पाकर शान्तनु ने अपने को कृतार्थ समझा। उन्होंने मन में सोचा कि इतने दिनों के बाद अब मैं सचमुच समृद्धिशाली हुआ। अब पुरुवंश के राज्य की रक्षा के

लिए शान्तनु ने गुणवान् महात्मा पुत्र को गद्दी पर बिठाकर युवराज बना दिया। शान्तनु के पुत्र सुप्रसिद्ध देवव्रत अपने सच्चरित्र और सद्गुणों के कारण पिता को, पुरवासियों को और सारी प्रजा को प्यारे थे। परम पराक्रमी महाराज शान्तनु निश्चिन्त होकर पुत्र के साथ सुख से समय बिताने लगे। इस तरह चार वर्ष बीते।

इसके बाद एक दिन राजा शान्तनु यमुना-किनारे के वन में पहुँच गये। वहाँ एक अद्भुत अपूर्व सुगन्ध उनकी नाक में पहुँची। जिधर से वह सुगन्ध आ रही थी उसी ओर आगे बढ़ने पर राजा को एक देवकन्या सी सुन्दरी देख पड़ी। राजा ने उस कमलनयनी कन्या से पूछा—सुन्दरी, तुम कौन हो? किसकी बेटी हो? किसलिए इस वन में आई हो? उस युवती ने कहा—तुम्हारा कल्याण हो, मैं दाशराज की बेटी हूँ। उन्हीं की आज्ञा से मैं यहाँ नाव खेकर बटोहियों को इस पार से उस पार पहुँचाती हूँ।



उसके शरीर से निकल रही दिव्य गन्ध को सूँघकर और उसके अनुपम रूप-लावण्य और दिव्य कान्ति को निहारकर राजा शान्तनु उस पर रीझ गये। उन्होंने उस कन्या के पिता निषादराज के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की और पूछा कि तुम मेरे साथ अपनी बेटी का ब्याह ५०
करने के लिए राज़ी हो या नहीं? दाशराज ने कहा—महाराज, कन्या के जन्म के समय ही मैंने निश्चय कर लिया था कि किसी को यह देनी ही होगी। देने में मुझे 'नाहीं' नहीं है; किन्तु मैंने एक प्रण कर रक्खा है। कहता हूँ, सुनिए। राजन्, आप सत्यवादी हैं। यदि आप मेरी इस कन्या को भार्या बनाना चाहते हैं तो एक प्रतिज्ञा कीजिए। मैं आपको अपनी कन्या दूँगा। आप ऐसा सत्पात्र मुझे कहाँ मिल सकता है? राजा ने पूछा—तुम्हारा क्या अभिप्राय है? स्पष्ट करके कहो। सुनकर जो कर्त्तव्य जान पड़ेगा वह करूँगा। यदि मेरी शक्ति के बाहर होगा तो लाचारी है। दाशराज ने कहा—राजन्, इस भार्या के गर्भ से जो बेटा आपके हो वही आपके बाद राजगद्दी पर बैठे। आप और किसी रानी के पुत्र को राजा न बना सकेंगे।

राजा कामदेव के दाह से विह्वल हो रहे थे, तो भी वे दाशराज की प्रार्थना को स्वीकार न कर सके। उस सुन्दरी की सूरत को विसूरते हुए काम-वेदना से विह्वल राजा अपनी राजधानी को लौट आये। उसी दिन से शोक में मग्न राजा की दशा शोचनीय हो चली।

एक दिन देवव्रत ने पिता की यह दशा देखकर उनसे कहा—पिताजी, किसी विषय में आपका किसी प्रकार का अमङ्गल नहीं देख पड़ता। सभी राजा आपकी आज्ञा मानते हैं। फिर आप क्यों ऐसे शोकाकुल, दुःखित और चिन्तित देख पड़ते हैं? जान पड़ता है, आप मेरे ही बारे में कुछ चिन्ता किया करते हैं। महाराज, आप मुझसे कुछ कहते नहीं। मैं देखता हूँ, आप दिन-दिन पीले पड़ते जाते हैं, आपकी कान्ति मलिन हो गई और अङ्ग शिथिल होते जाते हैं। घोड़े पर चढ़-
६१ कर अब आप घूमने नहीं निकलते। मैं जानना चाहता हूँ कि ऐसी कौन सी पीड़ा आपको पहुँच रही है। मैं उसको दूर करने का उपाय करूँगा।



पुत्र के वचन सुनकर शान्तनु ने कहा—पुत्र, मैं सचमुच इन दिनों चिन्ता से व्याकुल हो रहा हूँ। उसका कारण भी कहता हूँ, सुनो। बेटा, हमारे इस बड़े भारी भरतवंश में मेरे केवल एक तुम्हीं पुत्र हो। तुम सदा तत्परता के साथ अस्त्र-चालन और यश की इच्छा में लगे रहते हो। बेटा, मैं यह देखकर चिन्ता किया करता हूँ कि मनुष्य-जीवन का घड़ी भर का भी ठिकाना नहीं। यदि किसी तरह, परमेश्वर न करे, तुम पर कोई विपत्ति आ पड़े, तो हमारा वंश ही मिट जायगा। किन्तु तुम अकेले ही सौ पुत्रों से श्रेष्ठ हो; इसी कारण मैं फिर ब्याह करना नहीं चाहता। वंश-रक्षा के लिए केवल यही इच्छा किया करता हूँ कि तुम सदा सब प्रकार कुशल से रहो। धर्म के जानकारों का कहना है कि जिसके एक ही पुत्र है वह पुत्रहीन के बराबर है। यह सच है कि अग्निहोत्र, वेद-पाठ और शिष्य-परम्परा के द्वारा विद्या-प्रचार आदि पुण्य कार्यों से अक्षय फल मिलता है; किन्तु इनमें से कोई भी पुण्य पुत्र उत्पन्न करने की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं। केवल मनुष्य ही नहीं, पशु और पक्षी तक पुत्र को मङ्गल का मूल समझते हैं। इसमें मुझे कुछ भी सन्देह नहीं कि सन्तान से मनुष्य को

स्वर्ग प्राप्त होता है। सब पुराणों के मूल और प्राचीन देवताओं के प्रमाण-स्वरूप वेद में भी इसके अनेकानेक प्रमाण पाये जाते हैं। पुत्र! तुम वीर, क्रोधी और नित्य युद्ध का व्यसन रखते हो। युद्ध में ही तुम्हारी मृत्यु की विशेष सम्भावना है। इसी कारण मैं चिन्तित रहता हूँ। पुत्र, इसके सिवा और कुछ मेरी चिन्ता का कारण नहीं है। ७१

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, असाधारण बुद्धिमान् देवव्रत ने राजा से उनके दुःख और चिन्ता का कारण सुनकर घड़ी भर सोचा। फिर पिता के हितचिन्तक बूढ़े मन्त्री के पास जाकर उससे उन्होंने पिता की चिन्ता का कारण पूछा। मन्त्री ने गन्धवती पर राजा के मोहित होने का और उस कन्या के देने में दाशराज की प्रतिज्ञा का सब हाल विस्तार से कह सुनाया। तब बूढ़े क्षत्रियों को साथ लेकर देवव्रत उस दाशराज के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने पिता के लिए दाशराज से उसकी कन्या माँगी। दाशराज ने पहले विधिपूर्वक पूजा करके देवव्रत की अभ्यर्थना की। फिर जब क्षत्रियों के साथ देवव्रत सुखपूर्वक बैठे तब दाशराज ने कहा—हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ, आप सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और महाराज शान्तनु के वंश को चलानेवाले हैं। आप जब स्वयं इस सम्बन्ध के लिए कहने आये हैं तब मैं और क्या कह सकता हूँ! ऐसे प्रशंसनीय और प्रार्थनीय सम्बन्ध को अस्वीकार कर देने से साक्षात् इन्द्र को भी पछतावा होगा। यह सुन्दरी सत्यवती भी आप लोगों के ऐसे गुणी आर्य पुरुष के ही वीर्य से उत्पन्न हुई है। उन महात्मा ने भी मुझसे बारम्बार आपके पिता के गुणों का बखान करके यही कहा था कि धर्मात्मा महाराज शान्तनु ही सत्यवती के योग्य वर हैं। राजर्षि ८०
असित ने भी यह कन्या मुझसे माँगी थी, परन्तु मैंने उनको देना स्वीकार नहीं किया। मैं कन्या का पिता हूँ, इसलिए आपसे कुछ कहता हूँ; क्षमा कीजिएगा। आपके पिता को यह कन्या देने में मुझे 'बलवान् से शत्रुता' का बड़ा भारी दोष देख पड़ता है। इस कन्या के जो पुत्र होगा वह यदि राज्य के लिए आपसे झगड़े तो कुछ असम्भव नहीं। ऐसी दशा में आपकी शत्रुता होने से उसका भला नहीं हो सकता। जिसके आप शत्रु हों वह, चाहे गन्धर्व या असुर भी हो, बहुत दिन तक नहीं जी सकता। बस, एक यही दोष है। आपके पिता को कन्या देने के बारे में मुझको यही एक सोच-विचार है।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, गङ्गा के पुत्र महात्मा देवव्रत ने यह सुनकर सब राजाओं के आगे प्रतिज्ञापूर्वक कहा—दाशराज, जो तुम्हारी इच्छा है उसे मैं पिता की प्रसन्नता के लिए पूरी करूँगा। मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि इस तुम्हारी कन्या के जो पुत्र होगा वही हमारा राजा होगा। मैं सत्य कहता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करनेवाला पुरुष पृथ्वी पर न हुआ है और न होगा। महाराज, देवव्रत की यह कठिन प्रतिज्ञा सुनकर राज्य-लालसा से और भी दुष्कर प्रतिज्ञा कराने के लिए दाशराज ने कहा—आप धर्मात्मा और सब लायक़ हैं। आप महाराज

शान्तनु की ओर से आये हैं, और मैं भी आपको इस कन्या के देने के बारे में अधिकार देता हूँ। आप जो चाहें करें; कोई भी आपके किये को दुलख नहीं सकता। किन्तु इस बारे में मुझको और भी कुछ कहना है; कन्या के ऊपर स्नेह होने के कारण उसकी भलाई के लिए जो
८० मैं और कुछ कहता हूँ वह भी सुनिए। हे सत्यधर्मपरायण, आपने सत्यवती के पुत्र के लिए इन राजाओं के सामने जो प्रतिज्ञा की है वह आप ऐसे पुत्र के योग्य ही है। उसके बारे में मुझे संशय नहीं है किन्तु आपके जो पुत्र होगा वह, बहुत सम्भव है, आपकी इस प्रतिज्ञा का पालन न करे। यह मुझको बड़ा भारी सन्देह है।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, दाशराज का मतलब समझकर पिता का प्रिय करने के लिए सत्यधर्म-परायण देवव्रत ने कहा—दाशराज, मैं इन सब राजाओं के सामने यह भी प्रतिज्ञा करता हूँ, सुनो। अब उन्होंने राजाओं को सुनाकर कहा कि हे नरपतियो, मैं राज्य छोड़ने की पहले ही प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। अब दाशराज को यह सन्देह हुआ है कि मेरे जो पुत्र होगा वह कदाचित् मेरी इस प्रतिज्ञा का पालन न करे। इस सन्देह को भी दूर करने के लिए यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं आज से जन्म भर ब्रह्मचारी रहूँगा—ब्याह ही न करूँगा। अपुत्र होकर मरने पर भी मुझे अक्षय स्वर्गलोक मिलेगा।

राजन्, देवव्रत की यह प्रतिज्ञा सुनकर अचरज और हर्ष से दाशराज के रोमाञ्च हो आया। उसने कहा—मैं अपनी कन्या आपके पिता को देता हूँ। उस समय आकाशमण्डल से अप्सरा, देवता और ऋषिगण देवव्रत के ऊपर फूलों की वर्षा करके कहने लगे—"ये शान्तनु के पुत्र 'भीष्म' हैं।" अब भीष्म ने यशस्विनी सत्यवती से कहा—माता, रथ पर चढ़िए। चलो, अपने घर को चलें।

दाशराज की कन्या सत्यवती को लेकर भीष्म, रथ पर चढ़कर, हस्तिनापुर में आये।
१०० उन्होंने सत्यवती को पिता के हवाले कर दिया। भीष्म के इस दुष्कर कर्म को देखकर सब राजा उनकी प्रशंसा करते हुए एक स्वर से कहने लगे—"ये भीष्म हैं।"

महाराज शान्तनु ने भी प्रसन्न होकर भीष्म को यह वर दिया कि तुम जब चाहोगे
१०३ तभी तुम्हारी मृत्यु होगी। तुम्हारी इच्छा हुए बिना मृत्यु न होगी।

---

## एक सौ दो अध्याय

शान्तनु का सत्यवती से ब्याह। चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य्य का जन्म। शान्तनु और उनके पुत्र चित्राङ्गद का मरण। विचित्रवीर्य्य का राज्याभिषेक

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, ब्याह हो जाने पर शान्तनु ने रूप-यौवन से पूर्ण सुन्दरी सत्यवती को रनिवास में रक्खा। कुछ दिन के बाद शान्तनु के सत्यवती के गर्भ से पुरुषश्रेष्ठ,

पराक्रमी, महावीर चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। विचित्रवीर्य जवान भी न होने पाये थे कि महाराज शान्तनु की मृत्यु हो गई। तब सत्यवती की आज्ञा से भीष्म ने चित्राङ्गद को राजगद्दी पर बिठाया। चित्राङ्गद ने अपने पराक्रम से सब राजाओं को जीतकर वश में कर लिया। वे संसार में किसी मनुष्य को अपने समान न मानकर सबको तुच्छ दृष्टि से देखने लगे। सुर, असुर, मनुष्य आदि सबने चित्राङ्गद से हार मान ली।

इसी बीच महाबली चित्राङ्गद नाम के एक गन्धर्वराज ने राजा चित्राङ्गद पर चढ़ाई की। कुरुक्षेत्र में सरस्वती नदी के किनारे बलवान उत्साही दोनों वीर तीन वर्ष तक घोर युद्ध करते रहे। शस्त्रों की वर्षा करके लड़ते-लड़ते मायावी गन्धर्वराज माया करके युद्ध करने लगा। राजा चित्राङ्गद माया न जानते थे; इसी से चित्राङ्गद गन्धर्व के हाथों मारे गये। वीर चित्राङ्गद को मारकर वह गन्धर्व स्वर्ग को चला गया। १०

महातेजस्वी पुरुषश्रेष्ठ चित्राङ्गद के मरने पर भीष्म ने यथोचित विधि से उनका क्रिया-कर्म कराया और फिर नाबालिग़ विचित्रवीर्य को राजगद्दी पर बिठाया। राजा विचित्रवीर्य भक्ति और सम्मान के साथ, धर्मशास्त्र के ज्ञाता भीष्म की आज्ञा के अनुसार, परम्परा से चले आ रहे अपने पूर्वजों का राज्य करने लगे। भीष्म भी धर्मपूर्वक उनकी देखरेख और रक्षा करने लगे। १४

---

## एक सौ तीन अध्याय

भीष्म का स्वयंवर से कन्या हरने के लिए काशी जाना। कन्या-हरण। राजाओं का पराभव। विचित्रवीर्य की मृत्यु

वैशम्पायन कहते हैं—राजन, चित्राङ्गद मारे गये और विचित्रवीर्य नाबालिग़ थे; इस कारण सत्यवती की आज्ञा से भीष्मजी आप ही राज्य की रक्षा करने लगे। धीरे-धीरे विचित्रवीर्य जवान हो चले। तब भीष्म ने उनका ब्याह करने का विचार किया। इसी समय सुन पड़ा कि काशी के राजा की अप्सरा-सदृश सुन्दरी तीन कन्याओं का स्वयंवर होनेवाला है। यह सुनकर, माता की आज्ञा लेकर, भीष्म अकेले ही रथ पर चढ़कर काशीपुरी को चल दिये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, स्वयंवर की सभा में सब स्थानों से आये हुए राजा लोग उपस्थित हैं और तीनों कन्याएँ भी मौजूद हैं। अब एक-एक करके सब आये हुए राजाओं के गुणों और नामों का वर्णन किया जाने लगा। स्वयंवर में अकेले बूढ़े भीष्म को देखकर कन्याएँ मन में कुछ डरीं और यह सोचकर वहाँ से हटने को हुईं कि "यह बूढ़ा, धर्मात्मा,—जिसके झुर्रियाँ पड़ गई हैं—निर्लज्ज यहाँ किसलिए आया है।" यह झूठी प्रतिज्ञा करनेवाला संसार को अपनी क्या सफ़ाई देगा? लोग इसे झूठमूठ ब्रह्मचारी कहते हैं।—नीच राजा लोग यही बातें करते हुए हँसने लगे।

१० वैशम्पायन कहते हैं—क्षत्रियों की उक्त बातें सुनकर भीष्म अप्रसन्न हो गये। उन्होंने बलपूर्वक उन तीनों कन्याओं को अपने रथ पर बिठाकर मेघ के समान गम्भीर स्वर से सब राजाओं को सुनाकर कहा—गुणी पात्र को बुलाकर यथाशक्ति गहने और धन देकर कन्या देने को पण्डित लोग 'ब्राह्म' विवाह कहते हैं। कुछ लोग एक गाय और एक बैल लेकर कन्या देते हैं। यह 'आर्ष' विवाह है। कुछ लोग धन लेकर कन्या देते हैं। यह 'आसुर' विवाह है। कुछ लोग ज़बर्दस्ती कन्या को हर ले जाकर विवाह करते हैं। यह 'राक्षस' विवाह है। कुछ लोग कन्या को राज़ी करके उसकी सम्मति से विवाह करते हैं। यह 'गान्धर्व' विवाह है। कुछ लोग असावधान कन्या को छल से ले जाकर विवाह करते हैं। यह 'पैशाच' विवाह है। कुछ लोग दाता के यहाँ आप जाकर उससे कन्या को माँगकर विवाह करते हैं। यह 'प्राजापत्य' विवाह है। कुछ लोग यज्ञ में कन्या ग्रहण करते हैं। यह 'देव' विवाह है। इनमें क्षत्रिय के लिए आठवाँ राक्षस-विवाह ही श्रेष्ठ कहा गया है। इससे क्षत्रिय लोग स्वयंवर की ही प्रशंसा करते और उसमें जाते हैं। धर्म जाननेवाले लोग शत्रु-पक्ष को परास्त करके कन्या को हर लाकर उससे ब्याह करने को ही सबसे श्रेष्ठ समझते हैं। इस कारण हे नरपतियो, मैं इन कन्याओं को बलपूर्वक हरे लिये जाता हूँ। मैं युद्ध के लिए तैयार हूँ; यदि शक्ति हो तो तुम लोग सामना करो। अभी जय या पराजय पाओगे।



महाबली शान्तनु-नन्दन भीष्मजी काशी के राजा और अन्यान्य राजाओं से यों कहकर, और उन तीनों कन्याओं को रथ पर बिठाकर, सबको युद्ध के लिए ललकारते हुए वहाँ से चल
२० दिये। तब सब क्षत्रिय क्रोध से अपने ओठ चबाते और ताल ठोकते हुए लड़ने के लिए उठ खड़े हुए। शीघ्र चलने के कारण दौड़ने के वेग से बहुतों के कवच और गहने इधर-उधर गिर

पड़े। ऐसा जान पड़ा, मानो आकाशमण्डल से तारागण गिर रहे हैं। चारों ओर सभा में कोलाहल होने लगा। सारथियों ने उत्तम घोड़े जोतकर रथों को तैयार किया। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये सब नरेश उन रथों पर चढ़कर बड़े वेग से कुरुश्रेष्ठ भीष्म के पीछे दौड़े। क्रोध के कारण सबकी भौंहें टेढ़ी हो गईं और आँखें लाल हो आईं।

अब अकेले भीष्म के साथ उन असंख्य राजाओं का अद्भुत घोर संग्राम छिड़ गया। राजाओं ने एक साथ हज़ारों बाण भीष्म के ऊपर चलाये। किन्तु गङ्गा-नन्दन ने अपने अनेक तीक्ष्ण बाणों से राह में ही उन बाणों को काटकर गिरा दिया। तब सब राजा लोग चारों ओर से भीष्म को घेरकर उन पर बाण बरसाने लगे। ऐसा जान पड़ा मानों बहुत से मेघ किसी पर्वत के शिखर पर पानी बरसा रहे हैं। भीष्म ने पहले अपने बाणों से इस बाण-वर्षा को रोक-कर फिर हर एक राजा को तीन-तीन बाण मारे। तब हर एक राजा ने कुपित होकर भीष्म को पाँच-पाँच बाण मारे। भीष्म ने फिर उन बाणों की वर्षा को निष्फल करके दो-दो बाण हर एक को मारे। बाण, शक्ति आदि अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों से समर-भूमि बिछ गई। वह ३०
युद्ध प्राचीनकाल के देवासुर-संग्राम की तरह क्रमशः ऐसा भयानक हो उठा कि केवल देखने के लिए आये हुए वीरों के भी हृदय काँप उठे। अद्वितीय धनुर्द्धर शान्तनु-पुत्र महाबली भीष्म समर-भूमि में हज़ारों शत्रुओं के धनुष, ध्वजा, कवच और सिर काट-काटकर गिराने लगे। उनके हाथ की फुर्ती, अपने को बचाना और अन्यान्य अलौकिक विचित्र कामों को देखकर सब राजा लोग, शत्रु होने पर भी, उनकी बड़ाई करने लगे। अब देखते ही देखते उन असंख्य नरपतियों को जीतकर वीरश्रेष्ठ कुरुकुल-तिलक भीष्मजी उन कन्याओं-सहित अपने नगर की ओर चले।

अन्त को अमित बलवान् महारथी राजा शाल्व उन कन्याओं को छीनने के इरादे से युद्ध करने को भीष्म के पीछे चला और उनको युद्ध करने के लिए ललकारने लगा। जान पड़ा मानो कोई महाबली गजराज हथिनी के लिए दूसरे गजराज पर आक्रमण करने के लिए दौड़ा जा रहा है। तब क्षत्रिय-धर्म के प्रतिपालक शत्रुदमन पुरुषश्रेष्ठ महारथी भीष्म, शत्रु के ललकारने से, क्रोध के मारे आग की तरह प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने अपना रथ लौटा दिया। उनके मत्थे में बल पड़ गये। निर्भय भीष्म शाल्व से भिड़ने को लौट पड़े। और-और राजा लोग ३१
अलग खड़े होकर भीष्म और शाल्व का युद्ध देखने लगे। ऋतुमती गाय के लिए जैसे दो साँड़ भिड़ जायँ वैसे ही वे दोनों वीर गरजते हुए एक दूसरे के सामने डट गये। शाल्व ने फुर्ती के साथ पहले ही सैकड़ों-हज़ारों बाणों की वर्षा भीष्म पर कर दी। यह देखकर सब राजा लोग अचरज के मारे "वाह-वाह" कहकर शाल्व की बड़ाई करने लगे। शाल्व को दर्शक-क्षत्रियों के दिये साधुवाद को सुनकर भीष्म कोप के मारे काँप उठे। उन्होंने शाल्व से "खड़ा रह, खड़ा रह" कहकर सारथी से कहा—इस राजा के पास तुरन्त मेरा रथ ले चल। पक्षिराज गरुड़

जिस तरह साँप को मार डालते हैं उसी तरह मैं इसको मार डालूँगा। अब भीष्म ने वरुणास्त्र का प्रयोग करके बाण चलाया। उस बाण से शाल्व के रथ के चारों घोड़े कट गये। फिर शाल्व ने भी अस्त्र चलाये। उन अस्त्रों को अपने दिव्य अस्त्रों से नष्ट करके भीष्म ने शाल्व के सारथी को भी मार डाला। शाल्व दूसरे रथ पर चढ़कर आया। भीष्म ने ऐन्द्र अस्त्र से फिर उसके रथ के घोड़ों को मार डाला। इसी बीच में झपटकर भीष्म ने शाल्व को पकड़
५० लिया; किन्तु हारे हुए शाल्व की हत्या न करके उसे छोड़ दिया।

इस तरह हारकर शाल्व अपने नगर को चला गया और वहाँ धर्मपूर्वक अपने राज्य का पालन करने लगा। और-और जो राजा वहाँ स्वयंवर देखने को आये थे वे भी अपनी-अपनी राजधानी को लौट गये।

योद्धाओं में श्रेष्ठ भीष्मजी इस प्रकार राजाओं को हराकर और कन्याओं को हरकर हस्तिनापुर को चले। उस समय भीष्म के भाई विचित्रवीर्य अपने पिता धर्मात्मा शान्तनु की तरह प्रजा का पालन कर रहे थे। गङ्गा के पुत्र पराक्रमी भीष्मजी, वन, नदी, पहाड़ और वृक्षों से पूर्ण बीहड़ मैदानों को लाँघते हुए, काशिराज की तीनों कन्याओं को पतोहू, छोटी बहन और लड़की की तरह स्नेह-सहित साथ लिये हस्तिनापुर पहुँचे। भाई के हितैषी भीष्म ने वे तीनों कन्याएँ लाकर युवक विचित्रवीर्य को दे दीं। इसके बाद माता सत्यवती से सलाह लेकर वे उन कन्याओं के साथ विचित्र-
५९ वीर्य के ब्याह का उद्योग करने लगे।



तब काशिराज की बड़ी लड़की अम्बा ने भीष्म से हँसकर कहा—आप धर्मज्ञ हैं, इसी से निवेदन करती हूँ। मैं पहले स्वयंवर में सौभपति महाराज शाल्व को मन ही मन अपना पति मान चुकी हूँ। इस कारण वही मेरे स्वामी हैं। मेरे पिता का भी यही विचार था। इसलिए अब वही कीजिए, जिसमें धर्म की हानि न हो। अम्बा के ये वचन सुनकर भीष्म सोचने लगे कि इस बारे में क्या करना चाहिए। अन्त को वेदज्ञ ब्राह्मणों से सलाह करके कर्त्तव्य निश्चित कर भीष्म ने अम्बा से कह दिया—

जिस समय गान्धारी के गर्भ था और वे कमज़ोर थीं उस समय एक वैश्य की कन्या धृतराष्ट्र की सेवा किया करती थी। उसी समय उसके गर्भ से धृतराष्ट्र के युयुत्सु नाम का एक और पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजन्, इस तरह धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। ४४

---

## एक सौ सत्रह अध्याय

दुःशला कन्या की उत्पत्ति का वर्णन

जनमेजय ने कहा—भगवन्, आपने व्यासजी के वर से धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र होने का वर्णन किया। साथ ही यह भी कहा कि उनके वैश्या के गर्भ से एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु यह गान्धारी के गर्भ से एक कन्या होने की बात जो आपने कही, सो समझ में नहीं आई। आपका कथन यह था कि व्यास ने गान्धारी को सौ पुत्र होने का वर दिया। उसमें कन्या की चर्चा भी न थी। महर्षि व्यास ने अ-समय मे उत्पन्न मांस-पिण्ड के सौ टुकड़े सौ घड़ों में रखवाये थे। उनसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। गान्धारी दुबारा गर्भवती भी नहीं हुई। फिर उनके दुःशला नाम की कन्या कब और किस तरह उत्पन्न हुई? विस्तार के साथ वर्णन करके मेरे इस सन्देह को दूर कीजिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, आपने यह बड़ा अच्छा प्रश्न किया; सुनो। भगवान् व्यास ठण्डे पानी से सींचकर जैसे-जैसे उस मांसपेशी के टुकड़े अलग करते गये वैसे-वैसे धाय उन टुकड़ों को घी के भरे घड़ों में छोड़ती गई। इसी बीच गान्धारी के हृदय में कन्या के स्नेह का सञ्चार हुआ। वे सोचने लगीं, इन टुकड़ों से अवश्य ही मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, महर्षि का कहना झूठ नहीं हो सकता। किन्तु यदि इन सौ पुत्रों के सिवा एक कन्या भी उत्पन्न हो जाय तो मुझे बड़ा आनन्द हो। [ सुनती हूँ, नाती के बिना स्वर्ग नहीं मिलता। ] १०
कन्या उत्पन्न हो तो मेरे स्वामी भी स्वर्ग-लाभ से वञ्चित न हों। इसके सिवा दामाद होने से स्त्रियों को जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द और किसी तरह नहीं होता। इस कारण यदि इन सौ पुत्रों के बाद मेरे एक कन्या भी उत्पन्न हो तो मैं पुत्रों और नातियों से अपने को कृतार्थ समझूँ। यदि मैंने सचमुच तप किया है, दान दिये हैं, अग्नि में हवन कराया है और गुरुजन की सेवा की है, तो मेरे एक कन्या उत्पन्न हो।

गान्धारी मन में यों सोच रही थीं कि महर्षि व्यास ने उन टुकड़ों को गिना तो सौ से एक अधिक निकला। तब व्यास ने कहा—गान्धारी, मैं कभी झूठ नहीं बोला। तुम्हारे सौ पुत्र तो अवश्य ही होंगे। सौ के सिवा एक टुकड़ा बचा है। जान पड़ता है, तुम्हें एक

नाती भी मिलेगा। इसी से ऐसा हुआ है। तुम्हारी बड़ी इच्छा थी, इससे मैं कहता हूँ कि इस टुकड़े से तुम्हारे एक कन्या भी होगी। अब व्यास ने और एक घी का घड़ा मँगाकर उसमें वह टुकड़ा डाल दिया। राजन, यह दुःशला के जन्म का वृत्तान्त मैंने
१८ तुमसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो?

---

## एक सौ अठारह अध्याय

धृतराष्ट्र के पुत्रों का नामोल्लेख

जनमेजय ने कहा—भगवन, बड़े-छोटे के क्रम से धृतराष्ट्र के उन सौ पुत्रों के नाम सुनाइए। वैशम्पायन ने कहा—राजन, सुनिए। धृतराष्ट्र के दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्त्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त,
१० वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, धनुर्द्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, व्यूढोर, कनकध्वज, कुण्डाशी और विरजा, ये सौ पुत्र और एक दुःशला नाम की कन्या गान्धारी के गर्भ से उत्पन्न हुई। नामोल्लेख के अनुसार ही इनकी बड़ाई-छुटाई जानना। धृतराष्ट्र के ये सब पुत्र महारथी, वीर, युद्ध-चतुर, वेदज्ञ और सब अस्त्रों के जानकार थे। धृतराष्ट्र ने गुणवती सुन्दरी राजकुमारियाँ खोजकर यथासमय हर एक पुत्र
१८ का विवाह कर दिया। दुःशला का भी ब्याह राजा जयद्रथ के साथ हो गया।

---

## एक सौ उन्नीस अध्याय

राजा पाण्डु को मृगरूप-धारी ऋषि का शाप

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन, आपने धृतराष्ट्र के पुत्रों का अलौकिक जन्म-वृत्तान्त वर्णन किया। बड़ाई-छुटाई के अनुसार उनके नाम भी आपने सुना दिये। अब महाराज पाण्डु के पुत्रों का जन्म-वृत्तान्त और नाम कहिए। पाँचों पाण्डव महात्मा और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी

थे। अंशावतार-वर्णन में आपने उन्हें देवताओं के अंश से उत्पन्न बतलाया है। मैं जन्म से लेकर उनके सब अद्भुत कार्यों का वर्णन आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, [ यह पहले कहा जा चुका है कि महाराज पाण्डु शिकार के लिए शालवन में—हिमवान् पर्वत के दक्षिण शिखर पर जाकर रहने लगे थे। ] बहुत से मृगों और हिंसा करनेवाले पशुओं से भरे हुए उस वन में विचरते-विचरते पाण्डु ने एक दिन एक जगह पर एक मृग और मृगी को विहार करते देखा। उन्होंने उसी समय पाँच बाण तानकर उस मृग और मृगी को मारे। महाराज, वह मृग वास्तव में एक ऋषिकुमार था, जो मृगीरूप-धारिणी अपनी पत्नी के साथ बेखटके विहार कर रहा था। वह मृग मृगी के साथ, घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने विलाप करते हुए मनुष्य-वाणी में राजा से कहा—राजन्, काम और क्रोध के वश होकर विवेक से रहित बुद्धि-हीन पापी पुरुष भी ऐसा निष्ठुर व्यवहार नहीं करते। बुद्धि दैव को टाल नहीं सकती, दैव ही बुद्धि को बदल देता है। इसी से बुद्धिमान् लोग भी दैव के कराये कामों को कर डालते हैं। १०



नहीं तो धर्मात्मा भरतवंश में उत्पन्न आप काम और लोभ के वश होकर ऐसा निन्दित काम कैसे कर डालते! यह काम आपने अपने योग्य नहीं किया! पाण्डु ने कहा—मृग, सुन। राजा लोग शत्रु के मारने में जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा ही शिकार में मृग का वध करने में भी करते हैं। इसलिए तू धर्म को जाने बिना क्यों मेरा तिरस्कार कर रहा है? शास्त्र में लिखा है कि राजा लोग सामने से और छिपकर भी मृग का शिकार कर सकते हैं। पहले अगस्त्य ऋषि ने, जब यज्ञ किया था तब, देवपूजा के लिए शिकार में मृगों को मारा था; और, अभिचार की क्रिया सम्पन्न करने के लिए मारे हुए मृगों की मेदा ( वपा ) से हवन किया था। इस कारण मैंने प्रमाण-सङ्गत धर्म के अनुसार ही तेरा वध किया है। तू क्यों वृथा मुझे बुरा-भला कह रहा है?

मृग ने कहा—शत्रु जब निःशस्त्र हो या व्यसन में हो तब उस पर बाण छोड़ना मना है, उसके मारने का समय तो युद्ध ही है। पाण्डु ने उत्तर दिया—हे मृग, तुम्हारा

आक्षेप वृथा है। शत्रु को किसी दशा में छोड़ा नहीं जाता—चाहे वह सावधान हो या असावधान, रक्षित हो या अरक्षित।

मृग ने कहा—राजन्, आपने मुझे मारा है, इस कारण पक्षपात करके मैं केवल मृग-वध के लिए आपका तिरस्कार नहीं करता। मैं तो यही कहता हूँ कि इतने निठुर न बनकर मेरे मैथुन के समाप्त होने तक आपको प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। मैथुन का समय सभी प्राणियों के लिए हित का कारण और उनको आनन्ददायक होता है। इस कारण मृग जब मैथुन करते होते हैं तब समझदार लोग उनकी हत्या नहीं करते। राजेन्द्र, मैं पुरुषार्थ-सिद्धि—पुत्रोत्पत्ति—के लिए आनन्द से मृगी के साथ रमण कर रहा था। आपने मेरे उस उद्देश्य को
२० निष्फल कर दिया। महाराज, पुण्य-कर्म करनेवाले पूरुवंश में उत्पन्न होकर ऐसा निठुर काम करना आपके अयोग्य ही हुआ। ऐसा अधर्म का काम करने से इस लोक में लोक-निन्दा और परलोक में नरक का डर होता है। हे देवतुल्य, आप स्त्री-भोग के सुख और धर्म के मर्म को अच्छी तरह जानते हैं। तब भी आपने ऐसा पापकर्म कैसे किया? हे नरश्रेष्ठ, आप राजा हैं। जो लोग धर्म, अर्थ, काम को छोड़कर निष्ठुर पाप-कार्य करते हैं उन्हें आप ही दण्ड देते हैं। इस समय मृग-रूप-धारी, निरपराध मुझ ऋषि-कुमार को मारकर आपने बड़ा अन्याय किया। फल-मूल खानेवाला मैं शान्तचित्त होकर मृग-वेष से वन में रहता था। आपने काम-मोहित होकर हम दो निरपराध प्राणियों को मैथुन के समय मारा है, इस कारण ऐसी ही अवस्था में आपकी भी मृत्यु होगी। मैं किन्दम नाम मुनि हूँ। मनुष्यों के बीच लज्जा आने के कारण मृगी-रूपिणी स्त्री से मृग-रूप होकर रमण कर रहा था। आपने यह हाल बिना जाने मृग समझकर मुझे मारा है; इसलिए मैं आपको ब्रह्म-हत्या के पातक से मुक्त करता हूँ किन्तु
३० इस पाप-कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। आप अन्त समय मोहित होकर जिस समय स्त्री-भोग करना चाहेंगे उसी समय आपकी मृत्यु होगी। जिस स्त्री पर मोहित होकर आप मरेंगे वही आपके साथ सती होगी। जैसे सुख-भोग के समय आपने मुझे दुःख में डाला है वैसे ही सुख के समय आपको भी मृत्यु का दुःख होगा।

शोक से व्याकुल मृग ने इतना कहकर प्राण-त्याग कर दिया। महाराज पाण्डु को
३४ इस घटना से बड़ा भारी दुःख हुआ।

---

# एक सौ बीस अध्याय

पाण्डु का दोनों स्त्रियों के साथ वानप्रस्थी हो शतशृङ्ग पर्वत पर तप करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, उस मृग के मरने से महाराज पाण्डु को अपने किसी सगे के मरने का सा खेद हुआ। वे अपनी रानियों के साथ विलाप करते हुए कहने लगे—पापी लोग साधुजनों के वंश में जन्म लेकर भी काम-वश होकर अपने ही कर्म से अकृतार्थ रह जाते हैं और अन्त को दुर्गति भोगते हैं। सुना है, बड़े भारी धर्म-निष्ठ महाराज शान्तनु से उत्पन्न मेरे पिता जवानी में ही काम-वश होकर स्वर्गवासी हुए। उन्हीं विषयी राजा की स्त्री में सत्य-वादी भगवान् वेदव्यास ने मुझे उत्पन्न किया है। देवताओं ने मुझे त्याग दिया, नहीं तो इस शिकार के शौक़ में पड़कर मैं ऐसा अनुचित काम क्यों करता, जिससे मुझे ऐसा विकट शाप मिला! पुत्र-हीन होने के कारण मैं स्वर्ग को नहीं जा सकता। बस, अब मैं मोक्ष की इच्छा से सब त्यागकर अपने पिता वेदव्यास की तरह तपस्या में ही जीवन बिताऊँगा। सिर मुँड़ा-कर, मुनि होकर, नित्य वृक्षों से भिक्षा माँगकर पेट पालूँगा और अकेला मुनियों के आश्रमों में विचरूँगा। भलाई या बुराई, किसी की चाह न रक्खूँगा। शरीर में भस्म रमाकर सूने घर में या पेड़ों के तले पड़ा रहूँगा। शोक और हर्ष छोड़कर निन्दा और बड़ाई को बराबर समझूँगा। निराहार ही पड़ रहूँगा। आशीर्वाद या प्रणाम की इच्छा न करूँगा। किसी से विरोध न करूँगा। किसी का साथ न करूँगा। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से बचकर गुदड़ी-खड़ाऊँ आदि को भी त्याग दूँगा। किसी का उपहास न करूँगा; किसी पर भौंहें न टेढ़ी करूँगा। सदा १०
प्रसन्नमुख रहकर सब प्राणियों की भलाई में लगा रहूँगा। चार प्रकार के जड़ या चेतन किसी भी प्राणी की हिंसा न करूँगा। सब प्राणियों को अपनी सन्तान की तरह स्नेह की दृष्टि से देखूँगा। वृक्षों से भिक्षा न पाने पर नित्य पाँच या दस गृहस्थों के द्वार पर जाकर एक बार भिक्षा माँग लाऊँगा। जिस दिन भिक्षा नहीं मिलेगी उस दिन निराहार ही रह जाऊँगा। थोड़ा आहार भले ही कर लूँगा, परन्तु एक बार के सिवा दुबारा भिक्षा न करूँगा। लाभ और हानि को समान समझूँगा। कोई मेरे एक हाथ को कुल्हाड़े से काट डालेगा तो यन्त्रणा का अनुभव न करूँगा और यदि कोई मेरे एक हाथ में चन्दन का लेप कर देगा तो मैं उसमें प्रसन्नता का अनुभव न करूँगा। न जीने की ख़ुशी और न मरने का रंज करूँगा। जीवन और मरण, दोनों की परवा छोड़ दूँगा। जीवित व्यक्ति निमेष आदि के द्वारा समय का विभाग करके जिन मङ्गलकर इष्ट-साधक कार्यों को करता है उनको मैं—अपने पापों को मिटाकर, सब कर्म और धर्म-अर्थ के बन्धन से छूटकर—छोड़ दूँगा। सब पापों और बन्धनों से बचकर वायु के समान बे-लाग हो रहूँगा। किसी के वश में न रहूँगा। धैर्य के साथ ऐसे आचरण करता

हुआ प्राण-त्याग करूँगा। कर्म-भोग के लिए पुनर्जन्म का डर फिर न रहेगा। वीर्य-हीन होकर धर्म-भ्रष्ट कर्ममय कष्टदायक दीनता के मार्ग में नहीं भटकूँगा। [ अपनी इच्छा पूरी करने के लिए निस्तेज लोगों की तरह किसी की ख़ुशामद नहीं करूँगा; क्योंकि ] ख़ुशामद से वश में किये गये मनुष्य से अति सम्मान के साथ अपनी चाही चीज़ मिलने पर भी वह निन्दनीय वृत्ति कुत्तों की है। अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि विषय-भोग छोड़कर मोक्ष के लिए तप करूँगा।




वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, भारी दुःख से पछतावा करते हुए राजा पाण्डु कुन्ती और माद्री की ओर देखकर कहने लगे—रानियो, तुम माता अम्बिका, भीष्म, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, माता सत्यवती, बन्धु-वर्ग, पुरवासी-प्रजा, व्रतधारी ब्राह्मण और अन्यान्य प्रधान कौरवों से मेरा नमस्कार कह-कर कहना कि पाण्डु ने संन्यास ले लिया।

स्वामी के ये वचन सुनकर कुन्ती और माद्री ने समझा कि पाण्डु ने सचमुच संन्यास लेने का निश्चय कर लिया है। तब उन्होंने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, संन्यास के सिवा ऐसा भी और आश्रम है जिसको ग्रहण करके आप हम धर्म-पत्नियों के साथ तप कर सकते हैं। उसमें शरीर-त्याग का महाफल-दायक धर्म प्राप्त करने से आप स्वर्ग के भी अधिकारी होंगे। हम दोनों भी इन्द्रियों को वश में करके काम-सुख त्यागकर पति की गति पाने के लिए तप करेंगी। महाराज, जो आप हमें छोड़-कर संन्यास ले लेंगे तो हम अभी अपनी जान दे देंगी।

पाण्डु ने कहा—यदि तुमने ऐसा ही विचार कर लिया है तो अपने धर्म का पालन करने के लिए तुम भी मेरे साथ रहो। मैं अपने पिता वेदव्यास की अक्षय वृत्ति ( तपस्या ) को ग्रहण करूँगा। विषय-सुख और राजसी भोगों को छोड़कर कठोर तप करूँगा। वल्कल पहनूँगा, फल-मूल खाकर वनों में विचरूँगा। साँझ-सवेरे नहा करके हवन करूँगा। थोड़ा आहार करके अपने शरीर और इन्द्रियों को क्षीण कर डालूँगा। एक कपड़ा या मृगछाला पह-नूँगा। जटा धारण करूँगा। जाड़ा, हवा, घाम, सब सहूँगा। भूख और प्यास को मारूँगा। कठोर तप से शरीर को सुखा डालूँगा। एकान्त में रहकर ब्रह्म का विचार करूँगा। कच्चे

या पके हुए फल खाकर ज़िन्दगी बिताऊँगा। वन के फल-मूल, जल और स्तुति आदि के द्वारा देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट करूँगा। वानप्रस्थ तपस्वी भी मेरे आचरण से सन्तुष्ट होंगे। किसी का अप्रिय नहीं करूँगा। गृहस्थों की कौन कहे, वानप्रस्थों का भी सङ्ग नहीं करूँगा। जब तक यह शरीर न छूटेगा तब तक इसी तरह वानप्रस्थ संन्यास के उत्तरोत्तर कठिन नियमों का पालन करता हुआ तप करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यों कहकर पाण्डु ने अपने मणि-मुकुट, चूड़ामणि, अङ्गद, कुण्डल, बहुमूल्य वस्त्र और दोनों स्त्रियों के सब गहने ब्राह्मणों को देकर उनसे कह दिया कि आप लोग हस्तिनापुर में जाकर कह दें कि पाण्डु अर्थ, काम, सुख और परम प्रिय विषयों का अनुराग छोड़कर दोनों रानियों के साथ वनवासी हो गये हैं। ४०

पाण्डु के ये वचन सुनकर उनके साथ रहनेवाले ब्राह्मण और अन्यान्य अनुचर हाहाकार करके विलाप करने लगे। वह सब धन लेकर गर्म आँसू बहाते हुए सब लोग राजा पाण्डु को वन में छोड़कर हस्तिनापुर में आये। उन्होंने धृतराष्ट्र से सब हाल कहा। सब धन भी दे दिया। उनसे सब वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्र दुःख के वेग से व्याकुल हो उठे और पाण्डु के लिए शोक करने लगे। भाई के शोक के मारे, उन्हीं की चिन्ता में, धृतराष्ट्र को न सोना अच्छा लगता था, न कहीं बैठना अच्छा लगता था और न किसी सुख-भोग को उनका जी चाहता था।

इधर फल-मूल खाकर रहनेवाले पाण्डु दोनों पत्नियों के साथ नागशत नाम के पहाड़ पर गये। वहाँ कुछ दिन रहकर चैत्ररथ, कालकूट और हिमालय पहाड़ को लाँघकर वे गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। महर्षि, सिद्ध, विद्याधर आदि, सङ्कट के समय, उनकी रक्षा करते थे। वे अच्छे और बीहड़, सभी तरह के स्थानों में जाते और रहते थे। वहाँ से इन्द्रद्युम्न सरोवर और हंसकूट पर्वत को लाँघकर महाराज पाण्डु शतशृङ्ग पर्वत पर पहुँचे। वहाँ वे जमकर तप करने लगे। ५०

---

## एक सौ इक्कीस अध्याय

पाण्डु का पुत्र पाने के लिए ऋषियों से सलाह करना और
पुत्र उत्पन्न करने के लिए कुन्ती से कहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शतशृङ्ग पहाड़ पर तप कर रहे पराक्रमी पाण्डु को सिद्ध और चारण लोग प्यार की दृष्टि से देखने लगे। गुरुजन की सेवा करके, अहङ्कार छोड़कर, आत्म-संयम के साथ जितेन्द्रिय बनकर पाण्डु ने स्वर्ग जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वनवासी मुनियों में से कोई उन्हें भाई और कोई सखा मानकर उनका आदर करने लगा।

अवस्था में बड़े कोई-कोई तपस्वी अपने पुत्र की तरह उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते थे। बहुत दिनों में तपोबल से निष्पाप होकर महाराज पाण्डु साक्षात् ब्रह्मर्षि के तुल्य हो गये।

एक दिन अमावस थी। उस दिन सब ऋषि लोग एकत्र होकर ब्रह्मा के दर्शन करने को गये। उनको जाते देखकर पाण्डु ने पूछा—आप लोग कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा—आज ब्रह्मलोक में अनेक महात्मा, देवता, ऋषि, पितृगण आदि का समागम होगा। हम वहीं ब्रह्मा के दर्शनों को जा रहे हैं।

यह सुनकर स्वर्ग जाने की इच्छा से पाण्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर चलने लगे। उनको पीछे आते देख ऋषियों ने कहा—राजन्, हम लोग कई बार गये-आये हैं, इससे हमको मालूम है कि इस पर्वत के ऊपरी हिस्से में क्रमशः अनेक दुर्गम स्थान हैं। आगे चलकर सैकड़ों विमानों से शोभित और गाने-बजाने के शब्दों से
१० परिपूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सराओं की क्रीड़ा-भूमि है। उसके आगे कुबेर के सम और विषम भूमि से युक्त बाग़ हैं। मार्ग में बड़ी-बड़ी नदियाँ और भयानक पर्वतों की कन्दराएँ हैं। जगह-जगह पर ऐसे स्थान हैं जिनमें नित्य बर्फ़ जमी रहती है। वहाँ न वृक्ष हैं, न मृग, न पक्षी। कहीं-कहीं दुर्गम गिरि-कन्दराएँ हैं। वहा पर कोई मनुष्य नहीं जा सकता। मृग आदि पशुओं की कौन कहे, पक्षी भी उन स्थानों में नहीं जा सकते। केवल वायु, सिद्ध और महर्षि आदि वहाँ जा सकते हैं। आपकी दोनों स्त्रियाँ राजाओं की कन्या हैं। ऐसे दुर्गम स्थान में जाने से उन्हें अवश्य कष्ट होगा। इस कारण आप न चलिए।

यह सुनकर पाण्डु ने कहा—हे महाभाग ऋषियो, जिसके सन्तान नहीं वह मनुष्य स्वर्ग में नहीं जा सकता उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द है। मेरे सन्तान नहीं है। इसलिए दुःखित चित्त से मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि मैं पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से अपने को उऋण नहीं कर सका; इस कारण मेरा शरीर न रहने पर मेरे पितर स्वर्ग से भ्रष्ट होंगे ही। मनुष्य जब उत्पन्न होता है तब उस पर देवता, ऋषि, पितर और मनुष्यों का ऋण होता है। इस कारण उन सबका ऋण चुकाना ही हर एक मनुष्य का धर्म और कर्त्तव्य है। धर्मात्माओं का कहना है कि ठीक समय पर जो कोई इन ऋणों को नहीं चुकाता उसकी सद्गति नहीं होती। यज्ञ करके देवताओं का ऋण, वेद पढ़कर और तप करके ऋषियों का ऋण, पुत्र उत्पन्न करके पितरों का ऋण और सब प्राणियों पर दया करके मनुष्यों का ऋण चुकाया जाता
२० है। मैं धर्मपूर्वक देवता, ऋषि और मनुष्यों के ऋण से छुटकारा पा चुका हूँ; केवल पितरों का ऋण चुकाना है। यही मुझे चिन्ता है कि पितरों का ऋण किस तरह चुकाऊँगा! कृपा करके आप लोग मुझको बता दीजिए कि जैसे अपने पिता की स्त्री में महर्षि वेदव्यास के द्वारा मैं उत्पन्न हुआ हूँ वैसे ही मेरी स्त्री में किसी तरह पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं या नहीं?



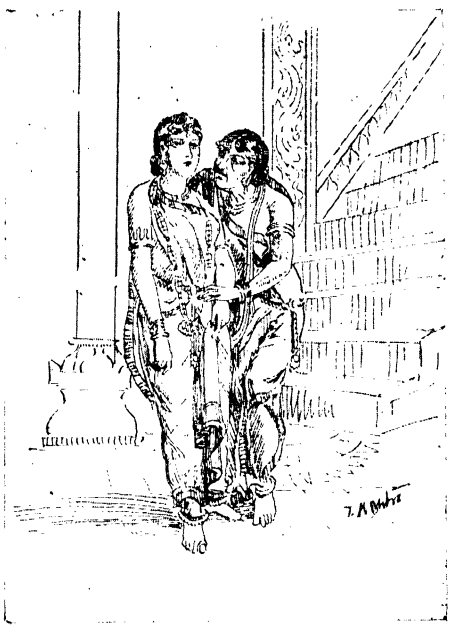
पाण्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर चलने लगे।—पृ० २६२



जानपदी और शरद्वान् । — पृ० २८८

रहता। इसी कारण राजा के बिना किसी तरह राज्य की रक्षा नहीं की जा सकती। इससे तुम शीघ्र ही उन रानियों के पुत्र उत्पन्न करो। लालन-पालन करके भीष्म उन्हें जल्दी राज्य-शासन के योग्य बना लेंगे।

व्यास ने कहा—यदि असमय में ही भाई के पुत्र उत्पन्न करने को कहती हो तो उन रानियों के लिए यही एक परम व्रत है कि वे मेरे इस विकृत वेष को देखकर घृणा न करें। यदि मेरे शरीर की गन्ध को रानी सह लें और मेरे रूप, वेष और शरीर को देखकर डरे नहीं तो वह तुरन्त गर्भवती हो जायगी।



वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महातेजस्वी व्यास यों कहकर अन्तर्द्धान हो गये। जाते समय कह गये कि कौशल्या (यह अम्बिका का दूसरा नाम था) साफ़ कपड़े और गहने पहनकर शय्या पर जाकर मेरे समागम की इच्छा करे।

अब सत्यवती ने एकान्त में बहू को बुलाकर कहा—कौशल्या, मैं तुमसे धर्म और युक्ति-सङ्गत हित की बात कहती हूँ—सुनो। मेरे दुर्भाग्य के कारण भरतवंश का ५०
लोप होता देख पड़ता है। इस समय भीष्म ने मुझे व्यथित और पिता के वंश का लोप होते देखकर एक धर्म-सङ्गत उपाय सोचा है। किन्तु हे सुन्दरी, उस उपाय के द्वारा कार्य की सिद्धि तभी हो सकती है जब तुम उसे स्वीकार करो। मैं कहती हूँ कि तुम मेरा कहा मानकर वंश का भला करो। बेटी, इन्द्रतुल्य प्रभावशाली पुत्र उत्पन्न करके इस नष्ट हो रहे भरतवंश को फिर चलाओ। तुम्हारा पुत्र परम्परा से चले आ रहे इस राज्य का शासन करेगा।

इस प्रकार समझा-बुझाकर बड़ी कठिनाई से सत्यवती ने कौशल्या को राज़ी किया। फिर शुभ दिन में देव-पूजन करके ब्राह्मण, देवता, ऋषि और अतिथि-अभ्यागतों को भोजन कराया। ५४

# एक सौ सात अध्याय

धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर का जन्म

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, कौशल्या ने यथासमय ऋतुस्नान किया। तब सत्यवती ने उसे शयन-भवन में जाने की आज्ञा देकर धीरे से कहा—कौशल्या, तुम्हारे एक देवर हैं। वे आज आधी रात के समय तुम्हारे पास आयेंगे; तुम सावधानी के साथ उनकी बाट जोहना। सास की ये बातें सुनकर अम्बिका शयन-भवन में जाकर लेट रही और भीष्म तथा अन्यान्य श्रेष्ठ कौरवों का ध्यान करने लगी।

इसी बीच में सत्यवादी व्यासदेव [ पुत्र उत्पन्न करने के लिए माता की आज्ञा से ] उस भवन के भीतर गये। उस समय वहाँ रत्न-दीपक जगमगा रहे थे। अम्बिका ने महर्षि के काले रङ्ग, पीली जटा, प्रज्वलित नेत्र और भूरी डाढ़ी-मूछें देखकर डर से आँखें मूँद लीं। माता की अनुमति से, भावी की भलाई के लिए, व्यास ने गर्भाधान किया; किन्तु काशिराज की कन्या ने आँखें नहीं खोलीं।

व्यास के बाहर आने पर सत्यवती ने पूछा—बेटा, इस गर्भ से गुणी राजपुत्र उत्पन्न होगा? दिव्यज्ञानी व्यासदेव ने उत्तर दिया—माता, इस गर्भ से दस हज़ार हाथियों का बल रखनेवाला, महाभाग, महावीर्य, बुद्धिमान् राजर्षि बालक उत्पन्न होगा। उसके भी एक सौ
१० पुत्र होंगे। किन्तु माता के दोष से वह जन्मान्ध होगा। यह सुनकर सत्यवती ने कहा—हे तपोधन, अन्धा बालक तो कुरुवंश के योग्य राजा नहीं हो सकता। इस कारण तुम जाति और वंश की रक्षा करनेवाला, पिता के वंश को बढ़ानेवाला दूसरा पुत्र उत्पन्न करो। वही कुरु-कुल का राजा होगा। महायशस्वी व्यासदेव माता की इस आज्ञा को भी स्वीकार करके चले गये। कुछ दिनों बाद समय आने पर कौशल्या के एक अन्धा पुत्र उत्पन्न हुआ। अब दूसरी बहू अम्बालिका को राज़ी करके सत्यवती ने फिर व्यासदेव का स्मरण किया। व्यासदेव फिर आये और उन्होंने अम्बालिका के गर्भाधान किया। उस समय अम्बालिका मारे डर के पीली पड़ गई। यह देखकर महर्षि व्यास ने उससे कहा—तुम मुझे देखकर डर के मारे पीली पड़ गईं, इस कारण तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न बालक पाण्डु रङ्ग का होकर
१८ पाण्डु नाम से ही प्रसिद्ध होगा। अब मैं जाता हूँ।

वहाँ से बाहर निकलकर व्यास ने माता सत्यवती से भी कह दिया कि माता के दोष से यह बालक भी पाण्डुवर्ण होगा। यह सुनकर सत्यवती ने व्यास से और एक सर्वाङ्ग-सुन्दर पुत्र उत्पन्न करने के लिए प्रार्थना की। व्यास ने फिर भी स्वीकार कर लिया।

कुछ दिनों बाद अम्बालिका के एक सुन्दर पाण्डुवर्ण पुत्र उत्पन्न हुआ। अद्वितीय पाँचों पाण्डव इन्हीं पाण्डु के पुत्र हैं।

कुछ समय बीतने पर बड़ी रानी अम्बिका ने फिर ऋतुस्नान किया। यह देखकर सत्यवती ने फिर पुत्र उत्पन्न करने के लिए व्यासदेव के पास जाने को उससे कहा। रानी ने स्वीकार तो कर लिया, परन्तु पहले की वह मुनि के शरीर की गन्ध, उनका रूप, वेष और शरीर याद आ जाने से वह उनके पास न जा सकी। उसने अप्सरा के समान सुन्दर अपनी दासी को अपने कपड़े और गहने पहनाकर व्यासजी के पास भेज दिया। वह दासी अभ्यागत महर्षि के पास जाकर उनका पूजन और प्रणाम करके उनकी आज्ञा से पलँग पर बैठ गई। व्रतधारी द्वैपायन व्यास उसके सहवास से विशेष सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसे वर दिया कि आज से तू दासीभाव से छुटकारा पा जायगी। इसके सिवा तेरे गर्भ से उत्पन्न बालक संसार में परम-धार्मिक और सबसे बढ़कर बुद्धिमान होगा।

राजन्, महात्मा धृतराष्ट्र और पाण्डु के भाई व्यास-पुत्र विदुर उसी दासी के गर्भ से उत्पन्न हुए। काम-क्रोध-रहित, व्यवहार-कुशल विदुर साक्षात् धर्म के अवतार थे। धर्म ने ही, अणीमाण्डव्य के शाप से, शूद्रयोनि में जन्म लिया था। महाराज, व्यासजी दासी को वर २९
देकर जब बाहर निकले तब उन्होंने सत्यवती से कहा—माता, तुम्हारी बहू ने दासी को मेरे पास भेजकर छल किया। जो हो, मैं तुमसे उऋण हो गया; इस बार भी गर्भाधान करके अब जाता हूँ। बस, ऋषि अन्तर्द्धान हो गये। इस प्रकार विचित्रवीर्य के क्षेत्र में व्यासजी के वीर्य से कुरुवंश को बढ़ानेवाले देव-कुमार-सदृश बालक उत्पन्न हुए। ३२

---

## एक सौ आठ अध्याय

अणीमाण्डव्य का उपाख्यान

जनमेजय ने पूछा—भगवन, धर्मराज ने ऐसा कौन अपराध किया था जिससे उन्हें शूद्र-योनि में जन्म लेना पड़ा? किस ऋषि ने उनको किसलिए शाप दिया?

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! माण्डव्य नाम के बुद्धिमान्, सत्यवादी, धर्मज्ञ एक ब्राह्मण थे। वे एक समय अपने आश्रम के द्वार पर, एक वृक्ष की जड़ में बैठकर, ऊपर हाथ उठाये मौन-व्रत धारण किये तपस्या कर रहे थे। इसी तरह बहुत समय बीतने पर कुछ डाकू डाके का धन लिये हुए उधर से निकले। वे पीछे आ रहे राजदूतों के डर से उस धन को वहीं पर धरती में गाड़कर छिप रहे। राजदूत उन डाकुओं का पीछा करते हुए वहाँ पर आ गये। वे

मौन-व्रतधारी मुनि से बारम्बार पूछने लगे कि हे द्विजश्रेष्ठ, डाकू किस राह से किधर भाग गये हैं ? शीघ्र बतलाइए, हम भी उसी राह जायँ। तपस्वी माण्डव्य मौनी थे, इस कारण उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे राज-सैनिक इधर-उधर खोज करने लगे। उन्हें वे डाकू उसी आश्रम
१० के आसपास छिपे हुए मिल गये। लूट का धन भी वहाँ गड़ा हुआ निकला। तब उन सिपाहियों को ऋषि पर भी सन्देह हुआ। वे ऋषि को भी डाकुओं के साथ बाँधकर राजा के सामने ले गये। राजा ने विचार करके सबको सूली पर चढ़ाने का दण्ड दिया। सिपाहियों ने डाकुओं के साथ माण्डव्य ऋषि को भी सूली पर चढ़ा दिया। वह धन राजा के ख़ज़ाने में जमा हो गया।



महातपस्वी माण्डव्य सूली पर चढ़ाये जाने पर भी मरे नहीं। सूली पर चढ़े-चढ़े निराहार रहकर तपस्या करने लगे। तपोबल से और-और ऋषियों को उन्होंने उस जगह पर बुला लिया। उनकी इस दशा का पता पाकर दुःखित मुनिगण, पक्षियों के रूप से, रात को उनके पास आये। पहले अपना-अपना परिचय देकर उन्होंने माण्डव्य से पूछा कि आपने कौन सा पाप किया है जिससे आप सूली पर चढ़ने की भयानक यन्त्रणा भोग रहे हैं ?
१७ कहिए, हम सुनना चाहते हैं।

---

## एक सौ नव अध्याय

*धर्म को अणीमाण्डव्य ऋषि का शाप*

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, माण्डव्य ऋषि ने ऋषियों के वचन सुनकर कहा—मैं इसके लिए किसको दोष दूँ ? किसी ने मेरा अपराध नहीं किया।

कुछ समय बीतने पर राजा के सिपाहियों ने आकर देखा कि ऋषि उसी तरह जीते हुए सूली पर चढ़े हैं। यह देखकर सिपाहियों को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने राजा के पास

जाकर सब हाल कहा। राजा ने सुनकर मन्त्रियों से सलाह करके यह निश्चय किया कि वे चोर नहीं, सचमुच कोई तपस्वी हैं। तब वे सूली के स्थान पर आकर ऋषि को प्रसन्न करने के लिए उनकी स्तुति करने लगे—हे ऋषिश्रेष्ठ, मैंने मोहवश होकर अज्ञान से यह अपराध किया है। इस कारण सन्तुष्ट होकर मुझे क्षमा कीजिए। राजा की स्तुति से माण्डव्य ऋषि प्रसन्न हुए। राजा ने ऋषि को सूली पर से उतरवा लिया। उनकी देह में घुसे हुए सूली के अग्रभाग को निकलवाने की राजा ने बड़ी चेष्टा की, परन्तु वह न निकला। तब राजा ने सूली को तुड़वा डाला। वह सूली की नोक ऋषि के शरीर में घुसी ही रही।



इसके बाद महर्षि माण्डव्य बहुत दिनों तक इसी अवस्था में घोर तप करते रहे। कठोर तप करके उन्होंने दुर्लभ लोकों को जीत लिया। वह अणी (अनी) अर्थात् सूली की नोक शरीर में घुसी रहने के कारण वे अणीमाण्डव्य नाम से प्रसिद्ध हुए।

महर्षि अणीमाण्डव्य एक दिन धर्मराज की सभा में पहुँचे। वहाँ अपने आसन पर बैठे हुए धर्मराज का तिरस्कार करते हुए ऋषि ने कहा—मैंने अज्ञानवश कौन सा भारी पाप किया था जिसके कारण मुझे सूली पर चढ़ने का दारुण दुख भोगना पड़ा? [ तुमने अकारण मुझको कष्ट दिया है, इस कारण ] अभी मैं तुमको अपना तपोबल दिखाता हूँ। १०

धर्म ने कहा—हे तपोधन, तुमने एक सींक में कई एक टिड्डियों को छेदकर बचपन में उड़ाया था। उसी पाप का यह फल तुमको भोगना पड़ा है। थोड़ा सा दान भी बहुत फल देता है, इसी तरह थोड़ा सा पाप भी बहुत दुख देता है। यह पातक तुमने बचपन में किया था।

माण्डव्य ने कहा—बारह वर्ष की उम्र तक बच्चा जो कुछ भी करे उसका उसे अधर्म नहीं लगता। यही धर्मशास्त्र का मत है। यद्यपि और हत्याओं के सामने ब्राह्मण-वध बहुत भारी है तो भी तुमने स्वल्प पाप के कारण मुझे इतना भारी दण्ड दिया है। इस कारण हे धर्म, तुम मनुष्य होकर शूद्र-योनि में जन्म पाओगे। आज से मैं संसार में यह मर्यादा स्थापित करता

हूँ कि जन्म से चौदह वर्ष की अवस्था तक किया गया पाप पाप न समझा जायगा। उसके बाद किये हुए पाप का फल सबको भोगना पड़ेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसी अपराध के कारण ऋषि के शाप से धर्म को शूद्र-योनि में उत्पन्न होना पड़ा। विदुर धर्म के अवतार थे। वे धर्म और लौकिक व्यवहार में निपुण, काम और क्रोध आदि से रहित, दूरदर्शी, शान्त और कौरवों की
१९ भलाई सोचने और करने में तत्पर थे।

---

## एक सौ दस अध्याय

### पाण्डु का राज्याभिषेक होना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! धृतराष्ट्र, पाण्डु और महात्मा विदुर के उत्पन्न होने पर कुरुजाङ्गल, कुरुक्षेत्र और कुरुवंशियों की विशेष उन्नति होने लगी। पृथ्वी में बेहद अन्न उपजने लगा। सभी अन्न सरस होते थे। मेघ ठीक समय पर बरसते थे। वृक्षों में असंख्य फूल-फल देख पड़ते थे। गाय, घोड़े आदि सब पशु प्रसन्नतापूर्वक घास चरते थे। मृग और पक्षी आनन्द से विचरते थे। फूलों में अपूर्व सुगन्ध थी। फलों में अनोखा स्वाद था। सब नगर बनियों और शिल्पियों से पूर्ण थे। सब लोग वीर, विद्वान् और सच्चरित्र होकर सुख भोगते थे। कहीं चोर-डाकुओं का डर नहीं रह गया। कोई पाप करने का विचार भी न करता था। जान पड़ता था, राज्य में सर्वत्र सत्ययुग आ गया है। सब धर्मात्मा प्रजा यज्ञ आदि करके, सत्यपरायण और व्रतपरायण होकर परस्पर प्रीति से बढ़ने लगी। सब लोग अभिमान, क्रोध और लोभ त्यागकर धर्मपूर्वक अपनी जीविका चलाते हुए एक दूसरे को प्रसन्न करने की धुन में थे। जलराशि से जैसे समुद्र पूर्ण होता है वैसे ही मेघखण्ड-तुल्य फाटकों और इन्द्रभवन-तुल्य महलों से वह नगर भरा-पूरा देख पड़ता था। सब प्रजा नदी-जल में, बागों में, बावली, तालाब और मनोहर पहाड़ों के शिखरों पर तथा वनों में आनन्द से विहार करती थी। उत्तर-कुरु देश के निवासी दक्षिण-कुरु देशवालों के साथ होड़ सी
१० लगा करके देव, ऋषि, चारण आदि के समान ऐश्वर्य भोग रहे थे। उस राज्य में असंख्य कुरुवंशी रहते थे। वहाँ कोई कृपण पुरुष या विधवा स्त्री न देख पड़ती थी। उपवन, बावली, कुआ और ब्राह्मणों के घर सब समृद्धियों से भरे-पूरे देख पड़ते थे। सब स्थानों में सदा उत्सव हुआ करते थे। धर्म के अनुसार भीष्म जब प्रजा का पालन करने लगे तब देश में सब जगह यज्ञ के खम्भे ही गड़े हुए देख पड़ने लगे। वहाँ धर्म-चक्र इस प्रकार चलने लगा कि सभी राज्यों के मनुष्य अपने-अपने देश छोड़कर उसी राज्य में रहने के लिए आने लगे। प्रधान-

प्रधान कुरुवंशियों और पुरवासियों के घरों में दान करने और साधु-अभ्यागतों को भोजन कराने के ही शब्द सदा सुनाई पड़ने लगे। भीष्मजी जन्मकाल से ही असाधारण बुद्धिमान् धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर को अपने पुत्र की तरह स्नेह से पालने लगे। क्षत्रियोचित संस्कार हो जाने पर तीनों कुमार शास्त्र पढ़ने लगे। क्रमशः जवान होकर वे तरह-तरह की कसरतें सीखकर वेद, वेदाङ्ग, गदा-युद्ध और ढाल-तलवार के युद्ध में, हाथी-घोड़ों पर चढ़ने में, नीतिशास्त्र, इतिहास, पुराण, शिक्षाशास्त्र आदि सभी विषयों में पूरे पण्डित हो गये। पाण्डु धनुष के युद्ध में, और २८
धृतराष्ट्र शरीर के बल में सबसे बढ़कर हुए। विदुर के समान धर्म का जानकार और धर्मात्मा पुरुष त्रिभुवन में कोई नहीं देखा गया। शान्तनु के नष्ट वंश को फिर से चलते देखकर सर्वत्र कहावत की तरह यह बात फैल गई कि "वीरजननी स्त्रियों में काशिराज की अम्बिका और अम्बालिका नाम की दोनों कन्याएँ श्रेष्ठ हैं, देशों में कुरुजाङ्गल देश प्रधान है, धर्मज्ञ लोगों में भीष्म श्रेष्ठ हैं और नगरों में हस्तिनापुर उत्तम है।" राजन्, धृतराष्ट्र अन्धे होने के कारण और विदुर दासी-पुत्र होने के कारण राजा नहीं हुए। राजगद्दी पाण्डु को ही मिली।

एक दिन नीतिज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ भीष्मजी ने धर्म और अर्थशास्त्र के ज्ञाता विदुर को बुलाकर यों कहा। २९

---

## एक सौ ग्यारह अध्याय

धृतराष्ट्र के साथ गान्धारी का ब्याह

भीष्म ने कहा—पुत्र, हमारे इस कुरुवंश में उत्पन्न पहले के राजाओं में सभी गुण थे। वे धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करते हुए पृथ्वी के सभी राजाओं पर आधिपत्य कर गये हैं। उस वंश का नाश न होने देने के विचार से मैंने और माता सत्यवती ने महात्मा वेदव्यास के द्वारा तुम लोगों को उत्पन्न कराकर वंश चलाने का उपाय किया है। अब मेरा और तुम्हारा यही कर्त्तव्य है कि यह महान् वंश आगे भी समुद्र के समान जैसे बढ़ाया जा सके वैसे इसे बढ़ाना चाहिए। मैंने सुना है कि यदुवंशी राजा शूरसेन, राजा सुबल और मद्र-नरेश, इन तीनों के एक-एक सुन्दरी कन्या है। ये तीनों कन्याएँ अच्छे कुल में उत्पन्न, रूपवती और हमारे सम्बन्ध के योग्य हैं। इसलिए मैं चाहता हूँ कि वंशवृद्धि के विचार से उन्हें, तुम लोगों के लिए, उनके पिताओं से माँगूँ। तुम्हारी क्या सलाह है?

विदुर ने कहा—आर्य! आप ही हम तीनों बालकों के माता, पिता और परम गुरु हैं। इस कारण जिसमें आप इस वंश की भलाई समझें, वही करें।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कौरवों के पितामह भीष्म ने ब्राह्मणों से सुना कि राजा सुबल की कन्या गान्धारी ने भगवान् शङ्कर की आराधना करके उनसे सौ पुत्र होने का वर पाया है। यह ख़बर पाकर भीष्म ने गान्धार देश के राजा सुबल के पास अपना दूत भेजा। सुबल को मालूम था कि धृतराष्ट्र जन्म के अन्धे हैं। इसी से भीष्म की इच्छा सुनकर पहले वे सोच-विचार में पड़ गये। किन्तु वर के कुल, आचरण, यश और ऐश्वर्य का विचार करके अन्त को कन्या देने के लिए वे राज़ी हो गये। गान्धारी ने सुना कि उसके पति धृतराष्ट्र अन्धे हैं और माता-पिता ने उन्हीं के साथ ब्याह पक्का कर दिया है। तब इस विचार से कि स्वामी को अन्धा देखकर उनके प्रति घृणा और विद्वेष न हो, पतिव्रता गान्धारी ने उसी समय कपड़े के कई पर्त करके अपनी आंखों पर भी पट्टी बाँध ली।

अब गान्धार-नरेश सुबल के पुत्र शकुनि रूप-गुण-सम्पन्न अपनी बहन को साथ लिये हस्तिनापुर में आये। उन्होंने भीष्म की अनुमति से धृतराष्ट्र के साथ आदर-सहित गान्धारी का ब्याह कर दिया। इस प्रकार कपड़े, गहने, रत्न आदि के साथ अपनी बहन देकर शकुनि अपने नगर को चले। जाते समय उनका भीष्म ने यथोचित सत्कार किया। पतिपरायणा गान्धारी भी अपने शील स्वभाव और आचरण से सब कौरवों को और अपने पति को प्रसन्न रखने लगीं। उन्होंने भूलकर भी परपुरुष के गुणों का कीर्त्तन नहीं किया।

---

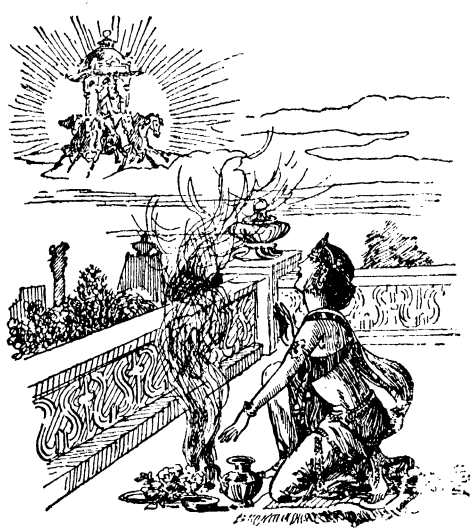
## एक सौ बारह अध्याय

कुन्ती का दुर्वासा से मन्त्र पाना और कर्ण की उत्पत्ति का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यदु के वंश में शूरसेन नाम के एक प्रसिद्ध यादव हुए। उनके पुत्र वसुदेव हुए। पहले शूरसेन के पृथा नाम की एक अद्वितीय सुन्दरी कन्या भी उत्पन्न हुई थी। शूरसेन पहले ही अपनी बुआ के निःसन्तान पुत्र से यह प्रतिज्ञा कर चुके थे कि मेरी रानी के गर्भ से पहले-पहल जो सन्तान होगी वह मैं तुमको दे दूँगा। उसी प्रतिज्ञा के अनुसार शूरसेन ने कन्या उत्पन्न होने पर अपने परम हितैषी बुआ के लड़के कुन्तिभोज को वह दे दी। कुन्तिभोज ने उस कन्या को अपने घर आये हुए अभ्यागत ब्राह्मण ऋषियों की सेवा का काम सौंप दिया। पृथा अपने यहाँ आकर ठहरे हुए व्रतधारी, धर्म के गूढ़ रहस्य के जाननेवाले, उग्र-स्वभाव महर्षि दुर्वासा की सेवा करने लगीं। कुन्ती ( पृथा ) ने यत्नपूर्वक अनेक प्रकार से सेवा करके जितेन्द्रिय महर्षि दुर्वासा को सन्तुष्ट कर लिया। ऋषि प्रसन्न हो गये। उन्होंने दिव्य ज्ञान से जान लिया कि कुन्ती अपने पति के सङ्ग से पुत्र उत्पन्न न कर

सकेंगी। उस समय आपद्धर्म के अनुसार काम निकालने के लिए ऋषि ने कुन्ती को एक अभिचार मन्त्र देकर कहा—सुन्दरी, यह मन्त्र पढ़कर तुम जिस देवता का आवाहन करोगी, वह तुम्हारे पास आ जायगा और उसके प्रभाव से तुम्हारे एक पुत्र उत्पन्न होगा।

उनके ऐसा कहने पर यशस्विनी भोजराज की कन्या को ऐसा कौतूहल हुआ कि उन्होंने कुमारी-अवस्था में ही सूर्यदेव का आवाहन किया। मन्त्र पढ़कर आवाहन करते ही त्रिलोक-पालक तेजस्वी सूर्य आ गये। यह अद्भुत घटना देखकर कुन्ती को बड़ा अचरज हुआ। सूर्य ने आकर कहा—कमल-नयनी, मैं आ गया। बतलाओ, तुम क्या चाहती हो? मैं क्या तुम्हारा प्रिय करूँ? कुन्ती ने हाथ जोड़कर कहा— १०
भगवन्, एक ब्राह्मण ने प्रसन्न होकर मुझको यह विद्या दी है। मैंने मन्त्र-बल की जाँच करने के लिए ही आपका आवाहन किया है। मुझसे अपराध हुआ; मैं हाथ जोड़कर आपसे क्षमा की प्रार्थना करती हूँ। आप प्रसन्न होकर क्षमा कर दीजिए। स्त्रियों का भारी अपराध होने पर भी पुरुष उनकी रक्षा करते हैं।



सूर्य ने कहा—मुझे मालूम है कि दुर्वासा ने प्रसन्न होकर तुमको यह विद्या दी है। तुम डरो नहीं; मुझसे सहवास करो। मुझे तुमने बुलाया, इसी से मैं आया हूँ। मेरा आना व्यर्थ नहीं हो सकता। इसके सिवा आवाहन करके मुझे व्यर्थ लौटा देने से भी तुम दूषित हो जाओगी।

राजन्, सूर्य ने इस तरह समझा-बुझाकर कुन्ती का डर दूर करना चाहा। परन्तु यशस्विनी कुन्ती, अपने कन्या-भाव को याद कर, माता-पिता आदि बन्धु-बान्धवों के डर और लोकलज्जा के कारण, किसी तरह सूर्य का कहना मानने को तैयार न हुई। तब फिर सूर्य ने कहा—राजकुमारी, मैं प्रसन्न होकर तुमको वर देता हूँ; 'इस मेरे सहवास से तुम्हारा कन्या-भाव दूषित न होगा।' इसके उपरान्त सूर्यदेव कुन्ती से रमण करके चले गये। उसी समय शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ, त्रिलोक-प्रसिद्ध, महावीर, देवकुमार-सदृश, सुन्दर बालक स्वाभाविक कवच और कुण्डल पहने उत्पन्न हुआ। सूर्य के वर से कुन्ती फिर भी कन्या बनी रहीं। २०

पुत्र पैदा हुआ देखकर सुन्दरी कुन्ती सोचने लगी कि अब क्या करने से भलाई हो सकती है। लोक-निन्दा से बचने के लिए क्या करना चाहिए? इसके बाद उन्होंने अपने इस दुष्कर्म को छिपाने के लिए, बन्धु-बान्धवों के डर से, उसी समय उत्पन्न हुए बालक को [ रत्नों से भरी सन्दूकची में रखकर ] पानी में बहा दिया। उधर राधा के पति महायशस्वी सूतपुत्र अधिरथ को वह बच्चा मिला। उसे जल से निकाल-कर अधिरथ अपने घर ले गया। राधा और अधिरथ, दोनों स्त्री-पुरुष, अपनी सन्तान की तरह उस बालक का पालन करने लगे। वह बालक कुण्डल और कवच रूपी वसु ( धन ) के साथ उत्पन्न हुआ था, इसी से पिता-माता ने उसका नाम वसुषेण रक्खा। अवस्था बढ़ने के साथ-साथ वसुषेण अनेक अस्त्र-शस्त्रों का चलाना सीखने लगे। वे दोपहर से साय-



काल तक सूर्य के सामने खड़े होकर मन्त्र जपा करते थे। उस समय कोई भी ब्राह्मण आकर जो कुछ माँगता था वही उसको वे देते थे।

एक दिन इन्द्र ने भिक्षुक ब्राह्मण का वेष धारण करके, अपने पुत्र अर्जुन की भलाई के लिए, महावीर दानी कर्ण के पास आकर उनसे उनके स्वाभाविक कवच-कुण्डल माँगे। कर्ण ने उसी समय शरीर से कवच और कुण्डल काटकर नम्रता के साथ इन्द्र को दे दिये। कर्ण के इस कार्य से इन्द्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कवच-कुण्डल लेकर कर्ण को एक शक्ति दी और कहा कि तुम देवता, दानव, मनुष्य, गन्धर्व, नाग, राक्षस आदि चाहे जिसको मारने के लिए यह शक्ति चलाओगे तो उसे यह अवश्य नष्ट कर देगी। यह 'एक-घातिनी' शक्ति है।

राजन्, राधा के पुत्र पहले वसुषेण नाम से प्रसिद्ध थे; यह अद्भुत कार्य करने के
३१ बाद वे "वैकर्त्तन" और "कर्ण" नाम से प्रसिद्ध हुए।



कुन्ती का स्वयंवर और पाण्डु के साथ विवाह।—पृ० २४६

# एक सौ तेरह अध्याय

कुन्ती का स्वयंवर और पाण्डु के साथ विवाह

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, विशाल नेत्रोंवाली कुन्ती में रूप, नम्रता आदि सभी गुण थे। धर्म पर उन्हें बड़ी श्रद्धा थी। तेजस्विनी, युवती और उत्तम स्त्री के गुणों से भूषित कुन्ती को उनके पिता से एक साथ कई राजाओं ने माँगा। इस कारण कुन्तिभोज ने स्वयंवर कर दिया। स्वयंवर में सब राजा आये। यशस्विनी कुन्ती ने उस सभा में आकर देखा कि सिंहविक्रम, चौड़े सीने के, जवान, बड़ी-बड़ी आँखोंवाले, महाबली, भरत-कुल-तिलक महाराज पाण्डु अपने तेज से और राजाओं की कान्ति को फीका किये हुए सूर्य के समान प्रकाशमान हो रहे हैं। राज-मण्डली में इन्द्र के समान बैठे हुए पाण्डु को देखकर कुन्ती रीझ गईं; उन्होंने लज्जा से सिर झुकाकर पाण्डु के ही गले में जयमाल डाल दी। यह देखकर सब आये हुए राजा रथों और घोड़ों पर चढ़कर अपने-अपने नगर को चले गये। ६

कुन्तिभोज ने विधिपूर्वक पाण्डु के साथ कुन्ती का विवाह कराया और दहेज में बहुत धन-रत्न देकर पाण्डु और कुन्ती को विदा किया। यात्रा के समय ब्राह्मण और महर्षि आशीर्वाद देने लगे। ध्वजाओं से अलङ्कृत रथों से पूर्ण सेना महाराज की स्तुति करती हुई पीछे-पीछे चली।

नृपश्रेष्ठ पाण्डु, इन्द्राणी-सहित इन्द्र की तरह, रानी कुन्ती को साथ लिये, अपनी राजधानी में पहुँचे। उन्होंने कुन्ती को महलों में भेज दिया। १३

---

# एक सौ चौदह अध्याय

पाण्डु का माद्री से विवाह और दिग्विजय

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इसके बाद शान्तनु के पुत्र भीष्म ने यशस्वी महाराज पाण्डु का और एक ब्याह करना चाहा। मन्त्री, ब्राह्मण और प्राचीन पुरोहित को लेकर चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये महाबली भीष्म मद्र-नरेश की राजधानी में पहुँचे। भीष्म के आने की ख़बर पाते ही वाह्लीकवंश में श्रेष्ठ मद्र-राज आगे से आकर अगवानी करके उनको अपने घर ले गये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, मधुपर्क आदि देकर मद्र-राज ने भीष्म से उनके आने का कारण पूछा। भीष्म ने कहा—मद्र-राज, मैं कन्या के लिए आया हूँ। सुना है, आपके एक यशस्विनी सुन्दरी बहन है। मैं पाण्डु के साथ ब्याहने को आपसे उसे माँगता

हूँ। राजन्, आप हमारे और हम आपके सम्बन्ध के योग्य हैं। इस कारण विचार करके आप हमारा यह सम्बन्ध स्वीकार कीजिए।

भीष्म के वचन सुनकर मद्र-राज ने कहा—मुझे आपके समान श्रेष्ठ सम्बन्धी दूसरा नहीं मिल सकता। किन्तु हमारे पूर्वपुरुष जो रीति चला गये हैं, वह भली हो चाहे बुरी, उसे हम लोग छोड़ नहीं सकते। वह हमारा कुल-धर्म और हमारे लिए प्रमाण है। आप हमारे उस कुलाचार को अच्छी तरह जानते भी हैं। अतएव "हमको कन्या दो" यह आपको न कहना
११ चाहिए। हम उस कुल-रीति के अनुसार, धन लिये बिना, आपको कन्या न दे सकेंगे।

भीष्म ने कहा—राजन्, ब्रह्मा ने स्वयं कहा है कि कुल-धर्म ही श्रेष्ठ धर्म है। यह रीति पूर्वपुरुषों की चलाई हुई है। इस कारण कन्या का मूल्य ( शुल्क ) लेना आपके लिए दोष नहीं। आप साधु-सम्मत सदाचार को बहुत अच्छी तरह जानते हैं। महातेजस्वी भीष्म ने अब बहुत सा सोना, सोने के गहने, रत्न, घोड़े, हाथी, वस्त्र और ढेर के ढेर मणि, मोती, मूँगे आदि मद्र-राज शल्य को दिये। उस धन को लेकर शल्य बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उसी समय अनेक गहनों से सजी हुई अपनी बहन भीष्म के साथ कर दी। माद्री को लेकर भीष्म शीघ्र ही हस्तिनापुर में आ गये। महाराज पाण्डु ने शुभ दिन और शुभ लग्न में माद्री का
१९ पाणि-ग्रहण करके उन्हें अपने महल में रक्खा।

कुरुश्रेष्ठ पाण्डु ने एक महीने तक कुन्ती और माद्री के साथ मनमाना विहार करके दिग्विजय के लिए यात्रा करने का विचार किया। उन्होंने भीष्म आदि बूढ़े कौरवों को, धृतराष्ट्र को और अन्यान्य कौरवों को बुलाकर प्रणाम करते हुए उनसे अपना विचार प्रकट किया। सबने उन्हें उत्साहित किया। तब महाराज पाण्डु ने दिग्विजय के लिए यात्रा की। भीष्म, धृतराष्ट्र आदि बड़े-बूढ़ों ने और ब्राह्मणों ने आशीर्वाद दिये—स्त्रियों ने मङ्गलाचार किये। हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों से शोभित चतुरङ्गिणी सेना उनके साथ चली।

देवतुल्य महाराज पाण्डु इस तरह पृथ्वीमण्डल को जीतने के इरादे से सेना साथ लेकर चारों ओर विचरने लगे। पहले पुरुषसिंह पाण्डु ने पहले के अपराधी दशार्ण देश के राजाओं को जीतकर अपने वश में किया। इसके बाद अनेक राजाओं के साथ लड़ाई करनेवाले, बल-गर्वित, मगधराज को 'राजगृह' में मारकर और वहाँ से बहुत धन-रत्न तथा घोड़े आदि लेकर वे मिथिला की ओर चले। वहां जाकर उन्होंने विदेह नरेश को जीता। अन्त में काशी, सुह्म और पुण्ड्र देश के राजाओं को बाहु-बल से परास्त करके पाण्डु ने कौरवों का यश बढ़ाया।
३० आग के समान राजा पाण्डु राज-मण्डली को जलाते हुए विचरने लगे। पैने बाण ही उनकी ज्वालाएँ थीं और तरह-तरह के शस्त्र चिनगारियों के समान थे। सेना को साथ लिये कुरुकुल-श्रेष्ठ पाण्डु ने सेना सहित सब राजाओं को जीतकर कुरुवंश का आज्ञाकारी बना लिया। परास्त

नरपतियों ने देवलोक में इन्द्र के समान मनुष्य-लोक में पाण्डु को ही एकमात्र वीर और श्रेष्ठ स्वीकार कर लिया। भेंट के लिए तरह-तरह के रत्न, मणि, मूँगा, मोती, सोना, चाँदी, बढ़िया गाय, रथ, हाथी, घोड़ा, गधे, ऊँट, भैंस, बकरी, भेड़, कम्बल, मृगछाला आदि सामग्रियाँ लिये हुए सब नरेश हाथ जोड़े उनके आगे उपस्थित होते थे। उनसे भेंट लेकर प्रसन्नतापूर्वक महाराज पाण्डु अपने राज्य में पहुँच गये। पाण्डु को देखकर सब प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ। मन्त्री, पुरवासी और आये हुए राजा कहने लगे—बुद्धिमान् महाराज पाण्डु ने भरतकुल-केतु शान्तनु के नष्टप्राय यश और प्रसिद्धि को बचाकर अपने कामों से और भी उज्ज्वल कर दिया। जिन राजाओं ने पहले कौरवों के धन और राज्य को दबा लिया था वे सब इस समय पाण्डु से हारकर उनको 'कर' देने लगे। ३९

पाण्डु के दिग्विजय से लौट आने का समाचार पाकर मन्त्री, अन्यान्य प्रधान कौरव और पुरवासियों को साथ लिये हुए भीष्म पितामह पाण्डु से मिलने और उनका स्वागत करने के लिए नगर से बाहर आ गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, जहाँ तक दृष्टि जाती है वहाँ तक, रत्नों से लदे छकड़े, गाय, हाथी, घोड़े, ऊँट, भेड़ आदि ही देख पड़ते हैं।



कौशल्या के पुत्र पाण्डु भीष्म पितामह को देखकर आगे बढ़कर उनसे मिले। उनके चरणों में उन्होंने प्रणाम किया। फिर उन्होंने सबको यथोचित सत्कार और प्रिय वचनों से प्रसन्न किया। अन्य राजाओं को जीतकर बहुत दिनों के बाद आये हुए पाण्डु को गले से लगाकर गङ्गा-नन्दन भीष्म आनन्द से आँसू बहाने लगे। चारों ओर तुरही, नगाड़े और शङ्ख आदि का शब्द गूँज उठा। सब पुरवासी प्रजा आनन्द से उछल पड़ी। महाराज पाण्डु ने बड़ी धूमधाम के साथ नगर में प्रवेश किया। ४४

## एक सौ पन्द्रह अध्याय

विदुर का विवाह

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डु ने धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने बाहु-बल से उपार्जित सारा धन भीष्म, विदुर, सत्यवती और अपनी माता को अर्पण कर दिया। उन्होंने धन देकर अपने बन्धु-बान्धवों को भी सन्तुष्ट किया। इन्द्राणी अपने पुत्र जयन्त को छाती से लगाकर जैसे असीम सुख का अनुभव करती हैं, वैसे ही माता कौशल्या पुरुषश्रेष्ठ पुत्र पाण्डु को हृदय से लगाकर आनन्दित होने लगीं। वीर पाण्डु के बाहु-बल की सहायता से धृतराष्ट्र ने एक सौ अश्वमेध यज्ञ किये और उनमें हज़ारों-लाखों मोहरें दक्षिणा में दीं।

कुछ दिनों बाद भरतवंशावतंस महाराज पाण्डु रमणीय राजमहल और सुन्दर कोमल शय्या छोड़कर शिकार खेलने के लिए हिमवान् पर्वत के दक्षिण ओर शाल-वन में जाकर रहने लगे। वहां वे, दो हथिनियों के बीच में गजराज ऐरावत की तरह, दोनों स्त्रियों को साथ लिये इधर-उधर विचरते फिरते थे। उनके दिव्य कवच और खड्ग, बाण, धनुष आदि शस्त्रों को
१० देखकर वनवासियों ने उन्हें कोई देवता समझा। विशेष ध्यान रखकर महात्मा धृतराष्ट्र सब भोग की सामग्री उसी वन में महाराज पाण्डु के पास भेजते रहते थे।

इधर भीष्म ने सुना कि महाराज देवक के एक दासी के गर्भ से उत्पन्न गुणवती सुन्दरी कन्या है। भीष्म ने विदुर के लिए देवक से वह कन्या माँगी। उसी कन्या के साथ विदुर
१४ का ब्याह हो गया। उस पत्नी के गर्भ से विदुर ने अपने समान धर्मात्मा कई पुत्र उत्पन्न किये।

---

## एक सौ सोलह अध्याय

गान्धारी के सौ पुत्र होने का वर्णन

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय! धृतराष्ट्र के गान्धारी के गर्भ से एक सौ पुत्र, और एक वैश्य जाति की स्त्री से एक पुत्र, इस तरह एक सौ एक पुत्र उत्पन्न हुए। पाण्डु की कुन्ती और माद्री, दोनों रानियों में देवताओं के द्वारा पाँच महारथी पुत्र उत्पन्न हुए।

जनमेजय ने कहा—भगवन्, किस कारण और कितने दिनों में गान्धारी के एक सौ पुत्र उत्पन्न हुए? वे कितनी आयु तक जिये? वैश्या के गर्भ से धृतराष्ट्र के एक पुत्र कैसे उत्पन्न हुआ? ऐसी पतिव्रता धर्मात्मा आज्ञाकारिणी स्त्री गान्धारी के साथ वे कैसा बर्ताव करते थे? पाण्डु को किस तरह किसका शाप हुआ? उस दशा में उन्होंने देवताओं के द्वारा पाँच पुत्र

कैसे उत्पन्न कराये ? यह सब वृत्तान्त विस्तार से कहिए। पूर्वपुरुषों के उपाख्यान को जितना सुनता हूँ उतना ही अधिक सुनने को जी चाहता है।

वैशम्पायन ने कहा—एक दिन भगवान् वेदव्यास भूखे-प्यासे और थके हुए गान्धारी के महल में पहुँचे। गान्धारी ने बड़े आदर से सेवा-सत्कार करके उनको प्रसन्न किया। उन्होंने प्रसन्न होकर गान्धारी से वर माँगने के लिए कहा। गान्धारी ने पति के सदृश बली और गुणी सौ पुत्र माँगे। व्यास 'तथास्तु' कहकर चले गये।

कुछ दिनों में धृतराष्ट्र के सहवास से गान्धारी के गर्भ रह गया। दो साल बीत गये, परन्तु सन्तान न उत्पन्न हुई। इसलिए गान्धारी विशेष चिन्तित हुई। इसी बीच उन्होंने सुना कि कुन्ती के प्रभातकाल के सूर्य के समान तेजस्वी एक मनोहर पुत्र उत्पन्न हुआ है। १०



तब डाह के मारे व्याकुल होकर गान्धारी ने सोचा, मेरा यह गर्भ शायद निष्फल ही होगा। दुःख और चिन्ता से ज्ञान-शून्य होकर यही निश्चय करके उन्होंने अपनी कोख में हाथ दे मारा। उस चोट से वह दो साल का गर्भ बाहर निकल पड़ा। वह लोह-पिण्ड के समान कठिन एक मांस का लोथड़ा था। रानी ने उसे फेंक देना चाहा। योग-बल से सब कुछ जाननेवाले व्यासदेव उसी समय वहाँ पर प्रकट हुए। वह मांस का लोथड़ा देखकर उन्होंने कहा—हे राजा सुबल की बेटी, तुम यह क्या कर रही हो ?

अपने हृदय का ठीक-ठीक भाव प्रकट करके गान्धारी ने कहा—हे तपोधन, कुन्ती के बालसूर्य के समान सुन्दर एक बालक उत्पन्न हुआ है, यह सुनकर मैंने डाह के मारे अपने गर्भाशय पर हाथ दे मारा। आपने वर दिया था कि मेरे एक सौ पुत्र होंगे। उन सौ पुत्रों के बदले केवल यह मांस-पेशी देख पड़ती है।

व्यासजी ने कहा—गान्धारी, तुम्हारे सौ पुत्र अवश्य होंगे। मैंने हँसी में भी कभी झूठ नहीं कहा। तुम्हें तो वरदान दिया है। अब तुम एक काम करो जल्दी से घी से भरे सौ घड़े मँगाकर किसी सुरक्षित गुप्त स्थान में रख दो और इस मांस-पेशी में थोड़ा-थोड़ा ठण्डा पानी छिड़कती रहो। १९

महाराज, व्यासजी की आज्ञा के अनुसार गान्धारी उस मांस-पेशी के ऊपर जल छिड़कती रहीं। कुछ दिनों में उस मांस-पेशी के अँगूठे-अँगूठे भर के अलग-अलग सौ खण्ड हो गये। तब व्यासजी ने वे सौ टुकड़े उन्हीं घी के सौ घड़ों में छोड़कर एक सुरक्षित गुप्त स्थान में रखवा दिये। जाते समय व्यासजी गान्धारी से कह गये कि दो साल बीतने पर इन घड़ों को खोलना। अब धर्मात्मा व्यासदेव तप करने के लिए फिर हिमालय के शिखर को चले गये।

कुछ दिनों के बाद, समय पूरा होने पर, उन मांस-खण्डों में से पहले दुर्योधन उत्पन्न हुआ। शीघ्र ही भीष्म और विदुर को यह ख़बर मिली। जन्म के अनुसार युधिष्ठिर दुर्योधन से बड़े थे। वीर्यशाली मँझले पाण्डव महाबाहु भीमसेन और दुर्योधन का जन्म एक ही दिन हुआ था।

राजन, धृतराष्ट्र का बड़ा पुत्र दुर्योधन पृथ्वी पर आते ही गधे की तरह रोने और चिल्लाने लगा। उसके उस शब्द को सुनकर गधे, गिद्ध, सियार और कौए बोलने लगे। भयानक आँधी चलने लगी। दिशाओं में दिग्दाह की लाली छा गई।

इन भयानक उत्पातों को देखकर धृतराष्ट्र बहुत डरे। उन्होंने भीष्म, विदुर आदि
३० सब कुरु-वंशियों को और बहुत से ब्राह्मणों को बुलाकर कहा—हमारे वंशधर राजा पाण्डु के बड़े बेटे युधिष्ठिर अपने गुण से ही राज्य के अधिकारी हुए हैं; उस विषय में तो कुछ कहना ही नहीं है। मैं आप लोगों से यह पूछता हूँ कि युधिष्ठिर के बाद पैदा होनेवाला मेरा यह बड़ा पुत्र उनके पीछे राजा हो सकेगा या नहीं?

महाराज, धृतराष्ट्र की यह बात पूरी होते ही अमङ्गल शब्द करनेवाली सियारियाँ और अन्यान्य मांसभोजी जीव चारों ओर बोल उठे। ये घोर असगुन देखकर विदुर और आये हुए सब ब्राह्मणों ने कहा—राजन, आपका यह पुत्र जैसे उत्पन्न हुआ वैसे ही घोर अमङ्गल की सूचना देनेवाले उत्पात होने लगे। इससे जान पड़ता है कि यह आपका पुत्र अवश्य वंश-नाश का कारण होगा। यदि आप अपने कुल भर की भलाई चाहते हैं तो इसे त्याग दीजिए। इसे पालिएगा तो अवश्य ही कुल पर बड़ी भारी विपत्ति आवेगी। यदि आप इस एक को त्यागकर अपने वंश की और जगत् की भलाई कर सकें तो सौ पुत्रों की अपेक्षा निन्नानवे पुत्र ही अच्छे। [ नीति में कहा है कि ] कुल के भले के लिए एक पुरुष को, गाँव भर के भले के लिए कुल को, राष्ट्र के भले के
३९ लिए गाँव को और अपने भले के लिए सारी पृथ्वी को छोड़ देना ही ठीक है।

राजन, ब्राह्मणों के और विदुर के इन नीति-पूर्ण हितवचनों को सुनकर भी धृतराष्ट्र पुत्रस्नेह के कारण दुर्योधन को त्याग न सके। इसके उपरान्त इसी तरह सौ दिन में, एक-एक करके, धृतराष्ट्र के सब पुत्र पैदा हो गये। एक लड़की भी उत्पन्न हुई।

जिस समय गान्धारी के गर्भ था और वे कमज़ोर थीं उस समय एक वैश्य की कन्या धृतराष्ट्र की सेवा किया करती थी। उसी समय उसके गर्भ से धृतराष्ट्र के युयुत्सु नाम का एक और पुत्र उत्पन्न हुआ।

राजन्, इस तरह धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। ४४

---

## एक सौ सत्रह अध्याय

दुःशला कन्या की उत्पत्ति का वर्णन

जनमेजय ने कहा—भगवन्, आपने व्यासजी के वर से धृतराष्ट्र के एक सौ पुत्र होने का वर्णन किया। साथ ही यह भी कहा कि उनके वैश्या के गर्भ से एक और पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु यह गान्धारी के गर्भ से एक कन्या होने की बात जो आपने कही, सो समझ में नहीं आई। आपका कथन यह था कि व्यास ने गान्धारी को सौ पुत्र होने का वर दिया। उसमें कन्या की चर्चा भी न थी। महर्षि व्यास ने अ-समय में उत्पन्न मांस-पिण्ड के सौ टुकड़े सौ घड़ों में रखवाये थे। उनसे सौ पुत्र उत्पन्न हुए। गान्धारी दुबारा गर्भवती भी नहीं हुई। फिर उनके दुःशला नाम की कन्या कब और किस तरह उत्पन्न हुई? विस्तार के साथ वर्णन करके मेरे इस सन्देह को दूर कीजिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन, आपने यह बड़ा अच्छा प्रश्न किया; सुनो। भगवान् व्यास ठण्डे पानी से सींचकर जैसे-जैसे उस मांसपेशी के टुकड़े अलग करते गये वैसे-वैसे धाय उन टुकड़ों को घी के भरे घड़ों में छोड़ती गई। इसी बीच गान्धारी के हृदय में कन्या के स्नेह का सञ्चार हुआ। वे सोचने लगीं, इन टुकड़ों से अवश्य ही मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होंगे, महर्षि का कहना झूठ नहीं हो सकता। किन्तु यदि इन सौ पुत्रों के सिवा एक कन्या भी उत्पन्न हो जाय तो मुझे बड़ा आनन्द हो। [ सुनती हूँ, नाती के बिना स्वर्ग नहीं मिलता। ] १०
कन्या उत्पन्न हो तो मेरे स्वामी भी स्वर्ग-लाभ से वञ्चित न हों। इसके सिवा दामाद होने से स्त्रियों को जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द और किसी तरह नहीं होता। इस कारण यदि इन सौ पुत्रों के बाद मेरे एक कन्या भी उत्पन्न हो तो मैं पुत्रों और नातियों से अपने को कृतार्थ समझूँ। यदि मैंने सचमुच तप किया है, दान दिये हैं, अग्नि में हवन कराया है और गुरुजन की सेवा की है, तो मेरे एक कन्या उत्पन्न हो।

गान्धारी मन में यों सोच रही थीं कि महर्षि व्यास ने उन टुकड़ों को गिना तो सौ से एक अधिक निकला। तब व्यास ने कहा—गान्धारी, मैं कभी झूठ नहीं बोला। तुम्हारे सौ पुत्र तो अवश्य ही होंगे। सौ के सिवा एक टुकड़ा बचा है। जान पड़ता है, तुम्हें एक

नाती भी मिलेगा। इसी से ऐसा हुआ है। तुम्हारी बड़ी इच्छा थी, इससे मैं कहता हूँ कि इस टुकड़े से तुम्हारे एक कन्या भी होगी। अब व्यास ने और एक घी का घड़ा मँगाकर उसमें वह टुकड़ा डाल दिया। राजन, यह दुःशला के जन्म का वृत्तान्त मैंने
१८ तुमसे कहा। अब और क्या सुनना चाहते हो?

---

## एक सौ अठारह अध्याय

धृतराष्ट्र के पुत्रों का नामोल्लेख

जनमेजय ने कहा—भगवन, बड़े-छोटे के क्रम से धृतराष्ट्र के उन सौ पुत्रों के नाम सुनाइए। वैशम्पायन ने कहा—राजन, सुनिए। धृतराष्ट्र के दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, सम, सह, विन्द, अनुविन्द, दुर्धर्ष, सुबाहु, दुष्प्रधर्षण, दुर्मर्षण, दुर्मुख, दुष्कर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चित्राक्ष, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द, चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्राङ्ग, चित्रकुण्डल, भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर, चित्रायुध, निषङ्गी, पाशी, वृन्दारक दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्त्ति, अनूदर, दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सदःसुवाक्, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय, अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त,
१० वातवेग, सुवर्चा, आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायी, कवची, क्रथन, कुण्डी, धनुर्द्धर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथ, अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विराची, प्रमथ, प्रमाथी, दीर्घरोमा, दीर्घबाहु, व्यूढोर, कनकध्वज, कुण्डाशी और विरजा, ये सौ पुत्र और एक दुःशला नाम की कन्या गान्धारी के गर्भ से उत्पन्न हुई। नामोल्लेख के अनुसार ही इनकी बड़ाई-छुटाई जानना। धृतराष्ट्र के ये सब पुत्र महारथी, वीर, युद्ध-चतुर, वेदज्ञ और सब अस्त्रों के जानकार थे। धृतराष्ट्र ने गुणवती सुन्दरी राजकुमारियाँ खोजकर यथासमय हर एक पुत्र
१८ का विवाह कर दिया। दुःशला का भी ब्याह राजा जयद्रथ के साथ हो गया।

---

## एक सौ उन्नीस अध्याय

राजा पाण्डु को मृगरूप-धारी ऋषि का शाप

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन, आपने धृतराष्ट्र के पुत्रों का अलौकिक जन्म-वृत्तान्त वर्णन किया। बड़ाई-छुटाई के अनुसार उनके नाम भी आपने सुना दिये। अब महाराज पाण्डु के पुत्रों का जन्म-वृत्तान्त और नाम कहिए। पाँचों पाण्डव महात्मा और इन्द्र के तुल्य पराक्रमी

थे। अंशावतार-वर्णन में आपने उन्हें देवताओं के अंश से उत्पन्न बतलाया है। मैं जन्म से लेकर उनके सब अद्भुत कार्यों का वर्णन आपके मुँह से सुनना चाहता हूँ।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, [ यह पहले कहा जा चुका है कि महाराज पाण्डु शिकार के लिए शालवन में—हिमवान् पर्वत के दक्षिण शिखर पर जाकर रहने लगे थे। ] बहुत से मृगों और हिंसा करनेवाले पशुओं से भरे हुए उस वन में विचरते-विचरते पाण्डु ने एक दिन एक जगह पर एक मृग और मृगी को विहार करते देखा। उन्होंने उसी समय पाँच बाण तानकर उस मृग और मृगी को मारे। महाराज, वह मृग वास्तव में एक ऋषिकुमार था, जो मृगीरूप-धारिणी अपनी पत्नी के साथ बेखटके विहार कर रहा था। वह मृग मृगी के साथ, घायल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसने विलाप करते हुए मनुष्य-वाणी में राजा से कहा—राजन्, काम और क्रोध के वश होकर विवेक से रहित बुद्धि-हीन पापी पुरुष भी ऐसा निष्ठुर व्यवहार नहीं करते। बुद्धि दैव को टाल नहीं सकती, दैव ही बुद्धि को बदल देता है। इसी से बुद्धिमान् लोग भी दैव के कराये कामों को कर डालते हैं। १०



नहीं तो धर्मात्मा भरतवंश में उत्पन्न आप काम और लोभ के वश होकर ऐसा निन्दित काम कैसे कर डालते! यह काम आपने अपने योग्य नहीं किया! पाण्डु ने कहा—मृग, सुन। राजा लोग शत्रु के मारने में जैसा व्यवहार करते हैं, वैसा ही शिकार में मृग का वध करने में भी करते हैं। इसलिए तू धर्म को जाने बिना क्यों मेरा तिरस्कार कर रहा है? शास्त्र में लिखा है कि राजा लोग सामने से और छिपकर भी मृग का शिकार कर सकते हैं। पहले अगस्त्य ऋषि ने, जब यज्ञ किया था तब, देवपूजा के लिए शिकार में मृगों को मारा था; और, अभिचार की क्रिया सम्पन्न करने के लिए मारे हुए मृगों की मेदा ( वपा ) से हवन किया था। इस कारण मैंने प्रमाण-सङ्गत धर्म के अनुसार ही तेरा वध किया है। तू क्यों वृथा मुझे बुरा-भला कह रहा है?

मृग ने कहा—शत्रु जब निःशस्त्र हो या व्यसन में हो तब उस पर बाण छोड़ना मना है, उसके मारने का समय तो युद्ध ही है। पाण्डु ने उत्तर दिया—हे मृग, तुम्हारा

आक्षेप वृथा है। शत्रु को किसी दशा में छोड़ा नहीं जाता—चाहे वह सावधान हो या असावधान, रक्षित हो या अरक्षित।

मृग ने कहा—राजन्, आपने मुझे मारा है, इस कारण पक्षपात करके मैं केवल मृग-वध के लिए आपका तिरस्कार नहीं करता। मैं तो यही कहता हूँ कि इतने निठुर न बनकर मेरे मैथुन के समाप्त होने तक आपको प्रतीक्षा करनी चाहिए थी। मैथुन का समय सभी प्राणियों के लिए हित का कारण और उनको आनन्ददायक होता है। इस कारण मृग जब मैथुन करते होते हैं तब समझदार लोग उनकी हत्या नहीं करते। राजेन्द्र, मैं पुरुषार्थ-सिद्धि—पुत्रोत्पत्ति—के लिए आनन्द से मृगी के साथ रमण कर रहा था। आपने मेरे उस उद्देश्य को
२० निष्फल कर दिया। महाराज, पुण्य-कर्म करनेवाले पूरुवंश में उत्पन्न होकर ऐसा निठुर काम करना आपके अयोग्य ही हुआ। ऐसा अधर्म का काम करने से इस लोक में लोक-निन्दा और परलोक में नरक का डर होता है। हे देवतुल्य, आप स्त्री-भोग के सुख और धर्म के मर्म को अच्छी तरह जानते हैं। तब भी आपने ऐसा पापकर्म कैसे किया? हे नरश्रेष्ठ, आप राजा हैं। जो लोग धर्म, अर्थ, काम को छोड़कर निष्ठुर पाप-कार्य करते हैं उन्हें आप ही दण्ड देते हैं। इस समय मृग-रूप-धारी, निरपराध मुझ ऋषि-कुमार को मारकर आपने बड़ा अन्याय किया। फल-मूल खानेवाला मैं शान्तचित्त होकर मृग-वेष से वन में रहता था। आपने काम-मोहित होकर हम दो निरपराध प्राणियों को मैथुन के समय मारा है, इस कारण ऐसी ही अवस्था में आपकी भी मृत्यु होगी। मैं किन्दम नाम मुनि हूँ। मनुष्यों के बीच लज्जा आने के कारण मृगी-रूपिणी स्त्री से मृग-रूप होकर रमण कर रहा था। आपने यह हाल बिना जाने मृग समझकर मुझे मारा है; इसलिए मैं आपको ब्रह्म-हत्या के पातक से मुक्त करता हूँ किन्तु
३० इस पाप-कर्म का फल अवश्य भोगना पड़ेगा। आप अन्त समय मोहित होकर जिस समय स्त्री-भोग करना चाहेंगे उसी समय आपकी मृत्यु होगी। जिस स्त्री पर मोहित होकर आप मरेंगे वही आपके साथ सती होगी। जैसे सुख-भोग के समय आपने मुझे दुःख में डाला है वैसे ही सुख के समय आपको भी मृत्यु का दुःख होगा।

शोक से व्याकुल मृग ने इतना कहकर प्राण-त्याग कर दिया। महाराज पाण्डु को
३४ इस घटना से बड़ा भारी दुःख हुआ।

---

# एक सौ बीस अध्याय

पाण्डु का दोनों स्त्रियों के साथ वानप्रस्थी हो शतशृङ्ग पर्वत पर तप करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, उस मृग के मरने से महाराज पाण्डु को अपने किसी सगे के मरने का सा खेद हुआ। वे अपनी रानियों के साथ विलाप करते हुए कहने लगे—पापी लोग साधुजनों के वंश में जन्म लेकर भी काम-वश होकर अपने ही कर्म से अकृतार्थ रह जाते हैं और अन्त को दुर्गति भोगते हैं। सुना है, बड़े भारी धर्म-निष्ठ महाराज शान्तनु से उत्पन्न मेरे पिता जवानी में ही काम-वश होकर स्वर्गवासी हुए। उन्हीं विषयी राजा की स्त्री में सत्य-वादी भगवान् वेदव्यास ने मुझे उत्पन्न किया है। देवताओं ने मुझे त्याग दिया, नहीं तो इस शिकार के शौक़ में पड़कर मैं ऐसा अनुचित काम क्यों करता, जिससे मुझे ऐसा विकट शाप मिला! पुत्र-हीन होने के कारण मैं स्वर्ग को नहीं जा सकता। बस, अब मैं मोक्ष की इच्छा से सब त्यागकर अपने पिता वेदव्यास की तरह तपस्या में ही जीवन बिताऊँगा। सिर मुँड़ा-कर, मुनि होकर, नित्य वृक्षों से भिक्षा माँगकर पेट पालूँगा और अकेला मुनियों के आश्रमों में विचरूँगा। भलाई या बुराई, किसी की चाह न रक्खूँगा। शरीर में भस्म रमाकर सूने घर में या पेड़ों के तले पड़ा रहूँगा। शोक और हर्ष छोड़कर निन्दा और बड़ाई को बराबर समझूँगा। निराहार ही पड़ रहूँगा। आशीर्वाद या प्रणाम की इच्छा न करूँगा। किसी से विरोध न करूँगा। किसी का साथ न करूँगा। सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों से बचकर गुदड़ा-खड़ाऊँ आदि को भी त्याग दूँगा। किसी का उपहास न करूँगा; किसी पर भौंहें न टेढ़ी करूँगा। सदा १०
प्रसन्नमुख रहकर सब प्राणियों की भलाई में लगा रहूँगा। चार प्रकार के जड़ या चेतन किसी भी प्राणी की हिंसा न करूँगा। सब प्राणियों को अपनी सन्तान की तरह स्नेह की दृष्टि से देखूँगा। वृक्षों से भिक्षा न पाने पर नित्य पाँच या दस गृहस्थों के द्वार पर जाकर एक बार भिक्षा माँग लाऊँगा। जिस दिन भिक्षा नहीं मिलेगी उस दिन निराहार ही रह जाऊँगा। थोड़ा आहार भले ही कर लूँगा, परन्तु एक बार के सिवा दुबारा भिक्षा न करूँगा। लाभ और हानि को समान समझूँगा। कोई मेरे एक हाथ को कुल्हाड़े से काट डालेगा तो यन्त्रणा का अनुभव न करूँगा और यदि कोई मेरे एक हाथ में चन्दन का लेप कर देगा तो मैं उसमें प्रसन्नता का अनुभव न करूँगा। न जीने की ख़ुशी और न मरने का रंज करूँगा। जीवन और मरण, दोनों की परवा छोड़ दूँगा। जीवित व्यक्ति निमेष आदि के द्वारा समय का विभाग करके जिन मङ्गलकर इष्ट-साधक कार्यों को करता है उनको मैं—अपने पापों को मिटाकर, सब कर्म और धर्म-अर्थ के बन्धन से छूटकर—छोड़ दूँगा। सब पापों और बन्धनों से बचकर वायु के समान बे-लाग हो रहूँगा। किसी के वश में न रहूँगा। धैर्य के साथ ऐसे आचरण करता

हुआ प्राण-त्याग करूँगा। कर्म-भोग के लिए पुनर्जन्म का डर फिर न रहेगा। वीर्य-हीन होकर धर्म-भ्रष्ट कर्ममय कष्टदायक दीनता के मार्ग में नहीं भटकूँगा। [ अपनी इच्छा पूरी करने के लिए निस्तेज लोगों की तरह किसी की ख़ुशामद नहीं करूँगा; क्योंकि ] ख़ुशामद से वश में किये गये मनुष्य से अति सम्मान के साथ अपनी चाही चीज़ मिलने पर भी वह निन्दनीय वृत्ति कुत्तों की है। अब मैंने दृढ़ निश्चय कर लिया है कि विषय-भोग छोड़कर मोक्ष के लिए तप करूँगा।




वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, भारी दुःख से पछतावा करते हुए राजा पाण्डु कुन्ती और माद्री की ओर देखकर कहने लगे—रानियो, तुम माता अम्बिका, भीष्म, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, माता सत्यवती, बन्धु-वर्ग, पुरवासी-प्रजा, व्रतधारी ब्राह्मण और अन्यान्य प्रधान कौरवों से मेरा नमस्कार कह-कर कहना कि पाण्डु ने संन्यास ले लिया।

स्वामी के ये वचन सुनकर कुन्ती और माद्री ने समझा कि पाण्डु ने सचमुच संन्यास लेने का निश्चय कर लिया है। तब उन्होंने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, संन्यास के सिवा ऐसा भी और आश्रम है जिसको ग्रहण करके आप हम धर्म-पत्नियों के साथ तप कर सकते हैं। उसमें शरीर-त्याग का महाफल-दायक धर्म प्राप्त करने से आप स्वर्ग के भी अधिकारी होंगे। हम दोनों भी इन्द्रियों को वश में करके काम-सुख त्यागकर पति की गति पाने के लिए तप करेंगी। महाराज, जो आप हमें छोड़-कर संन्यास ले लेंगे तो हम अभी अपनी जान दे देंगी।

पाण्डु ने कहा—यदि तुमने ऐसा ही विचार कर लिया है तो अपने धर्म का पालन करने के लिए तुम भी मेरे साथ रहो। मैं अपने पिता वेदव्यास की अक्षय वृत्ति ( तपस्या ) को ग्रहण करूँगा। विषय-सुख और राजसी भोगों को छोड़कर कठोर तप करूँगा। बल्कल पहनूँगा, फल-मूल खाकर वनों में विचरूँगा। साँझ-सबेरे नहा करके हवन करूँगा। थोड़ा आहार करके अपने शरीर और इन्द्रियों को क्षीण कर डालूँगा। एक कपड़ा या मृगछाला पह-नूँगा। जटा धारण करूँगा। जाड़ा, हवा, घाम, सब सहूँगा। भूख और प्यास को मारूँगा। कठोर तप से शरीर को सुखा डालूँगा। एकान्त में रहकर ब्रह्म का विचार करूँगा। कच्चे

या पके हुए फल खाकर ज़िन्दगी बिताऊँगा। वन के फल-मूल, जल और स्तुति आदि के द्वारा देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट करूँगा। वानप्रस्थ तपस्वी भी मेरे आचरण से सन्तुष्ट होंगे। किसी का अप्रिय नहीं करूँगा। गृहस्थों की कौन कहे, वानप्रस्थों का भी सङ्ग नहीं करूँगा। जब तक यह शरीर न छूटेगा तब तक इसी तरह वानप्रस्थ संन्यास के उत्तरोत्तर कठिन नियमों का पालन करता हुआ तप करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यों कहकर पाण्डु ने अपने मणि-मुकुट, चूड़ामणि, अङ्गद, कुण्डल, बहुमूल्य वस्त्र और दोनों स्त्रियों के सब गहने ब्राह्मणों को देकर उनसे कह दिया कि आप लोग हस्तिनापुर में जाकर कह दें कि पाण्डु अर्थ, काम, सुख और परम प्रिय विषयों का अनुराग छोड़कर दोनों रानियों के साथ वनवासी हो गये हैं। ४०

पाण्डु के ये वचन सुनकर उनके साथ रहनेवाले ब्राह्मण और अन्यान्य अनुचर हाहाकार करके विलाप करने लगे। वह सब धन लेकर गर्म आँसू बहाते हुए सब लोग राजा पाण्डु को वन में छोड़कर हस्तिनापुर में आये। उन्होंने धृतराष्ट्र से सब हाल कहा। सब धन भी दे दिया। उनसे सब वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्र दुःख के वेग से व्याकुल हो उठे और पाण्डु के लिए शोक करने लगे। भाई के शोक के मारे, उन्हीं की चिन्ता में, धृतराष्ट्र को न सोना अच्छा लगता था, न कहीं बैठना अच्छा लगता था और न किसी सुख-भोग को उनका जी चाहता था।

इधर फल-मूल खाकर रहनेवाले पाण्डु दोनों पत्नियों के साथ नागशत नाम के पहाड़ पर गये। वहाँ कुछ दिन रहकर चैत्ररथ, कालकूट और हिमालय पहाड़ को लाघकर वे गन्धमादन पर्वत पर पहुँचे। महर्षि, सिद्ध, विद्याधर आदि, सङ्कट के समय, उनकी रक्षा करते थे। वे अच्छे और बीहड़, सभी तरह के स्थानों में जाते और रहते थे। वहाँ से इन्द्रद्युम्न सरोवर और हंसकूट पर्वत को लाँघकर महाराज पाण्डु शतशृङ्ग पर्वत पर पहुँचे। वहाँ वे जमकर तप करने लगे। ५०

---

## एक सौ इक्कीस अध्याय

पाण्डु का पुत्र पाने के लिए ऋषियों से सलाह करना और
पुत्र उत्पन्न करने के लिए कुन्ती से कहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, शतशृङ्ग पहाड़ पर तप कर रहे पराक्रमी पाण्डु को सिद्ध और चारण लोग प्यार की दृष्टि से देखने लगे। गुरुजन की सेवा करके, अहङ्कार छोड़कर, आत्म-संयम के साथ जितेन्द्रिय बनकर पाण्डु ने स्वर्ग जाने का अधिकार प्राप्त कर लिया। वनवासी मुनियों में से कोई उन्हें भाई और कोई सखा मानकर उनका आदर करने लगा।

अवस्था में बड़े कोई-कोई तपस्वी अपने पुत्र की तरह उन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते थे। बहुत दिनों में तपोबल से निष्पाप होकर महाराज पाण्डु साक्षात् ब्रह्मर्षि के तुल्य हो गये।

एक दिन अमावस थी। उस दिन सब ऋषि लोग एकत्र होकर ब्रह्मा के दर्शन करने को गये। उनको जाते देखकर पाण्डु ने पूछा—आप लोग कहाँ जा रहे हैं? उन्होंने कहा—आज ब्रह्मलोक में अनेक महात्मा, देवता, ऋषि, पितृगण आदि का समागम होगा। हम वहीं ब्रह्मा के दर्शनों को जा रहे हैं।

यह सुनकर स्वर्ग जाने की इच्छा से पाण्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर चलने लगे। उनको पीछे आते देख ऋषियों ने कहा—राजन्, हम लोग कई बार गये-आये हैं, इससे हमको मालूम है कि इस पर्वत के ऊपरी हिस्से में क्रमशः अनेक दुर्गम स्थान हैं। आगे चलकर सैकड़ों विमानों से शोभित और गाने-बजाने के शब्दों से
१० परिपूर्ण देवता, गन्धर्व और अप्सराओं की क्रीड़ा-भूमि है। उसके आगे कुबेर के सम और विषम भूमि से युक्त बाग़ हैं। मार्ग में बड़ी-बड़ी नदियाँ और भयानक पर्वतों की कन्दराएँ हैं। जगह-जगह पर ऐसे स्थान हैं जिनमें नित्य बर्फ़ जमी रहती है। वहाँ न वृक्ष हैं, न मृग, न पक्षी। कहीं-कहीं दुर्गम गिरि-कन्दराएँ हैं। वहाँ पर कोई मनुष्य नहीं जा सकता। मृग आदि पशुओं की कौन कहे, पक्षी भी उन स्थानों में नहीं जा सकते। केवल वायु, सिद्ध और महर्षि आदि वहाँ जा सकते हैं। आपकी दोनों स्त्रियाँ राजाओं की कन्या हैं। ऐसे दुर्गम स्थान में जाने से उन्हें अवश्य कष्ट होगा। इस कारण आप न चलिए।

यह सुनकर पाण्डु ने कहा—हे महाभाग ऋषियो, जिसके सन्तान नहीं वह मनुष्य स्वर्ग में नहीं जा सकता उसके लिए स्वर्ग का द्वार बन्द है। मेरे सन्तान नहीं है। इसलिए दुःखित चित्त से मैं आप लोगों से निवेदन करता हूँ कि मैं पुत्र उत्पन्न करके पितरों के ऋण से अपने को उऋण नहीं कर सका; इस कारण मेरा शरीर न रहने पर मेरे पितर स्वर्ग से भ्रष्ट होंगे ही। मनुष्य जब उत्पन्न होता है तब उस पर देवता, ऋषि, पितर और मनुष्यों का ऋण होता है। इस कारण उन सबका ऋण चुकाना ही हर एक मनुष्य का धर्म और कर्त्तव्य है। धर्मात्माओं का कहना है कि ठीक समय पर जो कोई इन ऋणों को नहीं चुकाता उसकी सद्गति नहीं होती। यज्ञ करके देवताओं का ऋण, वेद पढ़कर और तप करके ऋषियों का ऋण, पुत्र उत्पन्न करके पितरों का ऋण और सब प्राणियों पर दया करके मनुष्यों का ऋण चुकाया जाता
२० है। मैं धर्मपूर्वक देवता, ऋषि और मनुष्यों के ऋण से छुटकारा पा चुका हूँ; केवल पितरों का ऋण चुकाना है। यही मुझे चिन्ता है कि पितरों का ऋण किस तरह चुकाऊँगा! कृपा करके आप लोग मुझको बता दीजिए कि जैसे अपने पिता की स्त्री में महर्षि वेदव्यास के द्वारा मैं उत्पन्न हुआ हूँ वैसे ही मेरी स्त्री में किसी तरह पुत्र उत्पन्न हो सकते हैं या नहीं?



पाण्डु भी दोनों स्त्रियों के साथ उठ खड़े हुए और शतशृङ्ग पर्वत से उत्तर की ओर चलने लगे।—पृ० २६२



जानपदी और शरद्वान् । — पृ० २८८

ऋषियों ने कहा—धर्मात्मा महाराज, हम लोग दिव्य दृष्टि से देख रहे हैं कि आपके कल्याणकारी निष्पाप देवतुल्य पुत्र उत्पन्न होंगे। इस समय आप देव-दत्त पुत्रों को प्राप्त करने के लिए यत्न कीजिए। बुद्धिमान पुरुष स्थिर चित्त से कार्य करके शुभ फल प्राप्त करते हैं। हमको आपके पुत्र उत्पन्न होने की सफलता प्रत्यक्ष देख पड़ती है। इसलिए आप इस विषय में उपाय कीजिए। आपको अवश्य कल्याणदायिनी सन्तान प्राप्त होगी।

पाण्डु जानते थे कि ऋषि-रूप मृग के शाप से मैं स्वयं पुत्र उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहा। इस कारण, ऋषियों के वचन सुनकर, वे तरह-तरह की चिन्ता करने लगे। धर्म-पत्नी यशस्विनी कुन्ती को एकान्त में बुलाकर पाण्डु कहने लगे—कुन्ती, हमारे कोई सन्तान नहीं है। इसलिए आपद्धर्म के अनुसार तुम पुत्र उत्पन्न करने का यत्न करो। धर्म के जानकार पुरुषों का कहना है कि त्रिलोक में एकमात्र पुत्र से ही सद्गति होती है। यज्ञ, दान, तप या नियमपूर्वक व्रत के आचरण से भी सन्तान-हीन पुरुष पवित्र नहीं हो सकता। मैं सन्तान-हीन हूँ, इस कारण सद्गति नहीं पा सकता। [ यही सोचकर मैंने पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा देने का निश्चय कर लिया है। ] प्रिये, मैं पहले एक मृग को मारकर बड़ा निष्ठुर काम कर ३०
चुका हूँ। उस मृग-रूपी ऋषि-कुमार के शाप से मैं स्वयं पुत्र नहीं उत्पन्न कर सकता। धर्म-शास्त्र में बारह प्रकार के पुत्र कहे हैं। उनमें से पहले के छः प्रकार के पुत्र बाप-दादे के धन का हिस्सा पा सकते हैं और पिछले छः प्रकार के पुत्र नहीं पा सकते। वे पुत्र ये हैं—(१) औरस, अर्थात् धर्म-पत्नी के गर्भ से अपने वीर्य्य से उत्पन्न, (२) प्रणीत, अर्थात् अन्य उत्तम व्यक्ति के द्वारा अपनी स्त्री में उत्पन्न, (३) परिक्रीत, अर्थात् वीर्य का मूल्य (धन) देकर दूसरे के द्वारा अपनी स्त्री मे उत्पन्न कराया हुआ, (४) पौनर्भव, अर्थात् अपने मर जाने पर विधवा भार्या में दूसरे से उत्पन्न, (५) कानीन, अर्थात् अपनी ब्याही स्त्री में उसके कौमारपन मे ही उत्पन्न, (६) कुण्ड, अर्थात् मनमाना आचरण करनेवाली स्त्री में उत्पन्न, (७) दत्तक, अर्थात् गोद लिया हुआ, (८) क्रीत, अर्थात् दाम देकर ख़रीदा हुआ, (९) उपक्रीत, अर्थात् पाला हुआ, (१०) आपसे आया हुआ, अर्थात् "मैं तुम्हारा पुत्र होऊँगा" यह कहकर स्वयं उपस्थित, (११) ज्ञातिरेतासहोढ़, अर्थात् भाई आदि सजातीय के वीर्य से गर्भवती स्त्री से ब्याह कर लेने पर ब्याह के बाद उत्पन्न और (१२) हीनयोनिधृत, अर्थात् निकृष्ट जाति की स्त्री के गर्भ में उत्पन्न किया हुआ। हीनयोनिधृत से ज्ञाति-रेतासहोढ़, उससे आप आया हुआ, उससे उपक्रीत, उससे क्रीत, उससे दत्तक, उससे कुण्ड, उससे कानीन, उससे पौनर्भव, उससे परिक्रीत, उससे प्रणीत और उससे औरस पुत्र श्रेष्ठ है। औरस न हो तो प्रणीत, प्रणीत न हो तो परिक्रीत;—इसी क्रम से उत्तरोत्तर ग्राह्य हैं। पुत्र न होने की अवस्था के आपत्काल में स्त्रियाँ उत्तम पुरुष देवर से भी पुत्र उत्पन्न कर सकती हैं। मनु ने कहा है कि मनुष्य अपने सिवा अन्य के वीर्य से भी शुभ फल-दायक उत्तम पुत्र उत्पन्न करा

सकते हैं। मैं स्त्री-प्रसङ्ग न कर सकने के कारण सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकता; इसलिए तुमको आज्ञा देता हूँ कि तुम मेरे समान या मुझसे श्रेष्ठ किसी व्यक्ति से सन्तान उत्पन्न करो। कुन्ती, इस विषय से सम्बन्ध रखनेवाला शरदण्ड की स्त्री का उपाख्यान कहता हूँ, सुनो।

वीर-पत्नी शरदण्ड की स्त्री पुत्र उत्पन्न करने के लिए, पति की आज्ञा पाकर, एक दिन ऋतु-स्नान करके रात को चौराहे पर खड़ी हुई थी। इसी बीच में एक सिद्ध ब्राह्मण उधर से आ



निकले। रानी ने उनसे पुत्र माँगा। ब्राह्मण ने स्वीकार कर लिया। रानी ने पुंसवन-कर्म करके अग्नि में हवन किया और उस दिन उसी ब्राह्मण से सहवास किया। उससे उसके दुर्जय आदि तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुए। हे सुन्दरी, वैसे ही तुम भी पुत्र-लाभ के लिए मेरी
४१ आज्ञा से किसी श्रेष्ठ तपस्वी ब्राह्मण से प्रार्थना करो।

---

## एक सौ बाईस अध्याय

### राजा व्युषिताश्व की कथा

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डु की ये बातें सुनकर कुन्ती ने कहा—आप धर्म के मर्म को जानते हैं। आपको मेरे लिए ऐसी आज्ञा देनी उचित नहीं। मैं आपकी धर्म-पत्नी हूँ। हे कमल-नयन, मैं आपके सिवा और किसी पुरुष को नहीं जानती। आप मेरे पति हैं। इस-लिए आपको ही मेरे गर्भ से पुत्र पैदा करना चाहिए। मैं आपके साथ सती होकर स्वर्ग

चलूँगी; आप ही मुझमें सन्तान उत्पन्न कीजिए। मैं आपके सिवा अन्य पुरुष का सङ्ग मन से भी नहीं कर सकती। और, पृथ्वी पर आपसे श्रेष्ठ पुरुष ही और कौन है? हे धर्मज्ञ, इसी बारे में मैंने एक पुराण-वर्णित कथा सुन रक्खी है। उसे मैं कहती हूँ, सुनिए।

पूर्व समय में पूरुवंश में उत्पन्न व्युषिताश्व नाम के एक धर्मात्मा राजा थे। उनके यज्ञ करने पर देवर्षिगण-सहित इन्द्र स्वयं सभा-स्थल में आये। उन्हें इतना सोम-रस पिलाया गया कि वे मत्त हो उठे। ब्राह्मण लोग यथेष्ट दक्षिणा पाकर बहुत प्रसन्न हुए। देवताओं और देवर्षियों ने स्वयं सदस्य होकर यज्ञ का कार्य कराया। शिशिर ऋतु के उपरांत सूर्य जैसे और १०
भी प्रकाशित और तेजस्वी हो उठते हैं वैसे ही यज्ञ के उपरान्त राजा व्युषिताश्व भी अमानुषिक तेजस्वी हो गये। उनमें दस हाथियों के समान बल था। उन्होंने अश्वमेध यज्ञ करके अपने बाहु-बल और पराक्रम से पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर के सब राजाओं को जीतकर वश में कर लिया। पुराने इतिहास को जाननेवाले लोगों का कहना है कि यशस्वी व्युषिताश्व ने समुद्र तक इस पृथ्वी को जीतकर—पिता जैसे अपने सगे पुत्रों की रक्षा करता है वैसे ही—सब वर्णों की प्रजा का पालन किया; यज्ञ करके ब्राह्मणों को दक्षिणा में धन और अनेक रत्न दिये; अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम आदि यज्ञ करके उनमें सोम-लता का रस बहुत पिलाया।

राजन्, काक्षीवान् राजा की कन्या भद्रा व्युषिताश्व की रानी थी। वह बहुत ही सुन्दरी और पति को प्यारी थी। स्त्री का पति पर और पति का स्त्री पर असीम अनुराग था। बेहद स्त्री-



सङ्ग करने के कारण अन्त को राजा क्षयी रोग के पञ्जे में फँस गये और थोड़े ही समय में सूर्य के समान अस्त हो गये। हे पुरुष-श्रेष्ठ, रानी भद्रा के कोई सन्तान न हुई थी। दुःख के मारे विलाप करती हुई वह [ मरे हुए पति को पुकार-पुकारकर ] कहने लगी— हे धर्मज्ञ, स्वामी के बिना स्त्री २०
का जीवन बिल्कुल ही निष्फल है। जिस स्त्री के स्वामी नहीं उसके लिए सब दुःख ही दुःख है उस अभागिन को जीवन का कोई सुख नहीं मिलता। पति के मरने पर स्त्री का मर जाना ही अच्छा होता है। इसलिए मैं आपके साथ सती हो जाऊँगी। आप प्रसन्न हूजिए, मुझे अपने साथ ले चलिए। अब आप

यम-लोक से लौटकर नहीं आ सकते; इसलिए मैं छाया की तरह आपके पीछे-पीछे जाऊँगी ; समतल या ऊँची-नीची जगह पर आपके साथ चलने में मुझे कुछ कष्ट न होगा। मैं कहीं पर आपको छोड़कर लौटने का विचार न करूँगी। आपकी आज्ञा का पालन करूँगी। आपको प्रसन्न रखने में लगी रहूँगी। हे कमल-नयन, आज से हृदय सुखानेवाले अनेक कष्ट मुझे सहने पड़ेंगे। दिन-रात तरह-तरह की चिन्ताएँ सताया करेंगी। जान पड़ता है, मैंने पहले जन्म में हिले-मिले हुए दो मित्रों को या पति और पत्नी को जुदा कर दिया है; उसी पाप के फल से मुझ अभागिन को आपके वियोग का यह दुःख प्राप्त हुआ है। जो पापिन पति के न रहने पर घड़ी भर भी जीती है वह दुःख सहती हुई पृथ्वी पर नरक की यन्त्रणा भोगती है। राजन्, आज से मैं कुशों की सेज पर सोकर दुःख उठाकर आपके दर्शन पाने का
३० उपाय किया करूँगी। नाथ, मुझ अभागिन को एक बार दर्शन दो। स्वामी, मैं इस प्रकार करुण स्वर से विलाप कर रही हूँ।

कुन्ती कहती हैं—महाराज, स्वामी की लाश से लिपटकर भद्रा इस तरह विलाप कर रही थी; इसी समय उसे आकाश-वाणी सुन पड़ी—भद्रा तुम उठो और घर जाओ। मैं तुमको वर देता हूँ कि मैं तुम्हारे गर्भ से पुत्र उत्पन्न करूँगा। सुन्दरी, ऋतु-स्नान करके आठवीं या चौदहवीं रात को तुम मेरे इस शरीर के साथ पलँग पर सोना।

व्युषिताश्व की रानी भद्रा को आकाश-वाणी सुनकर कुछ धीरज हुआ। उसने ऋतु-स्नान के उपरान्त पूर्वोक्त समय आने पर पुत्र की इच्छा से पति की आज्ञा का पालन किया। उसी मृत देह के सङ्ग से गर्भ रहा और रानी के—तीन शाल्व और चार मद्र,—सात पुत्र उत्पन्न हुए। राजन्, आप में भी तपो-बल और योगबल है। आप भी उसी तरह
३७ मेरे गर्भ से मानस पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं।

---

## एक सौ तेईस अध्याय

श्वेतकेतु-कृत सामाजिक मर्यादा के स्थापन का वर्णन। पाण्डु का पुत्र उत्पन्न करने के लिए फिर कुन्ती को आज्ञा देना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, धर्मज्ञ महात्मा पाण्डु कुन्ती के ये वचन सुनकर फिर उनसे कहने लगे—कुन्ती, तुमने जो व्युषिताश्व का वृत्तान्त कहा सो ठीक है। उन्होंने ऐसा ही किया था। वे साक्षात् देवता थे। सुन्दरी, सुनो; ऋषियों ने जिस प्राचीन धर्म का वर्णन किया है सो मैं तुमसे कहता हूँ। मैंने सुना है कि पूर्वसमय में सब स्त्रियाँ स्वाधीन थीं। पर्दा न था। वे चाहे जिसके साथ रह सकती थीं। वे घूमती-फिरती थीं; स्वजन उन्हें रोक न

सकते थे। कौंरी रहने पर भी स्त्रियाँ व्यभिचार करती थीं; पर वह उनका काम दोष न समझा जाता था; क्योंकि उस समय का सामाजिक नियम ही ऐसा था। काम और क्रोध आदि से रहित पशु-पक्षी आदि इस समय भी उसी प्राचीन धर्म के अनुसार चलते हैं। ऋषि लोग इस धर्म को प्रमाण-सिद्ध समझकर मानते हैं। उत्तर-कुरु देश में अब तक यही धर्म प्रचलित है; क्योंकि यह धर्म अत्यन्त प्राचीन और स्त्रियों के अनुकूल है। कुछ ही दिन हुए, यह धर्म यहाँ से उठा दिया गया है। जिसने जिसलिए इस धर्म को उठा दिया है, सो मैं विस्तार के साथ तुमसे कहता हूँ; सुनो। ९

पहले उद्दालक नाम के एक महर्षि थे। उनके पुत्र महातपस्वी श्वेतकेतु हुए। कमलनयनी, उन्हीं श्वेतकेतु ने क्रोधवश होकर इस व्यभिचार की रीति को दूषित ठहराकर पृथ्वी से उठा दिया है और एक स्त्री के लिए एक ही पति की मर्यादा स्थापित कर दी है। उनके कोप का कारण भी सुन लो।

एक दिन श्वेतकेतु ऋषि अपनी माता के पास बैठे थे। उनके पिता भी वहीं पर थे। इसी बीच एक ब्राह्मण आकर उनकी माता का हाथ पकड़कर कहने लगा—युवती, तुम मेरे साथ चलो। अब वह ब्राह्मण मानो बलपूर्वक श्वेतकेतु की माता को लेकर चल दिया। इससे श्वेतकेतु को बड़ा क्रोध आया। श्वेतकेतु को कुपित देखकर उनके पिता उद्दालक ने कहा—बेटा, क्रोध न करो। अत्यन्त प्राचीन काल से यह धर्म चला आ रहा है। संसार में सभी वर्णों की स्त्रियाँ इस विषय में स्वाधीन हैं। सब मनुष्य अपने वर्ण की स्त्रियों से गाय-बैल के समान आचरण करते हैं। जो जिससे चाहे, विहार कर सकता है। उद्दालक ने इस तरह पुत्र को समझाया परन्तु श्वेतकेतु ने उस धर्म का अनुमोदन न किया। कुपित श्वेतकेतु ने स्त्री और पुरुष के लिए यह सामाजिक नियम बना दिया कि एक स्त्री एक ही पुरुष की होकर रहे। उन्होंने कहा—"जो स्त्री अपने पति को छोड़कर अन्य पुरुष का सङ्ग करेगी, उसे गर्भ-हत्या का

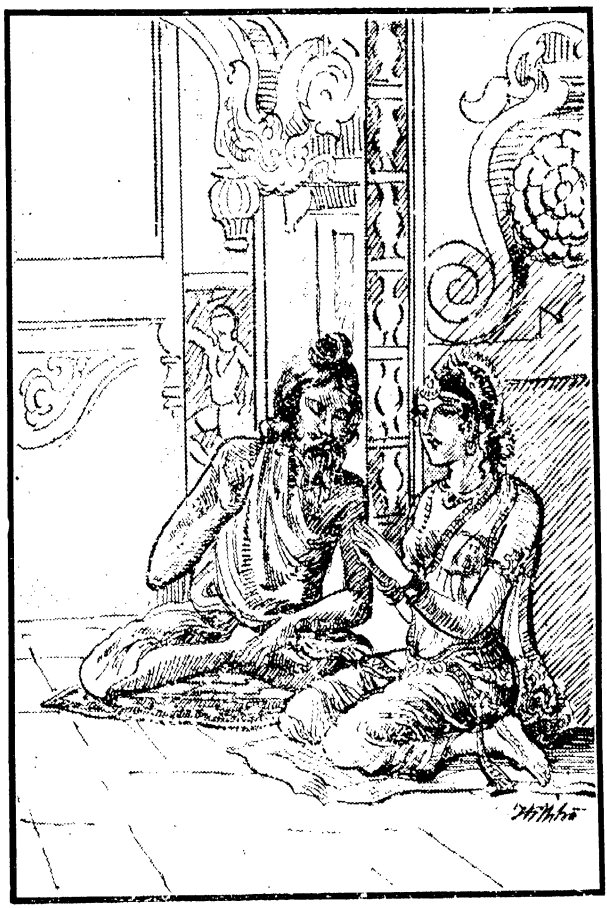


जैसा घोर पाप होगा। यह दुःखदायक होगा। जो पुरुष पतिव्रता धर्म-पत्नी को छोड़कर अन्य स्त्री से रमण करेगा, उसे भी यही पाप लगेगा। और, जो पत्नी पुत्र उत्पन्न करने के लिए दी हुई स्वामी की आज्ञा का पालन नहीं करेगी उसे भी यही पातक होगा।" कुन्ती, कुपित
२० होकर श्वेतकेतु ने मनुष्यों के लिए यह मर्यादा बाँध दी है। [ तभी से मनुष्यों में व्यभिचार बुरा और पाप समझा जाने लगा है। किन्तु अन्यान्य प्राणी अब तक उसी प्राचीन धर्म के अनुसार चलते हैं। ] सुना है कि राजा कल्माषपाद की मदयन्ती ने उन्हीं की आज्ञा से, उनके भले के लिए, वशिष्ठ ऋषि से अश्मक नाम का एक पुत्र उत्पन्न किया था। औरों की बात जाने दो, कुरुवंश चलाने के लिए वेदव्यास ने जिस तरह हम तीनों भाइयों को उत्पन्न किया है, सो तो तुम्हें मालूम ही है इसलिए प्रिये, तुम इन सब कारणों पर विचार करके मेरी इस धर्म-सङ्गत आज्ञा का पालन करो। प्राचीन धर्मज्ञ लोगों का कहना है कि स्त्री जब ऋतु-स्नान करे तब उसे अवश्य स्वामी का सहवास करना चाहिए; इसके सिवा और अवसरों पर उसे स्वाधीनता प्राप्त है। राज-नन्दिनी, स्वामी की आज्ञा धर्म-विरुद्ध भी हो तो उसका पालन करना हर एक स्त्री का कर्त्तव्य है। ख़ासकर जब मेरी तरह पति, पुत्र उत्पन्न करने में, असमर्थ हो किन्तु पुत्र की इच्छा रखता हो, तब तो स्त्री को कुछ कहना ही न चाहिए। तुम्हें राज़ी करने के लिए मैं हाथ जोड़ता हूँ। तुम मेरी आज्ञा से मुझसे श्रेष्ठ किसी तपस्वी के द्वारा गुणी सन्तान उत्पन्न करो। प्रिये, तुम्हारी कृपा से
३१ मैं पुत्रवाले पुरुषों की अच्छी गति पाऊँगा।



वैशम्पायन कहते हैं कि शत्रुदमन महाराज पाण्डु के ये वचन सुनकर उनका प्रिय करने के लिए कुन्ती ने कहा—महाराज, जब मैं पिता के यहाँ थी तब अभ्यागतों की सेवा किया करती थी। एक दिन धर्म के गुप्त रहस्य को जाननेवाले, उग्र-स्वभाव, जितेन्द्रिय महर्षि दुर्वासा आये। मैंने बड़े यत्न से उनकी सेवा की। उससे सन्तुष्ट होकर एक अभि-चार-मन्त्र बताकर उन्होंने मुझसे कहा—'राजकुमारी, यह मन्त्र पढ़कर तुम जिस देवता का आवाहन करोगी वह मन्त्र की शक्ति से—अकाम हो चाहे सकाम—तुम्हारे पास आने के

लिए विवश होगा। तुम उस देवता के द्वारा पुत्र प्राप्त कर सकोगी।' स्वामी, पिता के यहाँ महर्षि से जो दुर्लभ वरदान मैंने पाया था उसके सफल होने का यही समय है। मैं केवल आपकी आज्ञा चाहती हूँ कि पुत्र की इच्छा से किस देवता को बुलाऊँ। ३९



पाण्डु ने कहा—सुन्दरी, तुम अभी इसका उपाय करो। प्रिये, तुम धर्मदेव को बुलाओ। तीनों लोकों में वही सबसे बढ़कर पुण्यरूप हैं। उनके सङ्ग से पुत्र उत्पन्न करने-कराने में तुम्हें और मुझे किसी तरह का अधर्म नहीं हो सकता। लोग भी यही समझेंगे कि धर्म से पुत्र उत्पन्न हुआ है। तुम धर्म के द्वारा जो पुत्र उत्पन्न करोगी वह कुरुवंश में प्रधान धर्मात्मा होगा। अधर्म की ओर उसकी रुचि कभी न होगी। इसलिए तुम आचार-पूर्वक अभिचार-मन्त्र के द्वारा देवश्रेष्ठ धर्म का आवाहन करो।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पति की आज्ञा स्वीकार करके कुन्ती ने उनकी प्रदक्षिणा की और प्रणाम किया। ४४

# एक सौ चौबीस अध्याय

## युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन का जन्म

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, गान्धारी का गर्भ जब एक वर्ष का हो चुका तब कुन्ती ने, अपने पुत्र होने के लिए, धर्मदेव को बुलाया।



कुन्ती शीघ्र ही विधिपूर्वक पूजन करके धर्म को बुलाने के लिए दुर्वासा के दिये मन्त्र को जपने लगी। मन्त्र की शक्ति से उसी समय, सूर्य के समान प्रकाशमान श्रेष्ठ विमान पर चढ़े हुए, धर्मदेव कुन्ती के पास आ गये। उन्होंने हँसकर कुन्ती से कहा—रानी, तुम मुझसे क्या चाहती हो? कुन्ती ने लजीली मुसकान के साथ कहा—देव, मैंने पुत्र की इच्छा से आपको बुलाया है। इसके पश्चात् कुन्ती ने योग-मूर्ति धारण किये हुए धर्म से सहवास किया। कुन्ती के गर्भ रह गया।

इसके उपरान्त पञ्चमी* के दिन दोपहर को अष्टम अभिजित् मुहूर्त्त में कुन्ती के पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। उस दिन सोमवार और ज्येष्ठा नक्षत्र था। पुत्र का जन्म होते ही आकाश-वाणी हुई—यह बालक पृथ्वी पर धर्मात्मा पुरुषों में श्रेष्ठ, पराक्रमी, सत्यवादी, व्रतधारी यशस्वी और महाराज कहलावेगा। पाण्डु के इस त्रिलोक प्रसिद्ध पुत्र का नाम युधिष्ठिर होगा।

ऐसे धार्मिक पुत्र को पाकर पाण्डु ने फिर कुन्ती से कहा—प्रिये, लोग कहते हैं कि क्षत्रिय के लिए बल ही मुख्य है। इसलिए तुम एक बली पुत्र भी उत्पन्न करो। पति की आज्ञा पाकर कुन्ती ने उसी तरह वायु को बुलाया। मृग पर सवार वायुदेव ने आकर कुन्ती से पूछा—मुझसे क्या चाहती हो? लज्जा से सिर झुकाये हुए कुन्ती ने मुसकुराकर कहा—देव-श्रेष्ठ, मैं एक भारी डीलडौलवाला, महाबली और सबके घमण्ड को चूर करनेवाला पुत्र आपसे माँगती हूँ। 'तथास्तु' कहकर कुन्ती की इच्छा पूरी करके वायुदेव स्वर्ग को चले गये। उनके सहवास से कुन्ती ने यथासमय भीम-पराक्रमी भीमसेन को उत्पन्न किया।

भीमसेन का जन्म होने पर आकाश-वाणी हुई—"यह बालक शरीर के बल में सभी प्राणियों से बढ़कर होगा"। महाराज, अब और भी एक अद्भुत घटना हुई। जन्म होने के

* यह योग प्रायः कार्तिक सुदी पञ्चमी को होता है।

कुछ ही दिनों बाद एक दिन बालक भीमसेन अपनी माता की गोद में सो रहे थे। अचानक उधर से एक बाघ आकर गरजा। बाघ के डर से कुन्ती एकाएक उठकर खड़ी हो गईं, इससे भीमसेन गोद से लुढ़ककर शिला पर गिर पड़े। उनके वज्र-समान अत्यन्त दृढ़ शरीर की चोट से वह पहाड़ी चट्टान चूर-चूर हो गई। यह देखकर पाण्डु को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजन्, जिस दिन भीमसेन पैदा हुए उसी दिन पहले दुर्योधन उत्पन्न हो चुका था। १९



भीमसेन के उत्पन्न हो चुकने पर पाण्डु मन में सोचने लगे कि किस तरह मेरे सब पुरुषों में श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हो। मनुष्यों में से कोई दैव-बल से और कोई अपने पौरुष से संसार में प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं। दैव का बल तो यथासमय आप ही प्राप्त हो जाता है। इसलिए पौरुष का होना ही आवश्यक है। सुना है, इन्द्र सब देवताओं में प्रधान हैं। उनका उत्साह, बल, वीर्य और प्रभाव अपार है। अब उन्हीं को तप से प्रसन्न करके एक महापराक्रमी पुत्र प्राप्त करना चाहिए। वे जो पुत्र देंगे वह सब में श्रेष्ठ होगा। वह पुत्र युद्ध में मनुष्य, देवता, गन्धर्व आदि सबको परास्त करेगा। मैं मन, वाणी और काया से उन्हीं देव-देव इन्द्र की उपासना करूँगा। महाराज, कुरु-श्रेष्ठ पाण्डु ने यों विचार करके ऋषियों के साथ सलाह की। कुन्ती को एक वर्ष तक शुभदायक व्रत धारण करने की आज्ञा देकर वे स्वयं नियमपूर्वक एक पैर से खड़े होकर उग्र तप करने लगे। सूर्योदय से सूर्यास्त तक वे देवराज इन्द्र की आराधना करते हुए सूर्य के ताप को सहते थे।

कुछ समय बीतने पर इन्द्र ने आकर कहा—पाण्डु, मैं प्रसन्न हूँ। तुमको मैं एक त्रिलोक-प्रसिद्ध पुत्र दूँगा। वह गो-ब्राह्मण-पालक और बन्धु-बान्धवों का हितकारी होकर दुष्टों को दुःख देगा। वह अपने सब शत्रुओं का नाश करेगा। ३०

अब इन्द्र चले गये। पाण्डु ने कुन्ती से कहा—सुन्दरी, इन्द्र सन्तुष्ट होकर कह गये हैं कि वे तुम्हारी इच्छा के योग्य तुमको एक अलौकिक कर्म करनेवाला, यशस्वी, शत्रुनाशन, नीतिज्ञ और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र देंगे। प्रिये, अब कोई चिन्ता नहीं है। तुम क्षत्रिय-

तेज का आधार, कामकाजी, दुर्जय और अत्यन्त सुन्दर पुत्र उत्पन्न करोगी। इन्द्र हम पर प्रसन्न हुए हैं। अब तुम उनका आवाहन करो।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, स्वामी की आज्ञा से यशस्विनी कुन्ती ने मन्त्र पढ़कर इन्द्र का आवाहन किया। इन्द्रदेव आ गये। उन्होंने कुन्ती की इच्छा पूरी की। कुन्ती के गर्भ से यथासमय अर्जुन उत्पन्न हुए। उनके उत्पन्न होते ही गम्भीर नाद से आकाशमण्डल को प्रतिध्वनित करती हुई आकाश-वाणी सुन पड़ी—हे कुन्ती, तुम्हारा यह बालक कार्त्तवीर्य और भगवान शङ्कर के समान पराक्रमी होकर युद्ध में इन्द्र के समान यश पावेगा। विष्णु को उत्पन्न करके अदिति जैसे सुखी हुई थी वैसे ही इस बालक से तुमको भी आनन्द प्राप्त होगा। तुम्हारा यह पुत्र अर्जुन नाम से प्रसिद्ध होकर मद्र, कुरु, सोमक, चेदि, काशी, करूष आदि देशों और
४० वंशों के राजाओं को जीतेगा और कुरुकुल की राज्य-लक्ष्मी को सुरक्षित रक्खेगा; खाण्डव वन जलवाकर अनेक प्राणियों की चर्बी से अग्निदेव को तृप्त और सन्तुष्ट करेगा; राजाओं को जीतकर बड़े भाई युधिष्ठिर से तीन अश्वमेध यज्ञ करावेगा। कुन्ती, यह विष्णु के समान पराक्रमी और परशुराम के समान बली योद्धा होगा। यह महायशस्वी बालक त्रिलोक में अद्वितीय पौरुष रखनेवाला होगा। यह महादेव शङ्कर से युद्ध करके उन्हें सन्तुष्ट करेगा और उनसे पाशुपत अस्त्र पावेगा; इन्द्र की आज्ञा से निवातकवच नाम के दैत्यों को मारकर सब दिव्य अस्त्रों को प्राप्त करेगा तुम्हारे कुल के नष्टप्राय सौभाग्य का उद्धार इसी के द्वारा होगा।

कुन्ती सोर में ही थी जब उन्हें ऐसी अद्भुत आकाश-वाणी सुन पड़ी। शतशृङ्ग पर्वत के निवासी तपस्वी भी यह आकाश-वाणी सुनकर परम प्रसन्न हुए। देव, महर्षि और इन्द्र-सहित सब देवताओं को बड़ा आनन्द हुआ। आकाश में नगाड़े बजने लगे। देवता फूल बरसाने लगे। कुन्तीपुत्र अर्जुन की अभ्यर्थना के लिए सब देवता, ऋषि आदि आकाश में और पृथ्वी पर आकर जमा हुए। कद्रू के पुत्र नाग, विनता के पुत्र गरुड़ और अरुण, गन्धर्व,
५० अप्सराएँ, प्रजापति और सप्तऋषि आये। भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि और वशिष्ठ आये। सूर्य के अस्त होने पर आकाशमण्डल में उदय होनेवाले महर्षि अत्रि भी उपस्थित हुए। फिर मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और दक्ष प्रजापति आये। दिव्य वस्त्र, गहने और अद्भुत वैजयन्ती माला पहने अप्सराएँ अर्जुन के यश को गाती हुई नृत्य करने लगीं। महर्षिगण मङ्गल के लिए स्वस्त्ययन मन्त्रपाठ करने लगे। गन्धर्वराज तुम्बुरु, भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्च्चा, युगप, तृणप, कार्ष्णि, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्ज्जन्य, कलि, नारद, ऋत्वा, बृहत्वा, बृहक, कराल, ब्रह्मचारी, बहुगुण, सुवर्ण, विश्वावसु, भूमन्यु, सुचन्द्र, शरु और मधुर कण्ठ से उत्तम गाने में प्रसिद्ध हाहा, हूहू नाम के गन्धर्व वहाँ पहुँचकर गाने लगे। उनके साथ ही सुन्दर कपड़ों और गहनों से सजी हुई बड़ी-

बड़ी आँखोंवाली, सर्वाङ्गसुन्दरी अप्सराएँ गाने-बजाने और नाचने लगीं। [ अनूचाना, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा,] अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा, देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, सुवपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या और शारद्वती आदि अप्सराएँ नाचने और मेनका, सहजन्या, कर्णिका, पुञ्जिकस्थली, ऋतुस्थली, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ति, उम्लोचा, प्रम्लोचा और उर्वशी, ये ग्यारह स्वर्ग की प्रसिद्ध अप्सराएँ गाने लगीं। धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंश, भग, इन्द्र, विवस्वान्, पूषा, त्वष्टा, पर्जन्य और विष्णु, ये बारहों आदित्य [ पाण्डव की महिमा को बढ़ाते हुए ] आकाश में आ गये। मृगव्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग, ये ग्यारह रुद्र भी आये। अश्विनीकुमार, आठों वसु, महाबली मरुद्गण, विश्वेदेवा और साध्यगण भी वहाँ पर आ गये। कर्कोटक, वासुकि, कच्छप, कुण्ड, तक्षक आदि अनेकानेक तपोबलधारी महाबली क्रोधी साँप भी आये। विनता के पुत्र तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, असितध्वज, अरुण और आरुणि भी आये। ये सब देवगण आदि विमानों पर आकर पर्वत के जिस शिखर पर ठहरे उसे वनवासी सिद्ध ऋषियों के सिवा और कोई नहीं देख सका। तपस्वी ऋषिगण इस अद्भुत दृश्य को देखकर बहुत ही चकराये। तभी से वे पाण्डु के पुत्रों को पहले से भी अधिक आदर की दृष्टि से देखने लगे।

राजन्, इस घटना के बाद कुछ समय बीतने पर पाण्डु फिर पुत्र के लोभ में पड़कर कुन्ती को और एक पुत्र उत्पन्न करने की आज्ञा देने लगे। तब पतिव्रता कुन्ती ने कहा—महाराज, पुत्रहीन होने की आपत्ति के समय में भी धर्मज्ञ पण्डितों ने इस तरह तीन ही बार पुत्र उत्पन्न करने की व्यवस्था दी है। चौबारा स्त्री ऐसा नहीं कर सकती। चौथी बार पुत्र उत्पन्न करनेवाली स्त्री कुलटा कहाती है। यदि पाँचवीं बार ऐसा करती है तो वेश्या के तुल्य हो जाती है। आप विद्वान् हैं, और सनातन धर्म को अच्छी तरह जानते हैं। फिर भी पुत्र उत्पन्न करने के लिए चौथी बार क्यों ऐसी आज्ञा देने को तैयार हैं? भला आपको यह कैसी भ्रान्त धारणा हुई?

---

## एक सौ पचीस अध्याय

### नकुल और सहदेव का जन्म

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, इस प्रकार कुन्ती और गान्धारी के पुत्र उत्पन्न होने पर एक दिन माद्री ने एकान्त में पाण्डु से कहा—प्रियतम, आप सम्भोग-सुख से वञ्चित हैं, इससे मुझको कुछ कष्ट नहीं है। सम्मान के योग्य कुन्ती की अपेक्षा अपना कम आदर होने से भी

मुझे विशेष दुःख नहीं है। और गान्धारी के एक सौ पुत्र होने का हाल सुनकर भी मुझे वैसा खेद नहीं हुआ। मुझको तो बड़ा भारी दुःख यही है कि आपके पुत्र उत्पन्न करने के अयोग्य हो जाने के कारण कुन्ती और मैं दोनों ही पुत्र का मुँह नहीं देख सकती थीं—वास्तव मे हम दोनों मे पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति है—सो इस समय भाग्यवश कुन्ती से आपके सन्तान हैं; [ पर मेरे कोई पुत्र नहीं है। ] यदि कुन्ती मुझ पर कृपा करें तो मैं भी पुत्र का मुँह देख सकती हूँ। ऐसा होने से आपका भी हित होगा। मैं स्वयं कुन्ती से इसके लिए प्रार्थना नहीं कर सकती; क्योंकि वे मेरी सौत हैं। यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो कृपा करके उनसे मुझे पुत्र दिलाने के लिए कहिए।

यह सुनकर पाण्डु ने कहा—माद्री, अब तक मैं नित्य इसी बारे में सोचा करता था, इसके सिवा और कोई चिन्ता मुझे न थी। किन्तु तुम इसके लिए राज़ी हो या न हो, यह सोचकर मैं तुमसे कुछ कह नहीं सका। इस समय तुम्हारी इच्छा मुझे मालूम हो गई। अब इसके लिए विशेष उपाय करूँगा। मुझे निश्चय है, कुन्ती मेरे कहे को कभी न टालेंगी।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके बाद पाण्डु ने कुन्ती को एकान्त में बुलाकर कहा कि प्रिये, तुम प्रजा की मनोरथ-सिद्धि के लिए सन्तान उत्पन्न करके हमारे वंश को बढ़ाओ। ऐसा करोगी तो किसी न किसी पुत्र के वंश चलने से मेरे श्राद्ध-तर्पण का अभाव न होगा। इससे मेरे पूर्वजों को, तुमको, माद्री को और मुझे आनन्द होगा। अन्य कोई प्रयोजन न होने
१० पर भी केवल कीर्त्ति फैलाने के लिए तुम पुत्र बढ़ाने का उपाय करो। रानी, इन्द्र ने त्रिलोकी की प्रभुता पाकर भी केवल यश की इच्छा से अनेक यज्ञ किये हैं। मन्त्रज्ञ ब्राह्मण भी दुष्कर तप करते हुए यश के लिए गुरु और देवता आदि की आराधना करते हैं। राजर्षियों तथा और-और ब्राह्मणों ने उसी उद्देश से मारण, उच्चाटन आदि के मन्त्रों का उच्चारण करके अनेक अति निष्ठुर कार्य भी किये हैं। इसलिए तुम पुत्रहीनता-रूप भयानक समुद्र मे डूबी हुई माद्री को नाव की तरह उबार लो। यदि तुम्हारी कृपा से माद्री पुत्र पावेगी तो संसार में तुम्हारी कीर्त्ति फैल जायगी।

स्वामी के ये वचन सुनकर कुन्ती ने माद्री से कहा—बहन, तुम किसी देवता का ध्यान करो। उस देवता से उसी के अनुरूप पुत्र तुम्हें प्राप्त होगा। माद्री ने ख़ूब सोचकर अन्त को अश्विनी-कुमार देवों को स्मरण किया। स्मरण करते ही कुन्ती के मन्त्र के बल से वे देवता आ गये। उनके द्वारा माद्री के नकुल और सहदेव नाम के यमज ( जोड़ा ) पुत्र उत्पन्न हुए। उनके पैदा होते ही आकाश-वाणी हुई—अश्विनी-कुमार देवों के ये दोनों पुत्र बली और बहुत ही सुन्दर होंगे। ये रूप और तेज में साक्षात् अश्विनी-कुमारों से भी अधिक होंगे।

महाराज, इस प्रकार पाण्डु के पाँच पुत्र उत्पन्न होने पर शतशृङ्ग पर्वत पर रहनेवाले तपस्वियों ने जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार करके उन्हें स्नेह से शुभ आशीर्वाद दिये। कुन्ती

के लड़कों में बड़े का नाम युधिष्ठिर, मँझले का भीमसेन और छोटे का अर्जुन रक्खा। माद्री २०
के बड़े लड़के का नाम नकुल और छोटे का सहदेव रक्खा। पाँचों बालक दिनोंदिन बढ़ते हुए बल, वीर्य और पराक्रम से पूर्ण होने लगे। एक-एक वर्ष की अवस्था में वे पाँच-पाँच वर्ष के ऐसे जान पड़ते थे। देवकुमार-तुल्य तेजस्वी उन पुत्रों को देखकर पाण्डु को अपार आनन्द हुआ। पर्वत पर रहनेवाले ऋषि और उनकी स्त्रियाँ अत्यन्त आनन्दित होकर उन बालकों को प्यार करती थीं।



कुछ समय बीतने पर पाण्डु ने फिर कुन्ती से माद्री के पुत्र उत्पन्न होने के लिए उपाय करने को कहा। एकान्त में पाण्डु के यों कहने पर कुन्ती ने कहा—नाथ, माद्री बड़ी धूर्त है; उसने एक ही बार देवता का आवाहन करके दो पुत्र प्राप्त कर लिये। मैं पहले जानती न थी कि अश्विनीकुमार-युगल को एक बार आवाहन करने से दो पुत्र मिलेंगे। इस कारण मैं यह फ़ायदा नहीं उठा सकी। अधिक पुत्र होने से माद्री मेरा अपमान भी कर सकती है; क्योंकि बुरी स्त्रियों की प्रकृति ही ऐसी होती है। इन्हीं कारणों से मैं आपसे यह वर माँगती हूँ कि इस काम के लिए अब आप मुझसे न कहें।

इस प्रकार देवताओं से पाण्डु को पाँच पुत्र प्राप्त हुए। हिमवान् पर्वत पर रहकर कुछ ही दिनों में वीर्यशाली, यशस्वी, शुभलक्षणयुक्त, चन्द्रमा के समान प्रिय-दर्शन, सिंह के समान रोबीले, सब धनुष-धारियों में श्रेष्ठ और देवताओं के समान पराक्रमी पाँचों पाण्डव बढ़कर इधर-उधर तपोवन में विचरने लगे। वनवासियों और अन्यान्य तपस्वियों को उन बालकों के शुभ-लक्षण और सौम्य मूर्ति देखने से आश्चर्य हुआ।

पाँचों पाण्डव और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र, जल में कमल की तरह, थोड़े ही समय में बढ़कर समर्थ हो गये। ३२

# एक सौ छब्बीस अध्याय

## पाण्डु की मृत्यु और माद्री का सती होना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, वन में पाँचों पुत्रों के मनोहर मुखचन्द्र देखकर महाराज पाण्डु का बाहु-बल मानों फिर नया हो उठा। वे फिर स्त्री-सहित इधर-उधर वन की सैर करते हुए घूमने लगे।

एक बार वसन्त ऋतु थी। चारों ओर वन में वसन्त की अनुपम मोहिनी शोभा फैली हुई थी। टेसू, तिलक, आम, चम्पा, नीम आदि अनेकानेक वृक्ष फूलों और फलों से लदे हुए थे। चारों ओर फूलों की सुगन्ध छाई हुई थी। जगह-जगह पर सरोवरों में सुन्दर कमल फूल रहे थे।

ऐसे कामोद्दीपन करनेवाले चैत-वैसाख के दिनों में एक दिन महाराज पाण्डु माद्री के साथ वन में विचर रहे थे। वसन्त की शोभा निहारकर राजा के हृदय में काम का सञ्चार हुआ। प्रसन्न चित्त से विचर रहे देव-तुल्य पाण्डु के पास ही सुन्दर महीन कपड़े पहने माद्री टहल रही थी। कमल-नयनी माद्री की जवानी के सौन्दर्य को देखकर, जङ्गल में आग की तरह, राजा के हृदय में काम का वेग बढ़ा। एकान्त में अकेली माद्री को पाकर पाण्डु अपने को सँभाल न सके। कामवश विह्वल राजा ऋषि के शाप को भूल गये और माद्री को पकड़कर बल-पूर्वक अपनी इच्छा पूरी करने के लिए तैयार हुए। रानी शाप को याद करके डर से काँप उठी। माद्री ने यथाशक्ति राजा को रोकना चाहा। किन्तु राजा ने किसी तरह नहीं माना; माद्री को नहीं छोड़ा। राजन्, पाण्डु की आयु समाप्त हो चुकी थी; इसी से भावीवश कामान्ध होकर उन्होंने शाप की याद दिलाने पर भी उसकी परवा नहीं की। उनकी बुद्धि कालवश मोह को प्राप्त होकर, इन्द्रियों को उत्तेजित करके, प्राणों की गाहक बन गई।



महाराज, इस प्रकार स्त्री-सङ्ग करते ही धर्मात्मा पाण्डु की मृत्यु हो गई। तब माद्री उनकी लाश से लिपटकर बारम्बार ऊँचे स्वर से हाय-हाय करती हुई विलाप करने लगी। उसका



एकान्त में अकेली माद्री को पाकर पाण्डु अपने को सँभाल न सके।—पृ० २७६

रोना-चिल्लाना सुनकर पाँचों बालकों के साथ कुन्ती उस स्थान पर आईं, जहाँ राजा मरे पड़े थे। उनको दूर से देखकर माद्री ने कुन्ती से कहा—बहन, तुम अकेली यहाँ आओ; बालकों को वहीं छोड़ दो। पुत्रों को वहीं छोड़कर कुन्ती "हाय, मेरा सत्यानाश हो गया!" कहकर रोती पीटती हुई माद्री के पास पहुँचीं। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि माद्री राजा से लिपटी हुई पृथ्वी पर पड़ी है। तब दुःख और शोक से व्याकुल कुन्ती विलाप करके माद्री से कहने लगीं—माद्री, मैं श्रेष्ठ वीर जितेन्द्रिय राजा को सदा इस काम से बचाये रखती थी। ऋषि के शाप को जानकर भी महाराज ने कैसे तुमको पकड़ लिया? तुमको स्वामी की रक्षा करनी चाहिए थी। फिर तुमने एकान्त में राजा के पास रहकर उन्हें कामान्ध क्यों बनाया? जब से शाप मिला तब से महाराज सदा उदास ही बने रहते थे। इस समय तुमको एकान्त में पाकर उस शाप को भूलकर वे कैसे प्रफुल्ल होकर कामवश हो गये? हे वाह्लीककुमारी, तुम्हीं धन्य और २०
मुझसे अधिक भाग्यवती हो। क्योंकि तुमने स्वामी के मुख पर प्रसन्नता की झलक देखी है।

माद्री ने कहा—देवी, मैंने दीनता दिखाकर विलाप करके बारम्बार राजा को मना किया किन्तु ऋषि का शाप अमिट था। इसी से राजा की बुद्धि भ्रष्ट हो गई। उन्होंने मेरी एक नहीं सुनी। कुन्ती ने कहा—माद्री, मैं बड़ी रानी हूँ, पतिव्रत-धर्म का प्रधान फल मुझे ही मिलना चाहिए। जो होना था सो हो गया; अब तुम मुझे रोको मत। मैं मरे हुए पति के साथ, सती होकर, स्वर्ग जाऊँगी। तुम राजा को छोड़कर उठो, इन बालकों की रक्षा का काम मैं तुमको सौंपती हूँ। इस पर माद्री ने कहा—आर्ये, मैं स्वामी के सहवास से अभी तृप्त नहीं हुई, इस कारण मैं ही महाराज के साथ सती होऊँगी। कृपा करके तुम इसका अनुमोदन करो। इसके सिवा महाराज ने मुझ पर ही आसक्त होकर जान दी है, इसलिए उनके साथ परलोक में जाकर उनकी इच्छा पूरी करना मेरा धर्म और कर्त्तव्य है। एक बात और भी है। यदि मैं जीती रही और शायद अपने पुत्रों के समान तुम्हारे पुत्रों पर स्नेह न कर सकी—और ऐसा होना बहुत सम्भव है—तो मुझे बड़ा पाप लगेगा। महाराज ने मेरे ही कारण प्राण दिये हैं, इस कारण उनके साथ सती होना ही मेरे लिए अच्छा है। मेरे इस शरीर को तुम प्राणनाथ के साथ जला दो। ऐसा करने से ही मुझे प्रसन्नता होगी। इसके सिवा मैं यही प्रार्थना करती हूँ कि मेरे पुत्रों को भी अपने पुत्रों के समान जानना और उन्हें प्यार से पालना। बस, मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है। वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इतना कहकर माद्री ने शरीर छोड़ दिया। ३१

# एक सौ सत्ताईस अध्याय

पुत्रों-सहित कुन्ती का हस्तिनापुर में आना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, पाण्डु के मरने पर देवताओं के समान तेजस्वी सब तपस्वी एकत्र होकर आपस में इस प्रकार सलाह करने लगे कि महायशस्वी महात्मा पाण्डु राज्य और राजधानी छोड़कर यहाँ तप करने हमारी शरण में आये थे। अपने बच्चों को और रानियों को धरोहर के धन की तरह हमारे पास छोड़कर वे स्वर्ग को चले गये। इसलिए आओ, हम उनके मृत शरीर ( लाश ), रानी और पुत्रों को लेकर उनकी राजधानी में पहुँचा आवें। यही हमारा धर्म है।

वैशम्पायन कहते हैं—महायशस्वी देवतुल्य सिद्ध ऋषिगण यों सलाह करके उसी समय राजा और माद्री के शवों को कुन्ती को और पाँचों पाण्डवों को लेकर भीष्म और धृतराष्ट्र को सौंपने के लिए हस्तिनापुर को चले। पुत्रवत्सला कुन्ती को अपनी राजधानी में जाने की उत्सुकता के कारण राह की थकावट कुछ भी न मालूम हुई। नगर बहुत दूर होने पर भी उन्हें पास ही जान पड़ा। यशस्विनी कुन्ती थोड़े ही समय में कुरुजाङ्गल देश में आकर राजधानी के फाटक पर पहुँच गईं। वहाँ पहुँचकर ऋषियों ने द्वारपाल से कहा—राजा धृतराष्ट्र को हमारे आने की
१० ख़बर कर दो। उसी दम सभा-भवन में जाकर द्वारपाल ने ऋषियों के आने की सूचना दी। हस्तिनापुर में हज़ारों वनवासी मुनियों के आने की ख़बर पाकर पुरवासियों को बड़ा अचरज हुआ। सूर्योदय होने के बाद बाल-बच्चों और स्त्रियों को साथ लिये हुए सब लोग ऋषियों के दर्शन के लिए नगर से बाहर निकले। सवारियों पर बैठे हुए क्षत्रिय, उनकी स्त्रियाँ, ब्राह्मण, उनकी स्त्रियाँ, वैश्य और शूद्र आदि सब उसी ओर चले। वे सब ईर्ष्याहीन और धर्मात्मा थे। शान्तनु के पुत्र भीष्म पितामह, सोमदत्त, बाह्लीक, प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र और विदुर भी गये; उनके पीछे-पीछे देवी सत्यवती, यशस्विनी अम्बिका, गान्धारी और अन्यान्य कुरुवंशियों की स्त्रियाँ चलीं। उनके साथ अनेक गहनों से सजे हुए दुर्योधन आदि धृतराष्ट्र के सौ पुत्र भी पहुँचे।

कुरुवंश के सब लोग इस प्रकार ऋषियों के पास गये। ऋषियों को देखकर सबने प्रणाम किया। ऋषियों की आज्ञा पाकर वे सब उनके पास बैठ गये। कुरुवंश के कुल-पुरोहित भी अपने योग्य स्थान पर बैठे। सब पुरवासी सिर झुकाकर प्रणाम करके उचित स्थान पर बैठ गये। सब ओर सन्नाटा छा जाने पर भीष्म ने पाद्य, अर्घ्य देकर उन ऋषियों का सत्कार
२० और पूजन किया। इसके बाद राज्य और राजधानी के कुशल-मङ्गल का हाल कहा।

अब उस ऋषिमण्डली में से एक बहुत बूढ़े, जटा और मृगछाला धारण किये हुए मुनि ने उठकर सबकी सम्मति लेकर कहा—देखो, महाराज पाण्डु वासना और विषय-भोग छोड़कर

वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करके तप करने के लिए यहाँ से शतशृङ्ग पर्वत पर गये थे। ब्रह्मचर्य-व्रतधारी महाराज के बड़े पुत्र ये युधिष्ठिर हैं। साक्षात् धर्म से इनका जन्म हुआ है। उनके



मँझले पुत्र ये महाबली भीमसेन वायु से उत्पन्न हैं। उनके तीसरे पुत्र ये अर्जुन इन्द्र के द्वारा कुन्ती में उत्पन्न हुए हैं। ये तीनों लोकों में अद्वितीय श्रेष्ठ वीर कहलावेंगे। माद्री ने अश्विनीकुमार देवों की कृपा से इन दो महाबली पुरुष-श्रेष्ठ पुत्रों को उत्पन्न किया है। इनका नाम नकुल और सहदेव है। परम-धर्मात्मा पाण्डु ने वन में रहकर इस प्रकार देवताओं की कृपा से नष्टप्राय अपने वंश का फिर से उद्धार किया है। इस समय पाण्डु के पुत्रों के जन्म का वृत्तान्त, पढ़ना और वेदपाठ देख-सुनकर तुम्हें आनन्दित होना चाहिए। मुनि-वृत्तिधारी राजा पाण्डु पुत्र प्राप्त करके मरे हैं। उनको मरे आज सत्रह दिन हुए। उनके साथ ही माद्री ने भी शरीर छोड़ दिया है। वह पतिव्रता उनके साथ ही उनकी गति को प्राप्त हुई है। अब तुम लोग दोनों ३०
के क्रिया-कर्म की तैयारी करो। पाण्डु और माद्री की लाश हम यहाँ ले आये हैं। प्रेत-कार्य होने से कुरुकुल-तिलक धर्मज्ञ पाण्डु को सद्गति मिले। [ इन पुत्रों के लिए भी जो कुछ माङ्गलिक कर्म करने चाहिएँ उन्हें करके इन्हें और कुन्ती को ग्रहण करो। ये तुम्हारी शरण में आये हैं। इन्हें ग्रहण करना तुम्हारा धर्म है। ]

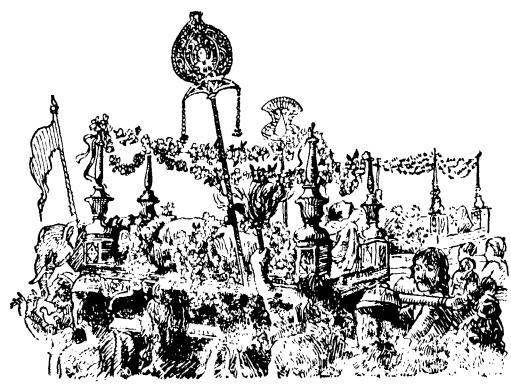
वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, कुरुवंशियों से यों कहकर वे सब ऋषि, यक्षों के साथ, वहाँ से चले गये। गन्धर्वनगर के समान क्षण भर में देखते ही देखते उस सिद्ध-ऋषि-मण्डली को अन्तर्द्धान होते देखकर सबको बड़ा अचरज हुआ। ३५

# एक सौ अट्ठाईस अध्याय

## पाण्डु और माद्री का क्रिया-कर्म होना

धृतराष्ट्र ने कहा—हे विदुर, राजा की तरह बड़ी धूमधाम से पाण्डु और माद्री का क्रिया-कर्म कराओ। उनके नाम पर पशु, वस्त्र, धन और विविध रत्न आदि जितना जो चाहे उतना उसे दो। रानी कुन्ती जिस तरह माद्री का अन्तिम-सत्कार करना चाहें उसी तरह होने का प्रबन्ध कर दो। माद्री की लाश को इस तरह लपेटकर पर्दे में रखना कि वायु और सूर्य भी न देख सकें। दोष-हीन राजा पाण्डु के लिए शोक करना वृथा है, वे धन्य हैं; क्योंकि देव-तुल्य पाँच पुत्र छोड़कर स्वर्गवासी हुए हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, विदुर ने बहुत अच्छा कहकर भीष्म के साथ जाकर उत्तम स्थान में पाण्डु के दाहकर्म का प्रबन्ध कर दिया। नगर से राजपुरोहित लोग प्रज्वलित अग्नि लेकर चले। अग्नि में जल रहे घी की सुगन्ध चारों ओर फैल गई। ऋतु के सुगन्धित फूलों से और अन्यान्य श्रेष्ठ सुगन्धित सामग्री से एक पालकी को सजा करके, उसको सुन्दर वस्त्र से ढककर, लोगों ने उसमें पाण्डु और माद्री की लाशें रक्खीं। इस प्रकार पालकी सजाकर सब लोग पाण्डु और माद्री के शवों को ले चले। किसी ने महाराज पाण्डु के ऊपर छत्र लगा लिया। कोई इधर-उधर से चँवर डुलाने लगा। चारों ओर तरह-तरह के बाजे बजते जा रहे थे। सैकड़ों लोग राजा की और्ध्व-दैहिक क्रिया के समय मँगतों को दान देकर प्रसन्न करने लगे। राजा के लिए सफ़ेद कपड़े, छत्र, चँवर आदि सामग्री लेकर नौकर लोग चले। सफ़ेद कपड़े पहने पुरोहित लोग अग्नि-होत्र की आग लेकर आगे-आगे चले। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सब प्रजा पीछे-पीछे चली। सब पुरवासी ऊँचे स्वर से रोते हुए कहते जाते थे कि महाराज हमें, अनाथ करके, सदा के लिए दुःख-समुद्र में डुबाकर आप कहाँ चले गये।



भीष्म, विदुर और पाँचों पाण्डव रोते हुए गङ्गा-तट पर एक मनोहर वन में पहुँचे। वहीं पर वह पालकी, जिसमें राजा और रानी की लाशें थीं, रख दी गई। राजा और रानी के—

सुगन्धित चन्दन आदि अङ्गरागों से भूषित—मृत शरीरों को पहले सुवर्ण के कलशों में जल भरकर नहलाया गया ; उसके बाद सफ़ेद चन्दन आदि का लेप कराया गया ; फिर उत्तम उज्ज्वल नये कपड़े पहनाये गये। बहुमूल्य शय्या पर लेटने योग्य महाराज पाण्डु, नये कपड़े पहनाये जाने पर, जीवित से मालूम पड़ने लगे। २०

पुरोहितों ने प्रेत-कर्म का आरम्भ किया। कौरवों ने पाण्डु और माद्री के अलङ्कृत मृत शरीरों को घी, चन्दन और अन्यान्य सुगन्धित वस्तुओं के साथ विधिपूर्वक जला दिया। बेटे और बहू की लाशों को देखकर महारानी अम्बिका 'हाय पुत्र !' कहती हुई अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उनको यों दुःखित हो गिरते देखकर दुःख और शोक के मारे सब राजभक्त प्रजा रोने लगी। कुन्ती के आर्त्तनाद को सुनकर पशु-पक्षियों को भी रुलाई आ गई। शान्तनु-तनय भीष्म और महामति विदुर आदि कौरव भी दुःख के मारे रोने लगे।

अब भीष्म, विदुर, राजा धृतराष्ट्र, पाँचों पाण्डव और सब कुरु-स्त्रियों ने रोते-रोते राजा और रानी को तिलाञ्जलि दी। सब पुरवासी प्रजागण शोकाकुल पाण्डवों को समझाते हुए धैर्य्य देने लगे। बान्धवों-सहित पाण्डवों को पृथ्वी पर लेटते देखकर ब्राह्मण आदि नगरवासी भी पृथ्वी पर सोने लगे। बारह दिन तक पाण्डवों के दुःख से दुःखित, बालक से बूढ़े तक, सब नगरवासी शोक-चिह्न धारण किये हुए आनन्दहीन रहे। ३२

---

## एक सौ उनतीस अध्याय

कुमारों की क्रीड़ा। दुर्योधन का भीमसेन को मार डालने के लिए चेष्टा करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! अब बन्धु-बान्धवों सहित भीष्म, विदुर, व्यास, धृतराष्ट्र आदि ने महाराज पाण्डु का श्राद्ध और पिण्ड-दान किया। श्राद्ध के अवसर पर सब कुरुवंशियों और हज़ारों ब्राह्मणों को दिव्य भोजन कराये गये। ब्राह्मणों को अनेक गाँव-इलाक़े और रत्न आदि दिये गये। फिर सूतक ( अशौच ) पूरा हो जाने पर पाण्डवों को लेकर सब पुरवासी हस्तिनापुर में आये। जैसे कोई अपना सगा मर गया हो, इस तरह सब पुरवासी स्वर्गीय महाराज पाण्डु का शोक मनाने लगे।

श्राद्धकृत्य समाप्त हो जाने पर व्यासदेव ने सब प्रजा को शोक से व्याकुल देखकर एक दिन दुःख से पीड़ित हो रही अपनी माता सत्यवती से कहा—माता, अब सुख का समय बीत गया, घोर विपत्ति का समय आ रहा है। दिन-दिन पाप बढ़ता ही जा रहा है। पृथ्वी की सम्पत्ति और उपजाऊ-शक्ति घटती जाती है। अब ऐसा समय आवेगा कि लोग बड़े मायावी और दुष्ट हो जायँगे—धर्म-कर्म और आचार का नाम न रह जायगा। इसके सिवा अन्याय

और दुराचार के कारण कौरवों का राज्य भी न रहेगा। इसलिए अब तुम वन में जाकर योग-मार्ग से तप करो। बुढ़ापे में अपने कुल का नाश देखने के लिए यहाँ न रहो।

व्यास का कहना मानकर सत्यवती ने, रनिवास में जाकर, अपनी बहू अम्बिका को बुलाकर कहा—बहू, मैंने सुना है कि तुम्हारे पोतों के अन्याय और दुराचार के कारण यह कुरुवंश नष्ट हो जायगा। साथ ही सब प्रजा का भी संहार होगा। यदि तुम कहो तो मैं पुत्र-शोक से पीड़ित अम्बालिका को साथ लेकर वन में तप करने चली जाऊँ। [ जी चाहे तो तुम भी चलो। ] जनमेजय, सत्यवती यों कहकर भीष्म की सम्मति से वन को चली। अम्बिका और अम्बालिका, दोनों बहुएँ भी उनके साथ हो लीं। वहाँ कठोर तप करके तीनों देवियाँ शरीर-त्याग करने के उपरान्त सद्गति को प्राप्त हुईं।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, पाण्डवों के सब वेदोक्त संस्कार हुए। वे राजभोग भोगते हुए पिता के घर में बढ़ने लगे। सुखपूर्वक आनन्द के साथ खेल खेलने के समय भी पाण्डवों में धृतराष्ट्र के पुत्रों से अधिक तेज और बल देख पड़ता था। दौड़ने में, निशानेबाज़ी में, खाने-पीने में, धूल खेलने में, सभी बातों में, भीमसेन धृतराष्ट्र के पुत्रों से बढ़कर थे—उनको नीचा दिखाते थे। भीमसेन खेलते-खेलते हँसते-हँसते धृतराष्ट्र के पुत्रों के सिर पकड़कर एक में लड़ा देते थे। धृतराष्ट्र के पुत्र एक सौ एक होने पर भी अकेले भीमसेन से पेश न पाते थे—वे सहज ही सबको हरा देते थे। महाबली भीमसेन केश पकड़कर भूमि में गिराकर उनको घसीटते थे। इसमें किसी की जाँघ में, किसी के सिर में और किसी के कन्धे में चोट आ जाती थी। वे चिल्लाते ही रह जाते थे। भीमसेन कभी उनमें से दस-दस बालकों को दोनों हाथों से पकड़कर पानी के भीतर गोता लगा जाते थे और जब वे बेदम और मुर्दे से हो जाते तब उनको छोड़ते थे। जब धृतराष्ट्र के पुत्र फल तोड़ने के लिए वृक्षों पर चढ़ते, तब भीमसेन लात मारकर उन वृक्षों को हिला देते थे। इससे बालक उन वृक्षों पर से हाथों में फल लिये नीचे गिर पड़ते थे। मतलब यह



कि धृतराष्ट्र के सब पुत्र कुश्ती में, दौड़ने में, और-और कामों में, लाग-डाँट रखने पर भी, भीमसेन की बराबरी नहीं कर सकते थे। भीमसेन द्वेषभाव से नहीं, केवल लड़कपन के स्वभाव के कारण लाग-डाँट रखकर धृतराष्ट्र के पुत्रों को तङ्ग करते थे।

भीमसेन की ऐसी अद्भुत शारीरिक शक्ति देखकर धीरे-धीरे प्रतापी धृतराष्ट्र के बड़े पुत्र दुर्योधन के हृदय में उनके प्रति शत्रुता का भाव बढ़ने लगा। धर्म से भ्रष्ट पाप-निरत दुर्योधन अज्ञानवश ऐश्वर्य के लोभ से भीमसेन का बुरा चेतने लगा। वह सोचने लगा कि पाण्डु के मँझले लड़के भीमसेन बड़े बलवान् हैं। इस तरह मैं उनका कुछ नहीं कर सकता। इसलिए धोखा देकर छल से इनको मार डालना चाहिए। अद्वितीय बली वीर भीमसेन अकेले ही हम सौ भाइयों की बराबरी करते हैं—हम सौ होकर भी उनसे पेश नहीं पाते। इस कारण जब वे नगर के बाग़ में सो जायँगे तब उन्हें गङ्गा की धारा में फेंककर डुबा दूँगा। इसके बाद सहज ही उनके बड़े भाई युधिष्ठिर और छोटे भाई अर्जुन को बलपूर्वक क़ैद करके मैं अकेला निष्कण्टक राज्य करूँगा।

दुष्ट विचारोंवाला दुर्योधन यों निश्चय करके उसके अनुसार काम करने का मौक़ा देखने लगा। महाराज! अन्त को पापी दुर्योधन ने जलविहार के लिए गङ्गातट पर स्थित प्रमाणकोटि ३०
नाम के रमणीय स्थान में, जल के किनारे स्थल में, कपड़े और कम्बल आदि के विचित्र और बड़े तम्बू खड़े करवाये। उनमें तरह तरह की खाने-पीने की और सुखभोग की सामग्रियाँ रखवा दीं। उन भवनों के ऊपर रङ्ग-बिरङ्गी पताकाएँ फहराने लगीं। उस उत्सव का नाम 'जलविहार' रक्खा गया। रसोई बनाने में निपुण रसोइयों ने चाबने, चूसने, चाटने और पीने की अनेक भोजन-सामग्रियाँ तैयार कर रक्खीं।

सब तैयारी हो जाने पर कर्मचारियों ने आकर दुर्योधन को ख़बर दी। तब दुष्ट विचार-वाले दुर्योधन ने पाण्डवों से कहा—चलो, हम सब भाई मिलकर गङ्गातट पर चलें और वहाँ जल-विहार करें। युधिष्ठिर ने इसका अनुमोदन किया। धृतराष्ट्र के पुत्र, पाण्डवों को साथ लेकर, नगर-तुल्य बड़े-बड़े रथों और पर्वताकार हाथियों पर चढ़कर नगर से बाहर निकले। नगर से प्रमाणकोटि में पहुँचकर कौरवों ने साथ आनेवाले लोगों को लौटा दिया। फिर सिंह जैसे पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करते हैं वैसे ही पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्र, उपवन की शोभा देखने के लिए, वहाँ के बाग़ में घुसे। बाग़ के भीतर जाकर देखा, वहाँ सुन्दर बैठकें बनी हैं। सुन्दर भवनों में बँगलेदार अटियाँ बनी हुई हैं। थवइयों ने बड़ी सफ़ाई से अस्तरकारी कर रक्खी है, और चित्रकारों ने सुन्दर बेलबूटों का काम बना रक्खा है। हवा आने के लिए सुन्दर झरोखे और जालियाँ लगी हुई हैं। पानी के फुहारे छूट रहे हैं। जगह-जगह पर नहरें और ४१
तालाब भरे हुए हैं। उनके स्वच्छ जल में सुन्दर कमल के फूल खिले हुए हैं। ऋतु के फूलों

की सुवास चारों ओर बसी हुई है। पाण्डव और कौरव ( दुर्योधन आदि ) वहीं बैठकर [ अनेक देशों से आई हुई ] विलास की सामग्रियों का उपभोग करने लगे। उस बाग़ में




क्रीड़ा कर रहे कौरव और पाण्डव एक दूसरे के मुँह में कौर खिलाकर प्रसन्नता प्रकट करने लगे। इसी मौके पर, भीमसेन को मार डालने के लिए विष-मिले जो भोजन बनवाये गये थे उन्हें लेकर पाप-निरत दुर्योधन भीमसेन को खिलाने लगा। हृदय में छुरी और मुँह में अमृत सी मीठी बातें रखनेवाले दुर्योधन ने स्वयं उठकर भाई और मित्र का सा भाव दिखाते हुए वह विष-मिला भोजन भीमसेन को बहुत सा खिला दिया। अपने को कृतकृत्य सा समझकर वह नराधम अपनी सफलता पर मन ही मन हँसने लगा।

अब धृतराष्ट्र के पुत्र और पाण्डव मिलकर गङ्गा के भीतर घुसे और प्रसन्नचित्त होकर
५० जलक्रीड़ा करने लगे। जलक्रीड़ा समाप्त हो जाने पर सब कुमार जल से बाहर निकले। सबने अपने-अपने कपड़े और गहने पहन लिये। जलविहार के परिश्रम से थके हुए सब कुमारों ने सन्ध्या के समय, उसी उपवन में बने हुए, विहार-भवनों में रहने का विचार किया। बलवान् भीमसेन ने जलविहार के समय सब बालकों को अधिक व्यायाम ( कसरत ) कराया था। इससे वे बहुत ही थक गये थे। वे प्रमाणकोटि की स्थल-भूमि में आकर ही किनारे पर लेट रहे। भीमसेन एक तो थके थे, दूसरे उन्हें विष का नशा चढ़ा हुआ था। इस समय ठण्डी हवा लगने से विष का असर सब अङ्गों में फैल गया। वे एकदम बेहोश हो गये। [ और

सब लोग तथा चारों पाण्डव वस्त्र-भवनों में विश्राम कर रहे थे। ] यह मौका पाकर दुष्ट दुर्योधन ने लताओं से भीमसेन के हाथ-पैर खूब कसकर बाँध दिये और उनको किनारे पर से गङ्गा के जल में ढकेल दिया। अचेत पड़े हुए भीमसेन जल में डूबकर नागलोक में नागकुमारों के ऊपर जाकर गिरे। सैकड़ों बड़ी-बड़ी डाढ़ोंवाले विषधर साँप आकर भीमसेन के शरीर से लिपट गये और उनको डसने लगे। स्थावर कालकूट विष जो भीमसेन के रक्त में व्याप गया था वह साँपों के जङ्गम विष के द्वारा नष्ट हो गया; उसका असर जाता रहा। साँपों ने भीमसेन के मर्मस्थानों में ही काटा था, किन्तु उनकी खाल बहुत ही कड़ी होने से साँपों के दाँत भीतर घुस ही नहीं सके।

कुछ समय में भीमसेन को होश आया। उन्होंने अपने हाथों और पैरों के बन्धन तोड़ डाले। वे साँपों को पृथ्वी पर पटक-पटककर मारने लगे। मरने से बचे हुए डर से व्याकुल कुछ साँप वहाँ से भागकर नागराज वासुकि के पास जाकर कहने लगे— ६०



नागराज, लतापाश से बँधा हुआ एक मनुष्य जल में डूबकर नागलोक में आया है। जान पड़ता है, इसने विष पिया है। जब हमारे पास वह गिरा तब जड़ की तरह अचेत था। हमारे काटने पर वह होश में आकर बन्धन तोड़कर उठ बैठा है और पृथ्वी पर पटक-पटककर साँपों का नाश कर रहा है। वह महाबली पुरुष कौन है? आप चलकर पता लगाइए।

तब वासुकि अपने अनुगत साँपों के साथ उसी जगह पर आया। उसने भीमसेन को देखा। इन्हीं सब साँपों में आर्यक नाम का एक नाग था। वह कुन्ती के पिता शूरसेन का नाना था। आर्यक ने अपने नाती के नाती भीमसेन को देखकर गले से लगा लिया। सब हाल सुनकर वासुकि भी भीमसेन पर बहुत प्रसन्न हुआ। प्रसन्न होकर उसने आर्यक से कहा—अब इनका क्या प्रिय करना चाहिए? इन्हें प्रसन्न करने के लिए बहुत सी सम्पदा, रत्न आदि इनको दो।

आर्यक ने कहा—नागराज, धन-सम्पदा की इस राजकुमार को क्या कमी है? यदि आप इस पर सन्तुष्ट हुए हैं तो इसे कुण्ड से रस ( साधित पारा ) पीने के लिए आज्ञा दीजिए।

हज़ार हाथियों का बल देनेवाले कुण्ड के रस को पीकर यह महाबली हो जायगा। जितना रस इससे पिया जाय उतना पी ले, यह आज्ञा दीजिए। वासुकि ने यह बात मान ली। तब स्वस्त्ययन के उपरान्त विशेष रूप से पवित्र होकर, पूर्वमुख बैठकर, भीमसेन वह रस पीने लगे। महाबली भीमसेन एक साँस में एक कुण्ड का रस पी गये। इसी तरह उन्होंने आठ कुण्डों का रस पी लिया। इसके बाद नागों के दिये हुए बढ़िया पलँग
७२ पर ( झरोखे में ) भीमसेन सुख से सो रहे।

---

## एक सौ तीस अध्याय

### भीमसेन का नागलोक से अपने घर लौट आना

वैशम्पायन कहते हैं—उधर भीमसेन के सिवा सब कौरव और पाण्डव अनेक प्रकार की क्रीड़ा करने के उपरान्त विश्राम करके घोड़े, रथ, हाथी आदि अनेक सवारियों पर चढ़कर हस्तिनापुर को चले। राह में दुर्योधन के कुकर्म को न जानने के कारण पाण्डवों ने परस्पर यह निश्चय कर लिया कि भीमसेन हमसे पहले अकेले ही घर को चले गये हैं। पापी दुर्योधन भीम को मरा समझकर बड़ी प्रसन्नता से अपने घर गया।



धर्मात्मा युधिष्ठिर धर्मात्मा थे, इस कारण वे अपने ही समान सबको भला समझते थे। भ्रातृवत्सल युधिष्ठिर ने नगर में आते ही माता के पास जाकर प्रणाम करके पूछा—माता, क्या भीमसेन [ पहले ही ] आ गये हैं? किन्तु यहाँ तो वे देख नहीं पड़ते। कहाँ गये हैं? हमने उपवन में और गङ्गातट के वन में उन्हें बहुत ढूँढ़ा; परन्तु वे कहीं नहीं देख पड़े। अन्त को हमने यह सोचा कि वे हमसे पहले घर चले गये होंगे। माता, हमने बड़ी चिन्ता और व्याकुलता के साथ इतनी राह काटी है। जल्दी बताओ, महाबाहु भीमसेन कहाँ हैं? आपने उनको कहीं भेजा है? माता, उनके लिए

हमारे मन में तरह-तरह की शङ्काएँ हो रही हैं। जान पड़ता है, वे अब जीते नहीं हैं। वे सोते ही सोते गुम हो गये हैं। इससे मैं समझता हूँ, किसी ने उनको मार डाला है। १०

बुद्धिमान् धर्मपुत्र युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर कुन्ती हाय-हाय करके चिल्ला उठीं। उन्होंने घबराहट के साथ कहा—पुत्र, मैंने भीम को नहीं देखा; वह मेरे पास नहीं आया। तुम भाइयों के साथ अभी जाकर उसकी खोज करो।

दुःखित कुन्ती ने बड़े पुत्र युधिष्ठिर से यों कहकर विदुर को बुलाया और कहा—देवर, मालूम नहीं, भीमसेन कहाँ गया। और सब भाई खेल-कूदकर बाग़ से आ गये हैं। भीम ही अब तक नहीं आया। उसे दुर्योधन देख नहीं सकता। वह क्रूर, दुर्बुद्धि, नीच-हृदय, राज्य का लोभी और निर्लज्ज है। इस शङ्का से मेरा चित्त चञ्चल हो रहा है और कलेजा धड़क रहा है कि उसने क्रोध करके घात पाकर मेरे भीम को मार न डाला हो।

विदुर ने कहा—रानी, ऐसी अशुभ आशङ्का न करो। बचे हुए पुत्रों की रक्षा करो। इस समय कुछ कहने-सुनने ( धमकाने ) से वह तुम्हारे इन चारों पुत्रों पर भी चोट कर सकता है। महामुनि व्यास ने जो कहा है सो झूठ नहीं हो सकता। तुम्हारे सब पुत्र चिरजीवी होंगे। तुम्हारा पुत्र भीम जल्दी आकर तुमको प्रसन्न करेगा।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, ज्ञानी विदुर कुन्ती से यों कहकर अपने घर चले गये। चिन्ता में डूबी हुई कुन्ती शेष चार पुत्रों की देखरेख करने लगीं। इधर आठ दिन के बाद भीमसेन की आँख खुली। वे उठ बैठे। आठ कुण्डों का रस पच जाने के कारण उन्हें अपने शरीर में अपार बल जान पड़ने लगा। मँझले पाण्डव भीमसेन को जगा हुआ देखकर सब २० नाग उनके पास आये। उन्होंने कहा—वीरवर, तुमने यह वीर्य-वर्द्धक रस पिया है, इस कारण तुम्हारे शरीर में हज़ार हाथियों का बल आ गया। युद्ध में तुमको कोई परास्त न कर सकेगा। हे कुरुकुल-तिलक, अब तुम दिव्य और पवित्र पाताल-गङ्गा के जल में नहा करके अपने घर को जाओ। तुमको न देखकर तुम्हारी माता और भाई दुःखित हो रहे हैं।

नागों के ये वचन सुनकर भीमसेन ने उस पवित्र जल में नहाया, सफ़ेद कपड़े और सफ़ेद मालाएँ पहनीं। भोजन के लिए नाग-लोक के दिव्य भोजन आये। नागों के दिये दिव्य अलङ्कार पहने हुए भीमसेन ने जी भरकर भोजन किया और ऐसी ओषधियाँ भी खाईं जिनसे विष का असर हटता है। अब नागों से आशीर्वाद पाकर—विदा होकर भीमसेन ऊपर की ओर उठे। नाग उन कमल-नयन भीमसेन को जल के भीतर से उठाकर उसी उपवन के पास पहुँचाकर अपने लोक को चले गये।

तब महाबाहु बड़े बलवान् भीमसेन उस स्थान से झटपट अपनी माता के पास पहुँचे। माता और बड़े भाई के चरणों में प्रणाम करके उन्होंने छोटे भाइयों को गले से लगाया। सब ३०

मिलकर भीमसेन के आने पर आनन्द प्रकट करने लगे। पराक्रमी भीमसेन ने भाइयों के आगे दुर्योधन की दुष्टता का सब हाल कहा। नागलोक में जो कुछ हुआ था उसका भी वर्णन किया। तब युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा—भैया, तुम चुप रहो। यह हाल किसी से न कहना। इस प्रकार भाइयों को सावधान रहने का उपदेश देकर आप भी सावधान रहने लगे। विदुर की सलाह से पाण्डवों ने दुर्योधन के इस कुकर्म को जानकर भी प्रकट नहीं किया। अब दुर्योधन ने भीमसेन के भोजन में दुबारा तीक्ष्ण विष मिलवा दिया किन्तु विदुर ने इसकी सूचना पाण्डवों को दे दी। भीमसेन ने इस विष को भी पचा लिया। दुर्योधन ने, कर्ण और
४० शकुनि की सलाह से, कई बार अनेक प्रकार से पाण्डवों का अनिष्ट करने की चेष्टा की, पर वे विदुर की सलाह से सदा बचते रहे। पाण्डवों ने दुर्योधन आदि के इस प्रकार के किसी कुकार्य को प्रकट नहीं किया।

धृतराष्ट्र ने कुमारों की शिक्षा के लिए शरस्तम्ब में उत्पन्न, वेद-शास्त्र के पूरे ज्ञाता, कृपाचार्य
४३ को नियत कर दिया। सब बालक उन्हीं से धनुर्वेद की शिक्षा पाने लगे।

---

## एक सौ इकतीस अध्याय

### कृपाचार्य और कृपी के जन्म का वर्णन

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, कृपा करके कृपाचार्य के जन्म का वृत्तान्त कहिए। वे किस प्रकार शरस्तम्ब ( सेंठों की झाड़ी ) से उत्पन्न हुए? किससे और किस प्रकार उन्होंने अस्त्र-विद्या सीखी?

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, महर्षि गौतम के शरद्वान् नाम के एक पुत्र थे। शरद्वान् शर ( बाण ) सहित उत्पन्न हुए थे। जैसे वे धनुर्वेद के पण्डित हुए वैसे वेदज्ञ नहीं हुए। उनका मन धनुर्विद्या में ही अधिक लगता था। ब्रह्मचारी ऋषियों ने जैसे तप करके वेदों को प्राप्त किया वैसे ही शरद्वान् ने तपस्या के द्वारा सब अस्त्र प्राप्त किये। उनकी धनुर्वेद में निपुणता और तपस्या देखकर इन्द्र को बड़ी चिन्ता हुई [कि ये कहीं मुझसे स्वर्ग का राज्य न छीन लें]। उन्होंने जानपदी नाम की एक देवकन्या ( अप्सरा ) को शरद्वान् के तप में विघ्न डालने के लिए उनके आश्रम में भेजा। युवती जानपदी इन्द्र की आज्ञा पाकर शरद्वान् के आश्रम में आई। धनुष-बाण लिये, धनुर्वेद का अभ्यास कर रहे, शरद्वान् को वह अप्सरा अपने हाव-भाव से लुभाने की चेष्टा करने लगी। गौतम के पुत्र शरद्वान् उस सर्वाङ्ग-सुन्दरी एक ही कपड़ा पहन रही अप्सरा को एकान्त तपोवन में देखकर आश्चर्य और आनन्द में मग्न हो गये। उनके हाथ से धनुष और बाण गिर पड़े। कामदेव के बाणों से विवश ऋषिकुमार का शरीर काँपने लगा।

पर वे अच्छे ज्ञानी और ब्रह्मचारी थे, इस कारण उन्होंने अपने को सँभाल लिया। किन्तु चित्त चलायमान होने के कारण उनका वीर्य स्खलित हो पड़ा। उनको वीर्य निकलने की ख़बर भी न हुई। वे धनुष, बाण, मृगछाला आदि सामग्री और उस अप्सरा को वहीं छोड़कर वहाँ से चल दिये। महाराज, शरस्तम्ब में गिरने से उनके वीर्य के दो भाग हो गये। एक भाग से एक कन्या और दूसरे भाग से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। १०

इसी बीच में उधर महाराज शान्तनु शिकार खेलते हुए निकले। उनके एक सिपाही ने घूमते-घूमते एक बालिका और एक बालक को वहाँ देखा। पास ही मृगचर्म, धनुष और बाण पड़े थे। उसने समझा, किसी धनुर्वेद के पण्डित ब्राह्मण के ये बालक और बालिका हैं। वह धनुष-बाण-सहित उन बच्चों को राजा के पास ले गया। राजा को दया आ गई। उन्होंने 'मेरी ये सन्तान हैं' कहकर दोनों बच्चों को ले लिया। उन्हें लेकर राजा अपनी राजधानी में आये। २०

शान्तनु ने वैदिक संस्कार करके दोनों बच्चों को पाल-पोसकर बड़ा किया। 'कृपा' करके उनको ले आने के कारण राजा ने बालक का नाम कृप और बालिका का नाम कृपी रक्खा।

इधर गौतम के पुत्र शरद्वान् को तपोबल से यह हाल मालूम हो गया कि उनके दोनों बच्चे शान्तनु के पास हैं। उन्होंने राजा शान्तनु के पास जाकर अपना गोत्र आदि सब बतला दिया। उन्होंने अपने पुत्र कृपाचार्य को चार प्रकार की धनुर्विद्या, सम्पूर्ण शास्त्र, शस्त्रों के चलाने का ढङ्ग, इन विषयों की गुप्त से भी गुप्त बातें, सब कुछ बता दिया। कृपाचार्य थोड़े ही दिनों में धनुर्वेद के श्रेष्ठ आचार्य हो गये।

भीष्म पितामह ने धृतराष्ट्र के पुत्रों और पाण्डवों को धनुर्वेद सिखलाने का काम कृपाचार्य को सौंप दिया। [ और कृपाचार्य को कोई कष्ट न मिले, इसका अच्छा प्रबन्ध भी कर दिया। ] इनके सिवा यादवों के बालक और अन्यान्य देशों के राजकुमार भी कृपाचार्य से धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए आते थे। २३

---

## एक सौ बत्तीस अध्याय

### द्रोणाचार्य्य और अश्वत्थामा का जन्म। द्रोणाचार्य्य का परशुराम से दिव्य अस्त्र पाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, इसके उपरान्त पोतों को धनुर्वेद की विशेष शिक्षा दिलाने के लिए भीष्म पितामह किसी अस्त्रविद्या और बाण चलाने में विशेष निपुण पराक्रमी गुरु की खोज करने लगे। उत्तम बुद्धिमान्, महाभाग, अनेक अस्त्रों के प्रयोग में चतुर और देवतुल्य महात्मा आचार्य ही कुरुवंश के बालकों को धनुर्वेद की शिक्षा दे; यह सोचकर भीष्म ने धृतराष्ट्र के और

पाण्डु के पुत्रों को वेदज्ञ द्रोणाचार्य का शिष्य बनाना चाहा। इसके लिये उन्होंने द्रोणाचार्य से प्रार्थना की। शास्त्रोक्त विधि से भीष्म ने अस्त्रज्ञ-शिरोमणि द्रोणाचार्य की पूजा की। उन्होंने सन्तुष्ट होकर कुमारों को अपना शिष्य बनाना स्वीकार कर लिया। अब महात्मा द्रोण उन बालकों को अनेक प्रकार से धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। असाधारण बलवान् कौरव और पाण्डव थोड़े ही दिनों में अस्त्रविद्या के पूरे पण्डित हो गये।

जनमेजय ने पूछा—ब्रह्मन्, पराक्रमी द्रोण किसके पुत्र थे? किस तरह उनका जन्म हुआ? उन्हें दिव्य अस्त्र किस तरह मिले? किस कारण से वे कुरुवंशियों की राजधानी में आये? सबसे बढ़कर अस्त्रविद्या के ज्ञाता उनके पुत्र अश्वत्थामा का जन्म किस तरह हुआ? इन प्रश्नों का विषय विस्तार के साथ मैं सुनना चाहता हूँ। कृपा करके कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, हरिद्वार के निकट ब्रह्मचारी महर्षि भरद्वाज का आश्रम
१० था। एक दिन वे अग्निहोत्र करने के लिए पहले गङ्गा में नहाने गये। गङ्गा-तट पर पहुँचकर उन्होंने देखा कि सौन्दर्य के मद से भरी, मन्दगामिनी, जवानी में चूर घृताची अप्सरा नहा करके जल से बाहर निकल रही है। किनारे पर हवा लगने से उसके शरीर पर से कपड़ा हट गया। उसके रूप-सौन्दर्य को देखकर कामवश ऋषि का चित्त चलायमान हो गया। अत्यन्त काम के वेग से मुनि का वीर्य स्खलित हो गया। उन्होंने जल्दी से द्रोण-कलश नाम के यज्ञ-पात्र में उस वीर्य को उठाकर रख दिया। बुद्धिमान् भरद्वाज के उसी द्रोण में रक्खे हुए वीर्य से द्रोणाचार्य का जन्म हुआ। भरद्वाज के पुत्र द्रोण ने थोड़े ही दिनों में सब वेद और वेदाङ्ग पढ़ लिये। अस्त्रविद्या के जाननेवालों में श्रेष्ठ महर्षि भरद्वाज पहले अपने शिष्य अग्निवेश्य को आग्नेय अस्त्र दे चुके थे। [ वह अस्त्र भरद्वाज को काश्यप ऋषि से मिला था। ] अग्निवेश्य ने गुरु की आज्ञा से वह अस्त्र गुरुपुत्र द्रोण को दे दिया।

भरद्वाज के मित्र एक पृषत नाम के राजा थे। जिस समय भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य का जन्म हुआ उसी समय पृषत के भी द्रुपद नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृषत के पुत्र द्रुपद नित्य भरद्वाज के आश्रम में आकर द्रोणाचार्य के साथ खेलते और साथ ही [अग्निवेश्य से] धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करते थे। राजन्, महाराज पृषत का स्वर्गवास होने पर द्रुपद उत्तर-
२० पाञ्चाल देश के राजा हुए। महर्षि भरद्वाज का भी स्वर्गवास हो गया। पिता के आश्रम में ही रहकर द्रोण तप करने लगे। वेद-वेदाङ्ग के पूरे पण्डित द्रोण ने पिता की इच्छा के अनुसार सन्तान की इच्छा से शरद्वान् की कन्या कृपी के साथ ब्याह किया।

अग्निहोत्र, धर्म और इन्द्रिय-दमन में लगी हुई कृपी के गर्भ से द्रोण के अश्वत्थामा उत्पन्न हुए। अश्वत्थामा उत्पन्न होते ही इन्द्र के वाहन उच्चैःश्रवा का ऐसा शब्द करके रोने लगे। उस शब्द को सुनकर अन्तरिक्ष में स्थित अदृश्य देवताओं ने कहा—इस बालक का अश्व (घोड़े)

के समान स्थाम ( शब्द ) चारों ओर गूँज उठा, इसलिए इसका नाम "अश्वत्थामा" होगा। भरद्वाज-पुत्र द्रोण उस पुत्र को पाकर बहुत ही आनन्दित हुए। उसी आश्रम में रहकर वे फिर पहले की तरह धनुर्वेद का अभ्यास करने लगे।

महाराज, इसी बीच में द्रोण ने सुना कि अस्त्रज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ, शत्रुविनाशन, महात्मा ब्राह्मण, जमदग्नि-पुत्र, परशुराम ब्राह्मणों को अपना सर्वस्व दान कर रहे हैं। द्रोण ने परशुराम के धनुर्वेद-सम्बन्धी ज्ञान की श्रेष्ठता और दिव्य अस्त्रों की जानकारी का हाल पहले ही से सुन रक्खा था। उन्हें प्राप्त करने की इच्छा से द्रोणाचार्य अपने ब्रह्मचारी तपस्वी शिष्यों को साथ लेकर महेन्द्र पर्वत को गये। महेन्द्राचल पर पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मणों के वैरी क्षत्रियों का संहार करनेवाले, भृगु-नन्दन परशुराम को देखा। शिष्यों-सहित द्रोण ने परशुराम को प्रणाम किया और अपना नाम बताकर कहा कि मैं अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न महर्षि भरद्वाज का पुत्र हूँ। सब छोड़कर वन जाने के लिए तैयार परशुराम से द्रोणाचार्य ने कहा—भगवन्, मैं भरद्वाज का अयोनिज पुत्र द्रोण हूँ। आपके पास धन की इच्छा से आया हूँ।

क्षत्रिय-क्षयकारी महात्मा परशुराम ने द्रोण की प्रार्थना सुनकर कहा—द्विजवर, तुम्हारा मैं स्वागत करता हूँ। स्पष्ट करके कहो, क्या चाहते हो ?

अमित धन देने के लिए तैयार परशुराम से द्रोण ने कहा—ब्रह्मन्, मैं अनन्त धन चाहता हूँ। परशुराम ने कहा—मेरे पास सुवर्ण-रत्न आदि जो कुछ धन था वह तो मैं सब ब्राह्मणों को दे चुका। नगरों और पुरों से पूर्ण, समुद्र तक, यह पृथ्वीमण्डल भी कश्यप ऋषि को दान कर चुका हूँ। अब मेरे पास मेरे शरीर और बहुमूल्य अनेक अस्त्रों के सिवा कुछ नहीं है। जो तुम इनमें से कुछ चाहो तो बताओ। द्रोण, इनमें से जो माँगोगे वही मैं तुमको दूँगा।

द्रोण ने कहा—भार्गव ! प्रयोग, उपसंहार और रहस्य के साथ सब अस्त्र आप मुझे दे दें। परशुराम ने 'तथास्तु' कहकर उसी समय सब अस्त्र द्रोण को दे दिये। इस प्रकार परशुराम से अस्त्र पाकर प्रसन्नचित्त द्रोणाचार्य धन की इच्छा से अपने प्रिय मित्र द्रुपद के पास गये।

---

## एक सौ तेंतीस अध्याय

**द्रोण का द्रुपद के पास जाना, और अपमानित होकर हस्तिनापुर में भीष्म के पास आना**

वैशम्पायन ने कहा कि राजन्, प्रतापी भरद्वाज के पुत्र द्रोण ने द्रुपद के पास पहुँचकर प्रसन्नतापूर्वक कहा—नरनाथ, आपने मुझे पहचाना ? मैं आपका मित्र हूँ।

द्रोण के वचन सुनकर द्रुपद को क्रोध आ गया। वे द्रोण के मित्रता के दावे को न सह सके। ऐश्वर्य के गर्व से गर्वित द्रुपद की भौंहें टेढ़ी हो गईं, आँखें लाल हो आईं।

उन्होंने कहा—ब्राह्मण, तुम्हारी बुद्धि अभी कच्ची ही बनी है। तुममें कुछ भी समझदारी नहीं आई; नहीं तो इस तरह आकर तुम मुझे अपना मित्र न बतलाते। नासमझ ब्राह्मण, सुनो। अतुल विभवशाली राजा लोग ऐसे श्री-हीन दरिद्र लोगों के साथ कभी मित्रता नहीं कर सकते। इसके सिवा काल पाकर सब मिट जाता है; समय पाकर मित्रता भी नष्ट हो जाती है। पहले मैं भी तुम्हारी सी दशा में था, इसी से तुम्हारे साथ मेरी मित्रता हो गई थी। किन्तु हृदय में मित्रता का भाव कभी चिरस्थायी नहीं हो सकता। समय बीतने पर अवश्य ही वह नष्ट हो जाता है। समय अथवा क्रोध के कारण उसकी जड़ उखड़ जाती है। इसलिए अब तुम उस जीर्ण मित्रता का दम न भरो। उस मित्रता को एक बीती हुई बात समझो; वर्त्तमान समझकर वृथा वञ्चित न होओ। हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, पहले प्रयोजनवश तुम्हारे साथ मेरी मित्रता हो गई थी। महाशय, दरिद्र व्यक्ति धनी का, मूर्ख विद्वान् का और नपुंसक वीर का सखा नहीं हो सकता। फिर तुम इस समय पहले की मित्रता का दावा क्यों करते हो? जिनका धन और बल बराबरी का है, उन्हीं में परस्पर शत्रुता और मित्रता ( विवाह आदि ) हो सकती है। बुरी अवस्था में पड़ा हुआ मनुष्य
१० भाग्यवान् पुरुष के साथ मित्रता या शत्रुता नहीं रख सकता। श्रोत्रिय ही श्रोत्रिय का, रथी ही रथी का और राजा ही राजा का सखा हो सकता है; और नहीं। इसलिए पहले की मित्रता को तुम भूल जाओ।



वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, प्रतापी भरद्वाज के पुत्र द्रोण पाञ्चालराज द्रुपद के ये वचन सुनकर क्रोध से काँप उठे। थोड़ी देर तक सोचकर वे वहाँ से चल दिये और
१३ कुरुवंश की राजधानी हस्तिनापुर में पहुँचे।

# एक सौ चौंतीस अध्याय

द्रोण का अपने अद्भुत कामों से भीष्म को अपना परिचय देना

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, ब्राह्मण-श्रेष्ठ भरद्वाज-पुत्र द्रोण हस्तिनापुर में आकर गुप्त रूप से कृपाचार्य के घर रहने लगे। वहाँ जब कृपाचार्य बालकों को पढ़ा चुकते थे तब महा-प्रभावशाली द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा अस्त्र-विद्या की शिक्षा देते थे। इस प्रकार गुप्त रूप से द्रोणाचार्य वहाँ बहुत दिनों तक रहे, और कोई उन्हें पहचान न सका।

एक दिन युधिष्ठिर आदि सब बालक नगर से बाहर जाकर मैदान में गुल्ली-डण्डा खेलने लगे। बालकों की गुल्ली अचानक एक कुएँ में गिर पड़ी। सब कुमार उस ( जल-हीन ) कुएँ के पास आकर बड़ी तत्परता के साथ उस गुल्ली को निकालने लगे पर किसी तरह उसको निकालने का उपाय उन्हें न सूझ पड़ा। तब वे लज्जा से सिर झुकाकर आपस में एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। उस गुल्ली को निकालने के लिए सभी बहुत उत्कण्ठित हुए। इसी बीच में उन्होंने देखा, एक अग्निहोत्री ब्राह्मण नित्यकर्म कर वहीं थोड़ी दूर पर स्थित हैं। उनके दुर्बल शरीर में झुर्रियाँ पड़ी हुई हैं और रङ्ग काला है। उन महात्मा ब्राह्मण को देखते ही सब बालक उनके पास गये और उन्हें घेरकर खड़े हो गये। द्रोण ने यत्न निष्फल होने से उदास उन कुमारों को देखकर अपनी अस्त्रविद्या के बल का स्मरण करके मुसकाते हुए कहा—अहो, तुम्हारे क्षत्रिय-बल को और तुम्हारी अस्त्र-शिक्षा को धिक्कार है! तुम भरत-वंश में उत्पन्न होकर इस कुएँ से गुल्ली नहीं निकाल सकते! तुम मुझे भोजन दो, मैं तुम्हारी गुल्ली और अपनी यह अँगूठी अभी सींक से कुएँ के भीतर से निकाले देता हूँ। अब द्रोणाचार्य ने अपनी अँगूठी भी उस कुएँ के भीतर डाल दी।



यह देखकर युधिष्ठिर ने द्रोणाचार्य से कहा—कृपाचार्य की अनुमति लेकर आप सदा के लिए भोजन प्राप्त कर सकते हैं। यह सुनकर मुसकाते हुए द्रोण ने कहा—कुमारो, मैंने इस सींक में दिव्य अस्त्र अभिमन्त्रित कर दिया है। इस अस्त्र की शक्ति, जो और अस्त्रों में नहीं है, इस सींक में तुम देख पाओगे। मैं पहले एक सींक से इस गुल्ली

को बेधूँगा, फिर उस सींक में और सींक संयुक्त करूँगा। इसी तरह एक सींक में दूसरी सींक जोड़कर गुल्ली ऊपर निकाल लूँगा।

द्रोण ने जो कुछ कहा वही कर दिखाया। उनका यह कर्म देखने से सब कुमारों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे अत्यन्त आश्चर्य मानकर कुमारों ने द्रोण से कहा—ब्रह्मन्, इस अँगूठी को भी निकालिए।

तब महायशस्वी द्रोण ने धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया और उस बाण से अँगूठी को बेधकर ऊपर खींच लिया। अँगूठी-सहित वह बाण द्रोणाचार्य ने बालकों के हाथ में दे दिया। यह कर्म देखकर बालकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। राजपुत्रों ने कहा—ब्रह्मन्, ऐसी विद्या हमने और किसी अस्त्रविद्या-निपुण मे नहीं देखी। आप कोई अद्वितीय अस्त्रज्ञ हैं। हम आपको प्रणाम करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं? किसके पुत्र हैं? कहिए, हम आपको प्रसन्न करने के लिए आपकी क्या सेवा करें?

कुमारों के ये वचन सुनकर द्रोणाचार्य ने कहा—तुम लोग भीष्म के पास जाकर ठीक-ठीक मेरे रूप और गुणों का वर्णन करो। वे मुझे पहचान लेंगे। वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, तब सब बालकों ने भीष्म के पास जाकर सत्यवादी द्रोण के उस अद्भुत कर्म का वृत्तान्त कहा। सुनते ही भीष्म समझ गये कि वे महारथी द्रोणाचार्य हैं। भीष्म ने अपने मन में सोचा कि बस, वही इन बालकों को अस्त्रशिक्षा देने के योग्य श्रेष्ठ आचार्य हैं।

अस्त्रज्ञ-शिरोमणि भीष्म ने उसी समय द्रोण को लाने का निश्चय कर लिया। वे स्वयं जाकर उन्हें अपने घर ले आये। सादर सत्कार-पूजा करके भीष्म ने द्रोणाचार्य से हस्तिनापुर में आने का कारण पूछा। द्रोणाचार्य ने आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया। उन्होंने कहा—महाशय, मैं पहले अस्त्र-विद्या और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने के लिए महर्षि अग्निवेश के पास रहा। वहाँ ब्रह्मचारी, विनम्र, जटाधारी और गुरु की सेवा में लगे रहकर मैंने विद्या-शिक्षा में बहुत सा समय बिताया। उसी समय पाञ्चालराज के पुत्र महाबली यज्ञसेन (द्रुपद) भी उन्हीं गुरु के पास धनुर्विद्या सीखने गये और वहीं रहने लगे। वे उस समय वहाँ मेरे उपकारी और मित्र थे। मैं भी उन्हें बहुत प्यार करता था। मुझे प्रसन्न करने के लिए उस समय वे कहा करते थे—द्रोण, मैं अपने महानुभाव पिता का बहुत ही प्यारा पुत्र हूँ। राजा जब मुझे राज्य देंगे तब तुम भी मेरे साथ मौज करना। मैं सत्य की सौगन्द खाता हूँ, मेरा राज्यभोग, सम्पत्ति और सुख, सब तुम्हारे अधीन होगा। इसके उपरान्त जब द्रुपद अस्त्र-शिक्षा समाप्त करके गुरु-कुल से घर जाने लगे तब मैंने उचित सत्कार करके उनको बिदा किया। राजा द्रुपद की पूर्वोक्त प्रतिज्ञा स्मरण करके मैं मन में बहुत प्रसन्न रहता था। अन्त को पिता की, मरने से पहले की, आज्ञा के अनुसार पुत्र की इच्छा से मैंने असाधारण बुद्धिमती, व्रतचारिणी,

इन्द्रियों के दमन और अग्निहोत्र आदि धर्म-कर्म में श्रद्धा रखनेवाली कृपी के साथ ब्याह किया। कुछ दिनों बाद मेरे वीर्य से कृपी के बड़ा पराक्रमी, सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र अश्वत्थामा उत्पन्न हुआ। मेरे पिता भरद्वाज जैसे मुझे पाकर प्रसन्न हुए थे वैसे ही अश्वत्थामा को पाकर मैं प्रसन्न हुआ। बाल्यावस्था में मेरा पुत्र अश्वत्थामा गोधन से धनी ऋषिकुमारों को दूध पीते देख-कर दूध के लिए मचल गया और करुण स्वर से रोने लगा। उसका रोना सुनकर मेरी आँखों के आगे अँधेरा सा छा गया। यज्ञ करनेवाले अग्निहोत्री ब्राह्मण के पास यदि अधिक गायें न हों तो उससे गाय माँगने से उसके धर्म की हानि हो जायगी, यह सोचकर किसी अधिक गायें रखनेवाले विशुद्ध ब्राह्मण से धर्मानुकूल गोदान माँगने की इच्छा से मैं आसपास बहुत दूर तक घूमा। उस प्रदेश के एक छोर से दूसरे छोर तक मैं कई बार घूमा, परन्तु कहीं इस तरह दुधार गाय न मिली। मैंने बालक को बहलाने के लिए पिसे हुए चावल पानी में घोलकर वह दूध ४०
सा सफ़ेद पानी उसे पीने के लिए दिया। अज्ञान बालक उसे पीता हुआ "मैंने भी दूध पिया" कहकर आनन्द से नाचने लगा। सब ऋषि-कुमार मेरी दशा को जानते थे चावलों का पानी पीकर खुशी से उछल रहे अश्वत्थामा को देखकर वे हँसने लगे। यह देखकर मैं बहुत ही दुःखित हुआ। आसपास रहनेवाले ब्राह्मण आपस में कहने लगे—निर्धन द्रोण को धिक्कार है! वे धनोपार्जन नहीं कर सकते। उनका बेटा दूध पीने को नहीं पाता। वह चावलों का पानी पीकर, उसे ही दूध समझकर, आनन्द से नाच रहा है। उन लोगों की ये बातें सुनकर मेरा धैर्य जाता रहा किन्तु फिर मैं आप ही अपने को धिक्कार देता हुआ मन में कहने लगा—इस प्रकार परोसियों से परित्यक्त और निन्दित होकर यहाँ इस तरह रहना अच्छा है। मैं धन के लिए पराई सेवा करने की नीच वृत्ति नहीं ग्रहण कर सकता। भीष्मजी, पहले मैंने यों सोचा, परन्तु फिर इस विचार पर दृढ़ न रह सका। अपने प्रिय सखा द्रुपद के राजा होने का समाचार पाकर मैं अपनी स्त्री और पुत्र को लिये हुए प्रसन्नता-पूर्वक उनके पास चला। राह में द्रुपद की पूर्व-प्रतिज्ञा



को स्मरण करता हुआ मैं पाञ्चाल देश की राजधानी में पहुँचा। मुझे द्रुपद की प्रतिज्ञा पर विश्वास था। इसी से मैंने बेधड़क उनके पास जाकर कहा—नर-श्रेष्ठ, तुम मेरे मित्र हो;
५० इसी से मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अब मैं उनसे गले मिलने के लिए तैयार हुआ। यह देखकर द्रुपद ने साधारण पुरुष की तरह मुझे हँसकर गर्व के साथ कहा—ब्राह्मण, तुम्हारी बुद्धि अभी तक कच्ची बनी है। लौकिक व्यवहार की समझदारी तुम में अभी तक नहीं आई। तुमने अचानक आकर बेधड़क कह दिया कि मैं तुम्हारा सखा हूँ। संसार में जो-जो पदार्थ परस्पर मिलते हैं वे सभी जीर्ण होकर किसी न किसी समय अलग हो जाते हैं। पहले जो मैंने तुम्हारे साथ मित्रता की थी उसका कारण यह था कि उस समय मेरी दशा तुम्हारे ही समान थी। देखो, जो श्रोत्रिय नहीं है वह श्रोत्रिय का और जो योद्धा नहीं है वह योद्धा का सखा नहीं हो सकता। जो समान हैं उन्हीं में मित्रता हो सकती है, अच्छी और बुरी दशावालों में परस्पर मित्रता नहीं हो सकती। इसके सिवा संसार में किसी की मित्रता सदा नहीं बनी रहती। काम-वश या क्रोध-वश वह मित्रता अवश्य नष्ट हो जाती है। इसलिए इस समय यह तुम्हारा पुरानी मित्रता का दावा करना व्यर्थ है। ब्रह्मन्, इसमें सन्देह नहीं कि मैंने पहले जो तुम्हारे साथ मित्रता की थी उसका विशेष कारण था। नासमझ ब्राह्मण, विचार-कर देखो। निर्धन पुरुष धनी का, मूर्ख पुरुष विद्वान् का और कायर पुरुष वीर का सखा नहीं हो सकता। फिर तुम पहले की मित्रता का दम क्यों भर रहे हो? तुम नहीं सोचते कि सम्पत्तिशाली राजा लोग तुम ऐसे श्री-हीन दरिद्रों के साथ क्यों मित्रता करने लगे? राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, और कोई नहीं। यह सोचकर पहले की मित्रता का विचार छोड़ दो। तुम कहते हो, मैंने पहले तुमसे राज्य देने की प्रतिज्ञा की थी; पर मुझे तो याद नहीं। हाँ, एक दिन मैं तुमको अच्छी तरह इच्छा-भोजन करा सकता हूँ। भीष्मजी, द्रुपद के ये वाक्य
६० सुनकर मैं अपनी स्त्री, बालक और शिष्यों के साथ वहाँ से चल दिया। वहाँ से चलते समय मैंने एक प्रतिज्ञा की है। उस प्रतिज्ञा को मैं बहुत ही जल्द पूरी करूँगा। द्रुपद के व्यवहार से मुझे बड़ा क्रोध हुआ। इसी कारण, आश्रय की इच्छा से, गुणी शिष्यों के साथ मैं इस कुरुवंश की राजधानी में आया हूँ। तुम क्या चाहते हो? मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, प्रतापी द्रोण के ये वचन सुनकर भीष्म ने कहा—ब्रह्मन्, आप धनुष से डोरी उतारिए। यहाँ रहकर मेरे पोतों को धनुर्वेद और दिव्य अस्त्रों की शिक्षा दीजिए। प्रसन्नता-पूर्वक पूजित होकर यथेष्ट भोग भोगिए। कौरवों का धन, राज्य, वैभव, सब आप ही का है। आप ही सबके राजा होकर रहें; हम सभी आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। आपकी जो कुछ इच्छा हो उसे पूरी ही समझिए। आप कृपा करके हमारे
६६ यहाँ आये, इसे हम अपना अहोभाग्य समझते हैं। आपने बड़ी कृपा की।

# एक सौ पैंतीस अध्याय

द्रोण का कौरवों और पाण्डवों को अस्त्रविद्या की शिक्षा देना। एकलव्य की कथा। शिष्य-परीक्षा

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महातेजस्वी द्रोण भीष्म की पूजा स्वीकार करके कुरुवंशियों के यहाँ रहने लगे। भीष्म ने बहुत सा धन दक्षिणा में देकर अपने पोतों को उनका शिष्य कर दिया। भीष्म ने धन-अन्न से भरा एक सुन्दर भवन द्रोण को दिया। महाबली द्रोणाचार्य, धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को शिष्य करके, आनन्द के साथ धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। एक दिन सबको एकान्त में बुलाकर द्रोण ने कहा—मेरे मन में एक इच्छा है; तुम प्रतिज्ञा करो कि अस्त्रशिक्षा समाप्त होने पर तुम वह मेरी इच्छा पूरी करोगे।

महाराज, द्रोण के ये वचन सुनकर सब कुरुवंश के कुमार चुप रहे। सबसे पहले अर्जुन ने उत्साह के साथ गुरु की इच्छा पूरी करने की प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य ने अत्यन्त सन्तुष्ट होकर प्यार से अर्जुन को हृदय से लगा लिया। वे बारम्बार उनका मस्तक सूँघने लगे। आनन्द के मारे गुरु की आँखों से आँसू बहने लगे।

अब महात्मा द्रोणाचार्यजी अपने शिष्यों को अनेक प्रकार के दिव्य और लौकिक अस्त्रों की शिक्षा देने लगे। अनेक देशों के राजकुमार और अन्यान्य असंख्य राजा द्रोण से अस्त्र-विद्या सीखने के लिए आने लगे। वृष्णि और अन्धकवंश के यादव भी द्रोणाचार्य से युद्धविद्या १०
सीखने आये। अत्यन्त मानी, अर्जुन से लागडाँट रखनेवाले, सूतपुत्र के नाम से प्रसिद्ध, दुर्योधन का आश्रय पाकर पाण्डवों को कुछ न समझनेवाले कर्ण भी द्रोण से अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने लगे। अर्जुन को अस्त्रविद्या में विशेष रुचि थी और वे हर घड़ी गुरु की सेवा में रहते थे। इस कारण सब शिष्यों के बीच शिक्षा, भुजाओं के बल और उद्योग आदि में अर्जुन ही श्रेष्ठ निकले। अस्त्रविद्या में वे द्रोण के तुल्य हो गये। गुरु द्रोणाचार्य सभी शिष्यों को समान रूप से अस्त्र-प्रयोग, फुर्ती और अस्त्र चलाने की सफ़ाई सिखाते थे किन्तु सब शिष्यों में अर्जुन ही सब बातों में अच्छे हुए। यह देखकर द्रोण ने सोचा कि युद्ध-विद्या के गूढ़ रहस्यों का उपदेश देने के योग्य पात्र अर्जुन के सिवा और कोई नहीं है।

द्रोणाचार्य इसी तरह सब कुमारों को धनुर्वेद की शिक्षा देने लगे। वे नित्य अन्य शिष्यों को एक-एक कमण्डलु और अपने पुत्र अश्वत्थामा को एक कलश देकर जल लाने के लिए भेजते थे। कलश का मुँह कमण्डलु से बड़ा होने के कारण अश्वत्थामा सबसे पहले जल लेकर आ जाते थे। अन्य शिष्य देर में आते थे। उसी अवकाश में द्रोणाचार्य अपने पुत्र को अस्त्रों के श्रेष्ठ प्रयोग बतला देते थे। अर्जुन अपनी बुद्धि से शीघ्र ही इस रहस्य को जान गये। वे

वाहण अस्त्र से चटपट कमण्डलु भरकर गुरुपुत्र के साथ ही लौट आने लगे। इसी कारण अस्त्रविद्या जाननेवालों में श्रेष्ठ मेधावी अर्जुन विशेष-विशेष अस्त्रों की शिक्षा में गुरुपुत्र से किसी अंश में हीन नहीं हुए। वे बड़े यत्न के साथ मन लगाकर गुरु की सेवा करते हुए अस्त्रविद्या का अभ्यास करते थे; इसी कारण गुरु द्रोणाचार्य उन पर बड़ी कृपा रखने लगे। अर्जुन अपने गुणों के कारण गुरु को सबसे बढ़कर प्यारे हो गये। उनको बाणशिक्षा और अस्त्रशिक्षा में सब समय तत्पर देख द्रोण ने रसोइये को एकान्त में बुलाकर कह दिया—तुम अर्जुन को कभी अँधेरे मे भोजन न देना। और, अर्जुन से यह भी न कहना कि गुरुजी ने मुझे यह आज्ञा दी है।

एक दिन अर्जुन भोजन कर रहे थे कि हवा का झोंका लगने से दिया बुझ गया। अर्जुन अँधेरे में ही खाने लगे। अभ्यास के कारण अर्जुन का हाथ ठीक मुँह के पास जाता था। अर्जुन ने समझ लिया कि यह अभ्यास की बात है। इसी तरह मैं अँधेरे में अस्त्रविद्या और बाण चलाने का भी अभ्यास कर सकता हूँ। बस अर्जुन रात को भी धनुष पर बाण चढ़ाकर निशानेबाज़ी का अभ्यास करने लगे। द्रोण ने रात को धनुष की डोरी का टङ्कार सुना। वे उठकर अर्जुन के पास आये। प्रसन्न होकर उन्होंने अर्जुन को गले लगा लिया और कहा—मैं तुमको ऐसा बनाने की विशेष चेष्टा करूँगा कि तुम्हारे समान धनुर्विद्या को जाननेवाला इस संसार में दूसरा न हो। यह मैं तुमसे सत्य कहता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—अब द्रोणाचार्यजी सब कुमारों को हाथी, घोड़े, रथ और पृथ्वी पर का युद्ध, गदायुद्ध, तलवार चलाना, तोमर-प्रास-शक्ति आदि शस्त्र चलाना, सङ्कीर्ण-युद्ध आदि सिखाने लगे। किन्तु वे अर्जुन को हर एक बात विशेष रूप से मन लगाकर बार-बार बताते थे। आचार्य के ऐसे असाधारण शिक्षा-कौशल की बात सुनकर धनुर्वेद सीखने के लिए दूर-दूर से राजा और राजकुमार उनके पास आने लगे।

कुछ दिनों बाद एक दिन हिरण्यधनु नाम के निषाद-पति का पुत्र एकलव्य अस्त्रशिक्षा प्राप्त करने आचार्य के पास आया। वह निषाद था। इससे, और यह सोचकर कि यह राजकुमारों से बढ़ न जाय, द्रोण ने उसे शिष्य करना स्वीकार नहीं किया। एकलव्य द्रोण के चरणों में माथा नवाकर प्रणाम करके लौट गया। वन में जाकर उसने मिट्टी की द्रोणाचार्य की मूर्त्ति बनाकर सामने रख ली और उसी मूर्त्ति को आचार्य समझकर उसकी सेवा करता हुआ वह उसी के आगे बाण चलाने का अभ्यास करने लगा। श्रद्धा और नियम के साथ मन लगाकर अभ्यास करने से बाण चलाने में और अस्त्रों के प्रयोग में वह निपुण हो गया; बाण निकालने, चढ़ाने और चलाने में वह बड़ा ही फुर्तीला हो गया।

एक दिन धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्र, द्रोणाचार्य से आज्ञा लेकर, रथों पर चढ़कर वन में शिकार खेलने गये। राजकुमारों का सामान और कुत्ता लिये हुए एक अनुचर उस वन में इधर-

उधर टहल रहा था। राजकुमार भी शिकार की ताक में घूम रहे थे। वह कुत्ता घूमता हुआ उधर निकल गया जहाँ एकलव्य बाण चलाने का अभ्यास कर रहा था। काली मृगछाला और जटा धारण किये काले कुरूप धूलि-धूसरित एकलव्य को देखकर वह कुत्ता भूकने लगा। एक-
लव्य ने खीझकर बड़ी फुर्ती से सात बाण मारकर उस कुत्ते का मुँह भर दिया। ऐसा जान ४०
पड़ा, मानो एक साथ ही सातों बाण उस कुत्ते के मुँह में घुस गये हों। कुत्ता व्याकुल होकर



भागता हुआ पाण्डवों के पास आया। उसकी यह दशा देखकर पाण्डवों को बड़ा अचरज हुआ। उस व्यक्ति के बाण चलाने की फुर्ती और शब्दवेध की सब लोग बड़ाई करने लगे। यह बात अपने में न देख-कर सब राजकुमार बहुत ही लज्जित हुए। तब सब मिलकर उस बाण चलानेवाले को खोजने लगे। घूमते-घूमते एक जगह पर उन्होंने देखा, एक पुरुष खड़ा हुआ बराबर बाण चला रहा है। उस समय एकलव्य का रूप ऐसा विकृत हो रहा था कि किसी ने उसे नहीं पहचाना। राज-कुमारों ने एकलव्य से पूछा—तुम कौन हो? किसके लड़के हो? एकलव्य ने कहा—हे वीरो, मैं हिरण्यधनु नाम के निषाद-राज का बेटा और द्रोणाचार्य का शिष्य हूँ। मैंने धनुर्वेद सीखने में बड़ा परिश्रम किया है। [ तब बालकों ने उसे अच्छी तरह पहचान लिया। ] वहाँ से आकर कुमारों ने द्रोणाचार्य से सब हाल कहा। राजन्, कुन्ती के पुत्र अर्जुन ने एकलव्य की बात याद करके एकान्त में आचार्य से जाकर कहा—गुरुजी, आपने प्रसन्न होकर, मुझे गले से लगाकर कहा था कि आपका कोई भी शिष्य धनुर्विद्या में मुझसे श्रेष्ठ न होगा। फिर आपका शिष्य एकलव्य मुझसे और सारे संसार से बढ़कर बाणविद्या में निपुण क्यों है?

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, थोड़ी देर तक एकलव्य के विषय में सोचकर अर्जुन को साथ लेकर द्रोणाचार्य उसी वन में गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा, जटा-बल्कल पहने ५०
एकलव्य लगातार बाण चला रहा है। उसके शरीर पर निरा मैल जम गया है, पर उधर उसका ध्यान नहीं है। दूर से आचार्य को आते देखकर एकलव्य ने पास आकर दण्डवत् की। सादर प्रणाम और विधिपूर्वक पूजा करके उसने कहा—यह आपका शिष्य सेवा में उपस्थित है;

क्या आज्ञा है ? एकलव्य अब हाथ जोड़कर आगे खड़ा रहा। द्रोण ने कहा—यदि सचमुच तुम मेरे शिष्य हो तो मुझे गुरु-दक्षिणा दो। एकलव्य ने खुश होकर कहा—गुरुजी, कहिए, क्या दूँ ? आप गुरु हैं, इसलिए ऐसी कोई चीज़ नहीं जो आपको न दी जा सके।

महाराज, द्रोणाचार्य ने कहा—एकलव्य, मैं गुरु-दक्षिणा में तुम्हारे दाहने हाथ का अँगूठा माँगता हूँ। द्रोण के ये दारुण वचन सुनकर सत्यवादी एकलव्य ने, अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार, प्रसन्नतापूर्वक उत्साह से दाहने हाथ का अँगूठा काटकर गुरु को दे दिया। उसने फिर केवल उँगलियों के बल बाण को धनुष पर चढ़ाकर खींचा और चलाया भी, परन्तु वह पहले की सफ़ाई और फुर्ती नहीं रही। यह देखकर अर्जुन की चिन्ता दूर हुई; वे बहुत प्रसन्न हुए। "पृथ्वी पर तुमसे बढ़कर धनुर्द्धर और कोई न होगा," यह जो प्रतिज्ञा द्रोण ने अर्जुन से की थी, वह सत्य बनी रही।

परस्पर लागडाँट रखनेवाले भीमसेन और दुर्योधन, ये दोनों द्रोणाचार्य के शिष्य गदा-युद्ध की शिक्षा में श्रेष्ठ हुए। अस्त्र-विद्या की गुप्त बातों के जानने में अश्वत्थामा सबसे बढ़कर हुए। नकुल और सहदेव तलवार चलाने में सबसे बढ़कर हुए। रथ के युद्ध में युधिष्ठिर सबसे सिरे रहे। किन्तु अर्जुन सभी बातों में सबसे श्रेष्ठ थे। अर्जुन में बुद्धि, एकाग्रता, बल और उत्साह सभी बातें थीं। सब अस्त्र उन्हें मालूम थे। गुरु की सेवा भी अर्जुन सबसे बढ़कर करते थे, इसी कारण अर्जुन सभी बातों में सबसे बढ़कर हुए। वे पृथ्वी पर सर्वत्र अतिरथी कहलाने लगे। द्रोणाचार्य सब शिष्यों को समान भाव से धनुर्वेद की शिक्षा देते थे, तथापि वीर्यशाली अर्जुन अपनी स्थिर बुद्धि के प्रभाव से सब कुमारों से बढ़कर हुए। भीमसेन बल में सबसे अधिक थे, और अर्जुन धनुर्विद्या में सबसे बढ़कर थे। इस कारण धृतराष्ट्र के दुरात्मा पुत्र उन्हें देख न सकते थे।



अब अपने शिष्यों की शिक्षा समाप्त समझकर द्रोणाचार्य ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। उन्होंने कारीगर से एक नक़ली गिद्ध बनवाकर एक वृक्ष पर, कुमारों से छिपाकर, रख दिया। उसी को निशाना बनाया। फिर सब कुमारों को

६०

बुलाकर वही गिद्ध का निशाना दिखाकर द्रोणाचार्य ने उनसे कहा—तुम लोग शीघ्र अपने-अपने धनुष लेकर उन पर बाण चढ़ाकर खड़े हो जाओ। जब हम कहें तब तुमको इस गिद्ध के सिर का निशाना उड़ाना होगा। एक-एक करके, जिससे मैं कहूँ वही, निशाने पर बाण चलावे। ७०

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, अब द्रोण ने सबसे पहले युधिष्ठिर से कहा—कुमार, धनुष पर बाण चढ़ाओ। मेरे कहने पर उसे छोड़ना। शत्रु-दमन युधिष्ठिर ने गुरु की आज्ञा से धनुष पर बाण चढ़ाया। तब द्रोण ने पूछा—राजकुमार, इस वृक्ष की शाखा पर एक गिद्ध बैठा हुआ है; उसे देखते हो? युधिष्ठिर ने कहा—हाँ आचार्य, मैं उस गिद्ध को देख रहा हूँ। द्रोण ने फिर उनसे पूछा—इस वृक्ष को, मुझे और अपने भाइयों को भी देख रहे हो या नहीं? युधिष्ठिर ने कहा—हाँ, मैं इस वृक्ष को, आपको, अपने भाइयों को और गिद्ध को भी देख रहा हूँ। यह सुनकर द्रोणाचार्य ने असन्तुष्ट भाव से झिड़ककर युधिष्ठिर से कहा—हट जाओ; तुम इस निशाने को नहीं मार सकते। इसके बाद धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि को भी वहाँ पर खड़ा करके द्रोण ने वही प्रश्न किया। सबने वही उत्तर दिया जो युधिष्ठिर ने दिया था। भीमसेन, नकुल, सहदेव और अन्यान्य देशों के राजकुमारों को खड़ा करके द्रोण ने वही प्रश्न किया। सबने वही उत्तर दिया। सबको झिड़ककर आचार्य ने हटा दिया। ७९

## एक सौ छत्तीस अध्याय

### द्रोणाचार्य्य का अर्जुन को ब्रह्मास्त्र देना

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, तब मुसकाते हुए द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर उनसे कहा—इस निशाने की ओर देखो; अब तुमको यह निशाना मारना होगा। तुम अभी धनुष पर बाण चढ़ाकर मेरी आज्ञा की बाट जोहो। गुरु की आज्ञा से धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाने की ओर दृष्टि जमाकर अर्जुन प्रतीक्षा करने लगे। तब आचार्य ने उनसे पूछा—अर्जुन, इस वृक्ष को, गिद्ध को और मुझे देख रहे हो? अर्जुन ने कहा—गुरुवर, मुझे केवल गिद्ध ही दिखाई पड़ रहा है; और कुछ भी नहीं। प्रसन्न होकर आचार्य ने फिर पूछा—अर्जुन, तुम गिद्ध का कैसा आकार देख रहे हो? अर्जुन ने कहा—आचार्य, मैं केवल गिद्ध का सिर देख रहा हूँ; उसके सारे शरीर पर मेरी दृष्टि नहीं है।

अर्जुन का उत्तर सुनकर आनन्द के मारे द्रोण के शरीर में रोमाञ्च हो आया। तब उन्होंने आज्ञा दी कि बस, बाण चलाओ। गुरु की आज्ञा पाते ही अर्जुन ने बिना कुछ सोचे-

विचारे पैने क्षुरप्र बाण से उस गिद्ध का सिर काटकर गिरा दिया। अर्जुन को इस परीक्षा में सफलता प्राप्त करते देख आचार्य को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने अर्जुन को गले लगा लिया। अर्जुन के इस कार्य को देखकर आचार्य ने निश्चय कर लिया कि बस, अर्जुन ही युद्ध
१० में राजा द्रुपद को परास्त करेंगे।

कुछ समय बीतने पर एक दिन अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य शिष्यों को साथ लिये हुए गङ्गा में नहाने गये। ज्यों ही आचार्य जल के भीतर उतरे त्यों ही एक मगर ने आकर उनकी जाँघ ज़ोर से पकड़ ली। द्रोण ने आप छूटने के लिए समर्थ होकर भी अपने शिष्यों से कहा—तुम लोग तुरन्त इस मगर को मारकर मेरी रक्षा करो। द्रोण



की बात समाप्त भी न होने पाई कि अर्जुन ने अत्यन्त पैने पाँच बाण उस पानी में डूबे हुए मगर को मारे। और सब शिष्य हक्का-बक्का से होकर अपनी-अपनी जगह पर खड़े रहे। अर्जुन को इस काम में भी सफलता प्राप्त करते देख आचार्य को दृढ़ निश्चय हो गया कि अर्जुन ही उनके सब शिष्यों में श्रेष्ठ हैं। अर्जुन पर आचार्य बहुत ही प्रसन्न हुए।

अर्जुन के बाणों से टुकड़े-टुकड़े होकर वह मगर मर गया और आचार्य की जाँघ छूट गई। तब आचार्य ने प्रसन्न होकर महारथी महात्मा अर्जुन से कहा—हे वीर, प्रयोग और संहार के साथ यह अत्यन्त अनिवार्य ब्रह्मशिर नाम का दिव्य अस्त्र मैं तुमको देता हूँ। इसे ग्रहण करो। पर देखो, मनुष्यों के ऊपर कभी यह अस्त्र न चलाना; क्योंकि मनुष्यों का तेज थोड़ा होता है। इस अस्त्र में सारे जगत् को जला डालने की शक्ति है। मनुष्य-लोक में इस अस्त्र को

बहुत कम लोग जानते हैं। तुम सावधानी के साथ इस अस्त्र को धारण करना। इसके सिवा यह मैं तुमसे कहे देता हूँ कि यदि मनुष्य जाति के सिवा और कोई शत्रु तुम पर आक्रमण करे तो तुम उसे मारने के लिए इस अस्त्र का प्रयोग कर सकते हो।

अर्जुन ने 'जो आज्ञा' कहकर श्रद्धापूर्वक हाथ जोड़कर गुरु से वह अस्त्र ग्रहण किया। आचार्य ने उनसे कहा—अर्जुन, पृथ्वी पर तुम्हारे समान धनुर्विद्या का ज्ञाता और कोई न होगा। २२

---

## एक सौ सैंतीस अध्याय

भीष्म आदि के आगे सब कुमारों का अस्त्र शिक्षा का कौशल दिखलाना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों को अस्त्र-शिक्षा में निपुण हो चुके देखकर द्रोणाचार्य ने एक दिन कृपाचार्य, सोमदत्त, बुद्धिमान् बाह्लीक, भीष्म, व्यास, विदुर आदि के आगे राजा धृतराष्ट्र से कहा—राजन्, तुम्हारे लड़के अच्छी तरह धनुर्विद्या का अभ्यास कर चुके हैं। यदि तुम्हारी इच्छा और अनुमति हो तो वे राजसभा में आकर अपना-अपना कौशल दिखलावें।

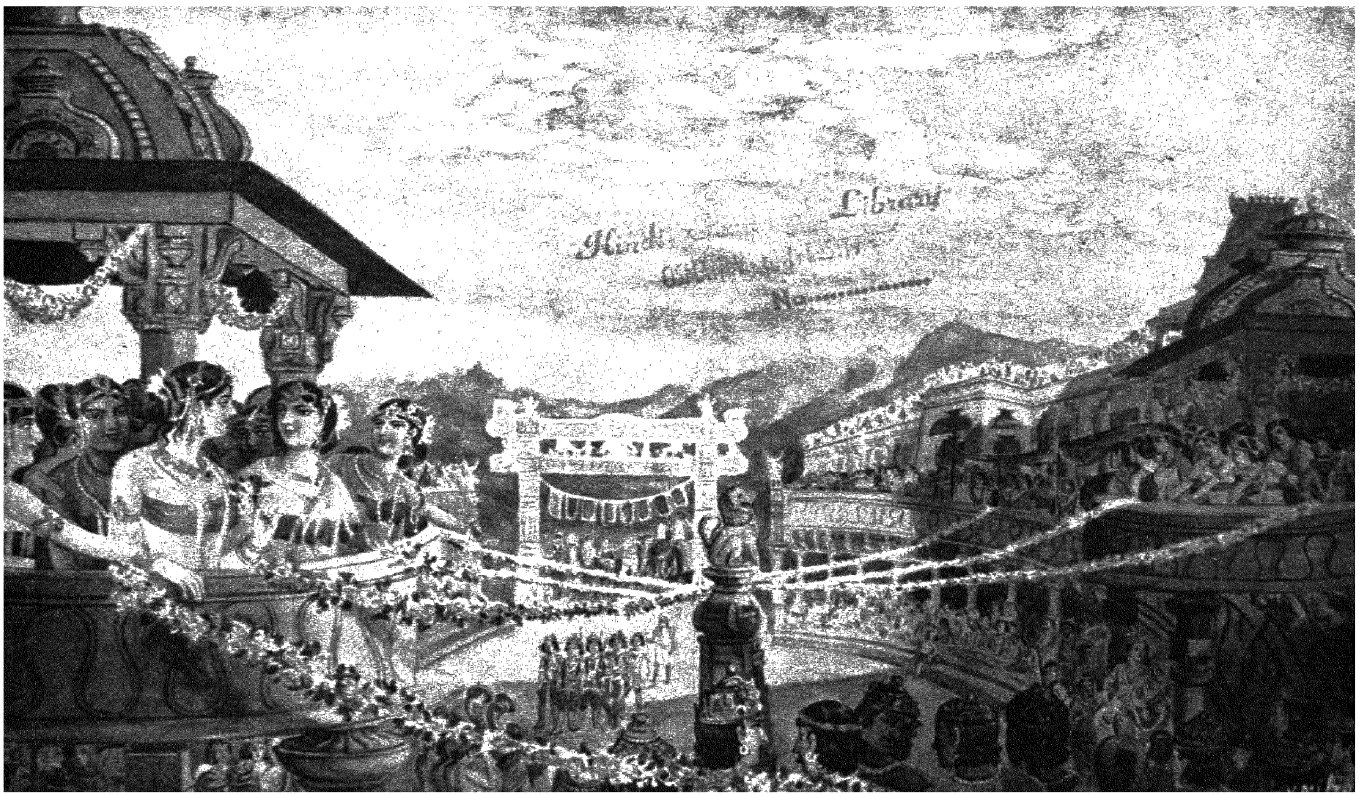
धृतराष्ट्र ने प्रसन्न होकर कहा—आचार्य, आपने मेरा बड़ा उपकार किया; बड़ा भारी काम किया। जिस समय, जिस जगह, जिस तरह अस्त्र-शिक्षा दिखाना उचित हो, सो आप ही ठीक कीजिए। जिनके आँखें हैं वे मेरे पुत्रों की अस्त्र-शिक्षा का कौशल देखेंगे। विदुर, आचार्य जो जिस तरह करने को कहें वह उसी तरह करो। हे धर्म-वत्सल, मेरी समझ में इससे बढ़कर सुख का काम और सुख का अवसर और नहीं होगा।

राजा की आज्ञा पाकर विदुरजी द्रोण के साथ चले। द्रोण ने रङ्गभूमि के लिए एक समतल भूमि देखकर उसे नापकर पसन्द किया। उस भूमि में घास और वृक्ष नहीं थे। आसपास जलाशय होने से वह स्थान बहुत ही सुहावना था। शुभ नक्षत्र से युक्त तिथि में अच्छे दिन गुरु ने भूमि-पूजा करके रङ्गभूमि की नींव डाली। इसके बाद उस भूमि में कारी- १०
गरों ने पहले सभामण्डप बनाया। फिर राजा-रानी आदि राज-परिवार के बैठने के लिए शास्त्रोक्त रीति से अस्त्र-शस्त्र-पूर्ण एक विस्तृत 'प्रेक्षागार' (बैठकर देखने का स्थान) बनाया गया। स्त्रियों के भी बैठने के लिए अलग प्रबन्ध किया गया। धनी पुरवासियों ने अपने लिए चारों ओर ऊँचे-ऊँचे मञ्च बनवाये, पालकियाँ सजवाईं। [ नगर में चारों ओर ढिंढोरा पिट गया कि अमुक तिथि को राजकुमारों की अस्त्र-शिक्षा देखने का उत्सव होगा। ]

उत्सव के दिन राजा धृतराष्ट्र मन्त्री आदि को साथ लेकर भीष्म और कृपाचार्य को आगे किये हुए उस मुक्ता-मणि-मण्डित, वैडूर्य-शोभित, सुवर्ण से अलङ्कृत, दिव्य प्रेक्षागार में पहुँचे। महाराज! गान्धारी, भाग्यशालिनी कुन्ती, और अन्य राज-परिवार की स्त्रियाँ शृङ्गार किये, अपनी अपनी दासियों को साथ लिये, सुमेरु के शिखर पर देवताओं की स्त्रियों के समान, उन ऊँचे मञ्चों पर चढ़ने लगीं। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों वर्ण के लोग कुमारों की अस्त्र-शिक्षा का उत्सव देखने की लालसा से नगर से निकलकर रङ्गभूमि की ओर चले। थोड़ी देर मे उस जगह पर दर्शकों का भारी जमाव हो गया। अनेक बाजे बज रहे थे; देखने के लिए उत्कण्ठित दर्शकों का शोर चारों ओर गूँज रहा था। उस भीड़ को देखकर जान पड़ता था कि महासागर उमड़ पड़ा है।

थोड़ी देर के बाद सफ़ेद कपड़े और सफ़ेद जनेऊ पहने हुए आचार्य अपने पुत्र के साथ उस रङ्गभूमि मे आये। उनके केश और दाढ़ी-मूँछें सफ़ेद थीं। वे सफ़ेद चन्दन लगाये और सफ़ेद ही फूलों की माला पहने हुए थे। ऐसा जान पड़ा कि मेघहीन आकाश में मङ्गल-सहित सूर्यनारायण प्रकट हुए। [ व्यासजी से अनुमति लेकर ] आचार्य ने ठीक समय पर ब्राह्मणों के द्वारा मन्त्रपाठ-पूर्वक स्वस्त्ययन कराया। पुण्याह-पाठ हो चुकने पर अस्त्र-शस्त्र लेकर नियुक्त व्यक्ति अखाड़े मे आकर खड़े हुए। वे महारथी कुमार उँगलियों मे अङ्गुलित्र पहने, कमर कसे, तरकस बाँधे और धनुष आदि शस्त्र लिये हुए थे। युधिष्ठिर आदि कुमार बड़े-छोटे के क्रम से एक-एक करके अपना-अपना करतब दिखाने लगे। दर्शकों मे से कुछ लोगों ने चोट लगने के डर से अपने सिर झुका लिये। कुछ लोग बेखटके अचरज के साथ मन लगाकर कुमारों के अद्भुत कामों को देखने लगे। वीर राजकुमार घोड़ों पर चढ़कर, उन्हें दौड़ाकर, अपने-अपने नाम से अङ्कित बाणों के द्वारा निशाना उड़ाने की फुर्ती दिखाने लगे। धनुष-बाण लिये अद्भुत कर्म कर रहे कुमारों के गन्धर्व-नगर-तुल्य विचित्र मण्डल को देखकर दर्शकों को बड़ा आश्चर्य हुआ। आश्चर्य के मारे आँखें फाड़-फाड़कर देख रहे दर्शक एकाएक चारों ओर से वाह-वाह कहकर चिल्ला उठे। धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्र धनुष के द्वारा अस्थिर लक्ष्यपात प्रभृति विचित्र कार्य करके फिर ढाल-तलवार लेकर रथ, हाथी, घोड़े आदि के ऊपर से शस्त्र-कौशल दिखाने लगे। उन्होंने खड्ग-युद्ध के पैंतरे दिखलाये। उनकी फुर्ती, पैंतरे, शोभा, स्थिरता, मुट्ठी की मज़बूती, तलवार चलाना और उसको ढाल पर रोकना देखकर सब दर्शक बहुत ही प्रसन्न हुए।

इसके बाद प्रसन्नचित्त, महाबली, महाबाहु भीमसेन और दुर्योधन, दोनों वीर कमर कसे गदा हाथ मे लिये अखाड़े में उतरे। दोनों पहाड़ के दो शिखरों के समान ऊँचे थे। हथिनी के लिए जैसे दो गजराज भिड़ जायें वैसे परस्पर स्पर्धा रखनेवाले दोनों वीर



आचार्य्य अपने पुत्र के साथ उस रङ्गभूमि में आये।—पृ० ३०४

भिड़कर गदायुद्ध का कौशल दिखाने लगे। दोनों दाहिनी-बाईं ओर चक्कर काटते हुए पैंतरे बदलने लगे। विदुर धृतराष्ट्र को और कुन्ती गान्धारी को कुमारों के कौशल का सब ३५
हाल बताती जाती थीं।

---

## एक सौ अड़तीस अध्याय

अर्जुन का अपना कौशल दिखाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महाबली भीमसेन और दुर्योधन जब अखाड़े में आकर गदायुद्ध का कौशल दिखाने लगे तब स्नेह और पक्षपात के कारण दर्शकों के दो दल हो गये। कुछ लोग 'जय कुरुराज दुर्योधन की' और कुछ लोग 'जय पाण्डुपुत्र भीमसेन की' कहकर चिल्लाने लगे। तब बुद्धिमान् आचार्य ने उमड़े हुए समुद्र के समान उस भीड़ का कोलाहल सुनकर अपने प्रिय पुत्र अश्वत्थामा से कहा—पुत्र, महापराक्रमी भीमसेन और दुर्योधन गदा-युद्ध का कौशल अच्छी तरह दिखा चुके। अब इनको रोक दो। बात बढ़ जाने से भीम और दुर्योधन के पक्षपाती दर्शक कहीं बिगड़ खड़े न हों।



महाराज! तब गुरुपुत्र अश्वत्थामा ने बीच में जाकर उन, समुद्र के दोनों किनारों से चली हुई प्रलय-काल की आँधी के समान, झपटकर आ रहे वीरों को रोक दिया। इसके बाद द्रोणाचार्य ने रङ्गभूमि के बीच में खड़े होकर, बाजे बजाना बन्द कराकर, मेघ के गरजने के समान गम्भीर स्वर में कहा—हे सभ्यगण, अब तुम लोग अर्जुन को देखो। शस्त्र-विद्या में निपुण, विष्णु-तुल्य, इन्द्र-पुत्र अर्जुन मुझे पुत्र से बढ़कर प्यारे हैं।

अब आचार्य की आज्ञा से स्वस्त्ययन के उपरान्त अर्जुन रङ्गभूमि में आये। सुवर्णमय कवच पहने, धनुष लिये, बाण-पूर्ण तरकस बाँधे, गोह के चमड़े के अङ्गुलित्र उँगलियों में पहने

हुए अर्जुन, सूर्य-प्रभा-इन्द्र-धनु-बिजली और सन्ध्याकाल की ललाई से विभूषित मेघखण्ड के समान, उस रङ्गभूमि में शोभायमान हुए। उन्हें देखकर सब दर्शक प्रसन्न हो उठे। चारों ओर शङ्ख, नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। दर्शक कहने लगे—यही श्रीमान् कुन्तीपुत्र मँझले पाण्डव हैं। ये इन्द्र के पुत्र कुरुवंश की रक्षा करनेवाले हैं। इनके समान अस्त्रविद्या में निपुण पुरुष इस संसार में दूसरा नहीं है। ये बड़े ही सुशील और धर्मात्मा हैं। दर्शकों की ये बातें सुनकर और पुत्र को रङ्गभूमि में देखकर कुन्ती का हृदय आनन्द के आंसुओं से भीग गया।

एकाएक दर्शकों का कोलाहल सुनकर प्रसन्नता-पूर्वक धृतराष्ट्र ने विदुर से पूछा—विदुर, दर्शक-मण्डली में यह समुद्र के उमड़ने का सा घोर कोलाहल—जो आकाश को विदीर्ण किये डालता है—क्यों सुनाई पड़ रहा है? विदुर ने कहा—महाराज, ये कुन्ती के गर्भ से उत्पन्न पाण्डुनन्दन अर्जुन कवच पहने हुए रङ्गभूमि में आकर खड़े हुए हैं। इसी से यह शब्द सुनाई पड़ रहा है। धृतराष्ट्र ने कहा—हे महामति विदुर, कुन्तीरूप यज्ञकाष्ठ से उत्पन्न इन तीन पाण्डुपुत्र-रूप अग्नियों से मैं धन्य हुआ; अनुगृहीत हुआ; सुरक्षित हुआ।

उत्कण्ठा और आनन्द से कोलाहल कर रहे दर्शक जब कुछ शान्त हुए—शोर-गुल कम हुआ—तब महाबाहु अर्जुन आचार्य के आगे अपना अस्त्र-विद्या का कौशल दिखाने लगे। पहले उन्होंने आग्नेय अस्त्र से आग पैदा की, फिर वारुण अस्त्र से जल उत्पन्न करके उस आग को बुझा दिया। इसी प्रकार वायव्य अस्त्र से हवा चलाकर पर्जन्यास्त्र से बादल प्रकट कर दिये। भौमास्त्र से पृथ्वी और पार्वतास्त्र से पर्वत प्रकट किये। अन्त को अन्तर्द्धान अस्त्र का प्रयोग करके आप छिप गये। इसके बाद लोगों ने देखा कि वे क्षण भर में बहुत लम्बे, पल भर में बहुत छोटे, दम भर में रथ के धुर ऊपर, क्षण भर में रथ के बीच में और क्षण भर में पृथ्वी के ऊपर अपना कौशल दिखा रहे हैं। गुरु के प्यारे शिष्य अर्जुन ने अब खूबसूरती और सफ़ाई के साथ सुकुमार (भरा घड़ा, मुर्ग़ी का अण्डा आदि) निशानों को उड़ाया और वे तनिक भी नहीं हिले। फिर घुँघची आदि के सूक्ष्म निशानों को उड़ाया। इसके बाद लोहपिण्ड आदि के भारी निशाने मारकर अपनी फुर्ती और होशियारी दिखाई। घूम रहे लोहे के बने सुअर के मुँह में एक-एक करके पाँच बाण मारे; किन्तु फुर्ती के कारण दर्शकों को मालूम पड़ा कि उन्होंने एक ही बाण चलाया। रस्सी में लटके हुए अस्थिर लक्ष्य पर और गाय के सींग के निशाने पर इक्कीस बाण चलाकर अर्जुन ने अपना करतब दिखाया। शस्त्रविद्या में निपुण अर्जुन ने फिर खड्गयुद्ध, धनुर्युद्ध और गदायुद्ध के अनेक पैंतरे और हाथ दिखलाये।

अर्जुन अपना सब शिक्षा-कौशल दिखा चुके। बाजों का शब्द भी धीमा हो चला। लोगों की भीड़ भी छटने लगी। इसी समय रङ्गभूमि के द्वार पर आनेवाले के माहात्म्य और बल की सूचना देनेवाला ख़म और ताल ठोकने का शब्द सुन पड़ा। जान पड़ा, जैसे दो बिजलियाँ आपस में टकरा रही हैं। उस शब्द को सुनकर उपस्थित लोग बहुत विस्मित होकर द्वार की ओर देखने लगे। वे आपस में तर्कना करने लगे कि क्या कोई पहाड़ टूट रहे हैं या पृथ्वी फट रही है अथवा आकाश में बादल गरज रहा है!



उस समय पाँचों पाण्डवों के बीच में द्रोणाचार्य की ऐसी शोभा हो रही थी जैसे पाँच तारावाले हस्त नक्षत्र से युक्त चन्द्रमा की होती है। अर्जुन की प्रशंसा सुनकर दुर्योधन से नहीं रहा गया। वह अश्वत्थामा और अपने सौ भाइयों के साथ उठकर झगड़ा करने के लिए तैयार हो गया। द्रोणाचार्य ने उसे रोका। शस्त्र ताने हुए सौ भाइयों के बीच गदा हाथ में लिये खड़ा हुआ दुर्योधन, देवासुर-युद्ध के समय, देवताओं के बीच खड़े हुए इन्द्र के समान शोभायमान हुआ। ३२

---

## एक सौ उन्तालीस अध्याय

कर्ण का प्रवेश, अपनी अस्त्र-शिक्षा का परिचय देना, और अङ्गदेश का राज्य पाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, दर्शकों ने आगे से हटकर राह दे दी और उस सुविस्तृत रङ्गभूमि के भीतर महाबली कर्ण ने बड़े अचरज के साथ प्रवेश किया। जान पड़ा, मानो कोई जीता-जागता पर्वत टहलता हुआ चला आ रहा है। उनके शरीर पर पैदायशी कवच था। जिन्हें पहने ही हुए कर्ण ने जन्म लिया था वे कुण्डल उनके मुखमण्डल को प्रकाशित कर रहे थे। कमर में बँधी हुई तलवार लटक रही थी। हाथ में धनुष था। यह पहले ही कहा जा चुका

है कि कुन्ती जब कुमारी थी तभी सूर्य के अंश से विशाल-नयन यशस्वी कर्ण को उन्होंने उत्पन्न किया था। वे सिंह के समान बली, बैल के समान वीर्यशाली और हाथी के समान पराक्रमी थे। उनका तेज सूर्य के समान, कान्ति चन्द्रमा के समान और द्युति अग्नि के समान थी। लम्बे डोल-डौलवाले कर्ण देखने में सोने के ताड़ के समान जान पड़ते थे। असंख्य गुणों से युक्त नौजवान कर्ण सिंह के समान रोबीले थे। वे रङ्गभूमि के भीतर आये। उन्होंने चारों ओर नज़र डालकर देखा, फिर द्रोणाचार्य और कृपाचार्य को साधारण भाव से प्रणाम किया। सभा में उपस्थित सब लोग स्थिरदृष्टि से कर्ण की ओर देखने लगे। सब लोग परस्पर पूछने लगे—यह वीर पुरुष कौन है? कर्ण का परिचय पाने के कौतूहल से सब लोग चञ्चल हो उठे।

तब बोलनेवालों में श्रेष्ठ सूर्य-पुत्र कर्ण ने मेघ के समान गम्भीर स्वर से अपने अज्ञात भाई इन्द्र पुत्र अर्जुन से कहा—अर्जुन, रङ्गभूमि में तुमने जो कुछ अद्भुत काम दिखाये हैं, उनको और भी विशेषता के साथ मैं इस दर्शकमण्डली के सामने कर दिखाऊँगा। तुम अपने शिक्षा-कौशल का गर्व न करना।

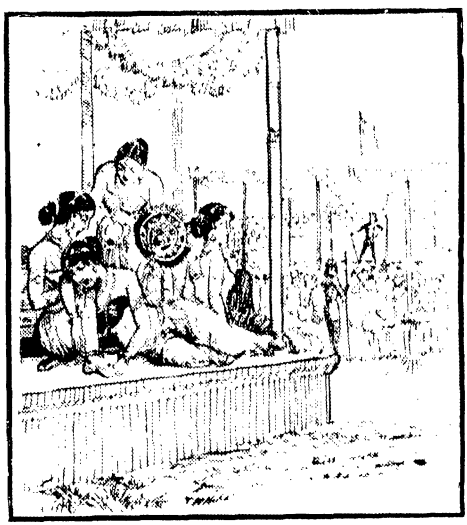
कर्ण की बात पूरी भी न होने पाई कि सभा के सब लोग देखने के लिए एकदम उठ
१० खड़े हुए जैसे किसी यन्त्र ( मेशीन ) के द्वारा वे चट से खड़े कर दिये गये हों। राजन्, दुर्योधन को कर्ण के इन वचनों से बड़ा आनन्द हुआ। अर्जुन का मुख क्रोध और लज्जा से लाल हो उठा। अब द्रोण की आज्ञा पाकर युद्धप्रिय कर्ण ने सफ़ाई के साथ वे सब काम कर दिखाये जो अर्जुन ने किये थे। तब भाइयों-सहित दुर्योधन ने उठकर कर्ण को गले से लगा लिया और प्रसन्न होकर कहा—महाबाहो, मैं तुम्हारा स्वागत करता हूँ। तुम्हारे आने को मैं अपना बड़ा भारी सौभाग्य समझता हूँ। यह कुरुवंश का राज्य तुम्हारा ही है। तुम यथेष्ट रूप से इसका उपभोग करो। मैं भी तुम्हारे वश में रहूँगा।

कर्ण ने कहा—आपने जो कहा वह हो चुका। मैं आपसे मित्रता करना चाहता हूँ। अर्जुन से द्वन्द्वयुद्ध करने की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ। दुर्योधन ने फिर कहा—मेरे साथ राज्य का सुख भोगो। मित्रों का प्रिय करते हुए दुष्ट शत्रुओं के सिर पर पैर रखकर मेरे पास रहो।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, तब अर्जुन ने अपने को अपमानित समझकर दुर्योधन आदि सौ भाई कौरवों के बीच में पर्वत के समान स्थित कर्ण से कहा—कर्ण, जो लोग बिना बुलाये आते हैं और बिना बुलाये आकर बोलने लगते हैं उन्हें जो लोक मिलते हैं उन्हीं लोकों में तुम मेरे हाथ से मरकर जाओगे। कर्ण ने कहा—अर्जुन, यह रङ्गभूमि और यह उत्सव सर्वसाधारण लोगों के लिए है; केवल तुम्हारे ही लिए नहीं है। राजा लोग बल को ही श्रेष्ठ समझते हैं। क्षत्रियधर्म बल का ही अनुगामी है। दुर्बल लोगों की तरह वचनों के द्वारा

आक्षेप करने से क्या लाभ है ? बाणों से बातचीत करो। आचार्य के आगे अभी मैं बाणों से तुम्हारा सिर काटकर पृथ्वी पर गिराये देता हूँ। २०

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! अब द्रोण की आज्ञा पाकर, भाइयों के गले लगकर, महाबली अर्जुन द्वन्द्वयुद्ध के लिए कर्ण के सामने आये। इधर लड़ने के लिए तैयार कर्ण को दुर्योधन ने और उसके भाइयों ने गले से लगाया। धनुष-बाण लिये हुए कर्ण युद्ध के आरम्भ की राह देखने लगे। इसी समय एकाएक आकाश में बादल घिर आये, इन्द्र-धनुष देख पड़ा, बिजली चमकने लगी। उड़ रहे सफ़ेद बगुलों की क़तारें हँसी की रेखा के समान आकाश-मण्डल में देख पड़ीं। स्नेह के मारे अपने पुत्र का युद्ध देखने के लिए इन्द्र को आये देखकर सूर्य भी वहाँ से बादलों को हटाकर अपने पुत्र का युद्ध देखने लगे। कर्ण के ऊपर सूर्य का घाम छा गया, और अर्जुन के ऊपर बादलों की छाया आ गई। धृतराष्ट्र के पुत्र कर्ण की ओर खड़े हुए। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और भीष्म पितामह अर्जुन की ओर खड़े हुए। दर्शक-मण्डली के दो भाग हो गये। देखनेवाली स्त्रियों के भी दो दल हो गये। कुन्ती का बड़ा बुरा हाल हुआ। कर्ण और अर्जुन दोनों ही उनके पुत्र थे। उनके परस्पर युद्ध करने की ख़बर से उनको चक्कर आ गया। धर्मात्मा विदुर ने दासियों की सहायता से चन्दन का पानी छिड़कवाकर उन्हें सचेत किया। चेत होने पर कवच पहने युद्ध के लिए उद्यत दोनों पुत्रों को देखकर कुन्ती बहुत घबराईं, पर कुछ कर न सकीं—उन्हें कोई उपाय न सूझा।



दोनों वीरों को धनुष तानते देखकर सर्वधर्मज्ञ और द्वन्द्वयुद्ध की नीति में निपुण कृपाचार्य ने कहा—देखो, ये अर्जुन कुरुवंश में उत्पन्न महाराज पाण्डु के पुत्र हैं। कुन्ती ३० के तीसरे गर्भ से इनका जन्म हुआ है। ये तुमसे युद्ध करने को तैयार हैं। इसलिए हे वीरवर, तुम भी अपनी माता और पिता का नाम बताओ। जिस कुल को तुमने अलङ्कृत किया है उसका उल्लेख करना भी आवश्यक है। उसे सुनकर अर्जुन तुमसे लड़ने या न लड़ने का निश्चय करेंगे। क्योंकि राजपुत्र लोग अज्ञात-कुल-शील पुरुष से या नीच कुल में उत्पन्न पुरुष से द्वन्द्वयुद्ध नहीं करते।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कृपाचार्य के यों पूछने पर लज्जा से कर्ण ने सिर झुका लिया। उनका मुख वर्षाकाल की जलधारा के मारे कमल के समान श्री-हीन देख पड़ने लगा। यह देखकर दुर्योधन कहने लगा—आचार्य! राजवंश में या अच्छे कुल में उत्पन्न पुरुष, वीर पुरुष और सेनापति, ये तीनों राजा हो सकते हैं। शास्त्र में यह बात स्पष्ट रूप से लिखी हुई है। यदि अर्जुन राजा के सिवा दूसरे से युद्ध करना नहीं चाहते तो मैं अभी अङ्गदेश का राज्य देकर कर्ण को राजा बनाये देता हूँ।

महाराज, उसी समय बलशाली महारथी श्रीमान् कर्ण को स्वर्ण-सिंहासन पर बिठाकर, मन्त्रज्ञ ब्राह्मणों के द्वारा सुवर्ण-कलशों के जल से अभिषेक कराकर, दुर्योधन ने अङ्गदेश का राजा बना दिया। कर्ण के ऊपर छत्र लग गया और चँवर डुलाये जाने लगे। चारों ओर लोग कर्ण का जयजयकार करने लगे। तब कर्ण ने दुर्योधन से कहा—राजन, आपने मुझे राजा बनाया है, इसके बदले में आप मुझसे क्या चाहते हैं? आप जो कहें वही, आपके प्रिय के लिए, करने को मैं तैयार हूँ। दुर्योधन ने कहा—मैं तुम्हारे साथ अत्यन्त गाढ़ी मित्रता चाहता हूँ। कर्ण ने दुर्योधन की यह प्रार्थना आदर और आनन्द के साथ स्वीकार कर ली।
४१ प्रसन्नतापूर्वक कर्ण और दुर्योधन दोनों एक दूसरे के गले से लग गये।

---

## एक सौ चालीस अध्याय

रङ्गभूमि में अधिरथ का आना और अस्त्र-परीक्षा के उत्सव की समाप्ति

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज! इसी बीच में सारथी अधिरथ (कर्ण को पालनेवाला) लाठी टेकता, काँपता हुआ, मानो कर्ण को बुलाने के लिए रङ्गभूमि में आ पहुँचा। घबराहट के मारे उसके कन्धे पर से कपड़ा खिसका जा रहा था। शरीर पसीने से तर था। उसे देखकर पिता का मान करने के लिए धनुष रखकर कर्ण उठ खड़े हुए। अभिषेक के जल से भीगा हुआ सिर उसके चरणों पर रखकर कर्ण ने प्रणाम किया। घबराकर अधिरथ ने कपड़े से अपने पैर ढक लिये। राज्य पाने से कृतार्थ कर्ण को पुत्र कहकर उसने स्नेह के मारे गले लगा लिया और अभिषेक के जल से भीगे हुए कर्ण के सिर को आनन्द के आँसुओं से दुबारा भिगो दिया।

यह देखकर भीमसेन को निश्चय हो गया कि कर्ण इसी सारथी का बेटा है। तब उन्होंने कर्ण का उपहास करते हुए कहा—सूतपुत्र कर्ण, तुम युद्ध में अर्जुन के हाथ से मरने के योग्य भी नहीं हो। घोड़ों की रास पकड़ना ही तुम्हारे कुल के योग्य काम है। हे नराधम, जैसे कुत्ता यज्ञ के हवि में मुँह नहीं डाल सकता वैसे ही तुम अङ्गराज्य का उपभोग करने के योग्य नहीं हो।

भीमसेन के ये कटु वचन सुनकर क्रोध के मारे कर्ण के ओठ फड़कने लगे। एक लम्बी साँस लेकर महात्मा कर्ण आकाश में स्थित सूर्यदेव की ओर देखने लगे। तब महाबली दुर्योधन कमल-वन सदृश भाइयों के झुण्ड से मदमत्त हाथी के समान उठकर, क्रोध से लाल आँखें करके, पास ही खड़े हुए भीमसेन से कहने लगा—भीमसेन, तुमको ऐसे वचन न कहने चाहिएँ। क्षत्रियों में बल का ही आदर होता है। शूरों और नदियों के जन्म का वृत्तान्त कोई नहीं जानता। चराचर विश्व में व्याप्त तेजस्वी अग्नि का जन्म (नीच-गामी) जल से हुआ है। दानवों का नाश करनेवाला वज्र दधीचि की हड्डियों से बना है। कुमार कार्त्तिकेय के जन्म का भी कुछ निश्चय नहीं। उन्हें कोई अग्नि का, कोई कृत्तिका का, कोई रुद्र का और कोई गङ्गा का पुत्र कहते हैं। क्षत्रियों से उत्पन्न विश्वामित्र आदि ब्राह्मण हो गये हैं। शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ आचार्य द्रोण भी कलश से उत्पन्न हुए हैं। गौतम के पुत्र कृपाचार्य शरस्तम्ब से उत्पन्न हुए हैं। औरों की कौन कहे, तुम पाण्डवों का जन्म जिस तरह हुआ है, सो भी मुझसे छिपा नहीं है। स्वाभाविक कवच और कुण्डल धारण करनेवाले, सब लक्षणों से युक्त, सूर्य के समान तेजस्वी कर्ण कभी नीच जाति की स्त्री से उत्पन्न नहीं हैं। मृगी कहीं सिंह को पैदा कर सकती है? मैं इनका आज्ञाकारी मित्र हूँ। ये केवल अङ्गराज्य ही नहीं, बल्कि पृथ्वीमण्डल भर का राज्य कर सकते हैं। मैंने इनको अङ्गदेश का राजा बनाया है। जो कोई इस बात को न सह सके वह रथ पर चढ़कर धनुष चढ़ाकर युद्ध करे।



राजा दुर्योधन की बात पूरी होते ही रङ्गभूमि में चारों ओर साधुवाद का कोलाहल गूँज उठा। इसी बीच में सूर्य अस्त हो गये। तब कर्ण का हाथ पकड़े हुए दुर्योधन उठकर रङ्गभूमि से चल दिया। मशालें हाथ में लिये उजेला करते हुए नौकर लोग आगे-आगे चले। भीष्म, द्रोण और कृपाचार्य के साथ पाण्डव भी अपने घरों को गये। दर्शकों में से कोई अर्जुन की, कोई कर्ण की और कोई दुर्योधन की बड़ाई और चर्चा करते हुए अपने-अपने घर को

सिधारे। दिव्य लक्षणों से लक्षित अपने बेटे कर्ण को पहचानकर और उन्हें अङ्गदेश का राजा होते देखकर कुन्ती को मन में बड़ी प्रसन्नता हुई।

महाराज, दुर्योधन के हृदय में अर्जुन का जो भय था वह कर्ण की मित्रता से जाता रहा। शस्त्रविद्या में परिश्रम करके योग्यता प्राप्त करनेवाले कर्ण भी दुर्योधन की रुचि का अनुमोदन करते हुए उसका मनोरञ्जन करने लगे। युधिष्ठिर को भी निश्चय हो गया कि कर्ण
२५ के समान धनुर्विद्या में चतुर योद्धा इस संसार में कोई नहीं है।

---

## एक सौ इकतालीस अध्याय

द्रोण का गुरु-दक्षिणा माँगना। अर्जुन से द्रुपद का हारना और अर्जुन का द्रुपद को कैद करके गुरु के पास लाना। द्रुपद और द्रोण की फिर मित्रता होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डु और धृतराष्ट्र के पुत्रों को धनुर्वेद के विषयों में सुशिक्षित देखकर द्रोणाचार्य ने सोचा कि यही गुरु-दक्षिणा माँगने का समय है। तब सब शिष्यों को बुलाकर आचार्य ने अपनी पूर्वनिश्चित गुरु-दक्षिणा माँगी। उन्होंने कहा—तुम लोग पाञ्चाल-राज द्रुपद को युद्ध में हराकर मेरे पास पकड़ लाओ। मैं यही गुरु-दक्षिणा तुमसे चाहता हूँ। तुम्हारा भला हो।

द्रोणाचार्य की आज्ञा मान करके, अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, रथों पर चढ़कर सब राजकुमार द्रुपद को जीतने के लिए चले। उनके साथ द्रोणाचार्य भी गये। राजकुमारों ने द्रुपद के देश में पहुँचकर वहाँ के निवासियों को मारना और द्रुपद के नगर को सब प्रकार तहस-नहस करना आरम्भ कर दिया। दुर्योधन, कर्ण, युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण, जलसन्ध, सुलोचन और अन्यान्य पराक्रमी क्षत्रियश्रेष्ठ राजकुमार रथों पर चढ़े हुए, घुड़सवार सेना के साथ, नगर में घुसकर राजमार्ग में पहुँचे। उनमें से हर एक सबसे पहले द्रुपद को पकड़ने का उत्साह दिखा रहा था। महाराज, पाञ्चालराज द्रुपद को जब यह ख़बर मिली और उन्होंने बहुत सी शत्रु-सेना को नगर में देखा तब वे भी अपने भाइयों के साथ युद्ध के लिए राज-भवन से बाहर निकले। अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित, कवचधारी, द्रुपद के सब भाई सिंहनाद
१० करते हुए बाणों की वर्षा करने लगे। उज्ज्वल रथ पर सवार दुर्जय द्रुपद कौरवों के सामने आकर युद्ध-स्थल में घोर बाणों की वर्षा करने लगे।

राजन्, अभिमानी धृतराष्ट्र के पुत्रों को नीचा दिखाने के लिए पहले ही आपस में सलाह करके अर्जुन ने द्रोणाचार्य से कह दिया—गुरुजी, दुर्योधन आदि को युद्ध में अपना पराक्रम दिखा



अर्जुन का द्रुपद को क़ैद करके गुरु के पास लाना ।—पृ० ३१२

लेने दोजिए; पीछे हम ( पाण्डव ) साहस के साथ द्रुपद को पकड़ने का उद्योग करेंगे। मुझे विश्वास है कि युद्ध में ये लोग द्रुपद को पकड़ नहीं सकते। कुन्ती-पुत्र अर्जुन यों कहकर भाइयों के साथ राजधानी से आध कोस के अन्तर पर ही ठहर गये।

इधर राजा द्रुपद ने बाणों की घोर वर्षा से कौरवों की भारी सेना को बौखला दिया। वे अकेले चारों ओर घूमकर कौरवों पर प्रहार करने लगे। युद्ध-भूमि में रथ पर चढ़े हुए राजा द्रुपद की फुर्ती देखकर कौरवों को बड़ा डर लगा। एक द्रुपद ही उन्हें अनेक से जान पड़ने लगे। राजा द्रुपद के दुस्सह बाण चारों ओर चल रहे थे। पाञ्चालों की सेना में शङ्ख, नगाड़े, मृदङ्ग आदि हज़ारों बाजे बजने लगे। वीरों की प्रत्यञ्चा ( धनुष की डोरी ) का शब्द आकाश में गूँजने लगा। तब दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन, दुःशासन आदि धृतराष्ट्र के पुत्र कुपित होकर द्रुपद के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगे। हे भरत-नन्दन, धनुष धारण किये हुए दुर्जय द्रुपद उन बाणों से घायल होकर और भी भयानक रूप से सङ्ग्राम करने लगे। अलातचक्र ( जलती हुई लकड़ी के चक्कर ) की तरह घूम रहे राजा द्रुपद अकेले ही दुर्योधन, कर्ण, विकर्ण और अन्यदेशीय द्रोण-शिष्य राजकुमारों का सामना करते हुए शत्रु-सेना का संहार करने लगे। [ किसी को कहने के लिए यह नहीं रह गया कि मुझे द्रुपद से युद्ध करके उन्हें पकड़ने का अवसर ही नहीं मिला। ] २०

इसी बीच में पुरवासी लोग भी—बालक, बूढ़े सब—दौड़ आये और बरसते हुए बादलों की तरह कौरवों के ऊपर लाठी, मूसल आदि की वर्षा करने लगे। द्रुपद के युद्ध से घबड़ाकर दुर्योधन आदि कौरव भाग खड़े हुए। कौरवों के आर्त्तनाद को सुनकर पाण्डव लोग युद्ध के लिए तैयार हुए। वे द्रोणाचार्य को प्रणाम करके अपने-अपने रथों पर सवार हुए। अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा—आप युद्ध न करें, मैं अभी द्रुपद को पकड़ लाता हूँ। नकुल और सहदेव, आस-पास रहकर, अर्जुन के रथ के पहियों की रक्षा करते हुए चले। सेना के आगे गदा हाथ में लिये हुए महाबली भीमसेन चले। भाइयों-सहित अर्जुन इस प्रकार अपने रथ के शब्द से दिशाओं को प्रतिध्वनित करते हुए वेग के साथ द्रुपद के पास चले। दण्डपाणि यमराज के समान महाबाहु भीमसेन समुद्र के समान कोलाहल कर रही पाञ्चाल देश की सेना में उसी तरह घुस पड़े जैसे बड़ा भारी मगर समुद्र के जल में घुसे। अतुल-बाहुबल-धारी, युद्ध-चतुर भीमसेन काल की तरह गदा से हाथियों की सेना को मारने लगे। पहाड़ ऐसे हाथियों के मस्तक गदा की चोट से फट गये और रक्त बहने लगा। वज्र गिरने से जैसे पहाड़ फट जाते हैं वैसे ही गदा की चोट खाकर हाथी गिरने लगे। इस तरह अर्जुन के बड़े भाई भीमसेन गदा की मार से हाथी, घोड़े, रथ, पैदल आदि का नाश करने लगे। जिस तरह अहीर जङ्गल में डण्डे से पशुओं को पीटते हैं वैसे ही हाथी आदि को पीटते हुए भीमसेन युद्ध-भूमि में विचरने लगे। ३०

द्रोण का प्रिय करने के लिए उद्यत अर्जुन बाण-वर्षा से द्रुपद को पीड़ित करते हुए उनके पास पहुँचे। प्रलय के अग्नि के समान युद्ध में प्रज्वलित होकर महावीर अर्जुन हाथी, घोड़े, रथ आदि के समूहों को पृथ्वी पर गिराने लगे। तब सिंहनाद करके बाण-वर्षा कर रहे पाञ्चाल और सृञ्जय वंश के वीरों ने चारों ओर से अर्जुन को घेर लिया। युद्ध धीरे-धीरे घोर और अद्भुत रूप धारण करने लगा। शत्रुओं के सिंहनाद को वीर अर्जुन न सह सके। वे बाण-
४० वर्षा से पाञ्चालों को किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ और व्यथित करते हुए उनकी ओर दौड़े। अर्जुन को ऐसी फुर्ती से बाण चढ़ाने और चलाने का अभ्यास था कि कोई देख न पाता था कि कब वे बाण निकालते हैं, कब चढ़ाते और कब चलाते हैं। ऐसा जान पड़ता था, मानो वे लगातार बाण बरसा रहे हैं। अर्जुन के पराक्रम को देखकर शत्रु भी उनकी प्रशंसा करते हुए सिंहनाद करने लगे।

तब अपने भाई सत्यजित् के साथ राजा द्रुपद बड़ी फुर्ती से अर्जुन की ओर लपके जैसे शम्बरासुर इन्द्र की ओर झपटा था। अर्जुन ने असंख्य बाण चलाकर द्रुपद को ढक दिया। जैसे कोई सिंह गजराज पर झपटे वैसे अर्जुन जब द्रुपद की ओर बढ़े तब पाञ्चाल देश की सेना में बड़ा कोलाहल मच गया। अर्जुन को आते देखकर द्रुपद की रक्षा करने को महापराक्रमी सत्यजित्, सामना करने के लिए, आगे बढ़ा। इन्द्र और राजा बलि के समान अर्जुन और सत्यजित् युद्ध करने लगे। [दोनों ओर की सेना खड़ी होकर उनका अद्भुत युद्ध देखने लगी।] अर्जुन ने दस मर्मभेदी बाण मारकर सत्यजित् को घायल कर डाला। इसके जवाब में सत्यजित् ने अर्जुन को सौ बाण मारे। बाण-वर्षा में छिपे हुए महारथी अर्जुन ने बड़े वेग से बाण चलाकर सत्यजित् के धनुष की डोरी काट डाली। अब वे राजा द्रुपद की ओर चले।

सत्यजित् ने दूसरा धनुष लेकर फिर कई बाणों से घोड़े, रथ और सारथी-सहित अर्जुन
५० पर प्रहार किया। सत्यजित् के इस कर्म को अर्जुन न सह सके। सत्यजित् को मारने के लिए उन्होंने कई बाण चलाये। अर्जुन ने सत्यजित् के घोड़ों को मार डाला, ध्वजा काट डाली, धनुष की मूठ काट डाली, आसपास रहकर रथ की रक्षा करनेवालों को और सारथी को भी मार डाला। इस प्रकार बारम्बार धनुष कटने पर, घोड़े और सारथी के नष्ट होने पर, सत्यजित् युद्ध से अलग हो गया।

पाञ्चालराज द्रुपद सत्यजित् को युद्ध से विमुख होते देखकर बड़े वेग के साथ अर्जुन की ओर झपटकर उन पर बाण बरसाने लगे। तब अर्जुन घोर युद्ध करने लगे। उन्होंने द्रुपद का धनुष और ध्वजा काट डाली। फिर पाँच बाण मारकर द्रुपद के सारथी और रथ के घोड़ों को घायल कर दिया।

अब कुन्ती के पुत्र अर्जुन धनुष छोड़कर खड्ग हाथ में लेकर सिंहनाद करते हुए द्रुपद की ओर झपटे। वे बेखटके फाँदकर द्रुपद के रथ पर चले गये। जिस तरह समुद्र के जल

को मथकर गरुड़ किसी नाग को पकड़ लें उसी तरह अर्जुन ने द्रुपद को पकड़ लिया। यह देखकर सब पाञ्चाल-सेना इधर-उधर भागने लगी। सैनिकों को अपना बाहु-बल दिखाकर सिंहनाद करते हुए अर्जुन द्रोणाचार्य के पास चले। अर्जुन को कृत-कार्य होकर आते देख सब राजकुमार महात्मा द्रुपद के नगर को नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। ६०

अर्जुन ने भीमसेन से कहा—भाई भीम, नृपश्रेष्ठ द्रुपद हम कुरुवंशियों के सम्बन्धी हैं। उनकी सेना को न मारो। दक्षिणा के तौर पर द्रुपद को गुरु के हाथ में दे दो। वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, भीमसेन यद्यपि युद्ध से तृप्त नहीं हुए थे तथापि अर्जुन के मना करने पर वे रुक गये। मन्त्री-सहित द्रुपद को इस तरह पकड़कर कुमारों ने गुरु द्रोण के आगे खड़ा कर दिया। द्रुपद का घमण्ड मिट गया, सर्वस्व छिन गया। इस दशा में अपने अधीन द्रुपद को देखकर पहले के वैर को स्मरण करके द्रोणाचार्य ने कहा—मैंने तुम्हारा राज्य छीन लिया है, तुम्हारे नगर को लूट लिया है। इस समय तुम जीते हुए शत्रु के अधीन हो। अब तुम पहले की मित्रता का ख़याल करके मुझसे क्या चाहते हो? इसके बाद मुसकुराकर फिर आचार्य ने कहा—वीर द्रुपद, तुम डरो नहीं। मैं तुम्हारे प्राण न लूँगा। हम क्षमाशील ब्राह्मण हैं। लड़कपन में आश्रम में हम-तुम एक साथ खेले हैं। हे क्षत्रिय-श्रेष्ठ, इसी से तुम पर मुझे स्नेह-प्रीति है। मैं फिर तुमसे मित्रता करना चाहता हूँ। मैं तुमको तुम्हारा आधा राज्य फेरे देता हूँ। यज्ञसेन, तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है वह राजा का सखा नहीं हो सकता। इसी से मैंने तुम्हारा राज्य हरने का प्रयत्न किया। गङ्गा के दक्षिण किनारे के तुम राजा हो और उत्तर ओर का राज्य मैं करूँगा। जो तुम पसन्द करो तो मुझे अपना मित्र समझो। ७०

द्रुपद ने कहा—ब्रह्मन्, आप महात्मा और पराक्रमी हैं। आपका ऐसा बड़ा कठिन काम कर डालना कुछ विचित्र नहीं। मैं आपसे प्रसन्न हूँ और आपसे सदा बनी रहनेवाली मित्रता करना चाहता हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—द्रुपद के ये वचन सुनकर द्रोणाचार्य ने उन्हें बन्धन से मुक्त कर दिया और यथोचित सम्मान के साथ आधा राज्य लौटा दिया। मन ही मन इस अपमान से दुःखित द्रुपद गङ्गा-तट पर स्थित माकन्दी नाम के देश के काम्पिल्य नगर में रहने लगे। द्रोण से हारकर द्रुपद चर्मण्वती नदी तक गङ्गा के दक्षिण तट के प्रदेश का शासन करने लगे। उन्होंने मन में सोचा कि मैं ब्राह्मण के बल से हीन हूँ; और द्रोणाचार्य को मैं क्षत्रिय के बल से परास्त नहीं कर सकता। इसलिए पुत्र पाने की इच्छा रखकर वे विचरने लगे। द्रोणाचार्य अहिच्छत्र देश का शासन करने लगे।

राजन्, इस प्रकार युद्ध में द्रुपद को जीतकर अर्जुन ने द्रोणाचार्य को अहिच्छत्र देश का राज्य अर्पण किया। ७७

---

# एक सौ बयालीस अध्याय

पाण्डवों की उन्नति और धृतराष्ट्र का चिन्तित होना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को सहनशील, स्थिरचित्त, क्षमा और दया से भूषित, सरल-स्वभाव, भृत्यों से सहानुभूति और सर्वसाधारण से मित्रता का व्यवहार करते देखकर एक वर्ष के बाद उनको युवराज बनाने का निश्चय कर लिया। कुन्ती-नन्दन युधिष्ठिर ने थोड़े ही समय में सुशीलता, सच्चरित्रता और जितेन्द्रियता आदि सद्गुणों से अपने को पाण्डु से भी अधिक कीर्त्तिशाली और प्रजाप्रिय बना लिया। इसी समय में महाबाहु भीमसेन बराबर बलभद्रजी से असियुद्ध, गदायुद्ध और रथयुद्ध की शिक्षा प्राप्त करते रहे। इस प्रकार सर्वथा सुशिक्षित होकर वे द्युमत्सेन के समान बली और पराक्रमी समझे जाने लगे। भीमसेन सभी भाइयों के वश में थे। महावीर अर्जुन कसी और दृढ़ मुट्ठी से धनुष पकड़ने में, सफ़ाई में, निशाना मारने में, सीधे-टेढ़े-चौड़े क्षुरप्र-नाराच-भल्ल-विपाठ आदि बाण चलाने में बहुत होशियार हो गये। द्रोणाचार्य ने यह निश्चय कर लिया कि फुर्ती और ख़ूबसूरती के साथ निशाना मारने में अर्जुन की बराबरी करनेवाला कोई योद्धा इस संसार में नहीं है।

कुछ समय के उपरान्त एक दिन द्रोणाचार्य ने कौरवों की सभा में अर्जुन से कहा—मेरे गुरु अग्निवेश धनुर्वेद में अगस्त्य ऋषि के शिष्य थे। मैंने बहुत दिन तप करके जो वज्र-
१० तुल्य अमोघ ब्रह्मशिर नाम का अस्त्र अपने गुरु से पाया था वह मैं तुमको दे चुका हूँ। इस ब्रह्मास्त्र में सारी पृथ्वी को जला देने की शक्ति है। यह अस्त्र देते समय गुरु ने मुझसे कहा था कि हे भारद्वाज, अल्पवीर्य मनुष्यों के ऊपर तुम यह अस्त्र कभी न चलाना। [ जो छिपकर मायायुद्ध करते हैं उन तेजस्वी राक्षस, गन्धर्व आदि को मारने के लिए तुम युद्ध में इस अस्त्र का प्रयोग कर सकते हो। ] तुमसे बढ़कर संसार में इस दिव्य अस्त्र के पाने का अधिकारी कोई नहीं है। इसी से यह अस्त्र मैंने तुमको दिया है। देखो, तुम भी मेरे गुरु के पूर्वोक्त उपदेश को स्मरण रखकर मनुष्यों पर यह अस्त्र न चलाना। अब अपनी जाति के लोगों के आगे मुझे आचार्य की दक्षिणा दो। अर्जुन ने कहा—माँगिए, मैं दूँगा। द्रोण ने कहा—मैं यह दक्षिणा माँगता हूँ कि युद्धभूमि में तुम मुझसे युद्ध करना। अर्जुन ने वही स्वीकार करके गुरु के चरणों में प्रणाम किया।

सहज ही समुद्रपर्यन्त पृथ्वीमण्डल में यह बात फैल गई कि संसार भर में इस समय अर्जुन के समान दूसरा योद्धा नहीं है। अर्जुन गदायुद्ध, खड्गयुद्ध, रथयुद्ध और धनुर्युद्ध में सोलहों आने निपुण हो उठे। सहदेव भी उद्धव से नीतिशास्त्र पढ़कर भाइयों की आज्ञा का पालन करने लगे। द्रोणाचार्य से शिक्षा पाकर भाइयों के प्यारे नकुल चित्र-युद्ध करनेवाले अतिरथी

कहकर प्रसिद्ध हुए। जिस सौवीर देश के राजा ने गन्धर्वों के उपद्रव करने पर भी तीन वर्ष तक निर्विघ्न रूप से यज्ञ किया उसे युद्ध में अर्जुन आदि पाण्डवों ने मारा। पराक्रमी महाराज पाण्डु भी जिस यवन-राज को अपने वश में नहीं कर सके उसे युद्ध में परास्त करके अर्जुन ने अपने अधीन कर लिया। विपुल नाम का एक और सौवीरराज था। वह बड़ा बली था और कुरुवंशियों का दबाव न मानता था। अर्जुन ने उसे भी युद्ध में मारा। बड़े भारी योद्धा, दत्तामित्र और सुमित्र नाम के दो और वीर सौवीर-राजाओं को हराकर अर्जुन ने अपने वश में कर लिया। भीमसेन की सहायता से अर्जुन ने अकेले रथ पर चढ़कर पूर्व देश के दस हज़ार रथी वीरों को जीत लिया। इसी प्रकार उन्होंने दक्षिण देश जीतकर द्रव्य प्राप्त किया। २०

राजन्, नर-श्रेष्ठ महात्मा पाण्डवों ने इस प्रकार शत्रुओं के राज्य जीतकर अपने राज्य को बढ़ाना आरम्भ किया। तब पाण्डवों के असाधारण युद्ध-कौशल और प्रसिद्ध बल का हाल सुनकर एकाएक उनके प्रति धृतराष्ट्र के हृदय का भाव दूषित हो गया। उन्हें चिन्ता के मारे रात को अच्छी तरह नींद न आती थी। २७

# एक सौ तेंतालीस अध्याय

## कणिक की कुनीति

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्, वीर्यवान् पाण्डव असाधारण बलशाली और तेजस्वी हो रहे हैं, यह सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने राजनीति-कुशल और मन्त्रियों में श्रेष्ठ कणिक को बुलाकर एकान्त में कहा—द्विजश्रेष्ठ कणिक, पाण्डु के पुत्रों का नित्य अभ्युदय होता जा रहा है। इसी कारण उन पर मुझे ईर्ष्या हो रही है। तुम निश्चय करके कहो कि उनसे मेल रखना चाहिए या झगड़ा करना चाहिए। मैं तुम्हारी सलाह के अनुसार ही काम करूँगा। महाराज, धृतराष्ट्र के प्रश्न को सुनकर ब्राह्मण-श्रेष्ठ कणिक बहुत प्रसन्न हुए और फिर नीतिशास्त्र के अनुकूल तीक्ष्ण उपदेश देने लगे।



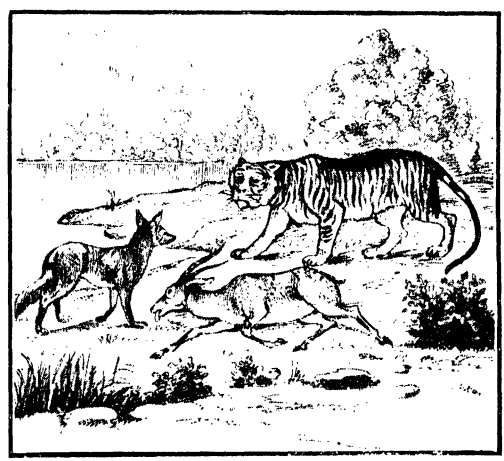
उन्होंने कहा—राजन्, मैं आपके प्रश्न के उत्तर में जो कुछ कहता हूँ उसे मन लगाकर सुनिए। हे कुरुश्रेष्ठ, मेरे कठिन कर्त्तव्योपदेश को सुनकर मुझ पर क्रोध न कीजिएगा। राजा को चाहिए कि वह नित्य दण्ड देने के लिए उद्यत रहे; अपने पौरुष को प्रजा और शत्रुओं को दबाने के लिए प्रकट रक्खे। अपने पर चोट करने का मौक़ा दूसरों को न दे और दूसरों पर चोट करने का मौक़ा सदा देखता रहे। जो राजा नित्य दण्ड देने के लिए उद्यत रहकर कड़ा शासन करता है उससे लोग बहुत डरते हैं। इस कारण दण्ड के ही द्वारा सदा सब काम सिद्ध करने चाहिएँ। ऐसा रहे कि शत्रु तो उसके दोषों को न देख पावें और वह शत्रुओं के दोषों को देख ले। कछुए की तरह सहाय, साधन, उपाय आदि अपने अङ्गों को छिपाये रहे और सदा यह देखता रहे कि शत्रु लोग उसके दोष देख, चोट करके, उसे कुछ हानि न पहुँचा सकें। किसी काम का आरम्भ करके उसे पूरा किये बिना छोड़ देना राजा के लिए ठीक नहीं। देखिए, अच्छी तरह निकालने में जो कसर रह जाय तो साधारण काँटा भी ऐसा घाव कर देता है जो बहुत दिनों तक आराम नहीं होने पाता। हानि पहुँचानेवाले शत्रुओं को जान से मार डालना ही ठीक है। शत्रु यदि बड़ा पराक्रमी और १०
ख़ूब लड़नेवाला हो, और इस कारण वह तत्काल न मारा जा सकता हो, तो जब उस पर

कुछ आपत्ति आ पड़े तब आक्रमण करना चाहिए; [ उसे स्थान से भगाने की चेष्टा में लगे रहना चाहिए। इस प्रकार या तो उसे मार डाले या देश से भगा दे। ] इस विषय में धर्म-अधर्म का विशेष विचार करना ठीक नहीं। महाराज, दुर्बल शत्रु को भी तुच्छ न समझना चाहिए; क्योंकि आग की एक चिनगारी भी आश्रय पाकर सारे जङ्गल को जला सकती है। मौक़ा देखकर अन्धा और बहरा भी बन जाना चाहिए; अर्थात् शत्रुओं की की हुई अपनी बुराई देख-सुनकर भी टाल देना चाहिए। धनुष धारण करने के अभिमान को मौक़ा देखकर छोड़ देना चाहिए; अर्थात् काम निकालने के लिए क्षात्रधर्म छोड़कर शत्रु के यहाँ भिक्षुक और अनुचर बनकर भी रहने में कुछ दोष नहीं। जैसे मृग को पकड़ने के लिए बहेलिया आँखें मूँदकर लेट रहता है और मौक़ा पाकर पास आये हुए मृग को पकड़ लेता है या उसको तीर मारता है, वैसे ही शत्रु को विश्वास दिलाने के लिए—काम पड़े तो—उसके घर में भी सो रहे और मौक़ा पाकर वार कर दे। शत्रु को विश्वास दिलाकर—साम, दान आदि उपायों से—नष्ट करना ही राजा का कर्त्तव्य है। शरणागत शत्रु पर भी दया न करनी चाहिए। शत्रु के मरने से खटका जाता रहता है। मरा हुआ शत्रु कुछ हानि नहीं पहुँचा सकता। पहले के अपकारी शत्रु को भी, उसके कर्मचारियों को धन का लोभ देकर मिलाकर, उनके द्वारा मरवा डालना चाहिए। शत्रुपक्ष के तीन ( ऐश्वर्य, मन्त्र, उत्साह ), पाँच ( मन्त्री, राज्य, दुर्ग, ख़ज़ाना, सेना ) या सात ( साम, दान, भेद, दण्ड, उद्बन्धन, विष, वह्नि ) के द्वारा अङ्गों को सदा नष्ट करने का उद्योग करना चाहिए। पहले शत्रुपक्ष की जड़ को ही काटे। फिर उसके सहायकों और पक्ष लेनेवालों को नष्ट करे। आधार की जड़ कटने से उसके आश्रय में रहनेवाले सभी नष्ट हो जाते हैं। वृक्ष की जड़ काट देने पर उसकी डालियाँ कहीं हरी-भरी रह सकती हैं? राजन्, अपना हाल छिपाकर सदा शत्रुओं का हाल जानने की चेष्टा करते हुए उन पर चोट करने का मौक़ा देखते रहना चाहिए। शत्रुओं से सदा सावधान रहना ही सबसे पहला कर्त्तव्य है। अग्निहोत्र, यज्ञदीक्षा, गेरुए कपड़े, जटा और मृगछाला आदि के द्वारा शत्रुओं को विश्वास दिलाकर, भेड़िये की तरह, उन पर चोट करनी चाहिए। अपना काम सिद्ध करने के लिए उक्त प्रकार की धूर्तता ही सबसे अच्छा उपाय है। जैसे फूली-फली शाखा को झुकाकर लोग पके-पके फल तोड़ लेते हैं वैसे ही शत्रुओं को अपनी ओर मिलाकर, चुन-
२० चुनकर, उनका नाश करना चाहिए। होशियार लोग काम निकालने के लिए मौक़ा देखते हुए शत्रु को कन्धे पर चढ़ाये रखते हैं। जब मौक़ा पाते हैं तब, पत्थर पर घड़े की तरह, उसे गिराकर चूर-चूर कर देते हैं। अपकार करनेवाले शत्रु को, उसके गिड़गिड़ाने पर भी, कभी न छोड़ना चाहिए। अपकारी पर कृपा न करके उसे मार डालना ही ठीक है। साम, दान, भेद, दण्ड, इन उपायों से—जिस तरह हो सके—शत्रु को नष्ट कर दे।

धृतराष्ट्र ने पूछा—हे द्विजश्रेष्ठ! साम, दान, भेद और दण्ड के द्वारा किस तरह शत्रु का नाश किया जा सकता है? विस्तार के साथ दृष्टान्त के द्वारा यह विषय मुझे समझाइए।

कणिक ने कहा—महाराज, पूर्व समय में नीतिशास्त्र के सिद्धान्तों को जाननेवाला एक गीदड़ वन में रहता था। उसका वृत्तान्त मैं आपसे कहता हूँ, सुनिए। अपना मतलब निकालने में चतुर उस गीदड़ के बाघ, मूसा, भेड़िया और न्यौला, ये चार मित्र थे। इन चारों मित्रों के साथ वह वन में रहता था। एक दिन पाँचों मित्रों ने वन में घूमते-घूमते एक बलवान् जवान हिरन को देखा। किन्तु एकाएक आक्रमण करके उसे मारने में असमर्थ होने के कारण वे आपस में सलाह करने लगे। गीदड़ ने कहा—सुनो जी बाघ, तुम इस हिरन को मारने के लिए बहुत उपाय कर चुके हो। किन्तु यह बड़ी फुर्ती से भागनेवाला, चतुर और जवान है। इस कारण यह बचता रहा है। मेरी सलाह यह है कि जब यह मृग सोता हो तब हमारा मित्र मूसा इसके पैरों का मांस खा ले। फिर यह भाग न सकेगा। तब तुम जाकर सहज में इसे मार डालोगे। इसके बाद हम सब मित्र आनन्द से इसका मांस खावेंगे। ३०

गीदड़ की यह सलाह सुनकर उसी तरह सब काम करना मित्रों ने स्वीकार कर लिया। मूसे ने सबसे पहले जाकर मृग के पैरों को खा लिया। फिर बाघ ने जाकर उसे मार डाला। मृग का मुर्दा शरीर धरती पर पड़ा देखकर गीदड़ ने सबसे कहा—तुम लोग पहले नहा आओ, फिर भोजन करना। तब तक मैं इस मृग के मृत शरीर की देख-भाल करता रहूँगा।



बाघ आदि सब मित्र, गीदड़ के कहने से, नदी में नहाने को गये। गीदड़ वहीं ठहरकर चिन्ता करने लगा। महाबली बाघ सबसे पहले नहाकर लौट आया। गीदड़ को चिन्ता से व्याकुल देखकर बाघ ने पूछा—गीदड़, तुम हम सबसे बढ़कर बुद्धिमान् होकर भी इस समय क्यों सोच में पड़े हुए हो? अभी इस मृग का मांस खाकर हम सब मित्र आनन्द मनावेंगे। गीदड़ ने कहा—वीरवर बाघ, मूसे ने अभी जो मुझसे कहा है वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। उसने कहा है कि बाघ के बल को धिक्कार है। आज मैंने इस मृग को मारा है। वे मेरे बाहुबल की बदौलत आज अपना

पेट भरेंगे। मित्र बाघ, मूसे के ये अहङ्कार से भरे वचन जब से मैंने सुने हैं तब से इस मृग का मांस खाने की रुचि मुझे नहीं रही।

बाघ ने कहा—मित्र, मूसे की ये बातें सुनकर आज मुझे चेत हुआ। आज से मैं अपने बाहुबल से वनवासी जीवों का शिकार करके उनका मांस खाऊँगा। बस, बाघ तो चला गया, इसी बीच में मूसा लौटकर आया। उसे देखकर गीदड़ ने कहा— मित्र मूसे, तुम्हारा कल्याण हो। मुझसे अभी न्यौला जो कह गया है वह मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। उसने कहा कि बाघ ने इस मृग को मारा है। उसके दाँतों का विष इस मृग के मांस में भिद गया है। इससे मैं यह मांस न खाऊँगा। मैं मूसे को खाकर अपना पेट भरना चाहता हूँ। तुम इस मेरी इच्छा का अनुमोदन करो। गीदड़ की बात सुनकर डर के मारे मूसा बिल में घुस गया।

राजन्, इसके बाद भेड़िया नहाकर आया। उससे गीदड़ ने कहा—बाघ तुम पर बहुत ख़फ़ा है। यहाँ ठहरना तुम्हारे लिए अच्छा नहीं। वह अपनी स्त्री को साथ लेकर अभी यहाँ आता ही होगा। जो अच्छा समझ पड़े, सो करो। मांसभोजी भेड़िया अपनी जाति के स्वभाव के अनुसार दबककर, दुम दबाकर, वहाँ से खिसक गया।

अब न्यौला आया। उसे देखकर गीदड़ ने कहा—मैंने अपने बाहुबल से मृगराज बाघ, भेड़िये आदि को हराकर भगा दिया है। तुम भी मुझसे लड़कर मुझे हराकर मनमाना मांस खा सकते हो। न्योले ने कहा—मृगराज बाघ, भेड़िया और बुद्धिमान् मूसा, ये सब वीर जब तुमसे हार गये तब मैं तुमसे लड़ना नहीं चाहता। बस, वह भी चला गया।

कणिक कहते हैं—कुरुनन्दन, इस प्रकार बुद्धि के बल से बाघ, भेड़िये, मूसे और न्यौले को भगाकर गीदड़ ने अकेले मज़े से मांस खाया। इस गीदड़ की नीति से चलनेवाला राजा नित्य अधिकाधिक सुख भोगता है। इसी तरह कायर को डर दिखाकर, वीर को विनय से, लोभी को धन देकर और बराबरीवाले तथा नीच को तेज दिखाकर अपना कार्य सिद्ध करना चाहिए। महाराज, साम-दान-भेद-दण्ड का यह दृष्टान्त मैं आपको सुना चुका। अब और कुछ नीति के सिद्धान्त कहता हूँ, सुनिए। अभ्युदय चाहनेवाले राजा को चाहिए कि पुत्र, मित्र, भाई, बाप और गुरु भी यदि शत्रुता करते हों या शत्रुपक्ष से मिले हों तो उन्हें मार ही डाले। झूठी सौगन्द खाकर, धन देकर, विष दिलाकर या मायाजाल फैलाकर, जिस तरह हो सके, शत्रु को मार डालना ही नीति है। मौक़ा पाकर उसे छोड़ देना या उसकी तरफ़ से लापरवाही रखना ठीक नहीं। परस्पर शत्रुता रखनेवाले दोनों पक्ष यदि सहाय, साधन, उपाय आदि में समान हों और यों लड़कर दोनों में से किसी के जीतने की सम्भावना न हो, तो दोनों में से जो मेरी कही हुई इस नीति को मानकर चलेगा वही बढ़कर दूसरे को दबा सकेगा। पूज्य गुरुजन भी यदि कार्य-अकार्य का विचार न कर सकते हों या न करें, अथवा अहङ्कारी

होकर विरुद्ध-मार्ग पर चलें तो नीति के अनुसार उनको भी दण्ड देना चाहिए। राजा को क्रोध की अवस्था में भी प्रसन्न रूप ही रहना चाहिए; वह हँस-हँसकर बातें करे; मन में क्रोध रहने पर भी डाँटे-डपटे नहीं, निन्दा न करे। अपना वार करते समय, उसके पहले, और बाद को भी प्रिय ही बोले। अपने वार से दूसरे का सर्वनाश होते देखकर आप अनजान-सा बनकर उससे सहानुभूति दिखावे, शोक करे और रोनी सूरत बना ले। शत्रु को बहुत समय तक सान्त्वना देकर, भलाई की बातें बताकर, अपनी धर्मनिष्ठा दिखाकर अपने ऊपर विश्वास दिलाना पहला काम है। उसके बाद जब शत्रु को नीति की राह से विचलित देखे तब, घात पाकर, उस पर अपना वार करे। नित्य धर्मनिष्ठा दिखानेवाला राजा यदि ऐसा कोई घोर अपराध कर भी डालता है तो उसका वह दोष, काले बादलों से पहाड़ की तरह, ढक जाता है। जिसको मार डालना हो उसके घर में रात को आग लगवा दे; ग़रीब, ठग, चोर, परलोक पर विश्वास न रखनेवाले नास्तिक आदि के द्वारा विष दिला दे। जिसे मारना हो उसका बड़ा आदर करे; अच्छी-अच्छी चीज़ें भेंट करे; उसे देखकर उठ खड़ा हो; आदर से आसन दे; उसके अङ्गों पर सिर झुकाकर बातचीत करे; अपने हृदय के तीक्ष्ण भाव को छिपाये रहे। बहुत ही विश्वास दिलाकर उस पर चोट करे। जिनसे खटका हो और जिनसे खटका न हो, ६०
दोनों से सदा सावधान रहे। क्योंकि जिससे कुछ खटका न हो उसकी चोट से मनुष्य समूल नष्ट हो जाता है—कुछ भी नहीं बच रहता। जो विश्वास के योग्य न हो उस पर कभी विश्वास न करे। और, जिस पर विश्वास भी करे तो अत्यन्त विश्वास न करे; क्योंकि ऐसे अति विश्वासवाले पुरुष से प्राप्त भय टाले नहीं टलता। उसकी चोट से नाम-निशान तक नहीं बचता। अपने लोगों का और शत्रुओं का हाल जानने के लिए उत्तम चतुर जासूसों का रखना भी राजा का सबसे पहला काम है। उन जासूसों की पहले अच्छी तरह जाँच कर लेनी चाहिए। दूसरों के राज्य में पाखण्डी, तपस्वी आदि के वेष में घूमनेवाले जासूस को रखना चाहिए। बाग़, विहारभवन, देवमन्दिर, मदिरा-पान के लिए नियत घर, राह, तीर्थस्थान, सर्वसाधारण के लिए बने हुए चबूतरे, कुआँ, पहाड़, जङ्गल, भीड़ और नदी-तट—ये स्थान 'चार' के विचरने के लिए उत्तम हैं। हृदय को छुरे की धार के समान तेज़ रखकर भी मीठी और मुलायम बातें करता रहे। जिसका अनिष्ट करना हो उससे हँस-हँसकर बातें करे। अपनी भलाई के लिए हाथ जोड़कर, सौगन्द खाकर, विनय करके, पैरों पर सिर रखकर, आशा देकर शत्रु से काम निकालना चाहिए। फिर मौक़ा मिलने पर उसका सर्वनाश कर डाले। अच्छी तरह फूलकर भी फल-हीन रहे अर्थात् प्रसन्न होकर भी कुछ दे नहीं। वृक्ष की तरह फलकर भी दुरारोह बना रहे अर्थात् सम्पत्तिशाली होकर भी ऐसा बना रहे कि कोई उस पर आक्रमण न कर सके। कच्ची अवस्था में भी पक्का सा बना रहे अर्थात् निबल होने पर भी सबल ऐसा

अपने को दिखावे। कभी जीर्ण अर्थात् हताश न हो। धर्म, अर्थ और काम को त्रिवर्ग कहते हैं। त्रिवर्ग में हर एक की एक-एक पीड़ा और एक-एक फल है। फल इष्ट है; पीड़ा को अनिष्ट समझकर उससे बचना चाहिए। धर्मात्मा पुरुष का चित्त अर्थ ( धन ) और काम के द्वारा पीड़ित होता है, उससे उसके धर्म को पीड़ा पहुँचती है। इसी तरह अर्थलोभी का चित्त धर्म और काम के विचार से चञ्चल होता है और कामासक्त का चित्त धर्म और अर्थ के ख़याल से डाँवाडोल होता है। एकाग्र, गर्वहीन, ईर्ष्यारहित, शान्त, शुद्धचित्त होकर, प्रयोजन पर दृष्टि रखकर, ब्राह्मणों के साथ सलाह करनी चाहिए। अच्छे या बुरे, किसी उपाय से दीनता दूर करके अपना उद्धार करना चाहिए। इस प्रकार श्रीलाभ करके समर्थ होने पर धर्म का आचरण करे। जो मनुष्य किसी पर सन्देह करना नहीं जानता उसकी भलाई नहीं होती। फिर कभी जो सन्देह करने का अवसर आ पड़ा और उससे उसके प्राण बच गये तो अपने अच्छे दिन देखता है। जिसकी बुद्धि शोक से भ्रष्ट हो जाय उसे बीते हुए नल, राम आदि के उदाहरण देकर समझाना चाहिए। जिसकी बुद्धि लोभ आदि के द्वारा बिगड़ गई हो उसे "आगे किसी समय तुम्हारा भला होगा" यों कहकर, आशा दिलाकर, सन्तुष्ट करना चाहिए। पण्डित पुरुष को वर्त्तमान में धन आदि के द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिए। जो राजा शत्रु से सन्धि ( मेल ) करके कृतकार्य की तरह निश्चिन्त होकर सोता है वह मानों पेड़ की डाली के सिरे पर सोता है। नीचे गिरने पर उसे होश आता है। ईर्ष्याहीन होकर सदा सलाह को छिपाने का यत्न करता रहे। अपने जासूसों से दूसरों की ख़बर तो लेता रहे, किन्तु औरों के जासूसों से अपने हृदय के क्रोध-प्रसन्नता आदि भावों को छिपाये रहे। मछुए जैसे मछलियों के अङ्ग काटते हैं, वैसे शत्रुओं के मर्मस्थल को बिना काटे—दारुण कर्म बिना किये—राजा को विशाल सम्पत्ति नहीं मिलती। शत्रु की सेना जब थकी हुई हो, कमज़ोर पड़ गई हो, किसी संक्रामक रोग के फैलने से पीड़ित हो, खाने को अन्न और पीने को पानी न पा सकती हो, या किसी प्रकार का विश्वास दिलाने से धीमी पड़ गई हो—असावधान हो गई हो—तब उस पर धावा करके उसे नष्ट कर दे। अर्थ की कामना रखनेवाले दो पुरुष कभी परस्पर मित्र नहीं हो सकते। अर्थसम्पन्न पुरुषों में मित्रता का भाव नहीं रहता; इससे किसी की इच्छा पूरी न करे—अधूरी रक्खे ताकि वह उलझा रहे। शत्रु को वश अथवा नष्ट करने के लिए कोई उपाय उठा न रखना चाहिए। पूर्ण रूप से साम-दान-भेद-दण्ड आदि का प्रयोग करके अपने भले की चेष्टा करनी चाहिए। ऐश्वर्य की इच्छा रखनेवाले राजा को चाहिए कि ईर्ष्याहीन भाव से यत्नपूर्वक सहाय, साधन, उपाय आदि का संग्रह और समय पाकर विग्रह ( युद्ध ) करे। इस काम में बड़ा उत्साही और तत्पर रहे। राजा को ऐसा उपाय करना चाहिए कि शत्रु और मित्र भी उसके इरादे को न जान सकें। राजा जिस काम में हाथ डाले वह पूरा होने पर ही प्रकट होना चाहिए। जब तक आपत्ति

न आवे तब तक डरे हुए पुरुष की तरह उसके प्रतीकार की चेष्टा करता रहे किन्तु जब आपत्ति आ जाय तब निडर होकर उसका सामना करे। जिसके दैव प्रतिकूल है उस शत्रु पर जो दया दिखाकर उस समय उसे छोड़ देता है वह आप अपनी मौत बुलाता है। हर एक काम के कारणों को पहले से ही देखकर सोच लेना चाहिए; क्योंकि एकाएक कोई काम आ पड़ने पर बुद्धि को भ्रम हो जाता है। इस कारण उसी दम उस पर विचार करके उसे पूरा करने में कोई प्रयोजन की बात रह जाना बहुत सम्भव है। अभ्युदय की इच्छा रखनेवाले राजा को चाहिए कि देश-काल पर विचार करके उत्साह के साथ कर्त्तव्य-पालन का यत्न करे। दैव ( पूर्वसञ्चित कर्म ), धर्म, अर्थ और काम को भी देश-काल के अनुसार सफल और सम्पन्न करना चाहिए। देश और काल को देखकर काम करने से ही सफलता और कल्याण होता है। यह नीति का निश्चय और निचोड़ है। बालक या छोटे शत्रु की भी उपेक्षा न करनी चाहिए; क्योंकि ताड़ के वृक्ष की तरह वह शीघ्र ही अपनी जड़ जमा लेता है। वह जङ्गल में डाली हुई आग की चिनगारी के समान शीघ्र ही बहुत बड़ा बन जाता है। थोड़ी सी आग हवा के सहारे धीरे-धीरे बढ़कर बहुत बड़ा रूप धारण कर लेती है और तब वह बहुत बड़े-बड़े पदार्थों को भी पल भर में भस्म कर डालती है। ऐसे ही जो राजा सहाय, साधन आदि के द्वारा अपने को बढ़ाता रहता है वह बड़े से बड़े सबल शत्रु और उसके सहायकों को चौपट कर सकता है। शत्रु को कुछ देने की आशा भी दे तो बहुत दिनों का वादा करे। समय आने पर कोई न कोई अड़चन दिखाकर वादे को पूरा न करे। बाधा का कोई कारण बता दे। उस कारण का भी और कोई कारण बताकर टाल दे। पैना छुरा बाल काटता है। वह सब समय अपने खाने में छिपा रहता है, समय पड़ने पर निकलकर अपना काम करता है। नीतिज्ञ राजा को भी छुरे की तरह तीक्ष्ण होकर शत्रुओं का नाश करना चाहिए। वह अपने उद्देश को किसी के आगे प्रकट न करे।

इसलिए हे कुरुकुल-तिलक, पाण्डवों और अन्य राजाओं के साथ इसी न्याय से व्यवहार करते हुए आप वही कीजिए जिसमें पीछे पछताना न पड़े। आपका इस समय सब प्रकार ९०
से अभ्युदय हो रहा है; आप प्रधान राजा समझे जाते हैं। पाण्डवों से आप अपनी और अपने ऐश्वर्य की रक्षा कीजिए। आपके भतीजे ( पाण्डव ) बड़े बली हैं। वही काम कीजिए जिसमें पीछे किसी विपत्ति का सामना न हो।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, यों कहकर कणिक अपने घर को चले गये। उनकी बातें सुनकर धृतराष्ट्र को बड़ी चिन्ता हो गई। ९३

## जतुगृह-दाहपर्व

# एक सौ चवालीस अध्याय

संक्षेप से जतुगृह-दाह का वर्णन। पाण्डवों की उन्नति देखकर दुर्योधन का सन्ताप और धृतराष्ट्र के आगे रोना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज ! अब शकुनि, दुर्योधन, कर्ण और दुःशासन इन चारों ने मिलकर यह सलाह की कि कुन्ती और पाण्डवों को आग में जलाकर मार डालना चाहिए।



इसकी सूचना धृतराष्ट्र को भी दे दी। इशारों से हृदय के अभिप्राय को जाननेवाले, तत्त्वदर्शी, निष्पाप, पाण्डवों के हितचिन्तक विदुरजी आँखों के इशारे आदि देखकर दुष्ट दुर्योधन आदि के, ऊपर कहे गये, इरादे को जान गये। तब उन्होंने विचारा कि कुन्ती अपने पुत्रों को लेकर यहाँ से भाग जायँ; यही उनके लिए अच्छा होगा। विदुर ने गुप्त रूप से ऐसी एक मज़बूत नाव बनवाई जो आँधी के वेग और लहरों के थपेड़ों को अच्छी तरह सह सकती थी। उसमें एक बहुत भारी लोहे का लङ्गर रक्खा गया और एक पताका खड़ी की गई। नाव तैयार होने पर विदुर ने कुन्ती से कहा—कुन्ती, ये धृतराष्ट्र इस कुल की कीर्त्ति और वंश को नष्ट करने पर उतारू हैं। इनकी बुद्धि उलटी हो गई है; इसी से ये सनातनधर्म को छोड़ने के लिए तैयार हैं। मैंने यह जलमार्ग में चलने लायक़, लहरों और आँधी के वेग को सह सकनेवाली नाव बनवाई है। इसी पर अपने पुत्रों के साथ बैठकर, प्राण बचाने के लिए, तुम यहाँ से चल दो।

महाराज, विदुर के वचन सुनकर यशस्विनी कुन्ती बहुत व्यथित हुईं। पुत्रों को साथ लेकर वे उसी नाव पर बैठकर चल दीं। वह नाव गङ्गा के भीतर होकर चली। अब विदुर की आज्ञा के अनुसार पाण्डवों ने नाव को छोड़ दिया, और [ दुर्योधन के दिये ] धन को साथ लिये हुए वे निर्विघ्न रूप से वन में पहुँच गये। इधर एक निषाद की स्त्री अपने पाँच पुत्रों को लिये हुए दैवयोग से उसी, कुन्तीसहित पाण्डवों को जलाने के लिए, [ दुर्योधन के बनवाये ] लाक्षाभवन में आकर सोई थी। वह निर्दोष निषाद की स्त्री अपने पुत्रों के साथ उसी भवन में
१० जलकर मर गई। नराधम पापी पुरोचन भी उसी भवन में जल गया। इस प्रकार विदुर की

सलाह के अनुसार, अनुचरों-सहित धृतराष्ट्र के पुत्रों को धोखा देकर, महात्मा पाण्डव और उनकी माता कुन्ती मृत्यु के मुँह से बच गईं। [ दुर्योधन के जासूसों को भी पाण्डवों के बचकर निकल जाने का पता न लगा। ]

वारणावत नगर के निवासी लाक्षाभवन को जला हुआ देखकर कुन्ती सहित पाण्डवों के लिए दुःख और शोक करने लगे। उन्होंने दूत के द्वारा धृतराष्ट्र के पास सब हाल कहला भेजा कि राजन्, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया। तुमने पाण्डवों को आग में जलाकर मरवा डाला। तुम्हारी इच्छा पूरी हो गई। अब पुत्र के साथ निष्कण्टक राज्य करो।

पाण्डवों के जलने का हाल सुनकर पहले धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रों के साथ उनके लिए बहुत शोक किया। फिर भीष्म, विदुर और अन्यान्य भाई-बन्धुओं के साथ कुन्ती और पाण्डवों के प्रेत-कृत्य किये।

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, मैं जतुगृह-दाह और पाण्डवों के छुटकारे का हाल विस्तार से सुनना चाहता हूँ। क्रूर कणिक के उपदेशानुसार धृतराष्ट्र के पुत्रों ने यह निन्दनीय क्रूर कर्म किया था। इसका पूरा वृत्तान्त कहिए। सुनने के लिए मुझे बड़ा कौतूहल है।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, जतुगृह-दाह और उससे पाण्डवों के बचने का वृत्तान्त मैं विस्तार के साथ कहता हूँ; सुनिए। भीमसेन को अत्यन्त बलवान् और अर्जुन को सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या में निपुण हुआ देखकर दुष्टबुद्धि दुर्योधन को दिन-रात दुर्निवार चिन्ता पीड़ा पहुँचाने लगी। तब पाण्डवों को मार डालने के लिए कर्ण और शकुनि तरह-तरह के उपाय करने २०
लगे। पाण्डव भी विपत्ति आते ही उसी घड़ी उसके प्रतिकार की चेष्टा करते थे किन्तु वे, विदुर के उपदेश के अनुसार, दुर्योधन आदि की करतूतों को प्रकट न करते थे।

हे भरतश्रेष्ठ, पाण्डवों में अनेक गुण देखकर नगरवासी लोग सब प्रकार की सभाओं में उनके गुणों का कीर्त्तन करने लगे। सभा-समाजों में और राहों-चौराहों पर जमा होकर सब लोग "युधिष्ठिर महाराज पाण्डु के बड़े पुत्र हैं; इस कारण वही वास्तव में राजगद्दी के अधिकारी हैं" इस विषय पर आन्दोलन करने लगे।

वे लोग कहने लगे—प्रज्ञाचक्षु महाराज धृतराष्ट्र को, अन्धे होने के कारण, पहले राज्य नहीं मिला। इसी कारण वे अब किस तरह राजा हो सकते हैं ? उनके सिवा शान्तनु-पुत्र सत्यप्रतिज्ञ महाव्रत भीष्म पहले ही राज्य का त्याग कर चुके हैं। वे अब उसे ग्रहण ही नहीं कर सकते। इस कारण आओ हम नवयुवक, युद्धकुशल, सत्यानुरागी, दयालु, वेदज्ञ, पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर को अपना राजा बनाकर राज्यासन पर बिठा दें। वे धर्मात्मा हैं इस कारण भीष्म, धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि का यथोचित सेवा-सत्कार करते हुए उन्हें तरह-तरह की भोग की सामग्रियाँ देकर सन्तुष्ट रक्खेंगे।

युधिष्ठिर के बारे में प्रजा की यह बातचीत सुनकर दुर्बुद्धि के कारण दुर्योधन को बड़ा दुःख हुआ। वह दुस्सह चिन्ता से मन ही मन जलने लगा। दुष्ट विचारवाला दुर्योधन सन्ताप के मारे प्रजा की ऐसी बातों को सुन न सकता था। ईर्ष्या से जलता हुआ वह एक दिन एकान्त में धृतराष्ट्र के पास पहुँचा। वहाँ और किसी को न देखकर वह धृतराष्ट्र को प्रणाम करके, युधिष्ठिर पर प्रजा के अनुराग से होनेवाले अपने दुःख का हाल कहने लगा—पिताजी, मैंने पुरवासियों को ऐसी बातचीत करते सुना है, जिससे मुझे अपने अमङ्गल की आशङ्का है। वे आपको और भीष्म को कुछ न मानकर पाण्डवों को ही अपना राजा बनाने की सलाह कर रहे हैं। भीष्मजी इस पर चाहे राज़ी भी हो जायँ; क्योंकि उन्हें स्वयं राज्यभोग की इच्छा नहीं है। पुरवासियों के इस विचार से हमीं को घोर कष्ट और चिन्ता हो रही है। महाराज, पाण्डु को केवल अपने गुणों से ही बाप-दादे का राज्य मिला था। वास्तव में वे राज्य के अधिकारी न थे। आप बड़े थे, इस कारण राज्य के अधिकारी थे। केवल अन्धे होने के कारण आपको राज्य नहीं मिला। यदि पाण्डु के पुत्र उनके उत्तराधिकारी होने के कारण राज्य पावेंगे तो फिर उनके पुत्र-पौत्र ही राज्य पाते रहेंगे। इस प्रकार पाण्डु का वंश यदि उत्तरोत्तर सिंहासन पाता रहेगा तो हम और हमारे पुत्र राजवंश से बाहर और प्रजा की अवज्ञा के पात्र होकर दुर्दशा भोगेंगे। आप ऐसी कोई चाल चलिए, जिसमें हमको पराये दिये अन्न से पलकर कष्ट न भोगना पड़े। राजन्, आप यदि पहले राज्य पाते तो हम भी राजा होते। प्रजा की रीझ या खीझ का ख़याल न करते।



———

# एक सौ पैंतालीस अध्याय

पाण्डवों को वारणावत नगर में भेज देने की सलाह

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, प्रज्ञाचक्षु राजा धृतराष्ट्र पुत्र की ये बातें सुनकर और कणिक के पूर्वोक्त नीति के उपदेश को स्मरण करके सोच में पड़ गये। दुविधा में पड़कर वे कुछ भी निश्चय न कर सके। इसके बाद कर्ण, शकुनि और दुश्शासन से सलाह करके दुर्योधन ने धृतराष्ट्र से कहा—आप किसी हिकमत से, देशनिकाले के तौर पर, पाण्डवों को यहाँ से निकालकर वारणावत नगर को भेज दीजिए। ऐसा हो जाने पर फिर हमें उनकी तरफ़ से कुछ भी खटका न रहेगा।

पुत्र के ये वचन सुनकर तनिक सोचकर धृतराष्ट्र ने कहा—देखो, पाण्डु नित्य धर्म के मार्ग पर चलनेवाले धर्मात्मा थे। वे बन्धु-बान्धवों से, ख़ासकर मुझसे, धर्म के अनुसार ही व्यवहार करते थे। भोजन, वस्त्र आदि किसी सामग्री का उन्हें लोभ न था। वे कुछ भी न जानते थे; मेरा ही दिया हुआ खाते और पहनते थे। वे नाममात्र को राजा थे। राज्य का सब काम मुझसे पूछकर करते थे। पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिर भी उन्हीं के समान धर्मात्मा, गुणी, यशस्वी और नगरवासियों को प्यारे हैं। उनके चार भाई और सब प्रजा के लोग सहायक हैं। मैं युधिष्ठिर को बलपूर्वक उनके बाप-दादे के राज्य से कैसे निकाल बाहर कर सकता हूँ? पाण्डु अपने मन्त्री और सेना के लोगों को पालते और प्रसन्न रखते थे। मन्त्रियों और सैनिकों के लड़के-बाले भी अब तक उनसे पाये हुए धन और जीविका से पल रहे हैं। पाण्डु ने नगरवासी आदि जिन लोगों का सत्कार किया है वे इस समय युधिष्ठिर के साथ १०
बुरा बर्ताव करते देखकर अवश्य ही हमारे विरोधी बन जायँगे। वे हमको और हमारे बान्धवों को मारने के लिए क्यों न तैयार हो जायँगे?

दुर्योधन ने कहा—पिताजी, आप जो कह रहे हैं सो ठीक है। अपने में यह कमी देखकर मैं सारी प्रजा को धन और मान देकर अपनी तरफ़ कर लूँगा। वे अवश्य ही हमारी सहायता करेंगे। इस समय मन्त्री मेरे ही कहे में हैं और ख़ज़ाना भी मेरे ही हाथ में है। इस कारण किसी सहज उपाय के द्वारा आप झटपट पाण्डवों को यहाँ से निकालकर वारणावत को भेज दीजिए। जब मैं राज्यासन पर बैठकर अपनी जड़ अच्छी तरह जमा लूँगा तब पुत्रों-सहित कुन्ती फिर यहाँ चली आवेंगी।

धृतराष्ट्र ने कहा—दुर्योधन, तुम जो कह रहे हो उस बारे में मैं भी मन ही मन सोचता रहता हूँ; किन्तु इसे दुष्ट विचार समझकर किसी के आगे प्रकट नहीं करता। भीष्म, द्रोण, कृप और विदुर आदि में से कोई भी यह सलाह न देगा कि पाण्डवों को हस्तिनापुर से निकाल दो। पुत्र, कुरुवंश के लोगों की दृष्टि में हम लोग और पाण्डव, दोनों ही समान हैं।

महात्मा धर्मात्मा कुरुवंशी लोग दोनों में से किसी को कम और किसी को अधिक समझकर किसी की बुराई न चाहेंगे। हम यदि पाण्डवों की बुराई करने को तैयार होंगे तो ये महात्मा कुरुवंशी और सारे संसार के लोग हमारे शत्रु बन जायँगे।

दुर्योधन ने कहा—आप क्यों डरते हैं? भीष्म हमको और पाण्डवों को एक सा प्यार करते हैं। वे इस झगड़े में उदासीन ही रहेंगे। द्रोण के पुत्र अश्वत्थामा मेरे दल में हैं। इस कारण जिधर पुत्र होगा उधर ही द्रोणाचार्य को भी रहना पड़ेगा। कृपाचार्य भी बहनोई द्रोणाचार्य और भानजे अश्वत्थामा को नहीं छोड़ सकते; इस कारण वे हमारे ही पक्ष में रहेंगे। विदुर हमसे पलते हैं परन्तु वे छिपकर पाण्डवों की भलाई सोचा करते हैं। लेकिन वे अकेले पाण्डवों का पक्ष लेकर हमारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते। इसलिए आप बेखटके कुन्ती-सहित पाण्डवों को यहाँ से निकाल दीजिए। ऐसा कीजिए जिसमें वे अभी वारणावत नगर को चल दें। मुझे नींद नहीं आती, हृदय में घाव सा लगा हुआ है। यह काम करके आप मेरे शोक की आग को शीघ्र बुझाइए।

---

## एक सौ छियालीस अध्याय

पाण्डवों की वारणावत जाने की इच्छा और उसके लिए धृतराष्ट्र की आज्ञा

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, दुर्योधन अपने भाइयों की सहायता से धन देकर और सम्मान करके प्रजा को धीरे-धीरे अपने वश में करने का उद्योग करने लगा। धृतराष्ट्र की सलाह से कुछ चतुर मन्त्री पाण्डवों के आगे वारणावत नगर को अत्यन्त रमणीय बताकर उसकी प्रशंसा करने लगे कि वह स्थान बहुत ही सुहावना है। इन दिनों वहाँ पशुपति महोत्सव (मेला) होनेवाला है। वारणावत नगर योंही रत्न-पूर्ण और पवित्र स्थान होने के कारण दर्शनीय है। फिर वहाँ देखने लायक बड़ा भारी मेला भी होनेवाला है। राजन्, उन मन्त्रियों के मुँह से वारणावत की ऐसी प्रशंसा सुनकर वहाँ जाने के लिए पाण्डवों का भी जी चाहा। जब धृतराष्ट्र को यह मालूम हुआ कि पाण्डव वहाँ जाना चाहते हैं तब उन्होंने पाण्डवों को पास बुलाकर कहा—पुत्रो, ये सब लोग मेरे आगे अक्सर कहा करते हैं कि वारणावत नगर बड़ा ही रमणीय स्थान है। वहाँ एक बड़ा भारी मेला भी हुआ करता है। यदि वह उत्सव देखने को तुम्हारा जी चाहता हो तो अपने अनुचर और परिवार के लोगों के साथ वहाँ जाकर देवताओं के समान कुछ दिन सैर कर आओ। उस मेले में तुम्हारे पास जो गुणी, गवैये, ब्राह्मण आदि आवें उन्हें खूब धन-रत्न देना। इस प्रकार देवताओं के समान तेजस्वी तुम पाँचों भाई कुछ दिन तक आनन्द करो। फिर जब जी चाहे, हस्तिनापुर को लौट आना।

वैशम्पायन कहते हैं कि राजा युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के इरादे को जान गये। उन्होंने यह भी सोच लिया कि इस समय हमारा कोई सहायक नहीं है। युधिष्ठिर ने कहा—चाचाजी, आपकी आज्ञा पाकर हम वहाँ अवश्य जायँगे। इसके उपरान्त जाने के दिन भीष्म पितामह, बुद्धिमान् विदुर, द्रोणाचार्य, बाह्लीक, सोमदत्त, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, भूरिश्रवा आदि मान्य पुरुषों से और गान्धारी, ब्राह्मणों, तपस्वी पुरोहितों, पुरवासियों आदि से मिलकर दीन भाव से युधिष्ठिर ने कहा—हम महाराज धृतराष्ट्र की आज्ञा से अनुचरों के साथ श्रीसम्पन्न मनोहर वारणावत नगर को जाते हैं। आप लोग प्रसन्न चित्त से यह आशीर्वाद करें कि हम वहाँ दिन-दिन अपनी उन्नति कर सकें; किसी पापकर्म में हमारी प्रवृत्ति न हो।

महाराज, युधिष्ठिर के ये वचन सुनकर भीष्म आदि सब कौरव उन्हें प्रसन्न करने के लिए प्रसन्नतापूर्वक कहने लगे—रास्ते में सब प्राणी तुम्हारी रक्षा करें; तुम्हें किसी तरह कोई विपत्ति न हो।

राज्यलाभ के लिए स्वस्त्ययनपाठ और अन्यान्य मङ्गल-कर्म समाप्त करके युधिष्ठिर आदि पाण्डव वारणावत जाने के लिए तैयार हो गये। १९

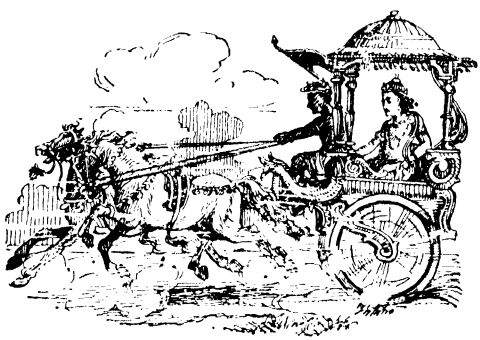
---

## एक सौ सैंतालीस अध्याय

दुर्योधन का पुरोचन को लाक्षाभवन बनाने के लिए आज्ञा देकर भेजना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, राजा धृतराष्ट्र ने जब पाण्डवों को वारणावत जाने की आज्ञा दी तब दुष्ट दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पुरोचन नाम के मन्त्री को एकान्त में बुलाकर उसका दाहना हाथ पकड़कर कहा—पुरोचन, इस धन-धान्य-पूर्ण सारी पृथ्वी पर हमारा तुम्हारा दोनों का अधिकार है। तुमको वही उपाय सोचना और करना चाहिए जिसमें वह मेरी हो जाय। तुमसे बढ़कर विश्वासपात्र सहायक ही और कौन मेरा है, जिसके साथ मैं ऐसी सलाह कर सकूँगा! मित्र, तुम इस सलाह को गुप्त रखकर मेरे शत्रुओं को जड़-मूल से नष्ट कर दो। मैं जिस तरह कहता हूँ उस तरह होशियारी के साथ सब काम करो। पिता ने पाण्डवों को वारणावत जाने की आज्ञा दी है। उसी आज्ञा के अनुसार वे वहाँ जाकर उत्सव देखेंगे और कुछ दिन रहकर सैर करेंगे। इससे शीघ्रगामी खच्चरों के रथ पर बैठकर तुम अभी वारणावत जाओ। वहाँ पहुँचकर नगर के किनारे पर, बहुत सा धन लगाकर, चार दालानोंवाला एक उत्तम भवन बनवाओ। पहले सन, सर्जरस और लकड़ी आदि आग को भड़कानेवाली सामग्री से वह भवन बनवाओ। फिर कुछ मिट्टी में घी, चर्बी, तेल और बहुत सी लाख मिलाकर ऊपर से ऐसा लेप करा दो कि कोई भाँप न सके। सन, तेल, घी, लाख, लकड़ी १०

आदि सामग्री भी उस घर में जहाँ-तहाँ खूब जमा कर रखना। किन्तु यह सब काम ऐसे गुप्त रूप से होशियारी के साथ होना चाहिए कि पाण्डव या और कोई जाँचने पर भी उस घर को कहीं पर से आग में शीघ्र जलनेवाली सामग्री से बना हुआ न जान सके। इस तरह घर बनवाकर वहीं ठहरो। जब माता कुन्ती-सहित पाण्डव वहाँ पहुँचें तब बड़े आदर के साथ उनको उसी घर में ठहराना। उस घर में उनके लिए बैठने को उत्तम आसन, दिव्य सवारियाँ, पलँग आदि सब आराम के सामान रखना; जिसमें मेरे पिता सुनकर सन्तुष्ट हों। वारणावत नगर के लोग और पाण्डव किसी तरह हमारे विचार और कार्य का कुछ भी पता न पा सकें। कुछ दिनों रहने से जब पाण्डवों को विश्वास हो जाय और वे उस घर में बेखटके सो रहे हों तब तुम द्वार पर आग लगा देना। पाण्डवों-सहित कुन्ती उसी घर में जलकर भस्म हो जायँगी। इस तरह हमारा काम सिद्ध हो जायगा और कोई हमारी निन्दा भी न करेगा। लोग समझेंगे, घर में अचानक आग लगने से पाण्डव जल गये।



यह सब काम करने की प्रतिज्ञा करके पुरोचन खच्चरों के रथ पर सवार हुआ। वह पहले से ही वारणावत नगर को रवाना हो गया। महाराज, पुरोचन ने पहले से पहुँचकर
१९ दुर्योधन की इच्छा के अनुसार सब काम कर रक्खा।

---

## एक सौ अड़तालीस अध्याय

पाण्डवों की वारणावत-यात्रा। विदुर का गुप्त उपदेश

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, हवा के समान वेग से चलनेवाले श्रेष्ठ घोड़े जिनमें जुते हैं उन रथों पर सवार होने से पहले पाण्डवों ने आर्त्त भाव से भीष्म, धृतराष्ट्र, महात्मा द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर और अन्य बड़े-बूढ़ों के चरणों में प्रणाम किया; जो लोग हमजोली के थे उन्हें गले से लगाया। जो पाण्डवों से छोटे थे उन्होंने उन्हें प्रणाम किया। गान्धारी आदि माताओं की प्रदक्षिणा करके और आज्ञा लेकर पाण्डवों ने सब पुरवासियों से भी सादर सम्भाषण किया। इसके बाद वे वारणावत नगर को चल दिये। महाज्ञानी विदुर, कुछ कुरुवंश के वृद्ध लोग और बहुत से पुरवासी शोकार्त्त होकर पाण्डवों के पीछे-पीछे चले। पाण्डवों के पीछे

जा रहे कुछ निर्भय ब्राह्मण, पाण्डवों को बहुत ही दीन देख, दुःखित होकर कहने लगे—मन्द-बुद्धि राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्रों का पक्षपात करते हुए पाण्डवों का बुरा चेतते हैं। धर्म-अधर्म का उन्हें कुछ भी विचार नहीं। निष्पाप युधिष्ठिर, महाबली भीमसेन, अर्जुन, या माद्री के पुत्र महात्मा नकुल और सहदेव से धृतराष्ट्र का या उनके पुत्रों का कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता। युधिष्ठिर के पिता राजा थे, इस कारण युधिष्ठिर राज्य के अधिकारी हैं। इसी से राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिर को और उनके भाइयों को नहीं देख सकते। पाण्डवों को राज्य से निकालकर दूसरी जगह भेज देना बड़ा ही अधर्म है। महात्मा भीष्म कैसे इस अधर्म को देख रहे और इसका अनुमोदन कर रहे हैं? उन्होंने क्यों नहीं इस अन्याय का प्रतिवाद किया? १०
शान्तनु के पुत्र राजा विचित्रवीर्य पूर्व समय में पिता की तरह हमारा पालन कर गये हैं। उनके बाद राजर्षि पाण्डु ने भी उसी तरह प्रजापालन किया है। पुरुषसिंह पाण्डु स्वर्गवासी हो गये; इसी से इन बालक राजपुत्रों को धृतराष्ट्र नहीं देख सकते। हम लोग पाण्डवों को देश से निकालकर दूसरी जगह भेजना पसन्द नहीं करते। हम सब इस नगर को और अपने घरों को छोड़कर वहीं रहेंगे जहाँ युधिष्ठिर जायँगे।

राजन्, दुःखपीड़ित पुरवासियों के ये वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर को भी दुःख हुआ। उन्होंने तनिक सोचकर कहा—राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता, माननीय, गुरु, श्रेष्ठ और राजा हैं। किसी तरह की शङ्का न करके उनका कहा करना ही मेरा व्रत है। तुम लोग भी हमारे हित-चिन्तक मित्र हो। प्रदक्षिणा करके, आशीर्वाद देकर, प्रसन्नतापूर्वक तुम लोग अपने-अपने घर को लौट जाओ। जब हमारा कुछ काम होगा, सहायता की ज़रूरत होगी, तब तुम लोग हमारा प्रिय और हित करने का उद्योग करना।

युधिष्ठिर के यों कहने पर सब पुरवासी प्रदक्षिणा और प्रेम-सम्भाषण करके आशीर्वाद देते हुए नगर को लौट गये। उन लोगों के चले जाने पर धर्मज्ञ, बुद्धिमान् और प्रलाप-वचनों से वक्ता के आशय को समझ लेनेवाले विदुर ने म्लेच्छ भाषा में, बुद्धिमान् और प्रलाप-वचनों से वक्ता के आशय को समझनेवाले, युधिष्ठिर से उपदेश के मिस यों कहना शुरू किया। युधिष्ठिर भी म्लेच्छ भाषा को अच्छी तरह बोल लेते और समझ सकते थे। विदुर ने कहा—जो २०
मनुष्य शत्रुओं की, नीतिशास्त्र के अनुकूल, सलाह को समझ सकता है उसे चाहिए कि शत्रुओं के इरादे को जानकर आपत्ति से अपना उद्धार करने का उपाय करे। एक प्रकार का अस्त्र है, वह यद्यपि लोहे का बना हुआ नहीं है तो भी तीक्ष्ण है और शरीर को नष्ट कर सकता है। उसे जो जानता है उस घात जाननेवाले को शत्रु नहीं मार सकते। [ अर्थात् तुम लोगों को जलाने के लिए एक आग्नेय भवन तुम्हारे शत्रुओं ने बनवाया है। ] देखो, घास-फूस आदि को जलानेवाला और जाड़े को नष्ट करनेवाला अग्नि सारे जङ्गल को जला देता है; परन्तु बिलों के भीतर

रहनेवाले जीव उससे अपना बचाव कर लेते हैं। इस ढङ्ग से जो अपनी रक्षा करता है वही जीवित रहता है। [ अर्थात् तुम सुरङ्ग से निकलकर अपनी रक्षा करना। ] जिसके आँखें नहीं हैं वह राह नहीं पाता; उसे दिशाओं का भ्रम भी हो जाता है। जिसमें धैर्य नहीं है वह विभव को नहीं पाता। मेरे इस समझाने को तुम ख़ूब समझ लो। [ अर्थात् तुम पहले से ही सब राहें देखकर दिशा आदि का ज्ञान प्राप्त कर लेना जिसमें रात को सुरङ्ग से निकलकर वन में भटकना न पड़े। ] दुष्ट पुरुषों के दिये हुए, बिना लोहे के, शस्त्र को स्वयं स्वीकार कर लेना ही ठीक है। आप दोनों ओर राहवाले स्याही के भठ के समान स्थान की शरण लेकर, शत्रुओं को नष्ट करके, आग की आँच से बच जाना चाहिए। [ अर्थात् पुरोचन के बनाये घर में तुम ख़ुशी से रहना। मौक़ा पाकर सुरङ्ग के द्वार से बाहर निकल जाना और पुरोचन को उसी में जलकर मर जाने देना। क्योंकि वह जीता रहेगा तो पीछा करने का खटका बना रहेगा। ] घूमने से राहों का ज्ञान हो जाता है; नक्षत्रों से दिशाओं का पता लगा लिया जाता है। जो मनुष्य बुद्धि के द्वारा पाँचों इन्द्रियों को वश में रखता है वह पीड़ा से बच जाता है। शत्रु उसे कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते।

पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर ने यह सुनकर विज्ञशिरोमणि विदुर से कहा—मैंने आपके उपदेश को अच्छी तरह समझ लिया।

पाण्डवों को इस तरह उपदेश देते हुए विदुर और भी कुछ दूर तक उनके साथ गये। अन्त को पाण्डवों की प्रदक्षिणा करके, प्रेम-सम्भाषण करके, आशीर्वाद देकर नगर को लौट गये।

भीष्म, विदुर और सब पुरवासी जब लौट गये तब कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा—सब बन्धु-बान्धवों के आगे विदुर ने जो कुछ धीरे-धीरे तुमसे कहा और तुमने उनसे कहा कि मैं सब
३० समझ गया वह मेरी समझ में नहीं आया। यदि मुझसे कहने में कुछ हानि न हो, और मैं उसे समझ सकूँ, तो उस अपने और विदुर के संवाद का तात्पर्य कहो। मैं सुनना चाहती हूँ।

युधिष्ठिर ने कहा—विदुर ने मुझसे कहा है कि तुम घर ( विष ) और आग से बचे रहना। वहाँ की सब राहें देखकर जान लेना। [ नक्षत्रों से दिशाओं की पहचान कर लेना। ] जिस घर में रहना उसे अच्छी तरह जाँचकर देख लेना। जितेन्द्रिय पुरुष ही पृथ्वी का राज्य पा सकता है। इन्हीं सब बातों को समझकर मैंने उनसे कहा कि मैं सब समझ गया।

फागुन बदी अष्टमी को, रोहिणी नक्षत्र में, पाण्डव वारणावत के लिए रवाना हुए।
३४ उस नगर में पहुँचकर पाण्डवों ने नगरवासियों से भेंट की।

# एक सौ उनचास अध्याय

## पाण्डवों का जतुगृह में रहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डवों के आने की ख़बर पाकर वारणावत नगर में रहनेवाली सब प्रजा को बड़ा आनन्द हुआ। अनेकों नगरवासी लोग, शास्त्र की विधि के अनुसार, उत्साह के साथ सब मङ्गल की चीज़ें और अनेक प्रकार की भेंटें लेकर तरह-तरह की सवारियों पर चढ़कर पाण्डवों से मिलने के लिए चले। उन्होंने पाण्डवों को चारों ओर से घेर लिया। जय-जयकार करते हुए वे आशीर्वाद देने लगे। देवतुल्य राजा युधिष्ठिर उन पुरवासियों के बीच में, देवमण्डली में स्थित इन्द्र के समान, शोभायमान हुए। पुण्यात्मा पाण्डवों ने पुरवासियों की पूजा स्वीकार करके उनका यथोचित सत्कार किया और फिर मनुष्यों से पूर्ण, सजे हुए, वारणावत नगर के भीतर प्रवेश किया। पुर में जाकर वे पहले वेदपाठ आदि अपने कर्मों में लगे हुए ब्राह्मणों के यहाँ गये। फिर क्रमशः नगर के अधिकारी, योद्धा लोगों के घरों में, वैश्यों और शूद्रों के यहाँ उपस्थित हुए। हे भरतश्रेष्ठ, इस प्रकार नगरवासियों के सत्कार और पूजन को स्वीकार करके, पुरोचन के साथ, पाँचों पाण्डव अपने डेरे पर पहुँचे। वहाँ पुरोचन ने बड़े आदर के साथ उनको टिकाया—अच्छी-अच्छी खाने की चीज़ें, पीने के पदार्थ, पलँग और आसन आदि देकर उन्हें सन्तुष्ट करने की चेष्टा की। मूल्यवान् कपड़े पहने हुए पाण्डव उसी जगह सुख से रहने लगे।



पुरोचन पाण्डवों की सेवा करता था और पुरवासी लोग उनके पास आया-जाया करते थे। इस तरह दस दिन बीतने पर पुरोचन ने पाण्डवों से उसी अमङ्गलरूप—किन्तु मनोहर नामवाले—जतुगृह की चर्चा की। पुरोचन के कहने से पुरुषसिंह पाण्डव, कैलास के ऊपर यक्षों के समान, उस भवन में रहने को गये। १०

धर्मराज युधिष्ठिर ने उस घर को चारों ओर से देखकर भीमसेन से कहा—भीम, यह घर आग को भड़का देनेवाली सामग्री से बना हुआ है। घी और लाख में मिली हुई चर्बी की गन्ध से यह बात स्पष्ट मालूम पड़ रही है। घर बनाने की विद्या में निपुण और शत्रुओं के विश्वासपात्र कारीगरों ने सन, सर्जरस, सेंठे, घास, बाँस आदि को घी से तर करके उनसे यह घर बनाया है। दुर्योधन के आज्ञाकारी भृत्य पुरोचन ने सोचा है कि जब हम लोग विश्वास करके बेखटके होकर इस घर में रहने लगें तब आग लगाकर हमें जला दे। भाई, इस विपत्ति की बात को बुद्धिमान् विदुर पहले ही ताड़ गये थे। इसी से उन्होंने मुझसे सावधान रहने के लिए कहा था। चाचा विदुर हम पर बड़ा स्नेह रखते हैं और नित्य हमारा हित ही चाहते हैं। दुर्योधन के वशवर्त्ती दुष्ट पुरुषों ने गुप्त रूप से यह विपत्ति में डालनेवाला घर बड़ी होशियारी और कारीगरी के साथ बनवाया है।



भीमसेन ने कहा—यदि आपको निश्चय हो गया है कि यह घर आग को प्रज्वलित करनेवाली चीज़ों से बनाया गया है, तो फिर यहाँ रहने और ठहरने की क्या ज़रूरत ? जहाँ
२० हम पहले ठहरे थे वहीं चलना चाहिए।

युधिष्ठिर ने कहा—मैं चाहता हूँ कि हम लोग सावधानी के साथ इसी घर में रहें। हमारे चेहरे-मोहरे और रङ्ग-ढङ्ग से आशङ्का या सन्देह न प्रकट हो। घात पाकर हमें यहाँ से बचकर निकल जाने की राह खोज निकालनी चाहिए। हमारे आकार या इशारे से कोई भी सन्देह का चिह्न प्रकट हुआ और पुरोचन को यह हाल मालूम हो गया तो वह जल्दी ही इस मकान में आग लगा देगा। वह बलपूर्वक भी हमको इस घर में जलाकर मार सकता है। दुर्योधन के अधीन मन्दमति पुरोचन न तो लोकनिन्दा से डरता है और न उसे अधर्म की परवा है। हम यदि यहाँ जल गये तो हमारे पितामह भीष्म ही क्यों कौरवों पर कोप करेंगे ? अथवा कौरवों को ही कुछ कहकर कुपित क्यों करेंगे ? या धर्म का ध्यान रखकर भीष्म और

अन्य कुरुवंशी लोग दुष्ट दग़ाबाज़ों पर क्रोध भी करेंगे तो वह व्यर्थ होगा। हम यदि आग के भय से डरकर इस जगह से भागना चाहेंगे तो राज्य का लोभी दुर्योधन अपने जासूसों से पता लगाकर, पीछा कराकर, हमको मरवा डालेगा। वह दुष्ट इस समय पद पर स्थित है, उसके अनेक सहायक हैं, उसके पास ख़ज़ाना भी है; और हम अ-पदस्थ, सहायहीन और निर्धन हैं। वह अनेक उपायों से हमें नष्ट कर सकता है। इसलिए पापी पुरोचन और दुर्योधन को धोखा देकर हमें भिन्न-भिन्न स्थानों में गुप्त रूप से रहना और सदा शिकार करते फिरना चाहिए। ऐसा करने से हमें सब राहें मालूम हो जायँगी और हम सहज में भाग सकेंगे। हम अभी कुछ ही दिनों में, ज़मीन के भीतर-भीतर, एक सुरक्षित गुप्त सुरङ्ग खोदेंगे। उसके भीतर जाने पर हम आग में जल न सकेंगे। ऐसा उपाय करना चाहिए कि हम यहाँ से भागकर बच जायँ और हमारे बचकर निकल जाने का हाल न तो पुरोचन को मालूम हो और न पुरवासियों को ही कानोकान ख़बर हो। ३१

---

## एक सौ पचास अध्याय

### सुरङ्ग का खोदा जाना

वैशम्पायन कहते हैं कि राजन्! विदुर का विश्वासी मित्र, चतुर, एक सुरङ्ग खोदनेवाला था। उसने एकान्त में पाण्डवों के पास आकर कहा—मैं बहुत ही होशियार खुदाई का काम करनेवाला कारीगर हूँ। विदुर ने मुझे आपके पास भेजा है और कहा है कि तुम जाकर पाण्डवों का प्रिय और उपकार करो। इसलिए आप आज्ञा कीजिए, मुझे क्या करना होगा? मुझ पर आप लोग विश्वास करें; मैं आपको निशानी के तौर पर बताता हूँ कि यात्रा के समय विदुर ने म्लेच्छ भाषा में गुप्त रूप से आपको कुछ उपदेश किया था और आपने भी कहा था कि मैं समझ गया। यह जो कृष्णपक्ष की चौदस आवेगी उसी दिन, रात के समय, पुरोचन इस घर के द्वार पर आग लगावेगा। दुर्बुद्धि दुर्योधन कुन्तीसहित आप लोगों को जला देने का विचार कर चुका है।

कुन्ती के पुत्र युधिष्ठिर ने यह सुनकर उससे कहा—सौम्य, मुझे निश्चय हो गया कि तुम किसी दुष्ट विचार से नहीं आये हो। तुम विदुर के मित्र, भक्त और अनुगत हो। तुम उन्हें बहुत प्यारे हो। होशियार आदमी से किसी का कोई प्रयोजन छिपा नहीं रहता। तुम विदुर को जिस दृष्टि से देखते हो उसी दृष्टि से हमको भी देखो। हम विदुर को जैसा हितचिन्तक समझते हैं वैसा ही तुमको जानते हैं। हम तुम्हारे ही हैं। तुम उन्हीं की तरह हमारी रक्षा करो। मैं जानता हूँ, पुरोचन ने दुर्योधन की आज्ञा से हमें जलाने के लिए यह

आग्नेय भवन बनवाया है। पापी दुर्योधन के पास इस समय ख़ज़ाना है; उसके सहायक भी बहुत हैं। वह लगातार हमारा अनिष्ट करने की धुन में लगा रहता है। इस कारण तुम कोई यत्न करके इस आग के डर से हमको बचाओ। हम लोग यदि आग में जल जायँ तो दुर्योधन का मनोरथ पूरा हो जाय। उस दुरात्मा ने यह घर ऐसा बनवाया है कि इससे निकलना सहज काम नहीं है। इसके चारों ओर ऊँची दीवारें हैं और एक ही द्वार है। दुर्योधन के इस कुविचार को अवश्य ही पहले से विदुर जान गये थे। इसी से उन्होंने मुझे सावधान कर दिया था। विदुर को जिस विपत्ति की शङ्का थी वह इस समय हमारे सिर पर आ गई है। पुरोचन को ख़बर न हो, और तुम इस आपत्ति से हमें बचा लो।

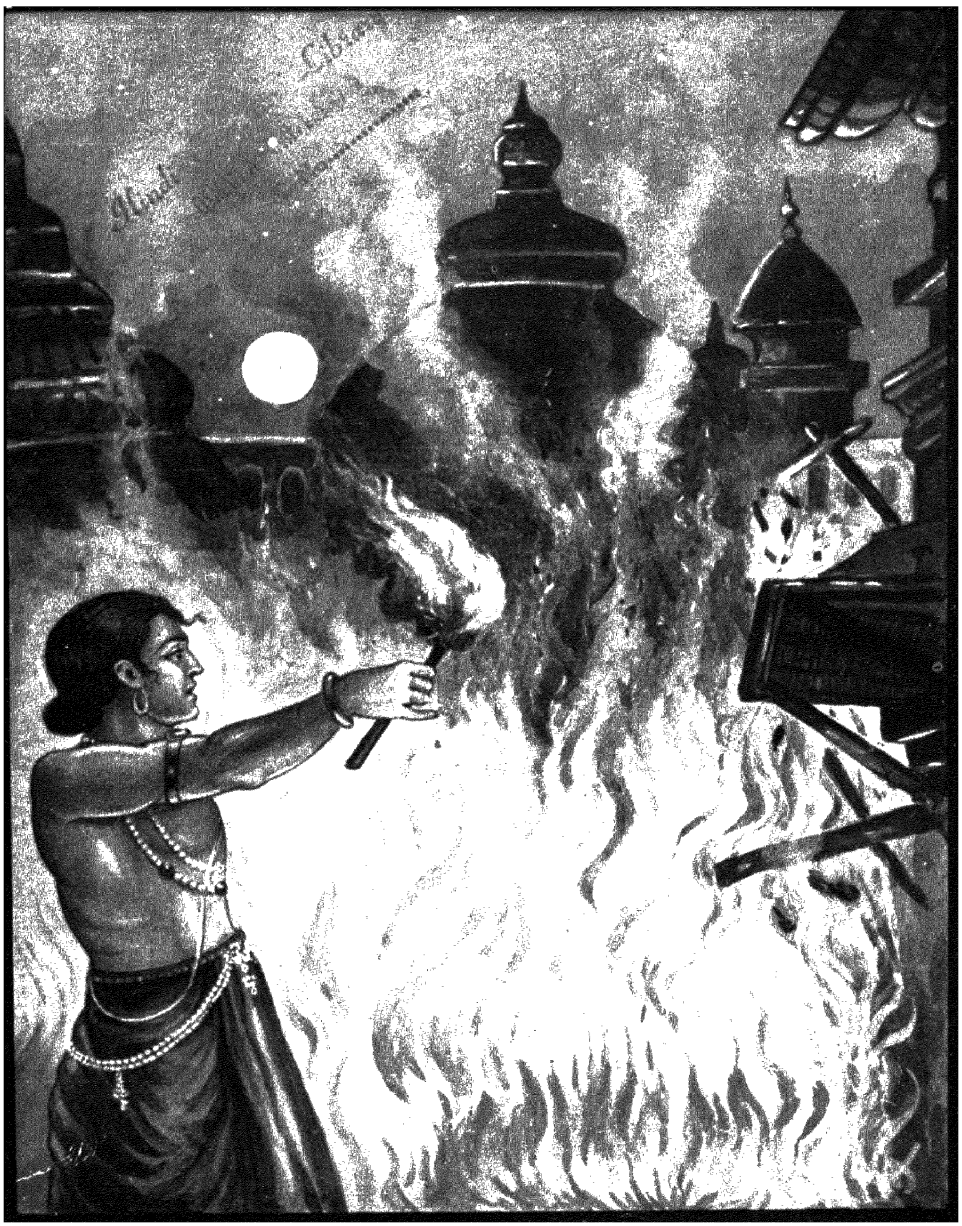
वह खोदने की विद्या जाननेवाला कारीगर युधिष्ठिर की प्रार्थना स्वीकार करके, मोरी साफ़ करने के बहाने, एक बड़ी भारी सुरङ्ग खोदने लगा। उसका मुँह धरती की सतह के बराबर और कम चौड़ा बनाया और उसे किवाड़े लगाकर ढक दिया। पुरोचन के डर से ही उसने उस सुरङ्ग का द्वार इस तरह बन्द करके छिपा दिया। दुष्टबुद्धि पुरोचन हर घड़ी उस घर के द्वार पर बैठा रहता था। रात को सब हथियार बाँधे पाण्डव उसी घर में सोते और दिन को वन में शिकार खेलते फिरते थे। पाण्डवों का रङ्ग-ढङ्ग और आकार देखकर किसी को यह शङ्का नहीं हो सकती थी कि उन्हें दुर्योधन का यह बुरा विचार मालूम हो गया है। अ-विश्वस्त और अ-सन्तुष्ट पाण्डव अपने को विश्वस्त और सन्तुष्ट सा दिखाकर पुरोचन को धोखा दे रहे थे। विदुर के सलाहकार उस सुरङ्ग खोदनेवाले के सिवा कोई नगर-निवासी भी पाण्डवों के हृदय के भाव को नहीं जान सका।

---

## एक सौ इक्यावन अध्याय

जतुगृह-दाह और माता को लेकर पाण्डवों का वहां से निकल भागना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पाण्डवों को वहाँ इस तरह रहते जब एक साल बीत गया तब पुरोचन ने समझ लिया कि अब पाण्डवों को पक्का विश्वास हो गया है; उनके मन में किसी प्रकार की शङ्का या अ-विश्वास नहीं है। इससे उस दुष्ट को बड़ा आनन्द हुआ। धर्मात्मा नीति-निपुण युधिष्ठिर ने, यह समझकर कि पुरोचन को हमारे विश्वास का भरोसा हो गया है, अपने भाई भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव से कहा—दुष्ट पुरोचन को निश्चय हो गया है कि हम लोग उसके ऊपर विश्वास करके इस घर में रहते हैं। इस पापी को धोखा देने का काम अच्छी तरह हो गया। अब यहाँ से भाग निकलने का यही ठीक समय है। हम इस घर में छः मनुष्यों को, अपनी जगह पर जलने के लिए, छोड़कर इस घर ( आयुधागार ) में



भीमसेन का लाक्षागृह में आग लगाना।

आग लगा देंगे। इसी में पुरोचन को भी जला देंगे और सुरङ्ग की राह से भाग चलेंगे। किसी को हमारा पता न लगेगा।

महाराज, एक दिन कुन्ती ने दान-पुण्य के बहाने ब्राह्मण-भोजन का उत्सव किया। उस दिन नगर की बहुत सी स्त्रियाँ रात को वहाँ आईं। वे खा-पीकर कुन्ती से आज्ञा लेकर अपने-अपने घर चली गईं। दैवयोग से एक मल्लाह की औरत, अपने पाँच बेटों को साथ लिये, उस उत्सव में भोजन माँगने आई थी। उसने और उसके बेटों ने खूब छककर भोजन किया। रात को अपने बेटों के साथ वह उसी घर में सो रही। वह और उसके बेटे शराब के नशे में चूर थे।

रात धीरे-धीरे बढ़ने लगी। हवा भी ज़ोर से चलने लगी। तब भीमसेन ने पहले घर के उस हिस्से में आग लगाई जिसमें पुरोचन रहता था। फिर लाक्षाभवन के द्वार में और उसके बाद घर के चारों ओर आग लगा दी। बात की बात में वह आग बड़े वेग से चारों १०
ओर फैलकर भयानक हो उठी। तब पाँचों पाण्डव माता के साथ उस सुरङ्ग के भीतर घुस गये। जलकर बढ़ रही आग की असह्य गर्मी और उत्कट उजेला चारों ओर फैल गया। आग में जलकर फट रहे बाँस आदि का विकट शब्द दूर तक सुनाई पड़ने लगा। सब पुरवासी एकदम जाग पड़े। उस जलते हुए घर की भयानक दशा देखकर सब लोग दुःख प्रकट करते हुए कहने लगे कि दुर्योधन की आज्ञा से पापी पुरोचन ने यह ऐसा घर बनवाया होगा। इसमें सन्देह नहीं कि पाण्डवों को जलाने के लिए उसी ने इसमें आग लगाई है। अहो, राजा धृतराष्ट्र की इस विषम बुद्धि को धिक्कार है। इससे बढ़कर कुबुद्धि और क्या हो सकती है कि उन्होंने सीधे और सच्चे पाण्डवों को शत्रु की तरह जलवाकर मार डाला! सन्तोष की बात है कि बेदर्दी के साथ विश्वासी निरपराध नरश्रेष्ठ पाण्डवों की हत्या करनेवाला पुरोचन भी अपने कर्म का फल पा गया—इसी आग में जलकर मर गया।

महाराज, वारणावत के रहनेवाले लोग इस तरह रोते-कलपते हुए रात भर चारों ओर से उस घर को घेरे रहे।

इधर शत्रुनाशन पाण्डव अपनी माता को साथ लिये हुए उस सुरङ्ग से बाहर वन में जा निकले। सबने वहाँ से जल्दी भाग चलना ही ठीक समझा किन्तु कुछ नींद के मारे और कुछ डर के मारे कोई भी जल्दी न चल सका। दूसरे माता भी साथ थीं। इस कारण फुर्ती से चलना असम्भव हो रहा था। तब महाबली भीमसेन ने कुन्ती को कन्धे पर चढ़ाया, नकुल और सहदेव को गोद में लिया और युधिष्ठिर तथा अर्जुन को दोनों बाहुओं पर बिठाया। इस प्रकार छाती की ठोकर से आगे के पेड़ों को गिराते और पैरों के वेग से पृथ्वी को कँपाते हुए तेजस्वी भीमसेन वायु-तुल्य वेग से आगे बढ़े। २२

# एक सौ बावन अध्याय

विदुर के भेजे मल्लाह की सहायता से पाण्डवों का गङ्गा-पार होना

वैशम्पायन ने कहा—इसी समय चतुर विदुर का भेजा हुआ एक विश्वासी पुरुष उस वन में पहुँचा। उसे विदुर ने पाण्डवों को विश्वास दिलाने के लिए कुछ सङ्केत बता दिया था। उस पुरुष ने विदुर के बताये पते पर पहुँचकर वन में पाण्डवों को देखा। असाधारण बुद्धिमान् विदुर को चर ( जासूस ) के द्वारा दुर्योधन के दुर्विचार का हाल पहले ही मालूम हो गया था। इसी से पाण्डवों को राह बताने के लिए उन्होंने इस आदमी को भेज दिया। एक विश्वस्त कारीगर की बनाई, हवा और लहरों के वेग को सह सकनेवाली, लङ्गरदार, पताका से शोभित, मन और हवा के समान वेग से जानेवाली दृढ़ नाव गङ्गा के किनारे बँधी हुई थी। उस मनुष्य ने पाण्डवों को वहाँ पर ले जाकर वह नाव दिखाई और कहा—राजकुमार युधिष्ठिर, आपको विश्वास दिलाने के लिए विदुर ने जो सङ्केत के वाक्य कहे हैं सो मैं कहता हूँ। उन्होंने कहा है, "घास-फूस आदि को जलानेवाला शिशिर-शोषक अग्नि भारी जङ्गल में बिल के भीतर रहनेवाले प्राणियों को नहीं जला सकता। यह समझकर इसी ढँग से जो कोई अपनी रक्षा करता है वह जीवित रहता है।" हे पाण्डु-नन्दन, मैं विदुर का विश्वासपात्र सेवक हूँ। मैं कर्त्तव्य को बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। ये सङ्केत के वचन कहकर उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है। दूरदर्शी, विज्ञ-शिरोमणि विदुर ने यह भी कहा है कि आप युद्धभूमि में कर्ण, शकुनि, दुर्योधन और उसके भाइयों को ज़रूर हरावेंगे। जलमार्ग से जाने के लिए यह उत्तम नाव तैयार है। आप लोग
१० इस पर चढ़कर अवश्य इस विपत्ति से छुटकारा पा जायँगे।

उस पुरुष ने बहुत ही दुःखित कुन्तीसहित पाण्डवों को उस नाव पर चढ़ाकर फिर कहा—विदुर ने आपको प्यार करके कहा है कि तुम लोग निर्विघ्न चले जाना; राह में घबराना नहीं। महाराज, विदुर के भेजे हुए उस पुरुष ने नाव के द्वारा पाण्डवों को गङ्गा-पार पहुँचा दिया। किनारे पर उतरकर आशीर्वाद देकर जयजयकार करता हुआ वह पुरुष चला गया। पाण्डवों ने उसी पुरुष के द्वारा विदुर के पास अपने कुशल का समाचार भेज दिया। गङ्गा के उस पार पहुँचकर माता को साथ लिये हुए पाण्डव गुप्त
१५ रूप से फुर्ती के साथ जङ्गली राह से जान लेकर भागे।

# एक सौ तिरपन अध्याय

वारणावत-निवासियों का विषाद। हस्तिनापुर में ख़बर भेजना।
धृतराष्ट्र का पाण्डवों का अन्तकर्म कराना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इधर रात बीतने पर सब नगर के लोग पाण्डवों को देखने के लिए उस जल रहे लाक्षाभवन के पास पहुँचे। आग बुझाते-बुझाते नगरवासियों ने देखा कि वह लाख का बना हुआ घर समूचा जल गया है और उसी में पुरोचन भी जला हुआ पड़ा है। सब लोग ऊँचे स्वर से चिल्लाकर खेद प्रकट करते हुए कहने लगे—इसमें सन्देह नहीं कि दुष्ट दुर्योधन ने पाण्डवों के नाश के लिए ही यह भवन बनवाया था। दुर्योधन के इस काम का पता धृतराष्ट्र को अवश्य ही रहा होगा। धृतराष्ट्र भी पाण्डवों से जलते थे; नहीं तो वे अपने पुत्र को मना न करते! भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, विदुर और अन्य कौरवों ने भी धर्म को छोड़ दिया है। आओ, हम लोग धृतराष्ट्र के पास यह कहला भेजें कि तुम्हारा मनोरथ पूरा हो गया; तुम्हारी करतूत से पाण्डव जलकर मर गये!

यों कहते हुए सब नगरवासी आग को हटाकर पाण्डवों का पता लगाने लगे। पाँचों पुत्रों के साथ जली हुई वही मल्लाह की स्त्री उन्हें देख पड़ी। उसे देखकर सबको निश्चय हो गया कि पाँचों पाण्डव और कुन्ती जल गईं। इसी समय विदुर के भेजे हुए उसी सुरङ्ग खोदनेवाले आदमी ने घर साफ़ करते-करते राख से वह सुरङ्ग पाट दी और उसके इस काम को कोई नहीं लख सका।



अब पुरवासियों ने दूत के मुँह से धृतराष्ट्र के पास कहला भेजा कि पुरोचन, कुन्ती और पाँचों पाण्डव उस घर में जलकर मर गये। यह अशुभ समाचार सुनकर धृतराष्ट्र ने ऊपर से बड़ा दुःख प्रकट किया। वे विलाप करते हुए कहने लगे—हाय, पाँचों वीर पाण्डव अपनी माता के साथ जलकर मर गये! आज मुझे भाई पाण्डु के मरने से भी बढ़कर दुःख हुआ! कौरव लोग तुरन्त वारणावत में जाकर उन वीरों का और कुन्ती का अच्छी तरह अन्त्येष्टि कर्म करें। हमारे कुलाचार के अनुसार सब पुण्य-कर्म किये जायँ। पुरोचन आदि और जो लोग वहाँ जलकर मरे हैं उनके बन्धु-बान्धव जाकर उनका १०

भी क्रिया-कर्म करें। खूब धन लगाकर सब कर्म इस ढँग से किया जाय जिसमें कुन्ती और वीर पाण्डव सद्गति को प्राप्त हों।

अब जातिवालों के साथ धृतराष्ट्र ने पाण्डवों को और कुन्ती को तिलाञ्जलि दी। सब कौरव एकत्र होकर हाय कुरुवंश-वर्द्धन युधिष्ठिर! हाय भीमसेन! हाय अर्जुन! हाय नकुल और सहदेव! हाय कुन्ती! कहकर विलाप करने लगे। उन्होंने भी मातासहित पाण्डवों को तिलोदक दिया। पुरवासी जन भी पाण्डवों की इस अकालमृत्यु के लिए गहरा शोक प्रकट करने लगे। विदुर ने थोड़ा ही शोक प्रकट किया; क्योंकि वे सब गुप्त वृत्तान्त जानते थे।

इधर बलवान् पाण्डव लोग माता के साथ वारणावत से निकलकर गङ्गा के किनारे पहुँचे। फिर मल्लाहों के बाहुबल, प्रवाह के वेग और अनुकूल वायु की सहायता से वे शीघ्र ही उस
२० पार पहुँच गये। नाव से उतरकर, रात को नक्षत्रों से दिशा का पता लगाकर, वे दक्षिण दिशा को जाने लगे। महाराज, वे बड़ी चेष्टा से चलते-चलते एक घने जङ्गल के पास पहुँचे। उस समय नींद के मारे सबकी आँखें बन्द हुई जा रही थीं; सब भाई थके हुए और प्यासे थे। तब युधिष्ठिर ने पराक्रमी भीमसेन से कहा—हम अब इस घने जङ्गल में आ पहुँचे हैं। भाई, अब बड़े कष्ट का सामना है। अब मैं दिशा का पता चलाने में असमर्थ हूँ। इसी से आगे बढ़ने का साहस भी नहीं होता। नहीं मालूम, पापी पुरोचन जल गया या नहीं। यदि वह जल गया होगा तो भी हमें तो सबसे छिपकर जाना है। हम लोग यों शीघ्र चलकर अपनी रक्षा करने में इस समय असमर्थ हो रहे हैं। भाई, हम लोगों में तुम्हीं सबसे बली और वायु के समान तेज़ चलनेवाले हो। इसलिए अब तुम फिर उसी तरह हम सबको लादकर तेज़ी के साथ चलो।

युधिष्ठिर की यह आज्ञा पाकर भीम फिर उसी तरह माता कुन्ती और चारों भाइयों को
२६ लादकर वेग के साथ चलने लगे।

---

## एक सौ चौवन अध्याय

### पाण्डवों को और माता को जङ्गल में रखकर भीम का जल लाना, उनकी दुर्दशा देखकर रोना और जागते रहना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, वेग के साथ चल रहे भीमसेन की जाँघों के ज़ोर से वृक्षों और उनकी शाखाओं-सहित वह वन काँपने सा लगा। महाबली भीम की जाँघों से



भीम का भाइयों और कुन्ती को कन्ध पर ले जाना—पृष्ठ ३४२

जेठ-असाढ़ की आँधी के समान हवा निकलने लगी। भीमसेन के वेग से सामने के वृक्ष और लताएँ टूटकर गिर जाने से वह मार्ग बराबर होता चला जाता था। आसपास के फले-फूले वृक्षों को, लताओं को और झाड़-झंखाड़ों को तोड़ते और कुचलते हुए वे चले जा रहे थे। गण्डस्थल, कर्णमूल और गुह्यदेश इन तीन अङ्गों से जिसके मद-जल बह रहा हो उस क्रुद्ध, मदमत्त, साठ वर्ष के जवान हाथी के समान बड़े-बड़े पेड़ों को तोड़ते हुए भीमसेन अपनी धुन में चले जा रहे थे। उनके गरुड़ और पवन के समान वेग से पाण्डव बेहोश-से हो गये। अपनी नौका-सदृश भुजाओं के द्वारा भीमसेन ने अपने भाइयों को और कुन्ती को बहुदूरव्यापी समुद्र-सदृश मार्ग के पार पहुँचाया। ऊँचे-नीचे स्थानों में अपनी पीठ पर सुकुमारी यशस्विनी माता कुन्ती को लादे हुए भीमसेन बड़ी सावधानी के साथ चलते थे। इस प्रकार बड़े कष्ट से अनेक वन लाँघकर भी दुष्ट दुर्योधन के डर से पाण्डव अपने को छिपाये हुए ही चलने लगे। चलते-चलते शाम हो गई। उस समय माता और भाइयों को लादे हुए भीमसेन हिंसाप्रिय पशु-पक्षियों से भरे एक भयानक वन में पहुँचे। उस वन में फल-मूल या जल कहीं पर नहीं देख पड़ता था। धीरे-धीरे सन्ध्या का घना अँधेरा और भी गहरा हो आया। वन के सब पशु-पक्षी भयानक शब्द करने लगे। सब दिशाओं को अन्धकार ने ढक लिया। उत्पातरूप बे-मौसम की आँधी बड़े वेग से चल रही थी। उस आँधी में सूखे पत्ते, सूखे फल इधर-उधर उड़ते फिरते थे। छोटे वृक्ष और लताएँ उखड़-उखड़कर गिर पड़ती थीं। बड़े-बड़े वृक्ष झुक-झुक जाते थे और उनकी टहनियाँ बड़े शब्द के साथ टूट-टूटकर गिर रही थीं।



१०

उस समय नींद, थकन और प्यास के मारे पाण्डवों का बुरा हाल हो रहा था। वे आगे चलने में बिलकुल असमर्थ हो रहे थे। पाँचों पाण्डव उस निरानन्द निर्जन वन में एक जगह पर बैठ गये। तब प्यास से व्याकुल हो रही कुन्ती ने पाण्डवों से कहा—मैं पाँच महाबली पाण्डवों की माता हूँ। पाँचों पुत्र मेरे पास हैं तो भी मैं इस महावन में अनाथ की तरह प्यास से व्याकुल हो रही हूँ। कुन्ती के मुँह से बार-बार यही बात सुनकर भीमसेन बहुत दुखी हुए। माता के स्नेह और करुणा के मारे उनसे रहा नहीं गया। वे फिर माता

और भाइयों को लेकर पानी की तलाश में आगे बढ़े। उस घोर वन में जाकर भीमसेन ने एक बड़ा भारी घनी छाँहवाला मनोहर बरगद का पेड़ देखा। राजन्, भरतकुल-दीपक भीमसेन ने माता और भाइयों को उसी के नीचे उतार दिया। भीमसेन ने उनसे कहा—तुम लोग यहीं पर विश्राम करो। मैं पानी की तलाश में जाता हूँ। यह सुनो, जलविहारी सारस पक्षियों का मधुर शब्द सुन पड़ रहा है। जान पड़ता है, यहाँ पास ही कोई बड़ा भारी जलाशय है। बड़े भाई की आज्ञा लेकर जिधर पक्षियों का शब्द सुन पड़ रहा था उसी ओर भीमसेन चले।

राजन्, उस जलाशय के पास पहुँचकर भीमसेन ने पहले नहाया और पानी पिया। फिर वे पानी में दुपट्टा भिगोकर माता और भाइयों के लिए जल ले चले। भीमसेन जहाँ भाइयों को छोड़ आये थे वहाँ से वह जलाशय दो कोस पर था। दो कोस चलकर भीमसेन फिर माता के पास पहुँचे। उस समय कुन्ती और चारों पाण्डव सो गये थे। उनको इस तरह ऐसी दशा में सोते देखकर भीमसेन को बड़ा ही शोक हुआ। वे साँप की तरह लम्बी साँसें लेते
२० विलाप करते हुए कहने लगे—अहो, मैं अभागा अपनी माता और भाइयों को इस तरह पृथ्वी पर सोते देख रहा हूँ। इससे बढ़कर कष्ट की बात और क्या देखी जा सकती है! जिन्हें वारणावत नगर में बहुमूल्य मुलायम बिछौनेवाले पलँगों पर लेटने पर भी अच्छी तरह नींद न आती थी वे ही आज धरती पर पड़े सो रहे हैं! शत्रुनाशन वसुदेव की बहन, कुन्तिभोज की बेटी, विचित्रवीर्य की बहू, महात्मा पाण्डु की धर्मपत्नी और हम लोगों की माता कुन्ती सब सुलक्षणों से युक्त, कमल के गाभे के समान कान्तिवाली, सुकुमारी और बहुमूल्य पलँग पर सोने के योग्य होकर भी आज वनभूमि में पड़ी सो रही हैं! हाय, धर्म-इन्द्र-वायु के द्वारा महापराक्रमी पुत्रों को पैदा करनेवाली, नित्य महलों के भीतर रहनेवाली कुन्ती थककर प्यास से पीड़ित होकर पृथ्वी पर पड़ी हुई हैं। इससे बढ़कर दुःख और कष्ट की बात और क्या देखने को मिलेगी? मैं इन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों को पृथ्वी पर लोटते देख रहा हूँ! अहो, जो धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर तीनों लोकों का राज्य पाने के योग्य हैं वे आज साधारण मनुष्य की तरह थककर पृथ्वी पर सो रहे हैं! ये नीले बादल के समान साँवले, नरश्रेष्ठ, अद्वितीय वीर अर्जुन साधारण पुरुष की तरह पृथ्वी पर पड़े हुए हैं। इससे बढ़कर और दुःख क्या हो
३० सकता है? देवलोक में जैसे अश्विनीकुमार हैं वैसे ही मनुष्यलोक में नकुल और सहदेव अलौकिक रूपवान् हैं। वे ही आज साधारण पुरुषों की तरह धूल में लोट रहे हैं। जिसके कुलकलङ्क जातिवाले नहीं हैं वह गाँव के पेड़ की तरह अकेला बड़े मज़े में अपना जीवन बिताता है। गाँव में सजातीयरहित, फल-पुष्प-पत्र-पूर्ण जो अकेला वृक्ष होता है उसी को लोग देवताओं के रहने का स्थान समझकर पूजते हैं और बटोही लोग उसका सम्मान करते हैं। जिनके

असंख्य जातिवाले होते हैं और वे सब वीर और धर्मात्मा होते हैं वे भी संसार में सुखपूर्वक अपना जीवन बिताते हैं; उन्हें किसी प्रकार की बाधा का सामना नहीं करना पड़ता। जिनके अनेक सजातीय बली, ऐश्वर्यशाली, बन्धु-बान्धवों की प्रसन्नता को बढ़ानेवाले होकर वन के वृक्षों की तरह परस्पर एक दूसरे को आश्रय देते हुए जीवन बिताते हैं वे भी बड़े सुख में रहते हैं। किन्तु हमारे सजातीय धृतराष्ट्र, दुर्योधन आदि बड़े ही पापी और दुष्ट हैं। उन स्वार्थी अधर्मियों ने हमें देश से निकाल दिया है। विदुर की बुद्धि से और दैव के अनुकूल होने के कारण किसी तरह उस घर में जलने से हम बच गये हैं और अनेक कष्ट उठाकर अन्त को इस वृक्ष के नीचे आकर ठहरे हैं। मालूम नहीं, अब किस ओर जाना होगा। बुद्धिहीन, अदूरदर्शी, धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन! इस समय तू अपनी इच्छा पूरी कर ले। इसमें सन्देह नहीं कि अभी तुझ पर देवताओं की कृपा है; क्योंकि राजा युधिष्ठिर तुझे मारने की आज्ञा मुझको नहीं देते। रे नीच, इसी से तू अब तक जी रहा है। कुपित होकर मैं तुझे और तेरे पुत्र, मन्त्री, भाई, कर्ण, शकुनि आदि सहायकों को अभी यम-लोक भेज सकता हूँ; पर क्या करूँ, धर्मात्मा नरश्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर तुझ पर क्रोध ही नहीं करते। ४०

यों कहते हुए भीमसेन क्रोध के मारे तपे अङ्गारे के समान लाल हो उठे और हाथ मलने लगे। शोक के मारे उन्होंने लम्बी साँस ली। फिर बुझी हुई आग की तरह दीन होकर भीमसेन पृथ्वी पर साधारण पुरुषों की भाँति बेखटके सो रहे भाइयों की ओर देखने लगे। वे आप ही आप कहने लगे—वारणावत नगर यहाँ से बहुत दूर नहीं है। यहाँ पर जागने की ज़रूरत है। ये सब तो सो रहे हैं इसलिए अब मैं यहाँ जागता रहूँगा। थकन मिटने पर जब ये लोग जागेंगे तब जल पी लेंगे। इस समय इन्हें जगाना ठीक नहीं। यह विचार करके भीमसेन जागते हुए पहरा देने लगे। ४५

---

## हिडिम्बवधपर्व

# एक सौ पचपन अध्याय

**हिडिम्ब राक्षस का पाण्डवों को देखना और पाण्डवों को मारकर लाने के लिए अपनी बहन हिडिम्बा को भेजना। भीमसेन से हिडिम्बा की बातचीत**

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, पाण्डव जिस वृक्ष के नीचे सोये हुए थे उससे थोड़ी ही दूर एक साखू के पेड़ पर मनुष्य-मांसाहारी, महाबली, अत्यन्त पराक्रमी, वर्षाकाल के मेघ के समान काला, हिडिम्ब नाम का एक भयङ्कर, भूखा और निठुर राक्षस बैठा हुआ था। उस दारुण रूपवाले राक्षस की जाँघें और पेट बड़ा लम्बा था। आँखें कञ्जी और दाढ़ें पैनी तथा

कराल थीं। दाढ़ी-मूँछ और सिर के बाल ताँबे के ऐसे लाल थे। गर्दन और कन्धे बड़े भारी वृक्ष के समान थे। दोनों कान कील के समान नुकीले और खड़े थे।

उस भयानक आकारवाले, कुरूप, पिङ्गलनेत्र, मांसलोभी, भूखे, भीमरूप राक्षस ने मनुष्य की गन्ध पाकर थोड़ी दूर पर पड़े हुए पाण्डवों को देखा। मनुष्य-गन्ध सूँघकर उँगलियों से सिर



के रूखे और खड़े कड़े बालों को खुजलाते-खुजलाते वह राक्षस बारम्बार पाण्डवों की ओर देखने और जम्हाई लेने लगा। बड़े भारी डील-डौलवाला महाबली वह राक्षस मनुष्य-मांस पाने की आशा से प्रसन्न होकर अपनी बहन से कहने लगा—मनुष्य का मांस खाना मुझे बहुत रुचता है। वही नर-मांस आज दैवयोग से सहज ही पास आ गया है। उसे देखकर मेरे मुँह से लार टपकी पड़ रही है। मेरे आगे के आठ दाँत बड़े नुकीले और पैने हैं। उन्हें मैं जिसके अङ्ग में गड़ा दूँ वह उनके आघात से जीता नहीं बच सकता। वे ही असह्य दाँत आज मैं बहुत दिनों के बाद इन मनुष्यों के कोमल शरीर के मांस में धँसाऊँगा। आज मैं मनुष्य का गला पकड़कर, उसके गले की बड़ी नस तोड़कर, गर्मागर्म फेने से पूर्ण बहुत सा ताज़ा रक्त पियूँगा। तू वहाँ इन लोगों १०
के पास जा। यह जानने की चेष्टा कर कि ये कौन हैं जो इस वृक्ष की जड़ में पड़े सो रहे हैं। मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि ये लोग मनुष्य ही हैं; क्योंकि मेरी नासिका में प्रबल मनुष्य-गन्ध आकर प्रवेश कर रहा है। तू इन मनुष्यों को मारकर जल्दी मेरे पास ले आ। यहाँ पर मेरा ही राज्य है। यहाँ सोये हुए मनुष्यों से तुझे कुछ भी डर नहीं है। हम दोनों इन मनुष्यों के शरीर से मांस नोच-नोचकर सुख से खायँगे। तू मेरा कहा जल्दी कर। हम जी भरकर मनुष्य का मांस खाकर इसी वन में ताल देकर नाचेंगे।

हे भरतश्रेष्ठ, हिडिम्ब के ये वचन सुनकर हिडिम्बा राक्षसी वहाँ आई जहाँ पाण्डव सो रहे थे। वहाँ पहुँचकर उसने देखा, चारों पाण्डव अपनी माता के साथ पड़े सो रहे हैं; अकेले भीमसेन जाग रहे हैं। नये साखू के समान बड़े ऊँचे कन्धोंवाले अद्वितीय सुन्दर भीमसेन के मनोहर रूप को देखकर ही वह कामवश हो गई। वह मन में सोचने लगी—यह महाबाहु, सिंह के से ऊँचे कन्धों से शोभित, असाधारण तेजस्वी, कम्बु-कण्ठ, कमल-नयन पुरुष मेरा पति होने

के लायक़ है। मैं कभी अपने क्रूर भाई की निठुर आज्ञा का पालन नहीं करूँगी। स्त्रियों को पति जितना प्यारा होता है उतना भाई नहीं होता। इन लोगों को मार डालने से मुझे और मेरे भाई को दम भर के स्वाद का मज़ा मिलेगा; किन्तु ये जो जीते रहेंगे तो मैं इस पुरुष-सिंह को अपने साथ रखकर इससे सुख भोगती हुई सदा आनन्द से रह सकूँगी। २०

चाहे जैसा रूप रख लेनेवाली राक्षसी ने यों विचार करके उसी दम सुन्दर मानुषी-रूप धारण कर लिया। अब वह धीरे-धीरे टहलती हुई भीमसेन के पास पहुँची। सुन्दरी, पीन पयोधरों से मनोहर, कमलमुखी, मनुष्य-रूपधारिणी वह राक्षसी लज्जा और नम्रता का भाव दिखाती हुई कुछ मुसकाकर भीमसेन से कहने लगी—हे पुरुष-श्रेष्ठ, आप कौन हैं? कहाँ से आये हैं? ये जो देवतुल्य पुरुष पड़े सो रहे हैं सो कौन हैं? हे पापरहित, तपे सोने के समान कान्तिवाली कोमलाङ्गी यह स्त्री आपकी कौन है, जो इस घोर वन को अपने घर के समान निर्भय स्थान समझकर बेखटके सो रही है? क्या आप लोग नहीं जानते कि इस वन में राक्षस लोग रहते हैं? यहाँ पर पापी हिडिम्ब नाम का एक राक्षस रहता है। वह मेरा भाई है। हे देवतुल्य पुरुष-श्रेष्ठ, उस राक्षस ने आप लोगों का मांस खाने के विचार से, आप लोगों की हत्या के लिए, मुझे इस जगह भेजा है; किन्तु मैं सच कहती हूँ, देवतुल्य आपको देखकर अब और किसी को अपना पति बनाने के लिए मेरा जी नहीं चाहता। हे धर्मात्मा पुरुष, यह जानकर जो उचित समझ पड़े सो कीजिए। काम ने मेरे हृदय पर अपना अधिकार कर लिया है। मैं आपको भजने के लिए आग्रह कर रही हूँ। आप कृपा करके मुझे अङ्गीकार कीजिए। हे वीर पुरुष, मैं उस नर-मांसाहारी राक्षस से आपको बचा लूँगी। आप मुझे अपनी स्त्री बना लीजिए। हम दोनों जने गिरिदुर्गों में जाकर विहार करेंगे। मैं आकाश-मार्ग में विचर सकती हूँ; जहाँ चाहे वहाँ जा सकती हूँ। मेरे साथ इन स्थानों की सैर करने से आपको बड़ा आनन्द मिलेगा। ३०



राक्षसी के ये वचन सुनकर भीमसेन ने कहा—हे राक्षसी, ऐसे सुख भोगने के लिए माता, बड़े भाई और छोटे भाइयों को कौन छोड़ देगा ? मेरे समान कोई भी पुरुष काम के वश होकर सुख से सोये हुए भाइयों को और माता को राक्षस के मुँह में छोड़कर तेरे साथ जाने की इच्छा नहीं कर सकता। भीमसेन के ये वाक्य सुनकर राक्षसी ने कहा—आप जो कहेंगे वही, आपकी प्रसन्नता के लिए, मैं करूँगी। आप इन लोगों को जगा दीजिए। मैं आपकी इच्छा के अनुसार इन सबको मनुष्य-मांस-भक्षक राक्षस के हाथ से सहज में बचा लूँगी।

भीमसेन ने कहा—राक्षसी, मैं जङ्गल में सो रहे अपने भाइयों को और माता को तेरे दुरात्मा पापी भाई के डर से नहीं जगा सकता। हे भीरु, हे कमल-नयनी ! मनुष्य, गन्धर्व, राक्षस, यक्ष आदि कोई भी मेरे पराक्रम को नहीं सह सकता। भद्रे, तू चाहे जा, चाहे ठहर ;
३६ और चाहे अपने मांस-भोजी भाई को ही यहाँ भेज दे। मुझे उसका डर नहीं है।

---

## एक सौ छप्पन अध्याय

हिडिम्ब का आना। भीमसेन और हिडिम्ब का युद्ध

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय ! इसके बाद लाल नेत्र किये, लम्बे हाथ फैलाये, रूखे और खड़े बालों से भयानक, मुँह फैलाये, घनघटा के समान नीले, पैने दाँतोंवाले उस भीममूर्त्ति राक्षस ने जब देखा कि हिडिम्बा को गये बहुत देर हुई, तब वह उस वृक्ष से उतरकर झपटता हुआ पाण्डवों के पास आया। उस विकट आकारवाले राक्षस को आते देखकर हिडिम्बा डर गई। उसने भीमसेन से कहा—देखिए, यह पापी मनुष्याहारी राक्षस क्रोध करके इधर ही आ रहा है। अब मैं जो कहती हूँ सो आप अपने भाइयों-सहित कीजिए। वीर, मैं जाति-सुलभ बल-वीर्य के द्वारा चाहे जहाँ जा सकती हूँ। आप मेरी पीठ पर सवार हो जाइए। मैं आपको आकाश-मार्ग से ले जाऊँगी। हे शत्रुनाशन, आप अपनी माता और भाइयों को जगाइए। आप लोगों को लादकर मैं आकाशमार्ग से भाग चलूँगी।

भीमसेन ने कहा—हे विशाल नितम्बोंवाली सुन्दरी, तुम डरो नहीं। मेरे आगे यह राक्षस कोई चीज़ नहीं है। हे सुन्दर कमरवाली, तुम्हारे आगे ही मैं इसे मारकर यमलोक को भेज दूँगा। भीरु, मेरा सामना तो सब राक्षस मिलकर भी युद्ध में नहीं कर सकते ; इस अकेले नीच राक्षस की क्या मजाल है ! देखो, मेरे ये कठिन भुजदण्ड हाथी की सूँड़ के समान हैं। जाँघें लोहे के मुद्गर ऐसी कड़ी हैं। मेरा सीना बहुत चौड़ा और मज़बूत है। सुन्दरी, अभी तुम मेरा इन्द्र के समान पराक्रम देखोगी। तुम साधा-
१० रण मनुष्य जानकर मुझे तुच्छ न समझना।

हिडिम्बा ने कहा—पुरुषसिंह, आप देवतुल्य हैं। मैं आपको तुच्छ नहीं समझती परन्तु मैं मनुष्यों के ऊपर इस राक्षस का प्रभाव देख चुकी हूँ; इसी से कह रही हूँ।

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरत-नन्दन, भीमसेन और हिडिम्बा में यों बातचीत हो रही थी कि मनुष्याहारी हिडिम्ब राक्षस ने कुपित हो वहाँ आकर सब सुन लिया। उसने देखा कि हिडिम्बा सुन्दर नारी का रूप धारण किये हुए है। उसकी चोटी में फूलों की माला लिपटी हुई है, मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर है, नाखून और खाल मुलायम है, भौंह-नाक-आँख-केश आदि सब सुडौल हैं, वह सब अङ्गों में गहने पहने हुए है। वह एक महीन सारी पहने है। उसके ऐसे मनोहर मानुषी-रूप को देखते ही राक्षस ताड़ गया कि वह भीमसेन पर रीझ गई है और उनसे अङ्ग-सङ्ग चाहती है। यह देख हिडिम्ब और भी क्रोध से लाल हो गया। हे कौरव-श्रेष्ठ, तब क्रोध से लाल-लाल आँखें निकालकर उसने बहन से कहा—मैं इन मनुष्यों को मारकर इनका मांस खाना चाहता हूँ। इसमें कौन दुर्बुद्धि विघ्न डाल रहा है? हिडिम्बा, मेरा कोप देखकर तुझे डर नहीं लगता? तू क्या इस मनुष्य पर रीझ गई है? अरी कुलटा, तू पुरुष-संसर्ग की इच्छा से मेरा अप्रिय करने को तैयार है। तुझे धिक्कार है! यह काम करके तू पहले के राक्षसराजों की कीर्त्ति में धब्बा लगाना चाहती है। तूने इन्हीं पुरुषों के बल पर साहस करके मेरा अप्रिय किया है। देख, मैं अभी इनको और इनके साथ तुझको भी मारे डालता हूँ।

लाल-लाल आँखों से घूरता और दाँत पीसता वह राक्षस पाण्डवों को मारने के लिए उनकी तरफ़ झपटा। उसे यों गरजते हुए आते देखकर प्रहार करने में निपुण भीमसेन ने खड़ा २०
रह—खड़ा रह कहकर उसे वहीं रोका। उन्होंने सोचा कि माता और भाई जागने न पावें।

वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, बहन पर नाराज़ हो रहे उस राक्षस को देखकर हँसते हुए भीमसेन ने कहा—रे दुर्बुद्धि मांसाहारी राक्षस, इन सुख से सो रहे मेरे भाइयों को जगाकर तू क्या करेगा? मेरे सामने आकर चोट कर। स्त्री को क्यों मारने के लिए तैयार है? इसका क्या अपराध है? अपराध तो दूसरे का ही है। यह अबला अपनी ख़ुशी से मुझे भजने के लिए तैयार नहीं हुई। कामदेव ने इसके हृदय पर अधिकार जमाकर इसे ऐसा करने के लिए विवश किया है। रे दुष्ट, रे राक्षसों के यश को कलङ्क लगानेवाले, तेरी बहन तेरी ही आज्ञा से यहाँ आई थी। यहाँ मेरा सौन्दर्य देखकर वह काम के वश हो गई। इसमें इस अबला का क्या दोष? दोष तो कामदेव का है; फिर तू इस पर क्यों नाराज़ हो रहा है? रे दुष्ट, मेरे जीते जी तू इस कामिनी की हत्या नहीं कर सकता। रे मनुष्याहारी, तू अकेला मुझसे युद्ध कर। मैं अकेला ही तुझे अभी यम-लोक में पहुँचा दूँगा। मैं दोनों हाथों से तेरे सिर को ऐसे मसल डालूँगा मानों हाथी के पैर के नीचे कुचल गया हो।

इस समय युद्धभूमि में जब तू प्राण छोड़ेगा तब पृथ्वी पर पड़े हुए तेरे मृत शरीर को गिद्ध, बाज़, गीदड़ आदि इधर-उधर घसीटते फिरेंगे। पहले लगातार मनुष्यों को खा करके जिस वन को तूने भयानक बना दिया था उसे, तुझको मारकर, मैं राक्षस-हीन कर दूँगा। रे राक्षस, तेरी बहन देखेगी कि पहाड़ ऐसे हाथी को जैसे सिंह लथाड़ डालता है वैसी ही दशा मैं तेरी करूँगा। तेरे मरने पर इस वन के जीव और मनुष्य यहाँ सुख से फिरेंगे।

हिडिम्ब ने कहा—रे मनुष्य, तेरे इस वृथा गरजने और बकवाद करने से क्या होगा? देर क्यों करता है? जो कह रहा है उसे करके दिखा दे। तू आप ही अपने को बड़ा बली और पराक्रमी समझता है। अभी मुझसे युद्ध करने पर तुझे मालूम पड़ जायगा कि तेरा बल कितना है। अच्छी बात है, मैं अभी इन मनुष्यों को नहीं मारूँगा; इन्हें अभी सुख से सोने दे। अप्रिय कठोर वचन कहनेवाले तुझको ही मैं सबसे पहले मारूँगा। पहले तेरे शरीर का रक्त पीकर फिर इन सबको मारूँगा। पीछे से अप्रिय करनेवाली हिडिम्बा की भी हत्या करूँगा।

महाराज, मनुष्य-मांसाहारी राक्षस अब दोनों हाथ फैलाकर क्रोध के मारे शत्रुनाशन भीमसेन की ओर दौड़ा। भीम-पराक्रमी भीमसेन ने हँसकर तुरन्त ही वेग से चलाये हुए, उसके दोनों हाथों को पकड़ लिया। फिर बलपूर्वक उसे क़ाबू में लाकर, सिंह जिस तरह छोटे से मृग को घसीटता है उस तरह, वहाँ से बत्तीस हाथ के फ़ासले पर वे घसीट ले गये। इस तरह भीमसेन के पीड़ा पहुँचाने पर वह राक्षस उनके शरीर से लिपटकर बुरी तरह चिल्लाने लगा। उसका चिल्लाना सुनकर कहीं माता और भाई जाग न पड़ें, इस आशङ्का से महाबली भीमसेन और दूर तक उसे घसीटते ले गये। तब भीमसेन और हिडिम्ब दोनों ही परस्पर एक दूसरे को खींचने के लिए ज़ोर लगाने लगे। दोनों ही साठ वर्ष के कुपित मस्त हाथियों की तरह वृक्षों को तोड़ने और लताओं को उखाड़ने लगे। उनके उस घोर शब्द से पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डव जाग पड़े। कुन्ती की भी आँख खुल गई। कुन्ती और पाण्डवों ने सुन्दररूप-धारिणी हिडिम्बा को अपने आगे खड़ा हुआ देखा।

---

## एक सौ सत्तावन अध्याय

### हिडिम्ब-वध

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कुन्ती और पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवों ने आँख खुलने पर हिडिम्बा के अलौकिक सौन्दर्य को देखकर बड़ा अचम्भा माना। उसके रूप को देखकर चकराई हुई कुन्ती ने शान्त और मधुर स्वर से उससे पूछा—हे अप्सरा के समान सुन्दरी, तुम कौन हो?

किसकी स्त्री हो ? किस काम के लिए तुम कहाँ से आई हो ? यदि तुम इस वन की अधिष्ठात्री देवी या अप्सरा हो तो यह बताओ कि यहाँ पर क्यों खड़ी हुई हो ?

हिडिम्बा ने कहा—यह जो मेघ की घटा के समान नीला वन देख पड़ रहा है इसमें हिडिम्ब राक्षस और मैं रहती हूँ। देवी, मैं इस राक्षसराज हिडिम्ब की बहन हूँ। मेरे भाई ने आपको और आपके इन पुत्रों को मारने के लिए मुझे भेजा था। मैं उस दुष्टबुद्धि भाई के कहने से यहाँ आई। यहाँ आकर मैंने तपे हुए सोने के समान कान्तिवाले आपके महाबली बेटे को देखा। सब प्राणियों के शरीर में रहनेवाले कामदेव ने मुझे, आपके पुत्र को देखते ही, अपने वश में कर लिया। मैंने उस काम के वेग को रोकना चाहा, पर किसी तरह सँभाल न सकी। मैंने अपने मन से आपके बेटे को अपना पति मान लिया। मेरे जाने में विलम्ब होने से आपके पुत्रों को मारने के लिए मेरा भाई आप आ पहुँचा। श्रीमान्, बुद्धिमान्, महात्मा आपके महाबली पुत्र उसे बलपूर्वक पकड़कर यहाँ से दूर ले गये हैं। वह देखो, मनुष्य और राक्षस, दोनों, युद्ध में अपना-अपना पराक्रम प्रकट करते हुए गर्जन-तर्जन करके एक दूसरे को खींच रहे हैं। १०

महाराज, उसके ये वचन सुनकर पराक्रमी युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल और सहदेव चारों भाई जल्दी से उठकर युद्धस्थल में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि बली सिंहों की तरह भीमसेन और राक्षस, दोनों, जय की आशा से एक दूसरे को खींच रहे हैं। दोनों एक दूसरे से लिपटे हुए हैं। उनके इस युद्ध में दावानल के धुएँ के समान धूल उड़ रही है। उस धूल के पड़ने से उनके शरीर कुहरे से ढके हुए पहाड़ों की तरह जान पड़ते हैं।

तब राक्षस के साथ युद्ध करने में भीमसेन को क्लेश पाते देखकर अर्जुन ने हँसते हुए धीरे से कहा—भाई भीम, आप क्यों कष्ट उठा रहे हैं ? बहुत ही थक जाने के कारण हम सो गये थे। इसी से हमको नहीं मालूम हुआ कि ऐसे भयङ्कर राक्षस के साथ आपको भिड़ना पड़ा है। भाई, मैं आपकी सहायता करने के लिए खड़ा हूँ। कहो तो अभी इस राक्षस को मार डालूँ ? नकुल और सहदेव माता कुन्ती की रक्षा करेंगे।

भीम ने कहा—भैया, तुम इसमें हाथ न डालो। तुम खड़े-खड़े देखो; इतना घबराने की ज़रूरत नहीं। जब यह राक्षस मेरे दोनों वज्रसदृश हाथों के बीच में आ गया है तब बिना मारे मैं इसको छोड़ नहीं सकता। २०

अर्जुन ने कहा—भीम, इस राक्षस को और अधिक समय तक जीवित रखने की क्या ज़रूरत है ? हे शत्रुदमन, यदि मुझसे आप यहाँ से जाने के लिए कहते हैं तो अधिक विलम्ब न कीजिए। थोड़ी देर में सबेरा होने चाहता है; पूर्व दिशा में ललाई देख पड़ने में अब अधिक विलम्ब नहीं है। इस रौद्र मुहूर्त्त में राक्षस प्रबल हो उठते हैं। हे भीम, जल्दी कीजिए; इस

भयानक राक्षस के साथ खेलिए मत। इसे मारिए; यह अभी मायाबल का सहारा लेने चाहता है। अपने बाहुबल से इसे पछाड़कर मार डालिए।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अर्जुन के ये वचन सुनकर भीमसेन क्रोध से मानो जल उठे। वे प्रलयकाल की आंधी के समान राक्षस पर टूट पड़े। कुपित भीमसेन काले बादल के समान राक्षस को ऊपर उठाकर सैकड़ों बार सिर के ऊपर उसे घुमाने लगे। भीमसेन ने हिडिम्ब से कहा—अरे दुर्बुद्धि राक्षस, तूने मनुष्यों को खा-खाकर उनके मांस से वृथा अपना यह शरीर मोटा किया है; इसलिए तू निकम्मी मौत के ही योग्य है। अभी देख, मैं तुझे मारकर इस वन को निष्कण्टक निर्भय बनाये देता हूँ। मनुष्यों को मारकर खाने के लिए तुझे जीता न छोड़ूँगा।

अर्जुन ने भीम से कहा—जो आपको यह राक्षस युद्ध में भारी जान पड़े तो मैं सहायता देता हूँ। अब इसे शीघ्र मार डालिए। या कहिए तो इसे मैं ही मार डालूँ, क्योंकि आप इससे लड़ते-लड़ते थक गये हैं। तनिक विश्राम कर लीजिए। यह सुनकर भीमसेन ने उस राक्षस को पृथ्वी पर पटक दिया। खूब नीचे पीसकर, दोनों हाथों से गला दबाकर भीमसेन ने पशु की मार से उसे मारा। मरते समय उस राक्षस ने गीले डड्डे के ऐसे अस्पष्ट घोर शब्द से उस वन को गुँजा दिया। बलवान्, महाबाहु पाण्डुपुत्र भीम ने राक्षस को मारकर, बाहुबल से उसकी कमर तोड़ कर, अपने भाइयों को सन्तुष्ट किया। राक्षस के मरने पर चारों भाइयों ने भीम को गले से लगा लिया और अनेक धन्यवाद दिये। भीमसेन की बड़ाई करके अर्जुन ने उनसे कहा—जान पड़ता है कि इस वन से वारणावत नगर बहुत दूर नहीं है। इसलिए, हम लोगों को यहाँ से जल्द चल देना चाहिए; ऐसा करना चाहिए जिसमें दुर्योधन को हमारे जीते रहने का पता न लगे।



अर्जुन का कहना मानकर माता को लिये हुए सब भाई वहाँ से चल दिये। उनके साथ-साथ हिडिम्बा भी चली।

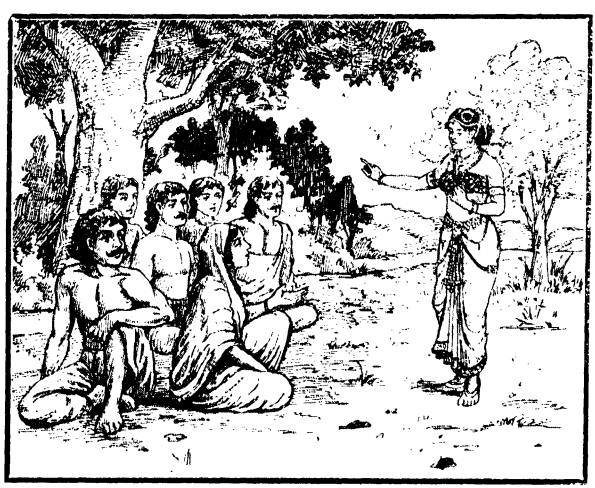
# एक सौ अट्ठावन अध्याय

हिडिम्बा का भीम से ब्याह। घटोत्कच का जन्म। हिडिम्बा और घटोत्कच का चला जाना

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, हिडिम्बा को पीछे-पीछे चुपचाप आते देखकर भीमसेन ने कहा कि हिडिम्बा, राक्षस लोग पहले के वैर को भूलते नहीं; वे मोहिनी माया का आश्रय लेकर अवश्य बदला चुकाते हैं। इस कारण यही अच्छा है कि तू भी अपने भाई के साथ यमलोक को चली जा।

यह सुनकर युधिष्ठिर ने कहा—भीम, [ क्रोध को शान्त करो। ] स्त्री की हत्या करना अधर्म है। भाई, धर्म शरीर से भी बढ़कर रक्षणीय है। इसलिए तुम धर्म की रक्षा करो। बली राक्षस हम लोगों को मारने आया था; उसी को जब तुमने मार डाला तब यह राक्षस की बहन अबला क्रोध करके हमारा क्या बिगाड़ सकती है?

महाराज, हिडिम्बा ने कुन्ती और युधिष्ठिर को प्रणाम किया और फिर कुन्ती से हाथ जोड़कर कहा—आर्ये, स्त्रियों के लिए काम-वेदना कैसी असह्य होती है सो आप अच्छी तरह जान सकती हैं। शुभरूपिणी, भीमसेन के कारण वही यन्त्रणा मुझे मिल रही है। अब तक समय की अपेक्षा करके वह असह्य वेदना मैं सह रही थी। अब यह सुखमय समय आया है। अपने बन्धुवर्ग, आत्मीय-जन और अपने राक्षसी धर्म को छोड़कर मैंने तुम्हारे पुत्र पुरुष-प्रधान भीमसेन को मन में अपना पति मान लिया है। यशस्विनी, यदि आप मेरी सहायता न करेंगी, और आपके पुत्र भीमसेन मुझे स्वीकार न करेंगे तो मैं, सच कहती हूँ, अपने प्राण दे दूँगी। मुझे मूढ़, भक्त या अनुगत, चाहे जो समझकर आप मुझ पर कृपा कीजिए। आप वही उपाय कीजिए जिसमें आपके पुत्र भीमसेन पति होकर मुझे ग्रहण करें। आप मुझ पर विश्वास कीजिए। मैं आपके देवतुल्य पुत्र को [ दिन के समय ] अपने साथ ले जाकर यथेष्ट १०



स्थानों में विहार करूँगी, और [ रात के समय ] फिर आपके पास पहुँचा जाऊँगी। आप लोग जिस समय जहाँ, काम पड़ने पर मुझे, स्मरण करेंगे वहाँ उसी दम आकर, जहाँ कहोगे वहाँ, सबको अपनी पीठ पर लादकर पहुँचा दूँगी। दुर्गम विषम स्थान में कोई विपत्ति आने पर मैं उससे उबार लूँगी। [पुण्यात्मा लोग जैसे विमानों पर विचरते हैं वैसे ही] मैं आप लोगों को पीठ पर लादकर आकाशमार्ग में ले चलूँगी। आप लोग प्रसन्न होकर ऐसा कर दीजिए कि भीमसेन मुझे अङ्गीकार कर लें। विपत्ति से बचने के लिए—जिस तरह हो—जीवन की रक्षा करनी चाहिए; धर्म पर दृष्टि रखकर ही सब काम करने चाहिएँ। धर्मात्मा पुरुष के धर्माचरण में विपत्ति ही भारी बाधा है। इस कारण आपत्काल मे भी जो लोग धर्म का पालन करते हैं वही सच्चे धर्मात्मा हैं। पण्डितों का कहना है कि जीवन-रक्षा के लिए पुण्य-कार्य करने चाहिएँ। पुण्य ही जीवन-दान कर सकता है। इसलिए चाहे जिस तरह हो, आपत्ति से बचकर शरीर-रक्षा करते हुए धर्माचरण करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य की निन्दा नहीं होती।

युधिष्ठिर ने हिडिम्बा से कहा—तुम्हारा कहना बहुत ही ठीक है। तुम जो कह चुकी हो उसी के अनुसार काम करना—धर्मपूर्वक प्रतिज्ञा का पालन करना। स्नान, आह्निक, स्वस्त्ययन आदि जब भीमसेन कर चुकें तब तुम उन्हें अपने साथ ले जाना। सन्ध्या तक तुम उनको अपने पास रख सकोगी। दिन भर इच्छापूर्वक भीम के साथ सुख भोगकर रात के समय उन्हें यहीं पहुँचा देना।

वैशम्पायन कहते हैं कि युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर भीमसेन ने हिडिम्बा से कहा—हिडिम्बा, मैं तुमसे यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक तुम्हारे पुत्र न उत्पन्न होगा तभी तक मैं
१० तुम्हारे साथ जाऊँगा।

महाराज, राक्षसी ने यह स्वीकार कर लिया। वह भीमसेन को लेकर आकाश-मार्ग में उड़ जाती थी; [ दिन भर उनके साथ रहती और रात को कुन्ती के पास उन्हें पहुँचा जाती थी। ] मन के समान शीघ्र जानेवाली वह कामरूपिणी राक्षसी मनोहर रूप धारण किये, उत्तम गहने पहने, समय-समय पर, भीमसेन को लेकर भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण करने लगी। वह राक्षसी कभी मनोहर पर्वत-शिखरों पर, कभी देवमन्दिरों में, कभी मृगों से युक्त और पक्षियों के कलनाद से पूर्ण वनों में, कभी फूले हुए वृक्षों से शोभित पहाड़ों की तरहटी में, कभी नीले और लाल कमलों से शोभित सरोवरों के किनारे, और कभी वैदूर्य और बालू से शोभित टापुओं में भीमसेन को ले जाकर प्रसन्न करने लगी। वह राक्षसी कभी पवित्र जलवाली पहाड़ी नदियों के किनारे, कभी देवस्थानों से युक्त बागों में, कभी मणि और सुवर्ण से युक्त समुद्र के आसपास, कभी यक्षों के राज्य में, कभी हिमालय आदि कुलाचलों की ऊँची चोटियों पर और कभी

सब ऋतुओं के फूलों से शोभित मानस सरोवर के निकट भीमसेन को ले जाकर—वहाँ की सैर कराकर—प्रसन्न करने लगी। ३०

अन्त को उस राक्षसी के भीमसेन से गर्भ रह गया और यथासमय एक लम्बे-चौड़े डील-डौलवाला भयानकरूप पुत्र उत्पन्न हुआ। वह अनुपम बल-वीर्यवान्, बेजोड़ धनुर्द्धर, मायावी, शत्रुनाशन और भीमवेगवान् हुआ। उस मनुष्य के वीर्य से उत्पन्न अमानुष बालक के हाथ बड़े-बड़े, आँखें भयानक और छोटी-छोटी, मुख फैला हुआ, कान कील ऐसे नुकीले, शब्द बहुत ही भयङ्कर, ओठ लाल-लाल, दाँत और दाढ़ें पैनी, नाक लम्बी, सीना चौड़ा, पिंडलियाँ टेढ़ी और ऊँची थीं। वह सब पिशाचों और राक्षसों से बढ़कर पराक्रमी हुआ। राजन्, बचपन में ही वह जवानों के समान बली हो गया। सब अस्त्र-शस्त्र चलाने की चातुरी उसे आप ही से आ गई। राक्षसियाँ गर्भधारण करके उसी समय बालक उत्पन्न करती हैं। वे अपनी इच्छा के अनुरूप तरह-तरह के रूप धारण कर सकती हैं। महाधनुर्द्धर उस हिडिम्बा के पुत्र ने उत्पन्न होते ही समर्थ होकर माता और पिता के चरणों में प्रणाम किया। उन्होंने भी उसका नामकरण किया। उस बालक के कच ( केश ) ऊपर उठे हुए थे और मुख घट ( घड़े ) के समान था। उसे दिखाकर हिडिम्बा ने भीमसेन से कहा—इस बालक का मुँह घड़े के समान है और बाल खड़े हुए हैं। इसी के अनुसार भीमसेन ने उसका नाम घटोत्कच रक्खा। घटोत्कच सदा स्वतन्त्र रहकर पाण्डवों की आज्ञा का पालन करता था। पाण्डव भी उसको बहुत प्यार करते थे।

इसके उपरान्त अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार हिडिम्बा ने पाण्डवों से कहा—अब मैं जाती हूँ; क्योंकि प्रतिज्ञा के अनुसार स्वामी के सहवास का समय पूरा हो गया। बस, वह राक्षसी उत्तर दिशा को चली गई। घटोत्कच ने कुन्ती-समेत पाण्डवों को प्रणाम करके ४०
कहा कि मैं आपका सेवक हूँ। उससे कुन्ती ने कहा कि तुम्हारा जन्म कुरुवंश में हुआ है; तुम पाण्डवों के बड़े लड़के हो। समय पर सहायता करना। वैशम्पायन कहते हैं कि घटोत्कच भी पाण्डवों से "आवश्यकता होते ही स्मरण करने से मैं आ जाऊँगा" कहकर उत्तर दिशा को चल दिया। इन्द्र भगवान् ने कर्ण की एकघातिनी शक्ति से अर्जुन को बचाने के लिए महाबली कर्ण से भिड़ाने को महारथी घटोत्कच को उत्पन्न किया। ४६

---

## एक सौ उनसठ अध्याय

### पाण्डवों से व्यास की भेंट और एकचक्रा नगरी में जाकर पाण्डवों का रहना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, अब महात्मा पाण्डव जटाएँ रखाकर, मृगछाला और बल्कल पहनकर तपस्वियों के वेश से वनों में घूमते हुए आगे बढ़े। वे राह में मृगों का शिकार

करके उन्हीं का मांस खाते थे। जाते समय उन्होंने मार्ग में मत्स्य, त्रिगर्त्त, पाञ्चाल, कीचक आदि देशों के मनोहर वनों और सरोवरों की खूब सैर की। वे कहीं-कहीं जल्दी चलने के लिए माता कुन्ती को कन्धे पर चढ़ा लेते थे। सुरक्षित स्थान में पहुँचने पर धीरे-धीरे चलने लगते और फिर कहीं पर तेज़ी से चलने लगते थे।

जाते-जाते एक दिन एक स्थान पर पाण्डवों ने अपने पितामह भगवान् वेदव्यास को देखा। वे लोग वेद, वेदाङ्ग और नीतिशास्त्र पढ़ रहे थे। व्यासजी को देखते ही मातासहित पाण्डव प्रणाम करके आगे खड़े हो गये। व्यासजी ने कहा—पुत्रो, धृतराष्ट्र के बेटों ने अधर्म करके तुमको निकाल दिया है। तपोबल से यह बात मुझे उसी समय मालूम हो गई थी। इसी से तुम्हारा हित करने के लिए मैं यहाँ पर आया हूँ। दुर्योधन ने तुमको निकाल दिया है, इसके लिए तुम कुछ खेद न करो। यह जो कुछ हुआ है और हो रहा है उससे आगे चलकर तुमको सुख ही होगा। यद्यपि तुम और दुर्योधन आदि, दोनों पर मुझे एकसा स्नेह रखना चाहिए, तथापि मैं तुम्हीं पर अधिक स्नेह रखता हूँ। कारण यही है कि ऐसी जगह पर जो निर्बल और बालक होता है उसी को लोग प्यार करते हैं; उसी से लोगों की विशेष सहानुभूति होती है। इसी कारण मैं तुम्हारा हितचिन्तक हूँ। तुम लोग यह जो निकट ही नगरी देख रहे हो इसका नाम एकचक्रा है।
१० यहाँ तुम्हारे लिए कुछ भी डर नहीं है। जब तक मैं न आऊँ तब तक तुम यहीं छिपकर रहो।



राजन्, सत्यवती-पुत्र धर्मात्मा व्यासदेव इस प्रकार धीरज देकर पाण्डवों को साथ लिये हुए एकचक्रा नगरी की ओर चले। जाते-जाते उन्होंने कुन्ती को आश्वास देने के लिए उनसे कहा—पुत्री, तुम जीती रहो, घबराओ नहीं। तुम्हारे पुत्र धर्मात्मा महात्मा पुरुषश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर धर्मपूर्वक पृथ्वीमण्डल को जीतकर सब राजाओं पर हुकूमत करेंगे। ये भीम और अर्जुन के बाहुबल की सहायता से समुद्रपर्यन्त पृथ्वीमण्डल पर अपना अधिकार करके साम्राज्य की स्थापना और सुखभोग करेंगे। तुम्हारे और माद्री के ये महारथी पाँचों पुत्र अपने राज्य में बड़े आनन्द से सुखभोग करेंगे। ये पुरुषसिंह पृथ्वी को जीतकर राजसूय, अश्वमेध आदि

यज्ञ करते हुए ब्राह्मणों को खूब दक्षिणा देंगे। ये भोग, ऐश्वर्य और सुख देकर बन्धु-बान्धवों को प्रसन्न करके बड़े आनन्द से अपना बाप-दादे का राज्य करेंगे।

महाराज, यों कहकर व्यास ने एकचक्रा नगरी में एक ब्राह्मण के यहाँ कुन्ती और पाण्डवों के रहने का प्रबन्ध कर दिया। फिर युधिष्ठिर से कहा—तुम इसी जगह रहकर मेरी बाट जोहना। देश-काल का विचार करके उसी के अनुसार चलने से तुमको कुछ कष्ट न होगा। हाथ जोड़कर पाण्डवों ने व्यास के वचनों को सुना और स्वीकार किया। इसके उपरान्त व्यासजी वहाँ से यथेष्ट स्थान को चले गये। १९

---

## वकवधपर्व

# एक सौ साठ अध्याय

ब्राह्मण का रोना सुनकर कुन्ती को दया आना। ब्राह्मण का विलाप

जनमेजय ने पूछा कि ब्रह्मन्, महारथी कुन्तीपुत्र पाण्डवों ने एकचक्रा नगरी में रहकर इसके उपरान्त क्या किया? वैशम्पायन ने कहा—राजन्, महारथी पाण्डव एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण के यहाँ कुछ ही दिनों तक रहे। इस समय वे नित्य अनेक मनोहर वन, सरोवर, नदी आदि की सैर करते हुए भिक्षा माँगकर गुज़र करने लगे। अपने गुणों के कारण वे धीरे-धीरे वहाँ के निवासियों को बहुत प्रिय हो गये। वे दिन को भीख माँगकर जो कुछ पाते सो रात को आकर माता कुन्ती के आगे रख देते थे। कुन्ती वह भिक्षा में मिली हुई सामग्री बाटकर उन्हें देती थीं और वे खाते थे। भिक्षा में जो कुछ मिलता था सो आधा भीमसेन खाते थे और आधे में युधिष्ठिर, अर्जुन, नकुल, सहदेव और कुन्ती गुज़र करती थीं। महाराज, पाण्डवों ने इस तरह उस नगरी में कुछ समय बिताया।

एक दिन युधिष्ठिर आदि चारों भाई भीख माँगने के लिए गये; दैवयोग से भीमसेन घर में माता के पास ही रह गये। इसी बीच में कुन्ती को उस ब्राह्मण के घर में एकाएक रोना-पीटना सुन पड़ा। वे दयालु और कोमल स्वभाव की थीं; इसी से वह विलाप का शब्द सुनकर उनसे रहा नहीं गया। वे ब्राह्मण के परिवार का रोना-पीटना न सुन सकीं। असह्य दुःख से १०
उनके हृदय को मानो कोई मथने लगा। सुन्दरी कुन्ती ने भीमसेन से कहा—बेटा, हम इस ब्राह्मण के यहाँ बड़े आराम से रहते हैं। धृतराष्ट्र का पुत्र दुष्ट दुर्योधन यहाँ हमारा पता नहीं पा सकता। ब्राह्मण हमारा बड़ा आदर-सत्कार करता है। मैं सदा यही सोचा करती हूँ कि जैसे दुर्वासा आदि महात्मा जिसके यहाँ रहते हैं उसी का हित करते हैं वैसे ही मैं भी किस तरह कब इसका उपकार कर सकूँगी। पुत्र, किसी के किये हुए उपकार के बदले में

जो लोग उपकार करते हैं वही सचमुच पुरुष हैं। जो किसी के किये उपकार को नहीं भूलता वही सत्पुरुष है। मनुष्य को चाहिए कि जितना उसका उपकार कोई करे उससे अधिक ही उसका उपकार करदे। मुझे जान पड़ता है, इस ब्राह्मण पर कोई घोर दुःख आ पड़ा है। जो मैं इस समय इसकी सहायता नहीं करूँगी तो अनुचित होगा।

कुन्ती के ये वचन सुनकर भीमसेन ने कहा—पहले आप यह जानने की चेष्टा कीजिए कि ब्राह्मण पर क्या दुःख आ पड़ा है और किसने उसे दुःख दिया है। फिर अत्यन्त कष्टसाध्य होने पर भी मैं उसको दूर करने का उपाय करूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, कुन्ती और भीमसेन में यह बातचीत हो ही रही थी कि फिर ब्राह्मण और ब्राह्मणी के रोने का शब्द सुन पड़ा। जिसका बछड़ा बाँध लिया गया हो ऐसी गाय जैसे दौड़कर बछड़े के पास जाती है वैसे ही विह्वल भाव से दौड़कर कुन्ती उस ब्राह्मण के घर में गईं। भीतर जाकर उन्होंने देखा कि ब्राह्मण अपनी स्त्री, बेटे और बेटी के साथ विलाप कर रहा है। ब्राह्मण कह रहा है कि इस संसार में जीवित रहने से मनुष्य को पराधीन होकर अनेक अनिष्ट घटनाएँ देखनी पड़ती हैं और दारुण दुःख सहने पड़ते हैं। इस
२० कारण ऐसे सारांशहीन निष्फल जीवन को धिक्कार है। ज़िन्दा रहने से अपार दुःख और मानसिक पीड़ा सहनी पड़ती है। जो पुरुष जीवित है उसे अवश्य ही सुख-दुःख आदि द्वन्द्वों का सामना करना पड़ेगा। देखो, एक आत्मा ही धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्ग का सेवन करता है। इन तीनों के अभाव से अनन्त दुःख भोगना पड़ता है। कुछ लोग मोक्ष को ही श्रेष्ठ बताते हैं; किन्तु हमको संसार पर अनुराग है इस कारण हम मोक्ष पाने के अधिकारी भी नहीं हैं। ख़ास कर मुझे उस मोक्ष की चाह भी नहीं। इसके सिवा अर्थ ( धन ) भी दुःख की जड़ है। अर्थ प्राप्त करने में सम्पूर्ण रूप से नरकभोग का जैसा कष्ट उठाना पड़ता है। धन कमाने की लालसा दुःख का कारण है। धन मिलने पर भी सुख नहीं; उसमें उससे बढ़कर कष्ट उठाने पड़ते हैं। धन पर ममता हो जाने पर यदि किसी तरह उस धन का नाश हो गया तो उसमें सबसे बढ़कर दुःख भोगना पड़ता है। मुझे इस समय इस आपत्ति से छुटकारा मिलने का कोई भी उपाय नहीं सूझ पड़ता। मैं सोचता हूँ कि क्या पुत्र-स्त्री आदि को लेकर किसी निर्भय स्थान में भाग जाऊँ? प्रिये, मैं पहले कई बार तुमसे किसी उपद्रवहीन स्थान में भाग चलने के लिए कह चुका हूँ; किन्तु तुमने नहीं माना। मैंने जब तुमसे कहा कि चलो, इस जगह से और किसी अच्छी जगह उठ चलें, तब तुमने दुर्बुद्धिवश यही कहकर टाल दिया कि नहीं, यह मेरे बाप-दादे का घर है। यहीं मेरे पिता-माता रहते थे। यहीं पैदा होकर मैं इतनी बड़ी हुई हूँ। इसलिए इस स्थान को मैं नहीं छोड़ सकती। ब्राह्मणी, तुम्हारे माता-पिता और बन्धु-बान्धव बहुत दिन पहले ही इस स्थान को छोड़कर स्वर्ग सिधार

चुके हैं; फिर यह स्थान छोड़कर दूसरी जगह जाने को तुम्हारा जी क्यों न चाहा ? तुमने बन्धुओं के स्नेह से मेरी बात नहीं सुनी। इसी से यह तुम्हारे बन्धुओं के नाश का अवसर आ गया। इससे इस समय मुझे बड़ा दुःख हो रहा है। मैं इस समय ही अपने प्राण दूँगा; क्योंकि मैं आप जीवित रहकर बन्धुओं के विनाश को न देख सकूँगा। तुम मेरी सहधर्मिणी ३०
हो और जननी के समान स्नेह करती हो। तुम अपनी इन्द्रियों को वश में रखकर सदा नम्र भाव से रहती हो। देवताओं ने तुम्हें ही मेरा जन्म भर का साथी और सखा बना दिया है। तुम्हीं मेरी परमगति हो। तुम अच्छे कुल में उत्पन्न और सुशीला हो। तुम मुझे पुत्र देनेवाली, गृहस्थाश्रम का आधा अङ्ग, पतिव्रता और अपकार न करनेवाली स्त्री हो। पिता-माता की आज्ञा से, शास्त्रोक्त विधि के अनुसार, मन्त्रपाठ-पूर्वक मैंने तुम्हारा पाणि-ग्रहण किया है। अपने जीवन के लिए तुम ऐसी अनुगत स्त्री को मैं कैसे छोड़ सकता हूँ ! इस अपने बालक पुत्र को भी, जिसकी मसें तक अभी नहीं भीगीं, मैं नहीं छोड़ सकता। कन्या को भी अपनी जान बचाने के लिए नहीं त्याग सकता। विधाता ने, उपयुक्त पात्र के हाथ में देने के लिए, यह कन्या-रत्न धरोहर के तौर पर मुझे सौंपा है। मैं आशा किये हुए हूँ कि इसके पुत्र ( दौहित्र ) होने से मैं अपने पितरों के साथ उन अक्षय लोकों में जाऊँगा जिनमें नातीवाले लोग जाते हैं। फिर मैं अपने जीवन की रक्षा के लिए इस अपनी पैदा की हुई बालिका कन्या को कैसे छोड़ सकता हूँ ! लोग कहते हैं, पुत्र पर ही पिता का प्यार अधिक होता है। कुछ लोग कहते हैं कि कन्या अधिक प्यारी होती है परन्तु मैं तो दोनों को समान स्नेह-पात्र समझता हूँ। कन्या से सद्गति प्राप्त होती है; कन्या से वंश की रक्षा होती है और कन्या से अक्षय सुख मिलता है। इस कारण मैं निरपराध बालिका कन्या को मृत्यु के मुख में भेजने का साहस नहीं कर सकता। और, जो मैं आप अपने को नष्ट करता हूँ तो भी मुझे दुःख ही होगा; क्योंकि मेरे परिवार की ज़िन्दगी मेरे ही जीवन पर निर्भर है। मेरे बाद उसका भरण-पोषण कौन करेगा ? परिवार के किसी आदमी का त्याग निन्दित और निठुर काम समझा जाता है। मैं अपना जीवन दे दूँगा तो भी ये जी नहीं सकते। इस कारण मैं बड़े असमञ्जस में पड़ा हूँ। हाय, इस विपत्ति से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं देख पड़ता। मुझे धिक्कार है ! मेरे और मेरे इस परिवार के बचने का और कोई उपाय ही नहीं है। इस कारण परिवार-सहित मेरा मरना ही भला है। यही मेरा इस समय कर्त्तव्य है। जीवित रहना मेरे लिए किसी तरह उचित नहीं। ४१

# एक सौ इकसठ अध्याय

## ब्राह्मणी का विषाद

ब्राह्मणी ने कहा—स्वामी, आप पण्डित हैं; इसलिए साधारण पुरुषों की तरह शोक करना आपको उचित नहीं। यह शोक का समय नहीं है। पृथ्वी पर जितने मनुष्य हैं उनका अवश्य ही एक दिन मरना होगा। इसलिए जो बात अवश्य होनेवाली है उसके बारे में शोक करना वृथा है। लोग अपने सुख के लिए ही पत्नी, पुत्र और कन्या की इच्छा करते हैं। इसलिए आप सद्बुद्धि को ग्रहण करके अपनी चिन्ता को दूर कीजिए। मैं आपका जीवन बचाने के लिए स्वयं जाऊँगी। इस संसार में पत्नी को प्राण देकर भी पति का हित करना चाहिए। यही स्त्री-जाति का सनातन धर्म है। इस कारण मैं प्राण त्यागकर इस लोक में यश और परलोक में अक्षय सद्गति प्राप्त करूँगी। साथ ही मेरे इस काम से आपको भी सुख प्राप्त होगा—जीवन बच जायगा। मैंने यह स्त्री का श्रेष्ठ धर्म समझ रक्खा है। हे ब्राह्मण-श्रेष्ठ, जीवन-रक्षा होने से आप अधिकाधिक धर्म और अर्थ का उपार्जन कर सकेंगे। जिस उद्देश से लोग भार्या को स्वीकार करते हैं उसे मैं सिद्ध करूँगी। पुत्र और कन्या उत्पन्न करके मैंने आपका पितृ-ऋण चुका दिया है। आप जीवित रहेंगे तो इस पुत्र और कन्या का भरण-पोषण और देख-रेख कर सकेंगे; किन्तु मैं जीवित रहकर इस कार्य को भली भाँति नहीं कर सकती। [ आपका मेरे प्राण और सम्पत्ति आदि सर्वस्व पर अधिकार है। ] आप परलोक सिधार जायँगे तो मैं आपके बिना किस तरह जीवन धारण कर सकूँगी? आपकी मृत्यु के उपरान्त ये दोनों बच्चे ही किस प्रकार जीवित रह सकेंगे? आपके न रहने पर मैं ही किस तरह अच्छी राह
१० पर स्थिर रहकर इनके जीवन की रक्षा कर सकूँगी? आपके बाद यदि आपके घराने के साथ विवाह-सम्बन्ध के अयोग्य पात्र, कलङ्की और दर्प से उद्धत लोग इस कन्या के लिए प्रार्थना करेंगे तो मैं किस तरह इस कन्या की रक्षा कर सकूँगी? आकाशचारी गिद्ध आदि पक्षी जैसे ज़मीन पर पड़े हुए मांस के टुकड़े को ताकते और उस पर झपटते हैं वैसे ही लोगों को विधवा स्त्री को देखने से लोभ होता है। हे द्विजोत्तम, विधवा हो जाने पर दुष्ट लोग मेरे चित्त को चलायमान कर सकते हैं। नाथ, तो मैं उस अवस्था में किस तरह—साधु जन जिसकी बड़ाई करते हैं उस—सुमार्ग पर टिकी रह सकूँगी? मैं आपकी इस बालिका कन्या को ही किस तरह आपके बाप-दादे की चाल पर चलाने में समर्थ हो सकूँगी? आप धर्मतत्त्व के ज्ञाता हैं, आप इस बालक को जैसी विद्या पढ़ा सकेंगे वैसी शिक्षा भला मैं कैसे दे सकूँगी? जैसे कोई शूद्र वेद सुनने की इच्छा करे वैसे ही अयोग्य दुष्ट लोग इस कन्या का पाणि-ग्रहण करने की इच्छा करेंगे। यदि मैं इस कन्या को उनके हाथ में न देना चाहूँगी तो जिस तरह कौआ यज्ञ के घी को ले भागे उसी तरह वे लोग मेरा तिरस्कार करके इस कन्या को हर ले जाने की चेष्टा करेंगे।

मैं कुछ ठीक नहीं कर पाती कि मेरी तब क्या दशा होगी। उस दशा में आपके इस बालक को नालायक़ और इस कन्या को अयोग्य पात्र के हाथ में देखकर मैं अवश्य अपने प्राण दे दूँगी। तब ये आपके और मेरे न रहने पर जलहीन मछली की तरह तड़प-तड़पकर जान दे देंगे। इसलिए आप विचार करके देखिए, आपके मरने पर मैं और ये दोनों बच्चे भी अवश्य मर जायँगे। इसलिए मेरी समझ में मेरा त्याग ही आपका कर्त्तव्य है। ब्रह्मन्, धार्मिक लोगों का कहना है कि पुत्रवती स्त्री यदि स्वामी से पहले मर जाय तो वह उसके लिए बड़े सौभाग्य की बात है। आपको सुखी रखने के लिए मैं पुत्र, कन्या और अपना जीवन सब छोड़ने को तैयार हूँ। स्त्रियों को चाहिए कि विविध यज्ञ, तपस्या, व्रत और दान आदि सबसे स्वामी का प्रिय और हित करने को श्रेष्ठ समझें। इसलिए मैंने जो करना विचारा है वही कर्त्तव्य और धर्मसङ्गत है। उससे आपका और आपके वंश का भला होगा। पण्डित लोग कहते हैं कि विपत्ति से उबारने के लिए ही लोग स्त्री, पुत्र और कन्या का भरण-पोषण करते हैं। आपत्ति से छुटकारा पाने के लिए धन का सञ्चय करना चाहिए, धन के द्वारा स्त्री की रक्षा करनी चाहिए। किन्तु स्त्री के द्वारा हो और चाहे धन के द्वारा हो, सर्वदा अपनी रक्षा करनी चाहिए। पण्डित लोगों ने निश्चय करके कहा है कि दृष्ट और अदृष्ट दोनों तरह के फल प्राप्त करने के लिए लड़की-लड़के उत्पन्न करने चाहिएँ, ब्याह करना चाहिए और घर बनाकर अर्थोपार्जन करना चाहिए। एक ओर वंश को और दूसरी ओर अपने को रखकर तौलने से सारे वंश की अपेक्षा अपना ही पल्ला भारी देख पड़ेगा। इसलिए हे आर्य, मेरे द्वारा अपनी आपत्ति टालिए; बुद्धि को स्थिर करके अपनी रक्षा कीजिए। मुझे ही जाने के लिए आज्ञा दीजिए। आप इस पुत्र और कन्या का भरण-पोषण कीजिएगा। धार्मिक लोग कहा करते हैं कि स्त्री-जाति अवध्य है; और राक्षस लोग भी धर्मज्ञ होते हैं। इसलिए सम्भव है, वह राक्षस मुझको न मारे। हे धर्मज्ञ, इस स्थल पर पुरुष का वध निश्चित और स्त्री का वध अनिश्चित देख पड़ता है। इस कारण मुझे ही वहाँ भेजना उचित है। मैं बहुत सुख भोग चुकी हूँ। आप भी मेरा बहुत कुछ प्रिय कर चुके हैं। मैं बहुत धर्म-सञ्चय कर चुकी हूँ और आपसे सन्तान भी प्राप्त कर चुकी हूँ। इसलिए जीवन-त्याग करने में मुझे तनिक भी दुःख न होगा। मैं सन्तान उत्पन्न कर चुकी हूँ, वृद्ध हो आई हूँ, और सदा आपका हित किया करती हूँ। यही सब सोच-विचारकर मैंने अपने प्राण देना ही निश्चित कर लिया है। इसके सिवा मेरे न रहने पर आप दूसरा ब्याह कर सकते हैं; इस कारण फिर धर्माचरण कर सकेंगे। हे मङ्गल-निधान, पुरुष बहुविवाह करने से धर्म-भ्रष्ट नहीं होता; किन्तु स्त्री यदि पहले पति को अग्राह्य करके दूसरे पुरुष का आश्रय ले लेती है तो उसे पाप लगता है। आप इन सब बातों पर विचार करके और आत्महत्या को निन्दित समझकर अपने वंशधर पुत्र-कन्या की और अपनी रक्षा कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—हे भरत-नन्दन, ब्राह्मण अपनी स्त्री के ये वचन सुनकर उससे लिपट
३८ गया और असह्य दुःख के मारे दोनों रोने लगे।

---

## एक सौ बासठ अध्याय

ब्राह्मण के बेटे-बेटी की उक्ति

वैशम्पायन ने कहा कि इसके बाद शोकार्त्त माता-पिता की इन बातों को आदि से अन्त तक सुनकर वह कन्या दुःखित हो कहने लगी—आप लोग किसलिए शोक से अधीर होकर अनाथ की तरह रो रहे हैं? मैं एक बात कहती हूँ, उसे सुनकर जो कर्त्तव्य हो सो कीजिएगा। आप लोग धर्म के अनुसार अवश्य ही एक दिन मुझे छोड़ देंगे। इसलिए जब मेरा त्याग निश्चित है तब केवल मुझे त्यागकर आप सबकी रक्षा क्यों नहीं करते? लोग निस्तार पाने की आशा से ही सन्तान की इच्छा करते हैं। अतएव कन्यारूपिणी नौका की सहायता से आप इस विपत्ति-सागर के पार पहुँच जाइए। पुत्र से इस लोक और परलोक, दोनों लोकों मे उद्धार होता है। इसी से पण्डित लोग उसे पुत्र कहते हैं। पितर लोग नाती से अपने उद्धार की आशा किया करते हैं; किन्तु मैं आप ही पिता के प्राणों की रक्षा करके उनका उद्धार करूँगी। पिताजी, यदि आप अपनी रक्षा न करेंगे तो मेरा यह नन्हा सा भाई अवश्य ही काल का कौर हो जायगा। तब मेरे इस भाई के और आपके न रहने से पितरों को पिण्ड पहुँचाने-वाला कोई न रह जायगा। उससे अत्यन्त अमङ्गल होगा। और, तब, मैं भी पिता, माता और भाई को न देखकर बहुत ही दुःख भोगूँगी। तब दुःख पर दुःख भोगकर मैं अकाल में ही इस लोक से चल बसूँगी; किन्तु जो आप स्थिर बुद्धि से धैर्य के साथ विचार करके इस विपत्ति से अपना उद्धार कर सकेंगे तो माता, बालक पुत्र, वंश और पिण्ड, सबकी रक्षा
१० होगी। पिताजी, पुत्र अपने तुल्य होता है और पत्नी सखी के समान होती है; किन्तु कन्या कष्ट के समान होती है। इस कारण उस कष्टरूपिणी कन्या को त्यागकर अपने जीवन की रक्षा कीजिए। मुझे अपने धर्म का पालन करने की आज्ञा दीजिए। तात, मैं बालिका हूँ। आप प्राण दे देंगे तो मुझे हर एक के द्वार पर जाना पड़ेगा। अतएव मैं इस निठुर कठिन काम को करके कुल की रक्षा करूँगी। उसके कारण मुझे अनेक लाभ होंगे। आप यदि मुझे यहीं छोड़कर उस राक्षस के पास जायँगे तो मुझे बड़ी यन्त्रणा भोगनी पड़ेगी। इसलिए मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मुझ पर कृपा कीजिए। हे साधु-श्रेष्ठ, मेरे और धर्म तथा कुल की रक्षा के अनुरोध से आप अपनी रक्षा कीजिए। मुझे तो आप एक समय अवश्य ही दे डालेंगे; तब न त्याग किया अभी सही। निश्चित रूप से जो काम करना ही है उसमें देर करने की क्या

आवश्यकता है ? आप जान दे देंगे तो हम लोग कुत्तों की तरह औरों के द्वार पर भीख माँगते फिरेंगे। पिताजी, इससे बढ़कर दुःख और क्या हो सकता है ? आप इस क्लेश से छुटकारा पाकर यदि भाई-बन्धुओं के साथ सुख से जीवन बितावेंगे तो मैं स्वर्ग में सुख से रह सकूँगी। मैंने सुन भी रक्खा है कि ऐसी विपत्ति की दशा में अन्याय करके, और कन्या देकर, लोग यदि अपने को श्राद्ध-तर्पण करने के लिए बचा लेते हैं तो पितर उन पर प्रसन्न होते हैं—उनका हित करते हैं।

कन्या के ये वचन सुनकर पिता और माता दोनों और भी रोने लगे। कन्या भी उनके साथ रोने लगी। अन्त को वह बालक उन्हें रोते देखकर प्रसन्नमुख होकर मधुर तोतली वाणी से कहने लगा—माताजी और पिताजी, आप क्यों रोते हैं ? बहन, तुम भी शोक न करो। २०

अब वह बालक हर एक के पास जाकर सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगा। इसके बाद एक तिनका उठाकर वह कहने लगा—मैं इस तृण के द्वारा उस मनुष्य-मांसाहारी राक्षस का नाश कर डालूँगा। उस समय बालक के पिता, माता और बहन तीनों यद्यपि अत्यन्त दुःखित थे तथापि बालक के तोतले वचन सुनकर उन्हें बड़ा आनन्द हुआ।

इसके बाद कुन्ती अपने मन के भाव को प्रकट करने का उपयुक्त अवसर उपस्थित देख, उनके पास जाकर, जैसे अमृत छिड़ककर कोई मुर्दे को जिला दे उस तरह, उस ब्राह्मण के परिवार के शरीरों में जान सी डालती हुई यों कहने लगीं। २४

---

## एक सौ तिरसठ अध्याय

### कुन्ती और ब्राह्मण की बातचीत

कुन्ती ने कहा—मैं जानना चाहती हूँ कि आप लोग यों किस कारण दुःख प्रकट कर रहे हैं; मुझसे हो सकेगा तो मैं उसके प्रतिकार की चेष्टा करूँगी।

ब्राह्मण ने कहा—तपस्विनी, तुम्हारा यों कहना साधु मनुष्यों के योग्य ही है; किन्तु मेरे इस दुःख को मनुष्य दूर ही नहीं कर सकता। उसमें ऐसी शक्ति ही नहीं। इस नगर के समीप बक नाम का एक राक्षस रहता है। वह मनुष्याहारी इस नगर पर और इस प्रदेश पर अपना अधिकार रखता है। मनुष्यों के मांस से पुष्ट, महाबली, दुष्टहृदय वह असुरराज इस प्रदेश की औरों से रक्षा करता है। उसके बाहुबल से हमारी रक्षा होती है, इसी कारण अन्य राज्य या अन्य किसी प्राणी से हमें कोई खटका नहीं है। उस राक्षस के भोजन के लिए एक छकड़े भर अन्न, दो भैंसे और जो मनुष्य यह सामग्री लेकर जाता है वह भी, हमें नित्य 'कर' के रूप में देना पड़ता है। इस देश में रहनेवाले गृहस्थ बारी-बारी से नित्य उसे यह कर

देते हैं। अनेक वर्षों के बाद इस तरह की सङ्कटरूप 'बारी' हर एक गृहस्थ के लिए आती है। यदि कभी कोई गृहस्थ इस सङ्कट से बचने की चेष्टा करता है तो वह राक्षस उसे स्त्री-पुत्र आदि परिवार-सहित मारकर खा जाता है। वेत्रकीयगृह नाम के स्थान में इस प्रदेश का एक राजा है। वह बुद्धिहीन और नीतिभ्रष्ट है। यह सच है कि वह स्वयं राक्षसों को मारने में असमर्थ है किन्तु जिसमें सदा के लिए प्रजा का मङ्गल हो—यह विपत्ति मिट जाय—इसका कोई उपाय ढूँढ़ निकालने की भी वह चेष्टा नहीं करता। इसी से हम लोग सदा चिन्तित और उद्विग्न रहते हैं। जब हम उसके राज्य में बसते हैं तब हमें इस दुःख का सामना करना ही पड़ेगा। ब्राह्मण किसी की बात नहीं सुनते और न किसी की इच्छा के अनुसार चलते हैं। वे तो मनमानी जगह उड़नेवाले पक्षी की तरह अपने गुणों से ही जहाँ चाहते हैं वहाँ रहते हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि पहले राजा का आश्रय लेना चाहिए, फिर स्त्री से व्याह करना चाहिए और तब धन-सञ्चय करना चाहिए। इन तीनों बातों को प्राप्त करने से जाति और पुत्रों की रक्षा की जा सकती है; किन्तु इन तीनों का संग्रह मैंने उलटे ढङ्ग से किया है। इसी कारण इस समय विपत्ति के समुद्र में मग्न होकर दारुण दुःख का अनुभव कर रहा हूँ। आज वही कुलक्षय करनेवाली हमारी बारी है। उसी राक्षस के आहार के लिए आज हमारे यहाँ से एक मनुष्य जाना चाहिए। मेरे पास इतना धन नहीं है कि कहीं से एक मनुष्य मोल ले आऊँ और उसे राक्षस के अर्पण करूँ। और, अपने परिवार के किसी मनुष्य को भी मैं दे नहीं सकता। इस कारण आज उस राक्षस के हाथ से छुटकारा पाने का कोई भी उपाय मुझे नहीं देख पड़ता। इसी से इस दुस्तर शोकसागर में पड़ा हुआ मैं गोते खा रहा हूँ। मैंने निश्चय कर लिया है कि आज मैं स्त्री, पुत्र और कन्या के साथ उस नीच राक्षस के पास जाऊँगा।



१० १७ बस, वह हम सबको एक साथ खा जायगा।

# एक सौ चौंसठ अध्याय

कुन्ती का राक्षस को मारने के लिए भीमसेन से अनुरोध करना

कुन्ती ने कहा—ब्राह्मण, आप इस डर से किसी तरह का खेद न करें। मैंने उस राक्षस के हाथ से छुटकारा पाने का एक उपाय सोच लिया है। आपके केवल एक पुत्र और एक कन्या है। वे दोनों अभी बच्चे हैं। इसलिए मैं नहीं चाहती कि आपकी पत्नी या आप स्वयं उस राक्षस के पास जायँ। मेरे पाँच पुत्र हैं, इसलिए उनमें से कोई एक आहार की सामग्री लेकर उस पापी के पास जायगा।

ब्राह्मण ने कहा—मैं अपने प्राणों की रक्षा के लिए कभी ऐसा काम नहीं कर सकता। अधर्मी या नीच जाति का मनुष्य भी अपने लिए अतिथि या ब्राह्मण के प्राणों का नाश नहीं करा सकता। तुम निस्सन्देह कोई कुलीन घर की धर्म में निष्ठा रखनेवाली स्त्री हो, जो ब्राह्मण के लिए अपने आत्मा से भी बढ़कर प्यारे पुत्र को राक्षस का आहार बना देना चाहती हो। किन्तु मैं इसे किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता। ब्रह्महत्या और आत्महत्या में आत्महत्या ही ठीक और मेरा कर्त्तव्य है। ब्रह्महत्या करके उसके महापाप से किसी तरह मुझे अपना छुटकारा नहीं देख पड़ता। बिना जाने भी ब्रह्महत्या की जाय तो उससे यों छुटकारा नहीं होता। हे कल्याणरूपिणी, मैं अपने हाथ से अपनी हत्या भी नहीं करना चाहता। दूसरा यदि मेरी हत्या करेगा तो उसमें मुझे पापभागी न होना पड़ेगा; किन्तु यदि जान-बूझकर अपने मतलब के लिए मैं ब्राह्मण की हत्या कराऊँगा तो उस महापातक से, सहज में या कष्ट से, किसी तरह मैं मुक्त नहीं हो सकता। इसके सिवा यह निष्ठुर नीच निन्दनीय कार्य है। पण्डितों का कहना है कि घर में आये हुए और शरणागत को त्यागने और याच्ञा करनेवाले को मारने से बढ़कर निष्ठुर और निन्दनीय काम दूसरा नहीं है। मेरे लिए यह आपत्काल अवश्य है किन्तु १०
आपत्काल के धर्मों को जाननेवाले प्राचीन लोग कह गये हैं कि उस समय में भी कभी निन्दनीय निष्ठुर कार्य न करना चाहिए। इसलिए आज स्त्री-सहित मेरे मरने में ही मेरा मङ्गल है। अपने लिए तुम्हारे पुत्र ब्राह्मण की हत्या का अनुमोदन मैं कभी किसी तरह नहीं कर सकता।

कुन्ती ने कहा—ब्रह्मन्, मैं भी निश्चित रूप से यही जानती हूँ कि सब तरह ब्राह्मण की रक्षा करनी चाहिए। और, सौ होने पर भी माता-पिता के लिए हर एक पुत्र प्रिय होता है; किन्तु आप जिस राक्षस की बात कह रहे हैं वह मेरे पुत्र को मार ही नहीं सकता। मेरा पुत्र पराक्रमी, मन्त्रज्ञ और तेजस्वी है। मैं निश्चित रूप से जानती हूँ कि वह उस राक्षस को सब भोजन की सामग्री दे आवेगा और आप सही-सलामत चला आवेगा। मैंने देखा है कि इससे पहले अनेकों महाबली भीमकाय राक्षस उस वीर से लड़कर मारे गये हैं। ब्राह्मणश्रेष्ठ, आप

यह बात किसी और के आगे प्रकट न कीजिएगा; क्योंकि आप यह बात प्रकट करेंगे तो विद्यार्थी ऋषिकुमार कौतूहल-वश वैसी शक्ति पाने के लिए मेरे पुत्रों को बहुत ही तङ्ग करेंगे। साधु लोगों का कहना है कि गुरु की आज्ञा के बिना मेरे पुत्र जो विद्या दूसरों को देंगे उस विद्या के द्वारा वे फिर आप कुछ न कर सकेंगे। इसलिए वे वह विद्या गुरु की आज्ञा के बिना और किसी को नहीं दे सकते।



कुन्ती के ये वाक्य सुनकर ब्राह्मणी-सहित ब्राह्मण को बड़ा आनन्द हुआ। उसने कुन्ती के अमृत-मधुर वचनों का सादर अभिनन्दन किया। इसके उपरान्त कुन्ती के साथ जाकर उस ब्राह्मण ने और कुन्ती ने भी यह कार्य करने के लिए भीमसेन से अनुरोध किया। भीमसेन ने सुनते ही स्वीकार कर लिया।

२०

---

## एक सौ पैंसठ अध्याय

कुन्ती और युधिष्ठिर का संवाद

वैशम्पायन ने कहा—हे भरतकुलावतंस, भीमसेन ने वह काम करने की प्रतिज्ञा की। उधर युधिष्ठिर आदि अन्य पाण्डव भी भिक्षा माँग करके घर लौटे। भीमसेन के आकार से ही युधिष्ठिर इस वृत्तान्त को जान गये। उन्होंने एकान्त में बैठकर माता से कहा—भीम-पराक्रमी भीमसेन क्या अपनी इच्छा से यह काम करने के लिए तैयार हुए हैं या आपने उनको आज्ञा दी है?

कुन्ती ने कहा—शत्रुदलन भीमसेन मेरी आज्ञा से ही ब्राह्मण को और इस नगर भर को विपत्ति से बचाने के लिए यह भारी और कठिन काम करने को उद्यत हुए हैं। यह सुनकर फिर युधिष्ठिर ने कहा—आपने ऐसा भयानक दुष्कर साहस कैसे किया? पुत्र के त्याग की साधु लोग प्रशंसा नहीं करते। आप पराये पुत्र के लिए अपने पुत्र के त्याग की इच्छा क्यों करती हैं? पुत्र-त्याग का विचार करके आप लोक-विरुद्ध और शास्त्र-विरुद्ध काम करने को तैयार हुई

हैं। जिसके बाहु-बल का भरोसा करके हम लोग सुख से निश्चिन्त होकर सोते हैं और नीचों के द्वारा छीने गये अपने राज्य को फिर पाने की आशा करते हैं; जिस असाधारण तेजस्वी के पराक्रम को स्मरण करके दुःख और डर के मारे दुर्योधन और शकुनि को रात के समय नींद नहीं आती; जिस वीर के पराक्रम की सहायता से हमने लाक्षाभवन की आपत्ति से और अन्यान्य छोटी-मोटी, उसी से सम्बन्ध रखनेवाली, विपत्तियों से छुटकारा पाया और पुरोचन मारा गया है; जिसके बल का सहारा पाकर हम समझते हैं कि धृतराष्ट्र के पुत्रों को मारकर इस रत्नपूर्ण वसुन्धरा को हमने मानों प्राप्त ही कर लिया है; उसे आप क्या समझकर त्यागने को उद्यत हुई हैं? दुःख और डर से चित्त-विकार उपस्थित होने के कारण आपकी बुद्धि नष्ट तो नहीं हो गई है? १०

यह सुनकर कुन्ती ने कहा—युधिष्ठिर, तुम भीम के लिए चिन्ता न करो। मैं दुर्बुद्धि या मोह के कारण ऐसा काम करने को तैयार नहीं हुई हूँ। पुत्र! देखो, इस ब्राह्मण के घर में हम सुख से रहते हैं। इसने आदर-सत्कार करके हमारे दुःख को बहुत कुछ घटा दिया है। इसके घर में आश्रय पाने के कारण ही धृतराष्ट्र के पुत्र अब तक हमारा पता नहीं पा सके। इसी कारण इस समय इस तरह मैंने उसके उपकार का बदला चुकाना सोचा है। जो किसी के किये उपकार को नहीं भूलता वही सच्चा मनुष्य है। जो कोई जितना उपकार करे उसका उससे अधिक उपकार करना चाहिए। लाक्षाभवन में भीमसेन के असाधारण पराक्रम और हिडिम्ब के वध को देखकर मुझे निश्चय हो गया है कि उसमें दस हज़ार हाथियों के बराबर बल है। इस कारण उस पर मुझे पूरा भरोसा है। तुम चारों भाइयों को लादकर भीमसेन वारणावत से यहाँ गजराज के समान लाया है। उसके समान बली और कोई नहीं है। वह युद्ध में साक्षात् विष्णु को भी परास्त कर सकता है। पैदा होने के कुछ ही दिनों बाद वह मेरी गोद से पहाड़ की चट्टान पर गिर पड़ा था। उसी समय उसका शरीर ऐसा दृढ़ और भारी था कि चट्टान चूर-चूर हो गई। मैंने ख़ूब सोचकर उसके बल का पूरा अनुभव करके उसे ब्राह्मण का यह उपकार करने की आज्ञा दी है। मैंने अज्ञान, लोभ या मोह के वश होकर ऐसा निश्चय नहीं किया। अच्छी तरह सोच-विचार करके मैं यह धर्म का कार्य करने को उद्यत हुई हूँ। युधिष्ठिर, इससे दो प्रयोजन सिद्ध होंगे। हमको ब्राह्मण ने आश्रय दिया है, इस २० उपकार का बदला चुक जायगा, और धर्म भी होगा। मैं जानती हूँ कि क्षत्रिय चाहे जिस तरह से ब्राह्मण की सहायता करे, उसे अच्छी गति प्राप्त होगी। क्षत्रिय यदि क्षत्रिय की जान बचाता है तो भी उसे इस लोक और परलोक में श्रेष्ठ कीर्ति मिलती है। वैश्य की सहायता करनेवाला क्षत्रिय सब लोगों का मनोरञ्जन करने में समर्थ होता है। जो राजा शरणागत शूद्र को विपत्ति से बचाता है वह भी ऐश्वर्यसम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ राजवंश में उत्पन्न होता है। यह बात मुझसे भगवान् व्यासदेव ने कही थी। इसलिए मैं उसे भेजती हूँ। २६

## एक सौ छाछठ अध्याय

बक राक्षस के साथ भीमसेन का युद्ध

युधिष्ठिर ने कहा—माता, आपने अपनी बुद्धि से विचारकर ब्राह्मण पर दया करके ऐसा किया सो उचित ही है। आपने ब्राह्मण के दुःख से दुःखित होकर यह परोपकार का काम करना विचारा है, इसलिए भीमसेन अवश्य ही उस मनुष्य-भक्षी राक्षस को मारकर लौट आवेंगे। किन्तु आप ब्राह्मण से यह कह दीजिएगा कि नगर-निवासी लोग यह बात न जान सकें कि भीमसेन ने यह काम किया है। उससे कह देना कि वह इस बात की असलियत को सावधानी से छिपा रक्खे।

महाराज, इसके उपरान्त रात बीतने पर पाण्डुपुत्र भीमसेन आहार की सामग्री लेकर उस स्थान में गये जहाँ वह राक्षस रहता था। वहाँ पहुँचकर महाबली भीमसेन आप ही उस खाने की सामग्री को खाते हुए उस राक्षस को पुकारने लगे। भीमसेन के पुकारने पर उस राक्षस को बड़ा क्रोध आया। वह वेग से दौड़ता हुआ वहाँ आया जहाँ भीमसेन थे। उसका शरीर बहुत बड़ा, आँखें-दाढ़ी-मूँछ और सिर के बाल लाल-लाल, आकार बहुत ही भयानक, मुख कानों तक फटा हुआ और दोनों कान शंकु के समान देखने में भयङ्कर थे। उस राक्षस की भौंहें क्रोध के कारण तीन जगह से टेढ़ी हो रही थीं। वह दाँतों से ओठ चबाता हुआ, बड़े वेग से धरती को कँपाता हुआ, दौड़ा। पास पहुँचकर भीमसेन को अपने आहार की सामग्री खाते देख वह क्रोध के मारे आग के समान प्रज्वलित हो उठा। वह आँखें निकालकर भीमसेन से कहने लगा—तू कौन दुर्बुद्धि पुरुष है जो यमराज के यहाँ जाने की इच्छा से मेरे सामने ही मेरे लिए भेजे गये इस अन्न को आप खा रहा है?



राजन्, राक्षस के ये वचन सुनकर भी भीमसेन ने अनसुने से कर दिये। उस राक्षस का अनादर करके हँसते से भीमसेन मुँह फिराये हुए भोजन करते रहे। तब वह मनुष्याहारी राक्षस

भयानक चीत्कार करता हुआ दोनों हाथ उठाये भीमसेन को मारने के लिए उनकी ओर दौड़ा। तब भी शत्रुनाशन पाण्डुपुत्र भीमसेन उपेक्षा के साथ उसकी ओर देखकर भोजन करते ही रहे। अब उस राक्षस के क्रोध की मात्रा बहुत ही बढ़ गई। भीम के पीछे पहुँचकर उसने उनकी पीठ पर दोनों हाथ दे मारे। उस बली राक्षस के दोनों हाथों की चोट खाकर भी भीम ने उसकी ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं; वे भोजन करते ही रहे। तब राक्षस और भी अधिक कुपित होकर एक वृक्ष उखाड़कर भीमसेन पर वार करने के लिए उनकी ओर झपटा। उस समय महाबली भीमसेन धीरे-धीरे वह सब आहार की सामग्री खा चुके। फिर जल पीकर वे प्रसन्न चित्त से युद्ध के लिए उठ खड़े हुए। उन्होंने राक्षस के चलाये हुए उस वृक्ष को हँसते-हँसते बाँयें हाथ से पकड़ लिया। तब वह बली राक्षस अनेकानेक वृक्ष उखाड़कर फिर भीमसेन पर प्रहार करने लगा। भीमसेन भी विविध वृक्ष उखाड़कर उनसे उसके प्रहारों को रोककर आप भी उस पर प्रहार करने लगे। महाराज, इस तरह मनुष्य और राक्षस का परस्पर वृक्ष-युद्ध होने से उस वन के अनेकों वृक्षों का नाश हो गया। महाबली बकासुर महाबली पाण्डुपुत्र भीमसेन को अपना नाम सुनाकर उनसे झपटकर घोर युद्ध करने लगा। अब दोनों बली वीर लिपट गये और एक दूसरे को अपनी ओर खींचने लगा। भीमसेन को आप खींचकर और भीमसेन के द्वारा आप खींचा जाकर वह राक्षस थोड़ी देर में थक गया। उन दोनों योद्धाओं के वेग से पृथ्वी काँपने लगी—बड़े-बड़े वृक्ष चूर-चूर होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। भीमसेन ने देखा, वह मनुष्याहारी राक्षस थक गया है। तब उन्होंने बलपूर्वक उसे पृथ्वी पर गिरा दिया और उसकी कोखों में घुटने मारते हुए वे उसको बलपूर्वक पीसने लगे। अन्त को भीम ने उसकी पीठ के बीच में घुटना रखकर दाहने हाथ से उसकी गर्दन और बाँयें हाथ से उसकी कमर पकड़कर बीच से उसके दो टुकड़े कर डाले। उस समय वह राक्षस घोर चीत्कार करने लगा। उसके मुख से रक्त की धारा बह चली।



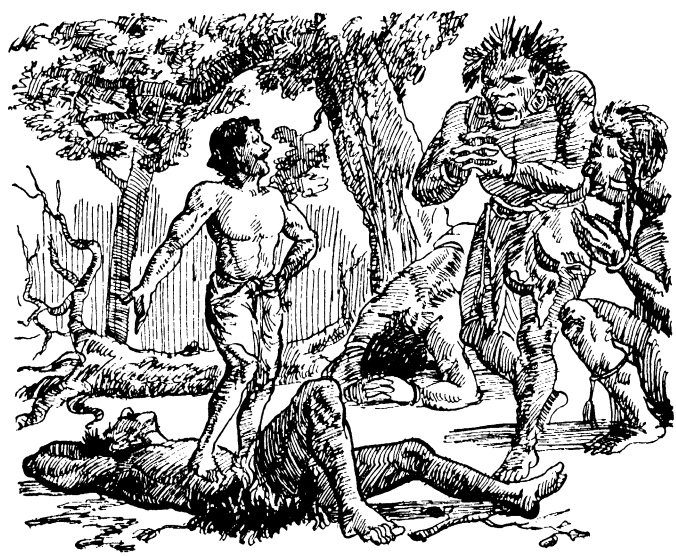
२०

२८

# एक सौ सड़सठ अध्याय

वकासुर का वध। उसकी जाति के राक्षसों का वहां से भागना। नगरवासियों का आनन्दित होना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, पर्वत ऐसे शरीरवाले वकासुर को भीमसेन ने अङ्ग-भङ्ग करके मार डाला। वह भयानक चीत्कार करता हुआ मर गया। राजन्, उस शब्द से डरकर उस राक्षस के परिवार के लोग अपने अनुचरों-सहित अपने निवास-स्थान से बाहर निकल आये। योद्धा वीरों में श्रेष्ठ भीम ने उन लोगों को डरा हुआ और अचेत सा देखकर उन्हें आश्वास दिया;



साथ ही उनसे मनुष्य-वध न करने की प्रतिज्ञा करा ली। भीम ने उनसे कहा—अब तुम किसी मनुष्य की हत्या न करना। यदि कभी मनुष्य-हत्या करोगे तो तुम्हारी भी इसी तरह की गति होगी। राजन्, भीम के ये वाक्य सुनकर उस राक्षस के बन्धु-बान्धव अनुचर आदि ने मनुष्य-वध न करने की प्रतिज्ञा कर ली। तब से वहाँ के राक्षस बहुत सीधे देख पड़ने लगे।

अब भीमसेन ने उस मरे हुए राक्षस की लाश को उठाकर नगर के फाटक पर रख दिया और आप गुप्त रूप से माता और भाइयों के पास चल दिये। वकासुर के सजातीयों में से बहुत से राक्षस, भीम के हाथों वकासुर की यह गति देखकर, डर के मारे इधर-उधर चल दिये। इधर

राक्षस को मारकर भीमसेन उसी ब्राह्मण के घर लौट आये। उन्होंने [ अपनी माता और ] भाइयों से वहाँ का सब वृत्तान्त आदि से अन्त तक कह सुनाया।

दूसरे दिन सबेरे नगरवासियों ने नगर के बाहर निकलकर देखा, उस राक्षस की ख़ून से भीगी हुई पहाड़ के शिखर-सदृश भयानक लाश वहाँ पृथ्वी पर पड़ी है। उसे देखकर उनके १०
रोमाञ्च हो आया। जो लोग नगर के फाटक पर गये थे वे परम प्रसन्न होकर नगर में लौट आये। उन्होंने एकचक्रा नगरी के और लोगों को यह सुसंवाद सुनाया। तब हज़ारों बालक-बूढ़े-जवान नगर-निवासी औरत-मर्द वक राक्षस को देखने के लिए उसी ओर चल पड़े। लोगों का ताँता बँध गया। उस अद्भुत अमानुषी काम को देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। राक्षस के मरने के लिए जिसने जिस देवता की पूजा करने की मानता मान रक्खी थी वह उसे करने लगा। इसके बाद गिनकर सब लोग पता लगाने लगे कि कल किसकी बारी थी। गिनने से उसी ब्राह्मण की बारी मालूम हुई। तब सबने उस ब्राह्मण के पास जाकर इस घटना के बारे में पूछा। लोगों के बहुत पूछने पर उसने पाण्डवों को बचाकर कह दिया कि अपनी बारी जानकर मैं अपने परिवार के साथ बहुत बिलख-बिलखकर रो रहा था। इसी समय एक परोपकारी मन्त्रसिद्ध महात्मा आ गये। उन्होंने मुझसे मेरे रोने का कारण पूछा; मैंने सब हाल उनसे कह दिया। उन्होंने मेरे और इस नगर के सब निवासियों के दुःख को सुनकर हँसकर कहा—मैं ही उस दुष्ट राक्षस के पास उसका आहार ले जाऊँगा; मेरे लिए तुम्हें डरने या चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। इसके बाद आहार की सामग्री लेकर वे वकासुर के पास वन में गये। मुझे निश्चय है कि उन्हीं ने यह दुष्कर काम करके हम लोगों का हित किया है।

ब्राह्मण आदि चारों वर्णों की प्रजा को उस ब्राह्मण के ये वाक्य सुनकर बड़ा अचरज हुआ। सबने इस ख़ुशी में एक बड़ा भारी ब्रह्मभोज किया। तब से सब लोग नगर के भीतर बड़े सुख से रहने लगे। कुन्ती-सहित पाँचों पाण्डव भी उसी पुरी में ब्राह्मण के यहाँ आनन्द से रहने लगे। २१

---

## चैत्ररथपर्व

## एक सौ अड़सठ अध्याय

उस ब्राह्मण के यहां एक दूसरे ब्राह्मण का आना और द्रौपदी के स्वयंवर की चर्चा करना

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवों ने वकासुर को मारने के बाद वहाँ रहकर क्या किया, सो मुझे सुनाइए। वैशम्पायन ने कहा—राजन्, वे ब्राह्मण के घर में रहकर उसी

तरह वेद का अध्ययन करने लगे। कुछ समय बीतने पर एक ब्रह्मचर्यव्रत-धारी ब्राह्मण ने उसी ब्राह्मण के यहाँ आकर वहाँ रहने की प्रार्थना की। अतिथि की इच्छा पूरी करने का व्रत रखने वाले उस ब्राह्मण ने उक्त अभ्यागत ब्राह्मण की यथोचित पूजा की और रहने के लिए स्थान दिया। वहाँ रहकर वह पर्यटन करनेवाला अभ्यागत ब्राह्मण नित्य अनेक देश, तीर्थ, नदी, राजा, राज्य और नगर आदि की बहुत सी अद्‌भुत बातों का वर्णन किया करता था। जनमेजय, पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव कुन्ती के साथ उस ब्राह्मण की सेवा करते और उससे देश-देशान्तर की बातें सुना करते थे। एक दिन उस ब्राह्मण ने बातें करते-करते पाञ्चाल देश में द्रौपदी के अद्‌भुत स्वयंवर, धृष्टद्युम्न और शिखण्डी की उत्पत्ति, तथा द्रुपद के महायज्ञ में यज्ञवेदी से द्रौपदी की उत्पत्ति का हाल सुनाया। महात्मा ब्राह्मण के मुँह से संक्षेप में यह विचित्र वृत्तान्त सुनकर नरश्रेष्ठ पाण्डवों ने उससे फिर विस्तार के साथ वर्णन करने के लिए अनुरोध किया। उन्होंने कहा—भगवन्,
१० द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न अग्नि से कैसे उत्पन्न हुए? द्रौपदी भी यज्ञ की वेदी से कैसे उत्पन्न हुई? इनकी अद्‌भुत उत्पत्ति का हाल आप विस्तार के साथ कहिए। द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न ने किस तरह महापराक्रमी द्रोणाचार्य से अस्त्रविद्या सीखी? द्रुपद और द्रोण दोनों पहले के मित्र थे; फिर वे पीछे किस कारण परस्पर शत्रुता करने लगे? आप विस्तार के साथ सब कथा कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पाण्डवों के इस प्रश्न को सुनकर वह ब्राह्मण द्रौपदी की
१२ उत्पत्ति का वृत्तान्त कहने लगा।

---

## एक सौ उनहत्तर अध्याय

### द्रोण और द्रुपद के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन

ब्राह्मण ने कहा—हरिद्वार के समीप भरद्वाज नाम के एक महातपस्वी, धर्मात्मा, व्रतधारी असाधारण तेजस्वी महर्षि रहते थे। वे एक समय गङ्गा-तट पर स्नान करने गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि घृताची नाम की अप्सरा स्नान किये हुए जल से बाहर निकल रही है। किनारे पर आते ही वायु ने उसके कपड़े को शरीर पर से उड़ा दिया। उसे उस दशा में देखने से ऋषि का चित्त चञ्चल हो गया। ब्रह्मचारी ऋषि का चित्त बहुत दिनों के बाद उस अप्सरा पर चलायमान होने से उनका वीर्य स्खलित हो गया। उन्होंने उस वीर्य को 'द्रोण-कलश' में रख दिया। उसी वीर्य से उनके द्रोणाचार्य उत्पन्न हुए। द्रोण ने सब वेदों और वेदाङ्गों को पढ़ा। राजन्, पृषत नाम के एक राजा भरद्वाज ऋषि के मित्र थे। उनके भी इसी समय द्रुपद नाम का एक पुत्र उत्पन्न हुआ। क्षत्रियश्रेष्ठ पृषत के पुत्र द्रुपद भी आश्रम में जाकर द्रोण के साथ वेद पढ़ने और धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करने लगे। दोनों बालक एक साथ खेलते भी थे।




द्रोणाचार्य्य के सामने बन्दी के रूप में राजा द्रुपद—पृष्ठ ३७३

राजा पृषत का स्वर्गवास होने पर द्रुपद को राज्य मिला। इसी समय द्रोण ने सुना कि माँगनेवालों को परशुराम अपनी सब सम्पत्ति दे रहे हैं। परशुराम वन को जाने के लिए तैयार थे, इसी समय भरद्वाज-पुत्र द्रोण ने उनके पास जाकर कहा कि हे द्विजश्रेष्ठ, मैं धन की इच्छा से आपके पास आया हूँ। परशुराम ने कहा—ब्रह्मन्, इस समय मेरे पास केवल मेरा शरीर बचा है। आप चाहे मेरा शरीर ले लीजिए चाहे मेरी अस्त्र-विद्या। द्रोण ने कहा— आप अपने सब अस्त्र मुझे देकर उनके प्रयोग और उपसंहार की विधि बता दीजिए। परशुराम ने यह स्वीकार करके अपने सब अस्त्र द्रोण को दे दिये। उन अस्त्रों की प्राप्ति से अपने को कृतकृत्य समझकर द्रोण बहुत ही प्रसन्न हुए। परशुराम से ब्रह्मास्त्र पाने के उपरान्त द्रोणाचार्य की बराबरी करनेवाला दूसरा योद्धा इस संसार में नहीं रहा। अब प्रतापी भरद्वाज-पुत्र द्रोण ने द्रुपद के पास पहुँचकर कहा—राजन्, आपने मुझे पहचाना? मैं आपका सखा द्रोण हूँ।

द्रुपद ने कहा—जो श्रोत्रिय नहीं वह श्रोत्रिय का, जो रथी नहीं वह रथी का और जो राजा नहीं वह राजा का सखा नहीं हो सकता। इस कारण इस समय तुम्हारा पहले की मित्रता का स्मरण करना व्यर्थ है। बुद्धिमान् द्रोण, पाञ्चालराज के किये हुए अपने इस अपमान के बदला लेने का निश्चय करके, वहाँ से चुपचाप चल दिये। वे वहाँ से चलकर कौरवों की राजधानी हस्तिनापुर में गये। कौरवों की राजधानी में द्रोणाचार्य के पहुँचने पर भीष्म ने बड़े सत्कार के साथ बहुत सा धन देकर उनकी अधीनता में अपने पोतों को धनुर्वेद की शिक्षा के लिए रख दिया। द्रोण ने द्रुपद को नीचा दिखाने के विचार से कुन्ती के पुत्रों को अपने पास बुलाकर कहा कि तुम लोग अस्त्र-विद्या सीखकर जब समर्थ हो जाओ तब मेरे मन में जो अभिलाषा है उसे, गुरु-दक्षिणा के रूप में, पूरी करना। तुम सच कहो, मेरी उस अभिलाषा को पूर्ण करोगे? अर्जुन आदि शिष्यों ने गुरु के आगे उनकी इच्छा पूरी करना स्वीकार किया। द्रोण ने जब देखा कि अस्त्र-विद्या में होशियार पाण्डवों ने उनकी इच्छा पूरी करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है तब द्रोण ने उनसे यह गुरु-दक्षिणा माँगी कि पृषत के पुत्र राजा द्रुपद को, जो छत्रवती नगरी में राज्य करते हैं, और उनसे छीनकर उनके राज्य को शीघ्र मुझे अर्पण करो। इसके बाद पाण्डु के पाँचों पुत्रों ने जाकर युद्ध में द्रुपद को हराकर पकड़ लिया और मन्त्री के साथ उन्हें बाँध लाकर द्रोणाचार्य के पास उपस्थित कर दिया। तब द्रोण ने द्रुपद से कहा—राजन्, मैं तुमसे फिर पहले की मित्रता की प्रार्थना करता हूँ। तुमने कहा था कि जो राजा नहीं है वह राजा का मित्र नहीं हो सकता। यज्ञसेन, इसी कारण मैंने तुम्हारे साथ राज्य करने के लिए यह यत्न किया है। गङ्गा के दक्षिण तट का राज्य तुम करो और उत्तर तट का राज्य मैं करूँगा। द्विजश्रेष्ठ द्रोण के ये वचन सुनकर अस्त्रज्ञ-शिरोमणि द्रुपद ने कहा—हे महाबुद्धिमान् द्रोण, तुम्हारा भला हो। तुम्हारा ही कहा हो। तुम्हारी इच्छा के अनुसार हम दोनों की यह मित्रता सदा बनी

रहे। शत्रुदमन द्रोण और द्रुपद दोनों परस्पर यों कहकर और मित्रता स्थापित करके अपने-अपने स्थान को चले गये। किन्तु राजा द्रुपद अपने उस घोर अपमान को पल भर के लिए भी
२८ नहीं भूले। वे इसी चिन्ता में दिन-दिन दुबले होने लगे।

---

## एक सौ सत्तर अध्याय

याज और उपयाज का द्रुपद को पुत्रेष्टि यज्ञ कराना और उससे धृष्टद्युम्न तथा द्रौपदी की उत्पत्ति

ब्राह्मण ने कहा—क्रोध से भरे हुए राजा द्रुपद मन्त्रबल से कार्य सिद्ध करने की शक्ति रखनेवाले याज्ञिक ब्राह्मणों की खोज में इधर-उधर अनेक ब्राह्मणों के यहाँ गये। एक श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न करने की चिन्ता से वे बहुत ही व्याकुल हो गये। मेरी इच्छा पूरी करनेवाला कोई श्रेष्ठ पुत्र मेरे नहीं है, यह सोचकर वे बड़े शोक में रहते थे। पहले जो पुत्र उत्पन्न हुए थे उनको और अपने भाई-बन्धुओं को धिक्कार देते हुए वे उन्हें उपेक्षा की दृष्टि से देखने लगे। द्रोण से बदला लेने की चिन्ता में वे सदा गर्म और लम्बी साँसें लिया करते थे। उन्होंने देखा कि बहुत उपाय करने पर भी क्षत्रिय-बल से द्रोण को नीचा नहीं दिखाया जा सकता—द्रोण के प्रभाव, विनय, शिक्षा और चरित्र का पराभव नहीं हो सकता।

इसी चिन्ता में राजा द्रुपद ने गङ्गा के किनारे-किनारे कल्माषपाद राजा की नगरी के चारों ओर घूमते-घूमते एक दिन एक ब्राह्मण के पवित्र आश्रम में जाकर देखा, वहाँ ऐसा कोई ब्राह्मण नहीं है जो स्नातक या ब्रह्मचर्य-व्रतधारी न हो। वहाँ पर राजा द्रुपद ने याज और उपयाज नाम के काश्यप गोत्र मे उत्पन्न, प्रशान्त अतःकरणवाले, याज्ञिक, संहिता के पढ़ने-पढ़ाने में नित्य निरत और निपुण, आलस्यहीन, ऋषिश्रेष्ठ दो ब्रह्मर्षियों को देखा। वे दोनों भाई-भाई थे और सूर्य के उपासक थे। याज बड़े और उपयाज छोटे थे। राजा द्रुपद उन्हें अपनी इच्छा पूरी करने में समर्थ समझकर उनकी सब प्रकार से सेवा करने लगे। राजा दोनों ऋषियों में छोटे भाई को अधिक प्रतापी जानकर, पैर दबाकर, प्रिय वाक्य कहकर और सब प्रकार की
१० सहायता करके विशेष रूप से उन्हीं की उपासना करने में प्रवृत्त हुए।

इसी तरह कुछ समय तक नित्य लगातार सेवा करके एक दिन द्रुपद ने उपयाज से कहा—ब्रह्मन्, जिस कार्य के द्वारा मेरे एक ऐसा पुत्र हो जो द्रोण को मार सके वह कार्य आप मेरे लिए कीजिए। हे उपयाज, आप मेरा यह कार्य कर देंगे तो मैं आपको एक अर्बुद ( दस करोड़ ) गायें अर्पण करूँगा; अथवा आप जो चाहेंगे वही दूँगा।

राजा के ये वचन सुनकर उपयाज ने कहा—मैं नहीं कर सकता। उन्हें प्रसन्न करने के लिए द्रुपद फिर उनकी सेवा करने लगे। फिर एक साल बीत जाने पर उपयाज ने मधुर वाणी में राजा से कहा—तुम मेरे बड़े भाई याज के पास जाओ; मैं समझता हूँ, वे तुम्हारी प्रार्थना पूरी कर देंगे। मेरे बड़े भाई ने एक दिन वन में घूमते-घूमते धरती पर पड़ा हुआ एक फल उठा लिया था। किन्तु जिस जगह पर वह फल पड़ा था वह पवित्र थी या अपवित्र, यह बात उन्हें नहीं मालूम थी। मैं भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था; इससे उनका यह अनुचित काम मैंने देख लिया था। इसी से मैं समझता हूँ कि दोषयुक्त वस्तु के ग्रहण करने में वे कुछ सोच-विचार न करेंगे। फल के पापजनक दोष को देखकर भी उन्होंने उसका विचार नहीं किया। जिसने एक जगह पर शुद्धता का विचार नहीं किया वह दूसरी जगह, लोभ के वश होकर, उसे क्यों न भूल जायगा? इसके सिवा जब वे गुरु-कुल में रहकर वेद-संहिता पढ़ते थे तब औरों के आगे का बचा हुआ जूठा अन्न भी जब-तब खा लेते थे; उन्हें कुछ भी घिन न लगती थी। वे निर्लज्जों की तरह अन्न के ही गुणों का बखान किया करते थे। वे लोभी हैं और धन की लालसा रखते हैं। इससे मुझे निश्चय है कि उनसे तुम्हारा काम सिद्ध हो जायगा। बस, तुम उन्हीं के पास जाओ। वही तुम्हें इस उद्देश से यज्ञ करावेंगे।



२०

याज के ऐसे कर्म सुनकर राजा को मन ही मन बड़ी घृणा हुई; किन्तु उनको तो अपना मतलब गाँठना था, इसलिए उपयाज के बताने पर वे उन्हीं के पास पहुँचे। पूजनीय याज की पूजा करके द्रुपद ने कहा—भगवन्, मैं आपको एक अर्बुद गायें दूँगा; आप मुझको एक यज्ञ कराइए। द्रोणाचार्य से मैं भीतर ही भीतर जला करता हूँ। आप मेरे जी की जलन को मिटाकर मुझे आनन्द दीजिए। द्रोणाचार्य ने ब्रह्मास्त्र प्राप्त कर लिया है। ब्रह्मास्त्र के ज्ञान में उनसे उत्तम और कोई नहीं है। इस कारण मुझे युद्ध में उनसे नीचा देखना पड़ा। पृथ्वी पर ऐसा कोई क्षत्रिय नहीं जो युद्ध-विद्या में कुरुकुल-कुमारों के आचार्य बुद्धिमान् द्रोण से बढ़कर

हो सके। द्रोण के बाण प्राणियों की जान ले लेते हैं; छः हाथ का उनका धनुष भी बड़ा भयानक है। महावीर योद्धा द्रोणाचार्य उत्पन्न तो ब्राह्मण के वंश में हैं; किन्तु उनमें क्षत्रिय के तेज और पराक्रम को निश्चित रूप से परास्त करने की शक्ति है। क्षत्रिय का बल उनका कुछ नहीं कर सकता। वे परशुराम की तरह क्षत्रियों की जड़ उखाड़ने के लिए पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं। पृथ्वी पर उनका अस्त्र-बल अनिवार्य है। हवन के समय घी की आहुति पाकर प्रचण्ड हो रही आग की तरह वे युद्ध में शत्रुओं को जलाते हैं। उनमें ब्रह्म-तेज और क्षात्र-धर्म दोनों हैं। क्षत्रिय के बल की अपेक्षा ब्रह्म-तेज ही श्रेष्ठ है। फिर उनमें तो दोनों बातें हैं। मैं क्षात्र-बल में उनसे हीन होने के कारण अब आपके पास ब्रह्म-तेज की शरण में आया हूँ। आप वेदज्ञ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। मैं आपको द्रोणाचार्य से भी ब्रह्म-तेज में अधिक समझता हूँ। मुझे निश्चय है कि आप मुझे द्रोण को मारनेवाला, युद्ध में अजेय, एक पुत्र दे सकते हैं। याज,
३० आप ऐसा यज्ञ कराइए। मैं आपको एक अर्बुद गायें दूँगा।

याज ने स्वीकार कर लिया। अब वे सोचने लगे कि किस देवता के उद्देश से कौन सा यज्ञ करना चाहिए। उस कार्य को कठिन समझकर याज ने राजा द्रुपद को निष्काम, सन्तोषी उपयाज के पास पूछने के लिए भेजा। कहा कि कह देना, याज ने द्रोण-वध सम्पादन के लिए यज्ञ कराना स्वीकार कर लिया है। उनकी आज्ञा से राजा ने उपयाज के पास आकर सब हाल कहा। तब महातपस्वी उपयाज ने राजा को पुत्र देनेवाला श्रेष्ठ यज्ञ बता दिया। उपयाज ने कहा—राजन्, आप जैसा चाहते हैं वैसा ही महापराक्रमी, महा-तेजस्वी और महाबली पुत्र होगा। राजा द्रुपद को निश्चय हो गया कि वह पुत्र अवश्य ही द्रोणाचार्य को मारेगा। उन्होंने यज्ञ की सब सामग्री मँगाकर जमा की। याज ने राजा को यज्ञ की दीक्षा दी। हवन समाप्त होने पर उन्होंने द्रुपद की रानी से कहा—रानी, यहाँ आकर शीघ्र अभिमन्त्रित हवि ग्रहण कीजिए। एक कन्या और एक पुत्र तुमको प्राप्त होगा। रानी ने कहा—ब्रह्मन्, मैंने इस समय अपने मुख में दिव्य सुगन्ध





यज्ञ से द्रौपदी की उत्पत्ति—पृष्ठ ३७७

की चीज़ें लगाई हैं; अङ्गों में अङ्गराग लगाया है। इसलिए बिना नहाये मैं यज्ञ का हवि कैसे ग्रहण कर सकती हूँ ? मेरा प्रिय करने के लिए आप तनिक ठहर जाइए।

याज ने कहा—उपयाज के द्वारा अभिमन्त्रित हवि की आहुति मैं अग्नि में छोड़ता हूँ। वह अवश्य ही यजमान की इच्छा को पूर्ण करेगी। तुम आओ या न आओ, कुछ हानि नहीं। बस, मन्त्र पढ़कर याज ने वह आहुति अग्नि में छोड़ दी। उसी समय देवतुल्य, अग्निवर्ण, घोर-



रूप एक कुमार किरीट-मुकुट, उत्तम कवच, खड्ग और धनुष-बाण धारण किये, बारम्बार गरजता हुआ, उस अग्नि के भीतर से प्रकट हुआ। वह उसी समय रथ पर चढ़कर इधर-उधर विचरने लगा। ४०

यह देखकर पाञ्चाल देश के लोग आनन्दित होकर 'साधु, साधु' कहकर हर्ष-कोलाहल करने लगे। उनके आनन्द के आवेश को न सह सकने के कारण पृथ्वी मानों काँप उठी। उस समय आकाश-वाणी हुई कि यह अग्नि से उत्पन्न कुमार लोगों को निर्भय करता हुआ पाञ्चाल-राजवंश का यश बढ़ावेगा और इसी के हाथों द्रोणाचार्य की मृत्यु होगी।

इसके बाद सौभाग्यशालिनी, दर्शनीय अङ्गोंवाली, कमलदल के समान विशाल नयनोंवाली, सर्वाङ्गसुन्दरी एक कुमारी भी उसी यज्ञ की वेदी से उत्पन्न हुई। उसके केश काले और घूँघर-वाले थे। उसके लाल रङ्ग के नख कुछ उभरे हुए थे। भौंहें बहुत ही मनोहर और दोनों

स्तन ऊँचे, कड़े तथा सुगठित थे। उसे देखकर जान पड़ता था मानों मनुष्य-रूप धारण किये कोई स्वर्ग की सुन्दरी पृथ्वी पर प्रकट हुई है। उस कुमारी के शरीर से नीले कमल की सुगन्ध आती थी और आसपास कोस भर तक फैली रहती थी। उस कुमारी के शरीर का रङ्ग साँवला था। पृथ्वी पर उसके समान सुन्दर स्त्री दूसरी नहीं निकल सकती। देवता, दानव, यक्ष आदि जो कोई उसे देख लेता था वही उस पर रीझ जाता था। उस सुन्दर कुमारी के प्रकट होने पर उसी तरह आकाश-वाणी हुई कि यह स्त्री-रत्न कृष्णा क्षत्रियवंश के नाश का कारण होगी। इसी लिए इसकी सृष्टि हुई है। समय आने पर यह सुन्दरी देवताओं के कार्य को सिद्ध करेगी। इससे कौरवों को महाभय उपस्थित होगा।

यह सुनकर सब पाञ्चाल वीर सिंहों की तरह सिंहनाद करने लगे। हर्ष के मारे वे
५० इतना उछलने-कूदने लगे कि पृथ्वी को उनका भार असह्य-सा हो उठा। द्रुपद की रानी ने पुत्र की प्रार्थना की थी। इस समय अपने बिना ही यज्ञकुण्ड से कुमार और कुमारी का उत्पन्न होना देखकर वह याज की शरण में आई। रानी ने कहा—भगवन्, मैं आपसे प्रार्थना करती हूँ कि ये दोनों बच्चे मुझे ही अपनी माता समझें। याज ने, राजा का प्रिय करने के लिए, कहा—अच्छा, ऐसा ही होगा।

अब पूर्ण-काम ब्राह्मणों ने उस कुमार और कुमारी का नामकरण किया। उन्होंने कहा—यह बालक धृष्ट (ढीठ), अत्यन्त अमर्षण (शत्रु के उत्कर्ष को न सहनेवाला) और द्युम्न* सहित उत्पन्न हुआ है, इस कारण इसका नाम धृष्टद्युम्न होगा। कुमारी का रङ्ग काला था, इसलिए उसका नाम कृष्णा रक्खा गया। द्रुपद के महायज्ञ में इस तरह दो सन्तानें हुईं।

प्रतापी भरद्वाज-पुत्र द्रोण ने, यह सब हाल जानकर भी, धृष्टद्युम्न को अपने पास रखकर अस्त्र-विद्या की शिक्षा दी। उन्होंने समझ लिया कि होनी को कोई टाल नहीं सकता। इस
५६ कारण अपनी कीर्त्ति की रक्षा के लिए उन्होंने धृष्टद्युम्न को अस्त्र-विद्या सिखला दी।

---

## एक सौ इकहत्तर अध्याय

### कुन्ती-सहित पाण्डवों का द्रुपद की राजधानी को जाना

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, ये वाक्य सुनकर कुन्ती के महाबली पुत्र द्रौपदी के लिए बहुत ही उत्कण्ठित हुए। हृदय में जैसे किसी ने बाण मार दिया हो, इस तरह बेचैनी से उन्होंने वह रात काटी। कुन्ती ने समझ लिया कि उनके सब पुत्र अद्वितीय सुन्दरी कृष्णा के लिए उत्कण्ठित हो रहे हैं। सबका मन द्रौपदी में लगा हुआ है। तब उन्होंने युधिष्ठिर

* शस्त्र, अस्त्र, शौर्य और उत्साह इत्यादि का उत्कर्ष।

से कहा—हे शत्रुदलन, हम इस महात्मा ब्राह्मण के घर में बहुत दिनों तक रहे। इस मनोहर नगर में भिक्षा माँगकर हमने सुख से इतना समय बिताया। इस प्रदेश में जो वन-उपवन आदि रमणीय स्थान हैं उनकी बारम्बार सैर भी कर ली। हे कुरु-नन्दन, उन सबको बार-बार देखने से अब वैसा आनन्द नहीं मिल सकता। यहाँ भिक्षा भी पहले की तरह सहज में नहीं मिलती। इसलिए तुम्हारी सलाह हो तो हम लोग पाञ्चाल देश को चलें। इस यात्रा में ऐसी वस्तुएँ देखने को मिलेंगी जिन्हें हमने पहले कभी नहीं देखा। इससे हमें बड़ा आनन्द मिलेगा। हमारा मनोरञ्जन भी होगा। युधिष्ठिर, पाञ्चाल देश में भिक्षा बहुत ही सुलभ सुनी जाती है। राजा द्रुपद भी बड़े उदार और अतिथि-सेवा करनेवाले हैं। एक जगह पर बहुत दिनों तक रहना ठीक नहीं। कम से कम मेरी सलाह तो यह नहीं है। इसलिए हे पुत्र, जो तुम्हारी सलाह हो तो हम लोग पाञ्चाल देश की शुभ यात्रा करें।

युधिष्ठिर ने कहा—आपकी जो सलाह और आज्ञा है वही हम करेंगे। वही करने से हमारा भला होगा। किन्तु यह मैं नहीं जानता कि मेरे साथी भाई वहाँ जाना चाहते हैं या नहीं; वे वहाँ जाने को राज़ी होंगे या नहीं। तब कुन्ती ने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव से भी वहाँ जाने की बात कही। वे सब राज़ी हो गये। राजन्, अब कुन्ती उस ब्राह्मण से विदा होकर पुत्रों के साथ महात्मा द्रुपद के मनोहर देश को चल दी। ११

---

## एक सौ बहत्तर अध्याय

पाण्डवों के पास व्यासदेव का आना और द्रौपदी के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, पाण्डव जिस समय छिपे हुए उस ब्राह्मण के यहाँ रहते थे उसी समय उन्हें देखने के लिए एक दिन भगवान् व्यासदेव वहाँ आये। शत्रुदलन पाण्डवों ने उन्हें आते देखकर आगे बढ़कर प्रणाम किया। वे हाथ जोड़कर उनके आगे खड़े हो गये। मुनि ने पाण्डवों की पूजा ग्रहण करके कुशल-प्रश्न किया और उन्हें बैठने के लिए आज्ञा दी। जब पाण्डव बैठ गये तब व्यासजी ने पूछा—हे पाण्डवो, तुम शास्त्रों का अध्ययन और धर्म का आचरण बराबर करते रहते हो न? पूजनीय ब्राह्मणों की पूजा करने में तो तुमसे कोई भूल-चूक नहीं होने पाती? धर्म और अर्थ से युक्त ये वाक्य कहकर ऋषिवर व्यास अनेक अद्भुत इतिहासों का वर्णन करने लगे। वर्णन करते-करते उन्होंने कहा—एक तपोवन-वासी महात्मा मुनि के सुन्दर नितम्बों और भौंहोंवाली, सुगठित पतले अङ्गों से शोभित, सब गुणों से भूषित एक कन्या थी। अपने कर्मों के दोष से वह कन्या अभागिन निकली। उस अनुपम सुन्दरी को उसके योग्य कोई पति न मिला। तब वह अत्यन्त दुःखित होकर, पति पाने के लिए, कठोर

तप करके महादेव की आराधना करने लगी। भगवान् शङ्कर ने प्रसन्न होकर उस यशस्विनी कुमारी से कहा—मैं शङ्कर हूँ; तुम्हें वरदान देने आया हूँ। मुझसे वर माँगो। तुम्हारा भला होगा। अपनी कामना की प्रार्थना करती हुई वह कन्या बारम्बार महेश्वर से कहने लगी—मैं सब गुणों से भूषित पति माँगती हूँ। तब शिव ने कहा—भरतवंश में उत्पन्न पाँच वीर तुम्हारे पति होंगे। यह सुनकर उस कन्या ने वर देनेवाले महादेव से कहा—मैं तो आपके प्रसाद से एक ही पति चाहती हूँ। महादेव ने फिर उससे कहा—तुमने, 'पति दीजिए, पति दीजिए' कहकर, मुझसे पाँच बार पति माँगा है। इसलिए दूसरे जन्म में तुम्हारे पाँच ही पति होंगे। तुमने जैसी प्रार्थना की है वैसा ही होगा। वही कन्या इस समय द्रुपद के यहाँ उत्पन्न हुई है। वह सर्वाङ्ग-सुन्दरी कृष्णा तुम लोगों की पत्नी होगी। यह बात पहले से ही निर्दिष्ट हो चुकी है। इसलिए तुम पाञ्चालराज के नगर में जाकर रहो। द्रौपदी को प्राप्त करके तुम लोग अवश्य सुखी हो सकोगे।

पाण्डवों के पितामह व्यासदेव यों कहकर कुन्ती और पाण्डवों से विदा होकर यथेष्ट स्थान को चल दिये।

---

## एक सौ तिहत्तर अध्याय

अङ्गारपर्ण के साथ अर्जुन का युद्ध, उसका हारना और उससे अर्जुन का संवाद

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, भगवान् व्यास के चले जाने पर पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव माता को आगे करके प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से चल दिये। आश्रयदाता ब्राह्मण से विदा वे माँग ही चुके थे। दुर्योधन से छिपने के पहले उद्देश के अनुसार छिपकर, रात-दिन समतल मार्ग से चलते हुए, वे सोमाश्रयायण तीर्थ पर गङ्गा के निकट पहुँचे। वहाँ पहुँचकर पाण्डव गङ्गा-पार जाने के लिए किनारे पर गये। महारथी अर्जुन एक लकड़ी जलाकर उजेला करके राह दिखाने के लिए सबकी रक्षा करते हुए आगे-आगे चले। उस सूनसान समय में, एकान्त में, एक गन्धर्व-राज अपनी स्त्रियों के साथ जल के भीतर विहार कर रहा था। नदी के पास आते हुए पाण्डवों के पैरों की आहट पाकर महाबली गन्धर्वराज कुपित हो उठा। कुन्ती-सहित पाण्डवों को आते देखकर अपना भयानक धनुष चढ़ाकर उसने कहा—जिस समय सूर्यास्त की सन्ध्या होती है उसके अस्सी पल उपरान्त से कामचारी यक्ष, गन्धर्व, राक्षस आदि के विहार का समय होता है। अन्य समय में मनुष्य विचरते और सब काम करते हैं। मूढ़ मनुष्य यदि लोभ-वश होकर उस समय भ्रमण करते हुए हम लोगों के पास आते हैं तो हम लोग राक्षसों के साथ उनको पकड़ रखते या मार डालते हैं। इसी कारण वेद-शास्त्रज्ञ पण्डितों की आज्ञा है कि महा-



गन्धर्वराज अङ्गारपर्ण का जल-विहार—पृष्ठ ३८०

बली मनुष्य और परम प्रतापी राजा को भी रात्रि के समय जल के भीतर न घुसना चाहिए। तुम लोग वहीं दूर खड़े रहो; मेरे पास न आओ। तुम क्या नहीं जानते कि मैं गङ्गाजल के भीतर विहार करने आया हूँ? मैं अङ्गारपर्ण नाम का गन्धर्वराज हूँ। मुझे अपने बाहुबल का ही आश्रय है। मैं अत्यन्त अभिमानी, अनखवाला और कुबेर का प्रिय सखा हूँ। यह वन मेरा ही है। यह भी मेरे नाम के अनुसार अङ्गारपर्ण कहलाता है। मैं यहाँ, गङ्गा के तट पर, अपनी इच्छा के अनुसार काम-भोग करता हुआ विचरता रहता हूँ। राक्षस, सींगों-वाले हिंसक जीव और देवता आदि कोई भी मेरे पास आने का साहस नहीं करते। तुम लोग किस बिरते पर मेरे पास चले आ रहे हो?

अर्जुन ने कहा—रे दुर्बुद्धि गन्धर्व! समुद्र पर, हिमालय के शिखर पर और इस गङ्गा नदी के ऊपर किसी एक का अधिकार नहीं। हे आकाशचारी, गङ्गा के भीतर जाने के लिए समय का कोई नियम नहीं है। भोजन करके या बिना भोजन किये, रात को या दिन को, हर एक हर समय गङ्गा के पास आ सकता और गङ्गा-जल को छू सकता है। इसके सिवा हम भी शक्ति-शाली हैं। हम यदि अ-समय में ही आ गये हैं तो भी तेरी परवा नहीं करते। तू यही समझ कि हम तुझ पर आक्रमण करने के विचार से इस कुसमय में यहाँ पर आये हैं। जो मनुष्य युद्ध करने में अ-समर्थ हैं वे ही तुम क्रूरों की पूजा करते हैं और तुमको दबते हैं। सुन, हिमवान् के सुवर्ण-शिखर से पूर्व समय में निकली हुई गङ्गा की वहाँ से सात धाराएँ हो गई हैं। सातों धाराएँ समुद्र में जाकर मिली हैं। वे सातों धाराएँ गङ्गा, यमुना, प्लक्षजाता सरस्वती, रथस्था, सरयू, गोमती और गण्डकी नामों से प्रसिद्ध हैं। जो लोग इन सातों नदियों का जल पीते हैं उनके २०
सब पाप दूर हो जाते हैं। सुन गन्धर्व, भगवान् व्यास के कथनानुसार यही पवित्र गङ्गाजी एक धारा से आकाश में जाकर देवलोक में अलकनन्दा कहलाती हैं। पितृलोक में पापियों के लिए दुस्तर वैतरणी नदी भी इन्हीं गङ्गा की एक शाखा है। मङ्गल और स्वर्गगति को देनेवाली देव-नदी गङ्गा में किसी के लिए कभी नहाने, जल पीने या छूने की मनाही नहीं है। फिर तू किस तरह हमें इस जल को छूने से रोकता है? भागीरथी के पवित्र जल को यथेष्ट रूप से जब हर कोई छू सकता है—कोई रोक-टोक नहीं है—तब हम तेरे कहने से कैसे इसे न छुएँ?

महाराज, अर्जुन के ये वचन सुनकर कुपित अङ्गारपर्ण धनुष चढ़ाकर, जिनकी दृष्टि में विष होता है उन साँपों के समान, भयङ्कर पैने बाण अर्जुन पर चलाने लगा। पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने वह जलती हुई लकड़ी और मृगछाला, जिसे वे दुपट्टे की तरह ओढ़े हुए थे, घुमाकर उन सब बाणों को रोक लिया। इस तरह बाणों को निष्फल करके अर्जुन ने कहा—अरे गन्धर्व, अस्त्रज्ञ पुरुषों को यों बाणों का डर दिखलाना किसी काम का नहीं। उनके आगे वह डर फेन की तरह शीघ्र ही मिट जाता है। गन्धर्व लोग मनुष्य-जाति से बढ़कर होते हैं। इसलिए मैं तुझसे

माया-युद्ध न करके दिव्य अस्त्रों के द्वारा युद्ध करूँगा। इन्द्र के गुरु महामान्य बृहस्पति ने पहले यह उत्तम आग्नेयास्त्र भरद्वाज ऋषि को दिया था। भरद्वाज से अग्निवेश्य ने पाया। उनसे मेरे गुरु को मिला। उन ब्राह्मण-श्रेष्ठ गुरु द्रोणाचार्य ने मुझको दिया है। [ वही आग्नेय अस्त्र
३० मैं तुझ पर चलाता हूँ। सँभल जा। ]

महाराज, पाण्डु के पुत्र कुपित अर्जुन ने वह प्रज्वलित आग्नेयास्त्र उस गन्धर्व के ऊपर चलाया। उस अस्त्र से गन्धर्व का रथ जल गया। रथ से हीन, अस्त्र-तेज से जल रहा महाबली अङ्गारपर्ण अचेत होकर औंधे मुँह गिर पड़ा। वैसे ही अर्जुन ने पुष्पमाला-शोभित उसके केश



पकड़ लिये। वे उसे घसीटते हुए भाइयों के पास ले चले। तब उस गन्धर्व की स्त्री कुम्भीनसी नाम की गन्धर्व-कन्या, पति को बचाने के लिए, युधिष्ठिर की शरण में आकर कहने लगी—हे महाभाग, हे प्रभो, मेरी रक्षा कीजिए। मेरे पति को छोड़ दीजिए। मैं कुम्भीनसी नाम की गन्धर्वी आपके शरण आई हूँ।

तब युधिष्ठिर ने अर्जुन से कहा—भैया! युद्ध में जीते गये, यश से हीन, नष्ट-पराक्रम और स्त्री के द्वारा जीवन-रक्षा की प्रार्थना करनेवाले शत्रु को कोई वीर पुरुष नहीं मार सकता। इसलिए तुम अब इस गन्धर्व को छोड़ दो।

युधिष्ठिर की आज्ञा मानकर अर्जुन ने उस गन्धर्व से कहा—गन्धर्व, मैं अब तेरे जीवन को नष्ट न करूँगा। अब तू शोक छोड़कर जहाँ जी चाहे वहाँ जा। कुरुराज युधिष्ठिर तुझे अभय-दान कर रहे हैं।

गन्धर्व ने कहा—मैं हार गया, इसलिए अब अपने अङ्गारपर्ण ( जिसका रथ अङ्गार की तरह छूने योग्य नहीं ) नाम का गर्व छोड़ता हूँ; क्योंकि जनसमाज में यश से रहित अपने निरर्थक नाम का गर्व करना ठीक नहीं समझा जाता। मैं दिव्य अस्त्रों के जानकार अर्जुन को गन्धर्वों की माया दिया चाहता हूँ, और इसे अपने लिए परम लाभ समझता हूँ। अस्त्र की आग से मेरा विचित्र उत्तम रथ जल गया है। अब मैं 'चित्ररथ' से 'दग्धरथ' हो गया हूँ। ४०
पहले मैंने तप करके यह विद्या प्राप्त की थी। वही इस समय प्राण-दान करनेवाले महात्मा अर्जुन को दूँगा। बल के द्वारा शत्रु को बिलकुल परास्त करके, उसके शरणागत होने पर, उसे प्राण-दान करनेवाला वीर पुरुष अवश्य ही प्रत्युपकार का पात्र होता है। मैं चाक्षुषी नाम की विद्या अर्जुन को देना चाहता हूँ। पहले-पहल यह विद्या मनु से चन्द्रमा को मिली थी। फिर चन्द्रमा से गन्धर्वराज विश्वावसु को और उनकी कृपा से मुझे प्राप्त हुई। कायर को यह विद्या फलती नहीं है। हे अर्जुन, इस विद्या के प्रभाव से तीनों लोकों की जो वस्तु जैसी देखना चाहोगे वह वस्तु वैसी ही देख सकोगे। यह विद्या प्राप्त करने के लिए छः महीने तक एक पैर से खड़े होकर तप करने की आवश्यकता होती है किन्तु मैं तुमको यों ही देता हूँ। तुम्हें तप आदि कुछ न करना पड़ेगा। राजन्, इसी विद्या के बल से हम मनुष्यों से श्रेष्ठ हैं। हम लोग इसी विद्या के प्रभाव से देवताओं की बराबरी से आकाश-मार्ग में चल सकते हैं और अनेक अद्भुत काम करने की शक्ति रखते हैं। हे पुरुष-श्रेष्ठ, मैं तुमको और तुम्हारे भाइयों में से हर एक को सौ-सौ गन्धर्वजाति के घोड़े दूँगा। उन घोड़ों पर देवता और गन्धर्व सवार होते हैं। वे दिव्य हैं और मन के समान वेग से चलते हैं। देखने में कुछ दुबले-पतले होने पर भी उनकी गति का वेग क्षीण नहीं होता। पूर्व-समय में वृत्रासुर को मारने के लिए जो इन्द्र का वज्र बना था उसके, वृत्रासुर के मस्तक पर लगने से, हज़ार टुकड़े हो गये थे। ५०
देवता लोग उन वज्र के टुकड़ों की उपासना करते हैं। संसार में यश और धन जो कुछ है वह वज्रखण्ड है। ब्राह्मणों का हाथ वज्र का अंश है। क्षत्रिय का रथ वज्र का अंश है। वैश्य का दान वज्र का अंश है और शूद्रों का सेवाधर्म उसी वज्र का अंश है। क्षत्रियों के वज्र-भाग-रूप रथ का अङ्ग होने के ही कारण पशुओं में घोड़ा मारने के योग्य नहीं समझा जाता। रथ में चलनेवाले घोड़ों को बड़वा ( घोड़ी ) उत्पन्न करती है; वे ही घोड़ों में शूर समझे जाते हैं। गन्धर्वजाति के मेरे ये घोड़े और सब घोड़ों से श्रेष्ठ हैं। ये चाहे जैसा रङ्ग-रूप धारण कर सकते हैं; चाहे जितने वेग से जा सकते हैं और जब याद करो तभी आ जाते हैं। ये तुम्हारे सब मनोरथों को पूरा करेंगे।

अर्जुन ने कहा—हे गन्धर्व, मैंने तुम्हारे प्राण नहीं लिये; इस कारण प्रसन्न होकर यदि तुम मुझे विद्या और घोड़े दे रहे हो तो मैं उन्हें लेना पसन्द नहीं करता।

गन्धर्व ने कहा—देखा जाता है कि महात्मा बड़े पुरुषों के परस्पर मिलने से अवश्य ही आनन्द और प्रीति होती है। तुमने मुझे जीवन-दान किया है। उसी से प्रसन्न होकर मैं तुमको विद्या देता हूँ; साथ ही उसके बदले में मैं भी तुमसे यह उत्तम आग्नेय अस्त्र सदा के लिए ग्रहण करूँगा। यह अस्त्र सब तरह तुम ऐसे प्रतापी वीर पुरुष के योग्य है।

अर्जुन ने कहा—गन्धर्वराज, अस्त्र देकर मैं तुमसे घोड़े ले सकता हूँ। मैं भी तुमसे सदा के लिए मित्रता करना चाहता हूँ। मित्र गन्धर्व, अब तुम यह बताओ कि मनुष्य तुम लोगों से क्यों डरते हैं? हम लोग साधु, वेदज्ञ और सच्चरित्र हैं। शत्रुओं को दबाने की भी हममें सामर्थ्य है। फिर रात के समय जाते हुए हम लोगों का तुमने तिरस्कार और हम पर हमला क्यों किया? इसका कारण बताओ।

गन्धर्व ने कहा—हे पाण्डुपुत्र, तुम्हारे साथ अग्निहोत्र का अग्नि नहीं है, तुमने हवन भी नहीं किया। तुम्हारे साथ आगे आगे ब्राह्मण भी नहीं थे, इसी कारण तुम पर हमला करने की हिम्मत मुझे हुई। यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, पिशाच, नाग और दानव आदि सब जातियों में जो बुद्धिमान् हैं वे कुरुवंश के विस्तार और यश का वर्णन किया करते हैं। हे वीर, मैंने नारद आदि देवर्षियों के मुँह से तुम्हारे पुरखों के गुणों का वर्णन सुना है। समुद्र तक फैली हुई पृथ्वी पर विचरकर मैंने भी अपनी आँखों से तुम्हारे श्रेष्ठ कुल का प्रभाव और प्रताप देखा है। तुम्हें धनुर्वेद सिखानेवाले त्रिलोक-प्रसिद्ध यशस्वी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य को भी मैं जानता हूँ। हे कुरु-कुल-तिलक पार्थ, देवताओं और मनुष्यों में श्रेष्ठ तथा तुम लोगों के पिता धर्म, वायु, इन्द्र, अश्विनी-कुमार और पाण्डु को भी मैं जानता हूँ, जिनसे कुरु-कुल की वृद्धि हुई है। मुझे यह भी मालूम है कि तुम पाँचों भाई देवरूपी, महात्मा, सब अस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ और ब्रह्मचारी हो। तुम्हारी बुद्धि और मन उन्नत तथा उदार है। तो भी मैंने तिरस्कार और आक्रमण इसलिए किया कि जिस पुरुष की भुजाओं में बल है वह स्त्रियों के आगे अपना अपमान कभी नहीं सह सकता। इसके सिवा रात्रि के समय हम लोगों का बल बहुत बढ़ जाता है। हे कुन्ती-पुत्र, स्त्रियों के निकट रहने से मुझे क्रोध आ गया। हे तापत्यवंश के बढ़ानेवाले, जिस कारण युद्ध में तुमने मुझे जीत लिया वह भी सुनो। ब्रह्मचर्य ही श्रेष्ठ धर्म है। तुमने भली भाँति उस ब्रह्मचर्य का पालन किया है। इसी कारण तुमने मुझे सहज ही युद्ध में जीत लिया। हे परन्तप, यदि कोई कामरस का ज्ञाता ( ब्याहा ) क्षत्रिय रात के समय हमारी जाति से युद्ध करे तो वह कभी अपने घर को जीता नहीं लौट सकता। इसके सिवा विवाह कर लेने पर भी जो कोई क्षत्रिय वेदपाठ-पूर्वक नित्यकृत्य करता है और कुलपूज्य पुरोहित की सहायता प्राप्त करके उसी की सलाह से सब काम करता है वह भी हम सब रात को घूमनेवाली जातियों को जीत सकता है। इसलिए हे तपतीवंश में उत्पन्न पार्थ, राजा को चाहिए कि हर एक इष्ट कार्य की

सिद्धि के लिए उस कर्म में जितेन्द्रिय पुरोहितों को नियुक्त करे। षडङ्ग वेदाध्यायी, पवित्र, सत्यवादी, धर्मात्मा और कर्मसिद्ध ब्राह्मणों को ही पुरोहित की जगह देनी चाहिए। जिस राजा के धर्मज्ञ, वाक्य-विशारद, सच्चरित्र और सदाचारी पुरोहित होता है वह अवश्य इस लोक में जय पाकर परलोक में स्वर्ग-सुख भोगता है। अ-प्राप्त वस्तु को पाने की या प्राप्त वस्तु को रक्षित रखने की जिसे इच्छा हो उसे विद्वान् गुणी पुरोहित रखना चाहिए। जो राजा उन्नति और समुद्रपर्यन्त पृथ्वी को प्राप्त करना चाहता हो उसे चाहिए कि पुरोहित के मत के अनुसार काम करे। हे तापत्य, योग्य पुरोहित के बिना केवल शूर और कुलीन होने से ही राजा पृथ्वी-मण्डल को कभी नहीं जीत सकता। इसलिए हे कुरुवंश-वर्द्धन, यह निश्चय जानो कि ब्राह्मण के द्वारा चलाया गया राजा ही चिरकाल तक राज्य-शासन और प्रजा का पालन कर सकता है। ८०

---

## एक सौ चौहत्तर अध्याय

### तपती और संवरण का उपाख्यान

अर्जुन ने कहा—हे गन्धर्व, तुमने अभी मुझे तापत्य कहा, इसका क्या अर्थ है? मैं जानना चाहता हूँ, मुझसे कहो। जिसके कारण हम तापत्य हुए वह तपती कौन थी? हम तो कुन्ती के पुत्र हैं और अपने को कौन्तेय समझते हैं।

वैशम्पायन ने कहा—अर्जुन के ये वाक्य सुनकर वह गन्धर्व उन्हें पहले का इतिहास सुनाने लगा। उसने कहा कि हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ कुन्ती-पुत्र, मैं तुम्हारे आगे यह प्राचीन कथा कहता हूँ। मैंने जिस कारण तुम्हें तापत्य कहा सो सुनो। ये जो भगवान् सूर्य आकाश में रहकर तेज के द्वारा स्वर्ग को व्याप्त किये हुए हैं इनके—इन्हीं के समान—गुणवती, त्रिलोक-सुन्दरी, सावित्री की छोटी बहन, तपती नाम की एक कन्या थी। उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग बहुत ही सुडौल और गठे हुए थे, नेत्र विशाल थे और रूप अनोखा था। वह सदाचारिणी, सुशीला और सुन्दर-वेषधारिणी थी। कोई देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि की कन्या या कोई अप्सरा रूप में उसकी बराबरी नहीं कर सकती थी। सूर्यनारायण को तीनों लोकों में रूप, शील, गुण और ज्ञान में उसके योग्य वर खोजने पर भी नहीं मिला। इधर कन्या भी जवान १०
हो आई। कन्या का शीघ्र विवाह करना आवश्यक था, पर कोई वर नहीं देख पड़ता था। सूर्य इसी चिन्ता से व्याकुल हो गये। इसी समय राजा ऋक्ष के पुत्र, कुरुश्रेष्ठ, बलवान् संवरण सूर्य की आराधना करने लगे। व्रत-धारणपूर्वक पवित्र और अहङ्कारशून्य होकर अर्घ्य, चन्दन, माला आदि सामग्री और तपस्या के द्वारा वे भक्ति के साथ उदय के समय सूर्यदेव की पूजा करने लगे। उन्हें कृतज्ञ, धर्मात्मा और पृथ्वी पर असाधारण रूपवान् देखकर सूर्यदेव ने सोचा कि

यही तपती के स्वामी होने के योग्य पात्र हैं। तब प्रसिद्ध वंश में उत्पन्न श्रेष्ठ राजा संवरण को ही सूर्य ने कन्या देने का निश्चय कर लिया। सूर्य जैसे अपने उज्ज्वल तेज से स्वर्ग को प्रकाशित करते हैं वैसे ही संवरण का तेज पृथ्वी पर फैला हुआ था। वेदपाठी ब्राह्मण जैसे उदय हो रहे सूर्य की आराधना करते हैं वैसे ही ब्राह्मणों के सिवा सब वर्ण की प्रजा संवरण की पूजा करती थी। शत्रुओं के लिए राजा का तेज सूर्य से भी बढ़कर असह्य था और मित्रों को उनकी मूर्त्ति चन्द्रमा से भी बढ़कर आनन्द देनेवाली थी। हे कुरु-नन्दन! संवरण के ऐसे रूप, चरित्र और
२० गुणों को देखकर सूर्य ने स्वयं उन्हें अपनी कन्या तपती का पति बनाना चाहा।

अर्जुन, इसके उपरान्त एक समय परम पराक्रमी राजा संवरण पहाड़ के पास ही एक वन में शिकार खेलने को गये। उस पहाड़ी स्थान में घूमते-घूमते उनका घोड़ा भूख और प्यास से व्याकुल होकर मर गया। घोड़े के मर जाने पर राजा उस पहाड़ी स्थान में पैदल ही घूमने लगे। वहाँ उन्हें एक कमल-नयनी अनुपम सुन्दरी कन्या देख पड़ी। राजा अकेले थे। वे



उस अकेली सुन्दरी को देख अनुरक्त होकर एकटक उसकी ओर निहारने लगे। उसका रूप देखकर राजा ने समझा कि यह साक्षात् लक्ष्मी है। उसकी प्रभा देखकर उन्हें यह धोखा हुआ कि यह साक्षात् सूर्य की प्रभा है। उसके शरीर और तेज को देखकर उन्होंने उसे अग्नि-शिखा समझा। प्रसन्नता और कान्ति से वह उन्हें निर्मल चन्द्रकला जान पड़ी। वह कमल-नयनी पर्वत के एक स्थान पर खड़ी थी। दूर से देखने से जान पड़ता था कि वहाँ कोई सोने की मूर्त्ति किसी ने खड़ी कर दी है। उसके रूप और वेष की चमक से उस पर्वत के वृक्ष और शिलाएँ सोने की सी जान पड़ती थीं। उसे देखने से राजा को पृथ्वी पर की सभी स्त्रियाँ तुच्छ जँचने लगीं। उन्होंने मन में सोचा कि आज उनके नेत्र सफल हुए। जन्म से लेकर अब तक
३० जितनी मनोहर वस्तुएँ उन्होंने देखी थीं वे सब उन्हें इस रूप के आगे तुच्छ जान पड़ने लगीं। उन्होंने मन में कहा कि जान पड़ता है, विधाता ने देवता, असुर, मनुष्य आदि को मथकर उनके

रूप के सारांश से इस अनुपम सुन्दरी कन्या की रचना की है। राजा सब सुध-बुध भूलकर मोहित होकर उसकी ओर से अपनी दृष्टि को नहीं हटा सके।

राजा संवरण अद्वितीय सुन्दरी उस कन्या के बारे में इसी तरह मन में तर्क-वितर्क कर रहे थे। उस सुन्दरी कन्या को देखते ही राजा कामदेव के वश होकर विह्वल हो उठे। काम की आग में जल रहे राजा ने ढिठाई करके उस लजीली सुन्दरी से कहा—सुन्दरी, तुम कौन और किसकी कन्या हो? यहाँ किसलिए इस तरह खड़ी हुई हो? हे मनोहर मुसकानवाली, तुम किसलिए इस सूनसान वन में अकेली विचर रही हो? तुम सर्वाङ्गसुन्दरी हो। यद्यपि तुमने ये गहने पहन रक्खे हैं पर, मेरी समझ में, तुम्हारे लिए इनके पहनने की ज़रूरत नहीं। इन गहनों से तुम्हारी शोभा नहीं है; तुमसे इन्हीं की शोभा है। हे मन्दगामिनी, मैंने जितनी देवकन्या, असुरकन्या, राक्षसकन्या, गन्धर्वकन्या, अप्सरा और अन्यान्य सुन्दरी स्त्रियाँ देखी हैं उनमें से कोई भी मुझे तुम्हारे समान सुन्दरी नहीं जान पड़ती। चन्द्रमुखी, मैंने जब से तुम्हारे इस चन्द्रमा से भी अधिक मनोहर मुख और कमलदल-तुल्य नयनों को देखा है तभी से कामदेव मुझे सता रहा है। ४०

कामवश राजा ने निर्जन वन में उस कुमारी से यों कहा, किन्तु उसने राजा को कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उन्हें कामपीड़ित देखकर भी, जैसे बिजली बादलों में छिप जाती है वैसे ही, वह अदृश्य हो गई। उसे देखने के लिए राजा चारों ओर फिरने लगे; किन्तु सारे वन में घूमकर भी उन्होंने उस कमल-नयनी सुन्दरी को न देख पाया। तब वे एक जगह बैठकर विलाप करते-करते निश्चेष्ट से हो गये। ४४

---

## एक सौ पचहत्तर अध्याय

### संवरण और तपती की बातचीत

गन्धर्व ने कहा—अब शत्रुनाशन राजा संवरण उस सुन्दरी को न देखकर कामवेग से मोहित हो पृथ्वी पर गिर पड़े। तब सुन्दरी सूर्यकन्या ने फिर प्रकट होकर उनको दर्शन दिये। तपती ने काममोहित राजा से हँसते-हँसते मधुर वचनों में कहा—हे पुरुषसिंह, उठो। मोहवश होकर पृथ्वी पर पड़ना तुमको उचित नहीं।

ये मधुर वाक्य सुनकर राजा ने आँखें खोलकर देखा कि सामने वही सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या खड़ी है। तब कामवश राजा ने स्पष्ट शब्दों में उससे विनयपूर्वक कहा—हे सुन्दर नेत्रों-वाली सुन्दरी, मैं तुमको चाहता हूँ; तुम मुझे स्वीकार करो। मेरे प्राण निकले जा रहे हैं। हे विशालनयनी, हे कमल के समान रङ्गवाली, यह देखो, कामदेव तुम्हारे कारण मेरे हृदय में तीक्ष्ण बाण मार रहा है। किसी तरह उसका वेग मेरे रोके नहीं रुकता। हे प्रसन्नमुखी, कामरूपी विषैला साँप मुझे डस रहा है। हे चन्द्र-मुखी, तुम मुझे स्वीकार करो। हे किन्नर-कण्ठी,

१० हे कमल-मुखी, मेरी ज़िन्दगी अब तुम्हारे हाथ में है। सुन्दरी, तुमको न पाऊँगा तो मैं किसी तरह जी न सकूँगा। कामदेव मुझे घायल कर रहा है। इसलिए हे रूपवती युवती, तुम मुझ



पर कृपा करो। मैं तुम्हारा अनुगत होकर रहूँगा। मुझे विमुख करना तुमको उचित नहीं। सुन्दरी, प्रेम-दान करके मेरी रक्षा करना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हें देखते ही तुम पर जो मुझे अनुराग हो गया है वही मेरे मन को अत्यन्त चञ्चल कर रहा है। सुन्दरी, जब से तुमको देखा है तब से और किसी सुन्दरी की ओर आँख उठाकर देखने को भी जी नहीं चाहता। तुम मुझ पर प्रसन्न होओ। मैं तुम पर अनुराग रखता और तुम्हारा अनुगत हूँ; इसलिए मुझे अङ्गीकार करो। हे सुन्दरी, जब से तुमको देखा है तभी से कामदेव मेरे मर्मस्थलों में बाण मार रहा है। कमलनयनी, कामदेव ने मेरे हृदय में जो आग जला दी है उसे तुम अपने प्रेम-जल से बुझा दो। हे सुन्दरी, तुम्हारे दर्शन से प्रचण्ड भयानक धनुष धारण करनेवाला कामदेव उत्पन्न होकर असह्य बाणों की चोट से बड़ी निर्दयता के साथ मुझे घायल कर रहा है। तुम मेरे अधीन होकर उस कामदेव को शान्त करो। सुन्दरी, तुम गान्धर्व-विधि के अनुसार मुझसे ब्याह कर लो। शास्त्रकारों की सम्मति में क्षत्रिय के लिए गान्धर्व विवाह ही सब विवाहों से श्रेष्ठ है।

तपती ने कहा—राजन्, मैं कुमारी हूँ। मेरे पिता मौजूद हैं। इसलिए मैं स्वाधीन नहीं। यदि आप सचमुच मुझ पर रीझकर प्रेम करने लगे हैं तो मेरे पिता से मेरे लिए प्रार्थना
२० कीजिए। महाराज, जिस प्रकार आपके मन को मैंने हर लिया है उसी प्रकार आपने देखते ही

मेरे चित्त को चुरा लिया है। किन्तु हे पुरुषसिंह, अपने शरीर पर मुझे कोई अधिकार न होने के कारण मैं आपको नहीं भज सकती। स्त्रियाँ कभी किसी दशा में स्वाधीन नहीं होतीं। कौन स्त्री यह न चाहेगी कि आपके समान त्रिलोक-प्रसिद्ध, शास्त्रज्ञ, अच्छे कुल में उत्पन्न, भक्त-वत्सल राजा उसका स्वामी हो? अतएव इस समय मुझे जाने दीजिए और मेरे पिता सूर्यनारायण को प्रणाम, तपस्या, व्रत-पूजा आदि से सन्तुष्ट करके उनसे मेरे लिए प्रार्थना कीजिए। हे शत्रुदमन, वे यदि मुझे आपको देने के लिए राज़ी हो जायँगे तो मैं उसी समय सानन्द आपकी सहधर्मिणी हो जाऊँगी। हे क्षत्रियश्रेष्ठ, मैं इन लोक-दीपक सूर्य की छोटी बेटी हूँ। मेरा नाम तपती है। २६

---

## एक सौ छिहत्तर अध्याय

वशिष्ठ की सहायता से संवरण को तपती की प्राप्ति

गन्धर्व ने कहा—इतना कहकर वह सुन्दरी स्वर्ग को चली गई। राजा फिर उसी तरह व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। इधर सेना और अनुचरों को साथ लिये राजा को खोजता हुआ मन्त्री वहाँ पर आ पहुँचा। उसने देखा, टूटकर गिरे हुए इन्द्र-ध्वज के समान राजा पृथ्वी पर पड़े हैं। महाधनुर्द्धर राजा को पृथ्वी पर पड़े देखकर मन्त्री को बड़ा दुःख हुआ। पिता जैसे पुत्र को उठा लेता है उस तरह स्नेह से मन्त्री ने जल्दी से राजा को पृथ्वी पर से उठाया। वह मन्त्री बुद्धिमान्, कीर्त्तिशाली, नीति का जानकार और बुड्ढा था। राजा को उठाकर और उन्हें जीवित देखकर उसकी चिन्ता दूर हुई। उसने सचेत होकर बैठे हुए राजा से मधुर वाणी में कहा—हे नर-श्रेष्ठ, हे निष्पाप, आप खेद को छोड़िए। आपका भला हो। मन्त्री ने सोचा कि राजा भूख और प्यास से पीड़ित होकर इस तरह अचेत हो गये हैं। इसी से वह मुकुट-रहित राजा के मस्तक पर कमल-पुष्प-सुगन्धित जल छोड़ने लगा।



महाबली राजा का चित्त स्वस्थ हुआ। उन्होंने केवल उस मन्त्री को अपने पास रहने
१० देकर सब सेना को वहाँ से जाने की आज्ञा दी। राजा की आज्ञा से सब सेना नगर को चली गई। तब राजा उसी पर्वत के शिखर पर बैठकर पवित्रतापूर्वक हाथ जोड़े, सूर्य की ओर मुख करके, उनकी आराधना करने लगे। राजा ने मन में अपने, शत्रुओं को मन्त्रबल से नष्ट करने-वाले, प्रतापी पुरोहित वशिष्ठ ऋषि को स्मरण किया।

इस तरह बारह दिन तक राजा दिन-रात बैठकर सूर्य की उपासना करते रहे। बारहवें दिन महर्षि वशिष्ठ उनके पास पहुँचे। विशुद्ध-हृदय धर्मनिष्ठ वशिष्ठ को, अपने दिव्य ज्ञान से, मालूम हो गया कि राजा संवरण सूर्य की कन्या तपती पर मोहित हो गये हैं। वशिष्ठ ने वहाँ पहुँचकर व्रतधारी राजा को 'तुम्हारा प्रिय मैं कर दूँगा' कहकर आश्वास दिया। फिर वे उसी समय सूर्यदेव से मिलने के लिए, उनके आगे, आकाश-मार्ग से चल दिये।



सूर्य के समीप पहुँचकर वशिष्ठ ने हाथ जोड़कर प्रसन्नतापूर्वक कहा—भगवन्, मैं वशिष्ठ हूँ। सूर्यदेव ने सन्तुष्ट होकर कहा—आइए। आप किसलिए
२० पधारे हैं? कहिए। हे महाभाग, ऋषिश्रेष्ठ! आप जो मुझसे माँगेंगे वह, अदेय होने पर भी, मैं आपको अवश्य दूँगा।

यह सुनकर महातपस्वी वशिष्ठ ने सूर्य को प्रणाम किया और कहा—सावित्री की छोटी बहन तपती नाम की जो आपकी कन्या है उसे मैं आपसे, राजा संवरण के लिए, माँगता हूँ। भगवन्, राजा संवरण बड़े यशस्वी, धार्मिक और बुद्धिमान् हैं। इसलिए वे सर्वथा आपकी कन्या के योग्य वर हैं।

सूर्य ने पहले ही संवरण को अपनी कन्या देने का निश्चय कर रक्खा था। इस समय वशिष्ठ की यह प्रार्थना सुनकर आदर के साथ उन्होंने कहा—मैं जानता हूँ कि राजा संवरण सब नर-पतियों में श्रेष्ठ हैं। आप भी सब ऋषियों में प्रधान हैं। तपती के समान सुन्दरी स्त्री



वशिष्ठ का देवकन्या को लेकर राजा पंचवरण के पास आना।

भी दूसरी नहीं है। इस कारण ऐसी दशा में ऐसे योग्य पुरुष के कहने को मान लेने में आपत्ति ही क्या हो सकती है?

सूर्यनारायण ने अपनी इच्छा से, राजा संवरण के लिए, वह कन्या महात्मा वशिष्ठ को अर्पण कर दी। उस कन्या को लेकर, सूर्य से बिदा हो, महर्षि वशिष्ठ राजा संवरण के पास आये। प्रसिद्ध यशस्वी कौरव-श्रेष्ठ राजा संवरण कामवश होकर एकाग्र मन से तपती का ही ध्यान कर रहे थे। देव-कन्या तपती को साथ लिये वशिष्ठ को आते देखकर आनन्द के मारे राजा का मुखकमल खिल उठा। आकाश-मार्ग से पृथ्वी पर उतरते समय तपती की बड़ी ही शोभा हुई। जान पड़ा, मानों बिजली सब दिशाओं में अपनी छटा छिटकाती हुई आकाश से नीचे गिर रही है। कष्ट से ये बारह दिन राजा ने बिताये थे। उसके बाद महात्मा वशिष्ठ ३० तपती को प्राप्त करके उनके पास लौट आये।

तपस्या के द्वारा पृथ्वीनाथ भगवान् सूर्य की आराधना करके, वशिष्ठ की सहायता से, राजा ने सुन्दरी भार्या प्राप्त की। इसके बाद उन्होंने उस देव-गन्धर्व-सेवित पर्वत पर ही विधि-पूर्वक तपती के साथ व्याह किया। वशिष्ठ से आज्ञा लेकर वे उसी पर्वत पर विहार करने को रह गये। नगर, राज्य, वन, उपवन आदि सभी स्थानों के शासन का काम राजा ने बूढ़े मन्त्री को सौंप दिया। वशिष्ठजी राजा से बिदा होकर अपने आश्रम को चले गये। इसके उपरान्त महाराज संवरण उसी पर्वत पर देवता की तरह विहार करने लगे।

राजा संवरण उस वन और उपवन में तपती के साथ लगातार बारह वर्ष तक सुख भोगते रहे। हे भरत-नन्दन, इन्द्र ने उन बारह वर्षों तक संवरण के राज्य में एक बूँद भी पानी नहीं बरसाया। हे शत्रु-दमन, उस अनावृष्टि के कारण सब चर और अचर प्रजा का क्षय होने लगा। उस दारुण दुर्भिक्ष के समय ज़मीन पर ओस भी नहीं गिरती थी। इस कारण किसी प्रकार का कोई अन्न नहीं उत्पन्न हुआ। तब भूख से व्याकुल सब प्रजा अपने घर-द्वार छोड़कर देश- ४० देशान्तरों में मारी-मारी फिरने लगी। भूख के सताये नगर-निवासी पुरुष सनातन मर्यादा को छोड़कर—स्त्री, पुत्र, परिवार आदि का त्याग करके—इधर-उधर भागने लगे। नगरी में भूखे आदमियों की भीड़ भरी हुई थी, पर खाने के लिए कुछ न था। मुर्दे ऐसे हो रहे कङ्काल-सार मनुष्यों से भरी हुई वह नगरी प्रेत-परिपूर्ण प्रेतपुरी के समान भयानक हो उठी।

यह देखकर धर्मात्मा मुनिश्रेष्ठ भगवान् वशिष्ठ राजा संवरण के पास पहुँचे और बारह वर्ष के बाद उनको और तपती को नगरी में ले आये। महाराज संवरण जब नगरी में पहुँचे तब इन्द्र भगवान् पहले की तरह वर्षा करने लगे। फिर बहुत सा अन्न उपजने लगा। राजा को अपने राज्य की भलाई में लगा देखकर नगर और राष्ट्र की प्रजा बहुत ही सुखी हुई। इन्द्राणी के साथ इन्द्र ने जैसे यज्ञ किया था वैसे ही तपती के साथ संवरण ने बारह वर्ष का यज्ञ किया।

गन्धर्व ने कहा—हे अर्जुन, सूर्य की कन्या महाभाग्यवती तपती इस तरह तुम्हारे पूर्वपुरुष संवरण की स्त्री हुई। इसी कारण मैंने तुमको 'तापत्य' कहा है। तपती के गर्भ से संवरण के परम प्रतापी महाराज कुरु उत्पन्न हुए। अर्जुन, तुमने उसी वंश में जन्म लिया है; इसी कारण तुम तापत्य हो।

## एक सौ सतहत्तर अध्याय

### वशिष्ठ के जन्म का वृत्तान्त

वैशम्पायन ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, महाबली कुरुश्रेष्ठ अर्जुन गन्धर्व के ये वचन सुनकर भक्ति-भाव से पूर्ण चन्द्र के समान प्रकाशमान हुए। वशिष्ठ के तपोबल का प्रभाव सुनकर उन्हें बड़ा कौतूहल हुआ। उन्होंने फिर गन्धर्व से कहा—हे गन्धर्वराज, तुमने जिन वशिष्ठ ऋषि का नाम लिया, जो हमारे पूर्व-पुरुष संवरण के पुरोहित थे, वे कौन हैं? मैं सुनना चाहता हूँ, तुम कहो।

गन्धर्व ने कहा—वशिष्ठ ऋषि ब्रह्मा के मानस पुत्र और अरुन्धती के पति थे। काम और क्रोध को देवता भी नहीं जीत सकते; किन्तु वशिष्ठ ने अपनी तपस्या के बल से इन दोनों शत्रुओं को जीत लिया था। काम और क्रोध दोनों उनके चरणसेवक-सदृश अधीन थे। इन्द्रियों को वश में करने के कारण ही वे वशिष्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। विश्वामित्र के अपराध से कुपित होकर भी असाधारण बुद्धिमान् वशिष्ठ ने क्रोध को रोक लिया और कुशिकवंश का नाश नहीं किया। पुत्रों के वियोग से वे व्यथित अवश्य हुए, किन्तु शक्ति के रहते भी अशक्त पुरुष की तरह उन्होंने विश्वामित्र के नाश के लिए कोई निष्ठुर कार्य नहीं किया। समुद्र जैसे अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता वैसे ही समर्थ मुनिराज ने पुत्रों को यमराज के यहाँ से लौटाकर मृत्यु की मर्यादा को नष्ट नहीं किया। इक्ष्वाकुवंश के राजाओं ने उन जितेन्द्रिय महात्मा को अपना पुरोहित बनाकर ही सारी पृथ्वी का राज्य प्राप्त किया है। वे नरपति वशिष्ठ ऐसे पुरोहित की कृपा और सहायता से ही अनेक यज्ञ कर सके हैं। हे पाण्डवश्रेष्ठ, बृहस्पति जैसे देवताओं को यज्ञ कराते हैं वैसे ही ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने इक्ष्वाकुवंश के राजाओं को यज्ञ कराये हैं। इस कारण तुम अपना पुरोहित बनाने के लिए किसी श्रेष्ठ धर्मात्मा, वेदज्ञ, गुणी और अपनी पसन्द के ब्राह्मण की खोज करो। हे अर्जुन, जो अच्छे कुलीन क्षत्रिय, अपना राज्य बढ़ाने की—समुद्र-पर्यन्त पृथ्वीमण्डल को अपने वश में करने की—इच्छा रखते हों उन्हें पहले अपने लिए कोई अच्छा पुरोहित ढूँढ़ लेना चाहिए। पृथ्वी के जीतने की इच्छा रखनेवाले को चाहिए कि पुरोहित को ही अगुवा बनावे। इसलिए मैं चाहता हूँ कि एक गुणी, जितेन्द्रिय, विद्वान्, धर्म-अर्थ-काम के मर्म को जाननेवाला ब्राह्मण तुम्हारा पुरोहित हो।



राजा विश्वामित्र का वशिष्ठ ऋषि से उनकी कामधेनु मांगना—पृष्ठ ३६२

# एक सौ अठहत्तर अध्याय

विश्वामित्र का नन्दिनी को ले जाने की चेष्टा करना और नन्दिनी के क्रोध से विश्वामित्र की सेना का भाग जाना

अर्जुन ने कहा—गन्धर्वश्रेष्ठ, दिव्य आश्रम में रहनेवाले विश्वामित्र और वशिष्ठ में किस कारण ऐसा घोर वैर हुआ, सो तुम हमसे कहो। गन्धर्व ने कहा—अर्जुन, यह वशिष्ठ का आख्यान सब लोगों में पुराण कहा जाता है। मैं आदि से अन्त तक यह कथा तुमसे कहता हूँ, सुनो। हे भरतश्रेष्ठ, कान्यकुब्ज देश में गाधि नाम के एक महाबली महापराक्रमी प्रसिद्ध राजा थे। वे कुशिक के पुत्र थे। धर्मात्मा गाधि के भी एक शत्रुदमन लोक-प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम विश्वामित्र रक्खा गया। विश्वामित्र को शिकार का बड़ा शौक था। वे अपने मन्त्री के साथ मृगों और सुअरों का शिकार करते हुए मरुभूमियों, मैदानों और घने वनों में घूमते फिरते थे। एक दिन मृग के पीछे दौड़ने से थककर, प्यासे होकर, विश्वामित्रजी वशिष्ठ के आश्रम की ओर पहुँचे। श्रेष्ठ ऋषि वशिष्ठ ने नर-श्रेष्ठ विश्वामित्र को देखकर स्वागतपूर्वक उनकी अभ्यर्थना की और हाथ-पैर-मुँह धोने के लिए जल तथा जङ्गली कन्द-मूल-फल, घी आदि अर्पण करके पूजन-सत्कार किया। महात्मा वशिष्ठ के पास एक कामधेनु ( नन्दिनी उसका नाम था ) थी। मांगते ही सब अभिलषित वस्तुएँ देने की उसमें शक्ति थी। इस समय वशिष्ठ की १०
इच्छा पाकर उस कामधेनु ने गाँव-नगर और वन की ओषधियाँ ( अन्न ), दूध, अमृत के समान स्वादिष्ट रसायनरूप छः रसों के आहार, पेय ( पीने की सामग्री ), चर्व्य ( चबाने की सामग्री ), चोष्य ( चूसने की सामग्री ) और लेह्य ( चाटने के ) पदार्थ आदि के ढेर लगा दिये। उसने विविध रत्न और कपड़े-गहने आदि भी दिये।

राजा विश्वामित्र, सैन्य-सामन्त और मन्त्री आदि के साथ, उन प्रार्थनीय भोग की वस्तुओं को पाकर बहुत ही सन्तुष्ट हुए। उस धेनु की मनोहर गठन, ऊँचे चारों थन, सुन्दर पीठ और पूँछ, दर्शनीय जांघें और कोखें, चौड़ा मस्तक, नुकीले चौड़े कान, विशाल ऐन, सुडौल सींग, चौड़ी और मोटी गर्दन देखकर विश्वामित्र को विस्मय और लोभ हुआ। उन्होंने ऋषि से कहा—मैं आपको एक अर्बुद ( दस करोड़ ) गायें अथवा सारा राज्य भी देने को तैयार हूँ; आप मुझे यह नन्दिनी दे दीजिए। मुनिवर, आप आनन्द से राज्यसुख भोगिए।

वशिष्ठ ने कहा—हे पापरहित ! देवता, अतिथि, पितृगण और यज्ञकार्य के लिए मैंने यह गाय रख छोड़ी है। इसलिए आपका सारा राज्य लेकर भी मैं इसे नहीं दे सकता।

इस पर विश्वामित्र ने कहा—मैं क्षत्रिय हूँ, और आप जितेन्द्रिय ब्राह्मण हैं। तप और वेदपाठ ही आपका अस्त्र है। इसके सिवा आपमें दूसरा बल नहीं है। मैं एक अर्बुद गायें

देकर इसे लेना चाहता हूँ। यदि इस पर आप राज़ी न होंगे तो मैं क्षत्रियधर्म के अनुसार यह गाय आपसे छीन लूँगा।

वशिष्ठ ने कहा—राजन्, आप बलवान् और राजा हैं। क्षत्रियवंश में जन्म लेने के कारण आपमें बाहुबल भी है। इसलिए आपकी जो इच्छा हो वही कीजिए। कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य
२० का विचार करने की आपके लिए आवश्यकता नहीं।

गन्धर्व अर्जुन से कहता है—हे पार्थ, वशिष्ठ के ये वाक्य सुनकर विश्वामित्र हंस और चन्द्रमा के समान उजली नन्दिनी गाय को इधर-उधर बाँधकर कोड़ों और डण्डों से पीटते हुए हरकर ले चले। नन्दिनी 'बाँ-बाँ' शब्द करती वशिष्ठ के पास जाकर खड़ी हो गई और उनके मुँह की ओर ताकने लगी। बड़ी मार खाकर भी किसी तरह वह आश्रम के बाहर निकाले नहीं निकली।

तब वशिष्ठ ने कहा—नन्दिनी, तुम्हारे इस आर्त्तनाद को मैं सुन रहा हूँ। विश्वामित्र तुम्हें मार-मारकर निर्बल कर रहे हैं, यह भी मैं देख रहा हूँ। किन्तु क्या करूँ, मैं ब्राह्मण हूँ; क्षमा करना ही मेरा स्वभाव और धर्म है।

हे अर्जुन, विश्वामित्र और उनकी सेना के डर से वशिष्ठजी के पास खड़ी हुई नन्दिनी ने कहा—भगवन्, विश्वामित्र के भयानक सिपाही निर्दयता के साथ मुझे कोड़ों और डण्डों से मार रहे हैं। फिर भी आप क्यों इनके इस अत्याचार की उपेक्षा कर रहे हैं?

व्रतधारी वशिष्ठजी नन्दिनी को रोते और विश्वामित्र के सिपाहियों की भयानक मार खाते देखकर भी धैर्य से नहीं डिगे। उन्होंने कहा—नन्दिनी, क्षत्रियों का बल तेज है और ब्राह्मणों का बल क्षमा। इससे मैं क्षमा को नहीं छोड़ सकता। तुम्हारी इच्छा हो तो जाओ।

नन्दिनी ने कहा—भगवन्, आप यह क्या कह रहे हैं? आपने क्या मेरा स्नेह छोड़-
३० कर मुझे त्याग दिया? आप यदि त्याग न करें तो बलपूर्वक कोई भी मुझे नहीं ले जा सकता।

वशिष्ठ ने कहा—नन्दिनी, मैं तुमको नहीं छोड़ता। यदि तुम रह सको तो रहो किन्तु वह देखो, तुम्हारे बछड़े को रस्सियों से बाँधकर सिपाही घसीट रहे हैं।

वशिष्ठ के ये वचन सुनते ही नन्दिनी ने आँखें लाल करके रौद्र रूप धारण किया। उसकी गर्दन के बाल खड़े हो गये। वह गर्दन उठाकर ज़ोर से चिल्लाने लगी। उसके भयानक रूप को देखकर विश्वामित्र के सिपाही डरकर इधर-उधर भागने लगे। सिपाही उसे बाँधकर कोड़ों और डण्डों से मार रहे थे, इससे नन्दिनी और भी क्रोधित हुई। क्रोध के मारे उसका शरीर दोपहर के सूर्य के समान देख पड़ने लगा। कुपित नन्दिनी पूँछ से अङ्गार बरसाने लगी। इसके बाद उसकी पूँछ से पह्लव, थनों से द्राविड़ और शक, योनि से यवन, गोबर तथा मूत्र से शबर और मुँह के फेन से पौण्ड्र, किरात, सिंहल, बर्बर, खस, चिबुक, पुलिन्द, चीन, हूण, केरल तथा अन्यान्य अनेकानेक म्लेच्छ-जातियाँ उत्पन्न हुईं।

विश्वामित्र के देखते ही देखते उन कवच और अस्त्र-शस्त्र धारण किये क्रोधित म्लेच्छों ने प्रकट होकर उस स्थान को छा लिया। विश्वामित्र के एक-एक योद्धा के साथ पाँच-पाँच सात-सात म्लेच्छ भिड़ गये। उन म्लेच्छों की अस्त्र-वर्षा से डरकर विश्वामित्र की सेना उनके आगे ४०
ही इधर-उधर भागने लगी। हे अर्जुन, वशिष्ठ के पक्ष की सेना ने कुपित होकर भी विश्वामित्र के किसी सिपाही की हत्या नहीं की। उस गाय ने इस प्रकार विश्वामित्र की सारी सेना को दूर भगा दिया। विश्वामित्र के सिपाही डर से घबराये हुए आर्त्तनाद करते-करते तीन योजन तक भाग गये। उन्हें अपनी रक्षा करनेवाला कोई न देख पड़ा। ब्रह्मतेज के इस अद्भुत कर्म को देखकर विश्वामित्र को बड़ा अचरज हुआ, साथ ही क्षत्रिय के बल पर अश्रद्धा भी हुई। वे कहने लगे—क्षत्रिय के बल को धिक्कार है! असल में ब्राह्मण का बल ही बल है। बल के बारे में विचार करके यही कहना पड़ता है कि तप का बल सब बलों से बढ़कर है।

यह निश्चय करके विश्वामित्र ने अपने भरे-पुरे राज्य, राजलक्ष्मी और भोग के पदार्थों को लात मारकर तपस्या में ही मन लगा दिया। उन्होंने तपस्या से सिद्धि प्राप्त कर ली। अब वे क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। उनका प्रचण्ड तेज तीनों लोकों में व्याप्त हो गया। वे अपने तप के तेज से तीनों लोकों को तपाने लगे। उन्हें अन्त को इन्द्र के साथ सोम-रस पीने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ। ४८

---

## एक सौ उन्नासी अध्याय

राजा कल्माषपाद की कथा। वशिष्ठ के पुत्र 'शक्ति' के शाप से राजा का राक्षस हो जाना। विश्वामित्र के कहने से कल्माषपाद का वशिष्ठ के सब पुत्रों को खा जाना। वशिष्ठ का शोक

गन्धर्व ने कहा—अर्जुन, इस पृथ्वी पर इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न एक कल्माषपाद नाम के राजा हो गये हैं। वे बड़े ही तेजस्वी और शत्रुओं के लिए काल-स्वरूप थे। एक दिन उक्त राजा, शिकार खेलने के लिए, नगर से निकलकर वन में पहुँचे और वहाँ घूम-घूमकर मृग, सुअर आदि जङ्गली जानवरों का शिकार करने लगे। उन्होंने वहाँ बहुत से गैंड़े भी मारे। देर तक परिश्रम करने से मुरझाये हुए राजा शिकार खेलना छोड़कर वहाँ से लौटे। इससे पहले ही उन्हें देखकर प्रतापी विश्वामित्र मन में यह इच्छा कर चुके थे कि राजा कल्माषपाद मेरे यजमान हों।

युद्ध में अजेय राजा कल्माषपाद को उस समय भूख और प्यास ने बहुत सता रक्खा था। वे बहुत ही तङ्ग जङ्गली राह से चले जा रहे थे। जिधर राजा जा रहे थे उधर से ही महात्मा वशिष्ठ के पुत्र शक्ति आ रहे थे। वशिष्ठ के सौ पुत्र थे; उनमें शक्ति सबसे बड़े थे। उनको देखकर राजा ने कहा कि तुम इधर न आओ, मैं इधर से जा रहा हूँ। ऋषिपुत्र शक्ति ने

मधुर वाणी से समझाकर राजा से कहा—महाराज, सभी बातों में ब्राह्मण से दब जाना ही राजा का धर्म है। यह मेरी राह है; मुझे जाने दीजिए।

इस तरह वे दोनों "राह छोड़ दो, राह छोड़ दो" कहकर झगड़ा करने लगे। धर्म के मार्ग में स्थित ऋषि वहाँ से पीछे नहीं हटे और राजा भी अपने मान की हानि का विचार करके



क्रोध के मारे पीछे नहीं हटे। मुनिश्रेष्ठ शक्ति ने जब राह नहीं छोड़ी तब राजा ने मोहवश होकर राक्षसों के ऐसे निष्ठुर भाव से उनको एक कोड़ा मार दिया। कोड़ा लगते ही क्रोधान्ध होकर शक्ति ने राजा को शाप दिया—रे नीच राजा, तूने राक्षस की तरह मुझे कोड़ा मारा, इसलिए आज से तू राक्षसों की तरह मनुष्यों को खाने लग। तू मनुष्य-मांस खाता हुआ पृथ्वी पर घूमेगा। ले जा, मैं राह छोड़े देता हूँ। वीर्य-शक्ति-शाली शक्ति ने राजा को इस तरह का घोर शाप दिया।

राजा कल्माषपाद को अपना यजमान बनाने के लिए अब से पहले विश्वामित्र और वशिष्ठ की परस्पर शत्रुता हो चुकी थी। हे अर्जुन, उग्र-तपस्वी प्रतापी विश्वामित्र इस समय शक्ति के साथ राजा को झगड़ा करते देखकर उनके समीप पहुँच गये थे। किन्तु पास पहुँचने पर उन्होंने शक्ति को पहचाना कि ये पिता के समान तेजस्वी वशिष्ठ के पुत्र हैं। तब अपना प्रिय प्रयोजन सिद्ध करने के लिए वे दोनों से छिपकर आड़ में हो गये।

शक्ति का शाप सुनकर राजा कल्माषपाद बहुत डरे और शक्ति की शरण में जाकर उन्हें मनाने लगे। हे कुरुश्रेष्ठ, तब राजा के इस भाव को देखकर विश्वामित्र ने एक राक्षस को उनके शरीर में प्रवेश करने की आज्ञा दी। किङ्कर नाम का राक्षस, शक्ति के शाप और विश्वा-

मित्र की आज्ञा से, राजा के शरीर में घुस गया। हे शत्रुदमन, राक्षस जब राजा के शरीर में प्रवेश कर चुका तब इष्ट-सिद्धि हो जाने पर विश्वामित्र वहाँ से चल दिये।

अर्जुन, शरीर में राक्षस के प्रवेश करने पर राजा की मति पलट गई। वे ऐसे भ्रान्त हो गये कि कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का कुछ निश्चय न कर सके। वे वहाँ से वन की ओर चल पड़े। वन में जाते समय एक भूखा ब्राह्मण उन्हें मिला। उसने उनसे खाने के लिए मांस और अन्न माँगा। राजर्षि कल्माषपाद ने उससे कहा—ब्रह्मन्, आप यहाँ पर तनिक ठहरिए। मैं लौटकर आपको आपकी इच्छा के अनुसार भोजन दूँगा। अब राजा वहाँ से चल दिये और वह ब्राह्मण वहीं बैठकर उनके लौटने की राह देखने लगा।

महामनस्वी राजा अपनी इच्छा के अनुसार जी भर घूमकर अपने घर गये और भोजन आदि करके रनिवास में सो रहे। आधी रात के समय राजा को याद आई कि मैं भोजन देने के लिए कहकर उस ब्राह्मण को वन में बिठा आया हूँ। उसी समय उठकर रसोइये को बुलाकर उन्होंने आज्ञा दी कि तुम जल्दी उस वन में जाओ। एक ब्राह्मण बैठा हुआ मेरी राह देख रहा होगा। उसे खाने के लिए तुम अन्न और मांस दे आओ।

अर्जुन, राजा की आज्ञा सुनकर रसोइया मांस की खोज करने लगा। उस समय कहीं मांस न मिलने से चिन्तित रसोइये ने राजा से आकर सब हाल कहा। राजा के शरीर में तो ३०
राक्षस घुसा हुआ था। उन्होंने कुछ भी सोच-विचार न करके रसोइये से बारम्बार कहा—जा, उस ब्राह्मण को मनुष्य का मांस पकाकर खिला दे।

लाचार होकर 'बहुत अच्छा' कहकर वह रसोइया जल्लादों के यहाँ गया; वहाँ से बेखटके मनुष्य का मांस लाकर, पकाकर, उस भूखे तपस्वी के पास पहुँचा। वहाँ जाकर उसने अन्न और वह खाने के अयोग्य नर-मांस तपस्वी को दिया। उस मांस को देखकर तपस्वी ब्राह्मण अपने दिव्य ज्ञान के द्वारा जान गये कि यह मनुष्य का मांस है। क्रोध के मारे ऋषि की आँखें लाल हो आईं। उन्होंने कहा—यह अन्न और मांस मैं नहीं खा सकता। उस अधम राजा ने मुझे खाने के अयोग्य आहार भेजा है इसलिए वही, शक्ति के शाप के अनुसार, मनुष्य-मांस भक्षण करता हुआ पृथ्वी पर विचरेगा। उसे देखते ही लोग डरकर भागने लगेंगे।

शक्ति का शाप इस प्रकार दोहराया जाकर और भी प्रबल हो उठा। राक्षसग्रस्त राजा को कुछ भी विवेक या होश नहीं रहा। वे वन में विचरने लगे। थोड़े ही समय में एक दिन वन में फिर उनकी भेंट शक्ति से हो गई। उनको देखकर राजा ने कहा—तुमने मुझे अनुचित शाप दिया है, इस कारण पहले तुम्हीं को खाकर मैं मनुष्य-मांस खाने का आरम्भ करता हूँ। बस, बाघ जैसे अपने शिकार पर टूटता है वैसे ही झपटकर, राजा ने शक्ति को पकड़ लिया। वे उन्हें मारकर खा गये। ४०

इस प्रकार शक्ति की मृत्यु हो जाने पर विश्वामित्र बारम्बार, वशिष्ठ के बचे हुए और पुत्रों की हत्या करने के लिए, उस राजा के शरीर में घुसे हुए राक्षस को प्रेरणा करने लगे। क्रोध करके सिंह जैसे छोटे-छोटे पशुओं को मारकर खा जाता है वैसे ही वह राक्षस, विश्वामित्र की आज्ञा से, शक्ति के छोटे भाइयों को मार-मारकर खाने लगा।

विश्वामित्र की प्रेरणा से अपने पुत्रों के मरने का हाल जानकर भी वशिष्ठजी ने अपने क्रोध और शोक के वेग को वैसे ही रोक रक्खा जैसे बड़े-बड़े पहाड़ पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठ ने शोक के मारे आत्महत्या करने का विचार किया; परन्तु क्रोध करके कुशिकवंश के नाश का इरादा नहीं किया। ऋषि वशिष्ठ सुमेरु के शिखर पर से नीचे फाँद पड़े, पर उनके तनिक भी चोट नहीं लगी। जैसे कोई रुई के ढेर पर गिरे वैसे ही वे शिलाओं पर गिरे। अर्जुन, जब उन्होंने देखा कि पहाड़ पर से फाँदने पर भी मृत्यु नहीं हुई तब वे जङ्गल में लगी हुई भयानक आग के भीतर घुस पड़े। किन्तु खूब जलती हुई आग ने भी उनको नहीं जलाया। वह जलती हुई आग ऋषि के अङ्गों में शीतल जान पड़ी। तब शोक से व्याकुल मुनि गले में बड़ा भारी पत्थर बाँधकर समुद्र के जल में कूद पड़े किन्तु फिरभी डूबे नहीं। लहरों ने उन्हें किनारे पहुँचा दिया। तब वे बहुत ही खिन्न होकर आश्रम को लौट गये।



४९

---

## एक सौ अस्सी अध्याय

### कल्माषपाद का शाप से छुटकारा और उनके वशिष्ठ के द्वारा पुत्र की उत्पत्ति

गन्धर्व ने कहा—अर्जुन, आश्रम को पुत्रों से ख़ाली देखकर दुःखित वशिष्ठ ऋषि फिर वहाँ से चल दिये। आश्रम से बाहर आकर उन्होंने देखा कि वर्षाकाल के जल से भरी हुई



अपने पीछे आती हुई पुत्र-वधू अदृश्यन्ती से वशिष्ट का प्रश्न—पृष्ठ ३९९

वशिष्ठ ने कहा—पुत्री, तुम इस राक्षस से बिलकुल न डरो। जिसे देखकर तुम डर रही हो वह राक्षस नहीं है। ये त्रिलोक-प्रसिद्ध पराक्रमी राजा कल्माषपाद शाप-वश ऐसा भयानक रूप धारण किये इस निर्जन वन में रहते हैं।



हे अर्जुन, तेजस्वी वशिष्ठ ऋषि ने कल्माषपाद को, सामने आते देखकर, हुङ्कार से वहीं पर रोक दिया। फिर मन्त्र पढ़कर कमण्डलु के जल का एक छींटा मारकर योग-बल के द्वारा राजा को शाप से मुक्त कर दिया। ग्रहण के समय तेजस्वी सूर्य जैसे ग्रह-ग्रस्त होने से मलिन पड़ जाते हैं वैसे ही राजा कल्माषपाद भी बारह वर्ष से शक्ति के शाप से राक्षस-ग्रस्त हो रहे थे। इस समय राजा शाप से और राक्षस से छूट गये। सूर्य जैसे अपनी किरणों से सन्ध्या-काल के बादलों को रँग देते हैं वैसे ही शाप से छूटे हुए राजा ने अपने तेज से उस वन को प्रकाशित कर दिया। पहले का ज्ञान प्राप्त होने पर राजा ने हाथ जोड़कर वशिष्ठ से कहा—भगवन्, मैं सुदास राजा का बेटा कल्माषपाद हूँ। आप मेरे पुरोहित हैं। इस समय आपकी जो आज्ञा हो उसे पूर्ण करने के लिए मैं
३० तैयार हूँ। आपकी जो इच्छा हो, कहिए।

वशिष्ठ ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, तुम यथासमय मेरी इच्छा पूरी कर चुके हो। अब तुम अपने नगर को जाओ और अपने राज्य का पालन करो। मैं तुमको यही आज्ञा देता हूँ कि अब कभी ब्राह्मण का अनादर न करना।

राजा ने नम्र होकर कहा—ब्रह्मन्, मैं अब भूलकर भी ब्राह्मणों का अपमान न करूँगा। आपकी आज्ञा के अनुसार सदा ब्राह्मणों की पूजा और सत्कार करता रहूँगा। हे द्विज-श्रेष्ठ, आप कृपा करके इक्ष्वाकु-वंश की वृद्धि के लिए मुझे एक, मेरी इच्छा के अनुरूप, रूप-गुण-शील-वाला पुत्र दीजिए। इक्ष्वाकु-वंश के पितरों का ऋण चुकाने के लिए मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूँ।

हे अर्जुन, सत्यवादी वशिष्ठ ऋषि ने राजा को पुत्र देना स्वीकार कर लिया। इसके उपरान्त, उसी प्रतिज्ञा के अनुसार, महर्षि वशिष्ठ राजा के साथ जगत्प्रसिद्ध अयोध्या नगरी को

गये। देवगण जैसे इन्द्र के दर्शन के लिए चलें वैसे ही सब नगर-निवासी शापमुक्त राजा कल्माष-पाद को देखने के लिए प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घर से चले। नरश्रेष्ठ राजा बहुत वर्षों के बाद, फिर महर्षि वशिष्ठ के साथ, पुण्य लक्षणोंवाली राजधानी के भीतर गये। अयोध्यावासियों ने देखा कि पुरोहित-सहित राजा, तेजस्वी सूर्य के समान, प्रकाशमान हो रहे हैं। शरद ऋतु में उदय हुए चन्द्रमा के समान सौम्य शोभायुक्त राजा कल्माषपाद ने अयोध्या नगरी को राजलक्ष्मी से फिर शोभित कर दिया। उस उत्तम नगरी में ध्वजा-पताकाएँ खड़ी की गई थीं। साफ़- ४०
सुथरी सड़कों पर छिड़काव किया गया था। इससे वह दर्शकों के चित्त को प्रसन्न करने लगी। हृष्ट-पुष्ट लोगों से पूर्ण वह नगरी, इन्द्र के द्वारा अमरावती के समान, महाराज कल्माषपाद के वैभव और प्रभाव से शोभायमान हुई।

राजा कल्माषपाद रनिवास में गये। राजा की आज्ञा से उनकी रानी ऋतुकाल में महर्षि वशिष्ठ के पास आईं। श्रेष्ठ ऋषि वशिष्ठ ने विधिपूर्वक रानी के गर्भाधान किया। रानी के गर्भ रह जाने पर, राजा से बिदा होकर, वशिष्ठजी अपने आश्रम को चले गये। इधर बहुत समय बीत जाने पर भी रानी के गर्भ से पुत्र नहीं उत्पन्न हुआ। तब रानी ने अपनी कोख में पत्थर दे मारा। बारह वर्ष के उपरान्त, उस चोट से, पुरुषश्रेष्ठ अश्मक का जन्म हुआ। राजर्षि अश्मक ने पौदन्य नाम का नगर बसाया। ४७

---

## एक सौ इक्यासी अध्याय

वशिष्ठ के पोते पराशर का जन्म और उनका पिता की हत्या का हाल सुनकर
सब लोकों को नष्ट करने के लिए उद्यत होना

गन्धर्व ने कहा—हे पार्थ, अब आश्रम-वासिनी अदृश्यन्ती ने शक्ति के ही समान तेजस्वी और शक्ति के वंश को चलानेवाला एक पुत्र उत्पन्न किया। हे भरतश्रेष्ठ, वशिष्ठ ने आप अपने पोते के जातकर्म आदि संस्कार किये। वह बालक जब गर्भ में था तभी वशिष्ठ ने पुत्रशोक से आत्महत्या करनी चाही थी, किन्तु उस बालक को गर्भ में स्थित जानकर उन्होंने अपना वह विचार छोड़ दिया। इसी कारण वशिष्ठ ने उस बालक का नाम पराशर (परासु = मरने के लिए तैयार को + आशासन = ढाढ़स बँधानेवाला) रक्खा। धर्मात्मा पराशर जन्म से ही वशिष्ठ को अपना पिता जानते हुए जैसे पुत्र पिता की आज्ञा का पालन करता है वैसे ही उनकी आज्ञा का पालन करते थे। वे अपनी माता अदृश्यन्ती के आगे ही वशिष्ठ को 'पिता' कहते भी थे। जब वे स्पष्ट अक्षरों में मधुर वाणी से 'पिता' कहने में समर्थ हुए तब एक दिन उन्हें वशिष्ठ को पिता कहकर पुकारते देख अदृश्यन्ती ने आँखों में आँसू भरकर कहा—बेटा, ये तो

तुम्हारे पिता के पिता—दादा—हैं; इसलिए तुम इन्हें पिता मत कहा करो। तुम्हारे पिता को तो वन में राक्षस ने खा लिया है। जिनको तुम पिता समझते हो वे तुम्हारे पिता नहीं, तुम्हारे यशस्वी पिता के पिता—पितामह—हैं।

सत्यवादी, ऋषिश्रेष्ठ, महायशस्वी पराशर यह सुनकर बहुत ही दुःखित और क्रोधित हुए। वे उसी समय सब लोकों का नाश करने को तैयार हुए। यह देखकर महातपस्वी, श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी, बुद्धिमान् वशिष्ठ ने पराशर को ऐसा करने से रोककर शान्त कर दिया। जिस कारण
१० उन्होंने पराशर को शान्त किया सो मैं तुमसे कहता हूँ; सुनो।

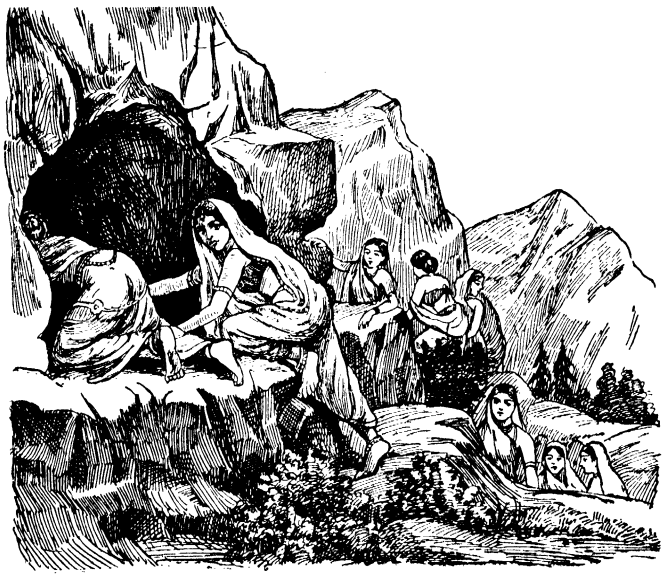
वशिष्ठ ने पराशर से कहा—पृथ्वी पर कृतवीर्य नाम के एक प्रसिद्ध राजा थे। वे वेदज्ञ भृगुवंशी महर्षियों के यजमान थे। उन्होंने सोमयाग करके उग्र स्वभाव के भार्गवों को बहुत सा धन और रत्न देकर सन्तुष्ट किया था। राजा कृतवीर्य के स्वर्गवासी होने पर एक समय उनके वंश के लोगों को धन की ज़रूरत पड़ी। उन्होंने भृगुवंशी ब्राह्मणों को धनी जानकर याचक-रूप से उनके पास आकर धन माँगा। भृगुवंशियों में से किसी-किसी ने धन को, बचाने के लिए, पृथिवी के नीचे गाड़ दिया और किसी-किसी ने क्षत्रियों के डर से अपना धन अन्य ब्राह्मणों को दे डाला। किसी-किसी ने सोच-विचारकर उन क्षत्रियों को अपना धन दे भी दिया।

भृगुवंशी ब्राह्मणों के यहाँ क्षत्रिय लोग धन की खोज में पृथ्वी खोदने लगे। खोदते-खोदते एक क्षत्रिय को एक ब्राह्मण के यहा पृथ्वी के नीचे धन देख पड़ा। सब क्षत्रियों ने वहाँ पर एकत्र होकर उस धन को देखा। ब्राह्मणों ने झूठ कहकर, कि हमारे पास धन नहीं है, हमको धोखा दिया—यह सोचकर कुपित कृतवीर्यवंश के क्षत्रिय शरणागत भृगुवंशियों का अपमान करने लगे। वे पैने बाणों से मारकर सभी भृगुवंशियों को यमराज के यहाँ भेजने लगे। यहाँ तक कि वे ढूँढ़-ढूँढ़कर गर्भ के बालकों की भी हत्या करने लगे।

२० क्षत्रिय लोग नाराज़ होकर जब इस तरह भृगुवंश का नाश करने लगे तब भृगुवंशी ब्राह्मणों की स्त्रियाँ डर के मारे हिमाचल पहाड़ के गुप्त स्थानों में भागकर अपनी रक्षा करने लगीं। उनमें एक ब्राह्मणी के गर्भ था। वह डर के मारे बहुत समय तक अपने गर्भ को ऊरु (मोटी जांघ) में रक्खे रही। अपने पति का वंश बचाने के लिए ही उसने यह काम किया। यह हाल एक और ब्राह्मणी को मालूम हो गया। क्षत्रिय लोग यह ख़बर पाकर यहाँ आकर हम पर भी हमला न करें, इस आशङ्का से उसने यह ख़बर क्षत्रियों को दे दी। तब उस गर्भ को नष्ट करने के लिए तैयार होकर वे क्षत्रिय वहाँ पहुँचे। उन्होंने उस स्थान में पहुँचकर देखा कि वह ब्राह्मणी अपने तेज से अग्नि के समान प्रज्वलित हो रही है।

उसी समय वह गर्भ में स्थित बालक उस ब्राह्मणी की ऊरु को फोड़कर बाहर निकल आया। उस तेजस्वी बालक ने दोपहर के सूर्य के ऐसे अपने तेज से उन क्षत्रियों को अन्धा कर दिया।

अन्धे होकर वे क्षत्रिय उस पहाड़ पर इधर-उधर भटकते फिरने लगे। दृष्टि न रहने से घबराये और डरे हुए वे क्षत्रिय बुझी हुई आग के समान शान्त हो गये। तब वे दुःखित होकर



फिर दृष्टि पाने के लिए उसी ब्राह्मणी की शरण में आये। उन्होंने कहा—हे कल्याणरूपिणी, हमने बड़ा पाप किया है; पर अब हम तुम्हारे आगे एकमत होकर ऐसा न करने की प्रतिज्ञा करते हैं। तुम्हारे प्रसन्न होने से ही हम सब क्षत्रिय फिर आँखों की ज्योति पा सकते हैं। देवी! अपने पुत्रसहित तुम, हम लोगों पर, कृपा करो। फिर दृष्टि देकर क्षत्रियों की रक्षा करो, यही हमारी प्रार्थना है। २९

## एक सौ बयासी अध्याय

क्षत्रियों को फिर से आँखों की ज्योति प्राप्त होना। सब लोकों का नाश करने के लिए और्व ऋषि का उद्योग

ब्राह्मणी ने कहा—पुत्रो, न तो मैंने तुम्हारी दृष्टि नष्ट की है और न मुझे तुम पर क्रोध है। मेरी ऊरु से उत्पन्न यह भृगु-नन्दन बालक ही तुम पर कुपित है। निश्चय जानो, इसी महात्मा ने अपने आत्मीय बन्धुओं के नाश का स्मरण करके कुपित होकर तुम लोगों को अन्धा

कर दिया है। पुत्रो, तुम लोग जब गर्भ-हत्या तक करने लगे तब मैं इस गर्भ को सौ वर्ष तक अपनी ऊरु में छिपाये रही। भृगुवंश का भला करने के लिए छः अङ्गों से युक्त सम्पूर्ण वेद गर्भावस्था में ही इस तेजस्वी बालक के हृदय में उद्भासित हो उठे थे। अपने पुरखों की हत्या से क्रोधित यह बालक ही तुमको नष्ट करने के लिए तैयार है। इसी के दिव्य तेज के प्रभाव से तुम्हारी आँखों की ज्योति जाती रही है। इसलिए हे पुत्रो, तुम मेरी ऊरु से उत्पन्न इस बालक से ही प्रार्थना करो। तुम्हारी प्रार्थना और प्रणाम से सन्तुष्ट होकर यही तुमको फिर आँखों की ज्योति दे सकता है।

वशिष्ठजी कहते हैं—यह सुनकर वे सब क्षत्रिय मिलकर उस बालक की स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति से प्रसन्न होकर उस बालक ने कृपा की। क्षत्रियों की दृष्टि फिर जैसी



की तैसी हो गई। साधु-श्रेष्ठ महर्षि, ऊरु फोड़कर उत्पन्न होने के कारण, पृथ्वी पर और्व नाम से प्रसिद्ध हुए।

इस प्रकार आँखों की ज्योति पाकर सब क्षत्रिय अपने-अपने स्थानों को लौट गये। उधर सब लोगों को परास्त करने के विचार से महामनस्वी और्व ऋषि ने त्रिभुवन को नष्ट करने
१० का निश्चय कर लिया। अपने पूर्वज भृगुवंशी ऋषियों के नाश का बदला लेने के लिए, सब लोकों के नाश के उद्देश से, वे घोर तप करने लगे। अपने पुरखों की प्रसन्नता के लिए वे ऐसा कठोर तप करने लगे कि उससे देवता, दैत्य और मनुष्य सब तप उठे। अपने कुल का मुख

उज्ज्वल करनेवाले और्व के अभिप्राय को जानकर उनके पूर्वज स्वर्गलोक से उनके पास आकर कहने लगे—बेटा और्व, तुम्हारे उग्र तप का प्रभाव हमने देख लिया। अब तुम अपने क्रोध को शान्त करके सब लोगों पर कृपा करो। बेटा, क्षत्रिय लोग जब नाश करने लगे तब हम भृगु-वंशियों ने उनके उस कार्य की उपेक्षा की, इससे यह न समझना कि हम लोग क्षत्रियों को दण्ड देकर अपनी रक्षा न कर सकते थे। हम अपनी बहुत बड़ी ज़िन्दगी से ऊब चुके थे, इसी से क्षत्रिय लोग हमारी हत्या कर सके। हम ख़ुद अपने जीवन का अन्त चाहते थे। एक भृगुवंशी ब्राह्मण ने जो पृथ्वी के नीचे धन गाड़कर रक्खा था उसका उद्देश क्षत्रियों को क्रोधित करना ही था। हे द्विजश्रेष्ठ, हमको कुबेर ने बहुत सा धन दिया था। हम लोग स्वर्ग की इच्छा रखते थे। भला हमें धन की क्या ज़रूरत थी? जब हमने देखा कि मृत्यु किसी तरह हम पर आक्रमण नहीं कर सकती तब हम सबने सलाह करके अपनी मृत्यु का यह उपाय निकाला। आत्महत्या करनेवाले लोग उत्तम लोकों में नहीं जा सकते। इसी कारण ख़ूब सोच-विचारकर हमने अपने हाथ से अपनी हत्या नहीं की। पुत्र, तुम जो यह क्षत्रियों और सब लोकों का संहार करने के लिए उद्योग कर रहे हो सो हमें पसन्द नहीं। सब लोकों को नष्ट करने का विचार छोड़ दो। यह महापातक है। क्षत्रियों और सब लोकों की हत्या मत करो। यह क्रोध तप और तेज को नष्ट करनेवाला है। इसलिए इसको चित्त से दूर करो। २२

---

## एक सौ तिरासी अध्याय

पितरों की आज्ञा से और्व का अपने क्रोध को दूर करना

और्व ने कहा—हे पितृगण, मैं चाहता हूँ कि क्रोध के वश होकर मैंने पहले सब लोकों के संहार के लिए जो प्रतिज्ञा की है वह मिथ्या न हो। क्रोध और प्रतिज्ञा को वृथा करके मैं जीवित रहना नहीं चाहता। क्रोध यदि सफल न होगा तो वह, काठ की आग की तरह, मुझे भीतर ही भीतर जलाता रहेगा। जो मनुष्य किसी कारण से उत्पन्न क्रोध को क्षमा से वृथा कर देता है वह कभी पूरी तरह त्रिवर्ग ( धर्म-अर्थ-काम ) की रक्षा नहीं कर सकता। ठीक अवसर पर किया गया क्रोध अशिष्ट पुरुषों का दमन और शिष्ट पुरुषों की रक्षा करता है। इस कारण जिसे सबको जीतने की इच्छा हो उसे क्रोध की उपेक्षा न करनी चाहिए। जब मैं माता की ऊरु—गर्भशय्या—में था तब मैंने क्षत्रियों के हाथों से मारे जा रहे भार्गवों के वध से दुखी माताओं का आर्त्तनाद सुना था। जिस समय अधम क्षत्रिय भार्गव ब्राह्मणों को मारने पर उतारू हुए और उन्होंने गर्भ के बालकों तक को नहीं छोड़ा उसी समय मुझे क्रोध आया था। मेरे वंश के पिता और माताएँ अत्यन्त शोक से व्याकुल होकर, बाल खोले हुए, डर के मारे चारों

और भागती फिरीं; उन्हें कहीं आश्रय नहीं मिला। किसी ने जब भृगुवंश की स्त्रियों को आश्रय नहीं दिया तब माता मुझे अपनी ऊरु में रखकर मेरी रक्षा करती रहीं। यदि कोई पाप को दबानेवाला, पापी को दण्ड देनेवाला, पुरुष देख पड़ता है तो पृथ्वी पर कोई पापी नहीं मिलता; किसी को पाप करने का साहस नहीं होता। किन्तु जब कोई पापियों को दण्ड देनेवाला नहीं
१० रहता तब पृथ्वी पर अनेक लोग पाप-कर्म करने लगते हैं। जानकर और शक्ति रहने पर भी जो कोई पाप का दमन नहीं करता वह, जितेन्द्रिय और प्रभावशाली होने पर भी, उस पाप का भागी होता है। राजा या अन्यान्य समर्थ लोगों ने शक्ति रहने पर भी प्राणों को प्यारा समझकर मेरे पितरों और माताओं की रक्षा नहीं की। इसी कारण मैं सब पर कुपित होकर सबका संहार करने को उतारू हुआ हूँ। मुझमें ऐसा करने की शक्ति है। इसी कारण मैं आप लोगों की इस आज्ञा को मानने में लाचार हूँ। मैं समर्थ होकर भी यदि इस कुकार्य की परवा न करूँगा तो ऐसे दुष्ट पापियों के अत्याचार से मुझे भी खटका होगा। यह मेरे क्रोध का अग्नि सब लोकों को जलाने के लिए उद्यत है। मैं यदि इस समय इसे रोकूँगा तो अपने तेज से आप ही मुझे जलना पड़ेगा। मैं जानता हूँ कि आप लोग सभी लोकों का हित चाहनेवाले महापुरुष हैं। इससे आप मुझे ऐसी आज्ञा दीजिए, जिससे मेरा और सब लोकों का भला हो। आप मेरे और सभी लोकों के स्वामी हैं।

पितरों ने कहा—बेटा, यह जो तुम्हारे क्रोध का अग्नि सब लोकों को जलाने के लिए तैयार है उसे तुम जल में स्थापित करो; क्योंकि जल में सभी लोगों का जीवन है। इस तरह तुम्हारी प्रतिज्ञा भी मिथ्या न होगी और सब लोकों का नाश भी न होगा। तुम्हारा कल्याण हो। सब रस जलमय हैं और सब जगत् जलमय है। इसलिए हे द्विजश्रेष्ठ, तुम अपने इस क्रोध की आग को जल में छोड़ो। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो यह अग्नि महासागर के भीतर रहकर जल को जलाया करे। सब लोकों का जीवन जल ही है। हे निष्पाप, ऐसा करने से तुम्हारी प्रतिज्ञा मिथ्या न होगी और देवता आदि सब लोगों का भी अनिष्ट न होगा।

वशिष्ठजी कहते है—तब और्व ने अपने क्रोध से उत्पन्न अग्निको समुद्र के भीतर छोड़ दिया। वही अग्नि सदा समुद्र के जल को सोखता रहता है। वेदज्ञ ब्राह्मणों का कहना है कि वही क्रोध घोड़े के मुँहवाला ( बाड़वानल ) होकर मुँह से आग उगलता हुआ समुद्र के जल को सोखता रहता है। इस कारण हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ पराशर, तुम सब लोकों को जलाकर नष्ट
२३ करने का यह बुरा विचार छोड़ दो। तुम्हारा कल्याण हो।

---

# एक सौ चौरासी अध्याय

पराशर का क्रोध शान्त होना। उनका राक्षसों की हत्या के लिए यज्ञ करना और पुलस्त्य ऋषि का आकर उन्हें रोकना

गन्धर्व ने कहा—हे अर्जुन, वेदज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ महातेजस्वी महर्षि पराशर ने वशिष्ठ के ये वचन सुनकर सब लोकों के संहार के लिए उत्पन्न अपने क्रोध को शान्त कर दिया। फिर अपने पिता शक्ति की हत्या को स्मरण करके उन्होंने राक्षसों के मारने के लिए राक्षस-यज्ञ का आरम्भ कर दिया। अपने पिता की हत्या का बदला चुकाने के लिए पराशर ने उस प्रसिद्ध यज्ञ में अनेकानेक बालक-बूढ़े-जवान राक्षसों को आग में जला दिया। दूसरी प्रतिज्ञा में रोक-टोक करना ठीक न समझकर वशिष्ठ ने भी पराशर को राक्षस-यज्ञ करने से नहीं रोका। यज्ञमण्डप में प्रज्वलित तीन अग्नियों के बीच बैठे हुए पराशर चौथे अग्नि के समान जान पड़ने लगे। उस विशुद्ध यज्ञ में हवन का आरम्भ होने पर आकाश, मेघों के न रहने पर जैसे सूर्य की आभा से प्रकाशित हो उठता है वैसे ही, उस अग्नि के प्रकाश से चमकने लगा। वशिष्ठ आदि मुनियों को तेज से प्रकाशमान महर्षि पराशर दूसरे सूर्य के समान जान पड़े।



हे शत्रुदलन, तब दूसरे के द्वारा पराशर इस यज्ञ को न रोकेंगे यह जानकर, उस यज्ञ को समाप्त कराने के लिए उदारबुद्धि महर्षि अत्रि वहाँ पर आये। उनके पीछे राक्षसों की रक्षा करने के लिए पुलस्त्य, पुलह और बड़े भारी याज्ञिक क्रतु नाम के महर्षि भी वहाँ आये। हे अर्जुन, राक्षसों का नाश होते देखकर महर्षि पुलस्त्य ने पराशर से कहा—बेटा, इन निर्दोष १०
और तुम्हारे पिता की हत्या का कुछ भी हाल न जाननेवाले राक्षसों की हत्या करके क्या तुम्हें प्रसन्नता होती है? इससे क्या तुम्हारा विघ्न-भय दूर होगा? मेरे वंश का नाश करना

तुम्हारे लिए उचित नहीं। बेटा, तपस्वी ब्राह्मणों का धर्म भी यह नहीं है। पराशर, शान्ति ही ब्राह्मणों का श्रेष्ठ धर्म है। इसलिए तुम उसी धर्म को ग्रहण करो। तुम ब्राह्मण-श्रेष्ठ होकर यह अधर्म कर रहे हो। तुम्हारे पिता शक्ति धर्मात्मा पुरुष थे। उन्होंने जो नहीं किया वह करके उनका अपमान और मेरे वंश का नाश करना तुम्हें उचित नहीं। हे वशिष्ठवंशज, शक्ति के शाप से ही वह दुर्घटना हुई थी। अपने ही दोष से तुम्हारे पिता शक्ति की मृत्यु हुई है। हे मुनिवर, कोई भी राक्षस उनको भक्षण नहीं कर सकता था। वे आप ही शाप देकर अपनी मृत्यु का कारण हुए थे। हे पराशर, विश्वामित्र भी इस दुर्घटना का कारण हो गये। तुम्हारे पिता की हत्या करनेवाले राजा कल्माषपाद इस समय स्वर्ग-सुख भोग रहे हैं। वशिष्ठ के और पुत्र भी, जो शक्ति से छोटे थे, इस समय परमसुख से स्वर्ग में देवताओं के साथ आनन्द कर रहे हैं। हे मुनिपुत्र, वशिष्ठजी यह सब जानते हैं। हे पराशर, राक्षसों का नाश इस बहाने से बदा ही था। तुम कारणमात्र हो गये। अब तुम इस घोर यज्ञ को समाप्त
२० करो। तुम्हारा कल्याण हो।

गन्धर्व ने कहा—हे अर्जुन, महामुनि वशिष्ठ और अत्रि ने भी पुलस्त्य के कहने का अनुमोदन किया। तब पराशर ने उस यज्ञ का बीच में ही समाप्त कर दिया। राक्षसों के नाश के लिए उन्होंने जिस अग्नि को प्रज्वलित किया था उसे उन्होंने हिमाचल के उत्तर-तट पर स्थित महावन में छोड़ दिया। वह अग्नि अब तक समय-समय पर वहाँ के राक्षसों, वृक्षों
२३ और पत्थरों को जलाता हुआ देख पड़ता है।

---

## एक सौ पचासी अध्याय

कल्माषपाद राजा ने वशिष्ठ के द्वारा क्यों पुत्र उत्पन्न कराया, इसका कारण कहना

अर्जुन ने पूछा—मित्र, राजा कल्माषपाद ने वेदज्ञ पुरुषों में श्रेष्ठ अपने गुरु वशिष्ठ के पास पुत्र उत्पन्न करने के लिए अपनी रानी को क्यों भेजा? महात्मा वशिष्ठ ने ही धर्मात्मा होकर क्यों अगम्या स्त्री को स्वीकार किया? यह काम तो अधर्म का था; फिर वशिष्ठ ने कैसे किया? तुम मेरे इन संशयों को दूर करो।

गन्धर्व ने कहा—अर्जुन, तुमने राजा कल्माषपाद और वशिष्ठ के विषय में सन्देह करके जो कुछ मुझसे पूछा है उसका उत्तर सुनो। हे भरतश्रेष्ठ, शक्ति ने जिस लिए जो शाप कल्माषपाद को दिया था, सो सब मैं तुमसे पहले ही कह चुका हूँ। उसी शाप से मोहित, क्रोध से भरे, राजा कल्माषपाद अपनी रानी को साथ लिये हुए नगर से निकलकर अनेक मृगों, जीवों और वृक्षों से भरे घने जङ्गलों में इधर-उधर फिरने लगे।

एक दिन भूख से व्याकुल राजा अपने आहार की खोज में एक वन के भीतर घूम रहे थे। वे घूमते-घूमते थक गये। इसी समय उन्हें अपनी ब्राह्मणी से रमण करता हुआ एक ब्राह्मण देख पड़ा। अभी उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई थी कि राजा को अपनी ओर आते देखकर डर के मारे घबराकर वे दोनों भागे। राजा ने दौड़कर ब्राह्मण को पकड़ लिया। ब्राह्मणी ने जब देखा कि राजा ने उसके स्वामी को पकड़ लिया है तब वह दीनता के साथ कहने लगी—हे सुव्रत, राजन्, मैं जो आपसे कहती हूँ उस पर ध्यान दीजिए। आप सूर्यवंशी हैं। तीनों लोकों में आपका नाम है। आपने कभी धर्म के पालन में असावधानी नहीं की। आप सदा गुरु जन की सेवा करते रहे हैं। इसलिए शाप से मोहित होकर ऐसा निष्ठुर पापकर्म करना आपको उचित नहीं। मेरे पति के पुत्र नहीं है। इसलिए पति को चिन्तित देखकर मैं सदा व्याकुल रहती हूँ। इसी कारण इस समय ऋतुकाल में, पुत्र उत्पन्न होने के उद्देश से, मैं पति के साथ रमण कर रही थी। गर्भाधान न होने के कारण अभी मेरी इच्छा पूरी नहीं हुई है। हे नरश्रेष्ठ, आप कृपा करके मेरे पति को छोड़ दीजिए।



१०

किन्तु ब्राह्मणी के विलाप करने पर ध्यान न देकर, मृग को बाघ की तरह, निष्ठुरता के साथ राजा ने उस ब्राह्मण को खा लिया। क्रोधित ब्राह्मणी की आँखों से आँसू बहने लगे। वे आँसू आग होकर उस स्थान को जलाने लगे। पति के नाश से शोकाकुल ब्राह्मणी ने क्रोध करके राजा कल्माषपाद को शाप दिया—अरे नीच नरेश, तूने मेरी इच्छा को पूर्ण नहीं होने दिया और मेरे आगे ही निर्दयता के साथ मेरे यशस्वी प्राणप्रिय स्वामी को मारकर खा लिया। इस कारण तू जब ऋतुकाल में स्त्रीसङ्ग करने को उद्यत होगा उसी घड़ी, मेरे शाप से, तेरी मृत्यु हो जायगी। तूने जिन वशिष्ठ ऋषि के पुत्रों को मारा है उन्हीं ऋषि के सहवास से तेरी रानी के पुत्र होगा। रे दुर्बुद्धि, वशिष्ठ के वीर्य से उत्पन्न पुत्र ही तेरे वंश को चलावेगा। २१

अङ्गिरा के वंश में उत्पन्न और शुभ लक्षणों से युक्त वह ब्राह्मणी राजा को यों शाप देकर, वहीं चिता बनाकर, उसमें आग लगा पति के साथ सती हो गई। हे अर्जुन, महाभाग वशिष्ठ को अपने तपोबल और दिव्य ज्ञान के प्रभाव से उसी समय वह सब वृत्तान्त मालूम हो गया था।

अन्त को बहुत समय बीतने पर जब राजा कल्माषपाद शाप से छूट गये तब ऋतुकाल में अपनी स्त्री से समागम करने को तैयार हुए। उनकी रानी मदयन्ती को, साथ रहने के कारण, ब्राह्मणी के शाप का हाल मालूम था। इससे उसने राजा को वैसा करने से रोका। कामवश राजा को ब्राह्मणी का शाप याद न था किन्तु रानी के कहने से उन्हें स्मरण हो आया। तब वे बहुत व्याकुल और दुखी हुए। हे नरश्रेष्ठ, इस प्रकार ब्राह्मणी का शाप होने के कारण
२६ राजा ने अपनी रानी में वशिष्ठ के द्वारा पुत्र उत्पन्न कराया।

## एक सौ छियासी अध्याय

*अङ्गारपर्ण गन्धर्व का जाना और पाण्डवों का धौम्य को अपना पुरोहित बनाना*

अर्जुन ने कहा—गन्धर्व, तुम सब जानते हो। इसलिए मैं पूछता हूँ कि कौन ब्राह्मण हमारा पुरोहित होने योग्य है? गन्धर्व ने कहा—अर्जुन, देवल के छोटे भाई धौम्य ऋषि इस वन में उत्कोचक तीर्थ पर तप कर रहे हैं। तुम चाहो तो उनको अपना पुरोहित बना लो।



वैशम्पायन कहते हैं—अर्जुन ने प्रसन्नता के साथ विधिपूर्वक उस गन्धर्व को दिव्य आग्नेय अस्त्र देकर कहा कि हे गन्धर्वश्रेष्ठ, जो घोड़े तुम हम लोगों को देना चाहते हो उन्हें अभी अपने ही पास रहने दो। समय पड़ने पर हम लोग तुमसे ले लेंगे। हाँ, मैं तुमसे चाक्षुषी विद्या अभी लिये लेता हूँ। अब अर्जुन ने वह विद्या उस गन्धर्व से ले ली।

इसके उपरान्त वह गन्धर्व पाण्डवों से विदा होकर अपने स्थान को चल दिया और पाण्डव लोग उससे विदा होकर गङ्गा-पार हो आगे बढ़े। वहाँ से चलकर पाण्डव उत्कोचक तीर्थ पर पहुँचे। वहाँ धौम्य के आश्रम में पहुँचकर उन्होंने धौम्य से अपना पुरोहित होने के लिए प्रार्थना की। वेदज्ञ ब्राह्मणों में श्रेष्ठ धौम्य ने पाण्डवों का पुरोहित होना स्वीकार कर लिया। उन्होंने पाण्डवों को भोजन करने के लिए कन्द-मूल-फल देकर उनका यथोचित सत्कार भी किया।

धौम्य ऐसे श्रेष्ठ पुरोहित को पाकर पाण्डवों को निश्चय हो गया कि अब हम राज्य, राजलक्ष्मी और स्वयंवर में द्रौपदी को अवश्य पा सकेंगे। धौम्य ऐसे पुरोहित को पाकर पाण्डवों ने अपने को सनाथ समझा। उदारहृदय महात्मा धौम्य वेदों के अर्थ के तत्त्व को जाननेवाले और धर्मज्ञ थे। धर्मात्मा पाण्डवों ने यही सब देखकर उनको अपना पुरोहित बनाया। धौम्य ने देखा कि बुद्धि, वीर्य और बल से युक्त, उत्साही और संसार के हितचिन्तक पाण्डव ही सर्वथा राज्य पाने के योग्य हैं। इससे उन्होंने भी उनका पुरोहित होना स्वीकार कर लिया।

धौम्य के स्वस्त्ययन करने के उपरान्त नरश्रेष्ठ पाण्डव उनको साथ लेकर पाञ्चाल देश को जाने के लिए तैयार हुए। १२

## स्वयंवर-पर्व

## एक सौ सत्तासी अध्याय

पाण्डवों का राह में ब्राह्मणों के मुँह से स्वयंवर का वृत्तान्त सुनना

वैशम्पायन कहते हैं—अब पुरुषश्रेष्ठ पाँचों पाण्डव धौम्य और माता कुन्ती को साथ लेकर पाञ्चाल देश के स्वयंवर-महोत्सव को और पाञ्चाली द्रौपदी को देखने के लिए वहाँ से चल दिये। जाते-जाते राह में उन्होंने देखा कि कुछ ब्राह्मण उधर ही जा रहे हैं। राजन्, उन ब्राह्मणों ने ब्रह्मचारी पाण्डवों को देखकर उनसे पूछा—तुम लोग कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जा रहे हो?



युधिष्ठिर ने कहा—हम पाँचों भाई हैं। अपनी माता को साथ लिये एकचक्रा नगरी से आ रहे हैं।

यह सुनकर ब्राह्मणों ने कहा—तुम लोग पाञ्चाल देश में द्रुपद की राजधानी में चलो। वहाँ बड़ा भारी स्वयंवर का उत्सव होगा। उसमें ब्राह्मणों और याचकों को बहुत सा धन भी दिया जायगा। हम लोग वहीं जा रहे हैं। आओ, हम लोग और तुम लोग एक ही

मतलब से वहाँ चलें। वहाँ अद्वितीय अद्भुत उत्सव होगा। महात्मा राजा द्रुपद के कमल-दल के समान विशाल नेत्रोंवाली सुन्दरी कन्या है। वह अग्नि की वेदी से उत्पन्न हुई है। उसके शरीर की गठन बहुत ही सुडौल है वह देखने में बहुत ही सुन्दर है। जो द्रोण के शत्रु महाबाहु धृष्टद्युम्न कवच, खड्ग और धनुष धारण किये हुए ही साक्षात् अग्नि के समान यज्ञ के अग्निकुण्ड से प्रकट हुए हैं उन्हीं की बहन सर्वाङ्गसुन्दरी द्रौपदी का स्वयंवर होगा। द्रौपदी के सुकोमल शरीर से नीले कमल की सुगन्ध निकलकर आसपास कोस भर तक फैली रहती है। वही यज्ञसेन की कन्या द्रौपदी सभा में स्वयंवर के लिए उपस्थित होगी। हम द्रौपदी के देखने को ही जा रहे हैं। वहाँ जो महोत्सव होगा उसे भी देखने की इच्छा है। वहाँ दूर-दूर के देशों से बहुत से यज्ञ करनेवाले, ब्राह्मणों को अमित दक्षिणा देनेवाले, नित्य वेद का स्वाध्याय करनेवाले नौजवान राजा और राजकुमार आवेंगे। वे परस्पर एक दूसरे से बढ़कर प्रशंसा प्राप्त करने की इच्छा से धन, रत्न, गाय और तरह-तरह के खाने पीने के पदार्थ दान करेंगे। हम ब्राह्मण लोग उनमें सब पदार्थ पावेंगे। फिर स्वयंवर और स्वयंवर के भारी उत्सव को देख चुकने पर अपने-अपने घर को लौट जायँगे। इसके सिवा वहाँ अनेक देशों से नट, भाट-बन्दीजन, नचैये-गवैये, वंशों का बखान करनेवाले और महाबली योद्धा लोग आवेंगे। हे महात्मा ब्रह्मचारी ब्राह्मणो, तुम सब तरह के तमाशे देखकर और दान ले करके हमारे साथ लौट आना। तुम पाँचों भाई देवतुल्य तेजस्वी और देखने में बड़े ही सुन्दर हो। इसलिए हमको जान पड़ता है कि द्रौपदी यदि तुम लोगों को देख पावेगी तो तुममें से एक को अपना पति स्वीकार कर ले तो असम्भव नहीं। जान पड़ता है, तुम्हारे महाभुज (अर्जुन की ओर इशारा करके) रूपवान् भाई चाहें तो दिग्विजय करके बहुत सा धन प्राप्त कर सकते हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—अच्छी बात है। उस कन्या के स्वयंवर और महोत्सव को देखने के लिए हम भी चलेंगे।

---

## एक सौ अट्ठासी अध्याय

पाण्डवों की व्यासजी से भेंट और उनकी आज्ञा के अनुसार द्रुपद की राजधानी में जाकर एक कुँभार के यहां रहना। स्वयंवर-सभा का वर्णन।

धृष्टद्युम्न की घोषणा

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, उन ब्राह्मणों के ये वचन सुनकर उन्हीं के साथ पाँचों पाण्डव द्रुपद के बाहुबल से प्रतिपालित दक्षिण-पाञ्चाल देश की ओर चले। राह में उन वीरों को शुद्ध-हृदय निष्पाप महात्मा वेदव्यासजी मिले। उन्हें देखकर पाण्डवों ने प्रणाम और

पूजन किया। व्यासजी ने भी अभिनन्दनपूर्वक प्रसन्नता प्रकट करके पहले अनेक विषयों की बातचीत की और फिर उन्हें पाञ्चाल देश में जाने की अनुमति दी। ऋषि की आज्ञा पाकर पाण्डव फिर आगे बढ़े। राह में उन्हें सैकड़ों मनोहर वन और सरोवर मिले। उन मनोहर स्थानों में ठहर-ठहरकर पाण्डव लोग धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे।

स्वाध्याय-निरत, विशुद्ध-हृदय, प्रियवादी, कोमल-प्रकृति पाण्डव इस तरह चलकर स्वयंवर के समय से पहले ही पाञ्चाल देश में पहुँच गये। द्रुपद के नगर और उसकी चहारदीवारी को देखकर पाण्डवों ने नगर के छोर पर ही एक कुँभार के घर में रहने का निश्चय किया। वे वहीं रहने लगे। ब्राह्मण वेष-धारी पाण्डव भिक्षा माँगकर उसी से अपना निर्वाह करते थे। इस प्रकार वीर पाण्डव पाञ्चाल देश में पहुँच गये, परन्तु कोई उन्हें पहचान न सका।

राजा द्रुपद के मन में यही इच्छा थी कि उनकी कन्या द्रौपदी के पति अर्जुन ही हों किन्तु वे अपनी यह इच्छा किसी के आगे प्रकट न करते थे। अपनी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए पाण्डवों की खोज कर रहे द्रुपद ने एक, हरएक से न झुकाया जा सकनेवाला, दृढ़ धनुष और एक कृत्रिम यन्त्र बनवाया था। ऊपर उस चक्राकार घूम रहे यन्त्र को टँगवाकर उन्होंने उसके ऊपर एक कृत्रिम मछली रखवा दी। इसके उपरान्त चारों ओर यह घोषणा करा दी १०
कि जो वीर इस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ावेगा और बाण चलाकर उस बाण को इस घूम रहे चक्र-यन्त्र के भीतर से निकालकर मछली का निशाना उड़ा देगा उसी को मेरी कन्या मिलेगी। द्रुपद को विश्वास था कि अर्जुन के सिवा और किसी से यह दुष्कर कार्य न हो सकेगा।

महाराज, द्रुपद ने यह शर्त रखकर द्रौपदी के स्वयंवर की घोषणा करा दी। यह समाचार पाकर अनेक राजा लोग द्रुपद की राजधानी में आने लगे। स्वयंवर-समाज देखने के लिए अनेक देशों से महात्मा ऋषि लोग भी आने लगे। दुर्योधन आदि कौरव भी कर्ण को साथ लिये हुए वहाँ पहुँचे। ब्राह्मण भी वहाँ पर आये।

महाराज द्रुपद ने उपस्थित राजाओं की आव-भगत की। स्वयंवर के दिन राजा लोग स्वयंवर देखने के लिए सजे हुए ऊँचे मञ्चों पर जा-जाकर बैठने लगे। उनके बैठने के लिए ईशान कोण में मञ्च बने हुए थे; उन्हीं पर वे विराजमान हुए। नगरवासी प्रजा और अन्यान्य दर्शक भी आकर यथास्थान बैठे। उस भीड़ का कोलाहल उमड़े हुए समुद्र के शब्द के समान सुन पड़ रहा था।

नगर के सामने ही समतल विशुद्ध पूर्व-उत्तर के ईशान कोण की भूमि में सभा-मण्डप बना था। उसके चारों ओर सुन्दर भवन बनाये गये थे। चारों ओर दीवार, खाई, फाटक, बन्दनवार और विचित्र तम्बू शोभायमान थे। सैकड़ों तुरही और नगाड़े बज रहे थे। अगुरु-धूप की सुगन्ध चारों ओर फैल रही थी। फ़र्श पर चन्दन के जल का छिड़काव किया गया था। चारों ओर फूलों की मालाएँ टँगी हुई थीं। सब स्थानों पर कैलास-शिखर ऐसे ऊँचे मनोहर

मञ्च और महल मानों आकाश को छू रहे थे। उन मञ्चों या महलों में सुनहरे पर्दे पड़े थे और मणिमण्डित बैठकें बनी हुई थीं। उन पर चढ़ने की सीढ़ियाँ ऐसी बनी हुई थीं कि चढ़ने-
२० वाले को तनिक भी कष्ट न हो। उनमें बहुमूल्य आसन बिछे हुए थे। उनका सब सामान राजसी था। उन पर मालाएँ टँगी हुई थीं और वहाँ उत्तम अगुरु की सुवास छाई हुई थी। वे हंस के समान सफ़ेद देख पड़ते थे। एक-एक भवन के सैकड़ों द्वार थे। उनके भीतर जाने की रोक-टोक बिलकुल न थी। उत्तम पलँग और खाने-पीने की सामग्रियाँ सबमें रक्खी हुई थीं। सब भवन तरह-तरह की धातुओं के रङ्गों से रँगे हुए होने के कारण हिमाचल के शिखर से जान पड़ते थे।

परस्पर एक दूसरे के साथ स्पर्धा ( लाग-डाँट ) सी करके अनेक प्रकार के कपड़ों और गहनों से सजे हुए राजा लोग उन मनोहर विमानों पर बैठने लगे। उन महाबली, महापराक्रमी, महाभाग्यवान्, कृष्णागुरु और चन्दन के अङ्गरागों से शोभित, प्रसन्न होकर बहुत उपकार करनेवाले, ब्राह्मणों के हितकारी, अपने राष्ट्र की रक्षा करनेवाले और शुभ सुकृत कर्मों के द्वारा लोक-प्रिय नरपतियों को देखते हुए पुरवासी लोग, द्रौपदी के दर्शन-लाभ की सिद्धि प्राप्त करने के लिए, अपने-अपने मञ्चों पर बैठने लगे। पाण्डव भी ब्राह्मणों के बीच में बैठकर राजा द्रुपद की अनुपम समृद्धि और ऐश्वर्य को देखने लगे।

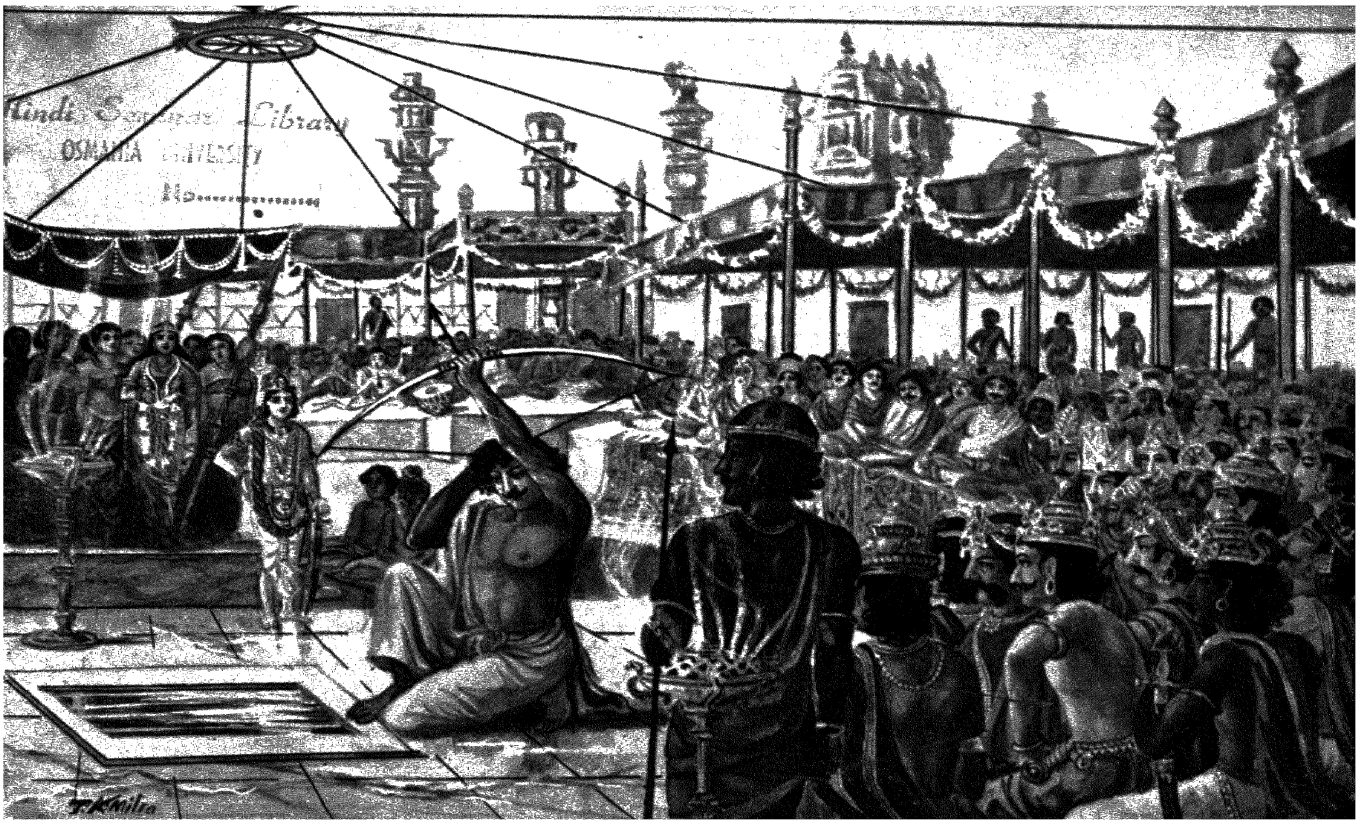
राजन्, इस तरह पन्द्रह दिन से जुड़ रहा वह समाज दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा था। अनेक नट-नचैये आकर अपना करतब दिखाते थे। उनको बहुत सा धन मिलता था। सोलहवें दिन स्नान करके बढ़िया कपड़े और गहने पहनकर, सुवर्णमयी जयमाला हाथ में लिये,
३० द्रौपदी उस रङ्गभूमि में आईं। तब चन्द्रवंश के पुरोहित ने मन्त्र पढ़कर अग्नि में घी का हवन और ब्राह्मणों के साथ स्वस्त्ययन-पाठ आरम्भ किया। इस तरह हवन के द्वारा अग्निदेव को सन्तुष्ट करने के उपरान्त सब बाजों का बजना रोकवा दिया गया।

महाराज, बाजा बन्द होने पर जब सभा-मण्डप में सन्नाटा छा गया तब धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी के साथ रङ्गभूमि में खड़े होकर मेघ के से गम्भीर शब्द से स्पष्ट-स्पष्ट यों कहा—हे एकत्र हुए नरपतियो, तुम सब एकाग्र होकर सुनो। यह धनुष, ये पाँच बाण और यह निशाना है। मैं मिथ्या नहीं कहता; जो सत्कुल, रूप और बल से युक्त पुरुष इन पाँच बाणों के द्वारा इस यन्त्र के भीतर से इस निशाने को काटकर गिरा देगा उसी अद्भुत कर्म करनेवाले को मेरी बहन यह द्रौपदी प्राप्त होगी।

अब द्रुपद के पुत्र धृष्टद्युम्न अपनी बहन को जमा हुए राजाओं में से हर एक का नाम,
३७ गोत्र और उनके कार्य बताने लगे।



स्वयंवर-सभा में द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न की घोषणा—पृष्ठ ४१४


Hindi Sahitya Library
OSMANIA UNIVERSITY
No.....

अर्जुन का मत्स्य-भेद—पृ० ४१५

## एक सौ नवासी अध्याय

धृष्टद्युम्न का किया हुआ राजाओं का वर्णन

धृष्टद्युम्न ने कहा—बहन ! यह देखो, दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुष्प्रधर्षण, विविंशति, विकर्ण, सह, दुःशासन, युयुत्सु, वायुवेग, भीमवेग, भीमरव, उग्रायुध, बलाकी, करकायु, विरोचन, कुण्डक, चित्रसेन, सुवर्चा, कनकध्वज, नन्दक, बाहुशाली, तुहुण्ड, विकट और अन्यान्य महाबली धृतराष्ट्र के पुत्र कर्ण को साथ लिये हुए तुम्हारे वास्ते यहाँ पर बैठे हैं। और भी असंख्य क्षत्रिय-श्रेष्ठ राजा आये हैं। यह देखो, गान्धारराज सुबल के पुत्र शकुनि, वृषक और बृहद्बल आये हैं। ये शस्त्र-धारियों में श्रेष्ठ अश्वत्थामा और भोज भी अनेक गहने पहने इस समाज में तुम्हारे लिए आये हैं। राजा बृहन्त, मणिमान्, दण्डधार, सहदेव, जयत्सेन, मेघसन्धि, विराट और उनके दोनों पुत्र शङ्ख और उत्तर, वार्धक्षेमि, सुशर्मा, सेनाबिन्दु, सुकेतु और उनके कुमार सुवर्चा, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्यधृति, सूर्यध्वज, रोचमान, नील, चित्रायुध, अंशुमान्, चेकितान, महाबली श्रेणिमान्, समुद्रसेन के प्रतापी पुत्र चन्द्रसेन, जलसन्ध, विदण्ड और उनके पुत्र दण्ड, पौण्ड्रक वासुदेव, पराक्रमी भगदत्त, कलिङ्गनरेश, ताम्रलिप्तनरेश, पत्तननरेश, मद्रराज शल्य और उनके पुत्र महारथी वीर रुक्माङ्गद और रुक्मरथ, कुरुवंशी सोमदत्त और उनके महारथी पुत्र, भूरि, भूरिश्रवा, शूर शल, सुदक्षिण, काम्बोज, पुरुवंशी दृढ़धन्वा, सुषेण, उशीनर के पुत्र शिवि, पटच्चर-निहन्ता कारूष-नरेश तथा सङ्कर्षण, वासुदेव कृष्ण, रुक्मिणी के पुत्र प्रद्युम्न, साम्ब, चारुदेष्ण, प्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध, गद, अक्रूर, सात्यकि, बुद्धिमान् उद्धव, कृतवर्मा, हार्दिक्य, पृथु, विपृथु, विदूरथ, कङ्क, शङ्कु, गवेषण, आशावह, निरुद्ध, समीक, सारिमेजय, वीर बात-पति, झिल्ली-पिण्डारक और उशीनर आदि प्रसिद्ध वृष्णिवंश के यादव, भगीरथ, बृहत्क्षत्र, सिन्धुराज जयद्रथ, बृहद्रथ, वाह्लीक, महारथी श्रुतायु, उलूक, कैतव, चित्राङ्गद, शुभाङ्गद, बुद्धिमान् वत्सराज, कोशलनरेश, पराक्रमी शिशुपाल, जरासन्ध और अन्यान्य जगत्प्रसिद्ध राजा लोग तुम्हारे लिए यह निशाना बेधने को यहाँ आये हैं। शुभे, जो इस लक्ष्य को बेध देगा उसी को तुम पति-रूप से वरण करना। २४

---

## एक सौ नब्बे अध्याय

राजाओं का लक्ष्य-वेध के लिए उद्योग और असमर्थ होने के कारण लौटना। फिर अर्जुन का उठना

वैशम्पायन ने कहा—जनमेजय ! इसके बाद अनेक गहनों से सजे हुए, कानों में कुण्डल पहने, नौजवान राजा लोग मानो परस्पर स्पर्धा करके अपने को ही महाबली और अस्त्र-शिक्षा में

बेजोड़ जानकर, हथियार उठाये हुए अपने-अपने आसन से उठने लगे। सभी रूप, पराक्रम, कुल, शील, विभव और जवानी के गर्व से भरे हुए थे। जिसके कपोलों से मदजल बह रहा हो उस हिमालय प्रदेश के मस्त हाथी के समान ये राजा झूम रहे थे। परस्पर एक दूसरे की ओर लाग-डाँट के साथ देखकर "द्रौपदी मेरी ही होगी" कहते हुए वे अपने-अपने आसन से उठ खड़े हुए। कृष्णा को प्राप्त करने के सङ्कल्प से सभी उत्साहित हो उठे। द्रौपदी को प्राप्त करने की इच्छा से रङ्गभूमि में जमा हुए वे राजा लोग पार्वती को पाने के लिए एकत्र हुए देवताओं के समान जान पड़ने लगे। द्रौपदी को देखते ही सब राजा रीझकर कामवश हो गये थे। उसको प्राप्त करने के लिए मित्र और नातेदार राजा भी परस्पर एक दूसरे को डाह और द्वेष की दृष्टि से देखने लगे।

इसी समय रुद्र, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, साध्य, मरुद्गण, यम, कुबेर आदि देवता अपने विमानों पर बैठकर वहाँ आये। दैत्य, सुपर्ण, नाग, देवर्षि नारद-पर्वत, यक्ष, चारण और अप्सराओं सहित तुम्बुरु आदि प्रधान-प्रधान गन्धर्व भी उस समाज में आये। और सब राजा तो उठकर द्रौपदी को प्राप्त करने के उद्योग में लग गये; किन्तु महात्मा कृष्ण की सम्मति के अनुसार, बलदेव और कृष्ण जिनके मुखिया थे वे, वृष्णि और अन्धक वंश के यादव अपने-अपने स्थान पर ही बैठे-बैठे तमाशा देखने लगे। यदुवीर-श्रेष्ठ कृष्ण ने लक्ष्मी के अभिमुख स्थित गजराज और राख में छिपी हुई आग के समान पाँचों पाण्डवों को देखकर अनुमान से पहचान लिया और फिर बलदेव से धीरे से कहा कि वे पाँचों पुरुषसिंह अवश्य युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव हैं। तब बलराम ने भी धीरे-धीरे उनकी ओर देखकर प्रसन्नता प्रकट
१० करते हुए कृष्ण की ओर देखा।

और-और राजा, राजाओं के बेटे और पोते अपने नेत्र, मन और स्वभाव को द्रौपदी में लगाकर उसको लेने के जोश से ओठ चबाते हुए लाल-लाल आँखें किये द्रौपदी को ही बारम्बार देख रहे थे। इस कारण उनमें से किसी ने पाण्डवों की ओर देखा तक नहीं। कुन्ती के पुत्र पाँचों पाण्डव भी और-और राजाओं की तरह द्रौपदी को देखकर कामवश हो गये। राजन्, दिव्य गन्ध लगाये हुए देवर्षि, गन्धर्व, यक्ष, नाग, असुर, सिद्ध आदि की भीड़ अन्तरिक्ष में हो गई। वे लोग आकाश में प्रसन्नतासूचक नगाड़े बजाते हुए स्वयंवरसमाज पर फूलों की वर्षा करने लगे। आकाश में जमा हुए असंख्य विमान एक दूसरे से सटे हुए थे। विमानों पर स्थित दर्शक बाँसुरी, वीणा, मृदङ्ग आदि बाजों को मधुर स्वर से बजाने लगे।

अब किरीट, हार, बजुल्ले, चक्रवाल आदि गहने पहने, महाबाहु, महाबली, बल और वीर्य के घमण्ड से भरे हुए कर्ण, दुर्योधन, शाल्व, शल्य, अश्वत्थामा, क्राथ, सुनीथ, वक्र, कलिङ्गराज, वङ्ग-नरेश, पाण्ड्यनरेश, पौण्ड्रनरेश, विदेहनरेश, यवनाधिप और अन्यान्य अनेक देशों के स्वामी राजा और राजकुमार द्रौपदी को प्राप्त करने के लिए अपना-अपना बल और कौशल दिखाने लगे किन्तु

वे मन से भी उस धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने में समर्थ नहीं हुए। क्रमशः वे अपने बल, शिक्षा और गुण के अनुसार धनुष चढ़ाने में विक्रम दिखाने की चेष्टा करने पर उस धनुष के झटके से पृथ्वी पर गिर-गिरकर लोटने लगे। उनके सिर से मुकुट और कण्ठ से हार गिर पड़े। अन्त को लम्बी साँसें लेकर वे सब धनुष चढ़ाना छोड़कर अपने-अपने स्थान पर बैठ गये।

जिनके मुकुट और हार स्थान-भ्रष्ट होकर गिर गये हैं वे नरेश, द्रौपदी के पाने की आशा छोड़कर, हाय-हाय करते हुए खेद प्रकट करने लगे। तब धनुष धारण करनेवालों में श्रेष्ठ कर्ण रङ्ग- २०



भूमि में आया। उसने दम भर में धनुष पर डोरी चढ़ाकर उस पर बाण लगाया। अग्नि, चन्द्र और सूर्य के तुल्य सूर्य-पुत्र कर्ण को उत्साह के कारण सफलता प्राप्त करते देखकर पाण्डवों ने समझा कि बस अब वह लक्ष्य कटकर पृथ्वी पर गिरा ही चाहता है। इसी बीच में द्रौपदी ऊँचे स्वर से बोल उठी—"मैं सूत-पुत्र को वरण न करूँगी।" यह सुनकर सूर्य-पुत्र कर्ण ने क्रोधसूचक हँसी हँसकर और सूर्य की ओर देखकर वह प्रकाशमान धनुष वहीं रख दिया।

सभा में उपस्थित राजाओं में से बहुतों के बैठ जाने पर अन्त को महाबली, महापराक्रमी चेदिनरेश दमघोष के पुत्र शिशुपाल उस धनुष पर डोरी चढ़ाने को चले। चेष्टा करते ही वे धनुष के झटके से दोनों घुटनों के बल पृथ्वी पर गिर पड़े। तब महाबली जरासन्ध धनुष के पास पहुँचे। वे भी शिशुपाल की तरह विफल होकर घुटनों के बल गिर पड़े। फिर महापराक्रमी शल्य [ और महामानी दुर्योधन भी ] चेष्टा करके उसी तरह गिरकर उपहास के पात्र बने।

इस प्रकार अपमानित होकर सब राजाओं के निवृत्त होने पर रङ्गभूमि में उपस्थित समाज अस्थिर हो उठा। तब कुन्ती के पुत्र वीरश्रेष्ठ अर्जुन, उस धनुष पर डोरी और बाण चढ़ाकर, लक्ष्य-वेध करने के लिए उठे। २८

# एक सौ इक्यानबे अध्याय

अर्जुन का लक्ष्य को बेधकर द्रौपदी को प्राप्त करना और
फिर रङ्गभूमि से बाहर आना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, धनुष चढ़ाने के उद्योग से एक-एक करके सब राजाओं के हट जाने पर ब्राह्मणों के बीच से वीर अर्जुन उठ खड़े हुए। इन्द्र की ध्वजा के समान उन्नत शरीरवाले अर्जुन को उठकर धनुष की ओर जाते देख ब्राह्मण लोग हर्ष प्रकट करते हुए, अपने-अपने मृगचर्म हिलाते या उछालते हुए, कोलाहल करने लगे। कुछ ब्राह्मण यह समझकर उदास हो गये कि यह ब्राह्मण भी विफल-प्रयत्न होकर हम ब्राह्मणों की हँसी करावेगा। और कुछ ब्राह्मण यह सोचकर प्रसन्न हुए कि यदि यह ब्राह्मण इस अद्भुत कार्य में सफलता प्राप्त कर लेगा तो ब्राह्मणों की कीर्त्ति बढ़ेगी।

ब्राह्मणों में से जिन्हें अपनी बुद्धि का अभिमान था वे परस्पर कहने लगे कि धनुर्वेद के जानकार और सुशिक्षित कर्ण, शल्य आदि जगत्प्रसिद्ध क्षत्रिय ही जब इस धनुष को नहीं झुका सके तब यह अस्त्रविद्या में अनाड़ी, दुर्बलहृदय ब्राह्मणबालक कैसे इस काम को कर सकेगा? बाल-सुलभ चञ्चलता के कारण बिना विचारे यह ब्रह्मचारी इस कार्य के लिए आगे बढ़ा है। अवश्य ही यह बालक दर्प, हर्ष या ब्राह्मणसुलभ चञ्चलता के कारण धनुष पर डोरी चढ़ाने को तैयार हुआ है। कार्य सिद्ध न होने पर हम सब ब्राह्मणों को इस राजमण्डली के आगे उपहास-पात्र बनना पड़ेगा। इसलिए इस ब्रह्मचारी को रोक देना ही ठीक है। ऐसा करने से न तो राज-समाज में हमारी हँसी होगी और न अपमान ही होगा। राजा लोग हमसे शत्रुता भी न रक्खेंगे।

कुछ ब्राह्मणों ने कहा—यह सुन्दर युवक हाथी के पाठे के समान पुष्ट और बली देख पड़ता है। इस महाबाहु की भुजाएँ हाथी की सूँड़ के समान और कन्धे उभरे तथा भरे हुए हैं। यह धैर्य में हिमाचल के समान देख पड़ता है। इसकी चाल सिंह की सी है। यह गजराज के समान पराक्रमी जान पड़ता है। इसके उत्साह को देखकर अनुमान होता है कि
१० यह इस अद्भुत कार्य में सफलता प्राप्त कर ले तो कुछ आश्चर्य नहीं। इसके भारी उत्साह से ही इसकी शक्ति का पता लगता है। यदि यह अशक्त होता तो इस तरह उठकर कभी न जाता। इसके सिवा इस मनुष्य-लोक में ऐसा काम कौन है जिसे ब्राह्मण न कर सकते हों? ब्राह्मण लोग निराहार रहकर या वायुमात्र भोजन करके अथवा फलाहार करके कठोर तप करते हैं। वे शरीर से दुबले होने पर भी अपने तेज का बल रखते हैं। ब्राह्मण चाहे सत्कर्म करे चाहे असत्कर्म, तथापि यह सोचकर कि वह उपस्थित सुखदायक या दुःखजनक और छोटे या बड़े काम को नहीं कर सकता, उसका अपमान कभी न करना चाहिए। देखो, परशुराम ने

युद्ध में अनेक बार क्षत्रियों को हराया है; अगस्त्य मुनि ने ब्रह्मतेज के प्रभाव से अथाह समुद्र को पी लिया है। इस कारण आप सब ब्राह्मण आशीर्वाद करें कि यह ब्राह्मणकुमार झट-पट इस धनुष को चढ़ाकर लक्ष्य-वेध कर ले।

तब सब ब्राह्मणों ने मिलकर 'तथास्तु' कहकर इस कथन का अनुमोदन किया। वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, इधर ब्राह्मण लोग आपस में इस तरह बातचीत कर रहे थे, उधर अर्जुन उस धनुष के पास जाकर पर्वतराज के समान खड़े हो गये। फिर उस धनुष की प्रदक्षिणा करके उन्होंने वरदानी महादेव को प्रणाम किया। इसके बाद यदुवंशी कृष्णचन्द्र का स्मरण करके अर्जुन ने उस धनुष को उठा लिया। रुक्म, सुनीथ, वक्र, कर्ण, दुर्योधन, शल्य, शाल्व आदि धनुर्वेद के पूरे जानकार श्रेष्ठ क्षत्रिय राजा लोग विशेष यत्न करके भी जिस धनुष पर डोरी नहीं चढ़ा सके उसी धनुष पर विष्णु के समान प्रभावशाली इन्द्र के पुत्र अर्जुन ने, पराक्रमी राजाओं पर दर्पभरी दृष्टि डालते हुए, दम भर में प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। इसके बाद उन्होंने वे पाँच बाण भी उठा लिये। बाण चढ़ाकर अर्जुन ने बड़ी फुर्ती के साथ उस निशाने को उड़ा दिया। २०
वह मछली का लक्ष्य कटकर उसी चक्रयन्त्र के भीतर से पृथ्वी पर गिर पड़ा। उसी दम आकाश में और सभामण्डप में बड़ा भारी आनन्द-कोलाहल मच गया। देवता लोग शत्रुदमन अर्जुन के सिर पर स्वर्ग के फूलों की वर्षा करने लगे। हज़ारों ब्राह्मण अपने वस्त्रों के छोर हिला-हिलाकर हर्ष प्रकट करने लगे। जो लोग लक्ष्य-वेध के कार्य में असमर्थ होकर हार मानकर बैठ गये थे वे हाय-हाय करने लगे। आकाश से इतने फूल बरसे कि पृथ्वी पर फूल ही फूल देख पड़ने लगे। सैकड़ों अङ्गवाली तुरही और अन्यान्य बाजे बजने लगे। सूत-मागधगण सुन्दर मीठे स्वर से स्तुति-पाठ करने लगे। अर्जुन को देखकर राजा द्रुपद बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने राजाओं को गड़बड़ करने के लिए तैयार देखकर अपनी सेना से अर्जुन की सहायता करनी चाही।



महाकोलाहल मचने पर धर्मात्मा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव को साथ लेकर, अपने डेरे की ओर चल दिये।

उधर द्रौपदी ने लक्ष्य को कटकर गिरा हुआ देखते ही सफ़ेद माला हाथ में लिये हुए इन्द्र-तुल्य सुन्दर अर्जुन के पास आकर वह माला उनके गले में डाल दी। अद्भुत कर्म करनेवाले अर्जुन इस प्रकार उस स्वयंवर-समाज में स्त्री-रत्न द्रौपदी को जीतकर, अपने साथ लेकर, रङ्गभूमि के बाहर आये। उपस्थित ब्राह्मण-मण्डली ने अर्जुन का बड़ा सत्कार किया।
२८ द्रौपदी भी अर्जुन के पीछे चली।

---

## एक सौ बानवे अध्याय

राजाओं का क्रोध और द्रुपद को मारने के लिए तैयार होना। भीम और अर्जुन का उनके आगे युद्ध के लिए खड़े होना

वैशम्पायन ने कहा—महाराज, राजा द्रुपद जब ब्राह्मण ( अर्जुन ) को कन्या देने के लिए तैयार हुए तब राजा लोग क्रुद्ध होकर परस्पर एक दूसरे की ओर देखने लगे। वे आपस में कहने लगे—हम इतने राजा यहाँ मौजूद हैं किन्तु राजा द्रुपद हम सबका अनादर करके स्त्री-रत्न द्रौपदी एक ब्राह्मण को देना चाहते हैं। यह द्रुपद का काम वैसा ही है जैसे कोई वृक्ष को लगाकर फलने के समय उसे काट डाले। इसलिए आओ, हम सब अपना निरादर करनेवाले दुरात्मा द्रुपद को मार डालें। यह राजाओं से शत्रुता करनेवाला दुराचारी द्रुपद अपने गुणों के कारण वृद्धों का सम्मान पाने के योग्य नहीं है। आओ, हम इसको और इसके बेटे धृष्टद्युम्न को भी मार डालें। दुरात्मा ने हमको बुलाया; पहले उत्तम भोजन कराये और सत्कार किया; किन्तु अब यह हम सबका अपमान करने को तैयार है। ये सब देवतुल्य राजा यहाँ एकत्र हैं। द्रुपद ने इस राज-मण्डली में क्या एक को भी अपनी कन्या के योग्य नहीं समझा? स्वयंवर में कन्या के द्वारा वरण प्राप्त करने का अधिकार ही ब्राह्मणों को नहीं। सनातन से सुना जाता है कि स्वयंवर क्षत्रियों का ही होता है। अथवा यह कन्या ही हम लोगों में से किसी राजा को अपना पति बनाना न चाहे तो हम इसे जलती हुई आग में डालकर अपने-अपने राज्यों को चल देंगे। चपलता के कारण हो, या लोभ के कारण, इस ब्राह्मण ने हम लोगों का अप्रिय किया है किन्तु यह ब्राह्मण है, इसलिए इसकी हत्या करना ठीक नहीं। हम लोगों का राज्य, धन, जीवन, पुत्र, पौत्र और सर्वस्व ब्राह्मणों
१० के लिए है। ब्राह्मण के लिए हम इन सब चीज़ों का त्याग कर सकते हैं। द्रुपद को दण्ड

देना हमारा कर्त्तव्य इसलिए है जिसमें हमारा अपमान न हो, हमारे धर्म की रक्षा हो, और अन्य स्वयंवरों की भी ऐसी दशा न हो।

सब राजा लोग कुपित होकर यों कहते हुए अस्त्र-शस्त्र लेकर द्रुपद को मारने के लिए उनकी ओर दौड़े। उन क्रोधान्ध राजाओं को अपनी ओर झपटते देखकर डर के मारे द्रुपद ब्राह्मणों की शरण में गये। मस्त गजराजों के समान वेग से आ रहे राजाओं को रोकने के लिए शत्रुदमन श्रेष्ठ योद्धा भीमसेन और अर्जुन धनुष लेकर खड़े हो गये। तब उँगलियों में गोह के चमड़े के अङ्गुलित्र पहने राजा लोग कुपित होकर शस्त्र तानकर भीम और अर्जुन को मारने के लिए उनकी ओर झुक पड़े। अत्यन्त अद्भुत और भयानक कर्म करनेवाले, वज्र के समान दृढ़, महाबली भीमसेन ने गजराज की तरह एक वृक्ष उखाड़ लिया और उसके पत्ते नोच डाले। फिर शत्रुनाशन भीमसेन उसी वृक्ष को हाथ में लेकर दण्डपाणि यमराज की तरह अर्जुन के पास खड़े हो गये। असाधारण बुद्धिमान् और इन्द्र के समान अद्भुत काम करने की शक्तिवाले अर्जुन अपने भाई का यह अलौकिक काम देखकर बहुत चकराये और निर्भय भाव से धनुष हाथ में लिये आक्रमणकारी राजाओं का सामना करने के लिए खड़े होकर विपक्षियों के आक्रमण की बाट जोहने लगे। अलौकिक बुद्धिमान् और अद्भुत काम करनेवाले कृष्ण ने अर्जुन और भीमसेन के असाधारण कामों को देखकर अपने भाई बड़े पराक्रमी बलभद्रजी से कहा—भैया सङ्कर्षण, यह जो सिंह के समान गति से अपने पराक्रम को प्रकट कर रहे पुरुष कुछ कम पाँच हाथ के धनुष को खींच रहे हैं वे अर्जुन हैं। यदि मैं वसुदेव का पुत्र हूँ तो मेरा यह अनुमान झूठ नहीं हो सकता। और, जो बलपूर्वक २०
वृक्ष उखाड़कर राजाओं का सामना करने के लिए खड़े हैं वे भीमसेन हैं। भीमसेन के सिवा और कोई युद्ध-भूमि में ऐसा अद्भुत काम नहीं कर सकता। जो कमल-नयन, सिंह की सी चाल से चलनेवाले, गोरे, लम्बे डील के, नम्र, कुछ लम्बी नाकवाले पुरुष पहले ही रङ्ग-भूमि से निकल गये हैं वे युधिष्ठिर हैं। जो कार्त्तिकेय के समान सुन्दर दो कुमार उनके पीछे-पीछे गये हैं वे अश्विनीकुमार के अंश से उत्पन्न नकुल और सहदेव हैं। मेरी समझ में तो यही आता है; क्योंकि मैंने सुना है, कुन्ती सहित पाँचों पाण्डव लाक्षाभवन की आग से बचकर निकल गये हैं।

जलहीन मेघ के समान गोरे बलदेव ने कृष्ण के इस अनुमान पर विश्वास करके कहा—भैया, जतुगृह से छुटकारा पाये हुए पाण्डवों को देखकर और अपनी बुआ कुन्ती के जीवित रहने का वृत्तान्त सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। २४

# एक सौ तिरानबे अध्याय

अर्जुन का कर्ण आदि को विमुख करके द्रौपदी को लेकर माता के पास आना

वैशम्पायन ने कहा कि जनमेजय, उस समय अपने मृगचर्म और कमण्डलुओं को हिलाते और उछालते हुए ब्राह्मण लोग अर्जुन से कहने लगे—तुम डरना नहीं; हम सब तुम्हारी ओर होकर शत्रुओं से लड़ेंगे। उनके ये वाक्य सुनकर अर्जुन ने हँसते हुए कहा—आप लोग हमारे पास खड़े-खड़े तमाशा देखते रहिए। जैसे मन्त्र पढ़कर ओझा ( मन्त्रज्ञ ) लोग क्रोधित विषैले साँप की गति को रोक देते हैं वैसे ही मैं अपने नुकीले सीधे बाणों की वर्षा से इन राजाओं को लौटा दूँगा।

अब महाबली अर्जुन वही स्वयंवर में प्राप्त महाधनुष लेकर, बड़े पहाड़ के समान अटल होकर, खड़े हो गये। उनके पास ही भीमसेन डटे हुए थे। कर्ण आदि युद्ध-कुशल क्षत्रियों को अपनी ओर आते देख अर्जुन और भीम भी निर्भय भाव से उसी तरह उनकी ओर बढ़े जिस तरह हाथियों से भिड़ने के लिए हाथी चलते हैं। युद्ध की इच्छा रखनेवाले राजा लोग यह कठोर वचन कहने लगे कि युद्ध करने के लिए तैयार ब्राह्मण का भी वध किया जा सकता है।

बस, विपक्षी राजा लोग एकाएक विप्रमण्डली के पास खड़े हुए भीम और अर्जुन की तरफ़ झपटे। महातेजस्वी कर्ण अर्जुन से लड़ने के लिए उनके सामने पहुँचा। हथिनी के लिए झगड़ा होने पर एक हाथी जैसे दूसरे हाथी पर झपटता है वैसे ही युद्ध की इच्छा से बलवान् मद्रराज शल्य भीमसेन की तरफ़ झपटे। दुर्योधन आदि अन्य राजा अन्यान्य ब्राह्मणों के साथ, खेल सा खेलते हुए, साधारण युद्ध करने लगे।

१० तब अर्जुन ने बलपूर्वक धनुष चढ़ाकर झपटकर आ रहे कर्ण को कई तीक्ष्ण बाण मारे। उन पैने बाणों के लगने से कर्ण को मोह सा हो गया। वह बड़ी कठिनाई से अपने को सँभालकर फिर अर्जुन की ओर चला। अथाह शक्तिवाले दोनों वीर कुपित होकर परस्पर जीतने के लिए अपनी-अपनी फुर्ती दिखाते हुए घमासान युद्ध करने लगे। दोनों योद्धा परस्पर एक दूसरे के वार को बचाते हुए कहने लगे—मेरा बाहु-बल देखो! देखा, तुम्हारे कार्य का उत्तर मैंने किस तरह दिया!

ब्राह्मण-वेष में छिपे हुए अर्जुन के अतुल पराक्रम को देखकर कर्ण और भी क्रुद्ध होकर घोर युद्ध करने लगा। अर्जुन के चलाये हुए, वेग से आर हे, बाणों से बचकर कर्ण ने घोर सिंह-नाद किया। सब सैनिक लोग कर्ण के इस काम की सराहना करने लगे। अन्त को अर्जुन के अद्भुत पराक्रम और धनुर्विद्या के कौशल को देखकर कर्ण ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, युद्ध में तुम्हारे न थकनेवाले बाहु-बल और अस्त्र-शस्त्रों के प्रहार की सफलता देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता



अर्जुन और भीम का राजाओं से युद्ध—पृ० ४२२



इन्द्र उस स्त्री के पास गये और पूछने लगे—भद्रे, तुम कौन हो ? किसलिए रो रही हो ?—पृ० ४३६

हुई। तुम साक्षात् धनुर्वेद हो या परशुराम ? अथवा इन्द्र हो या विष्णु ? अपने को छिपाकर ब्राह्मणरूप धारण किये, प्रशंसनीय बाहु-बल का प्रयोग करके मेरे साथ युद्ध करनेवाले तुम कौन हो ? युद्धभूमि में मेरे क्रुद्ध होने पर साक्षात् इन्द्र या पाण्डुपुत्र अर्जुन के सिवा और कोई मेरा सामना नहीं कर सकता।

कर्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन ने कहा—कर्ण, मैं न तो धनुर्वेद हूँ और न परशुराम; २०
मैं तो योद्धाओं में श्रेष्ठ प्रधान शस्त्रधारी ब्राह्मण हूँ। मैंने अपने गुरु से विधिपूर्वक ब्रह्मास्त्र और इन्द्रास्त्र प्राप्त किया है। हे वीर, मैं रण में तुमको जीतने के लिए खड़ा हुआ हूँ। तुम मेरे आगे सँभलकर खड़े रहो [ अथवा हार मानकर हट जाओ ]।

वैशम्पायन कहते हैं—कर्ण ने यह सुनकर सोचा कि ब्रह्मतेज को जीतना असम्भव है इसलिए वह युद्धभूमि से हट गया।

महाराज ! युद्धभूमि में दूसरी ओर वीर, बली, शिक्षित, युद्ध-निपुण भीमसेन और शल्य, दोनों, मत्त हाथियों की तरह, एक दूसरे को ललकारकर भिड़ गये। वे घुटनों और घूँसों से परस्पर मारने लगे। दोनों वीर एक दूसरे को आगे खींचते और पीछे रेलते हुए घूँसे मार रहे थे। वज्र-सदृश उनके अङ्गों में घूँसे लगने से घोर 'चटचट' शब्द हो रहा था। पत्थर के प्रहार की तरह दोनों वीर परस्पर कठोर प्रहार कर रहे थे। थोड़ी देर तक इस तरह प्रहार करके रेल-पेल करते हुए भीमसेन ने दोनों हाथों से शल्य को ऊपर उठाकर पृथ्वी पर पटक दिया। यह देखकर सब ब्राह्मणों की मण्डली हँस पड़ी। पुरुषश्रेष्ठ भीमसेन ने इसके सिवा एक अद्भुत काम यह भी किया कि शल्य को पटककर भी मारा नहीं डाला।

शल्य के पछड़ जाने पर और कर्ण के युद्ध से हट जाने पर बचे हुए राजा लोग बहुत ही डरे और युद्ध का इरादा छोड़ भीमसेन को चारों ओर से घेरकर खड़े हो गये। वे आपस में कहने ३०
लगे—ये दोनों ब्राह्मण धन्य हैं। पूछो तो, ये कहाँ पैदा हुए हैं और कहाँ रहते हैं ? परशुराम, द्रोणाचार्य, या पाण्डव अर्जुन के सिवा और कौन कर्ण से भिड़ सकता है ? देवकीनन्दन कृष्ण और कृपाचार्य के सिवा दुर्योधन का ही कौन सामना कर सकता है ? बलभद्र, पाण्डव भीमसेन और दुर्योधन के सिवा युद्ध में शल्य को ही कौन पछाड़कर नीचा दिखा सकता है ? किन्तु इन ब्राह्मणों ने यह सब कर दिखाया। इसलिए भाइयो, ब्राह्मणों से युद्ध करना ठीक नहीं। इस युद्ध से हट जाना ही ठीक जँचता है। ब्राह्मण चाहे अपराधी भी हो, पर उसकी रक्षा सदा करनी चाहिए; क्योंकि वह परमार्थ का ज्ञाता होता है। आओ, पहले इनका ठीक-ठीक परिचय लें; पीछे यदि ये लड़ना चाहेंगे तो हम भी प्रसन्नता से युद्ध करके अपने धर्म का पालन करेंगे।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, भीमसेन का यह अद्भुत काम देखने से श्रीकृष्ण को निश्चय हो गया कि ये दोनों कुन्ती के पुत्र अर्जुन और भीमसेन हैं। तब श्रीकृष्ण ने नम्रतापूर्वक यह

कहकर कि "इस ब्राह्मण ने धर्म के अनुसार ही द्रौपदी को प्राप्त किया है", उन राजाओं को युद्ध करने से रोक दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण के मना करने को मानकर युद्धचतुर राजा लोग अचम्भा मानते हुए अपने-अपने देश को चल दिये। स्वयंवर-समाज में जो और लोग दर्शक-रूप से आये थे वे भी यह कहते हुए अपने घरों को चल दिये कि आज स्वयंवर की रङ्गभूमि में ब्राह्मणों की ही श्रेष्ठता रही; ब्राह्मण ने ही स्त्री-रत्न द्रौपदी को प्राप्त किया। रुरु मृग की मृग-छाला पहने ब्राह्मण लोग इस तरह चारों ओर से घेरे हुए थे कि भीमसेन और अर्जुन को आगे बढ़ना कठिन हो गया। अब शत्रुओं के प्रहार से हुए घावों से शोभित वीर अर्जुन और भीम-सेन द्रौपदी के साथ उस भीड़ से बाहर निकल आये जैसे पूर्णिमा के दिन सूर्य और चन्द्रमा मेघमण्डल को चीरकर बाहर आ जाते हैं।

इधर भिक्षा का समय टल जाने पर भी जब पाण्डव लौटकर न आये तब पुत्रस्नेह के कारण व्याकुल कुन्ती तरह-तरह से पुत्रों के अनिष्ट के बारे में सोच-विचार करने लगीं। वे मन में कहने लगीं—धृतराष्ट्र के पुत्रों ने पहचानकर क्या किसी तरह मेरे वीर पुत्रों की हत्या कर डाली है? या वैर को कभी न भूलनेवाले भयानक मायावी राक्षसों के हाथ में पड़कर मेरे पुत्र मारे गये? अथवा और किसी तरह उनकी मृत्यु हो गई? महात्मा व्यास की सम्मति से भी क्या विपरीत फल हो सकता है?

पुत्रवत्सला कुन्ती इसी तरह चिन्ता कर रही थीं कि मेघमण्डली से घिरे हुए सूर्य के समान, ब्राह्मणों से घिरे हुए, अर्जुन बहुत रात बीते उस कुँभार के घर पहुँचे।

---

## एक सौ चौरानवे अध्याय

कुन्ती, अर्जुन और युधिष्ठिर की बातचीत। श्रीकृष्ण और बलराम का पाण्डवों के पास पहुँचना

वैशम्पायन ने कहा कि राजन्! महानुभाव नरश्रेष्ठ भीमसेन और अर्जुन, कृष्णा को साथ लिये हुए, उस कुँभार के घर पहुँचे। प्रसन्नतापूर्वक प्रवेश करते ही उन्होंने माता से कहा—माता, हम भिक्षा लेकर आ गये।

कुन्ती घर के भीतर थीं, इसलिए बिना देखे ही कह उठीं—पुत्रो, तुम सब मिलकर उस भिक्षा को खा लो; किन्तु कुटी के बाहर आकर द्रौपदी को देखते ही वे कहने लगीं—बड़े कष्ट की बात है! मैंने बिना समझे-बूझे यह क्या कर डाला!

अधर्म के डर से चिन्तित कुन्ती, द्रौपदी का हाथ पकड़कर, युधिष्ठिर के पास गईं और कहने लगीं—बेटा, यह राजा द्रुपद की कन्या है। इसे लाकर अर्जुन और भीम ने मुझे अर्पण

किया था। मैंने भी इस रहस्य को बिना जाने, भिक्षा समझकर, अपनी समझ से उचित आज्ञा दे दी कि तुम सब भाई मिलकर भिक्षा को खा लो। हे कुरुश्रेष्ठ, अब तुम ऐसा उपाय बताओ जिसमें मेरा वचन भी मिथ्या न हो, और द्रौपदी को भी अधर्म होने से खिन्न न होना पड़े।

महाराज, माता के ये वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर थोड़ी देर तक सोचते रहे। उसके बाद कुन्ती को आश्वास देकर उन्होंने अर्जुन से कहा—भाई अर्जुन, राजकुमारी द्रौपदी को तुम्हीं ने अपने बाहु-बल से प्राप्त किया है। तुम्हीं से इस राजकुमारी की शोभा होगी। इससे अग्नि जलाकर विधिपूर्वक तुम्हीं इसका पाणि-ग्रहण करो।

अर्जुन ने कहा—हे नरेन्द्र, आप मुझे अधर्मभागी न बनाइए। शिष्ट पुरुषों का यह धर्म नहीं। पहले आप, फिर अद्‌भुत काम करनेवाले भीमसेन, फिर मैं, फिर नकुल और फिर सहदेव, इस क्रम से हम पाँचों भाई राजपुत्री द्रौपदी का पाणि-ग्रहण करेंगे। राजन्! भीमसेन, मैं, नकुल, सहदेव और यह राजकन्या, हम सब आपके वशवर्त्ती और आज्ञा पर चलनेवाले हैं। इस दशा में जो कर्त्तव्य हो, जिससे धर्म और यश की रक्षा हो और जैसे पाञ्चालराज द्रुपद का हित हो, वही सोचकर आप हमें उचित आज्ञा दीजिए। हम लोग आपकी आज्ञा का पालन करेंगे। १०

अर्जुन के ये स्नेह और भक्ति-भाव से भरे वाक्य सुनकर सब भाई द्रौपदी की ओर देखने लगे। पाञ्चाली ने भी उन सबको नज़र भरकर देखा। द्रौपदी ने सब भाइयों का चित्त चुरा लिया। सब भाइयों के हृदय में द्रौपदी का रूप बस गया। सबके हृदयों को कामदेव ने मथ डाला। ऐसा होना कुछ विचित्र नहीं; क्योंकि विधाता ने मानो आप ही अपने हाथों से पाञ्चाली का कमनीय रूप रचा था। द्रौपदी का रूप अन्यान्य सुन्दरी स्त्रियों के रूप से कहीं अधिक मनोहर था।

रङ्ग-ढङ्ग देखकर युधिष्ठिर अपने भाइयों के मन के भाव को समझ गये। उन्हें व्यासदेव का कहना भी स्मरण हो आया। इसके सिवा उन्होंने यह भी सोचा कि द्रौपदी के लिए भाइयों में कहीं फूट न पड़ जाय। सब सोच-विचारकर युधिष्ठिर ने कहा—अच्छी बात है, माता की आज्ञा के अनुसार, शुभ लक्षणोंवाली द्रौपदी हम पाँचों भाइयों की धर्मपत्नी होगी।

महाराज, बलशाली पाण्डवों ने बड़े भाई की यह आज्ञा सुनकर मन ही मन उसी को अपना कर्त्तव्य ठहरा लिया।

इधर अनुमान से अर्जुन और भीमसेन आदि को पाण्डुपुत्र समझकर कृष्णचन्द्रजी उनके पीछे-पीछे बलदेव को साथ लिये उसी कुँभार के घर पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि अग्नि के समान तेजस्वी पाण्डव बड़े भाई युधिष्ठिर के पास बैठे हुए हैं। तब अजमीढ़ राजा के वंश में उत्पन्न, धार्मिकश्रेष्ठ, कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर के पास पहुँचकर श्रीकृष्ण ने उनके पैर छुए और कहा—मैं वसुदेव का पुत्र कृष्ण हूँ। इसके बाद बलभद्र ने भी पैर छूकर अपना परिचय दिया। २०

पाण्डव लोग अपने बन्धु कृष्ण-बलराम को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। फिर कृष्ण-बलराम ने अपनी बुआ कुन्ती के पैर छुए।

कुशलप्रश्न हो चुकने पर युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कहा—वासुदेव, हम यहाँ छिपे हुए रहते हैं; फिर तुमने किस तरह हमें पहचान लिया? श्रीकृष्ण ने मुसकराकर कहा—राजन्, आग लाख छिपी रहे पर उसे लोग जान ही लेते हैं। पाण्डवों के सिवा पृथ्वी पर और कौन ऐसा पुरुष है जो इस प्रकार का पराक्रम दिखा सके? हमारे लिए बड़े भाग्य की बात है कि शत्रुदमन पाण्डव आग से बचकर जीते-जागते मौजूद हैं। बड़े सौभाग्य की बात है कि दुरात्मा दुर्योधन की इच्छा पूरी नहीं हुई। आप लोगों का भला हो। आप लोगों के अभ्युदय के दिन अभी समय की कन्दरा में छिपे हुए हैं। ईश्वर करे, आप लोग इसी तरह आग के समान बढ़ते रहें। मैं यही चाहता हूँ कि अभी कोई राजा आपको पहचान न सके। अब आज्ञा दीजिए, हम दोनों भाई अपने डेरे को जायँ।

अनन्त ऐश्वर्य से सम्पन्न कृष्णचन्द्र, युधिष्ठिर आदि पाण्डवों से विदा होकर,
२५ शीघ्र वहाँ से चल दिये।

---

## एक सौ पञ्चानबे अध्याय

धृष्टद्युम्न का छिपकर पाण्डवों की बातचीत सुनना और फिर द्रुपद के पास लौटकर जाना। द्रुपद का पाण्डवों के बारे में प्रश्न करना

वैशम्पायन ने कहा—राजन्! जब अर्जुन और भीमसेन कृष्णा को लेकर कुँभार के घर को चले तब गुप्त रूप से, उनके पीछे-पीछे, धृष्टद्युम्न भी उनका पता लगाने के लिए गये। धृष्टद्युम्न को जाते समय कोई नहीं देख सका। उन्होंने वहाँ पहुँचकर अपने नौकरों को सावधान करके इधर-उधर ठहरा दिया और आप वहीं छिप रहे।

सन्ध्या के समय बलशाली भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव भिक्षा माँगकर घर आये। उन्होंने भिक्षा में मिली हुई सामग्री लाकर युधिष्ठिर के आगे रख दी। तब दानी स्वभाव-वाली कुन्ती ने द्रौपदी से कहा—शुभे! तुम इस भिक्षा में प्राप्त अन्न से पहले देवताओं की पूजा करो, ब्राह्मणों को भिक्षा दो, अतिथि-अभ्यागत और-और जो कोई भोजन की इच्छा से आया हो उसे भोजन कराओ। फिर जो अन्न बचे उसके दो हिस्से करो। उसमें से एक हिस्सा इन गजराज-सदृश उन्नत, गौरवर्ण, युवा, वीर भीमसेन को खिलाओ; क्योंकि ये नित्य सबसे अधिक भोजन करते हैं। फिर जो एक हिस्सा बचे उसके छः भाग कर डालो। उनको मैं, तुम और ये चारों भाई भोजन करेंगे। राजकन्या द्रौपदी ने सास के ये उचित वचन सुनकर, बिना कुछ विचार किये, उसी तरह सब काम किया। सबने मिलकर भोजन किया। भोजन करके अपनी-

अपनी मृगछाला बिछाकर सब लोग लेट रहे। वीर पाण्डव दक्षिण दिशा की ओर सिरहाना करके सोये। उनके सिर की ओर कुन्ती और पैरों की ओर द्रौपदी सोई। कुशों की शय्या पर, पैरों के पास, लेटने पर भी न तो द्रौपदी दुःखित हुई और न उसके हृदय में पाण्डवों के प्रति अनादर का भाव ही उत्पन्न हुआ। वीर्यशाली पाण्डव लेटकर रथ, हाथी, खड्ग, गदा, परश्वध, दिव्य अस्त्र और सेना आदि के विषय की तरह-तरह की बातें करने लगे। छिपे हुए धृष्टद्युम्न भी मन लगाकर उनकी बातचीत सुनते रहे। धृष्टद्युम्न के सेवकों ने और उन्होंने देखा कि द्रौपदी भी एकाग्र होकर उनकी बातचीत सुन रही है। १०

धीरे-धीरे सबेरा हो गया। तब रात को पाण्डवों में जो बातचीत हुई थी वह द्रुपद को सुनाने के लिए धृष्टद्युम्न शीघ्र वहाँ से निकलकर राज-भवन को चल दिये। पाण्डवों का पता लगाने में असमर्थ होने के कारण महात्मा द्रुपद बहुत ही खिन्न हो रहे थे। धृष्टद्युम्न जैसे ही द्रुपद के पास पहुँचे वैसे ही उन्होंने पूछा—बेटा, द्रौपदी को ले जानेवाला पुरुष कौन है? वह कहाँ गई? किसी नीच जाति के पुरुष ने, शूद्र ने या 'कर' देनेवाले वैश्य ने तो मेरी कन्या द्रौपदी को जीत ले जाकर मेरे सिर पर पैर नहीं रक्खा? सिर पर कीचड़ से भरा हुआ पैर तो नहीं रक्खा गया? सुगन्धित माला मसान में तो नहीं फेंकी गई? द्रौपदी को ले जानेवाला पुरुष क्षत्रिय या वर्णश्रेष्ठ ब्राह्मण ही है न? यदि मेरी कन्या को जीतकर ले जानेवाला पुरुष पाण्डु-पुत्र अर्जुन है तो मुझे किसी प्रकार का सन्ताप नहीं है। हे महाभाग, शीघ्र कहो, मेरी कन्या को जीतकर कौन ले गया है? कुरुकुल-तिलक महाराज विचित्रवीर्य के पुत्र पाण्डु के वंशधर क्या अभी तक पृथ्वी पर जीवित हैं? अर्जुन ने ही धनुष चढ़ाकर उस लक्ष्य को गिराया है न? १८

---

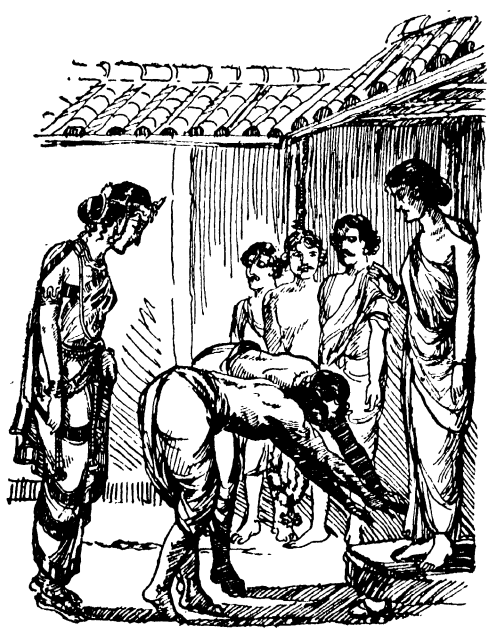
## वैवाहिकपर्व

## एक सौ छियानबे अध्याय

धृष्टद्युम्न से सब हाल सुनकर द्रुपद का पाण्डवों के पास ब्राह्मण को भेजना। युधिष्ठिर और उस ब्राह्मण की बातचीत

वैशम्पायन ने कहा—राजन्, चन्द्रवंशियों में श्रेष्ठ राजपुत्र धृष्टद्युम्न पिता के ये वचन सुनकर प्रसन्न चित्त से सब हाल कहने लगे कि द्रौपदी को कौन ले गया है और इस सम्बन्ध में क्या-क्या घटना हुई है। धृष्टद्युम्न ने कहा—महाराज! जिन विशाल और लाल नेत्रोंवाले, कृष्णाजिन-धारी, देवतुल्य मनोहरमूर्त्ति, युवा पुरुष ने भारी धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाकर लक्ष्य को बेधकर पृथ्वी पर गिरा दिया था वे राह में किसी से नहीं मिले; किसी से भी उन्होंने विशेष बातचीत

नहीं की। ब्राह्मण लोग प्रशंसा करते हुए उन्हें घेरे थे और वे—देव-ऋषि-मण्डली से घिरे हुए इन्द्र जैसे दैत्यमण्डली के भीतर होकर निर्भय भाव से जाते हैं वैसे ही—राजमण्डली के बीच से होते हुए चले। नागवधू जैसे नागराज के पीछे चले वैसे ही प्रसन्नता-पूर्ण द्रौपदी उनकी काली मृग-छाला का कोना पकड़े पीछे-पीछे जा रही थी। यह देखकर राजा लोग न सह सके। वे क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए उनके पीछे दौड़े। तब और एक भीमरूप वीर पुरुष उन राजाओं के आगे आकर—कुपित यमराज जैसे दण्डप्रहार से प्राणियों का नाश करते हैं वैसे—एक बड़ा भारी वृक्ष उखाड़कर उसके प्रहार से शत्रुसेना को चौपट करने लगा। महाराज, यह देखकर सब राजा लोग चकरा गये और युद्ध से विमुख हो गये। तब वे दोनों चन्द्र-सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषसिंह वीर, राजाओं के सामने ही, द्रौपदी को लेकर, नगर के किनारे पर एक कुँभार के घर पहुँचे। उस घर में अग्निशिखा के समान तेजस्विनी एक वृद्धा स्त्री बैठी हुई थी। उसके पास अग्नितुल्य तेजस्वी तीन वीर पुरुष और बैठे थे। मेरी समझ में वह स्त्री उनकी माता होगी। इन दोनों वीरों ने उसके पास पहुँचकर उसके चरणों में प्रणाम किया और द्रौपदी से भी प्रणाम करने के लिए कहा। द्रौपदी को उस स्त्री के पास यह कहकर बिठा दिया कि यह 'भिक्षा' है; फिर वे दोनों वीर और उस स्त्री के पास बैठे हुए तीन पुरुषों में से दो पुरुष, चार जने भिक्षा माँगने के लिए नगर में आये। भिक्षा माँगकर जब वे लौटे तब द्रौपदी ने उस भिक्षा-लब्ध सामग्री में से कुछ अन्न लेकर उससे देवताओं की पूजा की और ब्राह्मणों को भिक्षा देकर अतिथि-संत्कार भी किया। फिर जितना अन्न बचा उसमें से उस वृद्धा स्त्री को और उन पाँच पुरुषों को भोजन कराकर द्रौपदी ने भी भोजन किया। राजन्, इसके उपरान्त पृथ्वी पर कुशासन और मृगछाला बिछाकर सब लोग लेट रहे। द्रौपदी भी पैरों की तरफ़ लेट गई। लेटकर वे वीर मेघ के समान गम्भीर स्वर से परस्पर तरह-तरह की बातें करने लगे। उन लोगों में जैसी बातें हुईं वैसी बातें



ब्राह्मण नहीं किया करते; वैश्यों या शूद्रों का भी वैसी बातें करना सम्भव नहीं। वे तो युद्ध की ही बातें करते थे। इसलिए निस्सन्देह वे कोई श्रेष्ठ क्षत्रिय हैं। स्पष्ट जान पड़ता है कि हमारी आशा सफल हुई है। सुना जाता है, पाण्डव लोग अग्निदाह से बच गये हैं। जिस तरह उस वीर पुरुष ने बलपूर्वक धनुष को उठाकर चढ़ा लिया और फुर्ती और सफ़ाई के साथ निशाना काटकर गिरा दिया और जिस तरह की बातचीत उनमें होती है, उससे स्पष्ट जान पड़ता है कि वे छिपे-हुए पाण्डव ही हैं। पाँचों भाई माता कुन्ती के साथ वेष बदले हुए घूम रहे हैं।

महाराज, इस समाचार से राजा द्रुपद को बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने उसी क्षण अपने पूज्य पुरोहित को पाण्डवों के पास भेजा। पुरोहित से कह दिया—आप उन लोगों के पास जाकर पूछिएगा कि तुम लोग पाण्डु के पुत्र हो या नहीं? हम तुम्हारा परिचय लेना चाहते हैं।



राजा की आज्ञा से राजपुरोहित ने पाण्डवों के पास जाकर विधिपूर्वक हर एक की प्रशंसा करके राजा का सन्देसा यों कहा—हे श्रेष्ठ पुरुषो! राजा द्रुपद आप लोगों का नाम, कुल और निवास-स्थान जानना चाहते हैं। इन वीर पुरुष को लक्ष्य-वेध करते देखकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ है। अब आप लोग अपनी जाति, कुल आदि बताकर राजा को, उनके अनुचरों को और मुझे प्रसन्न करके शत्रुओं के सिर पर पैर रखिए। महाराज पाण्डु हमारे राजा द्रुपद के, आत्मा के समान, प्यारे मित्र थे। इसी कारण राजा को यह इच्छा थी कि उनकी कन्या द्रौपदी उनके मित्र के पुत्र की पत्नी हो। हे सर्वाङ्गसुन्दर शूरो, राजा द्रुपद अपने मन में यही सोचा करते थे कि महाबाहु अर्जुन धर्मानुसार मेरी कन्या का पाणिग्रहण करें। यदि सचमुच ऐसा ही हुआ है तो राजा द्रुपद अपना सौभाग्य समझेंगे। उनके लिए यह यश और पुण्य का कारण होगा। इससे उनका इष्ट सिद्ध होगा।

पुरोहित के कह चुकने पर युधिष्ठिर ने अपने पास बैठे हुए भीमसेन से कहा—भैया! पाद्य, अर्घ्य आदि देकर इनका सत्कार करो। ये राजा द्रुपद के मान्य पुरोहित हैं; इसलिए इनकी विशेष रूप से पूजा करनी चाहिए। राजन्, भाई की आज्ञा से भीमसेन ने अच्छी तरह भक्ति-पूर्वक पुरोहित की पूजा की। पूजा पाकर पुरोहित जब प्रसन्नतापूर्वक आसन पर बैठ गये तब युधिष्ठिर ने कहा—ब्राह्मणदेव, पाञ्चालपति ने अपनी इच्छा से बेटी नहीं दी। उन्होंने अपने धर्म के अनुसार लक्ष्य-वेध की शर्त्त करके कन्या देने का विचार किया था। इन वीर पुरुष ने उसी शर्त्त को पूरा करके उनकी कन्या प्राप्त की है। इस समय ये वीर पुरुष अपनी जाति, कुल, शील आदि के बारे में कुछ कहना नहीं चाहते। इस झगड़े को चढ़े हुए धनुष के द्वारा काटे गये लक्ष्य ने ही दूर हटा दिया है। इन वीर ने राजा की इच्छा और प्रतिज्ञा के अनुसार ही सब राजाओं को जीतकर उनके बीच में कृष्णा को प्राप्त किया है। चन्द्रवंशी राजा द्रुपद को ऐसी दशा में शोक करना उचित नहीं; क्योंकि उससे दुःख के सिवा और कुछ लाभ नहीं हो सकता; किन्तु मेरे विचार से उनकी पहले की इच्छा भी पूरी होगी। हे ब्राह्मण, इस राजकन्या को हम अपने अनुरूप और सुन्दर लक्षणों से युक्त देख रहे हैं। इसके सिवा निर्बल या कम बलवाला पुरुष उस धनुष पर कभी प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सकता और नीच कुल में उत्पन्न अथवा अस्त्र-विद्या न जाननेवाला पुरुष कभी उस लक्ष्य को वेधकर पृथ्वी पर नहीं गिरा सकता। इसलिए, और इसलिए कि उस लक्ष्य-वेध के कार्य को पृथ्वी पर कोई मिथ्या नहीं कर सकता, राजा द्रुपद को अपनी कन्या के लिए पछतावा या खेद करना उचित नहीं।

युधिष्ठिर यों कह रहे थे, इसी समय द्रुपद के एक दूत ने आकर ख़बर दी कि
२९ राजभवन में जेवनार तैयार है।

---

## एक सौ सत्तानवे अध्याय

### पाण्डवों का द्रुपद के भवन में जाना

दूत ने कहा—महाराज द्रुपद ने विवाह और कन्यादान करने के अभिप्राय से बरातियों के लिए सुन्दर भोजन की सामग्रियाँ तैयार कराई हैं। आप लोग नित्यकृत्य समाप्त करके द्रौपदी को साथ लेकर वहाँ शीघ्र पधारिए। सोने के कमलों से शोभित, राजाओं की सवारी के योग्य, ये रथ खड़े हैं। इनमें उत्तम घोड़े जुते हुए हैं। आप इन पर चढ़कर महाराज द्रुपद के भवन में पधारें।

वैशम्पायन कहते हैं—पाण्डवों ने पुरोहित को विदा कर दिया। फिर एक रथ पर कुन्ती और द्रौपदी को बिठाकर आप भी उत्तम रथों पर सवार होकर राजभवन को चले।

इधर पुरोहित के मुँह से धर्मराज युधिष्ठिर की सब बातें सुनकर द्रुपद ने उनकी जाति की जाँच के लिए अनेक प्रकार की उपहार की सामग्रियाँ रखवा दीं। चारों वर्णों के योग्य विविध

फल, सुन्दर मालाएँ, कवच, ढाल, आसन, गाय, रस्सी, बीज, खेती के सामान, अनेक प्रकार की कारीगरियों के औज़ार और खेल के सामान रक्खे गये। इनके सिवा एक स्थान पर अलग कवच, ढालें, उत्तम तलवारें, घोड़े, विचित्र रथ, श्रेष्ठ धनुष, तरह-तरह के बाण, शक्ति, ऋष्टि, सुवर्णभूषित प्रास, भुशुण्डी, परश्वध और अन्यान्य युद्ध के सामान, उत्तम पलँग, आसन तथा तरह-तरह के बहुमूल्य वस्त्र भी रक्खे गये।



साध्वी कुन्ती द्रौपदी को साथ लेकर द्रुपद के रनिवास में गईं। प्रभावशालिनी रनिवास की स्त्रियों ने कौरव-राजरानी का यथोचित सत्कार किया।

राजन्! इधर सिंह की तरह चलनेवाले, साँड़ की ऐसी रोबीली आँखोंवाले, कृष्णाजिनधारी, भरे और उभरे कन्धोंवाले, महाबाहु, पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवों को देखकर राजा द्रुपद, उनके पुत्र, मन्त्री, इष्ट-मित्र और नौकर-चाकर, सब बहुत प्रसन्न हुए। इसके बाद ११
पाँचों वीर पाण्डव अशङ्कित और अविस्मित भाव से क्रम से बढ़िया आसनों पर जा बैठे। तब स्वच्छ सुन्दर पोशाकें पहने हुए दास-दासीगण सोने के बर्तनों में, राजाओं के योग्य, अनेक प्रकार की भोजन-सामग्री लाये। नरश्रेष्ठ पाण्डव, अपनी-अपनी रुचि के अनुसार, उन सब वस्तुओं को खाकर बहुत प्रसन्न हुए। अब अन्य विलासि की सामग्रियों को छोड़कर उन्होंने युद्ध की सामग्री ही ग्रहण की। राजन्! यह देखकर द्रुपद, उनके पुत्र और मन्त्रियों को निश्चय हो गया कि ये पाण्डव ही हैं। १५

## एक सौ अट्ठानवे अध्याय.

द्रुपद और युधिष्ठिर की बातचीत। व्यासजी का आगमन

वैशम्पायन कहते हैं कि अब द्रुपद ने युधिष्ठिर को अपने पास बुलाकर ब्राह्मणोचित स्वागत करके कहा—हम कैसे जानें कि आप लोग कौन वर्ण हैं? आप ब्राह्मण हैं या क्षत्रिय; गुणी वैश्य हैं अथवा शूद्र? कृष्णा को देखने और पाने की इच्छा से आये हुए आप लोग अपनी

माया से मनुष्य-रूपधारी देवता तो नहीं हैं ? आप अपना ठीक-ठीक परिचय देकर हमारे संशय को दूर कर दीजिए। इस सन्देह के दूर होने पर, ईश्वर करे, हमारे मन को सन्तोष प्राप्त हो; हमारे भाग्य अच्छे निकलें। आप अपनी इच्छा से सच्चा परिचय देकर हमें कृतार्थ कीजिए। [ हमारा तो अनुमान है कि आप कोई क्षत्रियकुल-भूषण ही हैं। ] राजाओं के लिए सच बोलना ही शोभा देता है। झूठ बोलने से पुण्य नष्ट हो जाता है। इसलिए झूठ न बोलना। हे निष्पाप, देवतुल्य, शत्रु-दमन! आपके उत्तर को सुनकर मैं विधि-पूर्वक विवाह की तैयारी कराऊँगा।



युधिष्ठिर ने कहा—हे पाञ्चाल-राज, आप घबराइए नहीं; प्रसन्न हूजिए। आप निश्चय जानिए कि आपकी इच्छा सचमुच पूरी हुई है। राजन्, हम क्षत्रिय ही हैं। हम पाँचों भाई महात्मा पाण्डु के पुत्र हैं। मैं सबमें बड़ा युधिष्ठिर हूँ। राजसभा में राजाओं को हराकर आपकी कन्या को ले जानेवाले ये दोनों वीर भीमसेन और अर्जुन हैं। वे दोनों छोटे भाई नकुल और सहदेव हैं। हमारी माता कुन्ती कृष्णा के साथ आपके रनिवास में हैं। अब आप हमें क्षत्रिय जानकर अपने मन से चिन्ता हटा दीजिए। पद्मिनी की तरह आपकी कन्या एक सरोवर से दूसरे सरोवर में पहुँच गई। जो सच बात थी सो मैंने आपसे कह दी। आप हमारे बड़े और एकमात्र सहायक हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर के ये वचन सुनते ही द्रुपद की आँखों में आनन्द के आँसू भर आये। उन्होंने युधिष्ठिर से कुछ कहना चाहा, किन्तु आनन्द के वेग से उनका गला भर आया। वे कुछ कह न सके। इसके बाद शत्रुदमन द्रुपद ने बड़ी मुश्किल से उस आनन्द के आवेश को सँभालकर उचित वाक्यों से उनका अभिनन्दन किया। फिर उन्होंने वारणावत नगर से, जतुगृह के भीतर से, भाग निकलने का सब हाल पूछा और युधिष्ठिर ने वर्णन किया। धर्मात्मा महाराज द्रुपद ने युधिष्ठिर के मुँह से सब वृत्तान्त सुनकर राजा धृतराष्ट्र की बड़ी निन्दा की। फिर युधिष्ठिर को दिलासा देते हुए द्रुपद ने उनको उनका राज्य दिला देने की प्रतिज्ञा की।

अब द्रुपद ने पाण्डवों के रहने के लिए एक सुन्दर राजभवन दिया। उसी में कुन्ती, द्रौपदी और युधिष्ठिर आदि पाण्डव सुख से रहने लगे। राजा द्रुपद नित्य विधिपूर्वक पाण्डवों का आदर-सत्कार करने लगे। इस प्रकार सन्देह दूर हो जाने पर, पुत्रों से सलाह करके, द्रुपद ने युधिष्ठिर से कहा—अब कुरुनन्दन अर्जुन शुभ मुहूर्त्त में द्रौपदी का पाणि-ग्रहण करें। अभी से देव-पूजा आदि का उत्सव और कुलाचार किया जाना चाहिए। २०

महाराज, तब धर्मात्मा युधिष्ठिर ने कहा कि राजन्, मुझे भी ब्याह करना होगा। द्रुपद ने कहा—तो फिर आप ही मेरी कन्या का पाणि-ग्रहण कीजिए; अथवा भाइयों में से जिसको आप अनुमति दें वही द्रौपदी का पाणि-ग्रहण करे। युधिष्ठिर ने कहा—राजन्, द्रौपदी हम सब भाइयों की धर्मपत्नी होगी। हमारी माता पहले ऐसी ही आज्ञा दे चुकी हैं। अर्जुन ने अपने बाहुबल से इस कन्या-रत्न को प्राप्त किया है। मैं भी अविवाहित हूँ और भीमसेन का भी विवाह नहीं हुआ। हमारा भी समान रूप से इस कन्या-रत्न में हिस्सा है। हम लोगों का यह नियम है कि जो कुछ मिलता है उसे हम पाँचों भाई बाँटकर अपने काम में लाते हैं। इसलिए हे नरश्रेष्ठ, हम अपने उस नियम को तोड़ना नहीं चाहते। कृष्णा हम पाँचों भाइयों की धर्म-पत्नी होगी। अग्नि को साक्षी करके, बड़े-छोटे के क्रम के अनुसार, हम पाँचों भाइयों के साथ द्रौपदी का विवाह होना चाहिए।

यह सुनकर द्रुपद ने कहा—कुरु-नन्दन, एक पुरुष की अनेक स्त्रियाँ तो हुआ करती हैं; किन्तु हमने यह सुना भी नहीं कि एक स्त्री के अनेक पति हो सकते हैं। आप धार्मिक और पवित्र-हृदय हैं। इसलिए ऐसा वेदविरुद्ध, लोकविरुद्ध काम करना आपको उचित नहीं। हे कुन्तीपुत्र, आपकी यह बुद्धि कैसे हुई?

युधिष्ठिर ने कहा—महाराज, धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है। हम लोग उसकी जटिल समस्याओं को समझ नहीं सकते। पूर्वपुरुष जिस राह पर चले हैं उसी पर हम चल भर सकते हैं। मैंने कभी झूठ नहीं कहा। मेरी प्रवृत्ति कभी अधर्म में नहीं होती। मेरी माता की यही आज्ञा है और मेरी भी यही सम्मति है कि द्रौपदी हम पाँचों भाइयों की धर्म-पत्नी हो। ३० राजन्, यह अटल धर्म है। आप सोच-विचार किये बिना यही कीजिए। आपको इस विषय में किसी तरह कुछ शङ्का न करनी चाहिए।

द्रुपद ने कहा—युधिष्ठिर, आप पहले कुन्ती और मेरे पुत्र धृष्टद्युम्न के साथ सलाह करके कर्त्तव्य का निश्चय कर लीजिए। जो निश्चय होगा वही कल किया जायगा।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, इसके बाद सब लोग मिलकर इस बारे में विचार करने लगे। इसी समय भगवान् वेदव्यास इच्छानुसार वहाँ पर आ गये।

# एक सौ निन्नानवे अध्याय

व्यासजी के सामने द्रौपदी के पांच पति होने के बारे में वाद-विवाद।
व्यासजी का इसी सम्बन्ध में बोलना

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, व्यासजी को देखकर द्रुपद और पाण्डव उठ खड़े हुए। सबने प्रणाम करके उनका पूजन किया। महामनस्वी महर्षि व्यास उनकी पूजा ग्रहण करके कुशल-प्रश्न के उपरान्त सुवर्णमण्डित आसन पर विराजमान हुए। अब उनकी आज्ञा पाकर राजा द्रुपद और पाण्डव भी अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। पल भर के बाद राजा द्रुपद ने मधुर वाणी से व्यासजी के आगे द्रौपदी के सम्बन्ध में प्रश्न किया—भगवन्, एक स्त्री अनेक पुरुषों की उपपत्नी होने के सिवा धर्मपत्नी कैसे हो सकती है? इस बारे में आप हम सबको ठीक-ठीक व्यवस्था दीजिए।



व्यासजी ने कहा—मैं पहले सुनना चाहता हूँ कि इस शास्त्र-विरुद्ध और लोक-निन्दित दुर्ज्ञेय धर्म के सम्बन्ध में तुम लोगों में से किसकी क्या राय है।

द्रुपद ने कहा—मेरी सम्मति में यह काम शास्त्र और लोकाचार के विरुद्ध होने के कारण अधर्म है। हे द्विजश्रेष्ठ, अनेक पुरुषों की एक धर्मपत्नी का होना संसार में कहीं नहीं देखा जाता। महात्मा पूर्वपुरुषों ने भी इस धर्म का आचरण नहीं किया। इन्हीं कारणों से यह काम करने के लिए मेरा जी नहीं चाहता। इस कार्य के धर्म-सङ्गत होने में मुझे पूरा सन्देह है।

धृष्टद्युम्न ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ, सच्चरित्र बड़ा भाई कभी छोटे भाई की स्त्री से सहवास
१० नहीं कर सकता। यह ठीक है कि धर्म की गति सूक्ष्म होने के कारण हम उसे नहीं जान सकते किन्तु अधर्म को धर्म भी नहीं मान सकते। इसी लिए हम ऐसे लोग ऐसे काम का अनुमोदन नहीं कर सकते। मैं यह सम्मति नहीं दे सकता कि द्रौपदी पाँच पुरुषों की पत्नी हो।

युधिष्ठिर ने कहा—मैंने कभी झूठ नहीं कहा और न अधर्म में मेरी प्रवृत्ति ही हो सकती है। किन्तु इसमें मेरी प्रवृत्ति हो रही है, इसलिए यह किसी तरह अधर्म नहीं है। पुराण

से भी जाना जाता है कि गौतम-नन्दिनी जटिला ने सात ऋषियों के साथ ब्याह किया था। ऐसे ही मुनिकन्या वार्क्षी का ब्याह एक नामवाले तपस्वी दस प्रचेताओं के साथ हुआ था। हे धर्मज्ञ, गुरुजन ( बड़े-बूढ़ों ) की आज्ञा का पालन ही धर्म समझा जाता है। माता के समान गुरु ( बड़ा ) कोई नहीं है। माता का दर्जा सबसे बढ़कर है। उन्होंने आज्ञा दी है कि तुम सब भाई, भिक्षा की तरह, द्रौपदी को ग्रहण करो। इस कारण मुझे तो यही परमधर्म जान पड़ता है।

कुन्ती ने कहा—धर्मात्मा युधिष्ठिर ने ठीक कहा है। [ भाइयों के साथ भिक्षा की तरह द्रौपदी को ग्रहण करो, यह मैं अर्जुन से कह चुकी हूँ। ] मैं मिथ्या वचन से बहुत डरती हूँ। मेरे वचन को झूठ न होने देने का इसके सिवा और क्या उपाय है ?

व्यासजी ने कहा—भद्रे, तुमको झूठ बोलने के पाप में लिप्त न होना होगा। जो तुमने आज्ञा दी है वह सनातन धर्म के अनुकूल है।

अब व्यासजी ने द्रुपद से कहा—राजन्, मैं सबके आगे अपनी सम्मति नहीं दूँगा। आओ, मैं एकान्त में तुम्हारे आगे इसी सम्बन्ध की एक कथा कहूँगा। तुम चिन्ता न करो, धर्म की व्यवस्था के अनुसार इसे सनातन धर्म ही मानना चाहिए। युधिष्ठिर का कहना सच है। यह निःसन्देह धर्म है। २०

महाराज, इसके बाद व्यासजी उठ खड़े हुए और द्रुपद का हाथ पकड़कर उन्हें भवन के भीतर एकान्त स्थान में ले गये। पीछे से पाण्डव, कुन्ती और धृष्टद्युम्न भी वहाँ पहुँच गये। तब व्यासजी द्रुपद के आगे कहने लगे कि एक पत्नी के अनेक पति होना क्यों धर्म है। २३

---

## दो सौ अध्याय

### द्रौपदी और पाण्डवों के पूर्व-वृत्तान्त का वर्णन

व्यासजी ने कहा—पूर्व-समय में देवताओं ने नैमिषारण्य क्षेत्र में एक यज्ञ आरम्भ किया था। सूर्य के पुत्र यमराज उस यज्ञ में पशु-वध का काम करते थे। राजन्, यमराज के इस प्रकार यज्ञ-दीक्षा लेने के कारण प्रजा की मृत्यु होना बन्द हो गया। इस कारण दिन-दिन बढ़कर पृथ्वी पर असङ्ख्य प्रजा हो गई। तब चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण, कुबेर, साध्यगण, रुद्रगण, वसुगण, अश्विनीकुमार और अन्य सब देवता मिलकर सृष्टिकर्त्ता प्रजापति ब्रह्मा के पास पहुँचे। सबने ब्रह्माजी से कहा—भगवन्, मनुष्यों की अत्यन्त बढ़ती देखकर हमें बड़ा डर लग रहा है। उनकी बढ़ती देखकर हम लोग बहुत ही चिन्तित और घबराये हुए हैं। हम आपकी शरण में इसलिए आये हैं जिसमें हमारा यह डर और चिन्ता दूर हो तथा हम सुखी हों।

ब्रह्मा ने कहा—मनुष्यों से तुमको क्या डर है ? तुम अमर हो, और मनुष्य मरणशील हैं। इसलिए मनुष्यों से डरना तुम्हारे लिए ठीक नहीं।

देवताओं ने कहा—ब्रह्मन्, मरणशील मनुष्य इस समय अमर हो गये हैं। अब हममें उनसे कुछ विशेषता नहीं रह गई। विशेषता न रहने के कारण ही हम इतना घबरा रहे हैं। इस समय हम आपके पास इसी लिए आये हैं कि हमारी विशेषता बनी रहने का आप उपाय कीजिए।

ब्रह्मा ने कहा—यमराज इस समय यज्ञ में लगे हुए हैं, इसी से मनुष्यों की मृत्यु नहीं होती। वे जब यज्ञ समाप्त होने पर निश्चिन्त होंगे तब फिर मनुष्य मरने लगेंगे। यमराज का शरीर ( रोग आदि ) तुम्हारे वीर्य के द्वारा बढ़ने पर या विभक्त होने पर उसी के द्वारा मनुष्यों का नाश होगा। उस पर मनुष्यों की शक्ति का कुछ वश नहीं चलेगा।

व्यासजी कहते हैं—अपने पूर्व-पुरुष ब्रह्मा के ये वचन सुनकर देवता उस यज्ञमण्डप में लौट आये जहाँ देवता यज्ञ कर रहे थे। इसके बाद एक दिन सब देवता एक जगह बैठे



हुए थे कि उन्होंने देखा, गङ्गा की धारा में एक सोने का कमल बहता चला जा रहा है। उसे देखकर सबको बहुत अचरज हुआ। सबमें प्रधान और वीर इन्द्रदेव उस पुष्प का ठीक-ठीक वृत्तान्त जानने के लिए चल पड़े। गङ्गा की धारा जिस स्थान से निकली है वहाँ पहुँच-
१० कर इन्द्र ने एक अग्निशिखा के समान तेजस्विनी स्त्री को देखा। वह स्त्री जल भरने के लिए गङ्गा के भीतर खड़ी हुई थी। वह रोती जाती थी। उसकी आँखों से जो आँसू का बूँद गिरता था वही वैसा सुवर्ण-कमल हो जाता था।

यह अद्भुत घटना देखकर इन्द्र उस स्त्री के पास गये और पूछने लगे—भद्रे, तुम कौन हो? किसलिए रो रही हो? अपना सच्चा हाल मुझसे कहो।

उस स्त्री ने कहा—देवराज इन्द्र, मेरे साथ तनिक आगे चले आओ तो तुमको मालूम हो जायगा कि मैं कौन हूँ और किसलिए रो रही हूँ।

व्यासजी कहते हैं—उस स्त्री के पीछे-पीछे कुछ दूर जाकर इन्द्र ने देखा कि हिमाचल के शिखर पर एक सुन्दर युवा पुरुष सिद्धासन लगाये बैठा हुआ एक युवती के साथ चौसर खेल रहा है। इन्द्र के वहाँ पहुँचने पर भी उस युवक ने उनकी ओर ध्यान नहीं दिया। इस कारण इन्द्र को क्रोध चढ़ आया। उन्होंने क्रोध-पूर्ण दृष्टि से उस युवक की ओर देखकर ज़ोर से कहा—हे पुरुष, तुमको मालूम होना चाहिए कि यह भुवन मेरा है, इस कारण मेरे ही अधीन है। मैं ईश्वर हूँ।



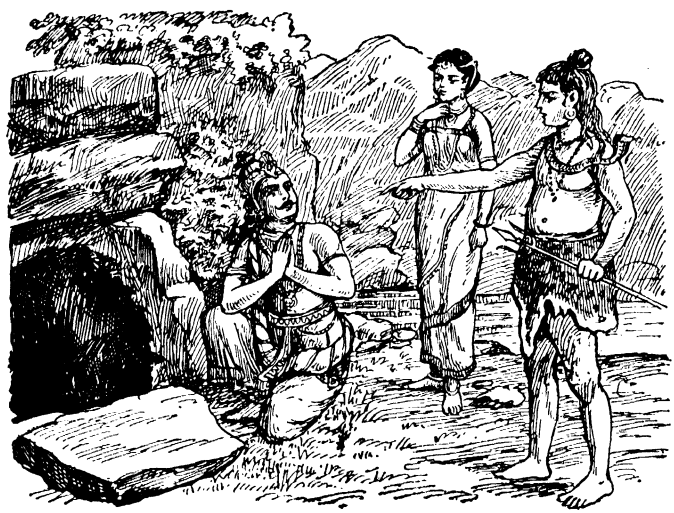
पाँसे खेलने में तन्मय उस पुरुष से क्रुद्ध होकर इन्द्र ने जब यों कहा तब उसने धीरे-धीरे सिर उठाया और हँसकर उनकी ओर देख भर दिया। उस पुरुष की दृष्टि पड़ते ही इन्द्र ठूँठ की तरह निश्चेष्ट भाव से जैसे के तैसे खड़े रह गये। चौसर का खेल समाप्त होने पर उस युवा पुरुष ने रो रही स्त्री को पास बुलाकर कहा—इन्द्र को मेरे पास ले आ। मैं वही करूँगा जिससे फिर इसके शरीर में गर्व का भाव प्रवेश न कर सके।

उस स्त्री ने आकर जैसे ही इन्द्र के शरीर में हाथ लगाया वैसे ही वे पृथ्वी पर गिर पड़े। तब उग्र तेजवाले युवकरूप भगवान् शङ्कर ने उनसे कहा—इन्द्र, अब कभी ऐसा न करना। तुम्हारा बल और वीर्य अप्रमेय है। इसलिए इस बड़ी भारी शिला को उठाकर नीचे की कन्दरा में जाओ। वहाँ तुम्हारे ऐसे सूर्य-तुल्य तेजस्वी और भी इन्द्र हैं।

इन्द्र ने वह शिला हटाकर देखा कि गुफा के भीतर उन्हीं के ऐसे और भी चार इन्द्र मौजूद हैं। उन्हें देखकर इन्द्र बहुत ही दुखी हुए और सोचने लगे कि क्या मेरी भी इनकी सी दशा होगी! २०

तब शङ्कर ने क्रोध-भरी दृष्टि से भयङ्कर भाव प्रकट करके कहा—तुम इसी गुफा के भीतर जाओ; क्योंकि तुमने अभी मूर्खता के कारण मेरा अनादर किया है।

रुद्र के यह कहने पर, पर्वत के शिखर पर लगे पीपल के पत्ते की तरह, डर के मारे इन्द्र काँपने लगे। उन्होंने हाथ जोड़कर शिव से कहा—इस समय मुझे जीतकर आप सम्पूर्ण जगत् के प्रभु हों। उग्र-प्रकृति रुद्र ने हँसकर कहा—ऐसे चरित्र के लोग कभी दण्ड के दुःख से छुटकारा पाने के योग्य नहीं। ये चारों पुरुष भी पहले तुम्हारे ऐसा काम कर चुके हैं और उससे इस दशा को पहुँचे हैं। इसलिए तुम भी इन्हीं की तरह इस गुफा में पड़े रहो। इसके



बाद तुम सबको और इस स्त्री को मनुष्ययोनि में उत्पन्न होना पड़ेगा। यह स्त्री तुम्हारी धर्मपत्नी होगी। वहाँ तुम अद्भुत कार्य और असङ्ख्य प्राणियों का नाश करके फिर अपने कर्म के बल से पूर्वोपार्जित इन्द्रलोक में आ जाओगे। मेरा यह कथन बिलकुल सच है। इसके सिवा मनुष्य-लोक में तुमको देवताओं के प्रयोजन से और भी अनेक काम करने पड़ेंगे।

तब पहले के इन्द्रों ने कहा—देव, जिस मनुष्यलोक में मोक्ष प्राप्त होना दुर्लभ है वहाँ हम अवश्य जायँगे; किन्तु हमारी प्रार्थना यह है कि धर्म, वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमारों से हमारी उत्पत्ति हो तथा दिव्य अस्त्रों द्वारा मनुष्यों से युद्ध करके हम इन्द्रलोक में लौट आवें।

व्यासजी कहते हैं कि राजन्, नये आये हुए इन्द्र ने शम्भु के वचन सुनकर कहा—मैं देवकार्य के लिए, अपने वीर्य से, पाँचवाँ पुरुष उत्पन्न करके पाँच पुरुषों की पूर्त्ति कर दूँगा। महाराज, इन पाँच इन्द्रों में से पहले का नाम विश्वभुक्, दूसरे का भूतधामा, तीसरे का शिवि, चौथे का शान्ति और पाँचवें का नाम तेजस्वी था। इन इन्द्रों ने अपने-अपने स्वभाव के अनु-

सार जैसी इच्छा की वैसी ही आज्ञा शङ्कर ने दी। वह जो त्रिलोक-सुन्दरी स्त्री रो रही थी उसे, शङ्कर ने, मनुष्य-लोक में उत्पन्न होकर पाँचों इन्द्रों की स्त्री होने के लिए आज्ञा दी। अब इन ३०
सबको साथ लेकर भगवान् शङ्कर अप्रमेय, अनन्त, अव्यक्त, अज, पुराण, सनातन, विश्वरूप,



अनन्तरूप, नारायण के समीप गये। उन्होंने भी शङ्कर के इस काम का अनुमोदन किया। वे इन्द्र पृथ्वी पर मनुष्य-योनि में उत्पन्न हुए। हरि ने भी अपने सिर से दो बाल उखाड़े। उनमें एक सफ़ेद और एक काला था। उन दोनों केशों को उन्होंने यदु-कुल में रोहिणी और देवकी के गर्भ में स्थापित कर दिया। श्वेत केश से बलराम और काले केश से कृष्ण का जन्म हुआ है। जो चारों इन्द्र पहले से पर्वत-कन्दरा में क़ैद थे वे युधिष्ठिर, भीम, नकुल और सहदेव हैं। सव्यसाची अर्जुन पुरन्दर के अंश से उत्पन्न हैं। ये पाँचों पाण्डव वही पाँचों इन्द्र हैं। यह दिव्यरूपवाली द्रौपदी उसी रोनेवाली स्त्री लक्ष्मी का अवतार है। इन वीर पाण्डवों की स्त्री होने के लिए शङ्कर पहले से ही आज्ञा दे चुके हैं। राजन्, तुम नहीं समझते कि देव-कार्य न होता तो यह तुम्हारे यज्ञ के अन्त में पृथ्वीतल से कैसे उत्पन्न हो सकती थी। यह तुम्हारी कन्या अलौकिक सुन्दरी और चन्द्र-सूर्य के समान तेजस्विनी है। इसके शरीर से निकली हुई कमल की सुगन्ध आस-पास कोस भर तक फैली रहती है। यदि ऐसा न होता तो ऐसी अद्भुत घटना का होना बिलकुल असम्भव था। महाराज, मैं प्रसन्न होकर तुमको दिव्य दृष्टि देता हूँ; तुम उस दृष्टि से पाण्डवों के दिव्य पूर्वरूप को देख सकोगे।

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद उदार-हृदय पवित्ररूप ब्राह्मण व्यासदेव ने अपने तपोबल के प्रभाव से राजा को दिव्य दृष्टि दी। उस दृष्टि से राजा को पाँचों पाण्डव अपने पूर्व-रूप में देख पड़े। उन्होंने देखा कि वे सचमुच इन्द्र हैं। उनके माथे पर सुवर्ण-मुकुट और गले में दिव्य मालाएँ हैं। उनके शरीर का रङ्ग और तेज अग्नि तथा सूर्य के समान है। उनके सब

अङ्गों में अनेक गहने हैं। वे सुन्दर सुरूप नौजवान हैं। वे पाँच-पाँच हाथ के ऊँचे हैं। उनके वक्षःस्थल विशाल हैं। वे सब साफ़ दिव्य वस्त्र और सुगन्धित मालाएँ पहने हुए हैं।



४१

महाराज! राजा द्रुपद साक्षात् शिव, वसु और सर्वगुणभूषित आदित्य के समान मनोहर पहले के इन्द्रों को, इन्द्र-तुल्य इन्द्र-पुत्र अर्जुन को और उस अप्रमेय दिव्य माया को देखकर बहुत विस्मित और सन्तुष्ट हुए। शरीरधारी चन्द्रमा और अग्नि के समान प्रभा-शालिनी, स्त्री-रत्न, द्रौपदी के तेज को देखकर द्रुपद ने मान लिया कि वह पाण्डवों की पत्नी होने के योग्य है। यह सब आश्चर्य देखकर राजा ने व्यासजी के पैर छुए और कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ, आपके तपोबल के लिए कुछ भी विचित्र नहीं है।



व्यासजी ने प्रसन्नतापूर्वक द्रुपद से कहा—इसके सिवा द्रौपदी के पाँच पति होने का और भी एक कारण है। इनके एक और पूर्व-जन्म की कथा कहता हूँ, सुनो। तपोवन-वासी एक महात्मा ऋषि थे। उनके एक बेटी थी। वह अत्यन्त सुन्दरी थी किन्तु उसे कोई वर (पति) नहीं मिला। पति के लिए उग्र तप करके उस कन्या ने शङ्कर को प्रसन्न किया। शङ्कर ने प्रकट होकर प्रसन्नता-पूर्वक कहा—भद्रे! जो इच्छा हो, माँगो। शङ्कर के ये वचन सुनकर उस कन्या ने "सब गुणों

से युक्त पति दीजिए, पति दीजिए" कहकर बारम्बार प्रार्थना की। शङ्कर ने भी प्रसन्न होकर उसे वर दिया—भद्रे, तुम्हारे पाँच पति होंगे।

इससे उस कन्या ने फिर कहा—शङ्कर, मैं आपसे एक ही पति चाहती हूँ। सन्तुष्ट देवदेव महादेव ने कहा—तुमने "पति दो, पति दो" कहकर पाँच बार मुझसे प्रार्थना की है इसलिए तुमने जैसी प्रार्थना की है वैसा ही होगा। इस शरीर में नहीं; दूसरे जन्म में तुम्हारे पाँच पति होंगे। द्रुपद, वह देवरूपिणी कन्या ही तुम्हारी कन्या हुई है। इसको पाँच पुरुषों ५०
की पत्नी होना पड़ेगा, यह बात पहले से ही तय हो चुकी है। यह वही स्वर्ग-लक्ष्मी पाण्डवों के लिए तुम्हारे महायज्ञ से प्रकट हुई है। घोर तप करने के उपरान्त वही कुमारी तुम्हारी कन्या हुई है। यह देव-सुन्दरी अपने कर्म के अनुसार ही पाँच पुरुषों की पत्नी होने के लिए उत्पन्न हुई है। राजन्, यह जानकर तुम देवताओं का इष्ट कार्य होने दो। ५३

---

## दो सौ एक अध्याय

पाण्डवों के साथ द्रौपदी का ब्याह

द्रुपद ने कहा—ब्रह्मन्, आपके इन वचनों को न सुनने के कारण मैं इस तरह का काम करने में हिचकता था। अब मुझे कुछ भी आपत्ति नहीं है। दैव-विहित होनी को कोई टाल नहीं सकता। भाग्य की गाँठ को कोई काट नहीं सकता। अपने कर्म के फल को भी कोई बदल नहीं सकता। मैंने एक ही पुरुष के लिए लक्ष्य-रचना कराई थी; किन्तु दैवयोग से वही लक्ष्य-वेध अनेक पति होने का कारण हो गया। पूर्वजन्म में द्रौपदी ने भी शङ्कर से कई बार पति माँगा और शङ्कर ने उसको पाँच पति दिये। इस विषय में वही शङ्कर धर्म-अधर्म के ज़िम्मेदार हैं। यदि शङ्कर ने ही ऐसा विधान किया है तो मेरे लिए इसमें कुछ भी पाप नहीं हो सकता। धर्म हो या अधर्म, मैं बिना कुछ सोच-विचार किये यह काम करने को तैयार हूँ। पूर्व-विधान के अनुसार द्रौपदी इन पाँचों भाइयों की पत्नी हो; ये पाँचों भाई द्रौपदी का पाणि-ग्रहण करें।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, अब भगवान् व्यास ने धर्मराज से कहा—हे युधिष्ठिर, आज शुभ दिन और शुभ मुहूर्त्त है। पुष्य नक्षत्र से आज चन्द्रमा का योग है। तुम सबसे पहले कृष्णा का पाणि-ग्रहण करो।

तब द्रुपद और उनके पुत्रों ने विवाह की सब बहुमूल्य सामग्री जमा करने का प्रबन्ध किया। द्रौपदी को नहला-धुलाकर उत्तम कपड़े और गहने पहनाये गये। इस प्रकार अलङ्कृत होने पर कृष्णा चौक पर लाई गई। राजा के इष्ट-मित्र, बन्धु-बान्धव, मन्त्री, ब्राह्मण, पुरोहित, पुरवासी आदि सब प्रसन्नता प्रकट करते हुए विवाह देखने को आये और यथायोग्य स्थानों

पर बैठे। कमल-पुष्प और माला आदि से अलङ्कृत द्रुपद के घर का आँगन उस समय श्रेष्ठ समाज के समागम से तारागण-मण्डित आकाशमण्डल के समान सुन्दर देख पड़ा।

अब स्नान और स्वस्त्ययन के उपरान्त आभूषण पहने, कुण्डलों से अलङ्कृत, नवयुवक, महामूल्य वस्त्रों से शोभित पाँचों पाण्डव, गोशाला में बड़े बली श्रेष्ठ बैलों के समान, उस आँगन
१० में आकर उपस्थित हुए। अग्नि के समान तेजस्वी पुरोहित धौम्य उनके आगे थे। इसके बाद वेद-पाठी पुरोहित धौम्य ने वेदी पर प्रज्वलित अग्नि की स्थापना की, उसमें मन्त्र पढ़कर हवन किया और फिर द्रौपदी का हाथ युधिष्ठिर को पकड़ा दिया। फिर भाँवरी फिराकर विवाहकर्म कर दिया। उस दिन सब लोग विदा होकर अपने-अपने घर चले गये।

महाराज, इसी तरह क्रम से पाँचों पाण्डवों ने एक-एक दिन पाणि-ग्रहण करके पाञ्चाली को अपनी धर्मपत्नी बनाया। इस स्थल पर महर्षि व्यास ने एक और अद्भुत बात कही है कि पहले दिन ब्याह होने पर भी दूसरे दिन फिर कृष्णा कन्या-भाव को प्राप्त हो जाती थी।

इस प्रकार पाँचों पाण्डवों के साथ द्रौपदी का विवाह हो जाने पर द्रुपद ने उनको बहुत से रत्न, धन और श्रेष्ठ सामग्रियाँ दहेज में दीं। रत्न-जटित रासों और लगामोंवाले चार-चार घोड़ों से युक्त एक सौ उत्तम रथ, सुमेरु-सदृश ऊँचे और अलङ्कृत एक सौ हाथी और बहुमूल्य कपड़ों और गहनों से अलङ्कृत एक सौ जवान दासियाँ हर एक दामाद को द्रुपद ने दीं। इसके सिवा अग्नि को साक्षी करके उन्होंने और भी बहुत सा धन, वस्त्र और अलङ्कार पाण्डवों को दिये।

इस प्रकार इन्द्र-तुल्य महारथी पाण्डव विवाह के बाद, अपार सम्पत्ति और स्त्री-रत्न द्रौपदी
१८ को प्राप्त करके, द्रुपद के ही यहाँ सुख से रहने लगे।

---

## दो सौ दो अध्याय

### द्रौपदी को कुन्ती का उपदेश और आशीर्वाद

वैशम्पायन ने कहा—पाण्डवों के नातेदार हो जाने पर द्रुपद को मनुष्यों से क्या, देवताओं से भी डर नहीं रहा। द्रुपद की रानियों ने, नाम लेकर, कुन्ती के पैरों पर सिर रखकर प्रणाम किया। रेशमी कपड़े पहने हुए द्रौपदी भी सास को प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए नम्रभाव से उनके आगे खड़ी हो गई। तब प्रेम प्रकट करती हुई कुन्ती ने सुशीला, सदाचारिणी, पुत्र-वधू द्रौपदी को आशीर्वाद देते हुए कहा—इन्द्राणी ने इन्द्र से, स्वाहा ने अग्नि से, रोहिणी ने चन्द्र से, दमयन्ती ने नल से, भद्रा ने कुबेर से, अरुन्धती ने वशिष्ठ से और लक्ष्मी ने नारायण से जैसा व्यवहार किया है वैसा ही व्यवहार तुम भी अपने पतियों से करना। भद्रे! मैं आशीर्वाद करती हूँ कि तुम चिरजीविनी, वीर पुत्रों की माता, बहुत बन्धु-बान्धवोंवाली,

सौभाग्यवती, धर्मपत्नी और पतिव्रता होकर सब सुख भोगो। अतिथि, अभ्यागत, साधु, बूढ़े और बालकों की आव-भगत और पालन करने में ही तुम्हारा समय बीते। तुम्हारे पति कुरुजाङ्गल प्रदेश के प्रधान-प्रधान नगरों और राष्ट्रों के राजा हों और उनके साथ ही रानी के पद पर तुम्हारा अभिषेक हो। महाबली तुम्हारे पति अपने बाहु-बल से सारी पृथ्वी को जीत लें और तुम वह पृथ्वी अश्वमेध महायज्ञ की दक्षिणा में ब्राह्मणों को दान करो। हे गुणवती, पृथ्वी पर जितने रत्न-पदार्थ हैं वे तुम्हें प्राप्त हों और सौ वर्ष तक तुम उनका उपभोग करो। बहू, आज विवाह के कपड़े पहने देखकर मैंने जैसे तुम्हें बधाई दी है वैसे ही, ईश्वर चाहेगा तो, शीघ्र ही तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होने पर मैं तुम्हारा अभिनन्दन करूँगी। १०

महाराज, पाण्डवों का विवाह हो जाने पर—भेंट के तौर पर—श्रीकृष्ण ने विचित्र वैडूर्य जड़े हुए महामूल्य गहने, क़ीमती कपड़े, अनेक देशों के बने हुए नरम कम्बल और दुशाले, रूप-यौवनवती-चतुर-अलङ्कृत अनेक देशों की सैकड़ों जवान दासियाँ, शान्त और नम्र अनेक गजराज, गहनों से सजे हुए उत्तम घोड़े, सुवर्णमण्डित सैकड़ों रथ, करोड़ों मोहरें और छकड़ों सोना भेजा। धर्मराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए ख़ुशी से वह सब सामान ले लिया। १९

---

## विदुरागमन-राज्यलाभपर्व

## दो सौ तीन अध्याय

पाण्डवों के विवाह का वृत्तान्त सुनकर दुर्योधन आदि की घबराहट और कुमन्त्रणा

वैशम्पायन ने कहा—इसके बाद सब राजाओं को विश्वासी जासूसों से यह ख़बर पहुँच गई कि शुभ लक्षणोंवाली द्रौपदी का विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ हुआ है। जिस महात्मा वीर पुरुष ने धनुष चढ़ाकर निशाना काट गिराया था वे विजय प्राप्त करनेवालों में श्रेष्ठ महा-धनुर्द्धर अर्जुन थे। जिस बलशाली पुरुष ने क्रोधित होकर युद्धभूमि में शल्य को पटक दिया था और बेखटके वृक्ष उखाड़कर राजाओं के छक्के छुड़ा दिये थे वे शत्रुसेना का संहार करनेवाले भीमसेन थे।

राजन्! शान्त ब्राह्मणवेषधारी वे पाण्डव ही थे, यह सुनकर राजाओं को बड़ा अचरज हुआ। उन्होंने सुन रक्खा था कि अपने पुत्रों के साथ कुन्ती आग में जल गई। इस समय पाण्डवों का पता पाकर उन्होंने समझा कि पाण्डवों का मानो नये सिरे से जन्म हुआ। वे लोग पुरोचन के किये हुए निठुर काम को याद करके कुरुप्रधान धृतराष्ट्र और भीष्म को धिक्कार देने लगे।

राजन्, स्वयंवर के उपरान्त राजाओं को जब यह मालूम हो गया कि द्रौपदी का विवाह पाण्डवों के साथ हुआ है, तब वे अपने-अपने देशों को चल दिये। स्वयंवर में लक्ष्य-वेध करके

कृष्णा को अर्जुन ने प्राप्त किया है और उसका विवाह पाँचों पाण्डवों के साथ हुआ है, यह ख़बर पाकर दुर्योधन को बड़ी चिन्ता और दुःख हुआ। द्रौपदी के पति अर्जुन हुए, यह जानकर वह बहुत ही लज्जित तथा उदास हुआ और अश्वत्थामा, शकुनि, कर्ण और कृपाचार्य आदि के साथ अपने नगर को लौटा। निर्लज्ज दुःशासन ने धीमे स्वर में कहा—भाई, अर्जुन यदि ब्राह्मण का वेष धारण न करते तो वे कभी द्रौपदी को न पा सकते। राजन्, उस समय किसी को भी न मालूम हुआ था कि ये अर्जुन हैं। मेरी समझ में भाग्य ही सबसे बढ़कर है, पौरुष से कुछ नहीं होता। पौरुष को धिक्कार है; क्योंकि हम लोग पौरुष का आश्रय लेकर पाण्डवों को चौपट नहीं कर सके।

महाराज ! इस तरह बातचीत करते-कराते दुर्योधन आदि, पुरोचन की असावधानी की निन्दा करते हुए, हस्तिनापुर पहुँच गये। अपना इरादा चौपट होने से वे दुःख के कारण किं-कर्त्तव्य-विमूढ़ से हो गये। अग्नि से बचकर पाण्डव लोग द्रुपद से जा मिले हैं, यह जानकर दुर्योधन आदि बहुत डरे। धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और द्रुपद के अन्यान्य युद्ध-कुशल पुत्रों के पराक्रम को याद करके वे बहुत ही शङ्कित और व्याकुल हुए। किन्तु विदुर को यह सुनकर बड़ा हर्ष हुआ कि पाण्डवों ने द्रौपदी को पाया है और उससे धृतराष्ट्र के पुत्रों को लज्जित होना पड़ा है—उनका दर्प चूर्ण हो गया है। विदुर ने धृतराष्ट्र के पास जाकर आश्चर्य और प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—बड़े भाग्य की बात है कि कौरवों का बोलबाला हुआ। विचित्रवीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र यह सुनकर आनन्द प्रकट करते हुए कह उठे—बड़ी बात ! बड़ी बात !

नेत्र-हीन धृतराष्ट्र ने यह समझा कि द्रौपदी मेरे बड़े बेटे दुर्योधन की दुलहिन हुई है, इसलिए उन्होंने पुत्र-वधू द्रौपदी के लिए तरह-तरह के गहने भेजने की आज्ञा दी और कहा कि द्रौपदी-सहित दुर्योधन को मेरे पास ले आओ। किन्तु पीछे से जब विदुर से मालूम हुआ कि द्रौपदी ने युद्ध-कुशल वीर पाण्डवों को अपना पति स्वीकार किया है, द्रुपद ने उनका ख़ूब आदर-सत्कार किया, और स्वयंवर में उपस्थित अनेक आत्मीय जनों से मिलकर वे आनन्द से द्रुपद के यहाँ हैं; तब धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, पाण्डु के पुत्रों को मैं अपने पुत्रों से भी बढ़कर प्यार करता हूँ। इस समय यह सुनकर मुझे और भी प्रसन्नता हुई कि वे मित्र और महाबली सम्बन्धी को पाकर कुशलपूर्वक जीवित हैं। राज्यलक्ष्मी से भ्रष्ट कौन राजा महाराज द्रुपद का आश्रय पाकर सहज ही अपनी उन्नति नहीं कर सकता ?

विदुर ने कहा—राजन्, मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि जन्म भर आपकी ऐसी ही बुद्धि बनी रहे। हे जनमेजय, विदुर के चले जाने पर दुर्योधन और कर्ण ने धृतराष्ट्र के पास आकर कहा—विदुर के आगे हम अपनी कूटनीति का हाल आपसे नहीं कह सकते। पिताजी, आपने विदुर के आगे शत्रुओं की बढ़ती को अपनी बढ़ती मानकर उसके लिए हर्ष भी प्रकट

किया। पाप-रहित महाराज, आप कर्त्तव्य को छोड़कर यह और ही कुछ कर रहे हैं। हमें नित्य पाण्डवों का बल नष्ट करने की धुन में लगे रहना चाहिए। अभी समय है। हमें अभी



से इसके लिए कोई उपाय सोचने की चेष्टा करनी चाहिए जिसमें आगे चलकर वे पुत्र-बल-बान्धव-सहित हम लोगों को अपने अधीन या नष्ट न कर सकें—हमारे राज्य-वैभव को छीनकर अपने अधिकार में न कर सकें। ३१

---

## दो सौ चार अध्याय

धृतराष्ट्र और दुर्योधन की बातचीत

धृतराष्ट्र ने कहा—तुम दोनों ( दुर्योधन और कर्ण ) जो करना चाहते हो वही मेरी भी इच्छा है किन्तु मैं आकार ( इशारे ) से भी विदुर के आगे यह अपने मन का भाव प्रकट नहीं करना चाहता। विदुर मेरे आकार से भी मेरे अभिप्राय को न भाँप सकें, इसी लिए सदा मैं उनके आगे विशेष रूप से पाण्डवों के गुणों का बखान किया करता हूँ। दुर्योधन, तुम्हारी समझ में इस समय जो कर्त्तव्य हो वह मुझसे कहो। हे कर्ण, तुम भी जो काम समयानुकूल समझो वह बतलाओ।

दुर्योधन ने कहा—महाराज, इस समय कपट-वेषधारी विश्वासी ब्राह्मणों को पाण्डवों के पास भेजकर कुन्ती और माद्री के पुत्रों के बीच परस्पर मनमुटाव करा देना चाहिए; या बहुत

धन-सम्पत्ति देकर राजा द्रुपद, उनके पुत्रों और मन्त्रियों को लोभ के फन्दे में डालकर मिला लेना चाहिए; नहीं तो यह चेष्टा करनी चाहिए कि राजा द्रुपद पाण्डवों को अपने यहाँ से निकाल दें; अथवा ऐसा किया जाय कि हमारे भेजे हुए ब्राह्मण, अलग-अलग मिलकर, हस्तिनापुर में रहने के कल्पित दोषों का वर्णन करके पाण्डवों को पाञ्चाल देश में ही रहने की सलाह दें। ऐसा करने से पाण्डव लोग पाञ्चाल देश में ही रहेंगे। अथवा हमारे भेजे हुए कुछ कार्य-चतुर बुद्धिमान् आदमी पाण्डवों के पास जाकर रहें, अपने ऊपर उनका विश्वास और प्रीति बढ़ावें और फिर पाँचों भाइयों में परस्पर अनबन या झगड़ा पैदा करा दें या पाण्डवों की ओर से द्रौपदी को भड़का दें। कृष्णा के अनेक स्वामी हैं, इसलिए यह काम सहज में हो सकता है। द्रौपदी यदि एक से कम और दूसरे से अधिक प्रेम करेगी तो भाइयों में फूट सहज ही हो सकेगी। अथवा पाण्डवों में से ही हर एक को यह कहकर भड़का दें कि द्रौपदी सबसे अधिक प्रेम करती है, केवल तुम्हीं को नहीं चाहती। इस प्रकार द्रौपदी और पाण्डवों के बीच भेद-नीति का प्रयोग करना चाहिए। अथवा उपाय सोचने में और उसके अनुसार कार्य करने में होशियार आदमियों को भेजकर उनके द्वारा गुप्त रूप से किसी तरह
१० धोखा देकर भीमसेन को मरवा डालना चाहिए। भीमसेन ही उन सबमें अधिक बलवान् हैं। भीम के भरोसे पर ही युधिष्ठिर यहाँ रहकर हमको कुछ न समझते थे। शूर भीमसेन का स्वभाव तीखा है। पाण्डवों को एकमात्र उन्हीं का सहारा है। भीम की मृत्यु होने से पाण्डव लोग सहायहीन और निर्बल हो जायँगे। फिर उनमें वैसा उत्साह या तेज न रहेगा। तब वे राज्य पाने की भी चेष्टा न करेंगे। सहायता के लिए भीमसेन जब अर्जुन के पास रहते हैं तब कोई भी अर्जुन को परास्त नहीं कर सकता। जो भीमसेन न हों तो अर्जुन हमारे कर्ण के चतुर्थांश भर भी नहीं हैं। इसलिए भीमसेन के मर जाने पर पाण्डव लोग अपने को दुर्बल और हमको सबल समझकर राज्य पाने का उपाय न करेंगे। उस दशा में वे यदि यहाँ आवेंगे और हमारे अधीन होकर रहेंगे तो हम कूटनीतिशास्त्र के अनुसार उनको तरह-तरह से सतावेंगे। अथवा हर एक पाण्डव के पास परमसुन्दरी स्त्रियाँ भेजनी चाहिएँ। वे जाकर अपने रूप और हाव-भाव से पाण्डवों के मन को अपने ऊपर आसक्त करने की तदबीर करेंगी। इस प्रकार कृष्णा को पाण्डवों से विमुख कर देना और चिढ़ा देना भी हमारे लिए अच्छा होगा। अथवा पाण्डवों को यहीं ले आने के लिए कर्ण को भेजना चाहिए। वे जब यहाँ आ जायँगे तब विश्वासी आदमियों के द्वारा पहले की तरह किसी न किसी उपाय से उनको मरवा डालना होगा।

पिताजी, मैंने इतने उपाय सोचे हैं। इनमें से जो निर्दोष ( जिससे आपकी निन्दा न हो ) और सुगम समझ पड़े वही उपाय आप कीजिए। देर न कीजिए, समय निकलता जा रहा है। जब तक पाण्डवों का द्रुपद को और द्रुपद का पाण्डवों को अच्छी तरह विश्वास नहीं

हो जाता तभी तक हम पाण्डवों का नाश कर सकते हैं। उसके बाद पाण्डवों का निग्रह न किया जा सकेगा। तात, मेरी समझ में तो यही आता है। मैं समझता हूँ, इसी तरह पाण्डवों का निग्रह हो सकेगा। आप विचारकर देख लीजिए कि यह मेरी सलाह अच्छी है या बुरी। क्यों कर्ण, तुम क्या समझते हो ? मेरी यह सलाह अच्छी है या बुरी ? २०

---

## दो सौ पाँच अध्याय

कर्ण की सम्मति। धृतराष्ट्र का कर्ण की सलाह की प्रशंसा करना

कर्ण ने कहा—दुर्योधन, तुम्हारी यह सलाह मुझे भली नहीं जान पड़ती। हे कुरुकुल-श्रेष्ठ, इस समय ऐसे कुटिल उपायों से पाण्डवों का निग्रह नहीं किया जा सकता। हे वीर, तुम पहले ही इस तरह के अनेक तुच्छ और गुप्त उपायों से काम ले चुके हो; किन्तु तुम्हारा कोई उपाय कारगर नहीं हुआ। राजन् ! जब वे बालक, सहाय-हीन और तुम्हारे समीप ही थे तभी तुम उनका कुछ अनिष्ट नहीं कर सके। इस समय तो उनके अनेक सहायक हैं, वे खुद सयाने और समर्थ हो गये हैं और तुमसे दूर भी हैं। इससे मेरी समझ में अब ऐसे उपायों का उपयोग करने से उनका निग्रह नहीं हो सकता। तुम किसी तरह उन्हें लोभ के वश भी नहीं कर सकते; क्योंकि वे पाँचों भाई जितेन्द्रिय हैं और सबको अपना पैतृक राज्य पाने की प्रबल इच्छा है। उनमें आपस में भेद डालना भी सम्भव नहीं; क्योंकि जो एक ही स्त्री में अनुरक्त हैं उनमें आपस में भेद-भाव नहीं हो सकता। किसी को भेजकर तुम पाण्डवों की ओर से कृष्णा के मन में खीझ नहीं पैदा कर सकते—द्रौपदी उनसे विमुख नहीं हो सकती; क्योंकि पाण्डव जब बड़ी ही बुरी हालत में थे तब द्रौपदी ने उन्हें स्वीकार किया है। फिर अब तो वे राजाओं के ऐसे कपड़े और गहने पहनकर आनन्द से रहते हैं। स्त्रियों में स्वाभाविक चाह यह होती है कि वे अनेक पुरुषों की इच्छा कर सकती हैं, सो द्रौपदी को यह भी प्राप्त है। इस-लिए उसको फोड़ने का यह मौका भी तुम्हारे हाथ नहीं लग सकता। उधर राजा द्रुपद बड़े ही धर्मात्मा हैं। उन्हें धन प्यारा नहीं। सारे राज्य के दे डालने का प्रलोभन दिखाये जाने पर भी वे पाण्डवों को न छोड़ेंगे। द्रुपद के गुणी पुत्र भी पाण्डवों को बहुत चाहते हैं। इसलिए मेरी समझ में भेदनीति से या गुप्त उपायों से पाण्डवों का निग्रह या नाश सर्वथा असम्भव है। १०

हे नरश्रेष्ठ, इस समय हम एक ही उपाय कर सकते हैं। वह यह कि पाण्डवों की जड़ जमने के पहले ही तुम उन पर चढ़ाई कर दो। मैं चाहता हूँ, तुम मेरी इस सलाह को पसन्द करो। अभी द्रुपद का पक्ष निर्बल और हमारा पक्ष प्रबल है; इससे अभी तुम युद्ध ठान दो। हे गान्धारी-नन्दन ! पाण्डवों के बान्धव, मित्र और वंश पूर्ण रूप से बढ़ने के पहले ही तुम

युद्ध ठानकर अपना पराक्रम प्रकट करो। राजा द्रुपद अपने पराक्रमी पुत्रों के साथ युद्ध की तैयारी न करने पावें; तुम पहले ही पाण्डवों पर चढ़ाई कर दो। यादवों की सेना लेकर पाण्डवों को राज दिलाने के लिए कृष्ण द्रुपद के यहाँ न आने पावें; पहले ही तुम अपना पराक्रम प्रकट करो। पाण्डवों के लिए कृष्णचन्द्र धन-सम्पत्ति, विविध भोग और सारा राज्य भी छोड़ सकते हैं। महाराज, राजा भरत ने पराक्रम से ही पृथ्वीमण्डल का साम्राज्य प्राप्त किया था। इन्द्र ने पराक्रम से ही त्रिलोकी का आधिपत्य पाया है। लोग क्षत्रिय के पराक्रम की ही प्रशंसा करते हैं। अपने पराक्रम को प्रकट करना ही क्षत्रियों का धर्म है। आओ, हम सब चतुरङ्गिणी सेना साथ लेकर द्रुपद के नगर पर चढ़ाई कर दें और द्रुपद को जीतकर पाण्डवों को यहाँ पकड़ लावें। साम, दान या भेद के द्वारा तुम पाण्डवों से पेश नहीं पा सकते। इसलिए
२० प्रकट रूप से पराक्रम करके ही पाण्डवों को परास्त करो। उनको परास्त करके इस पृथ्वी का निष्कण्टक राज्य करो।" राजन्, इसके सिवा कार्य-सिद्धि का दूसरा उपाय मुझे नहीं देख पड़ता।

वैशम्पायन कहते हैं कि कर्ण के ये वचन सुनकर प्रतापी धृतराष्ट्र ने पहले उसकी बड़ी प्रशंसा की और फिर कहा—हे सूत-पुत्र कर्ण, तुम ज्ञानी और अस्त्र-विद्या में निपुण हो। ऐसे विक्रम-उत्साह-पूर्ण वचन तुम्हारे योग्य ही हैं। किन्तु मेरी यह इच्छा है कि तुम और दुर्योधन दोनों भीष्म, द्रोण और विदुर के साथ फिर सलाह करके ऐसा निश्चय करो जिससे हम लोगों को सुख और अभ्युदय प्राप्त हो।

२५ इसके बाद भीष्म आदि मन्त्रियों को बुलाकर इस विषय में महाराज धृतराष्ट्र सलाह करने लगे।

---

## दो सौ छः अध्याय

### भीष्म के वचन और दुर्योधन को उपदेश

भीष्म ने कहा—पाण्डवों के साथ युद्ध या झगड़ा करना मुझे पसन्द नहीं। मेरे लिए धृतराष्ट्र और पाण्डु दोनों ही समान हैं। हे धृतराष्ट्र, मेरे लिए जैसे गान्धारी के बेटे हैं वैसे ही कुन्ती के भी पुत्र हैं। मैं दोनों को एक सा प्यार करता हूँ। इसलिए जैसे पाण्डवों की रक्षा करना मेरा धर्म है वैसे तुम्हारा भी है। हे धृतराष्ट्र! इस कारण मुझे, तुम्हें, दुर्योधन और अन्यान्य कौरवों को पाण्डवों की रक्षा करनी चाहिए। ऐसी दशा में पाण्डवों से वैर या युद्ध करने का अनुमोदन मैं नहीं कर सकता। मेरी राय यही है कि वीर पाण्डवों से मेल करके तुम आधा राज्य उनको बाँट दो। इस राज्य में उनके कुरु-श्रेष्ठ पिता और पितामह का भी हिस्सा है।

धृतराष्ट्र से यों कहकर भीष्मजी दुर्योधन से कहने लगे—बेटा, दुर्योधन, तुम जैसे इस राज्य को अपने बाप-दादे का समझते हो वैसे ही पाण्डव भी समझते हैं। यदि यह राज्य

पाण्डव नहीं पा सकते तो तुम या और कोई भरत-वंश का पुरुष ही कैसे पा सकता है? अधर्म से यह राज्य तुमने पाया है; किन्तु तुमसे पहले ही इस पर उनका अधिकार है। मेरी समझ में यही आता है कि प्रेम के साथ नर्मी से आधा राज्य पाण्डवों को बाँट दो। हे नर-श्रेष्ठ, इसी में सबका भला है। यदि ऐसा न करोगे तो हम लोगों का भला न होगा। सदा के लिए संसार में तुम्हारी अकीर्त्ति फैल जायगी। तुमको सदा कीर्त्ति कमाने का ही उद्योग करना चाहिए। कीर्त्ति ही परम बल है। लोग कहते हैं कि बदनाम आदमी का जीना व्यर्थ हो जाता है। कौरव, जब तक मनुष्य की कीर्त्ति रहती है तब तक वह मर जाने पर भी जीता रहता है; किन्तु हे गान्धारी-नन्दन, जिसकी अकीर्त्ति फैल जाती है वह जीवित रहने पर भी मरे के बराबर है। इसलिए तुम कुरुवंश के योग्य धर्म का पालन करो—पूर्व-पुरुषों के और अपने योग्य काम करो। यह हमारे बड़े सौभाग्य की बात है कि कुन्तीसहित पाण्डुपुत्र अभी जीवित हैं। बड़ी बात है कि दुष्ट पुरोचन की करतूत व्यर्थ हुई और वह आप मर गया। जब से मैंने सुना था कि पाण्डव अपनी मातासहित अग्निदाह में जलकर मर गये तब से शोक के मारे मेरी बुद्धि भ्रष्ट सी हो गई थी। पुत्रों सहित कुन्ती के मरने का हाल सुनकर लोगों ने पुरोचन को वैसा दोष नहीं दिया; उस काम के लिए लोग तुम्हीं को दोषी मानते थे। इस समय पाण्डवों-सहित कुन्ती के जीवित रहने की ख़बर से तुम्हारी यह अकीर्त्ति मिट गई। इसलिए तुम उनके जीवित रहने पर आनन्द प्रकट करो। हे कुरु-नन्दन, पाण्डवों के जीवित रहने पर स्वयं इन्द्र भी उनके पैतृक राज्य को उनसे छीन नहीं सकते। वे परस्पर एक-हृदय और हिले मिले हुए हैं। वे सब धर्मनिरत हैं। उनका भी इस राज्य में समान भाग है। वे अधर्म-पूर्वक इस राज्य से निकाले गये हैं। उन्हें इस राज्य में भाग अवश्य मिलना चाहिए। दुर्योधन! यदि तुम धर्म का पालन, मेरा प्रिय और अपने वंश का भला किया चाहते हो तो पाण्डवों को आधा राज्य दे दो।



# दो सौ सात अध्याय

द्रोणाचार्य की सलाह और कर्ण के साथ उनका विवाद

इसके बाद द्रोणाचार्य ने कहा—हे धृतराष्ट्र, मैंने विद्वानों के मुँह से सुना है कि हित-चिन्तक मन्त्री यदि सलाह के लिए बुलाये जायँ तो उनको धर्म, अर्थ और यश बढ़ानेवाली सलाह देनी चाहिए। महाराज, भीष्म ने जो सलाह दी है वह मेरे मत के अनुकूल है। सनातन धर्म के अनुसार कहना पड़ता है कि कुन्ती के पुत्रों को इस राज्य में हिस्सा देना चाहिए। पाण्डवों को लाने के लिए किसी प्रियवादी पुरुष को द्रुपद के यहाँ भेजो। पाण्डवों की प्रसन्नता के लिए, उसके हाथों, बहुत से रत्न आदि भेजो। वह पाण्डवों के लिए और द्रौपदी के लिए तरह-तरह के बहुमूल्य उपहार ले जाकर बारम्बार कहे—"महाराज द्रुपद, आपके और आपके प्रतापी पुत्र धृष्टद्युम्न के साथ सम्बन्ध होने के कारण राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन को बड़ी खुशी हुई। वे इस बात में अपना परम अभ्युदय समझते हैं। आपके साथ वैवाहिक सम्बन्ध होना उनके लिए सर्वथा योग्य और आनन्द का विषय है।" राजन्, इसके बाद वह पुरुष कुन्ती और माद्री के पुत्रों को दिलासा दे। द्रौपदी के लिए तरह-तरह के जड़ाऊ सोने के गहने भेजने की आज्ञा दीजिए। आपकी आज्ञा के अनुसार आपके भेजे हुए लोग कपड़े और गहने ले जाकर द्रुपद के पुत्रों को, कुन्ती को और पाण्डवों को दें। इस प्रकार द्रुपद को प्रसन्न और शान्त कर चुकने पर आपके भेजे हुए लोग पाण्डवों को यहाँ लाने का प्रस्ताव उनके आगे करें। द्रुपद जब अनुमोदन करें तब दुःशासन और विकर्ण, सैन्य-सामन्त आदि साथ लेकर, पाण्डवों को लाने
१० के लिए वहाँ जायँ। पाण्डव वहाँ से आकर अपने पैतृक राजसिंहासन पर बैठें। आप उनका आदर करते रहें। सारी प्रजा की यही इच्छा है कि पाण्डव लोग पैतृक राज्य प्राप्त करें। महाराज धृतराष्ट्र, पाण्डु के पुत्र आपके भी पुत्र हैं। इसलिए भीष्म की सम्मति का अनुमोदन करता हुआ मैं भी आपको यही सलाह देता हूँ कि पाण्डवों के साथ ऐसा ही बर्ताव करने में आपके वंश की भलाई होगी।

द्रोण के वचन सुनकर कर्ण ने कहा—राजन्, आपसे धन और मान पानेवाले और सब कामों में अन्तरङ्ग पुरुष ही यदि आपकी भलाई न सोचें तो इससे बढ़कर और क्या आश्चर्य हो सकता है? कोई व्यक्ति यदि अपने हृदय के भाव को छिपाकर बुरे इरादे से अ-मङ्गल को मङ्गल बतावे और वैसा ही करने की सलाह दे तो सज्जनों का कहना यही है कि समझदार पुरुष को वह कभी न करना चाहिए। स्वार्थ-सम्बन्धी कष्ट के अवसर पर मित्र-नामधारियों से कल्याण या अ-कल्याण की आशा न करनी चाहिए। सुख और दुःख का मिलना तो भाग्य के अधीन है। देखिए, समझदार या नासमझ, बूढ़ा या बालक, सहायवान् या निस्सहाय, सभी

सदा सर्वत्र भाग्यानुसार सुख और दुःख पाते हैं। सुना है, पहले राजगृह नगर में एक मगध देश के नरेश थे। उनका नाम अम्बुवीच था। वे राज्य का कुछ भी काम न कर सकते थे; [ पड़े-पड़े ख़र्राटे लिया करते थे। ] उनका सब काम मन्त्री के हाथ में था। उस मन्त्री का नाम महाकर्णि था। वही मन्त्री राजा के सर्वस्व का स्वामी बन बैठा। कुछ दिनों में अपने को प्रबल समझकर वह खुल्लमखुल्ला राजा का अनादर करने लगा। मूढ़ राजा के धन-रत्न और स्त्रियों पर भी अपना अधिकार करके वह आप ही ऐश्वर्य भोगने लगा। इन सब चीज़ों को २०
पाकर उस लोभी का लोभ और भी बढ़ गया। तब वह राजा से राज्य भी छीन लेने की चेष्टा करने लगा किन्तु राजा के यों निकम्मे और प्रभाव-हीन होने पर भी, अनेक चेष्टाएँ करके भी, वह दुष्ट मन्त्री अपने विचार में कृतकार्य न हो सका। इस घटना को देखकर इसके सिवा और क्या कहा जा सकता है कि वह राज्य उस राजा को ही बदा था, मन्त्री को नहीं। राजन्! यदि विधाता ने आपके भाग्य में राज्य का भोग लिख रक्खा है तो, सारा संसार ही क्यों न शत्रु बन जाय, वह आपके हाथ से नहीं जा सकता। और, यदि राज्य करना भाग्य में नहीं बदा है तो कोटि यत्न करने पर भी आप राज्य को अपने अधिकार में नहीं रख सकते। इस प्रकार हे निपुण, आप मन्त्रियों की सलाह के अच्छे-बुरे होने का निर्णय कीजिए। कौन दुष्ट है और कौन हित की बात कहता है, यह भी आपको जान लेना चाहिए।

कर्ण के ये वाक्य सुनकर द्रोणाचार्य ने कहा—दुष्ट! मैं समझ गया, तेरा हृदय दूषित भाव से कलुषित है। तू पाण्डवों का अनिष्ट करने के लिए ही इस प्रकार हमको दोषी बनाने की चेष्टा कर रहा है। किन्तु कर्ण, मैंने तो अपनी समझ में कौरववंश की रक्षा और हित के लिए ही ऐसी सलाह दी है। यदि तू हमारी सलाह को अनिष्टकारिणी समझता है तो जिससे तू राजा और राज्य की भलाई समझता हो वह कह। परन्तु मैं यह कहे रखता हूँ कि मैंने और भीष्म ने जो सलाह दी है उसके विपरीत काम करने से शीघ्र ही कौरववंश का नाश होगा। २८

---

## दो सौ आठ अध्याय

### विदुर की सम्मति

विदुर ने कहा—महाराज धृतराष्ट्र, इष्ट-आत्मीय-बान्धवों का कर्त्तव्य है कि वे बेखटके आपको हित की सलाह दें। किन्तु आप सचमुच सुनना नहीं चाहते; इसी से वे हित के वचन आपके हृदय में स्थान नहीं पाते। कुरुश्रेष्ठ वृद्ध भीष्मजी के वचन प्रिय और हितकारी हैं किन्तु आप उन्हें ग्रहण नहीं करते। इसी तरह द्रोणाचार्य ने भी उत्तम और हित के वचन कहे हैं किन्तु कर्ण उनके उपदेश को हित की बात ही नहीं मानते। राजन्, मैंने खूब सोचकर

देख लिया है। मुझे भीष्म और द्रोण से बढ़कर जानकार और आपका सर्वोत्तम मित्र कोई नहीं देख पड़ता। ये दोनों महापुरुष अवस्था, बुद्धि और शास्त्र-ज्ञान आदि सभी बातों में बड़े हैं। राजेन्द्र! ये आपको, आपके पुत्रों को और पाण्डवों को बराबर स्नेह की दृष्टि से देखते हैं। धर्म और सचाई में ये दशरथ के पुत्र राम या महाराज गय से किसी अंश में कम नहीं। इन्होंने आपको न तो कभी बुरी सलाह दी है और न कठोर वचन कहे हैं। इन्होंने कभी आपके अनिष्ट की चेष्टा भी नहीं की। आपने कभी इन दोनों महापुरुषों का कुछ अपराध भी नहीं किया। फिर ये पुरुष-श्रेष्ठ आपको बुरी सलाह क्यों देंगे? महाराज, इस लोक में ये दोनों पुरुष-श्रेष्ठ विद्वान् और बुद्धिमान् माने जाते हैं। इसलिए ये मन में कपट रखकर आपको बुरी सलाह कभी नहीं दे सकते। हे कुरु-नन्दन, मुझे दृढ़ विश्वास है कि ये दोनों धर्मज्ञ पुरुष कभी
१० एक पक्ष की कोई बात न कहेंगे। मैं निश्चय के साथ कहता हूँ कि ये महापुरुष जो सलाह दे रहे हैं उसी के अनुसार काम करने में आपका भला और अभ्युदय होगा। राजन्, दुर्योधन आदि के समान पाण्डव भी आपके पुत्र ही हैं। जो मन्त्री इस बात को जानकर भी पाण्डवों का कुछ अनिष्ट करने की आपको सलाह देते हैं वे मन्त्री कहलाने के योग्य ही नहीं। कम से कम यह अवश्य कहा जा सकता है कि वे हित की सलाह आपको नहीं दे रहे हैं। इसके सिवा, यदि आप सचमुच ही हृदय में अपने पुत्रों का पक्षपात रखते हों तो भी आपके हृदय के भाव को सबके आगे प्रकट करनेवाले लोग आपके हितचिन्तक नहीं कहे जा सकते। इसी कारण इन दोनों महात्मा पुरुषों ने खुलासा करके कुछ नहीं कहा। भाईजी, ये दोनों महात्मा आपको ठीक सलाह दे रहे हैं; परन्तु आप उसे निश्चित रूप से स्वीकार नहीं करते। इनके इस कहने को आप मिथ्या न समझिए कि पाण्डवों को परास्त करना सर्वथा असम्भव है। आपका भला हो; आप विचारकर देखिए, साक्षात् इन्द्र भी युद्ध में सव्यसाची (दाहने और बायें दोनों हाथों से बाण चला सकनेवाले) अर्जुन को क्या परास्त कर सकते हैं? महाबाहु भीमसेन में दस हज़ार हाथियों के इतना बल है। देवता भी क्या उनको युद्ध में पछाड़ सकते हैं? अश्विनीकुमारों के समान प्रतापी और युद्ध-कुशल नकुल और सहदेव को, जीवित रहने की इच्छा रखनेवाला, कौन पुरुष युद्ध में जीतने की हिम्मत कर सकता है? धैर्य, दया, क्षमा, सत्य, पराक्रम आदि गुण जिनमें स्थिर रूप से वर्त्तमान हैं उन पाण्डु के बड़े पुत्र युधिष्ठिर को क्या कोई परास्त कर सकता है? बलराम जिनके पक्ष में हैं और श्रीकृष्ण तथा सात्यकि जिनके
२० सहायक हैं वे युद्ध में किसे नहीं परास्त कर सकते? राजा द्रुपद उनके ससुर हैं और प्रतापी धृष्टद्युम्न आदि वीर राजकुमार उनके साले हैं। राजन्, वे अजेय हैं और धर्मानुसार हिस्सेदार हैं। यह जानकर झगड़ा उठ खड़े होने के पहले ही राज्य में हिस्सा देकर पाण्डवों के साथ उचित बर्ताव कीजिए। पुरोचन की करतूत से आपका अयश जड़ पकड़ रहा है। पाण्डवों

पर कृपा करके आप उस कलङ्क-कालिमा को झटपट धो डालिए। पाण्डवों पर कृपा करने से हम सबका और वंश भर का भला होगा; जीवन की रक्षा होगी। इससे आपका क्षत्रिय-तेज और बल भी बढ़ेगा। द्रुपद एक प्रधान राजा हैं। अब से पहले हमारे साथ उनका वैर भी हो चुका है। उनसे मेल कर लेने से संसार में हमारा पक्ष सबल हो जायगा। राजन्, यादव लोग भी बड़े बली और असङ्ख्य हैं। पाण्डवों से मेल कर लेने से वे भी हमारे अनुकूल हो जायँगे। जिस पक्ष में श्रीकृष्ण रहेंगे उधर ही वे भी होंगे और श्रीकृष्ण जिस पक्ष में होंगे उसी पक्ष की विजय होगी। यदि दैव का कोप न हो तो कोई भी मनुष्य मेल से हो सकनेवाले काम को लड़ाई से सिद्ध करना न चाहेगा। कुन्ती के पुत्र जीवित हैं, यह ख़बर पाकर सब प्रजाजन उन्हें देखने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं। राजन्, आप उनका प्रिय कीजिए। दुर्योधन, कर्ण और शकुनि आदि सब अधर्मनिष्ठ, कच्ची बुद्धि के और बालक हैं, इसलिए आप इनके कहे के अनुसार काम न कीजिएगा। राजन्; यह मैं आपसे पहले कह चुका हूँ और अब फिर कहता हूँ कि जो आप हित की बात न मानेंगे तो अकेले दुर्योधन के दोष से आपके सब पुत्रों का, वंश का, क्षत्रियों का और प्रजा का नाश हो जायगा। ३०

---

## दो सौ नव अध्याय

धृतराष्ट्र का पाण्डवों के लाने के लिए द्रुपद के यहाँ विदुर को भेजना और विदुर का वहाँ जाना

धृतराष्ट्र ने कहा—विदुर, महाराज शान्तनु के पुत्र भीष्म पितामह विद्वान् हैं और द्रोणाचार्य भी ऐश्वर्यशाली ऋषि हैं। तुम भी मेरे हितकारी हो। तुम लोग सच कह रहे हो। पाण्डव जैसे पाण्डु के बेटे हैं वैसे ही धर्मानुसार वे मेरे भी हैं। मेरे पुत्र जैसे इस राज्य के अधिकारी हैं वैसे ही वे भी हैं। इसमें सन्देह नहीं। हे विदुर! तुम जाओ, और विशेष सत्कार के साथ पाण्डवों को, उनकी माता कुन्ती को और धर्मपत्नी देवी द्रौपदी को यहाँ ले आओ। यह बड़े सौभाग्य की बात है कि पाण्डव कुशल से जीते-जागते इस पृथ्वी पर मौजूद हैं। कुन्ती का जीवित रहना भी कम ख़ुशी की बात नहीं। इसे भी मैं अपना भाग्य ही समझता हूँ कि पाण्डवों को स्त्री-रत्न कृष्णा प्राप्त हुई है। बड़े आनन्द और भाग्य की बात है कि पाण्डवों के जोते बच जाने से हमारे कुल की वृद्धि हुई और दुष्ट पुरोचन का बुरा विचार सफल नहीं हुआ। पाण्डवों के वियोग का महादुःख जाता रहा, यह मेरा परम सौभाग्य है।

वैशम्पायन कहते हैं—जनमेजय, अब धृतराष्ट्र की आज्ञा से महात्मा विदुर रथ पर चढ़कर पाण्डवों के पास राजा द्रुपद की राजधानी में गये। सब शास्त्रों के ज्ञाता विदुर द्रौपदी के लिए,

द्रुपद के लिए और पाण्डवों के लिए तरह-तरह के रत्न और श्रेष्ठ उपहार लेकर पाञ्चाल-राजधानी में पहुँचे। वहाँ सबसे पहले वे द्रुपद से मिले और उनसे हाथ मिलाया। राजा द्रुपद ने भी विधिपूर्वक विदुर का सत्कार किया। दोनों ने परस्पर कुशल-प्रश्न किया। विदुर ने वहाँ श्रीकृष्ण



को और पाण्डवों को भी देखा। आनन्द के साथ उनको गले लगाकर विदुर ने कुशल-समाचार
१० पूछे। उन्होंने भी, जिसे जैसा उचित था उस तरह, विदुर का पूजन और सत्कार किया। इसके बाद विदुर ने धृतराष्ट्र की ओर से अच्छी तरह बार-बार पाण्डवों के कुशल-समाचार पूछे। फिर कौरवों ने जो जिसे देने को दिया था उसी के अनुसार बुद्धिमान् विदुर ने पाण्डव, कुन्ती, द्रुपद, द्रुपद के पुत्र और द्रौपदी को अनेक उपहार और रत्न अर्पण किये। इसके बाद नम्र भाव से महात्मा विदुर ने, श्रीकृष्ण और पाण्डवों के आगे ही, विनीत द्रुपद से कहा—राजन्, आप अपने मन्त्री और पुत्रों के साथ एकाग्र होकर जो मैं कहता हूँ उसे सुनिए। अपने पुत्र और मन्त्रियों-सहित राजा धृतराष्ट्र ने आपके कुशल-समाचार पूछे हैं। महाराज, आपके साथ विवाह-सम्बन्ध होने से सबको बड़ी प्रसन्नता हुई है। बड़े समझदार वृद्ध भीष्म पितामह और अन्यान्य प्रधान कौरवों ने आपके कुशल-समाचार पूछे हैं। भरद्वाज के पुत्र महात्मा, आपके मित्र, द्रोणाचार्य ने भी आलिङ्गनपूर्वक आपके कुशल-समाचार पूछे हैं। हे पाञ्चाल-राज, आपके साथ सम्बन्ध हो
२० जाने से राजा धृतराष्ट्र और अन्य कौरव अपने को कृतार्थ समझ रहे हैं। यज्ञसेन, आपके सम्बन्ध से उनको जैसी खुशी हुई है वैसी राज्य के लाभ से भी नहीं हो सकती। यह सब जानकर आप पाण्डवों को हस्तिनापुर भेजने की तैयारी कीजिए। कौरव लोग पाण्डवों को

देखने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित हो रहे हैं। ये पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डव बहुत दिनों से अपने देश को छोड़े हुए हैं। इससे जान पड़ता है, कुन्ती सहित ये भी अपने देश को देखने के लिए उत्कण्ठित हैं। हमारे नगर और राष्ट्र में प्रधान-प्रधान कुरु-कुल की स्त्रियाँ भी द्रौपदी को देखने के लिए उत्सुक होकर उनके पहुँचने की राह देख रही हैं। इसलिए देर न करके पत्नी सहित पाण्डवों को बिदा कर दीजिए। महाराज, आप ज्योंही महात्मा पाण्डवों को जाने की आज्ञा देंगे त्योंही मैं महाराज धृतराष्ट्र के पास दूत के मुँह से यह ख़बर भेज दूँगा कि कुन्ती और कृष्णा को साथ लेकर पाण्डव रवाना हो गये। २६

## दो सौ दस अध्याय

पाण्डवों का अपने देश को जाना और राज्य-लाभ

द्रुपद ने कहा—विदुरजी, आपने जो कुछ कहा वह ठीक है। यह सम्बन्ध होने से मुझे भी कम हर्ष नहीं हुआ। इन महात्मा पुरुषों का अपने राज्य में जाना उचित और आवश्यक होने पर भी मैं कैसे अपने मुँह से यह बात इनसे कह सकता हूँ? कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर, वीर भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव की यदि सम्मति हो, और कृष्ण-बलराम का भी मत हो तो पाण्डव जा सकते हैं; क्योंकि कृष्ण और बलराम दोनों भाई इनके प्रिय, इष्ट और सदा हितचिन्तक हैं।

युधिष्ठिर ने कहा—राजन्, हम पाँचों भाई आपके अधीन हैं। आप प्रसन्नतापूर्वक हमको जो आज्ञा देंगे उसका पालन हम सहर्ष करेंगे।



वैशम्पायन कहते हैं कि जनमेजय, इसके बाद कृष्ण ने कहा—मेरी सलाह है कि इन्हें वहाँ जाना चाहिए; या फिर सब धर्मों के ज्ञाता राजा द्रुपद की जो सलाह हो वह करना चाहिए।

द्रुपद ने कहा—वीर महाबाहु पुरुषोत्तम यादव जो उचित समझेंगे उसमें मेरी सम्मति होगी ही। इस समय महाबाहु पाण्डव जैसे मेरे मान्य स्नेहपात्र हैं वैसे ही वासुदेव के भी स्नेही और आत्मीय हैं। पुरुषसिंह केशव जैसी पाण्डवों की मङ्गलकामना करते हैं वैसी युधिष्ठिर भी नहीं कर सकते।

महाराज, अब द्रुपद से आज्ञा लेकर—उनसे बिदा होकर—पाण्डव, कृष्ण, विदुर, कुन्ती और द्रौपदी सब वारणावत नगर को चल दिये। राह में सैर करते हुए सब लोग सुखपूर्वक चले। ११

वीर पाण्डव आ रहे हैं, यह ख़बर पाकर उनका स्वागत करने के लिए धृतराष्ट्र ने महा-धनुर्धर विकर्ण, चित्रसेन और अन्यान्य कौरवों को भेजा। उनके साथ द्रोणाचार्य और कृपाचार्य भी गये। [ पाण्डवों से नगर के पास, ये सब लोग मिले। ] इन लोगों से घिरे हुए पाण्डवों ने धीरे-धीरे हस्तिनापुर में प्रवेश किया। कौतूहल के मारे नगर-निवासी मानो फटे पड़ते थे। पाण्डवों को देखकर प्रजा का शोक और दुःख दूर हो गया। उन्होंने सुना कि हितैषी प्रजागण ऐसे हृदयहारी वचन आपस में कह रहे हैं कि ये वही नरश्रेष्ठ धर्मात्मा पुरुष ( युधिष्ठिर ) फिर आ रहे हैं जो हमारी रक्षा ऐसे किया करते थे जैसे पुत्र की रक्षा का ध्यान पिता रखता है। जान पड़ता है, मानो आज महाराज पाण्डु हमारा प्रिय करने के लिए वन से लौटे आ रहे हैं। आज कुन्ती के पुत्र फिर नगर में आ पहुँचे, इससे बढ़कर इष्ट-सिद्धि और क्या हो सकती है ? यदि हमने दान, होम, तप आदि पुण्यकर्म किये हैं तो उसी पुण्य के फल
२० से पाण्डव इस नगरी में जीवन भर रहें।

इसके बाद पाण्डवों ने धृतराष्ट्र, महात्मा भीष्म और अन्यान्य पूजनीय व्यक्तियों के चरणों में प्रणाम किया। फिर सारे नगर के लोगों से मिलकर उनके कुशल-समाचार पूछे। अब पाण्डव लोग धृतराष्ट्र की आज्ञा से अपने महलों में जाकर रहने लगे। कृष्णा सहित कुछ समय तक विश्राम कर चुकने पर एक दिन भीष्म और धृतराष्ट्र ने उनको अपने पास बुलाया। बुलाकर धृतराष्ट्र ने कहा—युधिष्ठिर, मैं जो कहता हूँ सो सुनो; तुम्हारे भाई भी सुनें। दुर्योधन आदि तुम्हारे भाइयों में और तुममें फिर किसी तरह का झगड़ा और मनमुटाव न हो, इसलिए तुम खाण्डवप्रस्थ को अपनी राजधानी बनाकर वहाँ रहो। आधा राज्य लेकर तुम वहाँ राज्य करो। पार्थ की संरक्षा में वहाँ रहते समय तुम्हें कोई कष्ट न दे सकेगा जैसे कि इन्द्र की प्रमुखता में देवताओं से कोई छेड़छाड़ नहीं कर सकता।



अब कृष्णा सहित पाण्डवों ने खाण्डवप्रस्थ में जाकर उसी को बसाया। व्यास आदि ब्राह्मण ने शास्त्र-विधि के अनुसार शान्तिपाठ-पूर्वक मापकर राजभवन की नींव डाली। थोड़े ही समय में वह नगर स्वर्ग के समान सजकर शोभित हो गया। युधिष्ठिर ने राजधानी का नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा। समुद्र के समान गहरी खाई और आकाश को छू रही, चन्द्रमा के समान

सफ़ेद, दूर से सफ़ेद बादल के समान जान पड़नेवाली चहारदीवारी से घिरी हुई वह नगरी नागों से भोगवती पुरी के समान शोभा को प्राप्त हुई। दो पङ्खवाले गरुड़ पक्षी की तरह जान पड़ ३१



रहे नगर के फाटक और ऊँचे-ऊँचे महल दूर से देख पड़ते थे। मन्दराचल और मेघों के समान गोपुर (फाटक के ऊपर की इमारत) उस नगर को छिपाये हुए थे। जगह-जगह पर अस्त्र-शिक्षा के अखाड़े बने हुए थे। दो जीभवाले साँपों के समान लपलपा रही बर्छियाँ लिये हुए योद्धा उसकी रक्षा के लिए तैनात थे। पैने अंकुश, शतघ्नी (तोप) और अन्यान्य युद्ध-यन्त्र जहाँ-तहाँ रक्खे हुए उसे किसी प्रतापी वीर राजा का निवासस्थान बता रहे थे। सड़कें सब चौड़ी, सीधी और साफ़-सुथरी थीं। वहाँ किसी प्रकार की दैवी बाधा नहीं देख पड़ती थी।

महाराज, अत्यन्त उज्ज्वल तरह-तरह के उत्तम भवनों से परिपूर्ण यह नगरी देवपुरी के समान शोभित हुई। उस इन्द्रप्रस्थ नगर में मनोहर मङ्गलमय स्थान पर पाण्डवों के महल अनन्त धन-रत्न से भरे-पुरे धनपति कुबेर के भवनों के समान ऐश्वर्य-सम्पन्न होकर बिजली की माला से युक्त मेघमण्डली के समान देख पड़ते थे।

नगर-निर्माण हो चुकने और पाण्डवों के रहने लगने पर संस्कृत, प्राकृत आदि तरह-तरह की भाषाओं को जाननेवाले अनेक देशों के आदमी और समग्र वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण आकर उस नगरी में बसने लगे। सैकड़ों सेठ-साहूकार-बनिये धन कमाने की लालसा से दूर-दूर से वहाँ आने लगे। तरह-तरह के श्रेष्ठ कारीगर आकर बसने लगे। चारों ओर अनेक मनोहर बाग़ लग गये। उन बागों में आम, आम्रातक, कदम्ब, अशोक, चम्पा, पुन्नाग, लकुच, कटहल, ४०
शाल, ताल, तमाल, मौलसिरी, मस्त कर देनेवाले फूलोंवाली केतकी, फलों से लदे हुए आमले, लोध्र, उत्तम फूलोंवाले अङ्कोल, जामुन, पाटल, कनैर, पारिजात (मन्दार), माधवी लता और सदा फूलने-फलनेवाले अन्य वृक्ष लगे हुए थे। उन बागों में वृक्षों की डालियों पर मस्त मोर, मद-मत्त कोकिला, और अन्य अनेक प्रकार के पक्षी बोलते तथा कलोलें करते थे। तरह-तरह के शीशमहल, लताकुञ्ज, चित्रशाला, नक़ली पहाड़, स्वच्छ जल से भरी (नहरें,) बावलियाँ, कारण्डव-

चक्रवाक आदि पक्षियों से परिपूर्ण और मैदानों में भरी हुई झीलें, सफ़ेद-लाल-नीले सुगन्धित कमलों से शोभित सरोवर उस नगर की शोभा को और भी बढ़ा रहे थे। राजन्, उस उत्तम जनमण्डली से पूर्ण प्रशस्त प्रदेश में रहने से पाण्डवों को दिन-दिन अधिक प्रसन्नता होने लगी। राजा धृतराष्ट्र और महात्मा भीष्म से धर्मानुसार बँटवारा पाकर, इन्द्रप्रस्थ बसाकर, पाण्डव दिन-
५० दिन उन्नति करने लगे। उन इन्द्रतुल्य पाँच वीरों से वह श्रेष्ठ नगरी नागराजों से रक्षित भोगवती पुरी के समान समृद्धिशालिनी हुई। महाराज, पाण्डवों को इस तरह राज्य दिलाकर उनसे
५२ विदा होकर कृष्ण और बलराम द्वारका पुरी को चल दिये।

---

## दो-सौ ग्यारह अध्याय

इन्द्रप्रस्थ में नारद का आना। सुन्द और उपसुन्द की कथा

जनमेजय ने कहा—हे तपोधन, मेरे पितामह पाण्डवों ने इस प्रकार इन्द्रप्रस्थ का राज्य पाकर फिर क्या किया? उनकी धर्मपत्नी द्रौपदी उनके साथ कैसा व्यवहार करती थीं? महाभाग्यवान् नरेन्द्र पाण्डव एक भार्या में आसक्त होने पर भी कैसे मनमुटाव और विरोध से बचे रहे? मैं विस्तारपूर्वक यह सब सुनना चाहता हूँ। कृष्णा को पाने के उपरान्त वे परस्पर कैसा बर्त्ताव करते रहे, सो आप कृपा करके कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—शत्रुदमन पाण्डव राज्य पाकर धृतराष्ट्र की आज्ञा से इन्द्रप्रस्थ को बसाकर वहाँ द्रौपदी के साथ सुख से विहार करने लगे। महातेजस्वी, सत्यवादी, राजा युधिष्ठिर राज्य पाने के बाद भाइयों की सहायता से धर्म के अनुसार पृथ्वी का पालन करने लगे। युधिष्ठिर के सब भाई शत्रुओं को वश में करके धर्म का पालन करते हुए बड़े आनन्द से वहीं रहने लगे।

एक दिन पुरुषश्रेष्ठ पाण्डव राजाओं के योग्य बहुमूल्य आसनों पर सभा में बैठे राजकाज कर रहे थे, इसी समय घूमते-घामते नारद मुनि वहाँ आ गये। युधिष्ठिर ने उठकर उन्हें बैठने के लिए सुन्दर बहुमूल्य आसन दिया। नारदजी के बैठ जाने पर अपने हाथ से अर्घ्य
१० आदि देकर सत्कार करने के पश्चात् युधिष्ठिर ने उन्हें राज्य के कुशल-समाचार सुनाये। युधिष्ठिर की पूजा को स्वीकार करके देवर्षि नारद बहुत प्रसन्न हुए, फिर उन्होंने आशीर्वाद देकर उनसे बैठ जाने के लिए कहा। ऋषि की आज्ञा से बैठकर युधिष्ठिर ने द्रौपदी के पास नारदजी के आने की ख़बर कहला भेजी। ख़बर पाते ही पवित्र होकर द्रौपदी नारदजी के पास आईं और उनके पैर छूकर हाथ जोड़कर सिर ढके हुए सामने खड़ी हो गईं। धर्मात्मा, सत्यवादी, ऋषिश्रेष्ठ नारदजी ने द्रौपदी को आशीर्वाद देकर जाने की आज्ञा दी।

द्रौपदी के चले जाने पर एकान्त देख युधिष्ठिर आदि पाण्डवों से नारद ने कहा—यशस्विनी पाञ्चाली तुम सबकी एकमात्र धर्मपत्नी है। इस कारण उसके सम्बन्ध में तुम लोग एक नियम

कर लो जिसमें आपस में कुछ झगड़ा न हो। सुनो, पूर्वसमय में त्रिलोक-प्रसिद्ध असुरवंश में उत्पन्न सुन्द और उपसुन्द नाम के दो भाई थे। उनमें परस्पर बड़ा मेल होने के कारण कोई भी



उनका सामना या उन पर हमला न कर सकता था। वे दोनों एक साथ राज्य करते थे; एक घर में रहते, एक ही पलँग पर सोते और एक ही बर्तन में खाते-पीते थे। किन्तु अन्त को एक ही स्त्री तिलोत्तमा में दोनों आसक्त हो गये और उसी के कारण एक दूसरे के प्राणों का शत्रु बन गया। इसलिए हे युधिष्ठिर, तुम नियम स्थापित करके परस्पर के हेलमेल और अनुराग को २० बनाये रखने का उपाय करो जिससे तुम भाइयों में आपस में फूट न पड़ सके।

युधिष्ठिर ने कहा—मुनिवर, सुन्द और उपसुन्द किसके बेटे थे? वे एक दूसरे से बड़ा स्नेह रखने पर भी अन्त को कैसे परस्पर एक दूसरे के शत्रु बन गये? वे जिस तिलोत्तमा नाम की अप्सरा पर रीझे थे वह किसकी बेटी थी? हम यह सब वृत्तान्त विस्तार से सुनना चाहते हैं। २४

---

## दो सौ बारह अध्याय

### सुन्द और उपसुन्द का जन्म, तपस्या और ब्रह्मा से वर-लाभ

नारद ने कहा—युधिष्ठिर, यह पुराना इतिहास मैं पूरा-पूरा कहता हूँ, सुनो। असुर-राज हिरण्यकशिपु के वंश में निकुम्भ नाम का महाबली और प्रतापी दैत्य उत्पन्न हुआ। उसके सुन्द और उपसुन्द नाम के दो बेटे थे। वे दोनों महावीर्य, भीमपराक्रमी, दैत्यों के मुखिया,

भयानक और क्रूर कर्म करनेवाले थे। दोनों के अभिप्राय, काम, उद्देश्य, सुख और दुःख एक ही प्रकार के थे। एक के बिना दूसरा न तो कहीं जाता था और न कुछ खाता-पीता था। वे दोनों परस्पर मधुर भाषण करते थे। दोनों का शील और आचरण एक सा था। वे "एक प्राण दो देह" जान पड़ते थे। दोनों का पराक्रम भी समान रूप से बढ़ने लगा। दोनों के काम भी एक से होते थे।

उन दोनों ने मिलकर त्रैलोक्य को जीतने की इच्छा की। इसके लिए गुरु के उपदेश से विन्ध्याचल पर जाकर वे घोर तप करने लगे। वे भूख और प्यास का कष्ट सहते थे। जटा और बल्कल धारण किये हुए थे। उनके शरीरों पर ढेरों मिट्टी जम गई। वे केवल हवा खाकर रहते थे। अन्त को वे अपने शरीर से मांस काट-काटकर हवन करने लगे। फिर केवल अँगूठों के बल खड़े होकर उन्होंने तप किया। ऊर्ध्वबाहु होकर सूर्य की ओर एकटक निहारते हुए उन्होंने खड़े-खड़े तप किया। बहुत दिनों तक इस प्रकार तप करते रहने से उनके तप के प्रभाव से विन्ध्य पर्वत तक तप उठा। उससे धुआँ निकलने लगा। यह अद्भुत घटना हुई।



उनकी ऐसी कठोर तपस्या देखकर देवता डरे। उनके तप में विघ्न डालने के लिए वे तरह-तरह के उपाय करने लगे। रत्नों का प्रलोभन दिया गया। बारम्बार सुन्दर स्त्रियों को भेजकर उन्हें लुभाने की चेष्टा की गई किन्तु किसी तरह वे तपस्या से नहीं डिगे। इसके बाद देवताओं ने माया-बल का आश्रय लिया। कोई माता, कोई बहन, कोई भार्या या अन्यान्य आत्मीय बन्धुओं का वेश धारण करके भागता हुआ उनके समीप आकर उनका नाम लेकर आर्त्तनाद करने और "बचाओ, बचाओ" कहकर पीछे त्रिशूल हाथ में लिये खेदे आ रहे राक्षस से बचाने के लिए प्रार्थना करने लगा। व्याकुलता के मारे उनके बाल बिखरे हुए और कपड़े तथा गहने स्थानभ्रष्ट हो रहे थे। इतने पर भी उन असुरों ने तपस्या करना नहीं छोड़ा। जब किसी तरह उन दोनों के चित्त में दुःख या क्षोभ नहीं देख पड़ा तब वे स्त्रियाँ, प्राणी और राक्षस आदि सब अदृश्य हो गये।

अन्त को सबके हितचिन्तक, सबके ईश्वर, सबके पितामह ब्रह्मा स्वयं उनके पास आये और उनसे वरदान माँगने के लिए कहने लगे। महाबली, दृढ़ पराक्रमी सुन्द-उपसुन्द ने पितामह को देख विनीत भाव से खड़े होकर हाथ जोड़े और कहा—विभो, यदि आप हमारे तप से प्रसन्न

होकर हमें वर देना चाहते हैं तो हम यही वर माँगते हैं कि हम दोनों मायावी, अस्त्रों के जानकार, बली, कामरूपी और अमर हो जायँ। २०



ब्रह्मा ने कहा—केवल अमर होना छोड़कर तुमने जो कुछ माँगा है वह तुमको प्राप्त होगा। अमर होना देवताओं की विशेषता है। इसके सिवा तुम और सब देव-सुलभ पदार्थ माँग सकते हो। अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए तुमने यह अद्भुत तप किया है, इसलिए मैं तुमको अमर नहीं कर सकता। तुमने त्रिलोक को जीतकर वश करने की इच्छा से यह घोर तप किया है; इस कारण मैं तुम्हारी अमर होने की इच्छा पूरी न करूँगा।

सुन्द और उपसुन्द ने कहा—पितामह, तो फिर यह वर दीजिए कि त्रिलोक में जितने चर और अचर पदार्थ हैं उनमें किसी से भी हमें मृत्यु का डर न हो। यदि हम कभी मर सकें तो परस्पर एक दूसरे के हाथ से ही मरें। पितामह ने कहा—अच्छी बात है, मैं तुमको यही वर देता हूँ। तुम्हारी मृत्यु इसी तरह होगी।



नारद कहते हैं—सुन्द-उपसुन्द को यों वरदान देकर और तपस्या बन्द कारवाके ब्रह्माजी अपने लोक को चले गये। दोनों भाई भी त्रिलोकी में किसी के हाथ से न मर सकने का वर पाकर अपने घर को गये। उनके बन्धु-बान्धव मनोरथ पूरा होने से उन्हें सन्तुष्ट देखकर बहुत प्रसन्न हुए। दोनों भाइयों ने जटाएँ कटाकर केश बनवा डाले और अच्छी तरह नहा-धो करके बहुमूल्य कपड़े और गहने पहने। इसके बाद उन्होंने सर्वकालीन अकाल-कौमुदी-महोत्सव किया। उनके बन्धु-बान्धव भी परम प्रसन्न हुए। भोजन करो, दान दो, आमोद- ३०

प्रमोद करो, गाओ-बजाओ, मदिरा पियो, इत्यादि शब्द प्रत्येक घर में नित्य सुन पड़ने लगे। हर्ष की तालियाँ पिटने का शब्द नगर में गूँज उठा। इस तरह के आमोद-प्रमोद में दैत्यों ने एक
३३ दिन की तरह अनेक वर्ष बिता दिये।

---

## दो सौ तेरह अध्याय

सुन्द और उपसुन्द का दिग्विजय के लिए जाना

नारद कहते हैं—इधर दैत्यपुरी में इस प्रकार महोत्सव का आरम्भ हुआ, उधर त्रिलोकी का राज्य प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाले दोनों भाई सुन्द और उपसुन्द ने आपस में सलाह करके अपनी दैत्यसेना को तैयार होने की आज्ञा दी। उनके आत्मीय, सुहृद् और बड़े-बूढ़े दैत्यों ने उनके इस विचार का अनुमोदन किया। तब यात्रा के पहले दिन यात्रा-सम्बन्धी स्वस्त्ययन-मङ्गल करके दूसरे दिन मघा नक्षत्र में वे दिग्विजय के लिए रवाना हुए। गदा, पट्टिश, शूल, मुद्गर आदि शस्त्र लिये, कवच पहने दैत्यों की बड़ी भारी सेना उनके साथ चली। चारण लोग विजय का बखान करते हुए मङ्गल और स्तुतिपाठ करने लगे। दोनों भाई इस प्रकार बड़े आनन्द से रवाना हुए।



कामचारी और युद्ध में अजेय दोनों भाई पहले आकाशमार्ग होकर देवताओं को जीतने के लिए स्वर्ग में पहुँचे। उनको ब्रह्मा से वरदान मिलने की और उनके आने की ख़बर पाकर

सब देवता ब्रह्मलोक को भाग गये। वे भीम-पराक्रमी दोनों भाई इस प्रकार सहज ही इन्द्र-लोक को जीतकर बड़े प्रसन्न हुए। इसके बाद यक्ष, राक्षस आदि अन्यान्य आकाशचारी लोगों को भी उन्होंने हराया; फिर पाताल-लोक में जाकर उन महारथियों ने नागों को जीता। इसके उपरान्त समुद्रतट के देशों में रहनेवाले म्लेच्छों को भी उन्होंने अपने अधीन कर लिया। इस प्रकार अन्य लोकों को जीतकर वे सारे पृथ्वीमण्डल को अपने अधीन करने की चेष्टा में लग गये। उन्होंने अपने सैनिकों को बुलाकर आज्ञा दी कि देखो, ब्राह्मण और राजर्षि लोग ही हव्य ( देवताओं का आहार ) और कव्य ( पितरों का आहार ) देकर देवगण के तेज, बल और समृद्धि को बढ़ाया करते हैं। अपने इस काम से वे असुरों के शत्रु हैं। इसलिए आओ, हम सब मिलकर, जिस तरह बने, उन सबका नाश करें।

दोनों भाई महासागर के पूर्व-तट पर इस तरह की आज्ञा सब साथियों को देकर क्रूर बुद्धि से पृथ्वी पर चारों ओर फिरने लगे। जो ब्राह्मण स्वयं यज्ञ कर रहे थे या औरों को यज्ञ करा रहे थे उन सबको बलपूर्वक मारते हुए वे प्रबल असुर विचरने लगे। उन दैत्यों के विश्वासी सैनिक ब्राह्मणों के यहाँ अग्निहोत्र के अग्नि को देखते ही उठाकर जल में फेंक देते थे। किसी तपस्वी ने यदि कोप करके कुछ शाप भी दिया तो ब्रह्मा के वरदान के प्रभाव से वह उन दैत्यों का कुछ न कर सका। जब शिला पर मारे हुए बाण की तरह शाप भी बेकार हो गये तब सब ब्राह्मण अपने व्रत-नियमों को छोड़कर इधर-उधर भागने लगे। पृथ्वी पर जितने तपस्वी, सिद्ध, शान्त और जितेन्द्रिय ब्राह्मण ऋषि थे वे, गरुड़ के डर से नागों की तरह, उन दैत्यों के डर से भागने लगे। थोड़े ही समय में संसार मनुष्यों से खाली हो गया। सब आश्रम नष्ट-भ्रष्ट और ऋषियों के टूटे-फूटे कलश-कमण्डलु-स्रुवों से पूर्ण देख पड़ने लगे। प्रलयकाल में इस संसार की जो दशा होती है वही उस समय हो गई।



इस प्रकार जब कोई ऋषि कहीं देखने को भी न रह गया तब दोनों भाई खोज-खोजकर दुर्गम स्थानों में छिपे हुए ऋषियों का नाश करने लगे। कभी मदमत्त हाथी का रूप रखकर, कभी सिंह और बाघ बनकर वे दुर्गम स्थानों में छिपे ऋषियों की हत्या करने लगे। इस प्रकार माया-रूप से ऋषियों का नाश करके वे उस स्थान से अन्तर्द्धान हो जाते थे। क्रूर-प्रकृति निशा-

चर इस तरह ऋषि-मण्डली का नाश करते हुए फिर रहे थे। अब यज्ञ कौन करता? वेद-ध्वनि भी बन्द हो गई। राजाओं और ब्राह्मणों का विध्वंस हो गया। यज्ञ और उत्सव आदि का नाम नहीं रह गया। सब ओर डर के मारे हाहाकार मच गया। ख़रीदना-बेचना आदि बाज़ार का कारोबार बन्द हो गया। सब देव-कार्य, पुण्यकर्म और विवाह आदि संस्कार बन्द हो गये। पितृकार्य बन्द हो जाने से वषट्कार, स्वधा आदि शब्द कहीं न सुन पड़ते थे। खेती के काम और गोरक्षा आदि बन्द हो जाने, नगरों और आश्रमों के उजड़ जाने और सर्वत्र हड्डियों के ढेर लग जाने से यह पृथ्वी बहुत ही भयानक हो उठी। सुन्द और उपसुन्द के इस काम को देखकर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, तारागण और आकाश-स्थित नक्षत्र भी विषाद से मलिन हो उठे।

दोनों दैत्यों ने इस प्रकार क्रूर कर्म से सब दिशाओं को जीतकर, निष्कण्टक होकर,
२७ कुरुक्षेत्र में अपनी सेना का अड्डा बनाया।

---

## दो सौ चौदह अध्याय

तिलोत्तमा की उत्पत्ति। दोनों भाइयों में विरोध पैदा करने के लिए उसका उनके पास जाना

नारद ने कहा—क्रोध को जीतनेवाले, जितेन्द्रिय, जितात्मा देवर्षि, सिद्ध, महर्षि आदि सभी इस भयानक हत्याकाण्ड को देखकर बड़े दुखी हुए। जगत् पर तरस आने के कारण वे सब मिलकर ब्रह्माजी के लोक में पहुँचे। वहाँ जाकर देखा कि सिद्धर्षि और ब्रह्मर्षिगण की मण्डली के बीच में ब्रह्माजी विराजमान हैं। इसी अवसर पर महादेव, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, आदित्य आदि देवता, परमेष्ठी पद को प्राप्त और वैखानस, वालखिल्य, वानप्रस्थ, मरीचिप, अजन्मा, अविमूढ़, तेजोगर्भ आदि विविध तपस्वी ऋषि भी वहाँ आ गये।



सब महर्षियों ने ब्रह्मा के पास जाकर नम्र भाव से सुन्द-उपसुन्द के भयङ्कर क्रूर कामों का वृत्तान्त कह सुनाया। दैत्यों ने जिस तरह प्रजा को चौपट किया और अन्य-अन्य जो निष्ठुर काम किये, सो सब मुनियों ने कह सुनाये। इसके बाद देवताओं ने भी वही बातें

कहीं। सबका कथन सुनकर कर्त्तव्य के बारे में पल भर तक ब्रह्माजी सोचते रहे। इसके उपरान्त उन्होंने दैत्यों के वध का उपाय सोचकर उसी प्रयोजन से विश्वकर्मा को बुलाया। विश्वकर्मा के आने पर ब्रह्मा ने उनको आज्ञा दी कि तुम एक अनुपम सुन्दरी, सभी को लुभा लेने-वाली स्त्री उत्पन्न करो। विश्वकर्मा ने ब्रह्मा की इस आज्ञा को स्वीकार करके उन्हें प्रणाम किया। उसके बाद खूब सोच-विचारकर वे एक त्रिलोकसुन्दरी स्त्री की रचना में लग गये। त्रिलोक में जो कुछ चर और अचर के बीच उत्तम और दर्शनीय पदार्थ हैं उन सबके सौन्दर्य का सारांश लेकर उसके द्वारा विश्वकर्मा ने एक सुन्दरी को बनाया। उसके शरीर में उन्होंने करोड़ों रत्नों का समावेश कर दिया। रत्नमयी देवरूपिणी वह युवती त्रिभुवन-सुन्दरी हुई। विश्वकर्मा ने बड़े यत्न और तत्परता के साथ उसको बनाया। उसके शरीर में तिल भर भी कोई ऐसी बात या जगह न थी जो रूप-हीन हो या जिसमें दर्शक की आँखें गड़ न जायँ। वह सुन्दरी काम-रूपिणी लक्ष्मी की तरह सभी लोगों के मन और दृष्टि को अपनी ओर खींच लेनेवाली हुई। रत्नों का तिल-तिल सौन्दर्य लेकर उसकी रचना हुई, इसी से विधाता ने उसका नाम तिलोत्तमा रख दिया। ब्रह्मा के पास आकर तिलोत्तमा ने हाथ जोड़कर कहा—प्रजापति, मैं किसलिए बनाई गई हूँ? मेरे लिए क्या करने की आज्ञा है?



ब्रह्मा ने कहा—तिलोत्तमा, तुम सुन्द और उपसुन्द के पास जाकर ऐसी चेष्टा करो कि वे तुम्हारे प्रार्थनीय मनोहर रूप को देखकर रीझ जायँ। तुम अपनी रूप-सम्पत्ति और कार्य-कुशलता के द्वारा उन दोनों भाइयों में फूट डालने का उपाय करो।

नारदजी कहते हैं—धर्मराज, 'जो आज्ञा' कहकर तिलोत्तमा ने ब्रह्मा की आज्ञा को स्वीकार किया। फिर ब्रह्मा को प्रणाम करके उसने देवताओं की प्रदक्षिणा की। ब्रह्मा पूर्वमुख बैठे थे। महेश्वर का मुँह दक्षिण की ओर और अन्यान्य देवताओं के मुँह उत्तर ओर थे। ऋषि लोग मण्डलाकार बैठे थे इसलिए उनके मुँह चारों ओर थे। तिलोत्तमा जब देव-मण्डली की प्रदक्षिणा करने लगी तब औरों की कौन कहे, महादेव और पुरन्दर का भी धैर्य जाता रहा। पीठ की ओर जब तिलोत्तमा पहुँची तब उसे देखने के लिए शङ्कर के पीछे की ओर एक कमलदल-सदृश नेत्रों से सुन्दर मुख उत्पन्न हो गया। इसी तरह दाहने-बायें तिलोत्तमा के पहुँचने पर

उस-उस ओर और भी उनके दो मुख उत्पन्न हो गये। पुरन्दर के भी पीछे, आसपास और सामने हज़ारों विशाल अरुण नेत्र हो गये। इस प्रकार पहले महादेव चतुर्मुख और इन्द्र सहस्र-नेत्रधारी हुए हैं। इसी तरह तिलोत्तमा जिधर पहुँचती थी उधर ही सब देवता और ऋषि अपना मुँह कर लेते थे। लोक-पितामह ब्रह्मा के सिवा उस सभा में बैठे हुए सभी महात्मा स्त्री
३० की ओर अनुराग भरी दृष्टि से बार-बार देखने लगे।

अब तिलोत्तमा अपना काम करने के लिए चल दी। उसके रूप की शोभा देखकर देवताओं और ऋषियों ने समझ लिया कि अब कार्य सिद्ध हो गया। तिलोत्तमा के चले जाने
३२ पर लोक-रक्षक ब्रह्माजी ने देवताओं और ऋषियों को भी जाने की आज्ञा दी।

---

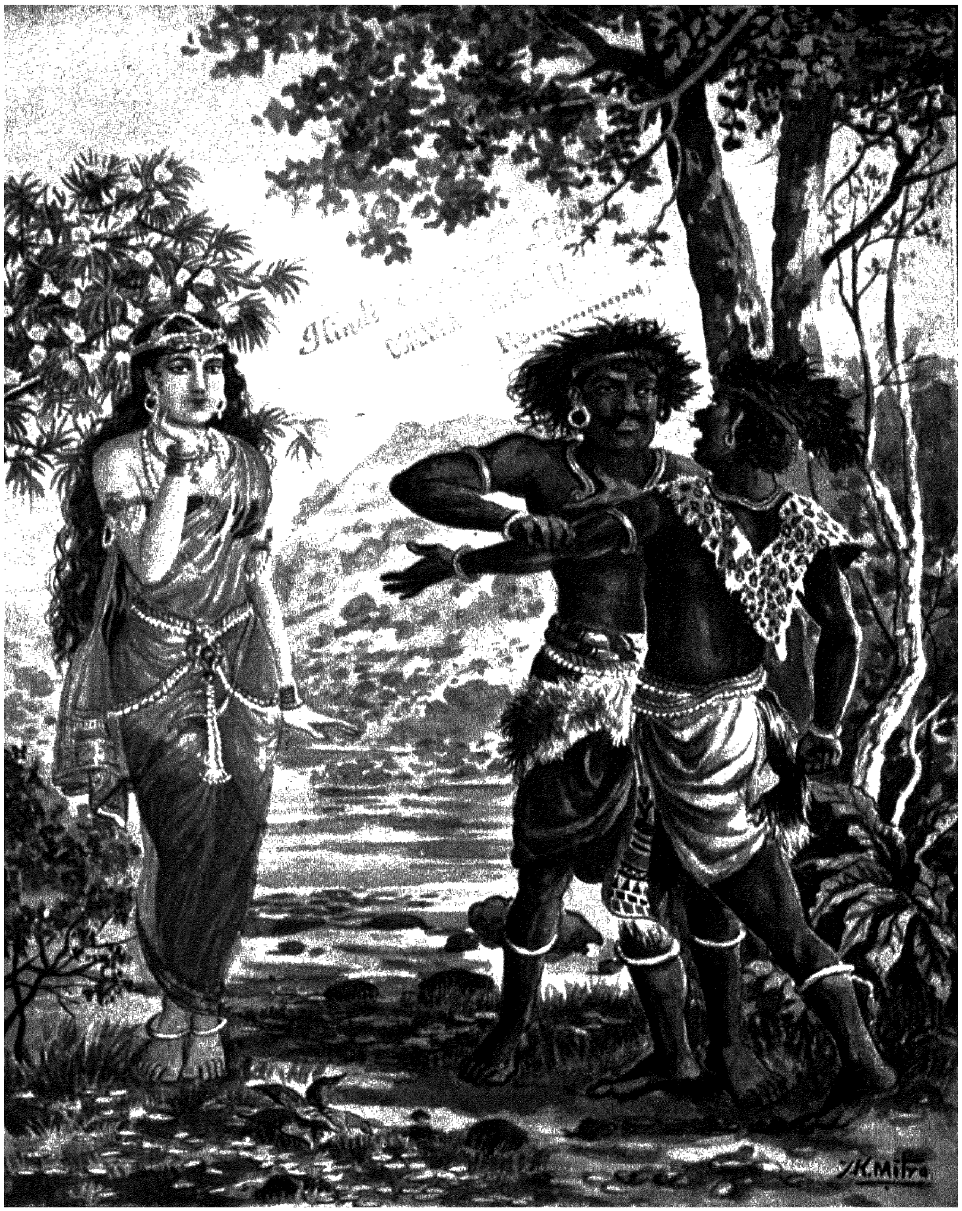
## दो सौ पन्द्रह अध्याय

तिलोत्तमा के कारण दोनों दैत्यों का विरोध और नाश। पाण्डवों का नियम-निर्धारण

नारद कहते हैं—इधर दोनों दैत्य पृथ्वी को जीतकर निश्चिन्त भाव से निष्कण्टक राज्य कर रहे थे। देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, नाग, मनुष्य आदि के विविध श्रेष्ठ रत्नों को पाने से अपने को कृतकृत्य समझकर वे असीम आनन्द मनाने लगे। कोई वैरी और विरोध करनेवाला न रह जाने पर दोनों दैत्य विलासी और आलसी हो गये। वे देवताओं के समान सुख से विहार करने लग गये। श्रेष्ठ स्त्री, माला, सुगन्ध और खाने-पीने का सामान प्राप्त करके वे आनन्द के साथ उनका उपभोग करने लगे। वे महल के बागों में, पहाड़ों पर, वनों में और अन्यान्य मनोहर स्थानों में इच्छानुसार राज्य के ऐश्वर्य का सुख भोगने और क्रीड़ा करने लगे।

एक दिन दोनों भाई फूले हुए शाल-वृक्षों से शोभित, शिलामय, समतल, विन्ध्याचल के स्थानों में विहार करने के लिए गये। वहाँ सब भोग की सामग्री ले जाने का प्रबन्ध भी किया गया। दोनों भाई श्रेष्ठ स्त्रियों के साथ वहाँ पहुँचकर उत्तम आसनों पर विराजमान हुए। स्त्रियाँ स्तुति-संयुक्त मधुर गीत गाकर, बाजे बजाकर और नाचकर उन्हें प्रसन्न करने लगीं।

इसी बीच में तिलोत्तमा केवल एक लाल कपड़ा पहने, मद-विह्वल वेश बनाये, नदी के किनारे-किनारे कनेर के फूलों को चुनती हुई धीरे धीरे उसी स्थान पर आई जहाँ दोनों परमप्रतापी
१० दैत्य बैठे विहार कर रहे थे। उत्तम मदिरा पीने के कारण दोनों भाइयों की आँखें लाल हो रही थीं। सुन्दरी तिलोत्तमा को देखते ही दोनों कामवश हो उठे। कामदेव अपने बाण चलाकर उन्हें सताने लगा। दोनों भाई उठकर तिलोत्तमा के पास पहुँचे और कामान्ध होकर उससे अपने को अङ्गीकार करने की प्रार्थना करने लगे। सुन्द ने उसका दाहना हाथ पकड़ा, वैसे ही उपसुन्द ने उसका बायाँ हाथ पकड़ लिया। वर-लाभ, बल-धन-रत्न आदि का गर्व और मदिरा-



तिलोत्तमा के लिए सुन्द उपसुन्द की लड़ाई—पृ० ४६७

पान का नशा, फिर कामदेव का उन्माद, इन सब बातों ने उनको एकदम विचारशून्य कर दिया। उन्हें अपने हित-अहित का ध्यान न रहा। वे परस्पर क्रोध से भौंहें चढ़ाकर झगड़ा करने लगे। सुन्द ने कहा—उपसुन्द, ख़बरदार! मेरी स्त्री तुम्हारी माता के समान है। उपसुन्द ने कहा—यह स्त्री मेरी है, तुम्हारी नहीं। इसी लिए तुम्हारी बहू के बराबर है।

इस प्रकार तिलोत्तमा के रूप पर मुग्ध होकर दोनों असुरों ने परस्पर के स्नेह और सौहार्द को तिलाञ्जलि दे दी। दोनों को क्रोध चढ़ आया। इसके बाद काममोहित दोनों दैत्य दो भयानक गदाएँ हाथ में लेकर तिलोत्तमा के लिए परस्पर युद्ध करने लगे। वे परस्पर कहने लगे—मैं पहले इसे ग्रहण करूँगा, मैं पहले इसे प्राप्त करूँगा। गदाओं की चोट से उनके शरीरों में घाव हो गये और रक्त बह चला। अन्त को परस्पर गदा की चोट से निर्जीव होकर दोनों दैत्य, स्वर्ग से भ्रष्ट सूर्य के समान, पृथ्वी पर गिर पड़े। तब वे स्त्रियाँ और दैत्यगण विषाद और भय से काँपते हुए पाताल को चले गये। २०

अब देवमण्डली-सहित भगवान् ब्रह्मा उस स्थान पर आये। उन्होंने आदरपूर्वक तिलोत्तमा से वर माँगने के लिए कहा। अन्त को प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने स्वयं उसे यह वरदान दिया कि हे भामिनी, जिन लोकों में सूर्यदेव भ्रमण करते हैं उन सबमें तुम विचर सकोगी। तुम्हारा तेज ऐसा होगा कि कोई भी नज़र भरकर अच्छी तरह तुमको देख न सकेगा। इस प्रकार तिलोत्तमा को वर देकर सब लोकों के पितामह ब्रह्मा ने इन्द्र को फिर त्रिलोकी का राज्य दिया। इसके बाद वे ब्रह्मलोक को चल दिये।

नारद कहते हैं—युधिष्ठिर, एक-हृदय और परस्पर अत्यन्त ही हिले-मिले रहने पर भी तिलोत्तमा के कारण सुन्द और उपसुन्द ने परस्पर क्रुद्ध होकर आप ही अपना विनाश कर लिया। इससे हे पाण्डवो, मैं तुम पर अनुराग और स्नेह रखने के कारण कहता हूँ कि यदि तुम मेरा प्रिय करना चाहते हो तो ऐसा उपाय कर लो जिसमें द्रौपदी के कारण तुममें झगड़ा होने का अवसर ही न आवे।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, महात्मा महर्षि नारद के ये वचन सुनकर सब पाण्डवों ने उनके कथन का अनुमोदन किया और उनके आगे ही यह प्रतिज्ञा की कि एक नियमित समय तक हर एक भाई के पास द्रौपदी रहेगी। एक भाई जब द्रौपदी के साथ एकान्त में बैठा होगा तब दूसरा भाई वहाँ न जायगा। यदि कोई वहाँ जाकर दोनों के एकान्तवास को देख लेगा तो उसे बारह वर्ष तक वन में रहकर उसका प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।

धर्मात्मा पाण्डव जब इस प्रकार प्रतिज्ञा कर चुके तब महात्मा नारद उनसे बिदा होकर यथेष्ट स्थान को चल दिये। हे जनमेजय, नारद की आज्ञा से ऐसा नियम कर लेने से ही कृष्णा के कारण पाण्डवों में परस्पर विरोध नहीं हुआ। ३१

## अर्जुन-वनवासपर्व

# दो सौ से लह अध्याय

अर्जुन के वनवास का कारण

वैशम्पायन ने कहा—इस प्रकार का नियम करके पाण्डव लोग इन्द्रप्रस्थ में रहते हुए अस्त्र-विद्या के बल से अन्य राजाओं को वश में करने लगे। आज्ञा-कारिणी द्रौपदी अकेले ही पाँचों महाबली मनुष्य-श्रेष्ठ पाण्डवों की पत्नी हुई। पाँचों भाई द्रौपदी को पाकर परम सन्तुष्ट हुए। द्रौपदी भी उन पाँचों पुरुषों को पाकर नाग-सङ्ग से सरस्वती की तरह अपरिमित आनन्द का अनुभव करने लगी। महात्मा पाण्डव जब धर्मपूर्वक इस प्रकार पृथ्वी का पालन करने लगे तब कुरु-वंश के लोग दोष-शून्य और सुख-सम्पन्न हो गये।

राजन्, कुछ समय बाद चोरों ने किसी ब्राह्मण की गायें चुराईं। चोरों को गो-धन लेकर जाते देख आर्तस्वर से विलाप करता हुआ कुपित ब्राह्मण खाण्डवप्रस्थ में आकर पाण्डवों को भला-बुरा कहने लगा। उसने कहा—क्षुद्र-हृदय के नीच चोर ज़बरदस्ती हमारी गायें लेकर हमारी सीमा के बाहर जा रहे हैं। हे पाण्डवो, तुम उनका पीछा करो। शान्त-स्वभाव ब्राह्मण के घी को कौवे खा रहे हैं। नीच गीदड़ सिंह की सूनी कन्दरा में उत्पात कर रहे हैं। किन्तु राजा रक्षा न करके केवल आय का छठा भाग प्रजा से लेता है। ऐसे राजा को शास्त्र ने अहितकारी और पापाचारी कहा है। चोर लोग ब्राह्मण के धन को हरे लिये जाते हैं, धर्म-कर्म
१० का लोप हो रहा है और मैं भी रो रहा हूँ। इस समय हाथ पकड़कर मुझे उबारो।

वैशम्पायनजी कहते हैं—पाण्डुपुत्र अर्जुन ने पास ही बारम्बार विलाप कर रहे ब्राह्मण के पूर्वोक्त वाक्य सुने। सुनते ही उन्होंने "डरो मत" कहकर ब्राह्मण को ढाढ़स बँधाया। महाराज! किन्तु जिस घर में महात्मा पाण्डवों के अस्त्र-शस्त्र थे उसी घर में धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ एकान्त में बैठे हुए थे। नियम के अनुसार अर्जुन उस घर के भीतर नहीं जा सके। इधर ब्राह्मण उन्हें पूर्वोक्त दीन वचनों से बारम्बार सहायता के लिए पुकार रहा था। इस कारण असमञ्जस में पड़े हुए शोक से व्याकुल अर्जुन यों सोचने लगे—चोर इस ब्राह्मण का धन लिये जाते हैं; इस तपस्वी के आँसू पोंछना मेरा निश्चित कर्तव्य है। इसकी उपेक्षा करने से भी राजा को बड़ा अधर्म होगा। यदि मैं आज द्वार पर रो रहे इस ब्राह्मण की रक्षा न करूँगा तो इस पृथ्वी पर 'रक्षा करने में असमर्थ' या 'ब्राह्मण की रक्षा-रूप क्षत्रिय के धर्म में अश्रद्धा रखनेवाले' कहलाने से हम सबकी बड़ी निन्दा होगी, अधर्म भी होगा। इधर यदि मैं राजा की अवज्ञा करके घर में जाऊँगा तो प्रतिज्ञा-भङ्ग का पाप होगा। उसके प्रायश्चित्त के लिए मुझे वन जाना होगा। लेकिन 'ब्राह्मण की रक्षा न करने से राजा के अपमान' का ख़याल

करके मैं किसी रुकावट को न मानूँगा। चाहे अधर्म हो, चाहे प्राण जायँ और चाहे वन जाना पड़े, मैं शस्त्र लेने इस घर में अवश्य जाऊँगा; क्योंकि शरीर की अपेक्षा धर्म ही श्रेष्ठ है। २०

कुन्ती के पुत्र अर्जुन यह निश्चय करके उस घर में गये, राजा से पूछकर धनुष लिया, फिर ब्राह्मण के पास आकर बोले—ब्राह्मण! शीघ्र आओ, पराये धन के लोभी क्षुद्र चोर अभी



अधिक दूर नहीं गये हैं, आओ हम दोनों चलकर उनके हाथ से गो-धन का उद्धार कर लायें।

अब कवच पहने, धनुष हाथ में लिये, रथ पर सवार अर्जुन ने चोरों का पीछा किया। शीघ्र ही बाणों के द्वारा चोरों को मारकर, उनसे गायें छीनकर अर्जुन ने ब्राह्मण को सौंप दीं।

इस प्रकार ब्राह्मण को उसकी गायें लौटाने से यशस्वी होकर अर्जुन अपने नगर में लौट आये। फिर गुरु-जनों को प्रणाम करके और उनसे अभिनन्दन पाकर धर्मराज से उन्होंने कहा—प्रभो, मुझे प्रतिज्ञा-भङ्ग का पाप दूर करने के लिए कोई व्रत बताइए। मैंने आपको एकान्त में देखकर प्रतिज्ञा-भङ्ग का पाप किया है, अतएव वन को जाऊँगा। हम लोगों में ऐसा ही नियम हो चुका है। एकाएक भाई के मुँह से ऐसे अप्रिय वचन सुनकर राजा युधिष्ठिर को बड़ा शोक हुआ। वे गद्गद स्वर में कह उठे क्यों? फिर अत्यन्त व्याकुल होकर उन्होंने अर्जुन से कहा—हे निष्पाप, यदि मेरे कहने को तुम प्रमाण मानते हो तो जो मैं कहता हूँ वह सुनो। हे वीर, तुमने घर के भीतर आकर मेरा जो कुछ अप्रिय किया है ३० उसे मैं क्षमा करता हूँ। मेरे अन्तःकरण में रत्ती भर भी क्रोध नहीं है। बड़ा भाई यदि अपनी स्त्री के साथ एकान्त में बैठा हो तो छोटा भाई वहाँ जा सकता है। हाँ, बड़े भाई का छोटे के घर में इस तरह जाना अवश्य विधि-विरुद्ध है। इसलिए हे महाबाहो, तुम इस विचार को दूर कर दो। मेरी बात सुनो। तुम्हारा धर्म नष्ट नहीं हुआ, तुमने मेरा अपमान भी नहीं किया।

अर्जुन ने कहा—मैंने आपके ही मुँह से सुना है कि धर्म में छल नहीं करना चाहिए। इस कारण मैं सत्य से विचलित न हूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद अर्जुन ने वन-यात्रा की दीक्षा ली। फिर राजा से निवेदन करके वे बारह वर्ष के लिए वन में रहने को चल दिये। ३५

———

# दो सौ सत्रह अध्याय

हरद्वार में नाग-कन्या उलूपी के साथ अर्जुन का विवाह

वैशम्पायन ने कहा—कुरु-वंश के यश को बढ़ानेवाले महाबाहु अर्जुन जब रवाना हुए तब सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग के जाननेवाले, अध्यात्म-चिन्तक, भिक्षा-वृत्तिवाले भगवद्भक्त ब्राह्मण तथा पौराणिक सूत (कथक), वनवासी श्रमण और दिव्य उपाख्यान सुनानेवाले अन्यान्य ब्राह्मण उनके पीछे चले। इनसे और अन्य व्यक्तियों से घिरे हुए अर्जुन देवमण्डली-मण्डित इन्द्र की तरह अनेक मनोहर कथाएँ कहते-सुनते चले। जाते समय मार्ग में उन्होंने सैकड़ों रमणीय विचित्र वन, सरोवर, नदी, समुद्र, देश और पुण्यतीर्थों के दर्शन किये। अन्त को हरद्वार में पहुँचकर कुछ दिन वहीं रहने का उन्होंने निश्चय किया। पाण्डवश्रेष्ठ, विशुद्ध-हृदय अर्जुन ने उन वेद-पारगामी ब्राह्मणों के साथ रहकर जो-जो अद्भुत काम किये उन्हें कहता हूँ, सुनो।

हे भारत, अर्जुन ने जब वहाँ रहने का विचार किया तब ब्राह्मणों ने स्थान-स्थान पर अग्निहोत्र स्थापित किया। वे अग्निहोत्र के अग्नि सदा घृत (हवि) की आहुतियों से प्रज्वलित रहते थे। अग्निहोत्र के स्थान फूल और मालाओं से शोभित रहते थे। इन महात्माओं के वहाँ
१० रहने से हरद्वार की शोभा और भी अधिक हो गई।



अर्जुन का आश्रम इस प्रकार श्रेष्ठ मुनियों और महर्षियों से शोभित था। एक दिन अर्जुन नहाने के लिए गङ्गा के भीतर उतरे। इसके बाद स्नान-तर्पण करके हवन करने के लिए वे जल से बाहर निकलने लगे। इसी समय कामवश होकर नाग-कन्या उलूपी ने जल के भीतर उन्हें खींच लिया। जल के भीतर जाकर अर्जुन ने देखा, कौरव्य नाग के यहाँ अग्नि प्रज्वलित हो रहा है। यह देखकर उन्होंने बेखटके वहाँ हवन किया। इससे अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। फिर हँसते-हँसते अर्जुन ने नागकन्या से कहा—हे भीरु, हे भाविनि! तुमने यह कैसा साहस किया? यह कौन देश है? तुम कौन और किसकी बेटी हो?

उलूपी ने कहा—ऐरावत के वंश में उत्पन्न कौरव्य नाम एक नाग है। मैं उसी की कन्या हूँ। मेरा नाम उलूपी है। हे पुरुषसिंह, तुम नहाने के लिए जब गङ्गा में उतरे तब मैं तुम्हें



नगर में विचरती हुई चित्राङ्गदा को अर्जुन का देखना—पृ० ४७२



चारों ओर फिरते-फिरते अर्जुन ने अनेक गहनों से सजी हुई वसुदेव की कन्या सुभद्रा को एक जगह देखा—पृ० ४७८

देखकर कामदेव के वश हो गई। तुम्हारे ही कारण मैं काम-पीड़ा सह रही हूँ। तुम्हारे सिवा मेरी दूसरी गति नहीं है अतएव तुम मुझे आत्मसमर्पण करके आनन्दित करो। २०

अर्जुन ने कहा—सुन्दरी, धर्मराज युधिष्ठिर ने मुझे बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य से रहने की आज्ञा दी है। मैं स्वाधीन नहीं हूँ। हे जल-विहारिणि, इधर तुम्हारा प्रिय करने की भी मुझे इच्छा है। मैंने कभी कोई झूठ बात नहीं कही। इसलिए अब तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूँ? ऐसा करो जिसमें मुझे झूठ बोलने का पाप भी न हो; तुम्हारा प्रिय भी हो और धर्म की रक्षा भी हो जाय।

उलूपी ने कहा—हे पाण्डव, तुम जिस तरह पृथ्वी पर घूम रहे हो और तुम्हारे बड़े भाई ने जिस कारण तुम्हें ब्रह्मचर्य-पालन की आज्ञा दी है वह सब मैं जानती हूँ। तुम लोगों ने एक नियम किया था कि तुम लोगों में से किसी के भी द्रौपदी के पास एकान्त में रहते समय यदि दूसरा वहाँ पर भूल से पहुँच जायगा तो वह बारह वर्ष तक वन में रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करेगा। द्रौपदी के लिए ही तुमको वन में आकर ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ा है। तुमने वहाँ धर्म का आचरण किया है। यहाँ मेरा कहा करने से कुछ भी धर्म की हानि न होगी। हे कमलनयन, दुखी लोगों की रक्षा करना तुम्हारा कर्तव्य है। मेरी रक्षा करने से तुम्हारा धर्म नष्ट न होगा और यदि ऐसा करने से धर्म में कुछ व्यतिक्रम भी हो तो कोई चिन्ता नहीं। उसे भी धर्म ही मानना होगा; क्योंकि, मेरी प्रार्थना स्वीकार करके मुझे तुम प्राण-दान करोगे। हे अर्जुन, मैं तुम्हें बहुत चाहती और मानती हूँ। अतएव तुम मुझे ग्रहण करो; साधुओं का यही मत है। जो तुम मेरा कहा न करोगे तो मैं अपनी जान दे दूँगी। हे महा-बाहो, मुझे प्राण-दान देकर उत्तम धर्म का आचरण करो। हे पुरुषश्रेष्ठ, मैं इस समय तुम्हारी ३० शरण में हूँ। हे कुन्तीपुत्र, तुम दीन-अनाथों की रक्षा किया करते हो। मैं तुम्हारी शरण में आई हूँ, रोती हूँ और इच्छा करके स्वयं प्रार्थना भी कर रही हूँ। तुम मेरा प्रिय करो। तुम आत्मसमर्पण करके मेरी इच्छा पूरी करो। वैशम्पायन कहते हैं—नागकन्या के ये वचन सुनकर अर्जुन ने, धर्म को कारण मानकर, उसके कहे के अनुसार सब काम किया। कौरव्य नाग के यहाँ उस रात भर रहकर अर्जुन सबेरे फिर हरद्वार को लौट आये। पतिव्रता उलूपी भी उन्हें वहाँ छोड़कर अपने घर चली गई। जाते समय उसने अर्जुन को वर दिया कि तुम जलचर-मात्र के लिए अजेय होगे और वे सब तुम्हारे अधीन रहेंगे। ३६

# दो सौ अठारह अध्याय

अर्जुन का मणिपुर जाना और चित्राङ्गदा से विवाह

वैशम्पायन ने कहा—इन्द्रपुत्र पाण्डव अर्जुन ने आश्रम में पहुँचकर ब्राह्मणों से सब वृत्तान्त कहा। वहाँ से वे हिमाचल पर्वत की ओर चले। अगस्त्यवट, वशिष्ठ पर्वत और भृगुतुङ्ग पर्वत पर पहुँचकर अर्जुन स्नान आदि करके शुद्ध हुए। वहाँ उन्होंने ब्राह्मणों को गोदान दिया और निवास-स्थान भी दिया। पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन फिर हिरण्यबिन्दु तीर्थ में गये। वहाँ नहाया और अनेक पुण्यस्थानों के दर्शन किये। वहाँ से ब्राह्मणों के साथ चलकर वे पूर्व दिशा को देखने के लिए रवाना हुए। पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन ने एक-एक करके सब तीर्थों के दर्शन किये। मनोहर नैमिषारण्यवाहिनी उत्पलिनी नदी, नन्दा, अमरनन्दा, यशस्विनी कौशिकी, महानदी, गया और गङ्गा आदि सब तीर्थों में जाकर उन्होंने स्नान-दर्शन किये। हर एक तीर्थ में स्नान, श्राद्ध, तर्पण इत्यादि करके उन्होंने ब्राह्मणों को गोदान दिये। अङ्ग, वङ्ग और कलिङ्ग देशों में जितने देवमन्दिर और तीर्थस्थान हैं उन सबमें अर्जुन गये। ब्राह्मणों को दान दिये और विधि-पूर्वक तीर्थ-दर्शन करके वे कृतार्थ हुए। जो ब्राह्मण उनके साथ जा रहे थे वे कलिङ्ग राज्य के आरम्भ से अर्जुन की अनुमति लेकर लौट पड़े। अर्जुन भी उन ब्राह्मणों की आज्ञा लेकर थोड़े से सहायकों के साथ समुद्र की ओर चले। क्रमशः अनेक देश और रमणीय भवनों को देखते-देखते वे कलिङ्ग देश को लाँघ गये। फिर उन्होंने अनेक तापसों की निवास-भूमि महेन्द्र पर्वत के दर्शन किये। इसी तरह चलते-चलते समुद्र-किनारे वे मणिपुर में पहुँचे। वहाँ जितने तीर्थ और पवित्र स्थान थे उन्हें देखकर वे अन्त को राजा के पास गये। राजा का नाम चित्रवाहन था। वे बड़े ही धर्मात्मा थे। चित्राङ्गदा नाम की उनके एक सर्वाङ्गसुन्दरी कन्या थी। वह कन्या एक दिन अपनी इच्छा से नगर में विचर रही थी। उसी समय अर्जुन ने उसे देखा। देखते ही वे समझ गये कि यह चित्रवाहन की बेटी है। उन्होंने राजा के पास जाकर अपना प्रयोजन प्रकट करते हुए कहा—राजन्, मैं उच्च कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हूँ। आप मुझे यह कन्या दीजिए। अर्जुन के वचन सुनकर राजा ने पूछा—तुम किसके पुत्र हो, तुम्हारा नाम क्या है? अर्जुन ने कहा—मैं पाण्डु और कुन्ती का पुत्र हूँ, मेरा नाम अर्जुन है। राजा ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, पहले हमारे वंश में प्रभञ्जन नाम के एक राजा थे। उनके कोई पुत्र नहीं हुआ। तब उन्होंने पुत्र की इच्छा से अत्यन्त उग्र तपस्या करके देव-देव शङ्कर को प्रसन्न किया। हे अर्जुन, भगवान् शङ्कर ने इस प्रकार प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया कि तुम्हारे वंश में सबके एक-एक पुत्र हुआ करेगा। तब से हमारे वंश में हर एक के एक-एक पुत्र होता आता है। मेरे पूर्वजों में हर एक के पुत्र उत्पन्न हुआ किन्तु मेरे यह एकमात्र कन्या



जैसे अर्जुन उस ग्राह को किनारे पर लाये वैसे ही वह ग्राह का शरीर छोड़ कर
गहने पहने सुन्दर लक्षणों वाली एक स्त्री हो गई—पृ० ४७३

हुई है। मैं इसे पुत्र ही समझता हूँ। इसी लिए मैंने इसे 'पुत्रिका' बनाया है। हे भरत-श्रेष्ठ, तुम्हारे वीर्य से इसके पहले जो पुत्र उत्पन्न होगा उसे मैं ले लूँगा। वह मेरा वंशधर होगा। मेरी कन्या का यही शुल्क है। यदि तुमको यह रुचे तो इसे ग्रहण करो।

अर्जुन ने राजा का कहना मान लिया। चित्राङ्गदा के साथ उनका विवाह हो गया। तीन वर्ष तक अर्जुन वहाँ रहे। अन्त को चित्राङ्गदा के गर्भ से पुत्र उत्पन्न होने पर उससे मिलकर और राजा से अनुमति लेकर अर्जुन फिर तीर्थ-यात्रा के लिए चल दिये। २७

---

## दो सौ उन्नीस अध्याय

वर्गा नाम की अप्सरा का वृत्तान्त

वैशम्पायन ने कहा—इसके उपरान्त भरतश्रेष्ठ अर्जुन दक्षिण समुद्र के किनारे के पवित्र तीर्थों में गये। उन तीर्थों में तपस्वी रहते थे। वहाँ पर पाँच तीर्थ थे। इन पाँचों तीर्थों के आस-पास अनेक तपस्वियों के आश्रम थे परन्तु कोई भी तपस्वी उन तीर्थों में नहाता न था। उन तीर्थों के नाम अगस्त्य तीर्थ, सौभद्र तीर्थ, पावन पौलोम तीर्थ, अश्वमेध का फल देनेवाला स्वच्छ कारन्धम तीर्थ और पापनाशक भारद्वाज तीर्थ थे। पाण्डव अर्जुन ने ये तीर्थ तो देखे किन्तु धर्म-बुद्धि मुनियों को इन तीर्थों में नहाते न देख नम्र भाव से, हाथ जोड़कर, पूछा—हे तपस्वियो, आप ब्रह्मज्ञानी मुनि लोग इन पाँच तीर्थों मे नहाते-धोते क्यों नहीं? तपस्वियों ने कहा—हे कुरु-नन्दन, इन तीर्थों मे पाँच ग्राह रहते हैं। वे नहानेवालों को लील लेते हैं, इसी से कोई इनमें स्नान नहीं करता।

वैशम्पायन कहते हैं—महाबाहु, पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन तपस्वियों के ये वचन सुनकर भी उन तीर्थों को देखने के लिए चले। तपस्वियों ने बहुत रोका, पर वे किसी तरह नहीं लौटे। वे पहले सुभद्र महर्षि के श्रेष्ठ तीर्थ में पहुँचे। वहाँ जल में उतरकर उन्होंने नहा लिया। इसी बीच में जल के भीतर से एक भयानक ग्राह ने उनका पैर पकड़ लिया। महाबली-महाबाहु १०
अर्जुन उस ग्राह को जीवित अवस्था में ही घसीटकर ऊपर निकाल लाये। जैसे अर्जुन उस ग्राह को किनारे पर लाये वैसे ही वह ग्राह का शरीर छोड़कर सब गहने पहने सुन्दर लक्षणों-वाली एक स्त्री हो गया। वह द्विजरूपिणी मनोरमा स्त्री अपनी कान्ति से जगमगा रही थी। इस भारी आश्चर्य को देखकर अत्यन्त सन्तुष्ट अर्जुन ने उससे पूछा—हे सुन्दरी, तुम कौन हो? तुम्हें यह जलचरयोनि कैसे मिली? तुमने पूर्व-जन्म में कौन ऐसा घोर पाप किया था?

वर्गा ने कहा—मैं देववन में विहार करनेवाली अप्सरा हूँ। मेरा नाम वर्गा है। कुबेरजी मुझे बहुत चाहते हैं। मेरी चार सखियाँ और हैं। वे सब चाहे जहाँ जा सकने-

वाली हैं। उन चारों सखियों के साथ मैं एक दिन कुबेरजी के दर्शन करने जा रही थी। मैंने राह में देखा कि एक वन में एक ब्रह्मचारी सन्तुष्ट ब्राह्मण एकान्त में बैठे वेद पढ़ रहे हैं। हे नरश्रेष्ठ, उन तपस्वी का तेज सूर्य के समान सारे वन को प्रकाशित किये हुए था। उनकी वैसी उग्र तपस्या और अनुपम रूप को देखकर हम सब उनके तप में विघ्न डालने के लिए आकाश-मार्ग से नीचे उतरीं। हे भरतश्रेष्ठ! मैं, सौरभेयी, समीची, बुद्बुदा और लता ये पाँचों सखियाँ एक
२० साथ उन मुनिवर के पास गईं। हम सब गाकर और हँसकर उन्हें रिझाने की चेष्टा करने लगीं। किन्तु हे वीर, उन मुनि का मन हमें देखकर तनिक भी नहीं डिगा। घोर तपस्या में स्थित वे महात्मा कामवश न होकर कुपित हो उठे। उन्होंने हमें शाप दिया कि तुम ग्राह
२३ होकर जल के भीतर सौ वर्ष तक रहोगी।

---

## दो सौ बीस अध्याय

### वर्गा की चारों सखियों का उद्धार

वर्गा ने कहा—हे भरतश्रेष्ठ, तब हम बहुत दुःखित होकर उन स्थिर चित्तवाले तपोधन ब्राह्मण की शरण में गईं और बोलीं—हे द्विज, हमने रूप, अवस्था और कामदेव से मोहित तथा पीड़ित होकर यह अन्याय किया है इसलिए हमें क्षमा करें। हे तपोधन, आप जैसे जितेन्द्रिय महात्मा को लुभाने के लिए यहाँ आना ही हमारे लिए काफ़ी दण्ड—वध—हो चुका। धर्मशास्त्र के जाननेवालों ने कहा है कि स्त्री का वध न करना चाहिए। आप धर्मात्मा हैं, इसलिए हम लोगों का वध न कीजिए। हे धर्मज्ञ, सुना है कि ब्राह्मण सभी जीवों के मित्र होते हैं। इस समय यही कहावत सत्य हो। शरणागत की रक्षा सज्जन करते ही हैं। हम आपकी शरण में आई हैं, इसलिए क्षमा कीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—धर्मात्मा, शुभ कर्म करनेवाले, वीर, सूर्य और चन्द्रमा के समान तेजस्वी ब्राह्मण देवता यह सुनकर क्षमा करके बोले—'शत' और 'सहस्र' सदा अनन्त संख्या के वाचक हैं किन्तु मैंने जो यहाँ 'शत' ( सौ ) शब्द का प्रयोग किया है उससे ठीक सौ वर्ष तक तुम्हें शाप भोगना पड़ेगा; असंख्य वर्षों तक नहीं। तुम ग्राह की योनि पाकर उन मनुष्यों को पकड़ लोगी जो स्नान आदि करने के लिए पानी में उतरेंगे। जब कोई पुरुषश्रेष्ठ तुमको जल से बाहर स्थल में निकाल लेगा तब तुम्हें फिर अपना पहला रूप मिल जायगा। मैंने हँसी में भी
१० कभी झूठ नहीं बोला। मेरा कहा सत्य ही होगा। तुम जिन तीर्थों में रहोगी वे नारीतीर्थ कहलाने लगेंगी। वे तीर्थस्थान पवित्र और पावन समझे जायँगे।

वर्गा ने कहा—अब हमने प्रणाम करके उन ब्राह्मण देवता की प्रदक्षिणा की। फिर अत्यन्त दुःख के साथ उस स्थान से हटकर हम पाँचों सोचने लगीं कि कब कहाँ हम थोड़े ही

दिनों में उस मनुष्य के दर्शन पावेंगी, जिसके समागम से हमें फिर अपना पहला रूप प्राप्त होगा। हे भरतश्रेष्ठ, दमभर हम इसी चिन्ता में डूबी रहीं। इसी समय हमें देवर्षि नारद देख पड़े।



परमतेजस्वी उन महर्षि को देखकर हमको बड़ा आनन्द हुआ। हे अर्जुन, उन्हें नमस्कार करके लज्जा से सिर झुकाये हुए हम उनके सामने खड़ी हो गईं। उन्होंने हमारे दुःख का कारण पूछा। हमने भी सब हाल कह सुनाया। सब वृत्तान्त सुनकर उन्होंने कहा—दक्षिण समुद्र के किनारे पवित्र और रमणीय पाँच तीर्थ हैं। उस स्थान को पञ्चतीर्थ कहते हैं। तुम चटपट वहीं जाओ। पवित्र-चित्त पुरुषसिंह पाण्डुनन्दन अर्जुन थोड़े ही दिनों में वहाँ तुम्हें इस दुःख से छुड़ा देंगे। हे वीर, नारद के ये वचन सुनकर हम सब इस स्थान पर आई थीं। हे निष्पाप, आज नारद का कहना सच हुआ। आपने मेरा उद्धार किया। हे अर्जुन, मेरी वे चारों सखियाँ अभी उसी रूप में जल के भीतर हैं। आप उनका भी उद्धार कर दीजिए। २०

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्! पराक्रमी, अदीन-हृदय, पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन ने अन्त को उन चारों अप्सराओं का भी उद्धार किया। महाराज, अप्सराएँ जल से निकलकर अपने-अपने शरीर को पाकर फिर पहले की ही ऐसी सुन्दरी हो गईं। इस प्रकार पञ्चतीर्थ को निर्भय और बाधाहीन करके अर्जुन उन अप्सराओं को बिदा कर सुकुमारी चित्राङ्गदा को देखने मणिपुर को गये। अर्जुन ने चित्राङ्गदा के गर्भ से बभ्रुवाहन नाम का पुत्र उत्पन्न किया। वही पुत्र मणिपुर का राजा हुआ। उन्होंने राजा चित्रवाहन से कहा कि आप इस लड़के को ले लीजिए जिससे मैं ऋण-मुक्त हो जाऊँ। फिर उन्होंने चित्राङ्गदा से कहा कि तुम यहीं रहकर बभ्रुवाहन का पालन-पोषण करो। जब मैं इन्द्रप्रस्थ में रहने लगूँ तब वहाँ आ जाना। वहाँ माता कुन्ती और मेरे भाइयों तथा कुटुम्बियों को देखना और आराम से रहना। मेरे बड़े भाई सत्य-वादी राजा युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करेंगे। उस यज्ञ में सभी राजा आवेंगे। उस समय तुम्हारे पिता भी भेंट लेकर वहाँ आवेंगे। उन्हीं के साथ तुम आना। बभ्रुवाहन हमको बहुत प्रिय ३० है, यह तुम्हारे पिता का वंश बढ़ावेगा इससे तुम इसका पालन करो। तुम बिछोह का दुख न मानो। वहाँ से अर्जुन गोकर्णक्षेत्र को चले। वह शङ्कर का आदि-स्थान है। उसके दर्शन से ही मुक्ति मिलती है। पापी मनुष्य भी वहाँ जाने से अभयलोक को प्राप्त होता है। ३५

# दो सौ इक्कीस अध्याय

प्रभासतीर्थ में अर्जुन और श्रीकृष्ण की भेंट

वैशम्पायन कहते हैं—महाबाहु अर्जुन फिर उत्तरभाग के सब पवित्र क्षेत्रों और तीर्थों में गये। पश्चिम समुद्र में जो पवित्र तीर्थ और क्षेत्र थे, उन सबमें होते हुए अर्जुन अन्त को प्रभासक्षेत्र में पहुँचे। कृष्ण को ख़बर मिली कि किसी से न हारनेवाले अर्जुन अत्यन्त पवित्र और रमणीय प्रभासतीर्थ में आये हैं। यह सुनते ही अपने मित्र कुन्तीपुत्र से मिलने के लिए श्रीकृष्ण चल दिये। प्रभासतीर्थ में कृष्ण और अर्जुन से भेंट हुई। दोनों नर और नारायण ऋषि थे। दोनों मित्र एक दूसरे को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। दोनों परस्पर गले लगकर मिले। वे प्रभासतीर्थ में ठहरे। वासुदेव ने अर्जुन से ब्रह्मचर्य का कारण पूछते हुए कहा—हे पाण्डव, तुम यह तीर्थ-यात्रा किस कारण कर रहे हो? अर्जुन ने सब हाल कह सुनाया।



कुछ दिन प्रभासतीर्थ में रहकर अन्त को दोनों मित्र रैवतक पर्वत पर निवास करने गये। कृष्ण की आज्ञा से सेवकों ने पहले से ही उक्त पर्वत को साफ़ कर डाला और अनेक प्रकार की खाने-पीने की सामग्रियाँ वहाँ मौजूद कर दीं। पाण्डु-नन्दन अर्जुन ने कृष्ण के साथ वहाँ पहुँचकर सब अतिथि-सत्कार स्वीकार किया। फिर भोजन करके उन्होंने कृष्ण के साथ नटों की
१० कलाएँ और नाचनेवालियों का नाचना-गाना देखा-सुना। महामति अर्जुन ने यथोचित सत्कार और सम्मान के साथ उन सबको बिदा किया। सबको बिदा करके वे सुन्दर कोमल बिछौने पर सोने के लिए गये। पलँगों पर दोनों मित्र लेटे। अर्जुन अपने देखे हुए अनेक स्थान, नदी, नद, पर्वत और वन आदि का वर्णन करने लगे। जनमेजय, फिर नींद आने पर सुख से सो गये। रात बीत गई। सबेरे मधुर गीत, वीणा और स्तुतिपाठ के शब्दों से अर्जुन की आँख खुली। वे पलँग से उठ बैठे। वैसे ही यादव-तिलक कृष्ण ने आकर उनसे पूछा—कहो, रात को अच्छी नींद आई थी न?

अर्जुन स्नान आदि आवश्यक कामों से छुट्टी पाकर रथ पर चढ़कर द्वारका पुरी को चले। जनमेजय, कुन्ती-पुत्र अर्जुन के सम्मान के लिए द्वारका पुरी के बाग़, घर और सड़कें आदि सब

स्थान सजाये गये थे। द्वारका के रहनेवाले हज़ारों आदमी अर्जुन को देखने के लिए घरों से बाहर निकलकर जमा हो गये। हज़ारों स्त्रियाँ अपने महलों पर खड़ी थीं। भोज, वृष्णि और अन्धक-वंश के यादवों की बड़ी भारी भीड़ थी। यादवों ने इस तरह बड़ी धूमधाम से अर्जुन का स्वागत किया। अर्जुन ने पूजनीय पुरुषों को प्रणाम और पूजा से प्रसन्न किया, बालकों को आशीर्वाद और अभिनन्दन से सन्तुष्ट किया, तथा बराबर-वाले हमजोलियों को गले लगाकर खुश किया। वृष्णि, भोज और अन्धक-वंश के सब यादवों ने प्रसन्नता प्रकट करते हुए अर्जुन का स्वागत किया। फिर अनेक रत्न-धन और भोजन-सामग्री से परिपूर्ण वासुदेव के घर में जाकर अर्जुन ठहरे और दोनों मित्र एक ही जगह पर कई रात्रियों तक रहे। २१



---

## सुभद्रा-हरणपर्व

## दो सौ बाईस अध्याय

रैवतक पर्वत पर उत्सव। अर्जुन और सुभद्रा की भेंट। अर्जुन का श्रीकृष्ण से सुभद्रा को पाने का प्रस्ताव

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, फिर रैवतक पर्वत पर वृष्णि, भोज और अन्धक वंश के यादवों ने कुछ दिनों तक एक उत्सव किया। वीर यादवों ने उस पहाड़ी उत्सव में हज़ारों ब्राह्मणों को धन-रत्न आदि दिये। राजन्, उस पहाड़ के चारों ओर की जगह रत्नों से शोभित और बड़े-बड़े भवनों से अलंकृत कर दी गई थी। कल्पवृक्ष के समान उन भवनों से अन्न-वस्त्र आदि अनेक पदार्थ इच्छा के अनुसार प्रार्थियों को मिलते थे। अनेकों लोग बाजे बजाते थे, नाचनेवाले नाचते और गानेवाले गाते थे। महा तेजस्वी वृष्णिवंशी यादवों के बालक बहुत से गहने पहनकर, सुवर्णमण्डित श्रेष्ठ रथों पर चढ़कर, चारों ओर फिरने लगे। हज़ारों पुरवासी भी अपनी स्त्रियों, बाल-बच्चों और परिवारों को साथ लेकर वहाँ पहुँचे। कोई पैदल, कोई अच्छे और कोई मामूली रथों पर चढ़कर सैर कर रहा था। भरतश्रेष्ठ, वारुणी के मद में मत्त रेवती-सहित हलधर बलभद्र भी वहाँ घूम रहे थे। गन्धर्व लोग गुण गाते हुए उनके पीछे चले जा

रहे थे। वृष्णिवंशी यादवों के राजा प्रतापी उग्रसेन भी हज़ारों स्त्रियों के साथ पहाड़ की सैर कर रहे थे। गन्धर्व और बन्दीजन पीछे-पीछे उनके गुणों का बखान करते जा रहे थे। युद्ध में प्रचण्ड महावीर बलदेव-नन्दन और कृष्ण के पुत्र साम्ब भी देवताओं के समान बढ़िया कपड़े, माला और गहने आदि पहनकर इधर-उधर टहल रहे थे। इसी तरह अक्रूर, सारण, गद, वभ्रु, विदूरथ, निशठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यक, सात्यकि, भङ्गकार, महारथी हार्दिक्य, उद्धव और अन्य अनेक श्रेष्ठ यादव अलग-



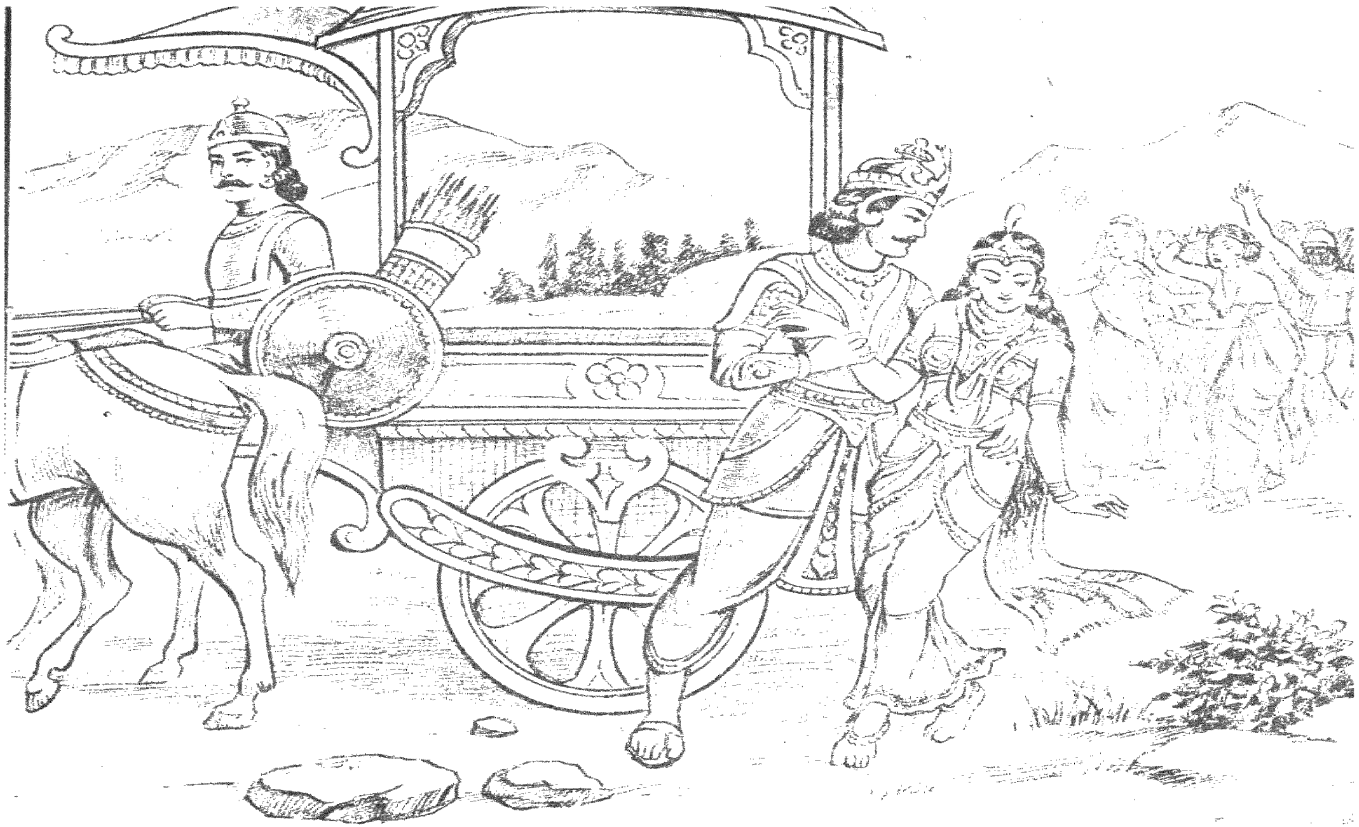
अलग अपनी स्त्रियों को साथ लिये घूमकर उस उत्सव की शोभा बढ़ा रहे थे। अनेक गन्धर्व
१२ और बन्दीजन उनके पीछे-पीछे उनके गुणों का और प्रताप का बखान करते जा रहे थे।

अद्भुत ढङ्ग से चारों ओर मेला-तमाशा शुरू होने पर वासुदेव और अर्जुन एक साथ वहाँ उपस्थित हुए। चारों ओर फिरते-फिरते अर्जुन ने अनेक गहनों से सजी हुई वसुदेव की कन्या सुभद्रा को एक जगह देखा। उसे देखते ही अर्जुन को कामदेव ने बाण मारे। वे टक लगाकर सुभद्रा को ही निहारने लगे। यह देखकर पुरुषसिंह कृष्ण ने कुछ मुसकाकर अर्जुन से कहा—यह क्या? कामदेव ने वनचारी मनुष्य को भी नहीं छोड़ा! अर्जुन, यह सुन्दरी मेरी बहन है। मेरे भाई सारण और यह एक माता की सन्तान हैं। यह मेरे पिता की बहुत प्यारी कन्या है। इसका नाम सुभद्रा है। यदि इससे ब्याह करने की तुम्हारी इच्छा हो तो कहो। मैं स्वयं पिताजी से यह प्रस्ताव कर सकता हूँ।

अर्जुन ने कहा—कृष्ण, एक तो यह वसुदेव की कन्या और तुम्हारी बहन है, दूसरे असाधारण सुन्दरी है। इसलिए किसका मन इसे देखकर ब्याह करने के लिए न डोल उठेगा? जो यह तुम्हारी बहन वृष्णि-नन्दिनी मेरी पत्नी हो तो मुझे सारी पृथ्वी का साम्राज्य पाने की ऐसी ख़ुशी होगी। मैं समझूँगा, मुझे सब कल्याण प्राप्त हो गये। जनार्दन, बताओ मैं किस उपाय से इस सुन्दरी-रत्न को प्राप्त कर सकता हूँ? जो मनुष्य की शक्ति के बाहर न हो तो वह
२० उपाय करने के लिए मैं सब तरह तैयार हूँ। कृष्ण ने कहा—हे पुरुषश्रेष्ठ, क्षत्रियों के यहाँ कन्या का स्वयंवर करने की चाल है। किन्तु इस तरह तुम्हारी इच्छा पूरी होने में सन्देह है; क्योंकि मनुष्यों की रुचि जुदी-जुदी होती है। यह निश्चय नहीं कि स्वयंवर में सुभद्रा तुम्हीं को पसन्द करेगी। क्षत्रियों में कन्या को बलपूर्वक हरकर उससे ब्याह करने की भी रीति है।



यमुना-तट पर विहार-भूमि में क्रीड़ा-कौतुक—पृ० ४८६



सुभद्रा-हरण—पृ० ४७६

धर्मज्ञ लोगों का कहना है कि वीर पुरुषों के लिए ऐसा ही विवाह प्रशंसनीय है। इसलिए हे मित्र अर्जुन, तुम मेरी इस कल्याणरूपिणी बहन को स्वयंवर से बलपूर्वक हर ले जाओ। मेरी सलाह यही है। इसमें कोई कुछ रुकावट नहीं डाल सकेगा; क्योंकि पहले से तुम्हारे हृदय के इस भाव को कोई क्या जान सकेगा ? अर्जुन और श्रीकृष्ण ने इस तरह सलाह करके उसी समय शीघ्रगामी दूतों को धर्मराज के पास यह समाचार देने के लिए भेजा। धर्मराज ने यह ख़बर पाकर अर्जुन और कृष्ण के विचार का अनुमोदन करते हुए अनुमति दे दी। २५

---

## दो सौ तेईस अध्याय

सुभद्रा-हरण और इससे यादवों का क्रुद्ध होना

वैशम्पायन कहते हैं—युधिष्ठिर के सहमत होने का समाचार दूतों के द्वारा अर्जुन को मिल गया। उन्हें मालूम हुआ कि देवी-पूजन के लिए सुभद्रा रैवतक पर्वत पर गई है। उसको हरने के लिए वही उपयुक्त समय जानकर अर्जुन ने कृष्ण से अपना विचार प्रकट किया। उन्होंने कृष्ण से सलाह करके कर्तव्य का निश्चय किया। फिर वे कृष्ण की अनुमति से उन्हीं के रथ पर सवार हुए। उस सुवर्णमण्डित श्रेष्ठ रथ में अलङ्कृत शैव्य, सुग्रीव आदि घोड़े जुते हुए थे। किङ्किणी-जाल उसकी शोभा बढ़ा रहे थे और उसमें सब शस्त्र रक्खे हुए थे। उसके पहियों की घरघराहट मेघ-गर्जन के समान प्रचण्ड थी। वह जल रही आग की ऐसी प्रभा से शोभायमान था। उसे देखकर शत्रु लोग भय से विह्वल हो उठते थे। उसी रथ पर बैठकर अर्जुन मृगया के बहाने रवाना हुए। पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन कवच पहने, गोह के चमड़े के अंगुलित्राण पहने, कमर में तरकस और तलवार बाँधे हुए थे। उधर सुभद्रा ने पर्वतराज रैवतक पर जाकर देव-पूजन और अन्य देव-कार्य करने के उपरान्त पर्वत की प्रदक्षिणा की। ब्राह्मणों ने शान्ति और स्वस्ति के मन्त्र पढ़े। इसके बाद सुभद्रा की सवारी द्वारका को चली। इसी बीच में मौक़ा पाकर कामदेव के बाणों से पीड़ित अर्जुन ने पास जाकर बलपूर्वक सुभद्रा का हाथ पकड़ लिया और उसको उठाकर अपने रथ पर बिठा लिया। पुरुषसिंह अर्जुन इस प्रकार परम सुन्दरी सुभद्रा को हरकर सुवर्णभूषित दिव्य रथ पर बिठाये हुए अपने नगर की ओर चल दिये।

सैनिक लोग अर्जुन के द्वारा सुभद्रा-हरण का दृश्य देखकर चिल्लाते हुए द्वारका की ओर दौड़े। सब मिलकर सुधर्मा सभा में गये। उन्होंने सभापाल से अर्जुन के पराक्रम और साहस का सब हाल कहा। उनके वचन सुनकर सभापाल ने सोने से मढ़ा हुआ, बड़े घोर १०
शब्दवाला, युद्ध का डङ्का बजवा दिया। उस शब्द को सुनकर खाना-पीना वग़ैरह ज़रूरी काम भी छोड़कर भोज, अन्धक और वृष्णिवंश के सब यादव चारों ओर से वहाँ आने लगे। सब

महारथी यादव इस तरह जमा होकर अग्नि के समान प्रकाशमान, सोने के, बहुमूल्य बिछौनों से अलङ्कृत, मणि-रत्न-विद्रुम-जटित आसनों पर बैठ गये। उनसे वह सभा देवमण्डली से शोभित इन्द्र की सभा जैसी मालूम हुई। सब लोग जब आसनों पर बैठ चुके तब सभापाल ने सुभद्रा-हरण का समाचार लेकर आये हुए सैनिकों को सामने करके सब हाल कहा। सब वृत्तान्त सुनकर क्रोध के मारे यादवों की आँखें लाल हो आईं। वे सब मानी थे, इस कारण अपने इस अपमान को न सह सके। सब उठ खड़े हुए। चारों ओर यही कोलाहल सुन पड़ने लगा कि झटपट रथ जोतो, प्रास नामक शस्त्र लाओ, महामूल्य दृढ़ कवच और धनुष ले आओ। कोई तो रथ जोतने के लिए अपने सारथियों को बुलाने लगा। कोई-कोई ताव के मारे अपने हाथ से ही सोने के गहनों से अलङ्कृत घोड़ों को रथों में जोतने लगे। रथ, कवच, ध्वजा आदि युद्ध की सामग्री लाई जाने लगी। सब लोग क्रोध के मारे चिल्लाकर युद्ध-यात्रा के लिए जल्दी करने लगे। तब कैलास पर्वत के समान गोरे और ऊँचे, मदिरा पिये हुए, नीला-
२० म्बर और वनमाला धारण किये हुए बलदेव ने कहा—जनार्दन कृष्ण तो कुछ कहते ही नहीं। फिर तुम ऐसी नासमझी क्यों कर रहे हो? इनके भाव को जाने बिना तुम लोग वृथा गरज रहे हो। ये महामति वासुदेव पहले अपना अभिप्राय प्रकट कर लें; उसके बाद हम इन्हीं के विचार के अनुसार काम करेंगे।



बलभद्र के ये उचित और मनोहर वचन सुनकर सब यादव शान्त हो गये। 'साधु, साधु' कहकर बलभद्र की बड़ाई करने के बाद वे लोग फिर सभा में जा बैठे। तब बलभद्र ने वासुदेव से कहा—हे जनार्दन, तुम यह सब देख-सुनकर भी चुपचाप क्यों बैठे हुए हो? अच्युत, अर्जुन तुम्हारा मित्र है। तुम्हारे ही कारण हम सबने अर्जुन का इतना आदर-सत्कार किया था, पर वह दुर्बुद्धि कुलाङ्गार वैसी पूजा और सम्मान का पात्र नहीं है। अपने को अच्छे वंश की सन्तान बताकर अभिमान करनेवाला ऐसा कौन आदमी होगा जो जिस पत्तल में खाय उसी में छेद करेगा? यह ठीक है कि इस प्रकार का सम्बन्ध स्थापित करने के लिए मनुष्य की इच्छा हो सकती है; किन्तु पहले के सम्बन्ध को मानकर नया सम्बन्ध स्थापित करनेवाला कौन आदमी ऐसे साहस का काम करना ठीक समझेगा? अर्जुन ने आज पहले के सब

हमारे किये उपकारों को भुलाकर हम लोगों का अपमान और तुम्हारा अनादर किया है। वह अपनी मौत के समान सुभद्रा को ज़बर्दस्ती राह से हर ले गया है। गोविन्द, उसने मेरे माथे पर पैर रखकर यह ढिठाई की है। इस कारण मैं उसके इस काम को किसी तरह नहीं सह सकता। साँप को अगर कोई लात मारे तो क्या कभी वह उसे सह सकता है? मैं ३०
आज अकेला ही इस पृथ्वी को कौरवों से ख़ाली कर दूँगा। मैं अर्जुन की इस ढिठाई को कभी क्षमा नहीं कर सकता।

मेघ और डङ्के के समान गम्भीर शब्द से कुपित बलदेव जब इस तरह गरजने लगे तब वृष्णि, भोज और अन्धक वंश के सब यादवों ने उसका अनुमोदन किया। ३२

---

हरणाहरणपर्व

## दो सौ चौबीस अध्याय

अर्जुन से सुभद्रा का ब्याह

वैशम्पायन कहते हैं—वृष्णिवंश के सब यादवों ने अपने-अपने पराक्रम का वर्णन करके बलभद्र की बातों का ही समर्थन किया। सबके अन्त में कृष्णचन्द्र धर्म और अर्थ से युक्त वाक्य कहने लगे—अर्जुन ने हमारे वंश का अपमान नहीं, बल्कि अधिक मान ही किया है। पाण्डव अर्जुन हम लोगों के धन का लोभी नहीं जानते। उन्होंने स्वयंवर की राह इससे नहीं देखी कि उसमें सुभद्रा के मिलने में सन्देह था। भाई, पशु की तरह कन्या को देना ही कौन पसन्द करेगा? और, धन लेकर सन्तान का बेचना ही किसको रुचेगा? मुझे जान पड़ता है कि इन्हीं दोषों का विचार करके [स्वयंवर या धन देकर] कन्या-ग्रहण करना अर्जुन ने ठीक नहीं समझा। वे सुभद्रा को बलपूर्वक हर ले गये हैं सही किन्तु यह काम क्षत्रिय-धर्म के विरुद्ध नहीं, अनुकूल ही है। यह सम्बन्ध हमारे योग्य हुआ है। सुभद्रा यशस्विनी है, और अर्जुन भी अपने पराक्रम और गुणों के कारण जगत्प्रसिद्ध हो रहे हैं। वे भरतवंशी राजा शान्तनु के परपोते और महात्मा कुन्तिभोज के नाती हैं। उनको कन्या देकर उनसे नाता जोड़ना किसे नापसन्द होगा? मुझे विश्वास है कि भगवान् शङ्कर के सिवा और कोई अर्जुन को युद्ध में परास्त नहीं कर सकता। फिर मेरे घोड़े और रथ इस समय अर्जुन के पास हैं और वे स्वयं युद्ध में बड़ी फुर्ती से लड़नेवाले योद्धा हैं। उनकी बराबरी या सामना कौन कर सकता है? इसलिए मेरी सलाह यही है कि उनसे लड़ने का उद्योग करना अच्छा नहीं। तुम लोग मित्र-भाव से जाकर अर्जुन को लौटा लाओ। देखो, जो अर्जुन अकेले ही बलपूर्वक तुम लोगों को १०
जीतकर सुभद्रा को लिये हुए अपने नगर को चले जायँगे तो यादवों की बड़ी बदनामी होगी। उनसे मित्रता के साथ मिलने में और सादर कन्या दे देने में हमारी बड़ाई होगी।

जनमेजय, कृष्ण का कहा सबने मान लिया और वही काम किया। यादवों की पूजा स्वीकार करके अर्जुन लौट आये। वहीं सुभद्रा के साथ उनका ब्याह कर दिया गया। सुभद्रा को ब्याहने के बाद अर्जुन एक वर्ष तक बड़े सुख से द्वारका पुरी में रहे। अन्त को उन्होंने पुष्कर क्षेत्र में जाकर शेष समय बिताया। जब बारह वर्ष का समय बीत गया तब वे फिर लौटकर खाण्डवप्रस्थ में आये।



इस प्रकार अपने नगर में पहुँचकर अर्जुन ने नम्रता के साथ युधिष्ठिर को प्रणाम किया और ब्राह्मणों की पूजा की। फिर वे द्रौपदी के पास गये। द्रौपदी अर्जुन को बहुत चाहती थी। इसलिए उसने कुछ प्रणय-कोप प्रकट करके कहा—हे कुन्ती-नन्दन, तुम यहाँ क्यों आये हो? यादव-नन्दिनी सुभद्रा के पास जाओ। सच है, दृढ़ बन्धन भी प्राचीन होने पर ढीला पड़ जाता है। द्रौपदी के ये खेदपूर्ण वचन सुनकर अर्जुन ने क्षमा माँगी; उसका क्रोध शान्त किया। इसके बाद उन्होंने लाल रेशमी कपड़े पहन रही सुभद्रा को ग्वालिन के वेश में रनिवास में भेजा। अत्यन्त रूपवती, यशस्विनी, कमलनयनी, वीरपत्नी सुभद्रा ने श्रेष्ठ राजभवन में जा करके कुन्ती के चरण छुए। बहू को देखकर कुन्ती बहुत प्रसन्न हुई। स्नेह के साथ उन्होंने सर्वाङ्गसुन्दरी सुभद्रा का माथा सूँघकर आशीर्वाद दिये। पूर्ण चन्द्रमा के समान मुखवाली सुभद्रा ने द्रौपदी के भी पैर छूकर कहा—बहन, मैं तुम्हारी दासी हूँ। द्रौपदी ने उठकर सुभद्रा को गले लगा लिया और "तुम्हारे स्वामी शत्रु-शून्य हों" कहकर आशीर्वाद दिया। सुभद्रा ने भी ख़ुश होकर कहा—ईश्वर करे, ऐसा ही हो। हे जनमेजय, अर्जुन के आ जाने से महारथी पाण्डवों को और कुन्ती को बड़ी ख़ुशी हुई।



२०

पाण्डवश्रेष्ठ अर्जुन के खाण्डवप्रस्थ नगर में पहुँचने की ख़बर पाकर कमलनयन कृष्ण बलभद्र के साथ खाण्डवप्रस्थ को गये। उनके साथ सब महारथी वीर वृष्णि-अन्धक-भोजवंश

के यादव, उनके भाई और पुत्र तथा सब सेना भी वहाँ गई। वृष्णिवंशी यादवों के सेनापति शत्रुदमन अक्रूर, महातेजस्वी अनाधृष्टि, साक्षात् बृहस्पति के शिष्य महाबुद्धिमान् उद्धव, महायशस्वी सत्यक, वीर सात्यकि, कृतवर्मा, प्रद्युम्न, साम्ब, निशठ, शङ्कु, पराक्रमी चारुदेष्ण, झिल्ली (रव), पृथु, महाबाहु सारण और अनेक वीर तथा श्रेष्ठ विद्वान् प्रधान यादव भी खाण्डवप्रस्थ में आये। ३२

कृष्ण के आने का समाचार पाकर उन्हें लेने के लिए युधिष्ठिर ने नकुल और सहदेव को भेजा। दोनों भाइयों ने जाकर कृष्ण-बलराम की अगवानी की। खाण्डवप्रस्थ पताका और ध्वजाओं से शोभित था; साफ़ सड़कें छिड़काव से ठण्ढी थीं; स्थान-स्थान पर फूल-पत्तों की सजावट थी; शीतल चन्दन और जल रहे अगुरु की सुगन्धि महक रही थी; जहाँ-तहाँ हृष्ट-पुष्ट मनुष्य और धनी सौदागर विद्यमान थे। ऐसे खाण्डवप्रस्थ में कृष्ण ने अपने साथियों-समेत प्रवेश किया। बलभद्र को आगे किये हुए श्रीकृष्ण वृष्णि, अन्धक और भोजवंश के यादवों के साथ राजभवन में पहुँचे। पुरवासियों और ब्राह्मणों ने उनका आदर किया।



युधिष्ठिर ने विधिपूर्वक बलराम को गले से लगाया। फिर कृष्ण को गले से लगाकर उनका माथा सूँघा। गोविन्द ने विनयपूर्ण व्यवहार से सत्कार करके युधिष्ठिर को सन्तुष्ट किया; पुरुषसिंह ४०
भीमसेन को भी प्रणाम किया। इसके बाद पाण्डवश्रेष्ठ युधिष्ठिर ने आये हुए वृष्णि-अन्धक-भोजवंश के यादवों की भी आव-भगत की। किसी की गुरु के समान पूजा की; किसी को सखा के समान आदर से सन्तुष्ट किया; किसी को प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और किसी के किये हुए प्रणाम को आप स्वीकार किया।

अन्त को वासुदेव ने सुभद्रा के ब्याह के उपलक्ष्य में यौतुक (दहेज) स्वरूप बहुत सा धन भेट किया। किङ्किणी-जाल से मण्डित, चार घोड़ों से युक्त, होशियार सारथी-सहित, सुवर्णमण्डित हज़ार रथ दिये। मथुरा देश की, दुधार पवित्र-मूर्त्ति दस हज़ार गायें दीं। सुवर्ण से अलङ्कृत, चन्द्रमा के समान सफ़ेद रङ्ग की हज़ार घोड़ियाँ दीं। काले रङ्ग की अयाल वाले, सफ़ेद, हवा के समान तेज़ चलनेवाले, सधे हुए हज़ार बढ़िया ख़च्चर दिये। स्नान, खान-पान और उत्सव के समय सेवा के लिए गोरे रङ्ग की, सुन्दर वेशवाली, सुन्दर प्रभावाली, सोने के गहनों से अलङ्कृत, तन्दुरुस्त और सेवा के कामों में निपुण हज़ार दासियाँ दीं। सवारी के ५०

योग्य वाह्लीक देश के घोड़े, क़ीमती कपड़े और कम्बल आदि भी दिये। इसके सिवा सोने के ढेर के ढेर अर्पण किये और सोने के जड़ाऊ गहने भी बहुत से दिये। जिनके मस्तकों से मद की तीन धाराएँ निकल रही थीं ऐसे पर्वत-शिखर-सदृश, युद्ध से न भागनेवाले, घण्टा और सोने की ज़ञ्जीरों से सजे हुए, हौदे आदि सामान से लैस हज़ार मस्त हाथी भी दिये। बलराम ने अर्जुन और सुभद्रा के ब्याह के बारे में अनुमति देकर यह सब विवाह के उपहार की सामग्री युधिष्ठिर को दी। वह यौतुक की सामग्री नदी के प्रवाह के समान पाण्डव-भवनरूपी महा-सागर में रक्खी गई। महारत्न-धन को लिये जा रहे असङ्ख्य आदमी जल-प्रवाह के समान जान पड़ते थे। वस्त्र-कम्बल आदि लहरों की लीला दिखा रहे थे। महागजराजों की उपमा ग्राह आदि जल-जन्तुओं से दी जा सकती थी। पताकाएँ सेवार के समान देख पड़ती थीं। पाण्डवों का ख़ज़ाना योंही भरा-पुरा था; इस समय उसके और भी अधिक समृद्धिशाली बनने से शत्रुओं का डर बिलकुल न रहा। वह सब सामग्री स्वीकार करके युधिष्ठिर ने महारथी वृष्णि-भोज-अन्धकवंश के यादवों का उचित सम्मान और सत्कार किया। सब यादव, स्वर्ग
६० में पुण्यात्मा लोगों की तरह, राजभवन में रहकर आमोद-प्रमोद करने लगे। इस समागम से कौरवों और यादवों के आनन्द का ठिकाना न था।

श्रेष्ठ वीर यादवगण कुछ समय तक इसी तरह विहार करके कौरवों से बिदा होकर और मूल्यवान् भेंट लेकर द्वारका को चल दिये। किन्तु महात्मा कृष्ण और कुछ समय के लिए अर्जुन के पास इन्द्रप्रस्थ में ही रह गये। वे अर्जुन के साथ यमुनातट के वनों में शिकार करते हुए विचरते थे। इन्द्राणी के जैसे जयन्त उत्पन्न हुए थे वैसे ही सुभद्रा के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बालक विशाल बाहु, विशाल वक्षःस्थल, विशाल नेत्र आदि अङ्गों से शोभित और पुरुषश्रेष्ठ, शत्रुओं का विनाश करनेवाला हुआ। उस बालक का नाम अभिमन्यु रक्खा गया। अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु 'अभी' अर्थात् निर्भय और 'मन्यु' अर्थात् क्रोधी थे; इसी से उनका नाम अभिमन्यु पड़ा। यज्ञ में शमीवृक्ष की दो लकड़ियों की रगड़ से जैसे आग प्रकट होती है वैसे ही अर्जुन और सुभद्रा के समागम से परम तेजस्वी अभिमन्यु का जन्म हुआ। अभिमन्यु के पैदा होने पर उस ख़ुशी में युधिष्ठिर ने ब्राह्मणों को दस हज़ार गायें दीं; और बहुत सा सोना, रत्न, धन आदि का भी दान किया। चन्द्रमा के समान प्रियदर्शन बालक अभिमन्यु बचपन से
७० ही पाण्डवों को, श्रीकृष्ण को, और पुरवासियों को प्यारे थे। कृष्ण ने बालक के जातकर्म से लेकर सब संस्कार किये। अभिमन्यु शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान दिन-दिन बढ़ने लगे। वेद पढ़ चुकने पर उन्होंने पिता अर्जुन से ही चार भागों और दस लक्षणों से युक्त दिव्य तथा मानुष धनुर्वेद सीखा। महाबली अर्जुन-पुत्र ने अस्त्र-ज्ञान, फुर्ती, होशियारी आदि युद्ध की सब बातें विशेष रूप से सीख लीं। अस्त्रों के लेने और छोड़ने के काम में अपने पुत्र अभिमन्यु

को ठीक अपने ही समान निपुण देखकर अर्जुन को बड़ी प्रसन्नता हुई। अभिमन्यु सब शास्त्रों के ज्ञाता, सब सुलक्षणों से युक्त, दुर्द्धर्ष, बैल के समान ऊँचे और पुष्ट कन्धोंवाले, फन उठाये साँप के समान भीषण, सिंह के समान रोबीले, महाधनुर्द्धर, मस्त हाथी की चाल से चलनेवाले, शूरता-वीरता में ठीक कृष्ण के ही तुल्य थे। उनका मुख पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर और वाणी मेघ और नगाड़े के शब्द के समान गम्भीर थी। इन्द्र जैसे अर्जुन को स्नेह की दृष्टि से देखकर प्रसन्न होते थे, वैसे ही अभिमन्यु को देखकर अर्जुन प्रसन्न हुए।

शुभ लक्षणों से युक्त द्रौपदी के भी पाँचों पाण्डवों से पाँच पुत्र उत्पन्न हुए। युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य, भीमसेन से सुतसोम, अर्जुन से श्रुतकर्मा, नकुल से शतानीक और सहदेव से श्रुतसेन का जन्म हुआ। ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से कहा—महाराज, शास्त्र के अनुसार आपके ८०
पुत्र के लक्षण देखने से जान पड़ता है कि वह शत्रुओं के प्रहार सहने में विन्ध्याचल के समान अटल होगा, इसलिए हम उसका नाम प्रतिविन्ध्य रखते हैं। भीमसेन ने हज़ार सोमयाग करके चन्द्र-सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र पाया है, इसलिए उसका नाम सुतसोम रखते हैं। अर्जुन ने बहुत से प्रसिद्ध कर्म करके लौटने पर यह पुत्र उत्पन्न किया है, इसलिए उनके पुत्र का नाम श्रुतकर्मा रखते हैं। कुरुवंश में एक शतानीक नाम के प्रतापी राजा हो गये हैं; नकुल अपने पुत्र का नाम उन्हीं के नाम पर रखना चाहते हैं, इसलिए उसका वही नाम होगा। द्रौपदी ने कृत्तिका नक्षत्र में सहदेव के पुत्र को उत्पन्न किया है, इसलिए उसका नाम श्रुतसेन रखिए।

द्रौपदी के ये पाँचों पुत्र एक-एक वर्ष के बाद पैदा हुए। धौम्य ने विधिपूर्वक उनके जातकर्म, मुण्डन, यज्ञोपवीत आदि संस्कार किये। सच्चरित्र, ब्रह्मचर्यव्रतधारी बालकों ने वेद-पाठ समाप्त करके अर्जुन से दिव्य और मानुष-युद्ध की कला तथा अस्त्रों की शिक्षा प्राप्त की। हे जनमेजय, देवपुत्र-सदृश महारथी बालकों को पाकर पाँचों पाण्डव परम प्रसन्न हुए। ८९

---

## खाण्डव-दाहपर्व

## दो सौ पच्चीस अध्याय

### जल-विहार

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, राजा धृतराष्ट्र और भीष्म पितामह की आज्ञा से इन्द्रप्रस्थ में रहकर पाण्डव लोग दिन-दिन और-और राजाओं को जीतकर अपनी समृद्धि बढ़ाने लगे। आत्मा जैसे पवित्र कर्मों और शुभ लक्षणों से युक्त शरीर को पाकर सुख से रहता है, वैसे ही सब प्रजा धर्मराज को अपना राजा पाकर सुख और स्वच्छन्दता के साथ रहने लगी। हे भरत-श्रेष्ठ, महाराज युधिष्ठिर समान रूप से ही धर्म, अर्थ, काम का सेवन करने लगे। वे नीतिज्ञ

पुरुष की तरह इन तीनों को आत्मा के समान प्रिय बन्धु समझते थे। तुल्य रूप से बँटे हुए धर्म, अर्थ और काम पृथ्वी पर युधिष्ठिर में मूर्त्तिमान् जान पड़ने लगे। और निर्लिप्त महाराज युधिष्ठिर मोक्ष के समान जान पड़ते थे। प्रजा ने ऐसा राजा पाया जो वेदपाठी, यज्ञों का कर्ता और भले आदमियों की रक्षा करनेवाला था। युधिष्ठिर के हाथों अन्य राजाओं की लक्ष्मी निश्चल हुई, बुद्धि अच्छी निष्ठावाली हुई और सब धर्म दिन-दिन बढ़ने लगे। चारों भाइयों-सहित युधिष्ठिर चार वेदों से सम्पन्न यज्ञ के समान शोभा को प्राप्त हुए। बृहस्पति के समान धौम्य आदि तेजस्वी और बुद्धिमान् ब्राह्मण इन्द्रतुल्य युधिष्ठिर के पास रहते थे। पूर्ण चन्द्र के समान राजा युधिष्ठर को देखकर उन पर प्रीति रखनेवाली प्रजा के नेत्र और मन समान रूप से सन्तुष्ट होते थे। प्रजा के लोग न केवल मन ही मन प्रसन्न होते थे; वरन् उनके हृदय को जैसा
१० आनन्द होता था वैसे कार्य भी वे करते थे। बुद्धिमान् प्रियभाषी राजा युधिष्ठिर के राज्य में कहीं अनुचित, असह्य, अप्रिय और असत्य भाषा नहीं सुन पड़ती थी। तेजस्वी युधिष्ठिर इस तरह सब लोगों का और अपना हित करते हुए प्रसन्नता और सन्तोष के साथ अपने जीवन का समय बिताने लगे। पाण्डवों को इस प्रकार आनन्दित और सन्ताप-हीन देखकर उनके तेज-प्रताप से दुष्ट राजा लोग दुखी होने लगे।

एक दिन अर्जुन ने कृष्ण से कहा—मित्र, बड़ी गरमी मालूम हो रही है। चलो, यमुना में जलक्रीड़ा करने चलें। इष्ट-मित्रों के साथ हम लोग क्रीड़ा करेंगे और शाम को लौट आवेंगे। तुम्हारी क्या सलाह है? वासुदेव ने कहा—अर्जुन, मेरा भी जी चाहता है कि हम सब अपने इष्ट-मित्रों के साथ चलकर जल-विहार का आनन्द प्राप्त करें।

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, यों सलाह करके दोनों ने धर्मराज से आज्ञा ली। फिर बन्धु-बान्धवों के साथ दोनों यमुना-तट को चले। सब लोग वहाँ से चलकर विहारभूमि में पहुँचे। वहाँ अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे। अनेक भवनों से वह स्थान इन्द्र की पुरी के समान जान पड़ता था। रहने के लिए बने हुए उन भवनों में स्वादिष्ठ खाने-पीने की चीज़ें भरी पड़ी थीं और बहुमूल्य रत्न, सुगन्धित पदार्थ तथा पुष्पमाला आदि सब सामान रक्खा था।
२० वहाँ पहुँचकर कृष्ण और अर्जुन के साथी लोग क्रीड़ा-कौतुक करने लगे। कृष्ण और अर्जुन की इच्छा के अनुसार उन्नत कुचों और विशाल नितम्बोंवाली मत्तगामिनी स्त्रियाँ क्रीड़ा करने लगीं। कोई वन में, कोई जल में और कोई घरों में ही क्रीड़ा करने लगी। द्रौपदी, सुभद्रा आदि सुन्दरियाँ अपने साथ आनेवाली स्त्रियों को प्रसन्न होकर कपड़े-गहने आदि देने लगीं। कुछ स्त्रियाँ नाचने लगीं, कुछ हँसने लगीं और कुछ श्रेष्ठ मदिरा पीने लगीं। नशे में मस्त होकर कोई-कोई आपस में मार-पीट करने और रोने भी लगीं। कोई-कोई आपस में हँसी-दिल्लगी और रहस्य की बातचीत करने लगीं। सब लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार आमोद-प्रमोद कर

रहे थे। बाँसुरी, वीणा, मृदङ्ग आदि का मनोहर शब्द उस वन में और समृद्धिशाली भवनों में गूँज रहा था।

'जनमेजय! इस तरह महान् उत्सव आरम्भ होने पर महात्मा, शत्रुनगर-विजयी अर्जुन और श्रीकृष्ण दोनों मित्र पास के एक मनोहर स्थान में बहुमूल्य आसनों पर बैठकर उस उत्सव को देखने लगे। वे पहले के किये हुए पराक्रमसूचक कामों के सम्बन्ध की और अन्यान्य विषयों की बातें करते हुए जी बहलाने लगे। जैसे देवलोक में दोनों अश्विनीकुमार बैठते हैं वैसे ही वासुदेव और अर्जुन उस स्थान पर एकत्र बैठे हुए थे। इसी समय एक ब्राह्मण देवता उनके सामने आये। बड़े शाल वृक्ष के समान लम्बा उनका डील था। तपे हुए सोने की सी उनके शरीर की कान्ति थी। पिङ्गलवर्ण की उनकी जटाएँ और दाढ़ी-मूछें थीं। वे बल्कल पहने, सूर्य के समान तेजस्वी थे। उन अलौकिक तेज से प्रदीप्त ब्राह्मण को अपने सामने देखकर श्रीकृष्ण और अर्जुन उठ खड़े हुए। वे ब्राह्मण देवता खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से आये हुए साक्षात् अग्निदेव थे। ३२



## दो सौ छब्बीस अध्याय

खाण्डव वन जलाने के लिए अग्नि की प्रार्थना

वैशम्पायन कहते हैं कि ब्राह्मण-रूपधारी अग्नि ने, खाण्डव वन के पास बैठे हुए, महावीर अर्जुन और श्रीकृष्ण से कहा—तुम दोनों महापुरुष संसार के सब वीरों में श्रेष्ठ हो। मैं बहुत भोजन करनेवाला ब्राह्मण हूँ; सदा अमित भोजन किया करता हूँ। इस समय तुम्हारे पास आकर यह भिक्षा माँगता हूँ कि तुम लोग मुझे आहार देकर सन्तुष्ट करो।

वीर अर्जुन और श्रीकृष्ण ने उनके ये वचन सुनकर कहा—बताइए, कैसा आहार पाने से आप सन्तुष्ट होंगे? हम वही आहार आपके लिए जुटाने का उपाय करें। इस प्रकार आहार के बारे में पूछ रहे श्रीकृष्ण और अर्जुन से अग्नि ने कहा—मैं साधारण अन्न नहीं खाना चाहता। मैं अग्नि हूँ। जो आहार मेरे योग्य हो वह मुझे दो। देवराज इन्द्र सदा इस खाण्डव वन की

रक्षा करते हैं, इसी से मैं इसे भस्म नहीं कर सकता। इन्द्र का सखा तक्षक नाग अपने अनुचरों के साथ इस वन में रहता है; इसी कारण वज्रपाणि इन्द्र सदा इसकी रक्षा किया करते हैं। उसी तक्षक के साथ और भी बहुत से प्राणी इस वन में निडर बने रहते हैं। उन्हें भस्म करने की इच्छा रहने पर भी मैं इन्द्र के प्रभाव से कुछ नहीं कर सकता। वे मुझे जब प्रज्वलित देखते हैं तब मेघों से जल की वर्षा करके मुझे शान्त कर देते हैं। इस कारण बड़ी लालसा होने पर भी मैं खाण्डव वन को जला नहीं सकता। तुम दोनों वीर अस्त्र-विद्या में निपुण हो। तुम जो मेरी सहायता करो तो मैं इस वन को जला डालूँ। तुम ऐसा कर सको तो मैं खाण्डव वन को जलाकर उस आहार से अच्छी तरह तृप्त हो जाऊँगा। मैं तुमसे यही अन्न चाहता हूँ। मेघों से गिरी हुई जल-धारा को, और जो जीव यहाँ से भाग जाना चाहें उनको तुम अपनी अद्भुत अस्त्र-विद्या से रोक रखना।

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, अग्नि ने इन्द्र के द्वारा सुरक्षित और अनेक प्राणियों के निवास-स्थान खाण्डव वन को जलाने की इच्छा क्यों की? उन्होंने कुपित होकर यदि खाण्डव वन को जलाया तो उसका अवश्य कोई विशेष कारण होगा। ब्रह्मन्, मैं इस विषय को विस्तार के साथ सुनना चाहता हूँ। इसलिए जिस कारण से खाण्डव वन जलाया गया वह मुझसे कहिए।

वैशम्पायन ने कहा—हे नरश्रेष्ठ, ऋषियों के मुँह से मैंने जो खाण्डव-दाह का ऐतिहासिक वृत्तान्त सुना है उसे कहता हूँ, सुनो। महाराज, पुराणों में वर्णन किया गया है कि पूर्व समय में इन्द्र-तुल्य बल-विक्रमशाली जगत्प्रसिद्ध श्वेतकि नाम के राजा थे। उनके समान बुद्धिमान्, दाता और यज्ञ करनेवाला कोई राजा उस समय नहीं था। उन्होंने दक्षिणा में बहुत-बहुत धन देकर ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ और देवयज्ञ आदि पाँच महायज्ञ किये थे। उनकी प्रवृत्ति हर घड़ी केवल काम करने, यज्ञों के अनुष्ठान और दान आदि पुण्यकर्मों के सिवा और तरफ़ नहीं थी। बुद्धिमान् राजा सदा ऋत्विजों के साथ यज्ञ ही किया करते थे। हवन का धुआँ लगने से ब्राह्मणों के नेत्र ख़राब हो गये और उन्होंने व्याकुल होकर राजा को छोड़ दिया। ब्राह्मणों को जाते देख बारम्बार प्रवृत्तिमार्ग और कर्मकाण्ड की प्रशंसा के वाक्य कहकर राजा ने उन्हें बुलाने की चेष्टा की, पर उन्होंने फिर आकर यज्ञ कराना स्वीकार नहीं किया। तब राजा ने उन ऋत्विजों की अनुमति लेकर दूसरे ब्राह्मणों को बुलाया और उन पुरोहितों के द्वारा, आरम्भ किये हुए, यज्ञ को समाप्त किया।

कुछ दिनों बाद राजा ने एक सौ वर्ष में समाप्त होनेवाला महायज्ञ करने की इच्छा प्रकट की, किन्तु पुरोहित वह यज्ञ कराने को तैयार नहीं हुए। तब अपने आत्मीय स्वजनों के साथ वे महाराज पैरों पड़कर, ख़ुशामद करके और बहुत सा दान देकर, अनेक उपायों से उन ब्राह्मणों को प्रसन्न और राज़ी करने का यत्न करने लगे। आलस्य छोड़कर तत्परता के साथ

राजा ब्राह्मणों के पीछे पड़ गये। परन्तु परमप्रभावशाली पुरोहित किसी तरह उनकी इच्छा पूरी करने के लिए राज़ी नहीं हुए। तब उन राजर्षि ने कुछ कुपित होकर आश्रमों में रहनेवाले मुनियों से कहा—हे ब्राह्मणो, यदि मैं पतित हो जाऊँ अथवा आप लोगों की सेवा-शुश्रूषा न करूँ तो मुझ निन्दित को आप लोग छोड़ दे सकते हैं। किन्तु जब मैं न तो पतित हूँ और न आप लोगों की सेवा तथा सत्कार से विमुख ही हूँ तब अन्यायपूर्वक मुझे छोड़ देना या यज्ञ कराना अस्वीकार करके पुण्यकार्य में विघ्न डालना कभी आप लोगों के योग्य कार्य नहीं कहा जा सकता। मैं शरणागत हूँ, आप लोग मुझ पर प्रसन्न हों। हे ब्राह्मणश्रेष्ठो, मैं समझाकर आपसे कहता हूँ, मेरा कार्य करना आप लोग स्वीकार कर लें। अथवा किसी विद्वेषभाव के ३०
कारण आप लोग मेरा त्याग करते हैं, तो मैं पुरोहित पद स्वीकार कराने के लिए अन्य ब्राह्मणों के पास जाऊँगा और अपने कार्य की सिद्धि के लिए प्रार्थना, धन-दान आदि, के द्वारा उन्हें प्रसन्न करके उनकी सहायता से अपनी इच्छा पूरी करूँगा। इतना कहकर राजा चुप हो रहे।

अन्त को पुरोहितों ने जब समझ लिया कि वे उस समय बहुत थके हुए होने के कारण राजा को यज्ञ कराने में असमर्थ हैं, तब उन्होंने भी कुछ कुपित होकर राजा से कहा—राजन्, आप देवताओं की प्रसन्नता के लिए सदा यज्ञ-हवन आदि कर्म किया ही करते हैं। हम लगातार आप का काम करते-करते थक गये हैं। हम आपको अभी यज्ञ नहीं करा सकेंगे, आप हमें छोड़ दीजिए। आप मोहवश यज्ञ करने के लिए अभी तैयार हैं और जल्दी मचा रहे हैं, इसलिए दूसरा पुरोहित कर लीजिए। आप रुद्र के पास जाइए; वे आपको यज्ञ करावेंगे।

ऋषियों के ये आक्षेप-पूर्ण वचन सुनकर राजा को भी क्रोध आ गया। तब वे वहाँ से चलकर कैलास पर्वत पर गये। बहुत दिनों तक उपवास करके उन्होंने देव-देव महादेव की आराधना की। राजा कभी बारह पहर के बाद और कभी सोलह पहर के बाद केवल कन्द-मूल-फल खा लेते थे। फिर छः महीने तक अचल खम्भे की तरह खड़े रहकर उन्होंने तप किया। उनकी पलक नहीं लगती थी; वे ऊपर को हाथ उठाये हुए खड़े थे। महाराज, राजा की इस घोर तपस्या से भगवान् शङ्कर उन पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने प्रकट होकर राजा को दर्शन दिया और कहा—राजन्, मैं तुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ। तुम्हारा भला हो। ४०
अब तुम अपनी इच्छा के अनुसार मुझसे वरदान माँगो। राजर्षि श्वेतकि ने परम तेजस्वी शङ्कर के ये वचन सुनकर कहा—हे देव-देव, आपको सब लोग पूजनीय समझकर प्रणाम करते हैं। आप जो मुझ पर प्रसन्न हैं तो मेरे पुरोहित होकर मुझे यज्ञ कराइए। राजा के ये वचन सुनकर भगवान् रुद्र प्रसन्न हुए। उन्होंने हँसकर कहा—राजन्, यज्ञ कराने का हम देवताओं को अधिकार नहीं है परन्तु तुमने इसी इच्छा से कठोर तप किया है, इसलिए एक शर्त पर मैं तुमको यज्ञ कराऊँगा। यदि तुम बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए

एकाग्रता के साथ अखण्ड घी की धारा से दिन-रात अग्नि को तृप्त कर सको तो मैं तुम्हारी यह इच्छा पूरी करूँगा।

राजा ने स्वीकार कर लिया। उन्होंने बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत से रह करके अखण्ड घी की धार से अग्नि को तृप्त किया। बारह वर्ष पूरे होने पर राजा फिर कैलास पर भगवान् भूतनाथ के पास गये। उन्हें देखकर महेश्वर बहुत प्रसन्न हुए। महादेव ने कहा—राजन्, मैं तुम्हारे इस कार्य से बहुत प्रसन्न हुआ; किन्तु शास्त्र की व्यवस्था के अनुसार ब्राह्मणों को ही यज्ञ कराने का अधिकार है। मैं स्वयं इस समय तुम्हें यज्ञ नहीं करा सकता। पृथ्वी पर दुर्वासा नाम से प्रसिद्ध एक बड़े क्रोधी और तेजस्वी ब्राह्मण हैं; उक्त ऋषि को मेरा ही अंश समझो। मेरी आज्ञा से वही तुमको यज्ञ करावेंगे। तुम यज्ञ की सामग्री एकत्र करो।

रुद्र की आज्ञा से राजा श्वेतकि लौटकर राजधानी में आये। उन्होंने सब यज्ञ की सामग्री एकत्र की। सामग्री जमा करके वे फिर रुद्र के पास गये। उन्होंने कहा—प्रभो, मैंने सब सामग्री जमा कर ली है; अब मेरी इच्छा पूरी कीजिए। मैं कल ही यज्ञ की दीक्षा लेना चाहता हूँ। महात्मा राजा के ये वचन सुनकर रुद्र ने दुर्वासा को याद किया। उनके पहुँचने पर रुद्र ने कहा—मुनिवर, इन महाभाग राजा का नाम श्वेतकि है। तुम मेरी आज्ञा से इन्हें यज्ञ कराओ। दुर्वासा ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद महात्मा श्वेतकि की इच्छा के अनुसार दुर्वासा ने वह महायज्ञ आरम्भ किया। सौ वर्ष के बाद वह यज्ञ समाप्त हुआ। राजा ने ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर छका दिया। उस यज्ञ के याजक और सदस्यगण दुर्वासा की आज्ञा पाकर, सन्तुष्ट होकर, अपने-अपने आश्रम को गये। अन्त को महात्मा दुर्वासा भी अपने आश्रम को गये।



पुरवासियों ने राजाओं में श्रेष्ठ श्वेतकि का अभिनन्दन किया, मागधों ने स्तुति की और वेदपाठी ब्राह्मणों ने आदर किया। बहुत समय बीतने पर उक्त राजा अपने सदस्यों और ऋत्विजों के साथ स्वर्ग को सिधारे। राजा श्वेतकि के यज्ञ में लगातार बारह वर्ष तक अग्नि ने घी ( हवि ) पिया था। इतना अधिक घी पी लेने से अग्निदेव यहाँ तक तृप्त हो गये कि अन्य किसी का दिया हुआ हवि ग्रहण करने की उनमें सामर्थ्य न रह गई। अति-भोजन के मारे अग्नि का रङ्ग फीका पड़ गया, उनका प्रकाश भी धीमा हो गया।

महाराज, उस यज्ञ में लगातार घी पीते-पीते अग्नि को अजीर्ण हो गया। वे प्रतिदिन तेज से हीन और पीड़ित होने लगे। उनके अङ्ग शिथिल पड़ गये। अपने तेज की कमी देखकर अग्निदेव सर्वलोक-पूजित ब्रह्मा के लोक को गये। वहाँ बैठे हुए ब्रह्मा के पास जाकर अग्नि ने कहा—हे जगदीश्वर, राजा श्वेतकेतु के यहाँ अधिक भोजन करने के कारण मुझे भोजन से अरुचि हो गई है। मेरा तेज क्षीण होता जा रहा है। मैं दुबला भी हो गया हूँ। ऐसी कृपा ७०
कीजिए, जिससे मैं फिर पहले की तरह चङ्गा हो जाऊँ; मेरा तेज और स्वास्थ्य पहले का सा हो जाय।

सब लोकों के विधाता ब्रह्माजी अग्नि के ये वचन सुनकर मुसकाकर कहने लगे—महाभाग, तुम बारह वर्ष तक लगातार वसुधारा पात्र से गिर रही घी की धारा को पीते रहे हो। इसी से तुम्हारी यह दशा हुई है। तेज से हीन होने के कारण तुम खेद न करो। तुम्हें अपना पहले का तेज और स्वास्थ्य फिर मिल जायगा। हे अग्नि! पहले तुमने देवताओं की आज्ञा के अनुसार, उनके शत्रु असुर आदि की भयानक निवासभूमि, जिस खाण्डव वन को जला दिया था उसमें इस समय फिर अनेक प्राणी रहने लगे हैं। तुम उन प्राणियों के मांस और चर्बी से फिर चङ्गे ( प्रकृतिस्थ ) हो सकते हो। उसे जलाने से तुम्हारी अरुचि हट जायगी और तुम्हारा तेज फिर वैसा ही हो जायगा। इसलिए तुम जाकर शीघ्र उस वन को जलाओ। उसको जलाते ही तुम्हारी यह ग्लानि दूर हो जायगी।

ब्रह्मा के ये वचन सुनकर अग्निदेव वहाँ से चल दिये और शीघ्र ही खाण्डव वन में पहुँचकर वायु की सहायता से प्रज्वलित हो उठे। प्रचण्ड अग्नि को कुपित होकर प्रज्वलित देख खाण्डव वन के निवासी जीव, उन्हें बुझाने के लिए, यथाशक्ति यत्न करने लगे। सैकड़ों-हज़ारों हाथी क्रुद्ध होकर फुर्ती से सूँड़ में जल भर लाकर अग्नि के ऊपर छोड़ने लगे। बड़े-बड़े बहुत सिरोंवाले साँप ८०
क्रोध से अधीर होकर झटपट मस्तकों के द्वारा जल ला-लाकर अग्नि पर डालने लगे। हे जनमेजय, इस तरह और-और प्राणियों ने भी पानी और धूल आदि डाल-डालकर अग्नि को बुझा दिया। महाराज, अग्नि ने सात बार प्रज्वलित होकर खाण्डव वन को जलाना चाहा; पर प्राणियों ने [ और इन्द्र ने ] उन्हें बुझा दिया। ८३

---

## दो सौ सत्ताईस अध्याय

अर्जुन का अग्नि की प्रार्थना को स्वीकार करना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, ग्लानि और अजीर्ण से पीड़ित अग्नि जब खाण्डव वन जलाने के बारे में निराश हो गये तब बहुत ही क्रुद्ध होकर ब्रह्मा के पास फिर गये। उन्होंने उनको सब हाल कह सुनाया। ब्रह्मा ने दम भर सोचकर कहा कि हे निष्पाप, मैंने इसका एक

अच्छा उपाय सोचा है; उससे तुम [ इन्द्र के सामने ही ] खाण्डव वन को जला सकोगे। हे अग्नि, नर-नारायण नाम से प्रसिद्ध सनातन ऋषियों की सहायता से तुम्हारा काम सहज ही हो जायगा। अभी कुछ समय तक प्रतीक्षा करो। ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर अग्निदेव बाट जोहने लगे। बहुत समय बीत जाने पर ब्रह्माजी की बात का स्मरण करके अग्निदेव जब फिर उनके पास पहुँचे तब उन्होंने कहा कि नर-नारायण ने देवकार्य के लिए पृथ्वी पर अवतार लिया है। वे वहाँ अर्जुन और श्रीकृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हैं। इस समय वे दोनों एक साथ खाण्डव वन के पास ही हैं। तुम उनके पास जाकर खाण्डव वन के जलाने में उनसे सहायता माँगो।
१० तब, देवताओं से रक्षित होने पर भी, उस वन को तुम जला सकोगे।

ब्रह्मा के ये वचन सुनकर अग्निदेव अर्जुन और श्रीकृष्ण के पास गये। राजन्! अग्नि ने उनके पास जाकर जो कुछ कहा, सो मैं पहले ही सुना चुका हूँ। तब, इन्द्र की इच्छा न होने के कारण खाण्डव वन जलाने में असमर्थ अग्नि से अर्जुन ने यों समयोचित कहा—भगवन्, मेरे पास असंख्य दिव्य अस्त्र हैं। उनकी सहायता से मैं इन्द्र के साथ भी युद्ध कर सकता हूँ; किन्तु उस घोर युद्ध के समय मेरे बाहुबल को सँभाल सकनेवाला दृढ़ धनुष मेरे पास नहीं है। फिर जल्दी-जल्दी बाण चलाने होंगे, इसलिए बहुत से बाणों की भी ज़रूरत है। मेरे पास जो रथ है वह भी यथेष्ट बाणों के बोझ को नहीं लाद सकता। इस कारण हवा की तरह तेज़ जानेवाले सफ़ेद रङ्ग के दिव्य घोड़ों से युक्त, चलते समय मेघ के समान गम्भीर शब्द करनेवाला, सूर्य के समान चमकीला रथ भी चाहिए। और, इन श्रीकृष्ण के पास भी इनके पराक्रम के सदृश कोई शस्त्र नहीं है, जिससे कि ये युद्ध में नागों और पिशाचों को मार सकें। भगवन्, इसलिए ऐसा उपाय बताइए जिससे हम आपका कार्य सिद्ध कर सकें। महावन में वर्षा कर रहे इन्द्र को रोकने के लिए युद्ध की सामग्री चाहिए। पौरुष का जो कार्य है वह करने के लिए हम लोग
२१ तैयार हैं। इस काम के योग्य युद्ध का सामान आप दीजिए।

---

## दो सौ अट्ठाईस अध्याय

अग्नि से अर्जुन को धनुष आदि मिलना

वैशम्पायन कहते हैं—अर्जुन की यह प्रार्थना सुनकर भगवान् अग्नि ने जल में रहनेवाले, जलेश, अदिति-नन्दन, लोकपाल वरुण को देखने की इच्छा से उन्हें स्मरण किया। वरुण उनके सामने प्रकट हो गये। चौथे लोकपाल सनातन देव वरुण का यथोचित सम्मान करके अग्नि ने उनसे कहा—आपको राजा सोम ने जो अक्षय तर्कस, दिव्य धनुष और वानर-चिह्न-युक्त ध्वजावाला

रथ दिया है सो सब शीघ्र मुझे दीजिए; और चक्र भी दीजिए। अर्जुन और श्रीकृष्ण इस समय उस गाण्डीव धनुष और चक्र की सहायता से मेरा बड़ा भारी काम सिद्ध करेंगे। वरुण ने वह सब सामग्री देना स्वीकार कर लिया। अब वरुण देव ने महावीर्य-युक्त, यश और कान्ति को



बढ़ानेवाला, किसी शस्त्र से न कटनेवाला और सभी शस्त्रों को चौपट कर देनेवाला, सब शस्त्रों से बढ़िया, अद्भुत, शत्रु-सेना को मथ डालनेवाला, योद्धा के राज्य को बढ़ानेवाला, अकेले ही लाखों धनुषों के समान, क्षत-रहित, बहुत दिनों से देवता-दानव-गन्धर्व आदि के द्वारा पूजित और प्रशंसित दिव्य गाण्डीव धनुष तथा अक्षय तर्कस अर्जुन को दिये। मन और पवन ९
के समान तेज़ चलनेवाले, सफेद मेघ-तुल्य, चाँदी के समान चमकीले, सुवर्ण-माला से भूषित, गन्धर्वदेश के घोड़े जिसमें जुते हुए थे वह सब सामग्रियों से युक्त, देव-दानव आदि के लिए अजेय, महाशब्द करनेवाला, सूर्य-सदृश चौंधिया देनेवाला, रत्नजटित रथ भी दिया। उस रथ को विश्वकर्मा ने बहुत तपस्या करके बनाया था। उसी पर बैठकर राजराज चन्द्रदेव ने दानवों को हराया था। उसकी दीप्ति दूर से ही देख पड़ती थी और वह नये मेघ के समान जान पड़ता था। उस पर मनोहर, सुवर्णमय दण्डयुक्त ध्वजा फहरा रही थी। उस ध्वजा पर सिंह-शार्दूल के समान भयङ्कर शरीरवाला दिव्य वानर इस ढब से बैठा था, मानों वह तीनों लोकों को भस्म कर डालेगा। उस ध्वजा पर और भी ऐसे उग्र महाभूतों का निवास था जिनका शब्द सुनकर शत्रु अचेत हो जाया करते हैं।

कवच, खड्ग, अङ्गुलित्राण (दस्ताने) आदि पहने हुए अर्जुन ने पहले उस रथ की प्रदक्षिणा की, फिर देवताओं को प्रणाम किया। विमान पर पुण्यात्मा पुरुष जैसे बैठते हैं वैसे ही अर्जुन भी, अनेक पताकाओं से शोभित, उस रथ पर सवार हुए। पहले ब्रह्मा ने जिसे बनाया था उस दिव्य गाण्डीव धनुष को पाकर अर्जुन के आनन्द का ठिकाना न रहा। अग्नि को प्रणाम करके अर्जुन ने उस धनुष को हाथ में लिया और उस पर डोरी चढ़ाई। बली अर्जुन ने २०
जिस समय उसे झुकाकर उस पर डोरी चढ़ाई उस समय उसका शब्द जिसने सुना उसी का कलेजा काँप उठा। इस प्रकार दिव्य धनुष, रथ, अक्षय तर्कस आदि सामान पाकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें निश्चय हो गया कि अब अच्छी तरह खाण्डव-दाह के काम में अग्नि

की सहायता कर सकेंगे। अग्नि ने श्रीकृष्ण को दिव्य चक्र और प्रिय आग्नेय अस्त्र दिया। चक्र और अस्त्र पाकर श्रीकृष्ण भी अग्नि की सहायता करने को तैयार हो गये।

अब अग्नि ने श्रीकृष्ण से कहा—हे मधुसूदन, आप इस चक्र से मनुष्यों के सिवा असुर आदि अन्य प्राणियों को भी नष्ट कर सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं। आप इस चक्र के प्रभाव से सब देव, दानव, राक्षस, पिशाच, नाग और मनुष्यों से अधिक शक्तिशाली हो गये। इस चक्र में एक विशेषता यह है कि आप जब-जब इसे चलावेंगे तब-तब यह शत्रुओं का नाश करके फिर आपके पास आ जायगा।

वैशम्पायन कहते हैं—वरुण ने प्रसन्न होकर दैत्यों का संहार करनेवाली, वज्रपात-सदृश शब्द से शत्रुओं को दहलानेवाली, 'कौमोदकी' गदा श्रीकृष्ण को दी।

इस प्रकार ध्वजा, रथ और शस्त्र पाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने कहा—हे अग्निदेव, अब हम सब देवताओं और दैत्यों से एक साथ संग्राम कर सकते हैं। साँप की रक्षा के लिए
३० यदि अकेले इन्द्र आवेंगे तो उनसे लड़ना तो कोई बड़ी बात नहीं।

अर्जुन ने कहा—अग्निदेव, इस त्रिलोकी में कोई ऐसा काम नहीं है, जिसे इस चक्र की सहायता से पराक्रमी कृष्णचन्द्र न कर सकें। मैं भी गाण्डीव धनुष और अक्षय तर्कस पाकर सब लोकों को जीत लेने का उत्साह रखता हूँ। इसलिए अब आप अपनी इच्छा के अनुसार इस महावन को चारों ओर से घेरकर जलाइए; हम आपकी सहायता करने को तैयार हैं।

वैशम्पायन कहते हैं—महात्मा अर्जुन और श्रीकृष्ण के यों कहने पर तेजोमय रूप धारण करके अग्निदेव उस वन को जलाने लगे। सात जिह्वाएँ ( शिखाएँ ) फैलाकर, चारों ओर से घेरकर, दावानल के रूप से जब वे उस वन को जलाने लगे तब प्रलयकाल सा जान पड़ने लगा। अग्नि के प्रज्वलित होने से चारों ओर मेघ-गर्जन का सा घोर शब्द सुन पड़ने लगा। अग्नि का वह प्रचण्ड रूप देखकर सब प्राणी काँप उठे। आग से जल रहे उस वन की वैसी ही शोभा
३७ हुई जैसी सूर्य की किरणों से व्याप्त सुमेरु पर्वत की होती है।

---

## दो सौ उनतीस अध्याय

### डरे हुए देवताओं की प्रार्थना से इन्द्र का जल बरसाना

वैशम्पायन कहते हैं—उस समय महारथी अर्जुन और श्रीकृष्ण उस वन के चारों ओर घूम-घूमकर भाग रहे असुर, पिशाच आदि का नाश करने लगे। जिधर खाण्डव-निवासी प्राणी भागते देख पड़ते थे उधर ही ये दोनों वीर दौड़ते थे। इतनी तेज़ी के साथ श्रीकृष्ण और अर्जुन चर्ख़ी की तरह अपने रथों को चारों ओर फिरा रहे थे कि दोनों रथ एक में सटे हुए से जान पड़ते



खांडववन-दहन—पृ० ४६५

थे। खाण्डव वन को जलते देखकर सैकड़ों-हज़ारों प्राणी भयानक शब्द से चिल्लाते हुए भाग निकले। किसी प्राणी का एक अङ्ग जल गया। कोई अधिक आँच से झुलसकर रह गया। किसी की आँखें फूट गईं। किसी के अङ्ग फट गये। कोई डर से भाग खड़ा हुआ। कोई पिता को, कोई बेटे को, कोई भाई को छाती से लगाकर वहीं जल मरे; स्नेह के मारे उन्हें छोड़कर भाग नहीं सके। कुछ दाँतों से ओठ चबाते हुए अनेक बार ऊपर को उछले, किन्तु फिर चक्कर खाकर उसी आग में गिर पड़े। जिनके पङ्ख, आँख, पैर आदि अङ्ग जल गये थे ऐसे बहुत से पक्षी और पशु आदि शरीरधारी वहाँ, स्थान-स्थान पर, तड़पते देख पड़ रहे थे। वन के भीतर के जलाशयों का पानी खौलने लगा। उनके भीतर रहनेवाले कछवे, मछली आदि जीव मरकर ऊपर उतरा रहे थे। उस संहार के समय कहीं पर आग में जल रहे प्राणी शरीर-धारी अग्नि के समान जान पड़ रहे थे। उस वन से जो पक्षी ऊपर को उड़कर जान बचाना चाहते थे उन्हें अर्जुन, अपने बाणों से टुकड़े-टुकड़े करके, फिर आग में गिरा देते थे। वे पक्षी बाणों से घायल होने पर घोर चिल्लाहट के साथ वेगपूर्वक कुछ दूर ऊपर जाकर फिर उसी जल रहे वन में गिर पड़ते थे। समुद्र मथने के समय जैसा भयानक शब्द हुआ था वैसा ही भयानक शब्द उन बाणों से घायल और अग्नि से प्रज्वलित पक्षियों का सुन पड़ने लगा। आकाश-मण्डल तक उठ रही आग की लपटें देखकर स्वर्ग आदि लोकों के निवासी देवता भी बहुत घबरा उठे।

वैशम्पायन कहते हैं—महात्मा देवगण आग की गर्मी से अत्यन्त तपकर जब घबरा उठे तब, ऋषियों को आगे करके, असुर-शत्रु इन्द्र के पास गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे देवराज, ये प्रचण्ड अग्निदेव क्या सम्पूर्ण मनुष्य-लोक को भस्म कर डालेंगे? क्या हम लोगों के लोकों के भी प्रलय का समय आ गया है? देवताओं के मुँह से अग्नि के प्रचण्ड होने का हाल सुनकर और आप भी वह दृश्य देखकर इन्द्रदेव खाण्डव वन की रक्षा करने को चले। देवराज इन्द्र अनेक रूपोंवाले मेघों से आकाशमण्डल को व्याप्त करके ज़ोर से जल की वर्षा करने लगे। असङ्ख्य मेघ इन्द्र की आज्ञा पाकर खाण्डव वन के ऊपर, रथ के धुरे के समान मोटी धाराओं से, पानी बरसाने लगे किन्तु अग्नि के प्रचण्ड तेज से वह जल राह में ही सूख जाने लगा; आग तक एक भी बूँद न पहुँच सकी। तब नमुचि दैत्य को मारनेवाले इन्द्र अधिक कुपित होकर महामेघों के द्वारा और भी अधिक जल बरसाने लगे। आग की लपटों और जल की धाराओं से पूर्ण उस वन के ऊपर धुआँ छाया हुआ था। उस धुएँ के अँधेरे को मेघमाला ने और भी घना कर दिया था। बादलों के दल में बार-बार बिजलियाँ चमक रही थीं। उस वन का दृश्य बहुत ही भयानक हो उठा।

# दो सौ तीस अध्याय

## इन्द्र के साथ अर्जुन और श्रीकृष्ण का युद्ध

वैशम्पायन कहते हैं—इन्द्र को इस प्रकार जल की वर्षा करते देखकर अर्जुन ने अपने दिव्य अस्त्रों की सहायता से उस वर्षा को रोक दिया। जैसे चन्द्रमा कुहरे से जगत् को छिपा देते हैं वैसे ही महावीर अर्जुन ने अपने बाणों से सम्पूर्ण खाण्डव वन को छा दिया। वन के ऊपर का आकाशमण्डल अर्जुन के बाणों से इस प्रकार छा गया कि कोई प्राणी उधर से निकल न सका। महाबली नागराज तक्षक उस समय कुरुक्षेत्र को गया हुआ था। उसका पुत्र अश्वसेन वहाँ था। तक्षक के पुत्र ने अपने छुटकारे के लिए भरसक बहुत यत्न किया किन्तु अर्जुन के बाणों की रुकावट के मारे वह नहीं निकल सका। तब उसकी माता नाग-नन्दिनी ने उसे छुड़ाने का एक यत्न किया। वह उसे निगल गई। उसे सिर की ओर से निगलकर पूँछ की ओर निगलते-निगलते वह आकाशमार्ग से निकल रही थी। उसे जाते देख अर्जुन ने तीक्ष्ण बाण मारकर उसका सिर काट डाला।

इन्द्र ने यह देख लिया। तब उसे छुड़ाने के लिए उन्होंने ऐसा एक हवा का झोंका चलाया कि अर्जुन मोहित हो गये। उसी समय मौक़ा पाकर माता के शरीर से अश्वसेन निकल भागा। यों धोखा देकर नाग निकल गया। इस बात को और इन्द्र की चालाकी को देखकर अर्जुन को और भी क्रोध चढ़ आया; वे आकाश में जा रहे पक्षियों को भी टुकड़े-टुकड़े करके
१० आग में गिराने लगे। क्रुद्ध होकर अर्जुन, श्रीकृष्ण और अग्नि ने अश्वसेन नाग को शाप दिया कि तू जगत् में प्रतिष्ठा-हीन होकर रहेगा।

अब इन्द्र के धोखा देने की बात को याद करके अर्जुन अत्यन्त कुपित होकर तीक्ष्ण और शीघ्रगामी बाण चलाकर उनसे युद्ध करने लगे। इन्द्र ने भी अर्जुन को युद्ध में प्रवृत्त देखकर अपना तीव्र अस्त्र छोड़ा। उस अस्त्र से आकाशमण्डल व्याप्त हो उठा। तब घोर शब्द कर रहा प्रचण्ड पवन सब समुद्रों के जल में हलचल डालकर आकाश में जलधारा बरसानेवाले मेघों को पैदा करने लगा। अर्जुन ने जब देखा कि घोर मेघ गरज-गरजकर जल की वर्षा और वज्र-पात कर रहे हैं तब उन मेघों को नष्ट करने के लिए उन्होंने वायव्य अस्त्र से अभिमन्त्रित करके बाण छोड़े। उस अस्त्र के प्रभाव से मेघों का वह वेग घट गया। मेघ, बिजली, जलधारा आदि का कहीं पता नहीं रहा। दम भर में आकाश साफ़ हो गया। धूल और अँधेरे का नाम नहीं रहा। मनोहर ठण्डी हवा चलने लगी। सूर्यमण्डल पहले के समान उज्ज्वल रूप से प्रकट हो गया। रुकावट हट जाने से अग्निदेव फिर प्रज्वलित हो उठे। प्राणियों की बेशुमार चर्बी चाटकर लपलपा रही आग की लपटें फिर ऊँची हो गईं। चारों ओर वही अग्नि का उग्र शब्द

Hindi Section Library
OSMANIA UNIVERSITY
No.....



असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नागगण का अर्जुन और कृष्ण के साथ युद्ध—पृ० ४१७

और प्राणियों का आर्त्तनाद छा गया। महाराज! श्रीकृष्ण और अर्जुन को इस प्रकार दावानल की सहायता करते देखकर उस वन के निवासी गरुड़ आदि पक्षी बहुत क्रोध करके आकाशमार्ग को उड़े और वहाँ से इन दोनों वीरों पर वार करने के लिए टूट पड़े। श्रीकृष्ण और अर्जुन पर वज्रसदृश पङ्खों, चोंचों और नखों का वार करने के लिए आकाश से गरुड़ उन पर झपटे। बड़े-बड़े विषधर नाग मुँह से विष उगलते हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन की ओर चले। अर्जुन ने कुपित होकर अपने बाणों से उनके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इससे वे आग में गिर-गिरकर भस्म होने लगे।

इसके बाद असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और नागगण युद्ध करने के लिए भयानक शब्द से गरजते हुए अर्जुन और श्रीकृष्ण की ओर चले। वे 'अयःकणप' (लोहे की गोली चलाने के यन्त्र), 'चक्राश्म' (बड़े-बड़े पत्थर के टुकड़े जिनसे बहुत दूर तक चलाये जा सकते हैं ऐसे लकड़ी के बने यन्त्र) और 'भुशुण्डी' (पत्थर चलाने का चमड़े का यन्त्र) ऐसे विचित्र शस्त्रों को लिये श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारने के लिए उनकी ओर दौड़े। उन्हें गालियाँ आदि कठोर वचन कहते और शस्त्रों की वर्षा करते देखकर अर्जुन उसी दम अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके सिर काटने लगे। शत्रुदमन महातेजस्वी श्रीकृष्ण भी अपने दिव्य चक्र को चलाकर उन दैत्यों और दानवों का नाश करने लगे। जैसे जल-प्रवाह के वेग में पड़कर तेज़ी से बहे जा रहे तिनके किनारे पर अटककर रह जाते हैं, वैसे ही चक्र-बाण आदि के वार को न सह सकने के कारण बहुत से दैत्य-दानव उत्साहहीन और स्थिर होकर जहाँ के तहाँ रह गये; उनकी वह तेज़ी जाती रही।

तब असुर-नाशन इन्द्र बहुत ही कुपित होकर सफ़ेद गजराज ऐरावत पर चढ़कर श्रीकृष्ण और अर्जुन की ओर दौड़े। इन्द्र ने अपना अमोघ अस्त्र वज्र अर्जुन और श्रीकृष्ण पर चलाने के लिए तानकर देवताओं से कहा—अब मैं इन दोनों को मारे डालता हूँ। बस, उन्होंने वज्रास्त्र चला दिया। इन्द्र को वज्रास्त्र छोड़ते देखकर सब देवता अपने-अपने अस्त्र लेकर अर्जुन और श्रीकृष्ण की ओर झपटे। यमराज ने कालदण्ड, कुबेर ने गदा, वरुण ने पाश और विचित्र अशनि, स्कन्द ने शक्ति, अश्विनीकुमारों ने प्रकाशमान ओषधियाँ, धाता ने धनुष, जय ने मुशल, क्रोधित महाबली त्वष्टा ने पर्वत, अंश ने शक्ति और मृत्यु ने परश्वध हाथ में लिया। अर्यमा भयानक परिघ लेकर चले। मित्र नाम के आदित्य ने छुरे की धार के समान तीक्ष्ण चक्र हाथ में लिया। राजन्! पूषा, भग और सविता नाम के आदित्य भयानक धनुष और निस्त्रिंश लेकर श्रीकृष्ण और अर्जुन की ओर झपटे। महातेजस्वी रुद्रगण, वसुगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा और साध्य-गण तथा अन्य अनेक देवता अपने-अपने शस्त्र लेकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण और अर्जुन को मारने की इच्छा से उनकी ओर दौड़ पड़े। उस समय वहाँ युद्ध के मैदान में प्राणियों को घबरा देनेवाले वही सब उत्पात देख पड़ने लगे, जो प्रलय के समय दिखाई पड़ते हैं। युद्ध में दुर्द्धर्ष अर्जुन

और श्रीकृष्ण देवताओं-सहित इन्द्र को कुपित और युद्ध में प्रवृत्त देखकर तनिक भी विचलित नहीं हुए—धनुष चढ़ाकर वैसे ही साहस के साथ डटे रहे। युद्ध में चतुर वे दोनों वीर आ रहे देवताओं को वज्र-सदृश बाणों की वर्षा से विमुख करने लगे।

श्रीकृष्ण और अर्जुन ने तरह-तरह से देवताओं के इरादे को पूरा नहीं होने दिया। तब सब देवता डरकर युद्धभूमि छोड़कर इन्द्र के पास लौट गये। श्रीकृष्ण और अर्जुन ने देवताओं को खदेड़ दिया, यह देखकर आकाश में स्थित मुनियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। युद्ध में बारम्बार अर्जुन और श्रीकृष्ण के बाहु-बल और पराक्रम का परिचय पाकर इन्द्र मन ही मन बहुत प्रसन्न हुए। वे फिर उनसे युद्ध करने लगे। वे उस समय अर्जुन के पराक्रम की और भी परीक्षा करने के लिए पत्थरों की वर्षा करने लगे। अर्जुन ने क्रोध करके अपने बाणों की वर्षा से उन पत्थरों की वर्षा को बेकार कर दिया। तब इन्द्र और भी वेग से अधिकता के साथ पत्थरों की वर्षा करने लगे। इन्द्र-पुत्र महाबली अर्जुन ने फिर भी उस पत्थरों की वर्षा को विफल करके अपने पिता को प्रसन्न कर दिया। तब इन्द्र ने, अर्जुन को मारने के लिए, मन्दराचल का एक बड़ा सा शिखर उखाड़कर उन पर चलाया। अर्जुन ने वेग से सीधे जानेवाले तीक्ष्ण प्रदीप्त बाणों से उस शिखर के सैकड़ों टुकड़े कर डाले। वे टुकड़े आकाश से चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र आदि के समान पृथ्वी पर गिरने लगे। वह पर्वत का शिखर टुकड़े-टुकड़े होकर गिरा
५२ तो उसके नीचे दबकर भी खाण्डव वन के निवासी बहुत से प्राणी मर गये।



---

## दो सौ इकतीस अध्याय

### आकाश-वाणी सुनकर इन्द्र का युद्ध रोकना

वैशम्पायन कहते हैं—खाण्डव वन के निवासी दानव, राक्षस, तेंदुए, रीछ, मस्त हाथी, शार्दूल, सिंह, बाघ, मृग, भैंसे, पक्षी और भूतगण आदि उस पर्वतशिखर के गिरने से घबराकर बाहर निकलकर भागने लगे। उन्होंने देखा कि चारों ओर प्रचण्ड आग जला रही

है और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन धनुष ताने खड़े हैं। चारों ओर से जलाते आते अग्नि को और मारने के लिए उद्यत श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को देखकर वे सब जीव भयङ्कर शब्द करने और चिल्लाने लगे। उन जङ्गली जीवों की चिल्लाहट और आग का भयङ्कर शब्द आकाशमण्डल में जाकर गूँज उठा। महाबाहु श्रीकृष्ण ने उनको मारने के लिए परमतेजस्वी तीक्ष्ण चक्र चलाया। उस चक्र के प्रहार से पीड़ित और टुकड़े-टुकड़े होकर दानव, पिशाच, राक्षस और सब जङ्गली जीव आग में गिरने तथा भस्म होने लगे।

श्रीकृष्ण के चक्र से कटे-फटे और चर्बी तथा रक्त से लथपथ हो रहे काले-कलूटे दैत्यगण सन्ध्याकाल के बादलों के समान जान पड़ने लगे। हे भरतश्रेष्ठ! हज़ारों पिशाच, नाग, पशु, पक्षी आदि का नाश करते हुए श्रीकृष्ण यमराज के समान इधर-उधर घूमने लगे। शत्रुदमन श्रीकृष्ण का चक्र बारम्बार उनके हाथ से छूटकर असङ्ख्य प्राणियों का संहार करके उनके हाथ में आ जाता था। इस प्रकार पिशाच, नाग, राक्षस आदि का नाश करने से उस समय सब १०
प्राणियों के ईश्वर श्रीकृष्ण का रूप बहुत ही उग्र देख पड़ने लगा। देवताओं ने जब देखा कि श्रीकृष्ण और अर्जुन के मारे वे उस वन को दावानल से नहीं बचा सकते तब युद्ध छोड़कर हट गये। राजन्, देवताओं को युद्ध से हटते देखकर देवराज इन्द्र श्रीकृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करने लगे। देवता और इन्द्र भी जब युद्ध से लौट पड़े तब गम्भीर शब्द से आकाश-वाणी हुई—हे इन्द्र, तुम्हारा मित्र नागराज तक्षक भस्म नहीं हुआ; वह खाण्डव-दाह के समय कुरुक्षेत्र को चला गया था। हे देवराज, तुम निश्चय जानो कि इन श्रीकृष्ण और अर्जुन को कोई किसी तरह युद्ध में जीत नहीं सकता। ये दोनों महापुरुष देवलोक में प्रसिद्ध पुरातन देव नर और नारायण हैं। इनका बल और पराक्रम जैसा है सो तुम भी जानते हो। युद्ध में अजेय और दुर्द्धर्ष इन वीरों को तीनों लोकों में कोई नहीं जीत सकता। ये दोनों पुरातन ऋषिश्रेष्ठ देवता, असुर, यक्ष, राक्षस, गन्धर्व, मनुष्य, किन्नर, नाग आदि सबके माननीय और पूजनीय हैं। इसलिए हे २०
इन्द्र! युद्ध बन्द कर दो, और देवताओं को साथ लेकर अपने लोक को जाओ। यह खाण्डव-दाह विधाता की इच्छा से ही हुआ है।

यह सुनकर और उसे ठीक जानकर इन्द्र क्रोध त्यागकर स्वर्गलोक को चल दिये। राजन्, अपने स्वामी इन्द्र को जाते देखकर देवसेना-सहित प्रधान-प्रधान देवता भी उनके पीछे चले गये।

इधर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने जब देवताओं-सहित इन्द्र को युद्ध से हटते देखा तब वे प्रसन्नता-सूचक सिंहनाद करने लगे। महाराज, फिर वे दोनों वीर बेखटके खाण्डव-दाह के काम में सहायता करने लगे। हवा जैसे बादलों को हटा देती है, वैसे ही देवताओं को भगा देने के बाद वीर अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणों से खाण्डव-निवासी जीवों को मार-मारकर काट-काटकर आग में गिराने लगे। कोई प्राणी उनके बाणों से बचकर वहाँ से निकलकर नहीं जा सका।

जिनके अस्त्र कभी व्यर्थ नहीं हुए उन अर्जुन से लड़ना तो दूर रहा, खाण्डव वन के महाबली राक्षस-पिशाच आदि प्राणी उनकी ओर आँख उठाकर देख भी नहीं सकते थे। अर्जुन कभी एक बाण से सौ प्राणियों को मार गिराते थे और कभी सौ बाणों से एक प्राणी को घायल करते थे। मानो साक्षात् काल के ही हाथ से मारे गये वे प्राणी मर-मरकर अग्नि का आहार बनते जाते थे। नदी-तट, विषम दुर्गम स्थान या श्मशानभूमि, कहीं उस वन के भीतर वहाँ के
३० प्राणियों की जान नहीं बची। सभी जगह आग उनका पीछा करती और उन्हें जला डालती थी। प्राणियों के झुण्ड के झुण्ड व्याकुल होकर चिल्लाने लगे। मस्त हाथी, हिरन, तेंदुए आदि पशुओं का आर्त्तनाद उस वन भर में गूँज उठा। उन प्राणियों और पशु-पक्षियों के रोने-चिल्लाने का विकट शब्द सुनकर बहुत दूर पर गङ्गा के और समुद्र के भीतर रहनेवाले मछली आदि जलजीव, विद्याधर और आसपास के तथा जङ्गलों में रहनेवाले जीव डर से व्याकुल हो उठे। महाराज! श्रीकृष्ण और अर्जुन से युद्ध करना कैसा, कोई उनकी ओर देख भी नहीं सकता था। जो राक्षस, दानव और नाग मिलकर अर्जुन और श्रीकृष्ण पर हमला करने चलते भी थे उन्हें कृष्ण भगवान् अपने चक्र से मार डालते थे। चक्र के वेग से किसी का शरीर फट गया, किसी का सिर कट गया। बड़े-बड़े डील-डौलवाले प्राणी इस तरह मर-मरकर जल रही आग में गिर-गिरकर भस्म हो रहे थे। ढेर के ढेर मांस, रक्त और चर्बी से तृप्त आग की ज्वाला बिना धुएँ की होकर ऊपर आकाश तक पहुँचने लगी। आग की आँखें, जिह्वा, मुख और शिखाएँ प्रज्वलित हो रही थीं। श्रीकृष्ण और अर्जुन की सहायता से प्राणियों की चर्बी और रक्त को अमृत की तरह पीकर अग्नि-देव बहुत ही प्रसन्न और तृप्त हुए।



इसी बीच एकाएक श्रीकृष्ण ने देखा कि तक्षक के स्थान से मय नाम का दानव भागा जा रहा है और वायु जिनके सहायक हैं वे अग्निदेव सशरीर
४० जटाधारी होकर बादल की तरह गरजते हुए, उसे जलाने को, पीछा कर रहे हैं। दानवों के विश्वकर्मा मयासुर को भागते देख, उसे मारने के लिए, चक्र तानकर श्रीकृष्ण खड़े हो गये। इससे मय बहुत घबराया; पीछे जलाने के लिए अग्नि आ रहे थे और सामने मारने के लिए चक्र हाथ में लिये श्रीकृष्ण खड़े थे। तब उसने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! दौड़ो, मेरी रक्षा करो।

अर्जुन को शरणागत पर दया आ गई। उन्होंने उसे जीवन-दान करके कहा—डरो मत। नमुचि के भाई मयासुर को जब अर्जुन ने अभय कर दिया तब श्रीकृष्ण ने उसे नहीं मारा और अग्नि ने भी छोड़ दिया।

वैशम्पायन कहते हैं—श्रीकृष्ण और अर्जुन ने इन्द्र से अग्नि की रक्षा की और उन्होंने पन्द्रह दिन तक बराबर इस तरह खाण्डव वन को जलाया। महाराज! उस वन को जलाते समय अग्नि ने अश्वसेन नाग, मय दानव और चार शार्ङ्गक नामक पक्षियों को नहीं जलाया। ४७

---

## दो सौ बत्तीस अध्याय

मन्दपाल ऋषि का उपाख्यान

जनमेजय ने कहा—ब्रह्मन्, उस खाण्डव वन को जलाने के समय उस दशा में अग्नि ने शार्ङ्गक पक्षियों को क्यों नहीं जलाया? अश्वसेन नाग और मय दानव को न जलाने का कारण तो आप कह चुके हैं; पर शार्ङ्गक पक्षियों के बचने का कारण नहीं कहा। इन पक्षियों का बच जाना मुझे अद्भुत जान पड़ता है। कृपा कर कहिए कि उस भयानक अग्नि-दाह से ये पक्षी कैसे बच गये?

वैशम्पायन ने कहा—हे शत्रुदमन, सुनिए। मैं बतलाता हूँ कि उस समय अग्नि ने शार्ङ्गक पक्षियों को क्यों नहीं जलाया। महाराज! एक मन्दपाल नाम से प्रसिद्ध तपस्वी, विद्वान्, व्रतधारी, धार्मिक पुरुषों में श्रेष्ठ महर्षि थे। वे जितेन्द्रिय ब्राह्मण स्वाध्याय-पाठ, तपस्या और धर्म के आचरण में तत्पर रहते थे। वे ऊर्द्ध्वरेता ऋषियों का व्रत धारण किये हुए थे। हे भरतश्रेष्ठ, अन्त को शरीर त्यागकर वे पितृलोक को गये किन्तु वहाँ उन्हें अपने किये धर्म-कर्म और तप का कुछ भी फल न मिला। अपनी कठोर तपस्या के द्वारा मिलने योग्य लोकों में जाने में असमर्थ होकर उन्होंने धर्मराज के पास बैठे हुए देवताओं से पूछा—मैंने अपने तप के फल से जिन लोकों को प्राप्त किया है वहाँ की राह मेरे लिए क्यों रुकी हुई है? जिन कर्मों के करने से मनुष्य उन लोकों को जा सकता है वे कर्म क्या मैंने नहीं किये? देवताओ, जिस कारण मुझे मेरे तप का फल नहीं मिलता वह आप मुझसे कहिए। मैं उसका उपाय करूँगा। १०

देवताओं ने कहा—ब्रह्मन्, सुनो। जन्म के समय से ही मनुष्य पर देवता, ऋषि और पितरों के तीन ऋण होते हैं। यज्ञ, ब्रह्मचर्य और पुत्र उत्पन्न करने से उक्त तीनों ऋणों से छुटकारा मिलता है। तुमने ब्रह्मचारी रहकर तप भी बहुत किया है और यज्ञ भी अनेक किये हैं; किन्तु तुम्हारे पुत्र नहीं है। इसी कारण तुम उन पुण्यलोकों में नहीं जा सकते जहाँ

तुमको जाना चाहिए था। तुम पुत्र उत्पन्न करो, तो फिर उन श्रेष्ठ लोकों में जाकर सुख भोगोगे। ब्रह्मन्, श्रुति है कि पुत्र पिता को पुम् नाम के नरक से बचाता है। इसलिए अब तुम पुत्र उत्पन्न करने का यत्न करो।

वैशम्पायन कहते हैं—देवताओं के ये वचन सुनकर मन्दपाल बहुत चिन्तित हुए। वे सोचने लगे कि किस योनि में जाने से मैं शीघ्र बहुत से पुत्र उत्पन्न कर सकूँगा। अन्त को यह निश्चय करके कि पक्षी थोड़े ही दिनों में बहुत से पुत्र उत्पन्न करते हैं, वे शार्ङ्गक पक्षी हो गये। जरिता नाम की शार्ङ्गिका से सहवास करके, उसके गर्भ से, उन्होंने चार ब्रह्मज्ञानी पुत्र उत्पन्न किये। इसके बाद अण्डे के भीतर स्थित बच्चों को उनकी माता के साथ उसी वन में छोड़कर मन्दपाल लपिता नाम की दूसरी शार्ङ्गिका के पास गये। पुत्रों के स्नेह से व्याकुल होकर जरिता तरह-तरह की चिन्ता करने लगी। महर्षि तो अण्डे के रूप में स्थित पुत्रों को खाण्डव वन में छोड़ गये, पर जरिता उन ऋषिपुत्रों को त्याग करके न जा सकी। वह अपनी वृत्ति के
२० सहारे दाने आदि चुन ला करके स्वयं खाती थी और उन अण्डों की सेवा करती थी।

मन्दपाल ऋषि ने उसी रूप में लपिता के साथ उस वन के बीच घूमते-घूमते देखा कि विप्र-रूपधारी अग्नि खाण्डव वन को जलाने की इच्छा से आ रहे हैं। तेजस्वी लोकपाल अग्नि के इरादे को ब्रह्मज्ञ ऋषि जान गये। वे डरकर अपने पुत्रों के लिए अग्नि को प्रसन्न करने की इच्छा से स्तुति करने लगे। उन्होंने कहा—हे अग्निदेव, तुम सब लोकों के मुँह हो। तुम हवन में डाले गये पदार्थों को देवताओं तक पहुँचाते हो। हे पावक, तुम गुप्त रूप से सब प्राणियों के भीतर विराजमान हो। विद्वान् लोग तुम्हें एक भी कहते हैं और तीन रूपोंवाला भी मानते हैं। वे तुम्हारे आठ रूपों की कल्पना करके यज्ञकार्यों का निर्वाह करते हैं। हे हुताशन, महर्षियों का कहना है कि तुम्हीं ने इस विश्व की सृष्टि की है। यदि तुम न होते तो यह जगत् नष्ट हो जाता। स्त्री-पुत्र-सहित ब्राह्मण लोग तुमको प्रणाम करके अपने कर्मों से प्राप्त अविनाशी लोकों को जाते हैं। हे अग्नि, पण्डित लोगों का कहना है कि आकाश में बिजली के साथ रहनेवाले मेघ तुम्हीं हो। तुमसे निकलकर ज्वालाएँ सब प्राणियों को जलाती हैं। हे तेजोमय, यह चराचर जगत् तुम्हीं ने उत्पन्न किया है और कर्मकाण्ड-सम्पादक वेद तुम्हीं से उत्पन्न है। भगवन्, तुम्हीं ने पहले जल की सृष्टि की है और यह सब जगत् तुम्हीं में स्थित है। सब हव्य और कव्य ( देवताओं और पितरों का आहार )
३० पूर्ण रूप से तुम्हीं में प्रतिष्ठित है। धाता, दहन, बृहस्पति, अश्विनीकुमार, सूर्य, चन्द्रमा, वायु आदि सब तुम्हीं हो।

वैशम्पायन कहते हैं—राजन्, महातेजस्वी मन्दपाल के यों स्तुति करने पर अग्निदेव बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने प्रसन्न होकर कहा—बोलो, तुम्हारी क्या इच्छा है? मैं

उसे पूर्ण करूँगा। मन्दपाल ने हाथ जोड़कर कहा—भगवन्, आप खाण्डव वन जलाते समय मेरे पुत्रों को बचा दीजिएगा। अग्नि ने यह स्वीकार कर लिया। फिर वे ठीक समय पर खाण्डव वन जलाने की इच्छा से प्रज्वलित हो उठे। ३४

---

## दो सौ तेंतीस अध्याय

जरिता और उसके पुत्रों का संवाद

वैशम्पायन कहते हैं—जब खाण्डव वन में अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण किया तब वे शार्ङ्गक पक्षी बहुत ही घबराये और दुःखित हुए। उन्हें अपनी रक्षा का कोई उपाय न सूझ पड़ा। उनकी तपस्विनी माता जरिता, उन बच्चों को बालक देखकर दुःख और शोक से पीड़ित होकर, विलाप करती हुई कहने लगी—वन को जलाती हुई, चारों ओर अपना उजला और भयानक प्रकाश फैलाती तथा मेरे दुःख को बढ़ाती, यह भयानक आग इधर आ रही है। मेरे ये बच्चे उड़ने में अ-समर्थ और अजान हैं। इनके अभी पर भी नहीं निकले। इसके सिवा यही अपने पिता और पूर्वपुरुषों की गति हैं। इसी कारण ये मेरे हृदय को अपनी ओर खींच रहे हैं। यह दावानल धीरे-धीरे वृक्षों को भस्म करती इधर बढ़ रही है। मेरे बच्चे, पङ्ख न निकलने के कारण, भाग नहीं सकते। मुझमें भी इतनी शक्ति नहीं कि इनको लेकर इस विपत्ति के समुद्र से उबर जाऊँ, और इनको छोड़कर भी नहीं जा सकती। हाय, मेरा हृदय मानो फटा जा रहा है! किस पुत्र को ले जाऊँ, किसे छोड़ जाऊँ? क्या करूँ, जिससे पुत्रों को भी और अपने को भी बचा सकूँ! पुत्रो, तुम क्या समझते हो? मैं बहुत सोचकर भी कोई उपाय नहीं ठीक कर सकती। बस, मैं तुमको अपने शरीर से ढककर तुम्हारे साथ ही जल मरूँगी। तुम्हारे निठुर पिता तुम्हारे जन्म के बाद जाते समय कह गये थे कि मेरे चारों पुत्रों में से जरितारि बड़ा बेटा होने के कारण इस वंश को चलावेगा; उसी के नाम से यह वंश चलेगा। सारिसृक्व पुत्र उत्पन्न करके पितरों के कुल को बढ़ावेगा। स्तम्बमित्र तपस्या में निष्ठा रक्खेगा। द्रोण प्रसिद्ध वेदार्थ का जानकार होगा। पुत्रो, पर इस समय यह पीड़ाजनक महा सङ्कट १०
सामने खड़ा है। किसे लेकर भागूँ? किस तरह कृतकृत्य हो सकूँगी?

महाराज, जरिता इस प्रकार तरह-तरह की चिन्ताओं से विह्वल हो उठी। अपनी बुद्धि से वह अपने पुत्रों की रक्षा का कोई उपाय ठीक नहीं कर सकी।

शार्ङ्गक पक्षी माता के इस विलाप को सुनकर कहने लगे—माता, तुम पुत्र-स्नेह का विचार न करके ऐसी जगह उड़ जाओ, जहाँ आग का खटका न हो। माता, हम जल जायँगे

तो तुम्हारे और भी पुत्र उत्पन्न हो सकेंगे किन्तु जो तुम न रहोगी तो फिर वंश-रक्षा की आशा नहीं। जननी, इस समय वह समय उपस्थित है कि जिसमें कुल का भला समझो वही करो। सोच लो, हमारे साथ अपनी भी जान देना ठीक है, या हमें छोड़कर अपनी जान बचा लेना अच्छा है। तुम पुत्र-स्नेह का विचार छोड़ दो; ममता करने से सत्यानाश हो जायगा। स्वर्गलोक पहुँचानेवाले पुत्र के अभिलाषी पिता का उद्देश नष्ट हो जायगा।

जरिता ने कहा—पुत्रो, इस पेड़ के नीचे धरती में एक चूहे का बिल देख पड़ता है; तुम झटपट उसके भीतर चले जाओ। वहाँ तुम्हें आग का डर नहीं रहेगा। तुम जब भीतर चले जाओगे तब मैं ऊपर से मिट्टी भर दूँगी। इस समय जलती हुई आग से बचने का केवल यही उपाय है। तुम आग से बचने के लिए मेरा कहा मान लो। जब आग शान्त हो जायगी तब मैं आकर बिल का द्वार खोल दूँगी।

बच्चों ने कहा—हमारे अभी तक पङ्ख नहीं निकले; हम केवल मांस के पिण्ड हैं। मांस-भोजी चूहा हमें जल्द ही खा जायगा। इस कारण हम बिल के भीतर रहने के लिए राज़ी नहीं हैं। इस समय हमें अपनी रक्षा का कोई ऐसा अच्छा उपाय नहीं देख पड़ता, जिससे आग हमें जलावे नहीं, मूसा हमें खाय नहीं, पिता का पुत्र उत्पन्न करने का उद्देश नष्ट न हो और
२० हमारी मा भी बच जाय। इससे अवश्य हमारी मौत का समय आ गया है। बिल में चूहा खा जायगा, बाहर आग जला देगी। दोनों मौतों में आग से जलना ही अच्छा है; चूहे के मुँह में जाना किसी तरह भला नहीं। पवित्र अग्नि के मुख में जाने से सद्गति होगी।
२२ बिल में चूहे का आहार बनना निन्दित मृत्यु है।

## दो सौ चौंतीस अध्याय

जरिता का पुत्रों को छोड़कर उड़ जाना

जरिता ने कहा—इस बिल से अभी एक छोटी मुसरिया निकली थी, उसे एक बाज़ पक्षी झपट्टा मारकर पैरों में दबा ले गया है। अब इस बिल के भीतर कुछ खटका नहीं है।

बच्चों ने कहा—मालूम नहीं, वह पक्षी मुसरिया को उठा ले गया है या नहीं। यदि ले भी गया हो तो इस बिल के भीतर और अधिक मूसे भी तो हो सकते हैं। फिर यहाँ आग के आने में अभी सन्देह है; क्योंकि उलटी हवा चले तो आग उधर ही लौट जा सकती है। बिल में जाने से मरना निश्चित है, पर ऊपर रहने में कुछ सन्देह है। माता, जहाँ

निश्चित मृत्यु है वहाँ की अपेक्षा जहाँ अनिश्चित मृत्यु है वहीं रहना अच्छा है। इस कारण न्याय यही कहता है कि तुम आकाशमार्ग में उड़ जाओ। तुम बच जाओगी तो और श्रेष्ठ पुत्र पा सकोगी।

जरिता ने कहा—पुत्रो, जिस समय महापराक्रमी पक्षिराज बाज़ मुसरिया को लेकर गया उस समय उसे मैं देख रही थी। बिल से मुसरिया ले जाने के कारण मैं उसके पीछे गई और मैंने उसे आशीर्वाद दिया कि हे पक्षिराज, आपने हमारे वैरी को मार डाला, इसलिए आप स्वर्गलोक में स्वर्णमय शरीर धारण करके रहें। जब उस बाज़ ने मुसरिया को खा डाला तब मैं उससे विदा होकर लौट आई। पुत्रो, तुम बेखटके इस बिल में जाओ। यहाँ तुम्हें कुछ डर नहीं है। महात्मा बाज़ ने मेरे सामने ही मुसरिया को खा लिया था।

बच्चों ने कहा—हमने बाज़ को मुसरिया ले जाते नहीं देखा, इसलिए विशेष रूप से जाने बिना हम इस बिल के भीतर न जायँगे। १०

जरिता ने कहा—पुत्रो, तुम मेरा कहा मान लो। तुम्हें कुछ भी डर नहीं है। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि बाज़ मुसरिया को ले गया।

बच्चों ने कहा—हम लोग यह नहीं समझते कि तुम झूठ बोलकर हमें धोखा दे रही हो; किन्तु बुद्धि ठिकाने न रहने पर जो काम किया जाता है वह जानकर किये गये कामों में नहीं गिना जा सकता। देखो, तुम्हारा हमने कभी कोई उपकार नहीं किया, तुम यह भी नहीं जानती कि हम कौन हैं। फिर तुम क्यों इतना क्लेश स्वीकार करके हमें बचाने का उपाय कर रही हो? देखो, न तुम हमारी कोई हो, और न हम तुम्हारे कोई हैं। माता, तुम जवान, रूपवती और स्वामी को खोजने में समर्थ हो। इसलिए तुम स्वामी के पास जाओ; तुम फिर श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न कर सकोगी। हम भी आग में जलकर पवित्र लोक को जायँगे। यदि आग ने हमें नहीं जलाया तो तुम फिर हमारे पास आ जाना।

वैशम्पायन कहते हैं—बच्चों के बार-बार यों कहने पर जरिता वहाँ से उड़कर वन के उस हिस्से में चली गई जहाँ आग का खटका न था। प्रचण्ड ज्वालाओं से वन को जल्दी जलाते हुए अग्निदेव वहाँ पर आ गये, जहाँ मन्दपाल ऋषि के पुत्र—वे बच्चे—थे। प्रज्वलित अग्नि को पास आते देखकर बड़े भाई जरितारि अग्नि की स्तुति करने लगे। १८

# दो सौ पैंतीस अध्याय

अग्नि की स्तुति

जरितारि ने कहा—ज्ञानी पुरुष मृत्युकाल के पहले सावधान रहते हैं। उन्हें कहीं मृत्यु का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। अचैतन्य अर्थात् ज्ञान-हीन पुरुष आनेवाले मृत्युकाल का विचार नहीं करता। मृत्यु का समय आ पड़ने पर वह व्यथित होता है और कल्याण अर्थात् शान्ति नहीं पा सकता।

सारिसृक्क ने जरितारि से कहा—इस समय हमारे आगे प्राणसङ्कट उपस्थित है। आप धीर, बुद्धिमान् और अग्रज हैं। आप ही हमारी रक्षा कीजिए; क्योंकि बहुतों में एक ही कहीं प्राज्ञ और शूर होता है।

स्तम्बमित्र ने कहा—बड़ा भाई छोटे भाइयों को सङ्कट से बचाता है; क्योंकि वही उनका रक्षक है। जो बड़ा भाई रक्षा न कर सके तो छोटे भाई क्या कर सकते हैं?

द्रोण ने कहा—यह क्रूर कर्म करनेवाला, सात मुख और सात जीभोंवाला अग्नि जल्दी से प्रज्वलित होता और जलाने के लिए आगे बढ़ता हुआ हमारे रहने के स्थान में आ रहा है।

वैशम्पायन कहते हैं कि महाराज, मन्दपाल के पुत्र परस्पर यों कहकर, नम्र होकर, स्तुति करने लगे। जरितारि ने कहा—हे ज्वलन, तुम वायु की आत्मा हो। लताएँ और वृक्ष तुम्हारा शरीर हैं। जल तुम्हारा शुक्र है और वह तुम्हीं से प्रकट हुआ है। हे महावीर्य, तुम्हारी लपटें सूर्य की किरणों के समान ऊपर-नीचे आसपास सब ओर फैलती हैं।

सारिसृक्क ने कहा—हे धूमकेतु अग्नि, हमारी माता चली गई और पिताजी का भी पता नहीं। अभी तक हमारे पङ्ख नहीं निकले। हम बिलकुल बच्चे हैं। हे अनल, इस समय आपके सिवा और कोई हमारी रक्षा करनेवाला नहीं; इसलिए आप ही हमारी रक्षा कीजिए।
१० अपने कल्याणदायक रूप और सात शिखाओं से हम पीड़ित और शरणागत बालकों को बचाइए। हे जातवेदा, आप अकेले ही तपते हैं। किसी ज्योति में आपके सिवा और कोई उत्ताप (गर्मी) पहुँचानेवाला नहीं है। हे हव्यवाह, हम ऋषि के बच्चे हैं। हमें बचाइए। आप हमारे स्थान से हटकर दूसरी जगह चले जाइए।

स्तम्बमित्र ने कहा—हे अग्नि, आप अकेले सम्पूर्ण ब्रह्माण्डस्वरूप हैं। आपमें ही यह सब जगत् स्थित है। आप इन सब भुवनों को धारण किये हुए हैं। आप 'तेज' नामक पदार्थ हैं। आप हव्य वहन करनेवाले और सर्वोत्तम हव्य हैं। पण्डित लोग आपको कारणरूप से एक और कार्यरूप से अनेक रूप जानते हैं। हे हव्यवाहन अग्नि, आपने पहले त्रिभुवन की सृष्टि

की है। आप ही अन्त को प्रलयकाल में प्रज्वलित होकर उसका संहार करते हैं। इसलिए आप ही सब सृष्टि की उत्पत्ति और लय के स्थान हैं।

द्रोण ने कहा—हे जगदीश्वर, आप प्राणियों के शरीर के भीतर रहकर, बढ़कर, उनके खाये हुए अन्न को नित्य पचाते रहते हैं। इसलिए आपको ही सब प्राणियों के जीवन का आधार कहना चाहिए। हे शुक्र, हे जातवेदा, आप सूर्यस्वरूप से पहले सब रसों को और पृथ्वी से जल को खींचते हैं; फिर वर्षाकाल में पानी बरसाकर हरी-भरी लताओं और वृक्षों को पैदा करते हैं। हे शुक्र! हरी लताएँ, वृक्ष, सरोवर, और समुद्र आपसे ही उत्पन्न होते हैं। हे तीक्ष्ण किरणों-वाले, हमारा यह शरीर रसग्राही इन्द्रिय के अधीश्वर जलपति वरुण का निवासस्थान है। जल को उत्पन्न करनेवाले होने के कारण हमारे लिए भी आपको मङ्गलमय होना चाहिए। आप हमारी रक्षा कीजिए; हमें नष्ट न कीजिएगा। हे पिङ्गाक्ष, हे लोहितग्रीव, हे कृष्णवर्त्मा, हे हुताशन, आप हमसे दूर जाइए। समुद्रतट पर स्थित घर की तरह हमारे इस स्थान को छोड़ दीजिए।

वैशम्पायन कहते हैं—ब्रह्मज्ञानी द्रोण के ये वाक्य सुनकर अग्नि बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें याद आ गया कि वे मन्दपाल से उनके पुत्रों को बचा देने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। २०

अग्नि ने कहा—हे द्रोण, तुम ऋषि हो; तुमने जो कुछ कहा वह वेद-सङ्गत है। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। तुम शङ्का न करो। मन्दपाल ऋषि मुझसे पहले ही तुम्हारे लिए यह प्रार्थना कर चुके हैं कि मैं जब खाण्डव वन को जलाऊँ तब तुमको बचा दूँ। हे द्रोण, मन्दपाल की उस प्रार्थना और तुम्हारे इस निवेदन को मैं माननीय समझता हूँ। कहो, मैं और क्या तुम्हारा उपकार करूँ? ब्रह्मन्, तुम्हारा भला हो। मैं तुम्हारे इस स्तोत्र से प्रसन्न हूँ।

द्रोण ने कहा—हे हुताशन अग्नि, ये सब बिलाव नित्य हमें हैरान करते हैं। आप इन्हें परिवार-समेत भस्म कर डालिए।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, उन शार्ङ्गक बालकों से बिदा होकर, अग्नि ने उनके शत्रु बिलावों को भस्म कर डाला। फिर वहाँ से वन को जलाते हुए वे आगे बढ़े। २५

---

## दो सौ छत्तीस अध्याय

मन्दपाल और जरिता का पुत्रों के पास आना

वैशम्पायन कहते हैं—महाराज, उधर मन्दपाल अग्नि से पुत्रों को छोड़ देने के लिए कहकर भी निश्चिन्त नहीं हो सके; उन्हें पुत्रों के लिए चिन्ता बनी ही रहती थी। पुत्रों के लिए चिन्तित मन्दपाल ने लपिता से कहा—लपिता, मालूम नहीं मेरे पुत्र किस दशा में हैं!

क्योंकि उनमें अभी उड़ने की शक्ति नहीं है। जिस समय वायु का सहारा पाकर आग प्रचण्ड रूप धारण करेगी उस समय मेरे पुत्र अपने को आग के ग्रास से न बचा सकेंगे। तपस्विनी जरिता पुत्रों के बचने का उपाय न देखकर शोक से बहुत ही विह्वल हो उठेगी। ऊपर या इधर-उधर जाने में अ-समर्थ बच्चों के लिए सन्ताप करती हुई वह दौड़ी-दौड़ी फिरेगी। मेरा पुत्र जरितारि कैसे जी सकेगा? सारिसृक्व के ही प्राण किस तरह बचेंगे? स्तम्बमित्र और द्रोण या मेरी तपस्विनी स्त्री के प्राण कैसे बचेंगे?

हे भरतश्रेष्ठ, वन में इस तरह महर्षि मन्दपाल को स्त्री और पुत्रों के लिए विलाप करते देखकर लपिता ने डाह का भाव दिखाकर कहा—तुमने जिन पुत्रों का नाम लिया उनके लिए तुम्हें क्या चिन्ता है! वे तेजस्वी और वीर्यवान् हैं। आग से उन्हें डर नहीं है। फिर तुम आप उन पुत्रों की रक्षा के लिए अग्नि से प्रार्थना कर चुके हो और अग्नि ने भी स्वीकार कर लिया है। वे लोकपाल होकर कभी प्रतिज्ञा के विरुद्ध काम न करेंगे। इस कारण पुत्रों की
१० ओर से तुम निश्चिन्त हो। असल में तुम्हारा मन पुत्रों की रक्षा के लिए व्याकुल नहीं है; तुम तो उस मेरी सौत और शत्रु जरिता को याद करके ही व्याकुल हो रहे हो। पहले जरिता के ऊपर तुम्हारा जैसा स्नेह था वैसा इस समय मेरे ऊपर नहीं है। जिसके दो परिवार हैं, या जो सहायवान् और समर्थ है वह पुत्र आदि सुहृज्जन के क्लेश को, स्नेह के मारे, उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकता। इससे तुम इस समय जिसके लिए विलाप कर रहे हो उसी जरिता के पास जाओ। मैंने बिना समझे जैसे कुपुरुष का आश्रय लिया था वैसे ही अकेली रहकर उसका फल भोगूँगी।

मन्दपाल ने कहा—तुम मुझे जैसा समझती हो मैं वैसा नहीं हूँ। मैं उस भाव से नहीं घूमता-फिरता हूँ। मैं पुत्र उत्पन्न करने के लिए ही इस तरह भ्रमण करता हूँ। इस समय मेरे वही पुत्र प्राण-सङ्कट में पड़े हैं। जो कोई बीती बात को छोड़कर भावी विषय की वासना रखता है उस मूढ़ की निन्दा होती है। इसलिए तुम्हारी जो इच्छा सो करो। मैं पुत्रों के लिए बहुत चिन्तित हो रहा हूँ। यह प्रज्वलित अग्नि वृक्षों को जला रहा है। इसे देखकर मेरे उद्विग्न हृदय में सन्ताप और अमङ्गल की आशङ्का ही उत्पन्न होती है।

वैशम्पायन कहते हैं—उधर अग्नि जब उन बच्चों के स्थान को लाँघकर आगे बढ़े तब जरिता रोती हुई पुत्रों का हाल देखने के लिए फिर उस जगह आई। वहाँ आकर उसने देखा कि सब पुत्र आग से बच गये हैं और कुशलपूर्वक जीते-जागते हैं। माता को देखकर वे बच्चे रोने लगे। जरिता भी उन्हें देखकर रोने लगी, पर वे आँसू आनन्द के थे। बच्चों को बार-म्बार आर्त्तनाद करते देखकर जरिता ने पास आकर उनको छाती से लगा लिया। हे भरतश्रेष्ठ, इसी समय महर्षि मन्दपाल एकाएक वहाँ पर आ गये। उन्हें देखकर उनके पुत्रों ने

आनन्द नहीं प्रकट किया। ऋषि ने बारम्बार हर एक पुत्र से और जरिता से कुशल-प्रश्न किया, २०
पर उन्होंने अच्छा या बुरा कुछ भी उत्तर न दिया। तब मन्दपाल ने जरिता से कहा—इनमें तुम्हारा कौन बड़ा पुत्र है? कौन दूसरा, कौन तीसरा और कौन छोटा पुत्र है? मैं शोक से व्याकुल होकर बारम्बार तुमसे यही पूछता हूँ; तुम मुझे उत्तर क्यों नहीं देतीं? मैं तुमको छोड़कर यहाँ से चला गया था सही, पर मुझे शान्ति नहीं मिली।

जरिता ने कहा—तुमको बड़े बेटे, दूसरे बेटे, तीसरे बेटे और छोटे बेटे से क्या काम है? मुझे सब बातों में घटिया देखकर पहले तुम जिसके पास गये थे उसी परमसुन्दरी लंपिता के पास जाओ।

मन्दपाल ने कहा—पर-पुरुष के पास जाने से स्त्रियों का पर-लोक बिगड़ता और सौत रहने से उनको संसार का सुख नहीं मिलता; सदा जी जलता रहता है। सप्तर्षिमण्डल में स्थित ऋषि-श्रेष्ठ महानुभाव वशिष्ठ अत्यन्त सच्चरित्र और स्त्री का प्रिय तथा हित करने में तत्पर थे; तो भी सब लोकों में प्रसिद्ध पतिव्रता अरुन्धती ने वशिष्ठ के चरित्र पर सन्देह किया और व्यभिचारी समझकर उनका तिरस्कार भी किया। यह घृणित विचार करने से ही वे कल्याणी अरुन्धती, धुँधले लाल रङ्ग के समान प्रभावाली, गुप्त वेषवाली, कभी दृश्य और कभी अदृश्य होकर दुर्निमित्त की तरह आकाश में देख पड़ती हैं। वशिष्ठ जैसे अरुन्धती के इष्ट थे, वैसे ही मैं तुम्हारा इष्ट हूँ। मैं सन्तान के लिए ही तुम्हारे साथ रहा था। आज तुम मेरे ३०
साथ अरुन्धती का ऐसा व्यवहार कर रही हो! स्त्री जाति को भार्या समझकर उस पर विश्वास करना ठीक नहीं। स्त्रियाँ पुत्रवती होने पर पति की सेवा आदि कार्यों को आवश्यक कर्त्तव्य नहीं समझतीं।

वैशम्पायन कहते हैं—इसके बाद वे सब पुत्र प्रणाम आदि करके पिता की सेवा करने लगे। मुनि भी पुत्रों को दिलासा देने लगे।

---

## दो सौ सैंतीस अध्याय

मन्दपाल का पुत्रों को आश्वास देना। इन्द्र का अर्जुन को अस्त्र देना स्वीकार करना तथा कृष्ण और अर्जुन को वर देना

मन्दपाल ने अपने पुत्रों से कहा—मैंने पहले ही अग्निदेव से तुम्हारे छुटकारे के लिए प्रार्थना की थी, और उन्होंने तुम्हें न जलाने की प्रतिज्ञा कर ली थी। अग्नि की उस प्रतिज्ञा पर भरोसा करके मैं पहले यहाँ नहीं आया। तुम्हारी माता की धर्मनिष्ठा और तुम्हारी प्रबल

शक्ति पर भी मुझे विश्वास था कि उसके कारण तुम आग से बच जाओगे। हे पुत्रो, तुम मेरे न आने के कारण दुःख न करो। अग्निदेव भी तुमको ऋषि समझते हैं और वेदान्त-प्रतिपाद्य ब्रह्म का भी ज्ञान तुम्हें है।

वैशम्पायन कहते हैं—महर्षि मन्दपाल इस तरह पुत्रों को समझाकर अपनी स्त्री जरिता को साथ ले उस जगह से दूसरे स्थान को चल दिये। महाराज! अग्नि भगवान् ने, जगत् की भलाई के लिए इस तरह प्रज्वलित होकर, श्रीकृष्ण और अर्जुन की सहायता से दुष्ट जीवों के निवास-स्थान खाण्डव वन को भस्म कर डाला। खाण्डव वन में चर्बी और मेदा की नदियाँ पीकर अग्निदेव तृप्त और प्रसन्न हुए। फिर वे पहले की तरह विप्ररूप से अर्जुन के सामने आये।

भगवान् इन्द्र भी देवताओं के साथ आकाशमार्ग से उतरकर पृथ्वी पर आये। उन्होंने अर्जुन और श्रीकृष्ण से कहा—जिस काम को देवता भी सहज में नहीं कर सकते थे, वह काम तुमने किया है। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। अब तुम वरदान माँगो। मनुष्यों के लिए दुर्लभ वर भी तुम माँगोगे तो मैं दूँगा।

वैशम्पायन कहते हैं—हे जनमेजय, तब अर्जुन ने इन्द्र से सब दिव्य अस्त्र माँगे। इन्द्र ने भी यथासमय उन अस्त्रों के देने का वादा करते हुए कहा—हे पाण्डु-पुत्र, जिस समय भगवान् शङ्कर तुम पर प्रसन्न होंगे उसी समय मैं भी तुमको सब दिव्य अस्त्र देकर उनका प्रयोग
१० और उपसंहार बता दूँगा। जब वह समय आवेगा तब मुझको मालूम हो जायगा। तप करके तुम मुझसे सब आग्नेय अस्त्र, वायव्य अस्त्र और मेरे अस्त्र प्राप्त करोगे।

अब श्रीकृष्ण ने भी इन्द्र से यह वर माँगा कि अर्जुन से उनकी मित्रता सदा बनी रहे। बुद्धिमान् श्रीकृष्ण को इन्द्र ने यह वर दिया। इस प्रकार श्रीकृष्ण और अर्जुन को वर देकर और अग्नि से बिदा होकर इन्द्रदेव देवलोक को गये। महाराज, अग्निदेव मृग-पक्षी आदि प्राणियों से भरे खाण्डव वन को पन्द्रह दिन तक लगातार जलाकर शान्त हो गये। रक्त, मेदा, मांस, चर्बी आदि के आहार से तृप्त अग्नि ने श्रीकृष्ण और अर्जुन के आगे आकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की और कहा—तुम दोनों वीर और श्रेष्ठ पुरुष हो। तुम्हारी सहायता से ही मैं जी भरकर भोजन करके तृप्त हुआ हूँ। मैं तुमको वर देता हूँ कि तुम्हारी गति अप्रतिहत होगी; अर्थात् तुम अपनी इच्छा के अनुसार सब जगह जा सकोगे।

वरदान देकर अग्निदेव अन्तर्द्धान हो गये। इसके बाद अर्जुन, श्रीकृष्ण और मय दानव,
१९ ये तीनों पुरुष कुछ देर इधर-उधर टहलकर रमणीय यमुना नदी के तट पर एक जगह बैठ गये।

आदिपर्व समाप्त

# महाभारत के स्थायी ग्राहक बनने के नियम

(१) जो सज्जन हमारे यहाँ महाभारत के स्थायी ग्राहकों में अपना नाम और पता लिखा देते हैं उन्हें महाभारत के अङ्कों पर २०) सैकड़ा कमीशन काट दिया जाता है। अर्थात् १।) प्रति अङ्क के बजाय स्थायी ग्राहकों को १) में प्रति अङ्क दिया जाता है। ध्यान रहे कि डाकख़र्च स्थायी और फुटकर सभी तरह के ग्राहकों को अलग देना पड़ेगा।

(२) साल भर या छः मास का मूल्य १२) या ६), दो आना प्रति अङ्क के हिसाब से रजिस्ट्री ख़र्च सहित १३॥) या ६॥) जो सज्जन पेशगी मनीआर्डर-द्वारा भेज देंगे, केवल उन्हीं सज्जनों को डाकख़र्च नहीं देना पड़ेगा। महाभारत की प्रतियाँ राह में गुम न हो जायँ और ग्राहकों की सेवा में वे सुरक्षित रूप में पहुँच जायँ, इसी लिए रजिस्ट्री द्वारा भेजने का प्रबन्ध किया गया है।

(३) उसके प्रत्येक खंड के लिए अलग से बहुत सुन्दर जिल्दें भी सुनहले नाम के साथ तैयार कराई जाती हैं। प्रत्येक जिल्द का मूल्य ।॥) रहता है परन्तु स्थायी ग्राहकों को ॥) ही में मिलती हैं। जिल्दों का मूल्य महाभारत के मूल्य से बिलकुल अलग रहता है।

(४) स्थायी ग्राहकों के पास प्रतिमास प्रत्येक अङ्क प्रकाशित होते ही बिना विलम्ब वी० पी० द्वारा भेजा जाता है। बिना कारण वी० पी० लौटाने से उनका नाम ग्राहक-सूची से अलग कर दिया जायगा।

(५) ग्राहकों को चाहिए कि जब किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करें तो कृपा कर अपना ग्राहक-नम्बर जो कि पता की स्लिप के साथ छपा रहता है और परा पता अवश्य लिख दिया करें। बिना ग्राहक-नम्बर के लिखे हज़ारों ग्राहकों में से किसी एक का नाम ढूँढ निकालने में बड़ी कठिनाई पड़ती है और पत्र की कार्रवाई होने में देरी होती है। क्योंकि एक ही नाम के कई-कई ग्राहक हैं। इसलिए सब प्रकार का पत्र-व्यवहार करते तथा रुपया भेजते समय अपना ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखना चाहिए।

ग्राहकों को अपना पता सदा अथवा अधिक काल के लिए बदलवाना हो, अथवा ... कुछ भूल हो, उन्हें कार्यालय को पता बदलवाने की चिट्ठी लिखते समय अपना पुराना और नया दोनों पते और ग्राहक-नम्बर भी लिखना चाहिए। जिससे उचित संशोधन करने में कोई दिक्कत न हुआ करे। यदि किसी ग्राहक को केवल एक दो मास के लिए ही पता बदलवाना हो, तो उन्हें अपने इलके के डाकख़ाने से उसका प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

(७) ग्राहकों से सविनय निवेदन है कि नया आर्डर या किसी प्रकार का पत्र लिखने के समय यह ध्यान रक्खें कि लिखावट साफ़ साफ़ हो। अपना नाम, गाँव, पोस्ट और ज़िला साफ़ साफ़ हिन्दी या अँगरेज़ी में लिखना चाहिए ताकि अङ्क या उत्तर भेजने में दुबारा पूछ-ताछ करने की ज़रूरत न हो। "हम परिचित ग्राहक हैं" यह सोच कर किसी को अपना पूरा पता लिखने में लापरवाही न करनी चाहिए।

(८) यदि कोई महाशय मनी-आर्डर से रुपया भेजें, तो 'कूपन' पर अपना पता-ठिकाना और रुपया भेजने का अभिप्राय स्पष्ट लिख दिया करें, क्योंकि मनीआर्डरफ़ार्म का यही अंश हमको मिलता है।

सब प्रकार के पत्रव्यवहार का पता—

**मैनेजर महाभारत विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।**

शुभ संवाद ! लाभ का सूचना !!

# महाभारत-मीमांसा

## कम मूल्य में

राव बहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०, एल्-एल० बी०, मराठी और अँगरेज़ी के नामी लेखक हैं। यह ग्रन्थ आप ही का लिखा हुआ है। इसमें १८ प्रकरण हैं और उनमें महाभारत के कर्ता (प्रणेता), महाभारत-ग्रन्थ का काल, क्या भारतीय युद्ध काल्पनिक है ?, भारतीय युद्ध का समय, इतिहास किनका है ?, वर्ण-व्यवस्था, सामाजिक और राजकीय परिस्थिति, व्यवहार और उद्योग-धन्धे आदि शीर्षक देकर पूरे महाभारत ग्रन्थ की समस्याओं पर विशद रूप से विचार किया गया है।

काशी के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् श्रीयुक्त बाबू भगवानदासजी, एम० ए० की राय में महाभारत को पढ़ने से पहले इस मीमांसा को पढ़ लेना आवश्यक है। आप इस मीमांसा को महाभारत की कुञ्जी समझते हैं। इसी से समझिए कि ग्रन्थ किस कोटि का है। इसका हिन्दी-अनुवाद प्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय पण्डित माधवरावजी सप्रे, बी० ए०, का किया हुआ है। पुस्तक में बड़े आकार के ४०० से ऊपर पृष्ठ हैं। साथ में एक उपयोगी नक़शा भी दिया हुआ है जिससे ज्ञात हो कि महाभारत-काल में भारत के किस प्रदेश का क्या नाम था।

हमारे यहाँ महाभारत के ग्राहकों के पत्र प्रायः आया करते हैं जिनमें स्थल-विशेष की शंकाएँ पूछी जाती हैं। उन्हें समयानुसार यथामति उत्तर दिया जाता है। किन्तु अब ऐसी शंकाओं का समाधान घर बैठे कर लेने के लिए हमने इस महाभारत-मीमांसा ग्रन्थ को पाठकों के पास पहुँचाने की व्यवस्था का संकल्प कर लिया है। पाठकों के पास यदि यह ग्रन्थ रहेगा और वे इसे पहले से पढ़ लेंगे तो उनके लिए महाभारत की बहुत सी समस्याएँ सरल हो जायँगी। इस मीमांसा का अध्ययन कर लेने से उन्हें महाभारत के पढ़ने का आनन्द इस समय की अपेक्षा अधिक मिलने लगेगा। इसलिए महाभारत के स्थायी ग्राहक यदि इसे मँगाना चाहें तो इस सूचना को पढ़ कर शीघ्र मँगा लें। उनके सुभीते के लिए हमने इस ४) के ग्रंथ को केवल २॥) में देने का निश्चय कर लिया है। पत्र में अपना पूरा पता-ठिकाना और महाभारत का ग्राहक-नंबर अवश्य होना चाहिए। **समय बीत जाने पर** महाभारत-मीमांसा **रिआयती मूल्य में न मिल सकेगी।** प्रतियाँ हमारे पास अधिक नहीं हैं।

मैनेजर बुकडिपो—इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग।